2430

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

mj 5 २५३०
152 M1; M9
नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

152 M1; M9

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक....2530.....
दिनांक.....

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

जोचोवजी - 9-7-93		

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूल्य - १५.००)

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
१५३०
दिनांक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूल्य नवम्बर १९८१ .

भवनकी पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

हिन्दी डाइजेस्ट

दीपोत्सवी विशेषांक

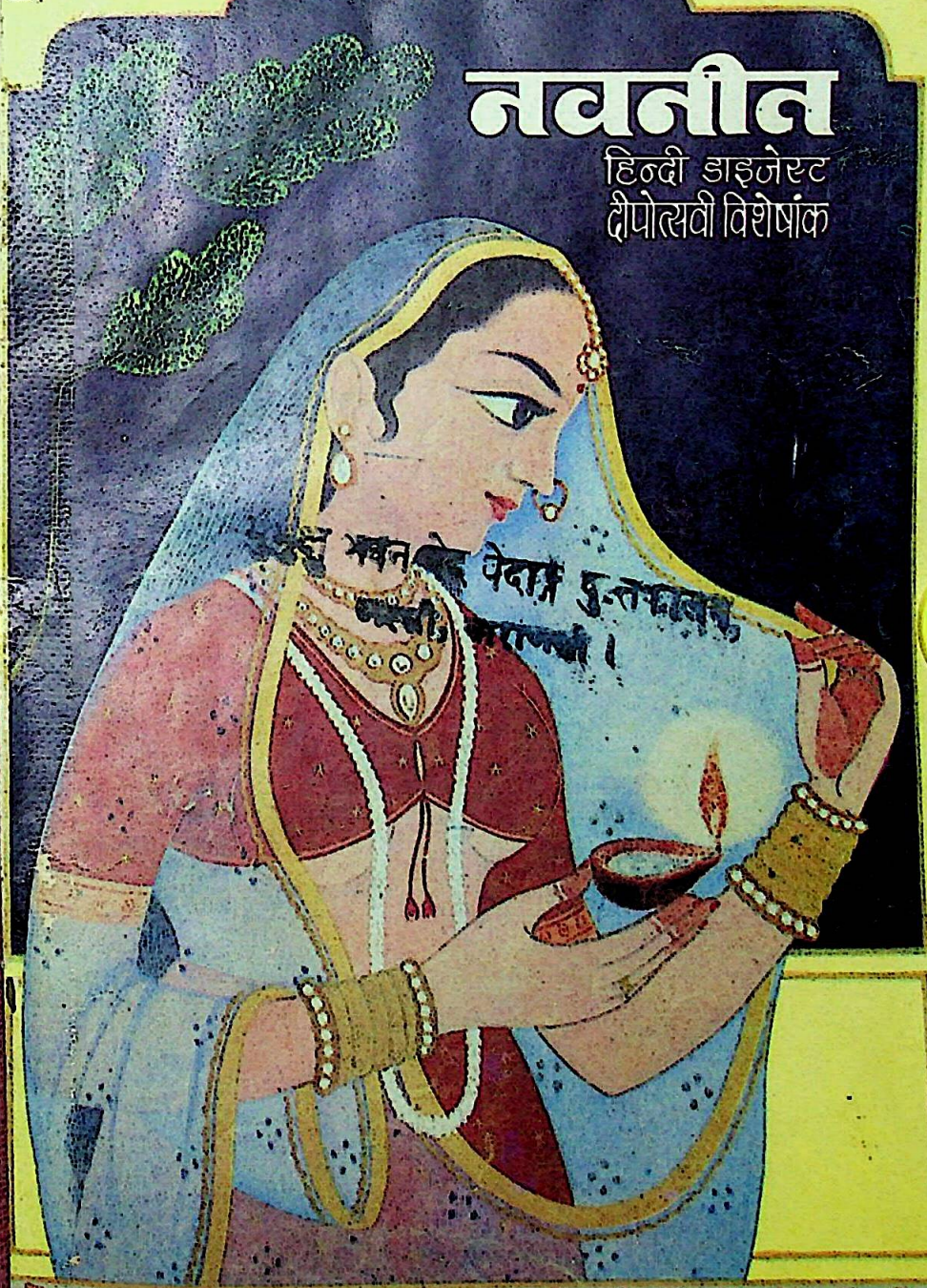

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विमल सहर्ष पेश करते हैं
फेशनेबल वस्त्रों का एक सुखी परिवार.
असंख्य डिजाइनों एवं रंगों में
सूटिंग्स • शर्टिंग्स • साड़ीयाँ • ड्रेस मटीरियल

अद्वितीय VIMAL® विमल
A RELIANCE PRODUCT
अंतर्राष्ट्रीय श्रेणी की गुणवत्ता

Mudra/RTI/ 5 Hin.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप ही देखिये कि देना बैंक में आपकी रकम समय के साथ कितनी बढ़ती जाती है!...

समृद्धि जमा योजना

आपकी बचत की रकम आश्चर्यजनक गति से बढ़ती है क्योंकि न सिर्फ आपके मूलधन पर बल्कि ब्याज पर भी ब्याज मिलता है।

आवर्ती जमा योजना

आपकी मासिक बचत की छोटी-छोटी रकमों को भविष्य में निश्चित की बड़ी रकमों में बदलिए।

मीयादी जमा योजना

अगर आप सरलता से बचत कर सकें तो इस रकम के लिए क्या ठीक भविष्य है।

बचतदी प्रमाण पत्र

एक सुरक्षित निवेश राशि जो अपने आप बढ़ती चली जाती है।

देना बैंक

(राष्ट्रीयकृत बैंक)

केन्द्रीय कार्यालय : मेजर [illegible]

[illegible] परेल, बम्बई 400 000

अधिक जानकारी के लिए अपने नजदीक की देना बैंक की शाखा में पधारिए।

जनता की उन्नति और समृद्धि के लिए समर्पित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

m; 5
L59, M1; M2

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया

भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

भवानीकुमार राजगी।

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक... 2530 ...
दिनांक ...
संयोजक
शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन्

*

आवरण-चित्र : दीपवेला की सोहागिन : कलाकार कमलाक्ष शेणै द्वारा चित्रित मिनियेचर शैली

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३०; अंक : ११

श्रीश्चते लक्ष्मीश्चते प्रभाकर माचवे ४
चिरंतन् स्नेहलता चट्टोपाध्याय ६
शरद पूर्णिमा पर महारास . . .
डॉ. हर्षनंदिनी भाटिया ८
चांदनपुर के श्रीमहावीर : एक चमत्कारिक सिद्धपीठ सावित्री परमार १८
दो कविताएं डॉ. हरिवंशराय बच्चन ३०
श्रीगुरुकृपा की दीक्षा
स्वामी मुक्तानंद परमहंस ३२
प्रार्थना ३३
भारतीय द्रष्टाओं की सुपर्ण विद्या
डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ३४
अतिमानस लोक का दर्शन श्रीमां ३६
ऊर्ध्वबाहु ने पाया, वहां बस वही हैं . . . जैनेन्द्रकुमार ४४
अस्पर्श अज्ञेय ४८
दो कविताएं अज्ञेय ५२
जीवन अपनी देहरी पर
डॉ. विद्यानिवास मिश्र ५६
शारदीया मदनमोहन तरुण ६४
बर्फ के फूल (कहानी) निर्मल कुमार ६५
थोड़ी देर हो गयी (कविता)
गिरिजाकुमार माथुर ७२
विरोधाभास महेश मूलचंदानी ७५
पाप मोचन नंदकिशोर नंदन ७५
लगता है कि आसमान उस कमरे का हिस्सा है ज्योत्स्ना मिलन ७६
नायक (बंगला कहानी)
रवीन्द्रनाथ ठाकुर ८२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

नवंबर १९८१

स्त्री-स्वातंत्र्य राजी सेठ ८४
भगवान परमहंस की सोहागरात स्वामी गंभीरानंद ९२
दो कविताएं रामविलास शर्मा १००
रमेशचन्द्र शाह की अंतरंग दुनिया... १०४
कस्मैदेवाय : पूर्णकाम युगल पं. देवदत्त शास्त्री ११२
नौकर (कहानी) विवेकी राय १२०
महान मुंशी का महाप्रस्थान शान्तिलाल तोलाट १२९
तुम चूड़ी पहनो... ... सुनीता जैन १३६
चिट्ठी (कविता) श्रीराम वर्मा १४०
खजुराहो वीरेन्द्रकुमार जैन १४४
जयपुर की वारांगना रानी रसकपूर सावित्री परमार १५६
तीन कविताएं प्रदीप बांदिवडेकर १६८
तीन कविताएं कु. शशि कुक्रेजा १७०
तीन कविताएं कु. पद्मजा घोरपडे १७१
विश्व के आदि महाकाव्य रामायण और महाभारत वासुदेव पोद्दार १७२
महान आत्मविज्ञानी परमहंस विशुद्धानंद पं. गोपीनाथ कविराज १८०
दशकुमारचरित महाकवि दंडी १८४
फिर दिवाली आ गयी वैद्य सुरेशचंद्र चतुर्वेदी २३५

चित्रसज्जा : ओके, शेणै, राणा, भटनागर, अधिकारी, नीता वैद्य, जड़िया, हेडाऊ, सांकला, दिनेश शाह, आलोक जैन।
नलिनी मलानी के विशिष्ट रेखांकन

अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पूर्णतया शिक्षा, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी संस्था, संस्थापक : कुलपति क. मा. मुन्शी, सभापति : श्री धरमसी म. सटाऊ, उपाध्यक्ष : श्री गिरधारीलाल मेहता, श्री जयसुखलाल हाथी।

सहयोगी प्रतिष्ठान

१- मुम्बादेवी संस्कृत महाविद्यालय २-शास्त्रीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-सुदूर संस्कृत परीक्षा-विभाग ४-गीता- विद्यालय ५-मूलचन्दलाल मोगनकर स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६-मुन्शी सरस्वती मंदिर (पुस्तकालय) ७- बलभद्रजी रामजी बाल पुस्तकालय ८-भारतीय संगीत विद्यापीठ ९- भारतीय नर्तन विद्यापीठ १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाशन मंदिर, पुस्तक मुनिवर्सिटी, मुन्शी सीरिज, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या त्रैमासिक), भवन्स जर्नल (अंग्रेजी मासिक), संविद (संस्कृत त्रैमासिक), नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट (हिन्दी मासिक), नवनीत समर्पण (गुजराती मासिक) १३-प्राचीन अंतर्दृष्टियां और आधुनिक आविष्कार योजना १३-औपनिवेशिक योजना १४-राजाजी शतवार्षिकी समिति १५- म. म. कला कालेज और म. म. विज्ञान विद्यालय संस्थान (अंधेरी) १६-बलभराय मेहता पब्लिक स्कूल (नयी दिल्ली) १७-हजारीमल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (चौपाटी, बम्बई) १८- सरदार पटेल अभियांत्रिकी कालेज (अंधेरी) १९- रणछोड़लाल अचरतलाल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०- रणछोड़लाल अचरतलाल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१-प्रवीणचंद्र वाणिज्य कालेज, (डाकोर) २२- कला एवं विज्ञान कालेज (डाकोर) २३- स्वामीनारायण पालिटेक्निक (डाकोर) २४- श्री अमृतलाल कालिदास बोली महिला कालेज (जामनगर) २५- क. ह. मेहता विज्ञान कालेज (भरवारी) २६- राजेन्द्र प्रसाद संप्रेषण एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मूलिर्ट : शाणलाल देवकरण मानजी संप्रेषण एवं प्रबंध-विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंप्रेषण कालेज, नयी दिल्ली; हरिलाल भगवती जनसंप्रेषण कालेज अहमदाबाद तथा बंगलौर; सोमानी जनसंप्रेषण कालेज, एरनाकुलम्; बड़ौदा, चंडीगढ़, मुंबई, हैदराबाद, मंगलौर तथा त्रिपुर में स्थित जनसंप्रेषण कालेज) २७- जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नयी दिल्ली २८-ब. ह. वाडिया स्कूल (अंधेरी) २९- बलभराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याभवन) बड़ौदा तथा भरवारी ३०-भवन का विद्या मंदिर, एलानक्कर, एरनाकुलम ३१- कोचीनगढ़ पर भवन का स्कूल, कोचीन ३२- बलभराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याभवन) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३- भवन का पब्लिक स्कूल, भेल, रामचन्द्रपुरम्, हैदराबाद ३४- संयुक्त संस्थाएं : संस्कृत विश्व परिषद्; भारतीय स्त्री सेवा संघ; ज्योतिष परिषद् (बंबई) ३५- संस्कृति पाठ्यक्रम पुस्तकें।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ौदा, भोपाल, भुवनेश्वर, कलकत्ता, चंडीगढ़, कोयम्बतूर, डाकोर, दिल्ली, एरनाकुलम, मुंबई, हैदराबाद, जम्मू, जामनगर, काकीनाडा, कानपुर, मद्रास, मथुरा, मंगलौर, मुकुंदपुर, नागपुर, सिलोन, श्रीनगर, त्रिपुर, विशाखापट्टनम्, लंदन (संयुक्त राज्य)।

भारतीय विद्या भवन
के.एम.मुन्शी मार्ग, चौपाटी, बम्बई-४००००७

फोन : ३५१४६१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीश्चते लक्ष्मीश्चते...

□

डॉ. प्रभाकर माचवे

लक्ष्मी का अर्थ है चिन्ह—किस चिन्ह के कारण यह समुद्र-मन्थन से उत्पन्न रूपवती श्री, शोभा, कांतिमयी बनी, कोई नहीं जानता। वह विष्णु पत्नी हुई। ऋग्वेद में श्री सूक्त है। शायद श्री लक्ष्मी की सौत थी ऐसा भी कुछ विद्वान् मानते हैं। शतपथ ब्राह्मण में माया असुरविद्या मानी जाती थी। वह भी श्री, लक्ष्मी का पर्यायवाची बनी। लक्ष्मी का एक नाम 'मा' भी है। भरहुत के एक शिल्प के नीचे 'सिरि मा' लिखा है। वायु-पुराण में लक्ष्मी के छप्पन नाम हैं, जैसे षष्ठी, भद्रा, रेवती, महिषमर्दिनी, कात्यायनी, उमा, हैमवती, गौरी इत्यादि। इसी षष्ठी से छठ-पूजन शुरू हुआ और हिन्दी मुहावरा आया—उसे 'छठी का दूध' याद आ गया। आज भी पैसे-टके के चक्कर में पड़े आदमी को कहते हैं किस 'माया' में पड़े हो? दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम!

जब आदमी जन्म लेता है तो सौ लक्ष्मियां उसके साथ जन्म लेती हैं। कुछ शिव और कुछ अ-शिव। अथर्ववेद कहता है कि कल्याणरूपिणी लक्ष्मियों को हम साथ लेकर चलते हैं। वे जनपद-कल्याणी नहीं होतीं, न जैनेन्द्रजी की 'कल्याणी' ही। शिवाजी की घोड़ी को शिवकल्याणी कहते थे। वह कल्याणगढ़ पर शायद चढ़ी हो। किसी का विवाह हो तो दक्षिण भारत में उसे 'कल्याण' होना कहते हैं। 'समाज 'कल्याण' विभाग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसे नोट कर ले। दक्षिण में मंदिरों के साथ-साथ 'कल्याण-मंडपम्' होते हैं।

लक्ष्मी हाथी के शब्द से नींद से जागती है। वह गजलक्ष्मी भी है—हाथियों द्वारा अभिसिंचिता। विल्व उसका वृक्ष है। शिव-प्रिय वृक्ष है वह। वह सुवर्ण-वर्णा है। वह कमल पर आसीन है, कमलिनी के रंग की है।

श्रीसूक्त कहता है —

सरसिजनिलये सरोजहस्ते
धवलतरांशुकगंधमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरी प्रसीद मह्यम्।

तैत्तिरीय उपनिषद लक्ष्मी वस्त्र, भोजन, पेय, धन देने वाली बतायी गयी है। अब लक्ष्मी के दो पुत्र हैं बल और उन्माद। श्रीसूक्त में उसके चार पुत्र बताये गये हैं—आनंद, कर्दम, श्रीद और चिक्लीत!

इंदोनेसिया में राजा की लक्ष्मी उसकी रानियों में रहती है। एक रानी का विष्णु से प्रेम हो गया। वह मर गयी। उसे गाड़ा तो उस स्थान पर औषधियुक्त वनस्पतियां निकलीं। चावल का अंकुर उसकी नाभि से निकला, वही सर्वश्रेष्ठ हुआ। अक्षताएं मंगलमयी हुईं। सूदान में विश्वास है कि लक्ष्मी स्वर्ग से उतरकर पृथ्वी पर आती है और भात पैदा करती है। यवद्वीप (जावा) के पुराने सोने के गहनों पर 'श्री' शब्द अंकित रहता है।

बौद्धों के दीघनिकाय में ब्रह्मजाल सुत्त में लक्ष्मी की उपासना वर्जित है। नव-बौद्ध लोग शायद यह नहीं जानते हैं। जैनों में लक्ष्मी यक्षिणी है।

सांची, भरहुत, मथुरा में गजलक्ष्मी का शिल्प मिलता है। अजंता, एलोरा में भी। आनंदकुमार स्वामी ने लक्ष्मी के तीन रूप वर्णित किये हैं—पद्मावस्था में, पद्म-ग्रह, पद्मवत्स। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में लिखा है कि जब लक्ष्मी विष्णु के साथ दिखाई जाये तब द्विभुज होनी चाहिये।

तोरण लक्ष्मी : दक्षिणी तोरण, विशाल स्तूप सांची (म.प्र.) प्रथम शती ई.पू.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

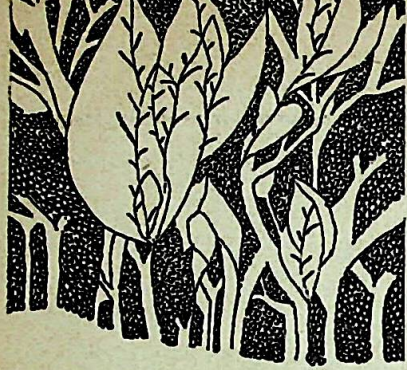

स्नेहलता चट्टोपाध्याय
की बंगला कविता

०

चिरंतन

हमारा क्षणिक मिलन
मिथ्या देकर, स्वप्न देकर
उसी को करता है चिरंतन।
अक्षय करता है एक मुहूर्त का प्रेम,
पृथ्वी के पथ का जीवन।
वसंत की दो-एक भूल
आपात् रंगीन फूल बनकर कब फूट उठती है
कोई नहीं जानता।
निमेष का यही परिचय
और एक निमेष में होता है क्षय।
सागर का विस्तृत जल और फेन कैसे
दूर से भी दूरतर चला जाता है
पड़े रह जाते हैं कुछ बालु-कण।
मृत्यु को भरता है केवल जीवन का
अस्तित्व, क्षय,
फिर भी कुछेक क्षणों में
अनंतकाल का संचय।

०

अनुवाद : प्रभाकर माचवे

स्वतंत्र हो, तब चतुर्भुज हो सकती है। अष्टदल कमल उसका आसन हो। उसके नीचे के हाथों में दायें में कमल, बायें में अमृत घट हो, ऊपर के दो हाथों में श्रीफल और शंख।

एक गुप्तकालीन सिक्के में लक्ष्मी संपत्ति की वर्षा कर रही है ऐसा शिल्प अंकित है। गुप्तवंश में लक्ष्मीपूजा सबसे अधिक होती थी। सबसे मनोरंजक बात यह है कि लक्ष्मी शैव और वैष्णव दोनों की उपास्य देवता है। शैव मंदिरों में विष्णुमूर्ति नहीं होगी, पर लक्ष्मी की मूर्ति होती है। विष्णुदुर्गा ऐसी ही एक मूर्ति का नाम है। लक्ष्मीगणेश एक तांत्रिक देवता है। यह गणेश की बायीं जंघा पर बैठी हुई, आलिंगन मुद्रा में दिखाई जाती है। कोंकण में हेदवी गांव में एक दशभुज गणपति है। उसकी गोद में बैठी ऐसी लक्ष्मी है। उसे कश्मीर के शिल्पकारों द्वारा बनाया गया मानते हैं। माघ वद्य चतुर्थी को वहां उत्सव होता है।

बंगाल में दुर्गापूजा का अधिक महत्त्व होता है। विजयादशमी उल्लास का पर्व है। जगह-जगह अनेक सुंदर मूर्तियां दुर्गा की बनाते हैं—मुहल्ले-मुहल्ले में—नये-नये ढंग की। इधर तो झाड़ुओं की बनी और बिस्कुटों से बनी दुर्गा भी देखी। शिल्पी जो-जो न करें, थोड़ा है। लक्ष्मी-पूजन जिसे हम कहते हैं वह बंगाल में एक दिन पहले का काली-पूजन है। अमावस्या को, विसर्जन का पर्व होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसी से वंग-लक्ष्मी मुर्शिदावाद के नवावों, वाद में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और स्वराज्य के वाद अ-वंगाली व्यापारियों द्वारा तिजोरियों में बंदिनी होती रही। रवींद्रनाथ ने कहा था :

लक्ष्मी जखन आशबे तखन
कोथाय तारे दिबि रे ठाँई ?
देख रे चेये आपन-पाने,
पद्मटि नाई, पद्मटि नाई ।।
फिर छे केंदे प्रभातबातास,
आलोक जे तार म्लान हृताश,
मुखे चेये आकाश तोरे
शुधाय आजि नीरवे ताई ।।
कत गोपन आशा निये
कोन शे गहन रात्रिशेषे
अगाध जलेर तला हते
अमल कूंड़ि उठल भेशे ।
होलो ना तार फूटे उठा
क्खन भेंगे पडल बोंरा–
मर्त-काछे स्वर्ग जा चाय
सेई माधुरी कोथा रे पाई ।।
(गीतविता: पृ. ७०)

सो इस शस्यश्यामला भूमि का भाग्य ही कुछ ऐसा रहा कि स्थिर सरकार नहीं रह पाती यहां। अभी तो 'ज्योति' बसु का शासन है जिसमें 'लोड-शेडिंग' बिजली का इतना होता रहता है कि कार्टून-वालों के मज़े हैं। 'ज्योति आलो, ज्योति गेलो' यहां का नारा है। लक्ष्मी के अनुरूप राज्य-लक्ष्मी : पश्चिमी तोरण, विशाल स्तूप, सांची (म. प्र.) प्रथम शती ई. पू.

'कमल' ही नहीं है–यद्यपि 'पद्मजा' नायडू यहां बहुत वर्षों तक गवर्नरा रहीं।

अब श्री या लक्ष्मी किसी-किसी भाग्य-वान की ही 'पूंजी' है। गुजराती में 'पूंजी' को 'मूड़ी' कहते हैं–यहां मुरमुरे की 'भेल' मिक्श्चर जो खाते हैं उसे कहते हैं 'मूड़ी'। अगर मार्क्स साहब के 'डास कैपिटल' का बंगाली-गुजराती अनुवाद होता तो 'दास मूडी' हो जाता! मराठी उसी को 'भांड-वल' कहते हैं। यह किस 'भांड' से बना है शब्द पता नहीं। पर लक्ष्मी पात्र-अपात्र का विचार कम ही करती है। अमावस्या के अंधेरे में, उल्लू के वाहन पर, वह जिसे ठीक बता दे उसी पर कृपा उंडेल देती है। बंगाली में उल्लू 'पेंचा' है। ऐसे-ऐसे महा-लक्ष्मी के पेंच हैं।

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डॉ. हर्षनन्दिनी भाटिया का प्रासंगिक लेख : शरदोत्सव प्रसंगे

□

शरद पूर्णिमा पर महारास और चंद्रसरोवर पर सूरदास

शरद ऋतु प्रकृति और मानव की प्रिय, निर्मल और मनोरम ऋतु है। शरद ऋतु वर्षा के उपरान्त सद्यःस्नाता की भांति कारे-कजरारे मेघों का घूंघट उठाये, श्वेत रेशमी दुकूल पहने तथा सुगन्धित पुष्पों का सौरभ बिखेरते हुए आती है। सर्वांग कलाओं से युक्त धवल, निर्मल और विमल आकाश का चांद विहंस रहा था। शरदपूर्णिमा की निराली चन्द्रिका नव-वधू के रूप में सोलह शृंगार करके, रसधार भर के, सितारों-जड़ी चूनरी ओढ़ कर शीतलता बरसाती, मधुरिमा छलकाती, मादकता बिखराती, मृदुलता लुटातीएवं शोभाश्री छिटकाती मंथर गति से चलती हुई प्रतीत होती है।

शरदागम से प्रकृति आनन्दमयी हो उठी है। वसुन्धरा के चारों ओर मंजुलश्री ही छिटक रही है। शरत्काल के रवि की सुनहली किरण ने जब अंगड़ाई ली तो अलसाई-सी वर्षा ऋतु की वनस्पतियां भी जाग उठीं। प्रकृति का विवर्ण मुख मुस्कराने लगा। आकाश में खंजन पक्षी उड़ने लगे, सरोवरों का जल निर्मल हो गया, कमल-दल विकसित होने लग। कांस के पौधों ने अवनि को, हंसों ने सरिता के जल को, तथा फलों ने वृक्षों को धवल कर दिया है। शरद के आगमन के साथ ही अगाध निर्मलता छा गयी है। शरद के निरभ्र आकाश में सुन्दर अगस्त्य नक्षत्र का उदय हुआ, जिसने अपने स्वाभावानुसार जल के सम्पूर्ण अतिसार को सोख लिया। अब न नीचे कीचड़ ही रही और न ऊपर की ओर मेघ की कालिमा। इस प्रकार शरद की वीणा पर यह आनन्द का महारस स्थायी-अन्तरा के साथ प्रतिवर्ष ही बज उठता है।

शरदपूर्णिमा का प्रकाशमान चन्द्र नील नभ में नृत्य करता रहता है और शान्त जल में शशि के खिलते मुख की छाया झिलमिल कर अपूर्व सौन्दर्य बिखेरती है। शरद की शुभ्र रजत वर्ण दिव्य चन्द्रिका मानो जरी की श्वेत साड़ी धारण कर महारानी बनकर दसों दिशाओं के कोने-कोने में छिटक रही हो। श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी की चित्रोपमता प्रशंसनीय है—

अंबर अमल भयो, कांसनु बिखेरे केस,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पांति बांधि कुन्द औ चमेली जुरि आये हैं।।
चन्द्रमा सहस्रबाहु दिसनु मुखन मांडे,
नीर की लहर रत्न-हार पहिराये हैं।।
मुदित 'मुकुंद' आये खंजन सचिव बने,
हंस बकपांति सेना बिगुल बजाये हैं।।
आयी राजरानी-सी सरद महारानी आज,
दसों दिसा चांदनी निसानु फहराये हैं।।

शारदीय प्रकृति की सुरम्य सुषमा से प्रभावित होकर तथा शरत् में खिली हुई चमेली से सुशोभित रमणीय रात्रि को निरखकर भगवान श्रीकृष्ण ने रास-लीला करके राधा तथा गोपियों की अभिलाषा पूर्ण करने का संकल्प किया। भागवत के भावुक कवि ने कहा है—

भगवानपि ता रात्रिः शरदोत्फुल्ल-
मल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः।।

शरद पूर्णिमा की शुभ्र ज्योत्स्ना की उज्ज्वल आभा से वसुधा जगमगा उठी। चारों ओर शान्ति की स्निग्धता, रात्रि का नीरव और निस्तब्ध प्रहर, कलिन्द-नन्दिनी-कालिन्दी का एकान्त तट और शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन का अनुभव करते हुए लीलाधारी-बिहारी भगवान् श्रीकृष्ण ने रासक्रीड़ा करने का विचार किया। शरद की मधुरिमा से प्रभावित होकर और समस्त तत्त्वों के पूर्ण विकास से श्रीवृन्दावनधाम आनन्द रस में डूबा हुआ था। परम आह्लाददायिनी श्री-राधिका तथा गोपीगण तन्मय भाव से ब्रज-नन्दन के दर्शन और सेवा के लिए लालायित थे। ऐसे समय में श्रीकृष्ण ने शब्द-ब्रह्ममयी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाराष्ट्र शासन
सुखमय दिवाली और
मंगलमय नववर्ष के लिए
आपको अपनी शुभकामनाएं
पेश करता है. साथही
इस ध्येय की पूर्ति के लिए
कठोर परिश्रम का वचन देता है.

महाराष्ट्र शासन

गरीबों का हितचिंतक शासन

डीजीआयपीआर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भुवनमोहिनी बांसुरी में स्वर फूंके। श्रीकृष्ण के समान ही गोपियां भी परम रसमयी और आनन्दमयी हैं। उन्होंने कृष्ण के साक्षात् आह्वान को सुना। श्रीकृष्ण के मोहक वेणुस्वर ने गोपियों के कर्ण-कुहरों से जाकर उनके मर्मस्थल का स्पर्श किया और उनके मन-प्राण को व्याकुल बना दिया। सूरदासजी ने शरद-

विपिन बृन्दा रमन, सुभग फूले सुमन,
रास रुचि श्याम के मनहिं आयौ।
परम उज्ज्वल रैनि, छिटकि रही भूमि पर,
सद्य फल तरुनि प्रति लटकि लागे
तैसोई परम रमनीक जमुना-पुलिन,
त्रिबिध बहे पवन आनंद जागे।।
राधिका रमन बन-भवन सुख देखिकै,
अधर धरि बेनु सुललित बजाई।

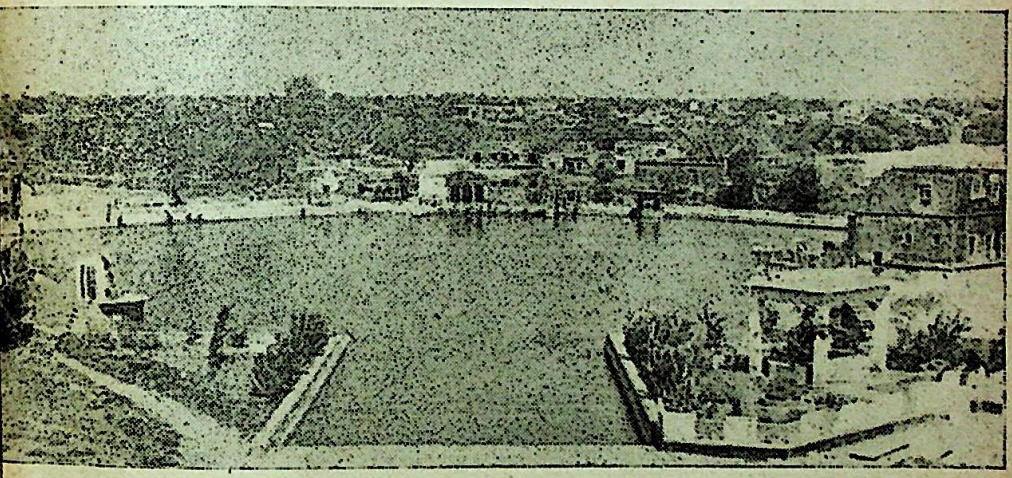

चंद्रसरोवर (छायाकार : चंद्रशेखर)

पूर्णिमा को रासलीला की पृष्ठभूमि बनाया है। सूरदासजी के गेय पदों में मनोरम चांदनी में रास, महारास, मान-अभिमान एवं मुरली-माधुरी से सम्बन्धित पदों का प्राचुर्य है। सूरदासजी के सुन्दर पदों में रास की अभिलाषा श्रीकृष्ण के हृदय से प्रकट हो रही है—

सरद-निसि देखि हरि हरष पायो।
नाम लै लै सकल गोप-कन्यानि के,
सबनि कैं स्रवन वह धुनि सुनाई।।
सुनत उपज्यो मैन, परत काहुं न चैन,
शब्द सुनि स्रवन भई बिकल भारी।
सूर-प्रभु ध्यान धरि के चलीं उठि सबै,
भाजन-जन नेह तजि घोष नारी।।

श्रीकृष्ण के प्रेम में लिप्त गोपियां निस्संकल्प और निश्चिन्त होकर गृहकार्यों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज़ीनत के हुस्न को चाहिए लक्स की ख़ूबसूरत हिफ़ाज़त.

ज़ीनत अमान अपनी अदाकारी के साथ-साथ अपनी ख़ूबसूरती का भी उतना ही ख़याल रखती है. अपने रंगरूप को ख़ूबसूरत और दिलकश रखने के लिए वह केवल लक्स पर भरोसा करती है.

ख़ुद ज़ीनत का कहना है: "लक्स मेरे रंगरूप को सही माने में मुलायम और ख़ूबसूरत रखता है."

Zeenat Aman

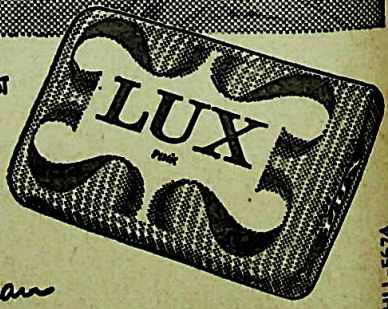

शुद्ध, सौम्य लक्स–
फ़िल्मी सितारों का सौंदर्य साबुन.

हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

HTB-HLL-5674

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में उलझी हुई थीं—गुरुजनों की सेवा-शुश्रूषा, पूजा-पाठ, साज-शृंगार, गो-दोहन, मोक्ष-साधन आदि। श्रीकृष्ण की मुग्ध कर देनेवाली बांसुरी की ध्वनि सुनकर ब्रज-गोपियां अपनी सुध-बुध भूलकर परिवार और गृह त्यागकर अकेली ही अस्त-व्यस्त गति से श्रीकृष्ण के पास भागीं। कृपा करके श्रीकृष्ण जिस गोपी का नाम अपनी बांसुरी में बुलायें, वह भला दूसरी ओर देखकर रुके—ऐसा कब सम्भव हो सकता है। श्रीकृष्ण के प्रेम में निमग्न रहनेवाली गोपियां देह-गेह, पति-पुत्र, लोक-परलोक, कर्तव्य-धर्म की अवहेलना कर एकमात्र परमधर्म स्वरूप श्रीकृष्ण के निकट पहुंच गयीं।

कोटि-कोटि कामदेवों के सौन्दर्य को पराजित करनेवाले ललित त्रिभंगी मुद्रा में श्रीकृष्ण को निर्निमेष दृष्टि से निहारती रहीं। श्रीकृष्ण ने उनकी कठिन परीक्षा ली। उनकी उत्कट भक्ति देखकर रसिक-बिहारी श्रीकृष्ण ने मन्द-मन्द मुस्कान बिखेरते हुए रसमयी रासलीला प्रारम्भ की। सोलह हज़ार गोपियों के मध्य अनेक रूप धारण कर श्रीकृष्ण प्रकट हुए। रास प्रारम्भ हुआ। दिव्य रासमण्डल में श्रीकृष्ण ने वैजयन्ती माला पहनकर प्रवेश किया। दो ब्रजाङ्गनाओं के मध्य अनेक रूप धारण कर गले में हाथ डालकर श्रीकृष्ण नृत्य करने लगे। रासमण्डल में नृत्य करती हुई प्रत्येक गोपी अपने निकट रसिकराज कृष्ण का मनोहारी दर्शन कर परम आनन्दमयी हो उठी। शरद रजनी में असंख्य ब्रज-गोपिकाओं के कंकन, किंकिनि और नूपुरों की झनकार, अंग-प्रत्यंग-संचालन और कोमल पदाघात तथा गायन-वादन के स्वर-ताल युक्त सुर-लहरी दशों दिशाओं में गूंज उठी। राधा-कृष्ण की युगल-जोड़ी रास-लीला के मध्य अनन्त भाव-भंगिमाएं प्रस्तुत कर रही थी। सूरदासजी ने अपूर्व रास का उल्लेख किया है—

आजु हरि ऐसौ रास रच्यो।
स्रवन सुन्यौ न, कहूं अवलोक्यो,
यह सुख अब लौं कहां संच्यौ।।

रास-विलास में मग्न गोपियां आनन्द से अभिभूत हो गयीं। उनका शृंगार बिखर गया, वस्त्राभूषण अस्त-व्यस्त हो गये। नृत्य करते-करते थक गयीं। तत्पश्चात् शरद ऋतु की चन्द्रिका में श्रीकृष्ण ने गोपिकाओं के साथ यमुना-जल में बिहार किया। सूरदासजी ने अगाध सुख की शुभ वर्षा तथा गोपियों की मनोकामना पूर्ण होने का उल्लेख अपने पद में किया है—

रास रस स्रमित भई ब्रजबाल।
निसि सुख दे जमुना-तट लै गये,
भोर भयो तिहि काल।।
मनकामना भयी परिपूरन,
रही न एकौ साध।
षोड़स सहस नारि संग मोहन,
कीन्हो सुख अवगाधि।।
जमुना-जल बिहरत नंद-नंदन,
संग मिली सुखसारि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेन्चुरीके अनुपम वस्त्र

१००% सूती कपड़ों के लिये

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूर धन्य धरनी बृन्दाबन,
रवि-तनया सुखकारि ।।

यह रासलीला तो शाश्वत है और नित्य है, नित्य नूतन और अखण्ड है—

नित्यधाम वृन्दाबन स्याम,
नित्य उपराधा ब्रजबाम।
नित्य रास-जल, नित्य विहार,
नित्य भाव खंडिताभिसार।

भगवान श्रीकृष्ण की यह दिव्य लीला सदैव गोपिकाओं के साथ दिव्यातिदिव्य रूप से निरन्तर होती है और रसिक-भक्तों के निमित्त भूतल पर भी इसका प्राकट्य हो जाता है, जिससे भगवान की लीला में सम्मिलित होकर मानव भी स्वयं को कृतकृत्य कर सके।

भारतीय जीवन और साहित्य में शरद-पूर्णिमा के ज्योत्स्ना-स्नात सौन्दर्य का विशिष्ट स्थान है। श्रीमद्भागवत की रासपंचाध्यायी का शुभारम्भ 'भगवानपि ता रात्री शरदोत्फुल्ल मल्लिकाओ' से ही होता है। श्रीकृष्ण ने महारास के लिए शरद पूर्णिमा का ही दिवस चुना। गोवर्द्धन के समीप परासौली गांव में चन्द्रसरोवर स्थित है, जहां श्रीकृष्ण ने सभी गोपिकाओं के साथ रास रचाया था। यह रास ऐसा हुआ था कि वह रात्रि छह मास की ब्रह्म रजनी बन गयी। उस समय से ही ब्रजक्षेत्र में चन्द्रसरोवर के रूप में उस समय की परम रासस्थली बन गयी। सूरदासजी की परासौली और आज के महमदपुर में चन्द्रसरोवर के रूप में सदा-सदा के लिए स्थापित हो गया। चन्द्रसरोवर के निकट वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों की बैठकें हैं। वल्लभाचार्यजी चन्द्रसरोवर पर छोंकर के वृक्ष के नीचे बैठक लगाते थे। गोसाई बिट्ठलनाथजी और गोकुलनाथजी की बैठकें होती थीं। कुंभनदास और चतुर्भुजदासजी के खेत भी यहीं पर थे। राजा जवाहरसिंह ने चन्द्रसरोवर को अष्टदल कमल के सुन्दर आकार में पक्का बनवाया था। प्रभुदयाल मीतलजी ने चन्द्रसरोवर को प्राचीन वृन्दावन और महारास का स्थल माना है। यहां अनेक साहित्यिक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

चन्द्रसरोवर पर महाकवि सूरदास का निवासस्थल माना जाता है। यहां एक कुटी में रहकर सूरदासजी ने अपने जीवन के ७२ वर्ष (१५६८–१६४०) व्यतीत किये। प्रतिदिन गोपालपुर स्थित श्रीनाथजी के मंदिर में जाकर वे कीर्तन करते थे और पद गाते थे। सूरदासजी ने भक्ति-साधना और साहित्य-साधना चन्द्रसरोवर पर ही पूर्ण की।

सूरदास की बंद आंखों में वह दिव्य युगल समा जाता है। अंतिम पद गाते हुए परासौली की रासभूमि और सूरदास की चिद्भूमि एक हो जाती है—

खंजन नैन सुरंग रसमाते।
अतिसय चारु बिमल चंचल ये,
पल पिंजरा न समाते।।

—नन्दन, भारतीनगर, मेरिसरोड, अलीगढ़

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपयोग करें

प्रेलिम स्टेपल फाइबर

और

साथ में

GRASIM

मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय

पूरक धागे

Grasilene

दि ग्वालियर रेयान सिल्क (मैन्यू.) वीविंग कं. लिमिटेड

(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

टे. नं : ३८८२८८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

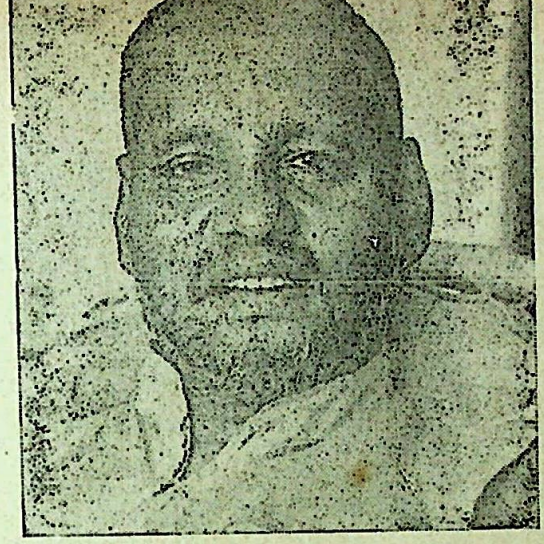

श्रीगुरुदेव जयवन्त हों

वर्तमान पृथ्वी पर शक्तिपात-सिद्धयोग के अप्रतिम कृपा-समर्थ योगी हैं श्रीगुरु मुक्तानंद परमहंस। वे तीन वर्ष तक आज के सारे भूमंडल पर ध्यान-क्रान्ति का प्रवर्तन करके २१ अक्तूबर १९८१ को अपनी भूमावती मातृभूमि भारतवर्ष में पुनः पदार्पण कर चुके हैं।

इस महान मंगल मुहूर्त में हम अपने देश की असुर-दलित देवभूमि पर उनका हृदय के संपूर्ण प्रेम से प्रणामपूर्वक स्वागत करते हैं। इस विनती के साथ कि वे भारत-मां की कोटि-कोटि शोषित-पीड़ित सन्तानों के परित्राण का मार्ग प्रशस्त करें।

नीरेन्द्र कुमार जैन

सम्पादक—'नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमहावीर निर्वाणोत्सव दीपावली के पावन पर्व पर

चांदनपुर के श्रीमहावीर : एक चमत्कारिक सिध्दपीठ

सावित्री परमार का एक दैविक इतिहास-लेख

'नमन्नाकेन्द्राली मुकुटमणिभाजालजटिलमं
लसत्पादाम्भोजद्वयमिह यदीयं तनुभृतां
भवज्वालाशान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे–'

धूल-धूसरित पथरीले पहाड़ों के क्षेत्र विस्मय से फैल जाते हैं–ये आज कैसी अलौकिक प्रार्थना में लिपटी सूरजिया भोर के प्रकाशित छंद झरे हैं ! किस मंगलमय भविष्य के संकेत में दिशाएं नमित होकर स्वयं साक्षात् प्रार्थनाएं बनी हुई हैं ? कैसे अस्फुट से अनगूंज मंत्र . . . ? किसकी सारगर्भित वाणी कर रही है एक-एक अक्षर का अर्थ ? यह कैसा आह्वान है विकल-विकल-सा ? 'आओ, देखो, नयन-पंथ से कौन भीतर गहरे अन्तर्मन में, कण-कण के हृदय तल में उतरता जा रहा है–इन्द्रमणि की आभा से उद्भासित शीश-किरीट. . . . देवगंगा-धोती है जिसके युगल कमल-पद की विष्णु-आभा को. . . जिसके चरणों की वायु-सरित-गति करती है अखिल सृष्टि के दुख-ताप का हरण . . . जिनके ध्यान मात्र से मन में शांति और अनहद नाद की सलिला जागृत होती है . . . ऐसे भगवन स्वामी महावीर अवतरित हो रहे हैं . . . आयें ... भगवान महावीर आयें ...' पर्वतों के नेत्र सूर्यमुखी के पुष्पों की चंदन-खचित हथेलियों से उत्कीर्ण हुए जा रहे हैं . . आज की प्रातःकालीन उषा आरती का यह कैसा अनूठा शंखनाद है ?

तभी हुआ किरणों का नवोदित पदार्पण नीबुआई धूप के चटकीले रंगों तले दूर तक फैला जंगल चौंक उठा, किरन-कली की सुनहली केशराशि से झरने लगी सूर्यलोक की गुनगुनी गंध, गूंज उठी हवा की लय पर पत्तों की भोर-प्रभाती, फूलों की सुकुमारता पर तुरंत बिछल गये मोर-पांखी छाया के चिकने आंचल । देखते ही देखते पूरा मैदान, सारे खेत-खलिहान धूप के शीशमहल हो उठे ।

कलकल बहती गंभीर नदी के पारदर्शी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक हरिजन चर्मकार को सन्देश देकर भूगर्भ से प्रकट होने वाले श्रीभगवान महावीर, जो चांदनपुर में जीवन्त विराजमान हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

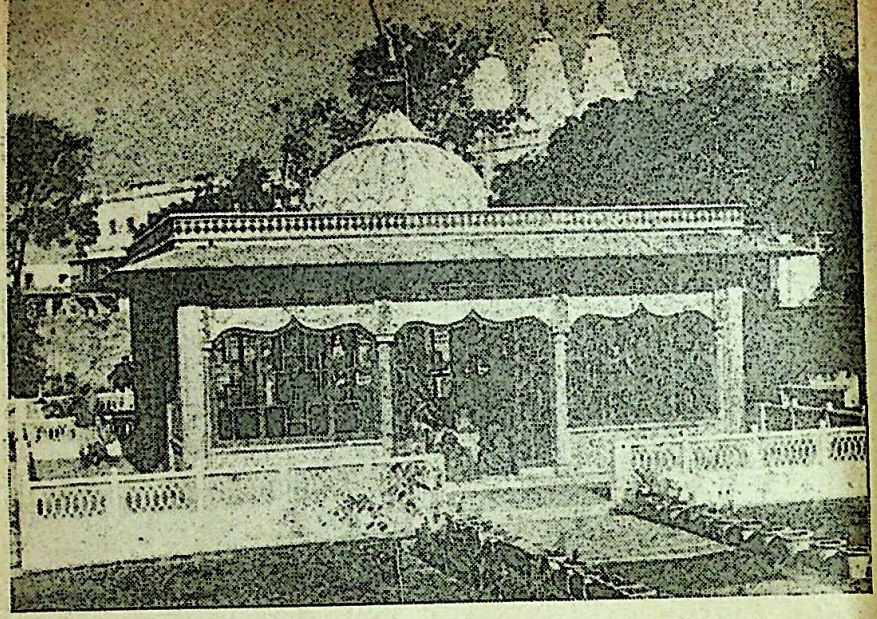

चरण-छतरी : श्रीमहावीरजी, यही वह स्थान है, जहां से यह जीवन्त मूर्ति प्रकट हुई थी

दर्पण में उषा की सोनल छवि बिंबायित ही उठी ! समय-नौका के खुलते-उड़ते बासंती पाल, पल-पल झरते मंजरी रूप, वृक्षों की सुगंधित मतवाली सांसों की लुभावनी मुस्कानें, नीम-चमेली के जूड़ों की चंपई महक। कुएं-तालाबों की पलकों में अलसाये सपनों की ओसीली-सजीली छुअन, कनेर, कैर और झरबेरी की लटें सुलझाते-संवारते ग्रामीण आंचल के नटखट भंवरे। नवमल्लिका से हंसते-खिलते पांत-पांत पक्षियों के आकाशी काफिले, बगराई अमराई के आंगन में कोंपलों लताओं के बेल-बूटेदार किशमिशी आंचल, गुच्छ-गुच्छ पलाशों के धकधकाते सुर्ख-सुर्ख फूल, कैसा तो अद्भुत प्रभाती सौन्दर्य ? पर्वती चोटियों-घाटियों में बिछे-फैले गेरू-खड़िया से लिपे पुते, रंगोली मढ़े गांव के घरौंदे, पुखराजी पोखर के फिरोजी पानी से निकलती हुई सद्यस्नाता गाय-भैंसों के मनस्वी रूप।

कोयल की कुहुक के साथ तभी कहीं बहने लगती है बंसी की मादक कल्याणी धुन। जंगल की एक-एक पगडण्डी सुबह की कुसुम-पराग केसर-सी मदिर-मदिर मलयजी खुशबू से भीग-भीग उठती है। गांव के छप्परों से उठने लगता है अन्न की गंध लपेटे ऊदा-कासनी धुआं और उधर एक टीले पर गायों के झुंड को चरागाह में छोड़कर आ बैठता है एक चरवाहा युवक—गले में चांदी की गंडेली, कानों में मुरकियां और सिर पर केशरी पाग।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माटी का यह भगवत् पुत्र अलगोझे पर एक सनातनी लोकगीत की धुन निकालने लगता है। लोकधुन के साथ-साथ अचानक कोई अदृश्य छाया धीमे-धीमे अलापने लगती है.—

'मंगलमय मंगलकरण
वीतराग विज्ञान
नमो ताहि जाते भये
अरहन्तादि महान ...'

अपूर्व आनंद का आवेग ... अलगोजा गिर जाता है। उसी समय सामने एक अलौकिक चमत्कार! गायों के झुंड में से निकलकर श्वेत-श्यामा कजरी गाय

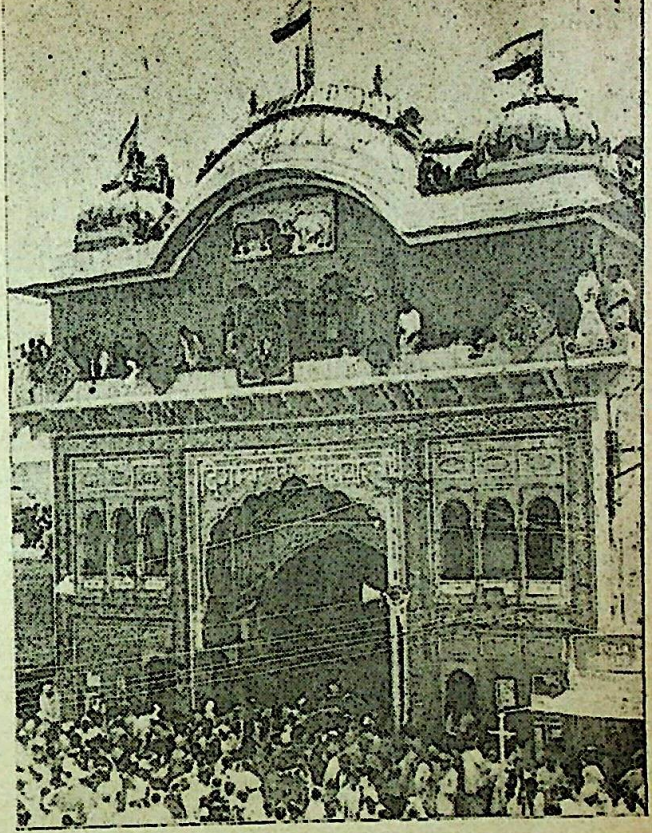

अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी के मंदिर का सिंहद्वार

हूकती-सी दौड़ती है और सामनेवाले ऊंचे ढलवां टीले पर चढ़कर एक स्थान पर खड़ी हो जाती है। उसके गौरांग स्तनों से स्वच्छ दूध के झरने निसृत हो रहे हैं। सारा दूध उस स्थान की माटी में समाता जा रहा है! गाय के नेत्रों में असीम संतोष लहरा रहा है। स्तन खाली हो जाते हैं। गाय के शांत-धीर कदम फिर से गौ-झुंड की ओर लौट जाते हैं। चरवाहे की समूची काया जड़ होकर रह जाती है। जंगल भी जैसे स्तब्ध... एक वशीकरण में जैसे हर सांस मुग्ध और विस्मित.... यह क्या लीला रही, प्रभु? चरवाहे की वाणी मूक और मन असंख्य जिज्ञासाओं का शंकित केंद्र... मन तो जाने कितने दिनों से चोर-शंकालु हो रहा था... कारण भी तो स्पष्ट था कि हर संध्या केवल यही भूरी कजरी के स्तन रिक्त मिलते थे। सबसे अच्छी, स्वस्थ गाय, ढेरों दूध, फिर यह क्या! सारा दूध जाता कहां है?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोई प्रेत-भूत बाधा ? किसी की नज़र-टोटका की पैनी मार ? कोई असाध्य रोग ? कुछ ज़हर मोहरा-धतूरा का प्रकोप ? आखिर क्या ? इसलिए आज दृष्टि से एक-एक पहर निरीक्षण किया और यह विलक्षण चमत्कार देखा। फिर तो एक-दो क्यों, कई-कई दिन यही अपूर्व क्रम देखा। ठीक उसी टीले पर, उसी ठौर पर... क्या माया है यह ?

अनबूझ पहेली तो सुलझ गयी, लेकिन इसी टीले पर दुग्धक्षरित क्यों होता है ? इन धूल-चट्टानी पर्तों के नीचे कौन-सा रहस्य है ? उसका मन बेकाबू होने लगा। एक दिन चुपचाप अटोक वह फावड़ा—कस्सी लेकर उसी स्थान को खोदने लगता है... बहुत नीचे पाताल से जैसे कोई गंभीर आवाज़ आती है—'कौन मानव-पुत्र हो तुम, भाई ?'—मैं ? मैं तो एक चर्मकार हूं। 'चर्मकार ? गाय चराने का फिर कैसा कार्य, मानव ?' जाति से चर्मकार हैं हम लोग, परंतु मेरा परिवार पीढ़ियों से खेती करता आ रहा है। पशुपालन और दूध-दही का व्यापार भी। इसीलिए चरवाहा हूं। मेरी गाय का दूध प्रतिदिन इसी स्थान पर क्यों ढलता है ? गाय स्वयं अपने दूध का समर्पण यहीं क्यों करती है, यह देखना चाहता हूं ... 'तब भाई, ज़रा सावधानी से फावड़ा चलाओ, अवश्य जिज्ञासा शांत करो, क्या पता, इसी में तुम्हारा कल्याण निहित हो ?'...

चर्मकार चरवाहे की धमनियों में रक्त-प्रवाह रुक-सा जाता है....यह कैसे अनहोने आवरण खुल रहे हैं ? वह आहिस्ता-आहिस्ता खुदाई करने लगा, तभी उसकी कुदाल किसी ठोस वस्तु से टकरायी। मन में आह-सी उपजी। कुदाली फेंककर उंगलियों की पोरों से मिट्टी हटाने लगा... यह क्या ! एक मूर्ति का सिर दिखाई दिया। अब तो उसका शरीर उत्साह वेग से भर उठा। जल्दी-जल्दी मिट्टी की परत-परत हटने लगी—एक सर्वांग सुंदर परिपूर्ण मूर्ति टीले की गोल पेंदी में सामने थी—बहुत ही भव्य और उत्कृष्ट ! उस चरवाहे की टकटकी बंध गयी। दोनों नेत्रों से परमानन्दाश्रु की अविरल धाराएं बह रही थीं ... बेसुध तन और सम्मोहित मन ... बड़ी विचित्र अनुभूति-कौतुहल ... कैसी अनुपम उपलब्धि ? मूर्ति के नेत्रों की कैसी चुंबकीय आभा ? उसे लगा, मानो उसके जन्म-जन्मांतरों के सारे कल्मष धुल गये हैं। इस पवित्र दृष्टि में उसका पूरा जीवन तिरोहित हो उठा है। उसके हृदय से श्रद्धा-भक्ति का झरना फूट पड़ा... अहा ! कैसा कृतार्थ जीवन है कि उसके हाथों से, इस भू-गर्भ से भगवान स्वयं प्रकट हुए हैं ! उसकी भावना और वाणी का काया-कल्प हो गया... सरस्वती झरने लगी... आंखें वीतरागी... सांसारिक चिह्न लुप्त... अलौकिक दिव्य उजास भर उठा उसके आसपास... विदेह होकर स्वर्गिक सुरों में आत्मलीन हो उठा :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

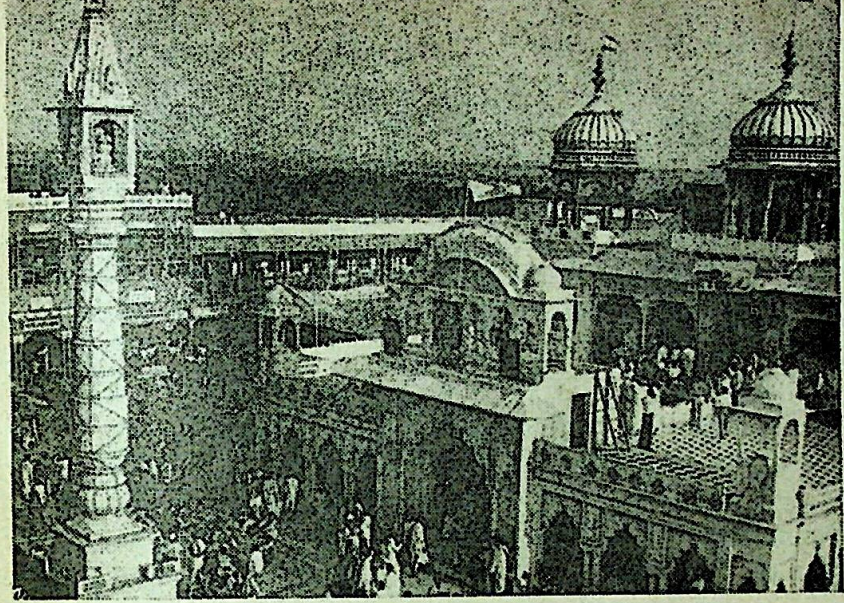

श्रीमहावीरजी के मुख्य देवालय का तोरण-द्वार :
और उसके प्रांगण में खड़ा उत्तुंग मानस्तंभ

'कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो
विचित्रात्माप्येको नृपतिवर सिद्धार्थतनयः
अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्ऽभुत गतिः
महावीर स्वामी . . महावीर स्वामी . .
सन्मति स्वामी ऽऽ . . .'

एक विगत इतिहास, दृश्य पर दृश्य, अनोखा कथानक, कथानक का दिव्य-भव्य नायक, युगों की यवनिकाएं उठ रही हैं—एक देशकाल प्रस्तुत हो रहा है, समस्त वन-प्रांतर ढाई हज़ार वर्ष पूर्व के परिवेश में आकर टिक जाते हैं। बिहार प्रदेश की वैशाली नगरी। माता त्रिशला की गोद में एक महापुरुष का जन्म। लिच्छवी गणराज्य का राजकुमार। कौन जानता था कि राज्य का यह उत्तराधिकारी राज-भवन की संपदा, ऐश्वर्य-वैभव और सिंहासन-मुकुट-आभूषणों के लिए नहीं जन्मा है, वरन अज्ञान के अंधकार में आकण्ठ लिप्त संसार को अपने तप, त्याग और उन्नत ज्ञान से आलोकित करके आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उसका अवतरण हुआ है, तप्त-कनक-आभा से युक्त सौंदर्यशाली देह शीघ्र ही विदेह हो जायेगी, राजगृह त्याग कर जो अखिल सृष्टि का ज्ञान-गृह बन जायेगा... जिसकी अद्भुत गति श्री-सुषमा-संपन्न होकर चारों लोकों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छा उठेगी.. परम अलौकिक सन्मति स्वामी महावीर भगवान होकर सत्य के रक्षक के रूप में यह बालक अमर होगा, कौन जानता था ?

चरवाहे का रूप, उसके द्वारा किया गया यह कार्य, मूर्ति का प्रकट होना, यह सारी बातें पंख फैलाकर उड़ीं, आस-पास फैलीं और भीड़ की भीड़ उमड़ पड़ी उस अनोखी घटना को देखने-जानने के लिए। भूले-बिसरे रास्ते, एकांत गैल-राहें, कंकरीली-पथरीली पगडंडियां मानवी-पदचापों से छा गयीं। मेला जुड़ गया। रात-दिन केवल दर्शन और चर्चाएं। जो भी आता, मंत्रमुग्ध होकर उस गरिमामय मूर्ति के चुम्बकीय नेत्रों में डूब जाता। भक्ति-विह्वल होकर शांति प्रदान करनेवाली प्रतिमा के समक्ष सब कुछ भूल जाता... चर्चाओं का विस्तार सीमाएं लांघकर असीमित हो उठीं—सर्वत्र व्यापी।

अत्यंत चमत्कारिक ढंग से टीले से प्राप्त हुई प्रतिमा के दर्शन करने के लिए आये बसवा ग्राम (जयपुर) के निवासी दिगम्बर जैन खण्डेलवाल सरावगी श्री अमरचंदजी बिलाला। प्रतिमा के दर्शन करके और स्वयं प्रभु प्रकट हुए, यह सोचकर इतने प्रभावित हुए कि उसी समय एक विशाल और सुंदर मंदिर बनवाने का संकल्प किया। सोचा, क्यों न एक जिनालय बनवाकर भगवान को उसमें विराजमान किया जाये। बस, वह अमित श्रद्धा-उत्साह के साथ इस पुनीत कार्य में संलग्न हो गये। कुछ समय बाद बहुत सुंदर कलात्मक मंदिर तैयार हो गया।

अब समय आया मूर्ति प्रतिष्ठापन का। लेकिन फिर चमत्कार। लाख कोशिशों, विभिन्न प्रयासों के बाद भी मूर्ति अपने स्थान से टस से मस तक नहीं हुई। सभी हैरान, चकित ! चिंतन-मनन करने पर सोचा गया कि जिसकी श्रम-साधना से इसका प्रादुर्भाव हुआ, शायद उसी के कर-स्पर्श से यह पावन-अनुष्ठान भी संपादित होगा ? उसी चरवाहे से इस सहयोग की हार्दिक कामना की गयी, आदर-सम्मान से उसे आमंत्रित किया गया और सचमुच, उसके स्पर्श को पाते ही मूर्ति अपने स्थान से उठ गयी। मंदिर में मूर्ति को प्रतिष्ठापित किया गया और मूर्तिवाले स्थान पर बड़ी खूबसूरत छतरी का निर्माण कराया गया, इसके भीतर चरण... इसीलिए इस छतरी को 'चरण-छतरी'—कहते हैं। चारों ओर महमह करता हुआ सुरम्य-उद्यान। अनेकानेक कामनाएं लेकर भक्त जनों की भीड़ और कानों में भगवान महावीर के सद्-वचनों का बूंद-बूंद टपकता अमृत। श्रद्धा-भक्ति की पावन धाराओं में स्निग्ध हुआ उमंगित मन, चरम आनंददायी प्रवचन... राजचिह्नों से मंडित शूरवीर राजकुमार, तीस वर्ष की यौवन-कांचन उम्र, धीर-गंभीर ओज से दीप्त मुखमंडल, देश में फैला हिंसा का तांडव नहीं झेल पाये। राज-पाट का व्यामोह, ऐश्वर्य का आकर्षण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्यागकर वन-प्रस्थान कर ज्ञान-पथिक हो गये। वस्त्र-आभूषणों का ही मोह क्यों? इन्हें भी पृथक कर दिया और दिगंबर मुनि बन गये। बारह वर्ष की कठिन तपस्या, कठोर आराधना-तप के पश्चात् हुई 'केवल-ज्ञान' की प्राप्ति, वे सर्वज्ञ और सर्वदृष्टि हो गये। अनेक स्थानों, प्रदेशों और नगरों में परिभ्रमण किया। धर्म के उपदेश, जो चिंतन के आधार थे, दिये। विचार में अनेकांत, आचार में अहिंसा, वाणी में स्याद्वाद और समाज में अपरिग्रह।

भगवान महावीर स्वामी आत्मा का अस्तित्व स्वतंत्र मानते थे। उनकी मान्यतानुसार भव्य जीव समताभावपूर्वक सुखी जीवनयापन करे। इस प्रकार प्रत्येक भक्त-इंद्रियजित मानव सम्यक्-दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चरित्र से परमात्म-पद की प्राप्ति कर सकता है। गूजने लगे नित पावन वाणी के ये शब्द-स्तोत्र।

दिगम्बर जैन समाज का यह मंदिर प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र हो उठा। कालान्तर में यह चांदनपुर गांव इसी प्रसिद्ध तीर्थस्थान के कारण श्रीमहावीरजी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यहां पर न केवल राजस्थान के बल्कि पूरे भारत वर्ष के धर्मप्रेमी, ज्ञान-जिज्ञासु आते हैं। हमेशा लाखों जैन-यात्री और जैनेतर दर्शनार्थियों का आगमन बना रहता है। आकर्षण का असीम केंद्रस्थल... परमदिगंबर प्रतिमा के दर्शन कर सभी कृतकृत्य।

यह पूजा-स्थल राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले में है। तहसील हिन्डौल। रेल और बस, दोनों मार्गों से जुड़ा हुआ। श्रीमहावीरजी रेलवे स्टेशन से छह किलोमीटर दूर गंभीर नदी के हरे-भरे तट पर स्थित है यह सर्वाधिक लोकप्रिय तीर्थ। चांदनपुरवाले बाबा का चतुर्दिक यश लिये यहां की धर्म-ध्वजाएं दूर से ही दिखाई देने लगती हैं।

'मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्द कुन्दाद्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं . .'

ज्योंही दर्शन-क्षेत्र निकट आता है कि यात्रियों में आनंद-प्रसन्नता का स्फुरण होने लगता है। मन में पुण्यवती भावनाओं का मेला-सा लग उठता है। मंदिर के तीन उन्नत-शिखर। हवा में यशोगान फहराती धर्म-ध्वजाएं। मीलों दूर से दिन हो या रात्रि—दूर से ही मंदिर की शोभा विकीर्ण होती दिखाई पड़ती है। इस क्षेत्र पर पहुंचते ही कटले के विशाल उत्तरमुखी सिंहद्वार से मंदिर का प्रवेश... इसी के ऊपर विशाल नगाड़ा खाना... मध्य में मंदिर। इसके चारों ओर दो मंजिलोंवाली प्राचीन, अत्याधुनिक, आराम-देह-स्वच्छ धर्मशालाएं। इन्हीं को 'कटला' के नाम से जाना जा सकता है। बायीं ओर एक ऊंचा चबूतरा, यह मुख्य द्वार के सामने है। इसके ऊपर है बहुत सुंदर, कलात्मक और जाली का कटावदार 'मानस्तंभ'।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मंदिर के मुख्य द्वार पर संगमरमर की तीन छतरियां और हैं। इन्हीं के ऊपर दोनों ओर संगमरमर की डिज़ायनदार खुली छत। मंदिर के सामने बड़ा प्रवेश-द्वार, जिसके भीतर मंदिर का विशाल चौक। महामंडप में जाने के लिए बड़े खूबसूरत सात अष्टाचक्री द्वार, इनमें से पांच द्वारों के ऊपर खड्गासन प्रतिमाएं स्थापित हैं। सामने ही तीन दर की बड़ी वेदी पर कत्थई वर्ण की महावीर स्वामी की मूर्ति विराजमान है। इसके बायीं ओर श्याम और दायीं ओर श्वेत (भूरे) रंगों की तीर्थंकर प्रतिमाएं हैं। कत्थई रंग की मूर्ति पर बड़ी शांति-छटा व्याप्त रहती है।

इस वेदी के बायीं ओर मुड़ने पर एक वेदी और दिखाई पड़ती है, जहां श्वेतवर्णी महावीर की पद्मासनी मुद्रा आसीन है। पादपीठ पर सिंहलांछन है। यह वेदी एक ही दर की है। यहां दो-तीन सीढ़ियों के बाद गर्भगृह आता है। इसके बाह्य तोरण पर लगभग छह इंच की एक पद्मासनी प्रतिमा और है। द्वार के दोनों कलात्मक पक्षों पर दंडधर बने हैं, इनके ऊपर खड्गासन तीर्थंकर प्रतिमा। गर्भगृह में प्रथम वेदी फिर तीन दरों की, जिसमें पाषाण तथा धातु की विभिन्न आकार-प्रकार की अनेकों मूर्तियां विराजमान हैं... इससे आगे तीन फुट की भगवान शांतिनाथ की पद्मासीन वेदी है। पादपीठ पर हिरण का लांछन-चिह्न...

अब आया है वह स्थान, जहां के दर्शन को लाखों आतुर आंखें झुक-झुक पड़ती हैं। मुख्य वेदी-स्थल... तीन मेहराबी दर और बीचोबीच विराजमान है भूगर्भ से प्राप्त भगवान महावीर की अतिशय संपन्न प्रतिमा -मूंगावर्ण की शोभायुक्त मूर्ति। गुप्तोत्तर काल की शिल्प योजना बद्ध आकारों से शिल्प मंडित—ठोस ग्रेनाइट की प्रतिमा न होकर रवादार बलुए पाषाण की है। जगह-जगह पर घिसकर, झरकर काफी जीर्ण हो चुकी है। मन में सैकड़ों ऊहापोह—क्या पता किसी अति प्राचीन मंदिर की शिल्पकला की यह प्रतीक हो? दब गया होगा किसी प्रलय-झंझा में जमीन के नीचे! या शायद मुस्लिम काल में नष्ट न हो जाये, इस भय से यहां किसी युग के धर्मशील हाथों ने अतल मिट्टी की गहराइयों में दबा-छिपा दिया हो! जो भी कुछ रहा हो, मूर्ति बहुत ही प्रभावशाली, प्रेरणामयी और मनोहारी है यह मूंगावर्णी पद्मासना प्रतिमा। इसके दोनों ओर हलके लाल रंग की और चित्तीदार प्रतिमाएं और हैं। इस मूंगावर्णी मूर्ति के आगे घी के दीपक जलाये जाते हैं। श्रद्धालु भक्तजन छत्र चढ़ाकर, यहीं बैठकर मनौती मांगते हैं।

मूल नायक के परिक्रमा स्थल से आगे बढ़ते ही श्वेतवर्णी भगवान स्वामी की मूर्ति है, एक दर की वेदी-छत्र के नीचे अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमाएं हैं। आगे भगवान कुंथुनाथ की मूर्ति, इसकी चरण-चौकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर बकरे का चिह्न है। दोनों ओर की पाषाण मूर्तियां देखने में अत्यधिक प्राचीन लगती हैं। आगे और बहुत-सी धातु की मूर्तियां, सभी कलात्मक दृष्टि से बेजोड़ है।

यहां द्वार से निकलते ही पहले की भांति ही तीर्थंकरों की पद्मासनी मूर्तियां मिलती हैं और दायीं-बायीं ओर कत्थई वर्ण की खड्गासीन प्रतिमाएं हैं। नीचे चंवरधारी यक्षी बनी हुई हैं। बाहर वाली बड़ी वेदी के एक ओर की वेदी में पद्मावतीजी की मूर्ति आसीन है, दूसरी ओर क्षेत्रपाल। भक्त लोगों में इसकी बहुत मान्यता है। अटूट विश्वास है कि महावीरजी की प्रतिमा और क्षेत्र पर जो भी विकास गौरव और दिशा-दिशा में धर्म-कीर्ति छाई हुई है, वह सब इन्हीं क्षेत्रपाल की देन है। मनौती मांगनेवाले यहां खूब गाते-नाचते और सुगंध-अगर-बत्तियां जलाते हैं।

मंदिर के बाहर परिक्रमा-पथ है। भक्त जन तीन, पांच से लेकर एक सौ-आठ परिक्रमा तक करते हैं। दीवारों पर, स्तंभों पर मकराना संगमरमर की कला-कृतियां हैं—अत्यधिक कलात्मक लगभग सोलह पौराणिक दृश्यों का अंकन है—बड़ा ही अपूर्व। पाषाण पर कला का उत्कृष्ट समन्वय ... मंदिर के ऊपर तीन विशाल शिखरों में भी इसी मनभावनी कला को देखा जा सकता है। यहीं नीचे की ओर महावीर दि. जैन क्षेत्र का कार्यालय और दूसरी ओर सरस्वती-भवन, भंडार-गृह, पूजन—प्रक्षालन हेतु स्नानघर, पूजन-सामग्री धोने, स्वच्छ करने का चौर-स्थान तथा अन्य व्यवस्थाएं हैं। सारा वातावरण पावनता-शुचिता का धाम-प्रतीक ... मंदिर -द्वारों से स्वरध्वनित हो रहे हैं—

'यत्र स्याद्वाद सिद्धान्तो, यत्र वीरो दिगम्बर :
तत्र श्री विजयो भूति : ध्रुवानन्दो ध्रुवादर :'

कटले के दक्षिणी द्वार को, जो पीछे की ओर है, इसे मोरी दरवाज़ा कहते हैं, बड़ी चहल-पहल से भरी जगह है। सामने नदी तट तक बड़ा खूबसूरत बगीचा है। तरह-तरह के फूल, हरसिंगारी खुशबू ...इसमें भगवान महावीर निर्वाणोत्सव वर्ष में ३३ फुट ऊंचा, प्रस्तर-शिल्प का बहुमूल्य नमूना एक कीर्तिस्तंभ तैयार किया जा रहा है, इसका निर्माण मकराने के प्रसिद्ध संगमरमर से हो रहा है—लगभग पूर्णता की ओर है यह।

पूर्वांचल की ओर चरण-चिह्न-छतरी है। इसी स्थान पर उत्खनन द्वारा यह अलौकिक चमत्कारिक मूर्ति की प्राप्ति हुई थी। सुना है कि जिस ग्वाले ने इसे खोजा और श्रमपूर्वक प्राप्त किया, उसी के वंशधर आज भी, तबसे लेकर अब तक' इन चरणों के ऊपर चढ़ाये हुए चढ़ावे की सामग्री को स्वयं लेते हैं। यह परंपरा सतत बनी हुई है।

[शेषांश अगले अंक में]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताज़गी की एक लहर!

जियांजी सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं। जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की लहर। आप अपने आपको कुछ और ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।

क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी आस पास बिखरे सूनेपन में ताज़गी भर देते हैं।

जियाजी
सूटिंग-शर्टिंग
कॉटन प्रिण्ट्स
जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड,
बिर्ला नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

MAPP

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद

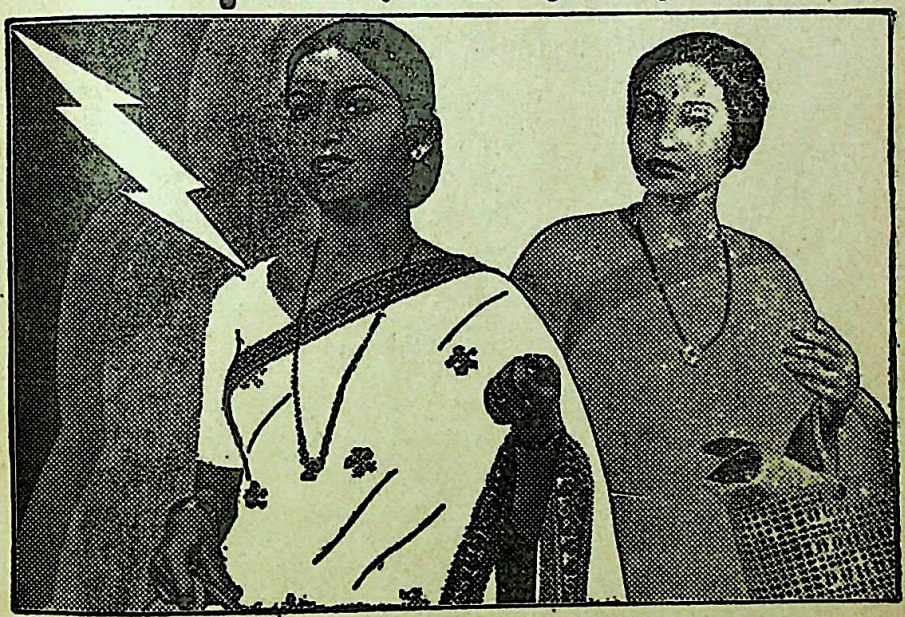

किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद.

सुपर रिन से नियमित धुलाई करने पर आपके कपड़ों में ऐसा फ़र्क आये कि दूर से दिखे. किसी दूसरी डिटर्जेंट टिकिया या बार के मुकाबले सुपर रिन कहीं अधिक सफ़ेदी लाता है, क्योंकि सुपर रिन में अधिक सफ़ेदी की शक्ति है.

आज़माइए और सबूत पाइए:

किसी अन्य डिटर्जेंट बार से धोया हुआ

सुपर रिन से धोया हुआ

सुपर रिन

अधिक सफ़ेदी की शक्ति से भरपूर

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

लिंटास-RIN.40-1511 HLL

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाकवि बच्चन की दो ताज़ा कविताएं

[१]

छिछले-गहरे

यह दर्पण-सा
शान्त जल का फैलाव
ऐसा मुखौटा है
जिसे लगाकर
छिछलपन और गहराई
दोनों अपनी सच्चाई
छिपा लेती हैं,
लगता नहीं पता
कि यहां है हाथी-डुबाव
कि यहां डुबा नहीं सकता अपनी पीठ
चले जो ऊदबिलाव ।

पर सधी हुई आंखें
और सधे हुए कानों से
छिपता नहीं यह राज़ —
छिछलपन पलकों से टकराकर
अपने में ही लौट जाता है ।
गहरापन पुतलियों को सहलाकर
अन्तर में उतर आता है ।

छिछलपन से आती है आवाज़
जैसे हो छोटे मुंह की बड़ी बात ।

गहरेपन से उठती है आवाज़
जैसे कोई ग़मज़दा
पढ़ रहा हो नमाज़ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैंने अपना दुख-दर्द, तुमसे नहीं,
लेखनी से कहा था;

अगर उसने तुम तक नहीं पहुंचाया
तो मैं तुम्हें दोष नहीं देता ।
मैंने अपना दुख-दर्द तुमसे नहीं,
काग़ज़ से कहा था,

अगर तुमने मुझे नहीं समझा
तो मैं तुम्हें दोष नहीं देता ।
मैंने अपना दुख-दर्द तुमसे नहीं,
शब्दों से कहा था;

अगर तुमने मुझे संवेदना नहीं दी
तो मैं तुम्हें दोष नहीं देता ।

मैंने अपना दुख-दर्द, तुमसे नहीं,
काली रातों से कहा था,
गूंगे सितारों से कहा था,
सूने आसमानों से कहा था,

अगर उनकी प्रतिध्वनि
तुम्हारे अन्तर से नहीं हुई
तो मैं तुम्हें दोष नहीं देता ।

मुझे मालूम था
कि एक दिन
मेरी वेदना का साथ मुझसे छूटेगा,
लेकिन मेरे शब्दों से
मेरी वेदना का सम्बन्ध कभी नहीं टूटेगा ।

□

[२]

शब्द-सम्बन्ध

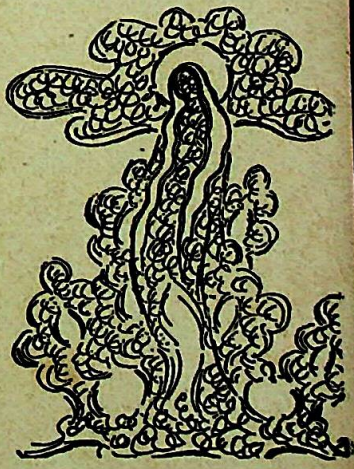

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

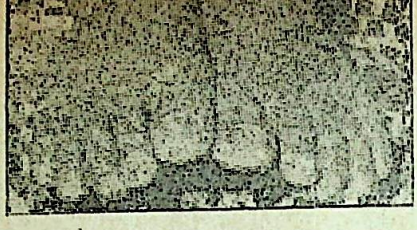

श्रीगुरुकृपा की दीक्षा

□

स्वामी मुक्तानंद परमहंस

दीक्षा को लोग कुछ पुराना, कुछ पारम्परिक, कुछ कम फ़ैशन का समझते हैं। ऐसा नहीं, दीक्षा इतना नया, इतना आधुनिक कि वह आपके अंदर के सारे पुराने को गिरा देता है। उतना ही रहने देता, जो नये के लिए होना। वह अणु की तरह आपके अंदर जाकर बैठ जाता और फिर फटता ही रहता। पर उसको समझ पूरी। उस तत्त्व का नाश कभी करेगा नहीं, जो आगे लगेगा। इस अणु के बार-बार के विस्फोट से भी वह तत्त्व वैसा ही बना रहता, जिसे शुभ बोलते, इष्ट बोलते, नित्य सत्य बोलते। विज्ञान इतना विकास करके भी बुरे के साथ अच्छे को न मारने की गारंटी नहीं दे सकता। उसका बम जिधर फूटेगा, पूरी 'समता' से सबको मार देगा। दीक्षा में गारंटी है। आप आप ही देखेंगे, वह बुरा आपके अंदर कैसे क्षीण होता चला जाता है हमेशा को। फिर लौटकर आता भी नहीं, आने के लिए वह रहता भी नहीं।

दीक्षा पीले कपड़े पहनना नहीं, माला तिलक चंदन नहीं, पैसा कमाने का साधन नहीं, जादू-मंतर नहीं, ऋद्धि-सिद्धि नहीं, देश-देशांतर नहीं। वह आपका खास अपने ही अंदर की सबसे बड़ी शक्ति से गठबंधन है—पाणिग्रहण। शास्त्र बोलते। 'भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटी फलमिदम्'।

दार्शनिक बहुत तरह के मानव की बात बोलते हैं। हम मात्र इतना ही बोल सकते कि सतगुरु से प्राप्त दीक्षा के अनंतर जो नया मानव आपके अंदर तैयार होता है, वह 'अणुमानव' है—शक्ति का पुंज। यह मानव एक से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में प्रसारित होता चलता और जगत सहज परिवर्तित होता जाता है।

हम पूरा भरोसा दे सकते हैं, आदमी परिवर्तन के लिए जितने उपाय करता, दीक्षा उनमें सर्वोपरि, कभी नापास न होने वाला उपाय है। आप अपनी अंतर-शक्ति के प्रति, देवात्म शक्ति के प्रति सहज आदर युक्त बने रहो, दीक्षा आपको एक दिन आप ही पकड़ लेगी।

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

०

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

०

प्रार्थना

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।।

यजु० २०–२१

अज्ञानरूपी अन्धकार से उत्तरोत्तर प्रकाश की ओर बढ़ते हुए हम, देवताओं में सूर्य के समान उत्तम ज्योति अर्थात् सर्वोत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त करें।

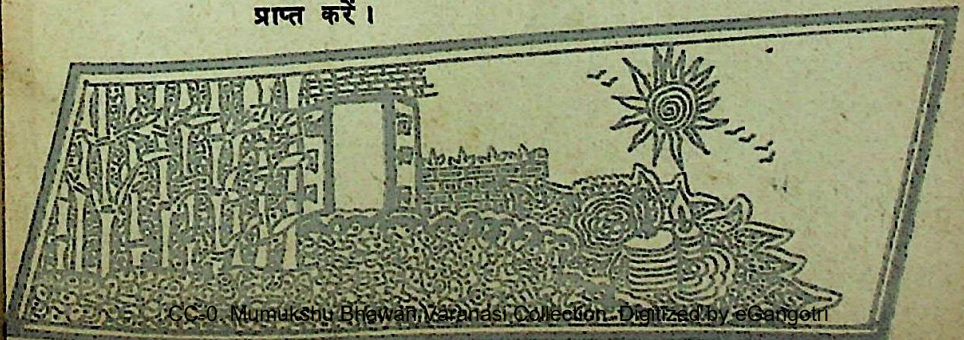

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय दृष्टाओं की सुपर्ण विद्या

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

वेदों की अति महत्वपूर्ण एक विद्या सुपर्ण विद्या थी। जितनी भूत-चितियां या पिण्ड निर्माण हैं, सब सुपर्ण का रूप हैं। अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा सभी सुपर्ण हैं। जितने गतिशील पदार्थ हैं सुपर्ण हैं, वे ही गरुत्मा हैं। शरीर में जीव आत्मा सुपर्ण है। साक्षी सुपर्ण और भोक्ता सुपर्ण, दोनों इसी में बैठे हैं। जीवात्मा भोक्तात्मा है। वह भोक्तात्मा सुपर्ण या जीवात्मा वैश्वानर-तैजस-प्राज्ञमय है। जो साक्षी सुपर्ण है वह विराट्-हिरण्यगर्भ-सर्वज्ञमय है। साक्षी सुपर्ण भोक्ता सुपर्ण का सयुज सखा है। जैसा जीव सुपर्ण का स्वरूप है वैसा ही साक्षी सुपर्ण का है। यह साक्षी सुपर्ण हर एक जीव में हैं। हरएक पिंड का साक्षी सुपर्ण पृथक्-पृथक् है। उसके संस्थान और धर्म अलग हैं। व्यक्तित्व साक्षी सुपर्ण और भोक्ता सुपर्ण दोनों के आधार पर प्रतिष्ठित है। दोनों हृत्प्रतिष्ठ हैं। साक्षी सुर्ण के विना भोक्ता सुपर्ण अकेला पिंड में रह ही नहीं सकता। विश्व का विश्वात्मा प्रत्येक केन्द्र या पिण्ड में प्रतिबिम्बित होता है, किन्तु भोक्तात्मा या जीव की भांति सोपाधिक नहीं बनता, केवल साक्षी रूप से रहता है। यही उसका अभिचाकशीति रूप है। चिति समष्टि का नाम सुपर्ण है। पिण्ड बनाने के लिए प्रजापति को जो संस्थान या ढांचा बनाना होता है वही सप्तचिति वाला सुपर्ण होता है। 'चत्वारो आत्मा, द्वौ पक्षौ, पुच्छं प्रतिष्ठा'—यही सुपर्ण का रूप है। धड़ को चार आत्मा कहते हैं। दो पक्ष हाथ पैर हैं। पुच्छ या प्रतिष्ठा उसकी त्रिकास्थि है, अर्थात् मेरु दण्ड का भाग। प्रत्येक पत्ते में भी त्रिकास्थि है जहां वह वृक्ष से जुड़ा रहता है। धड़, दोनों पक्ष भाग, त्रिकास्थि का आधार इन सातों से ठाठ बन गया। पर ये सातों मर्त्य हैं। इनमें जो प्राण या जीवन का केन्द्र है वह सिर है। यज्ञीय भाषा में कंठ से नीचे के भाग में चित्य अग्नि और ऊपर सिर में चितेनिधेय अग्नि रहती है। एक मर्त्य है, दूसरा अमृत। शिर इस शरीर यज्ञ का आहवनीय अग्निं है। 'सर्वेभ्यो देवेभ्यो हूयते इति आहवनीयम्।' सब देवों के लिए आहुति मुख या आहवनीय में ही दी जाती है। किन्तु जब तक वह अन्न रूप सोम की आहुति गार्हपत्य अग्नि या जठराग्नि में न पड़े, उसका रस आदि न बने वह आहुति देवप्राणों को नहीं मिल पाती। देहरूपी सुपर्ण के चार आत्मा चार आधार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राण हैं। वे सर्वांग शरीर के आधार हैं। धड़ सारे शरीर का आधार है इसी से हाथ, पैर आदि सब निकले हैं। यहां आत्मा से शरीर के धड़ भाग का ही अभिप्राय है। दो फेफड़े, हृदय और उदर ये चार आत्मा या शरीर के आधार इसी धड़ में हैं। दो पक्ष-दक्षिण पक्ष और उत्तर पक्ष ये दोनों ओर के हाथ पैर हैं। पुच्छं प्रतिष्ठा—धड़ वाला आत्मा भाग भी जिसके आधार पर ठहरा है वह त्रिकास्थि प्राण जब शिथिल हो जाता है तभी कमर टूट जाती है। यह कल्पना पक्षी के ढांचे से लगायी गयी है। चिड़िया की पूंछ में जो कम्पन होता रहता है उसी से उसकी गति सम्भव होती है। कोई भी गति का उपक्रम त्रिकास्थि प्राण पर बल डाले बिना हो ही नहीं सकता। पक्षों से गति संचार होता है। प्राणन-अपान का द्वन्द्व पक्षों से होता है। यह शरीर यंत्र है। 'यंत्रारूढानि मायया'—इस शरीर रूपी शिल्प या माया से हम सब यन्त्रारूढ़ हैं। यह शरीर ही ब्रह्म यंत्र है। इसके धड़ को ढोने की शक्ति प्राण और अपान की क्रिया से ही होती है। उसी से यह यंत्र चल रहा है। असंज्ञ, अन्तःसंज्ञ, ससंज्ञ सब भूतों में ये सप्त चितियां रहती हैं। जो पत्थर आदि असंज्ञ हैं उनमें वैश्वानर है, तैजस प्राज्ञ मूर्च्छित है। जो वृक्ष वनस्पति हैं उनमें वैश्वानर तैजस है प्राज्ञ मूर्च्छित है। तैजस नाम प्राण का है जिसके कारण उनका विकास होता है। जहां प्राणन क्रिया का स्पर्श हुआ कि विकास या वृद्धि होने

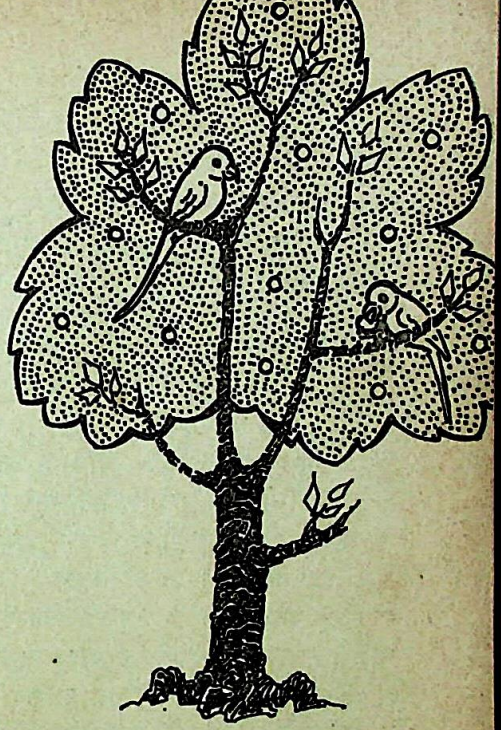

लगती है। मानव, पशु, पक्षी, कृमि, कीट इनमें प्रज्ञा तत्व का विकास है। पूर्व-पूर्व में उत्तरोत्तर से अधिक है। प्रज्ञा ही चिदंश है। असंज्ञ पाषाण आदि में केवल भूतचिति है, प्राणचिति नहीं है। जो भूत का आधार विश्वात्मक प्राण है वह तो रहता ही है, चैतन्य का आधार प्राण नहीं है जिसका चिदंश से सम्बन्ध हो। प्रज्ञान भी उनमें नहीं है। लेकिन सुपर्ण रूपता पाषाणादि पिण्डों में भी है। कोई न कोई रूप तो उनका भी है ही। किन्तु अभिव्यक्त यज्ञ-रूपता नहीं है। यज्ञ सुपर्ण है। यज्ञ का जो वितान होता है वही सुपर्ण चिति है। अग्नी-

(शेषांश पृष्ठ ६२ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमां का एक साक्षात्कारी लेख

□

अतिमानस लोक का दर्शन मानवता के लिए एक नयी आशा

कुछ समय पहले मुझे प्राणियों के जीवन के साथ तादात्म्य का अनुभव हुआ था। यह तो सच ही है कि प्राणी हमें समझ नहीं पाते हैं। उनकी चेतना कुछ इस तरह बनी होती है, कि हम उनकी समझ से लगभग समूचे ही बाहर रह जाते हैं। लेकिन हमारे कुछ परिचित प्राणियों का—बिल्लियों और कुत्तों का मुझे अनुभव है, विशेषकर बिल्लियों का। और मैंने देखा कि ये प्राणी हमारे सम्पर्क में आने के लिए सचेतन रूप से कहिये कि यौगिक रूप से, प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन आम तौर पर जब ये प्राणी हमें चलते-फिरते या काम-काज करते देखते हैं, तब ये हमें हमारे सच्चे स्वरूप में नहीं देख पाते हैं। तब हम उनके लिए एक सतत समस्या ही बने रहते हैं। उनकी चेतना का एक बहुत छोटा-सा अंश ही हमारे सम्पर्क में होता है। ठीक उसी तरह, जब हम अतिमानस सृष्टि (मन से परे की सृष्टि) की ओर देखने का प्रयत्न करते हैं, तब हमारे साथ भी यही बात घटित होती है। मानवों और प्राणियों के बीच जिस प्रकार का अंतर होता है, लगभग वैसा ही अंतर अतिमानस जगत और मानवों के बीच होता है। उस सृष्टि के साथ हमारी चेतना की भीतरी कड़ी जब जुड़ जायेगी, तभी हम उसे देख सकेंगे, और तब भी वही लोग देख सकेंगे जिनका रूपांतर हो चुका है। उस रूपांतर के बिना वह अतिमानस सृष्टि हमारे लिए भी उतनी ही अगम्य रह जायेगी, जिस प्रकार प्राणियों के लिए मानवों की सृष्टि अगम्य है।

एक स्वतंत्र यथार्थ सृष्टि

३ फरवरी १९५८ को मुझे जो अनुभूति हुई थी, उसी से इस बात का प्रमाण मिल जाता है। इससे पहले अतिमानस के साथ का मेरा सम्पर्क, मात्र व्यक्तिगत और आंतरिक था। लेकिन गत ३ फरवरी को तो मैं उतने ही वास्तविक रूप से अतिमानसिक सृष्टि में घूम-फिर आयी हूं, जैसे कि पहले मैं पेरिस में घूमा करती थी। अब इसमें कोई आत्मलक्षी तत्त्व नहीं था; वह मात्र कोई भावात्मक दर्शन नहीं था,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेकिन अपने आपमें स्वतंत्र एक वास्तविक सृष्टि ही वह थी, उतनी ही ठोस और वास्तविक, जैसी हमारे लिए हमारी यह मानव-सृष्टि है। मुझे प्राप्त होनेवाली अनुभूति से मुझे प्रतीति हुई है, कि उसके द्वारा मानव-सृष्टि और अतिमानस सृष्टि के बीच एक पुल का निर्माण हुआ है। उस अनुभूति को मैंने तुरंत ही लिखवा दिया था, जो इस प्रकार है :

अतिमानस सृष्टि स्थायी रूप से सदा अस्तित्व में है, और उस सृष्टि में मैं स्वयं एक अतिमानसिक शरीर में स्थायी रूप से विद्यमान हूं। आज दोपहर को दो और तीन बजे के बीच (३ फरवरी १९५८) मेरी पार्थिव चेतना वहां जाकर सचेतन रूप से रह आयी है, और उसी से इस बात का प्रमाण मिला है। अब मैं जान गयी हूं, कि इन दोनों सृष्टियों को सज्ञान रूप से सतत सम्पर्क में रखने के लिए, इस स्थूल जगत तथा उस अति-मानसिक जगत के बीच एक मध्यवर्ती प्रदेश की जरूरत है। व्यक्ति की चेतना में, तथा बाह्य-जगत में, दोनों ही जगह इस प्रदेश का निर्माण करना है, और वह निर्माण हो भी रहा है। कुछ समय पहले मैंने कहा था कि एक नये जगत का सृजन हो रहा है, तब मैं इस मध्यवर्ती प्रदेश की ही बात कर रही थी। उसी प्रकार जब मैं इस और, अर्थात् स्थूल चेतना के प्रभाववाले प्रदेश में होती हूं, और यहां रहते-रहते अतिमानस की शक्ति को अतिमानस के प्रकाश और तत्त्व को जड़ तत्त्व के अंदर सतत उतरते हुए देखती हूं, तब यह घटना यही बताती है कि उस मध्यवर्ती प्रदेश का निर्माण हो रहा है, और उसमें मैं अपना पार्ट अदा कर रही हूं।

नारंगी प्रकाश का लोक

मैंने देखा कि मैं एक अति विशाल नौका पर खड़ी हूं। जिस स्थान पर उपरोक्त काम चल रहा था, उसी के सांकेतिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतीक स्वरूप थी यह नौका। अपने आप में यह एक समूचे शहर जितनी बड़ी थी। उस पर की सारी वस्तुएं संपूर्ण रूप से व्यवस्थित थीं। उस व्यवस्था की उतनी अधिक संपूर्णता को देखते हुए ऐसा लगता था कि यह नौका काफी समय पहले से ही काम कर रही थी। यह नौका अति-मानस जीवन के लिए निर्मित लोगों को शिक्षा देने के स्थान के रूप में काम कर रही थी। उस नौका पर वास करने वाले लोगों क स्वरूप का अमुक भाग तो अति-मानस रूपांतर प्राप्त कर ही चुका था। क्योंकि यह नौका और इसमें विद्यमान एक-एक चीज़ किसी स्थूल पदार्थ की, या सूक्ष्म-स्थूल प्रकार की अथवा प्राणमय या मनोमय प्रकार की सामग्रियों से नहीं, पर स्वयं अतिमानस तत्त्व की सामग्री के भीतर से ही बनी थी। स्वयं यह अति मानस तत्त्व भी अतिमानस के बने हुए अतिशय स्थूल पदार्थ की जाति का ही था; अर्थात् वह स्थूल जगत के अधिक से अधिक निकट आया हुआ अतिमानस तत्त्व था—यानी सबसे पहले आविर्भाव में आनेवाला अतिमानस तत्त्व था। वहां का प्रकाश सुनहरे और लाल प्रकाश के मिश्रण का बना हुआ था और यह मिश्र प्रकाश एक नारंगी से तेजोमय पदार्थ के रूप में परिणत हो जाता था। उस स्थान की सभी वस्तुएं इसी प्रकार की थीं—वहां का प्रकाश नारंगी रंग का था, वहां के लोग भी उसी रंग के थे, वहां की सारी वस्तुएं उसी रंग की थीं। निश्चय ही वहां इस एक नारंगी रंग की भिन्न-भिन्न छायाएं थीं, और इस कारण सारी वस्तुएं एक-दूसरे से अलग-अलग पहचानी जा सकती थीं। वह सब देखकर सामान्यतया ऐसा लगता था कि उस सृष्टि में कहीं भी परछाईं तो है ही नहीं; छायाएं थीं, पर परछाइयां नहीं थीं। वहां का वातावरण आनंद, शांति और सुव्यवस्था से भरा हुआ था। वहां सारा काम नियमित रूप से और मौन-मौन चल रहा था। तिस पर भी, वहां के हर क्षेत्र में जो शिक्षा दी जा रही थी, और इस प्रकार नौका के लोगों को जो तैयार किया जा रहा था, उसे हम उसकी सारी बारीकियां और क्रमिकता में देख सकते थे।

वह विराट नौका उस अतिमानस जगत के किनारे पर अभी आयी थी। उस सृष्टि के भावी निवासी बनने के लिए निर्मित लोगों की पहली टुकड़ी को वहां उतारने के लिए वह आयी थी। इस पहली उतरायी के लिए सारी तैयारी हो चुकी थी। किनारे पर का जो स्थान उतरायी के लिए तैयार किया गया था, बस किनारे का उतना ही भाग दिखाई पड़ रहा था। वहां के बंदर पर कुछ बड़े कद्दावर लोगों की एक टुकड़ी नियुक्त की हुई थी। ये व्यक्ति मनुष्य नहीं थे, और इससे पहले भी मानव-अवस्था में नहीं रहे थे। पर ये अतिमानस सृष्टि के स्थायी निवासी भी नहीं थे। उन्हें ऊपर की सृष्टि से वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भेजा गया था और इस उतरायी की क्रिया का नियमन करने तथा उस पर देख-रेख रखने के लिए ही उन्हें वहां नियुक्त किया गया था। इस सारी क्रिया का संचालन, यह काम शुरू हुआ तब से, अब तक मेरे ही हाथ में था। मैंने स्वयं ही लोगों के ये सारे यूथ तैयार किये थे। नौका पर सीढ़ी के सिरे पर मैं खड़ी थी। और एक के बाद एक इन यूथों को बुला रही थी और नीचे के किनारे पर भेज दे रही थी। नीचे किनारे पर नियुक्त कद्दावर लोग मानो कि इस बात का निर्णय कर रहे थे कि नौका में से किसे नीचे उतरने दिया जाये और किसे नहीं उतरने दिया जाये। जो लोग तैयार थे उन्हें वे उतरने दे रहे थे, और जो लोग तैयार नहीं थे, और नौका में दी जानी वाली शिक्षा जिनकी पूरी नहीं हुई थी, उन्हें वे वापस भेज दे रहे थे। इस प्रकार मैं वहां खड़ी थी, और प्रत्येक जन पर निगाह डाल रही थी, तभी मेरी चेतना का वह भाग, जो पृथ्वी पर से वहां आया था, वह इन सबको अत्यन्त रसपूर्वक देखने लगा। यहां आये हुए सारे लोगों को देखने और पहचानने की इच्छा उसमें जाग उठी थी। उसे यह भी देख लेना था, कि इन लोगों में कितना परिवर्तन हुआ है तथा किन लोगों को तुरंत नीचे किनारे पर ले लिया जाता है, और किन लोगों को शेष शिक्षा पूरी करने के लिए नौका पर ही रहने दिया जाता है। इस

श्रीमां : स्वयं द्वारा रेखांकित

प्रकार मैं जब यह सब देख रही थी, तभी कुछ समय बाद मुझे लगा कि मुझे कोई वापस खींच रहा है और मेरे शरीर को जगा देना चाहता है। और मैंने अपनी चेतना के भीतर इसका विरोध किया और कहा कि–'नहीं नहीं, अभी नहीं, अभी नहीं। मुझे अभी देखना है।' और मैं सारी वस्तुओं को देखती रही तथा अत्यन्त रसपूर्वक उनकी तफसील लेती रही। और इस प्रकार यह सारा काम चल रहा था, तभी यकायक यहां घड़ी में टन्-टन् तीन के टकोरे हुए, और यह आवाज एक धक्के के साथ मुझे लौटा लायी। और मुझे ऐसा लगा कि जैसे मैं अपने शरीर में एकदम पछाड़ खा गयी हूं। इस प्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

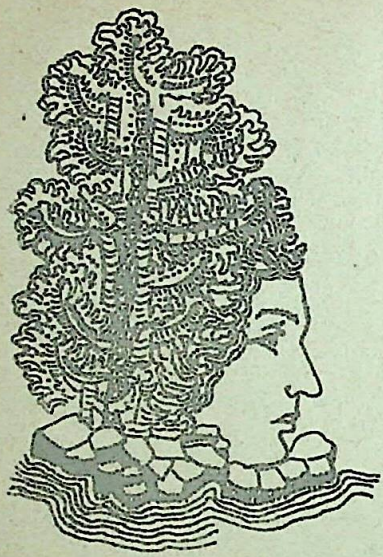

शरीर में वापस लौटते हुए मुझे आघात तो अवश्य लगा, पर मेरा जाना एकदम अचानक ही हुआ था, इसलिए उस अनुभूति की स्मृति अक्षुण्ण रूप में ज्यों की त्यों टिकी थी। इसी से शरीर में वापस लौटने के बाद मैं बिल्कुल शान्त होकर बैठी रही और उस सारी अनुभूति को मैंने फिर से समूची ताज़ी करके याद कर लिया, और उसके बाद ही मैंने चलना-फिरना आरंभ किया।

पोशाक, शरीर का एक ही भाग

उस नौका पर के पदार्थ, पृथ्वी पर हम जैसे पदार्थ देखते हैं, वैसे नहीं थे। उदाहरण के लिए, वहां की पोशाक कपड़े की बनी हुई नहीं थी। वहां जो पदार्थ, कपड़े जैसा लग रहा था, वह उन लोगों के शरीर का ही एक भाग था, वह उनके शरीर तत्त्व में से ही बना था और भिन्न-भिन्न रूप ले रहा था। उस तत्त्व में एक प्रकार की मुलायमियत थी। उसमें यदि कोई फेरफार करने की ज़रूरत पैदा होती, तो वह किसी कृत्रिम या बाह्य साधन द्वारा नहीं किया जाता था। वह फेरफार करने के लिए एक आंतरिक चेतना की क्रिया की जाती थी, और वह तत्त्व उस प्रकार का रूप या आकार धारण कर लेता था।

वहां जीवन स्वयं ही अपने रूपों का सर्जन करता था। प्रत्येक वस्तु के भीतर एक ही तत्त्व था और वही आवश्यकता या उपयोग के अनुसार अपने आंदोलनों का स्वरूप बदल देता था।

जिन लोगों को विशेष शिक्षा के लिए वापस लौटाया गया था, उन सब का रंग एक-जैसा नहीं था। मानो कि उनके शरीर में काले अथवा भूरे रंग के कुछ दाग रह गये थे। ये दाग पृथ्वी के पदार्थ-तत्त्व से मिलते-जुलते किसी तत्त्व से बने हों, ऐसा लगता था। ये लोग मानो कि अभी भी पूर्ण रूप से प्रकाशमय और रूपांतरित नहीं हो पाये थे, इसी से धुंधले दिखाई पड़ रहे थे। और यह कमी उनके सारे शरीर में नहीं, पर कुछ विशेष स्थानों पर ही दिखाई पड़ती थी।

अस्थि-पिंजरहीन पारदर्शक देह

किनारे पर के ऊंचे कद्दावर लोगों का वर्ण इन नौकावाले लोगों जैसा नहीं था। और कुछ न भी हो, तो उनके वर्ण में नारंगी रंग की छाया तो नहीं ही थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनका रंग अधिक हलका, अधिक पारदर्शक था। उनके शरीर का अमुक भाग ही पूरा ही पूरा दिखाई पड़ता था, उसके अतिरिक्त उनके शरीर के शेष भाग की मात्र रूप-रेखा ही दिखाई पड़ती थी। ये लोग बड़े उत्तुंगकाय थे, और ऐसा लगता था, कि उनके अंदर हाड़-पिंजर जैसी कोई रचना या ढांचा नहीं है, बल्कि वे तो आवश्यकता के अनुसार आकार धारण कर लेते अधिक सूक्ष्म स्वरूप वाले थे।

जब मुझे वापस बुला लिया गया था, और मैंने कहा था कि 'नहीं, नहीं, अभी नहीं, अभी नहीं।' तब प्रत्येक बार मुझे अपने स्वरूप का (अर्थात् अतिमानस सृष्टि में वास करने वाली अपनी आकृति का) एक झलक में दर्शन हो गया था। मेरे स्वरूप के भीतर, किनारे पर खड़े कद्दावर लोगों तथा नौका पर वास करने

हैं। उनके कमर से नीचे के भाग में कुछ सघनता अवश्य थी। इन लोगों का रंग बहुत ही हलका था, और उसमें सहज ही लाल रंग का अंश था। वह रंग सुनहरे या सफेद रंग के ही अधिक निकट पहुंचता-सा लगता था। उनके शरीर के सफेदी-वाले प्रकाश के अंश अर्ध-पारदर्शक थे, पूरे पारदर्शक नहीं थे, लेकिन कम घन-तावाले नारंगी रंग के पदार्थ की बनिस्वत वाले लोगों के स्वरूप का मिश्रण था। मेरा ऊपर का भाग, खास करके मेरा माथा, मात्र एक छायाकृति जैसा था। उसके भीतर एक किनारे से नारंगी रंग-वाले सफेद होते-से रंग का तत्त्व भरा हुआ था। उस शरीर में, जैसे-जैसे नीचे के भाग की ओर बढ़ा जाये, वैसे-वैसे वह अधिक अर्ध-पारदर्शक और सफेद बनता जाता था, और उसमें लाल रंग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घटता जाता था। माथे की छाया-आकृति के केंद्र-भाग में एक महातेजस्वी सूर्य विराजमान था। उसमें से प्रकाश की किरणें फैल रही थीं, और वे किरणें संकल्प-शक्ति की क्रिया के रूप में प्रवाहित थीं।

नौका पर जो लोग थे, उन सभी को मैंने पहचान लिया था। उनमें से कुछ तो इसी आश्रम के थे, और कुछ दूसरे स्थानों से आये हुए थे, तब भी उन्हें भी मैं पहचानती तो थी ही। इस तरह एक-एक व्यक्ति को मैंने देखा तो था ही, लेकिन मुझे मालूम था कि जब मैं लौटूंगी, तब प्रत्येक व्यक्ति को मैं याद नहीं रख सकूंगी, इसी से उनमें से किसी का नाम मैं प्रकट नहीं करूंगी, यह मैंने निश्चय कर लिया था। और वैसा करने की ज़रूरत भी नहीं है। उनमें से तीन या चार चेहरे तो बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ रहे थे, और उन्हें जब मैंने देखा, तो पृथ्वी पर उनकी आंखें देखकर, मेरे मन में जो सम्वेदन जागा था, उसे मैं तब समझ सकी—उन आंखों में एक असाधारण आनंद था। उनमें से अधिकांश लोग जवान उम्र के ही थे। बालक बहुत थोड़े थ, और उनकी उम्र चौदह-पंद्रह वर्ष के लगभग रही होगी। दस-बारह वर्ष की उम्र से कम का तो कोई बालक नहीं था (ये सारी चीज़ें पूरी तफसील में देख सकूं, इतना समय तो मैं वहां रह ही नहीं सकी थी)। कुछ अपवादों को छोड़कर वहां अधिक वृद्ध लोग भी नहीं थे। नीचे उतरने वाले लोगों में अधिकांश लोग मध्यम वय के थे। मुझे यह अनुभूति हुई उससे पहले एक दूसरे स्थान पर कुछ समय के लिए कुछ खास व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से हाथ में लिया गया था। वहां रूपांतर प्राप्त करने की योग्यता रखनेवाले लोगों की परीक्षा ली जाती थी। पर आज मैं जिन लोगों को नीचे भेज रही थी, उन्हें मैं स्पष्ट देख भी रही थी। वे सब मध्यम वय के थे; बहुत छोटी उम्र के बालक तथा वृद्धजन उनमें नहीं थे, कुछ अपवादों को छोड़कर। और मैंने निश्चय कर लिया कि इस विषय में मुझे कोई बात नहीं करनी है, किसी का नाम भी नहीं देना है। उस स्थान पर मैं अंतिम घड़ी तक नहीं रही थी, इसी से वहां का एकदम सुनिश्चित चित्र मैं नहीं दे सकती हूं। वह चित्र एकदम स्पष्ट और संपूर्ण भी नहीं था, और मैं नहीं चाहती थी कि यह चीज़ कुछ लोगों से न कही जाये।

निर्णायक मूल्य नैतिक नहीं

इस बारे में मैं केवल एक ही बात कह सकती हूं कि इन लोगों के बारे में जो निर्णय लिया जाता था, उसके पीछे एक ही दृष्टि-बिंदु था। इस चुनाव में महत्त्व की बात यही थी कि वहां आनेवाले वे लोग किस तत्त्व के बने हुए थे, अर्थात् वे अतिमानस सृष्टि के ही लोग थे, या कहीं और के—वे एक विशिष्ट तत्त्व के बने हुए थे या नहीं। उसमें कोई नैतिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या मानसिक प्रकार का दृष्टि-बिंदु नहीं होता था। उनके शरीर जिस पदार्थ से बने होंगे, संभव है कि उसके पीछे कोई नियम रहा होगा, अथवा किसी आंतरिक गति के परिणामस्वरूप ही वे सृजित हुए होंगे। पर इस समय उस संबंध में कोई प्रश्न नहीं उठता था। पर यह तो निश्चित ही था, कि वहां के मूल्य कुछ भिन्न ही प्रकार के थे।

सनातन वर्तमान सृष्टि

इस अनुभूति की स्मृति को साथ लेकर, इस प्रकार जब मैं नीचे आयी, तब मेरी समझ में आया कि अतिमानस सृष्टि एक सनातन वर्तमान सृष्टि है और उस सृष्टि में मेरी उपस्थिति भी सनातन और स्थायी है। इस सृष्टि के साथ संपर्क में जाने के लिए चेतना में और पदार्थ-तत्त्व में चुकती-सी एक कड़ी की रचना मात्र करना है, और उस कड़ी की रचना हो रही है। इस अनुभूति के बाद मुझे ऐसा लगा (और यह प्रभाव काफी लंबे समय तक, लभगग एक पूरा दिन मुझ पर रहा) कि हमारा जगत एक अत्यंत सापेक्ष प्रकार की सृष्टि है, अथवा यों कहिये कि उस सृष्टि और हमारी सृष्टि के बीच जो संबंध है, उसके कारण अब मेरे भीतर वस्तुओं को देखने और समझने की समूची दृष्टि में ही संपूर्ण परिवर्तन हो गया है। इस दृष्टि-बिंदु में कोई मानसिक तत्त्व नहीं था। इस दर्शन के बाद अब एक विचित्र प्रकार की आंतरिक भावना मेरे अनुभव में आ रही है, कि हम कई वस्तुओं को जो अच्छी या बुरी समझते हैं, यथार्थ में बात वैसी नहीं है। बहुत स्पष्ट रूप से मुझे इस बात की प्रतीति हुई, कि वस्तुओं में स्वयं में जो शक्ति पड़ी हुई है, उस अतिमानस सृष्टि को वस्तुएं जिस सीमा तक उसे भीतर उतार सकती हैं, या उस सृष्टि के साथ जिस हद तक संपर्क में आ सकती हैं, उसी पर सारा चुनाव आधारित है। वह एक बिल्कुल ही भिन्न प्रकार की दृष्टि थी, कई बार तो वह हमारी सामान्य समझ से ठीक उलटी दिखाई पड़ती थी। इस संबंध में, मुझे एक छोटी-सी बात याद आती है: जिसे हम खराब समझते हैं, वह बात सचमुच ही अच्छी है, यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। और दूसरी भी कुछ बातें, जिन्हें हम अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझते हैं, वे यथार्थ में रंचमात्र भी महत्त्वपूर्ण नहीं होती हैं। वह इस तरह हो, या उस तरह हो, उसमें कोई अंतर नहीं पड़ जाता। हम जिस वस्तु को दिव्य या अदिव्य समझते हैं, वह भी यथार्थ में सत्य नहीं होता है।

कुछ वस्तुओं को देखकर तो मुझे हंसी भी आयी। हम सामान्यतया जिन वस्तुओं को प्रभु-विरोधी मानते हैं, वह भी हमारी एक कृत्रिम धारणा है, और इस धारणा के पाये में कोई जीवंत तत्त्व, या सत्य नहीं होता। और जिसे हम यहां जीवन कहते हैं, अतिमानस सृष्टि के

(शेषांश पृष्ठ ५५ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दृष्टा कथाकार जैनेन्द्रकुमार की एक दृष्टान्त-कथा

□

ऊर्ध्वबाहु ने पाया, वहां बस वही हैं...

इन्द्र अपने नन्दन कानन में अप्सराओं समेत आनन्द-मग्न थे कि सहसा उनका आसन दोलायमान हुआ। इस पर उन्होंने चारों ओर विस्मय से देखा। अनन्तर सशंक भाव से कहा, 'प्रहरी, देखो यह किस मर्त्य का उत्पात है।'

प्रहरी स्वर्ग से सिधारकर धरती पर आया और लौटकर सूचना दी, 'महाराज, तपस्वी ऊर्ध्वबाहु प्रचण्ड तप कर रहे हैं। दिशाएं उस पर स्तब्ध हो उठी ह। उसी के प्रताप से स्वर्ग की केलि-क्रीड़ा में विघ्न उपस्थित हुआ है।'

इन्द्र ने कहा, 'ऊर्ध्वबाहु। ऋषि भद्र-बाहु का वह उद्दण्ड शिष्य ? उसकी यह स्पर्द्धा।'

प्रहरी ने कहा, 'हां महाराज, वह अमोघ तपस्वी ऋषि भद्रबाहु के ही आश्रम के स्नातक हैं।'

इन्द्र ने तब अपने विश्वस्त अनुचर सौधर्म को निरीक्षण के लिए भेजा। सौधर्म ने आकर जो बताया, उससे इन्द्र भयभीत हो आये। वह अस्थिर और म्लान दिखायी देने लगे। सौधर्म ने ऊर्ध्व-बाहु की अखंड तपश्चर्या का रोमहर्षक वर्णन किया। पूरा संवत्सर उस तपोव्रती ने निराहार यापन किया है। बराबर पंचाग्नि भी तपते रहे हैं। अखण्ड मन्त्रोच्चार के सिवा कोई शब्द मुंह से नहीं निकलने दिया है। अमा रात्रि की निविड़ता में ही आंखों को खोला, नहीं तो सदा बंद रखा है। हिम, आतप, वर्षा, वायु को नग्न शरीर पर सहन किया है। मासों बाहु और मुख ऊपर किये एक पैर पर खड़े रहे हैं। वह बाल ब्रह्मचारी हैं। सोलह वर्ष की अवस्था

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से उन्हें स्त्री के दर्शनमात्र का त्याग है। आसपास की भूमि उनके तप के तेज से तृणांकुरहीन हो गयी है, और वृक्षों के पत्ते झुलस उठे हैं।

यह सब सुनकर इन्द्र चिन्ताग्रस्त हुए और उन्होंने कामदेव को बुलाया। कहा, 'हे कन्दर्प देव, ऐसे संकट में तुम्हीं ने सदा मेरी सहायता की है। धरती पर, फिर एक महास्पर्द्धी मानव तपस्या के बल से हमें स्वर्गच्युत करने का हठ ठान बैठा है। वह भूल गया है कि वह शरीर से वृद्ध है और मर्त्य है। तुम अनंगरूप हो, कामदेव, और अंगधारी के गर्व खर्व करने को अतुल बल-संयुत हो। जाकर उस उद्दण्ड ऊर्ध्वबाहु को वश में लो और उसकी तपश्चर्या का दर्प चूर्ण कर दो। इस कार्य में अब विलम्ब न करो, अन्यथा हमारे इस स्वर्ग पर संकट ही आया चाहता है। मानव यदि अपनी अन्तर्वासनाओं को इस प्रकार एकाग्र और केन्द्रित करने में सफल हो जायेगा, तो हम देवताओं का अस्तित्व ही व्यर्थ हो जायेगा। हे मन्मथ! मनुष्य के मन में नाना प्रकार के मनोरथों को अंकुरित करते रहकर ही हम स्वर्गवासी अपना अस्तित्व निरापद रख पाते हैं। उन मनोरथों से स्वाधीन होकर मनुष्य हमें अपने अधीन कर लेगा। इससे हे विश्वजयी! जाओ और उस तपस्वी के मन में मोह उत्पन्न करके स्वर्ग की रक्षा करो।'

आज्ञा पाकर कामदेव अपने आयुध और सैन्य-समेत धराधाम पर ऊर्ध्वबाहु के निकटस्थ अवतीर्ण हुए। तब सहसा ही आस-पास की पृथ्वी विलसित हो उठी। छहों ऋतुओं का समागम हुआ। मन्द-मन्द बयार बह आयी। पुष्प-मंजरियों से धीमी-धीमी सुगन्ध फैलने लगी। आकाश भी मानो सुख-स्पर्श कर उठा। सब कुछ जैसे तरंगित होकर झूम उठा हो। ऊर्ध्वबाहु ने सुखयोग की इस आपदा को अनुभव किया और आंखों को और भी कसकर बन्द कर लिया। शेष शरीर को भी मानो समेटकर जड़वत करने की चेष्टा की।

उस समय दसों दिशाओं से मदिर मधुर संगीत की मूर्च्छना उसके कर्ण-रन्ध्रों में प्रवेश करने लगी। शरीर में मानों हठात् पुलक छा जाने लगा। रक्त सनसनाता-सा शिराओं में प्रवाहित हुआ और निराहारी शुष्क अंग-प्रत्यंग में जैसे हठात् हरीतिमा भरने लगी।

ऊर्ध्वबाहु समझ गये कि यह इन्द्र का उपसर्ग है। उस समय मन-प्राण में से चेतना खींचकर मस्तिष्क के ऊर्ध्व में केंद्रित कर रखने की उन्होंने प्रणपूर्ण-भाव से चेष्टा की। बाहरी किसी माया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर वह अपनी आंखें नहीं खोलेंगे, किसी रस का स्पर्श नहीं लेंगे। बहती वायु, भीनी गंध, मधुर स्वर और मादक वाताकाश सब इन्द्रियों का भ्रम है। इन व्यापारों से इन्द्रियों का संगोपन कर अतीन्द्रियता में ही ब्रह्ममग्न रहना होगा। विषयों में इंद्रियां भागती हैं, आत्म-विषय अन्ततः उनका निग्रह ही है। काया को स्खलित और शिथिल किसी भांति नहीं होने देना होगा। अशेष भाव से ब्रह्मध्यान में ही रहकर काया की बाग को स्थिर संकल्प से थामे रखना होगा।

और तत्क्षण चहुं ओर मन्थर निक्षेप से रखे जाते हुए अनेक पग-पायल के नूपुरों का किंक्वणन उसे सुनायी दिया। मानो अप्सराओं के समूह ठठ-के-ठठ यूथवद्ध होकर चतुर्दिशाओं में मृदु-मंद नृत्य क्रीड़ा कर उठे हों।

ऊर्ध्वबाहु अचल-प्रण तपस्वी की भांति मन-ही-मन सुरपति की माया लीला पर व्यंग-भाव से मुस्कराये। वह जानते थे कि वह सुरपति को पराजित करेंगे। माया-राज का यह अधीश्वर इन्द्र परम पुरुष परब्रह्म के द्वार पर लुब्धक प्रहरी के समान निषेध-मूर्ति बनकर जो बैठा हुआ है, उसको बलात् वहां से पदच्युत कर भगवद्दर्शन के द्वार को उन्मुक्त कर देना होगा।.....

कि तभी नूपुरों की मन्द-मन्द ध्वनि उत्तरोत्तर द्रुत होने लगी। होते-होते मानो एक तीव्र उत्तेजना में उन्मत्त भाव से वह ध्वनि निकट आकर रक्ताक्त मदिरा-फेन के समान उफनती हुई थिरकने लगी। क्रमशः असंख्य नूपुरों का वह स्वर समवेत होकर लहकती ज्वाला की भांति कर्णकुहरों से होकर तपस्वी के भीतर पिघलता हुआ उतरने लगा। ऊर्ध्वबाहु को इस पर क्रोध हो आया। मुझसे बिना मेरी अनुमति प्रवेश करने वाली तरलाग्निवत् यह राग वस्तु क्या है? मेरे निकट कौन उसे उत्थित करने का साहस कर रहा है? क्या उसे जीवन की कांक्षा नहीं है? कौन इस प्रकार मेरे शाप में भस्म होने को यहां आ पहुंचा है? यह धारकर क्रुद्ध भाव से तपस्वी ऊर्ध्वबाहु ने अपने नेत्र खोले।

देखा, चिवुक पर तर्जनी रखे एक रूपसी मानो नृत्य के बीच में सहसा अवसन्न होकर उनकी ओर कौतुक से देख रही है। उसी समय उनके भीतर गहरे में कोई फूलों की चोट दे गया। वृक्ष की ओट में पुष्पधनु का सन्धान किये पंचशर अवसर देखते ही थे। क्षणभर अप्सरा उनकी ओर मानो देखती रही, फिर मुस्कराहट बिखेरती यौवन-भार लिये नाना भंगिमा में शरीर को वक्र करती, नूपुरों को क्वणित करती हुई उन्हीं के निकट आने लगी। आते-आते मानो श्वास-स्पर्श तक पहुंचकर वह एक साथ त्वरित गति से फिरकी लेकर नृत्य करती हुई पीछे लौट उठी। उस समय उसका परिधान वायु में लहरें ले रहा था और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

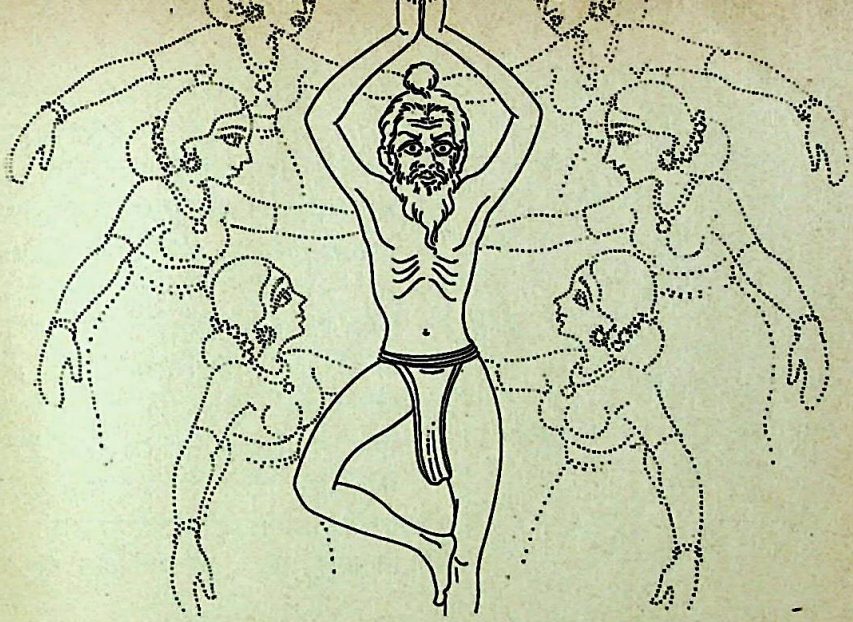

उसके अंग-प्रत्यंग क्षण-क्षण झलककर ओझल हो रहे थे। वे पल के सूक्ष्म भाग तक आंखों में झाई देकर तत्काल आपस में ऐसे खो जाते थे कि दक्षिण-वाम का अन्तर भी नहीं रह जाता था। जैसे भागते हुए झीने बादलों से दीख-दीखकर भी चन्द्रमुख न दीखे, पर चन्द्रप्रभा और भी मोहक हो जाये। ऊर्ध्वबाहु ने भृकुटी में वक्र डालकर इस दृश्य पर निगाह खोली। मानो कुछ उनकी चेतना में झलमली देता हुआ घूम गया। दृष्टि उनकी खुली ही रह गयी। भृकुटी का वक्र भी जाता रहा। गात में सिहरन हो आयी। उसी समय हठात् कुछ स्मरण करके उन्होंने आंखों को बन्द कर लिया और ध्यान को मूर्धा की ओर खींचना चाहा। पर पलक नृत्य करती हुई देवांगना को मन में पहुंचाकर मानो उस पर कपाट की भांति ही बन्द हुए और ध्यान उन्हें मुहुः मुहुः वलयमान उस अस्पष्ट ज्योति ज्वाला के चहुं ओर परिक्रमा करता हुआ प्रतीत हुआ।

उस समय अपने द्वन्द्व के त्रास से ऊर्ध्वबाहु सन्तप्त हो आये। मानो शिरा-शिरा, स्वयं उनके ही प्रतिकूल सन्नद्ध हो पड़ी हो। उनका रक्त उनके ही आदेश के प्रति विद्रोही हो उठा हो। उनका अंकुश स्वयं उन्हीं पर उलटा लग रहा हो। वह कुछ न समझ सके कि अपने विवेक के प्रतिकूल अपने रक्त की विजय वे स्वयं ही चाहते हैं। वह पूछने लगे कि

(शेषांश पृष्ठ ६३ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

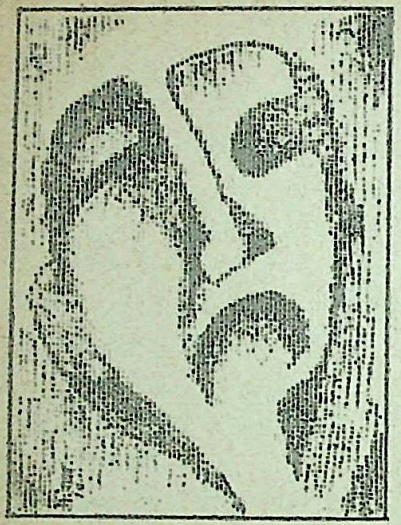

मैंने कहा कि अकेला, लेकिन यकायक मुझे लगा कि कमरे में मैं अकेला नहीं हूं। मैंने एक बार पलटकर चारों ओर देखा, कमरे में और कोई नहीं था। लेकिन एक बार फिर अकेला न होने की एक तीव्र अनुभूति मुझे हुई और यह भी लगा कि जिस भी दूसरी उपस्थिति का भान मुझे हो रहा है वह एक सौम्य, गंभीर और 'पहुंचा हुआ' व्यक्तित्व है; कोई साधारण, भटकता या टटोलता व्यक्तित्व नहीं। मैंने थोड़ी देर के लिए किताबें देखना छोड़कर अपने को इसी अनुभूति को सौंप दिया—जो भी अदृश्य व्यक्तित्व वह था

अज्ञेय की एक आत्मबोध-मूलक वार्ता

□

अस्पर्श

बहुत दिन हुए एक सज्जन से मिलने गया था, जिनसे पहले कोई परिचय नहीं था, केवल उनकी कुछ पुस्तकें पढ़ रखी थीं और उनके विचारों से प्रभावित था। उनके पढ़ने-लिखने के कमरे में मुझे बिठा दिया गया और कहा गया कि वह सज्जन थोड़ी ही देर में वहां आ जायेंगे। कमरे में अपने को अकेला पाकर मैं उनकी पुस्तकें देखने लगा क्योंकि कमरे की दो दीवारें तो पुस्तकों से लदी अल्मारियों से ढकी हुई थीं।

उसकी समीपता मुझे अच्छी लग रही थी और ऐसा जान पड़ रहा था कि उसके साथ एक शब्दहीन संभाषण भी हो रहा है। थोड़ी देर बाद ही वह सज्जन आ गये जिनसे मैं मिलने आया था और मेरा मौनालाप स्थगित हो गया। उस समय तो मुझे अपने आपसे यह पूछने का भी अवसर नहीं मिला कि जिस उपस्थिति का अनुभव मैंने किया था वह क्या उन्हीं सज्जन की थी जो फिर सदेह मेरे सामने प्रकट हुए। लेकिन बाहर आ जाने के बाद प्रत्यवलो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कन करते हुए मैंने यही जाना कि वह धीर, गंभीर छाप उन्हीं के व्यक्तित्व की थी—उनकी अनुपस्थिति में भी उनके कमरे पर उनके लंबे आवास की छाप एक जीवंत अस्तित्व पा लेती थी।

ऐसा होता है। हर किसी के कमरे में या हर किसी को ऐसा बोध नहीं होता होगा—लेकिन हर किसी का व्यक्तित्व ही इतना समृद्ध कहां होता है कि जड़ वस्तुओं पर भी अपनी एक प्राणवान छाप छोड़ता चले। कुछ ही लोग ऐसे हो सकते हैं। हां, कुछ स्थल ऐसे ज़रूर हो सकते हैं जहां ऐसी अदृश्य प्राणवान् सत्ता की मौजूदगी का अनुभव बहुत से लोगों को हो। उदाहरण के लिए मंदिरों और पुराने गिरजाघरों में अक्सर ऐसा होता है। मैं कभी-कभी सोचता था कि इस अनुभूति के मूल में शायद यह बात है कि ये भगवान् के घर माने जाते हैं। लेकिन ऐसे स्थलों पर नास्तिकों को भी तो किसी अशरीरी सत्ता की उपस्थिति का अनुभव होता है : नहीं कहा जा सकता कि वह ईश्वरीय सत्ता ही है और न ऐसा ही होता है कि उसका अनुभव करने वालों में कोई आध्यात्मिक बोध या धार्मिक आवेश जाग उठता हो। यही मानना ठीक जान पड़ता है कि यह अशरीरी सत्ता उन सैकड़ों, हज़ारों श्रद्धावान् लोगों की श्रद्धा की ही छाप होती है, जो वहां से गुज़र चुके होते हैं। वहां से गुज़रने वाले सभी तो श्रद्धावान् नहीं होते और कुछ का मनोभाव निश्चय ही अवज्ञा अथवा विडम्बन का भी होता होगा—क्या ये भी अपनी छाप छोड़ जाते होंगे ?

तब क्या वहां जो अनुभव होता है वह भी ऐसा ही मिश्रित बोध होता है—क्या उस मौनालाप में संवादी स्वरों के साथ कुछ विवादी स्वर भी पुकार उठते हैं ? बात शायद केवल अनमिल स्वरों की नहीं है; उन स्वरों के पीछे संचित प्राणवत्ता की भी है। मंदिर जैसे पवित्र स्थलों में आने वाले अधिसंख्य लोग श्रद्धा से ही आते हैं, जो अपनी श्रद्धा लेकर नहीं आते वे परिवार-परिजनों की श्रद्धा का संस्कार लेकर आते हैं। इस प्रकार श्रद्धा का और पवित्रता के बोध का भाव लगातार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

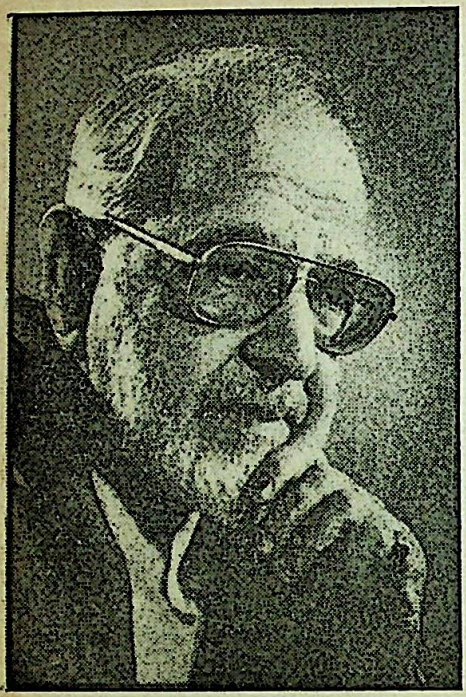

श्री सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय

सघनतर होता जाता है और जो भी छाप ऐसे स्थलों पर छूट जाती होगी वह तो वहां आने वाले लोगों की सघनतम मानसिक, आध्यात्मिक स्थिति की ही छाप होती होगी। अशरीरी छाप तो मनःशक्ति अथवा आत्म-शक्ति की ही हो सकती है। शरीर तो सब चले ही जाते हैं।

वैज्ञानिक संस्कार के लोग यह भी कह सकते हैं कि जो छाप छूट जाती है या जिस उपस्थिति का अनुभव होता है वह किसी न किसी तरह का वैद्युतिक अथवा चुंबकीय कंपन है जो वायुमंडल में बना रह जाता है—अथवा उसका स्रोत भी है तो जड़ पदार्थ ही। ऐसा सोचने वाले अपने सोचने को भले ही इस आधार पर वैज्ञानिक मान लें, मुझे तो लगता है कि इस तरह का जड़वाद पुराने पड़ते हुए वैज्ञानिक संस्कार की जड़वादी कठहुज्जती ही है। क्योंकि इन्हीं वैज्ञानिकों के सिद्धांत के अनुसार मन, और अगर आत्मा है तो आत्मा, शरीर अर्थात् जड़ व्यक्तित्व की ही उपज हैं लेकिन फिर भी यह आग्रह तो कोई नहीं करता कि मन भी जड़ तत्त्व है। मस्तिष्क से मन को जोड़कर भी यह तो वे मानते हैं कि उस की मन से अलग संरचना है, कि वह मस्तिष्क और मस्तिष्कधारी शरीर की पहुंच से परे भी क्रियाशील होता है। मन की शक्ति अगर केवल वैद्युतिक अथवा चुम्बकीय शक्ति है तो भी वह किस माध्यम में से गुज़रकर प्रभाव डालती है? एक तरफ़ तो इस और ऐसे प्रश्नों का कोई जवाब वैज्ञानिक के पास नहीं है; दूसरी तरफ़ वह किसी दूसरे के दिये हुए जवाब या अनुमान को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। यह जड़वादी दुराग्रह नहीं तो क्या है?

यों मुझे इस बात की अधिक चिंता नहीं है कि यह जो अशरीरी उपस्थिति का बोध होता है इसका वैज्ञानिक समाधान क्या है। मेरे लिए तो उस अनुभूति का ही अधिक महत्त्व है। मैं जानता हूं कि कई बार दूसरों के अध्ययन-कक्ष में बैठकर काम करना चाहने पर मुझे ऐसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।

उपस्थिति का बोध हुआ है जो असंवादी है और जो मेरी कल्पना अथवा विचार के प्रवाह में बाधा देती है। और कभी-कभी उतने ही 'पराये' कमरों में इससे ठीक उलटा अनुभव हुआ है—लगता है कि मैं अपनों की अदृश्य उपस्थिति से घिरा हूं। ये अदृश्य अपने चाहे व्यक्तित्व हों, चाहे विचार, कल्पनाएं हों अथवा आकांक्षाएं, जिज्ञासाएं हों अथवा संकल्प ... इस अनुभव का रहस्य क्या है? वैज्ञानिक के आजकल चालू मुहावरे में कह दिया जाता है कि इस स्थल के 'वायब्रेशन' अनुकूल हैं अथवा प्रतिकूल हैं, और मान लिया जाता है कि वैज्ञानिक शब्दावली से एक शब्द उठा लेने से ही समस्या हल हो गयी। जब कि वास्तव में हुआ केवल इतना कि अनुभव की चुनौती को आपने एक वैज्ञानिक जान पड़ने वाले शब्द के बोझ तले दबा दिया। 'वायब्रेशन' भी तो शून्य में नहीं होते और अगर कंपन पैदा करने वाले मूल कारण अथवा निमित्त की अनुपस्थिति में भी होते रहते हैं तो भी उन्हें एक माध्यम तो चाहिये। सिद्धांततः यह तो माना जा सकता है कि कमरे में जलायी गयी दियासलाई के बुझ जाने के बाद भी दिनों, महीनों, बरसों तक उसका प्रकाश उसी कमरे में कांपता बना रहता है और उसी तरह दूसरे उद्वेलन और 'वायब्रेशन' भी कारण की अनुपस्थिति में भी बने रहते होंगे, युग-युगांत तक बने रहते होंगे। लेकिन यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म उद्वेलन किस माध्यम में होता है? और फिर अगर हमारे शरीर तंतु या शरीर पर आधारित मनस्तंतु या किसी भी तरह के संग्राहक तंतु इतने सूक्ष्म प्रकंपनों को पहचान सकते हैं और उनमें भेद कर सकते हैं, तो क्या यह फिर हमारी धारणाओं के लिए नयी चुनौती नहीं है? क्या हम जिसे शरीर कहते हैं वही केवल जड़ तक सीमित नहीं है और एक सनातन चिदंश को अपने में लिये हुए है? या फिर जड़ और चेतन का भेद भी केवल तदर्थ और सुविधामूलक है, कोई पक्का आधार नहीं रखता? कदाचित् यही मानना ठीक है—कम से कम किसी प्रामाणिक खंडन की अनुपस्थिति में यही अनुमान संगत है। जैसे प्रकाश में सात रंग होते हैं जिन्हें हम अलग-अलग नहीं देखते और सात रंगों के ऊपर और नीचे भी ऊर्जा की अदृश्य लहरें होती हैं, जो इधर रेडियो किरणों के रूप में और उधर ताप किरणों के रूप में प्रकट होती हैं। उसी तरह ऊर्जा के विशद प्रस्तार में एक छोर पर जड़ और दूसरे पर चित् तत्त्व होता है। वैज्ञानिक को तो आज यह मानने में कम कठिनाई होनी चाहिये। उसका ज्ञान आज उस देहरी पर है जहां ऊर्जा और पदार्थ का भेद अर्थहीन हो जाता है—दोनों लगातार एक-दूसरे में बदलते रहते हैं। अगर वैज्ञानिक को यह कल्पना करने में कोई कठिनाई नहीं होती कि प्रकाश के भी

(शेषांश पृष्ठ ५४ पर)

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय,
सारनाथ, वाराणसी।
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

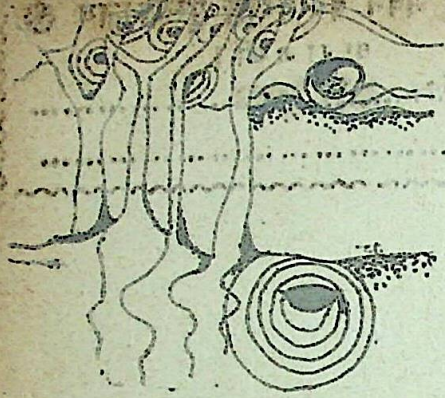

चित्र : चरन शर्मा

अज्ञेय की दो कविताएं

वासुदेव प्याला

यह वासुदेव-प्याला
भरते ही कृष्ण का चरण-स्पर्श पा
रीत जाता है
और फिर भरता है
अनवरत:
इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

आश्चर्य
यह है कि यह बाढ़
जिसके चरण छूती है
वह नहीं है डलिया में सोया
बालकृष्ण : वह छलिया
वह सांवलिया है जो
कालिय नाग के मणिपूर मस्तक पर
नाच रहा है।
उस नर्तमान चरण को छूता है जल
और उतर जाता है :
पानी उतर जाता है....

ओ रह: कृष्ण ! तुम क्या
नाग के नथैया
और कालिन्दी के कन्हैया हो
या कि नाग के ही बचैया—
कि यह बाढ़ भी क्या इसी में
धन्य है
कि नाग ही तुम्हारा शरण्य है ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वर-शर

तुम्हारे स्वर की गूंज
भरे रहे आकाश
स्वचेतन :
पर मेरा मन –
वह पहले ही है फ़कीर
अनिकेतन ।

खग होकर भी
वह नीरव
तिरता है नभ में
गूंज-भरे;
वर दो–ऐसा कुछ तुम कर दो–
वह यों–स्वर-शर से बिंधा
सदा विचरे !

□

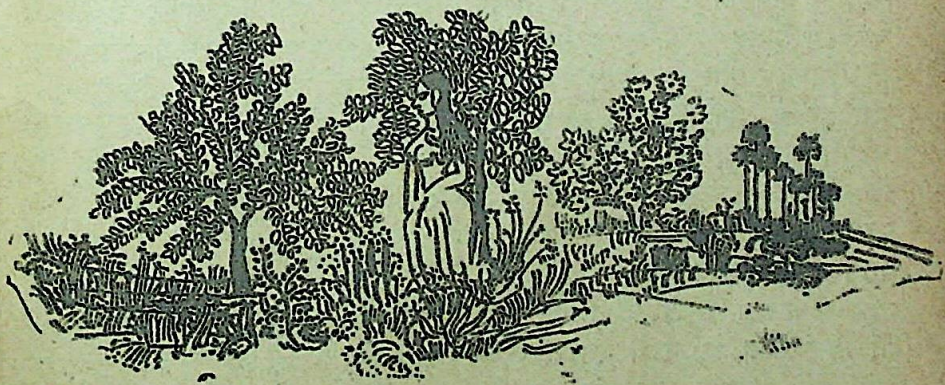

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ५१ का शेषांश)

अणु होते हैं और प्रकाशाणु पदार्थ तो है लेकिन भारहीन पदार्थ है तो फिर जड़ और चेतन के बीच ही निरंतर रूप-विनियम की कल्पना उसे क्यों कष्टकर जान पड़ती है ?

अशरीरी सत्ताओं की उपस्थिति और उसके अनुभव की बात थी। मैं तो कभी-कभी स्वयं अपने अध्ययन-कक्ष में आ कर ऐसी उपस्थित का अनुभव करता हूं, कोई-कोई दूसरे भी कभी-कभी करते हैं। अब काम तो वहां मैं ही करता हूं, अगर किसी की छाप वहां संचित हो गयी है या किसी के 'वायब्रेशन' उसकी अनुपस्थिति में भी वहां कम्पायमान रहते हैं तो मेरे ही हो सकते हैं। मेरी ही छुई हुई, पढ़ी हुई, मेरे ही स्नेह में पगी हुई पुस्तकें, पांडुलिपियां और कापियां, कलम और पेंसिलें वहां पर हैं। क्या अपने अध्ययन-कक्ष में आकर मैं अपनी ही पहले से वर्तमान उपस्थिति का अनुभव करता हूं ? क्या जब मैं वहां से चला जाता हूं और फिर लौटकर आता हूं तो इस अंतराल में वहां भी बना रहता हूं ? यों तो तब फिर यह भी पूछ सकता हूं कि जो वहां बना रह गया वही वास्तव में था या कि जो बाहर जाकर लौटा है वह ? लेकिन इस बारीकी के सवाल में नहीं पड़ूंगा। न मैं द्विभाजित व्यक्तित्व की बात उठाऊंगा, न मैं इस संदेह के लिए कोई मौक़ा छोड़ना चाहता हूं कि मैं पागल हूं। मैं पूरी तरह उस व्यक्तित्व के साथ एकात्म हूं, उस शरीर से बंधा हूं जो इस अध्ययन-कक्ष से जाता है और फिर उसमें लौटता है। दूसरे शब्दों में मैं उस व्यक्तित्व, उस शरीर और उस अनुभव-यंत्र के साथ पूरी तरह एक हूं, जो इस कक्ष में आकर एक स्वतंत्र उपस्थिति का अनुभव करता है, एक अशरीरी प्राणवान् सत्ता का संस्पर्श पाता है।

सवाल यह है कि यह उपस्थिति क्या है, किस पर आधारित है और किस माध्यम से अपना अनुभव करती है। वैसे यह तो मुझे भी दीखने लगा है कि इस सारे तर्क-वितर्क में कहीं पोल है। क्योंकि अशरीरी सत्ता की उपस्थिति एक बार मान लें तो फिर यही मानना क्यों जरूरी रहता है कि मेरे अध्ययन-कक्ष में वह सत्ता मेरी ही होनी चाहिये ? जब अध्ययन-कक्ष है तो जिन भी महान् साहित्यकारों की रचनाएं मैंने पढ़ी हैं, जिनके साहित्य से और जिनकी रचनाओं से प्रभावित हुआ हूं, जिनकी साधना और निष्ठा और जिज्ञासा का मैं सहभागी हुआ हूं या होना चाहता रहा हूं, वे सब भी क्यों नहीं मेरे अध्ययन-कक्ष में उपस्थिति होंगे ? भले ही मेरे माध्यम से वे सब वहां आते हों, लेकिन जब मैं चाहता हूं कि ये सारे प्रभाव मुझमें जियें और मेरे सर्जनात्मक आयोजनों में ऊर्जा भरें तब मैं ही तो लगातार उनका आवाहन करता हूं। तब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अगर उन प्राणवान् मनीषियों की अमर सत्ता आहूत होकर मेरे अध्ययन-कक्ष के वातावरण को आविष्ट कर जाती है तो क्या अचम्भा ? और यह बात केवल मेरे अध्ययन-कक्ष की नहीं है। कोई भी निष्ठावान् व्यक्ति जहां लगातार काम करता है, वहां केवल उसी की नहीं, उस के माध्यम से क्रियाशील होने वाली सभी सत्ताओं का प्रभाव अनुभवगम्य होगा। मैंने आरंभ में जिन सज्जन की बात कही है उनके कमरे में मुझे जो अनुभव हुआ था वह भी ज़रूरी नहीं है कि उन्हीं के व्यक्तित्व तक सीमित रहा हो। वह तो दार्शनिक थे। क्या अचम्भा अगर उनके कमरे में जिस प्रभाव का संस्पर्श मुझे मिला उसमें हेराक्लाइटस और प्लेटो, एपीक्यूरस और मार्कस ऑरेलियस, कांट और लाइबनित्ज़ की भी आध्यात्मिक ऊर्जा क्रियाशील रही हो... मैं अपने अध्ययन-कक्ष में बैठकर काम करता हूं तो कभी-कभी अनुभव करता हूं कि मैं केवल पुस्तकों से नहीं घिरा हूं बल्कि बहुत से जीवंत प्रभावों से घिरा हूं। क्या वे केवल मेरे व्यक्तित्व की उपज हैं ? बल्कि व्यक्तित्व ही हम किसे कहते हैं—वह भी तो असंख्य प्रभावों की उपज होता है ..... रहस्यवादी कवि कह गया—'मैं तो केवल बांस की एक पोर हूं, उसके भीतर तेरे प्राण बहते हैं और गूंजते हैं।' रहस्यवादी कवि को यह स्पष्ट करने का अवसर नहीं था कि इस साक्षात्कार का न तो 'मैं' इकहरा है और न 'तू'। दोनों ही समग्र संरचनाएं हैं, लेकिन उनमें परस्पर-भेदक सत्ता ही वास्तव में एक युगनद्ध इकाई है। शायद हम जब-जब अध्ययन-कक्षों में, मंदिरों, गिरजाघरों में, अशरीरी सत्ता का अनुभव करते हैं तब युगनद्ध होते हैं, या यों कहूं कि सनातन युगनद्ध की चेतना से आविष्ट होते हैं।

—कैवेंटर्स ईस्ट, कैवेंटर लेन, नयी दिल्ली-२१

□

(पृष्ठ ४३ का शेषांश)

साथ उसकी तुलना करने पर, मुझे वह कुछ बहुत जीवंत वस्तु नहीं जान पड़ा। वस्तुओं के संबंध में अपनी धारणा की रचना हमें इस आधार पर करनी है कि इन दोनों सृष्टियों के बीच का संबंध क्या है, और ये वस्तुएं इस संबंध को कितना अधिक सरल या मुश्किल कर देती हैं। यह हो जाने के बाद, हमें प्रभु के निकट ले जानेवाली या प्रभु से दूर ले जानेवाली वस्तुओं के संबंध में हमारी धारणा, एकदम ही भिन्न प्रकार की हो जायेगी। लोगों के अतिमानसिक रूपांतर में कौन-सी वस्तुएं सहायक और कौन-सी बाधक होती हैं इसके बारे में भी हमारी जो नैतिक धारणाएं हैं, वे सर्वथा निराधार हैं। यह सब देखकर मुझे लगा, कि सचमुच ही हम सबकी वर्तमान स्थिति अत्यंत ही हास्यास्पद है।

[श्रीअरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी के सौजन्य से]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डॉ. विद्यानिवास मिश्र का आत्म-मंथनात्मक लेख

जीवन अपनी देहरी पर

□

जीवन को प्यार के साथ वरण करने वाले आदमी को मृत्यु पता नहीं क्यों सबसे ज्यादा लुभाने की कोशिश करती है। अर्नेस्ट हेमिंग्वे जैसा लेखक जो युद्ध को इसलिए नकारता है कि वह जीवन का घनघोर विनाश है, आत्महत्या के लिए प्रेरित होता है। ज़िंदगी के रंगों की पहचान करने-कराने वाला वैन गो जैसा चित्रकार छुरे से अपनी गर्दन पर वार करने को ललचता है। जीवन भर कर्म करते रहने के दर्शन के व्याख्याता कुमारिल प्रयाग में नदी में डूबकर मरने में जीवन की निष्कृति पाते हैं। इनसे लगता यही है कि मृत्यु उसी के पीछे पड़ती है, जो जीने का रस लेता है, दूसरों को रस देता है या शायद मृत्यु का प्रलोभन जीवन की परीक्षा है। ऐसी परीक्षा से गुज़रते रहना रचनाकार की विशेष नियति है, क्योंकि हर रचना मृत्यु होती है, पर पूरी मृत्यु नहीं होती, रचनाकार कुछ न कुछ अवशिष्ट रह जाता है, बल्कि यों कहें, जो अवशिष्ट रह जाता है, वह रचनाकार नहीं है, वह बुरी तरह टूटा हुआ व्यक्ति है। जितनी बड़ी रचना करके आदमी बचता है उतना ही अधिक टूटकर बाहर निकलता है। रचनाकार के रूप में वह ध्वस्त हो जाता है।

तुलसीदास का हनुमान बाहुक कोई पढ़े तो पता चलेगा कि विनयपत्रिका की रचना करने के बाद कवि कितना शीर्ण हुआ है। कवि रामचरितमानस के बाद टूटा तो बहुत दिनों तक उसने अपने को जोड़ा जाने कितनी व्यथाओं से, विनतियों से और तब विनयपत्रिका लिखी और विनयपत्रिका लिखी नहीं कि गोसाईंजी एकदम ध्वस्त हो गये। बाहु में पीड़ा होती है और उनको लगता है—

पांय पीर पेट पीर बांह पीर मुंह पीर
जरजर सकल सरीर पीर मई है।
देव भूत पितर काम खल काल ग्रह
मोहि पर दवाई भयानक सी दई है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हौं तो बिन मोल के बिकानो बलिबारे ही तें
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के किंकर विकल बूड़े गोखुरनि
हाय राम राम ऐसी हाल कहूं भई है।

—सारा शरीर पीड़ामय हो गया है, लगता है, देव, भूत, पितर, दुष्कर्म, काल और दुष्टग्रह सभी एक हो गये हैं कि इस आदमी को मारो, यह आदमी जो बचपन से अपने को राम के हाथ विना मोल विका मानता आया है और अपने भाग्य में राम राम का लेख टंका मानकर इतना निश्चित रहा है। समुद्र पीने वाले अगस्त्य के सेवक को गाय की खुर की छाप से बने गड्ढे में डुबाकर मारो।

यह तो बहुत बड़ा गरूर होगा कि तुलसी का उद्धरण देकर अपनी बात शुरू करूं और अपने को उस पंक्ति में बैठाने की कोशिश करूं, पर भूडोल आता है तो केवल अटारियां ही नहीं ढहतीं, छोटी झोंपड़ी भी ध्वस्त हो जाती है। झोंपड़ी का अटारी से कोई मुकाबला नहीं, लेकिन ढहते समय दोनों दयनीय हो जाते हैं। अटारी के ढहने का धमाका ज़ोरदार होता है, झोंपड़ी का गिरना कोई नहीं देख पाता। मैं अपने को झोंपड़ी की स्थिति में पाता हूं तो तुलसी का स्मरण करके कुछ इतराना चाहता हूं।

एक राजा साहब का हाथी मरा, उनके पड़ोस में एक गरीब आदमी रहता था, सोचा राजा का हाथी बड़ा शानदार था, शोक प्रकट कर आयें, गया—'सरकार, क्या कीजिएगा, काली वस्तु न आपको सहती है न मुझे। मेरी काली कुतिया थी, कल मर गयी।' काली चीज़ राजा साहब को या गरीब पड़ोसी को ही नहीं किसी रचनाकार को नहीं सहती। अहंकार काला होता है, रचनाकार इस अहंकार को पालता है, इसे बड़ा लाड़ देता है बड़ा प्यार देता है, इसे बिगाड़ता है। एक दिन यकायक उसका अहंकार रचना की नदी पार करते समय दलदल में धंस जाता है, उस दलदल में तड़पतड़पकर वह मरता है। रचनाकार उसे बचाना चाहता है, पर बचा नहीं पाता। उसमें जाने के बाद वह अनुभव करता है मैं अहंकार के बल पर ही तो चल रहा था, वह बल टूट गया।

मेरी काली कुतिया थी, बड़ी वफ़ादार और ढीठ। वह काफी इतराने लगी थी। छाया की तरह पीछे-पीछे लगी रहती थी और इधर तो आगे जाकर राह दिखाने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगी थी। मैं भी सोचता था, कितना भी भाग्यहीन क्यों न होऊं, स्वाभिमान तो है, जो बराबर साथ देता है जो ऐसे रास्ते पर नहीं जाने देता जहां मुझे नीचा देखना पड़े, उसे पहले से आभास रहता है। इस स्वाभिमान में एक आत्मविश्वास बैठा हुआ है कि तुम्हारा स्व छोटा नहीं, बड़ा है, वह अनचीन्हा नहीं है, चिन्हारी ने उसे बड़ा बना दिया है। और यह अहंकार की कुतिया इतनी प्रिय, इतनी आत्मीय, एक दिन यकायक एक कगार पर खड़ी थी, उसके अरराकर टूटते ही जाने कहां वह बिला गयी, किस दलदल में फंस गयी!

पर मैंने विनयपत्रिका नहीं लिखी थी। कुछ भी लिखने लायक नहीं लिखा था। बस लिखूं यह संकल्प ले रहा था। अभिमान ऐसा कि शंकराचार्य पर लिखना चाह रहा था। शंकर के तत्वमसि के अनुभव को छूना चाहता था, उनकी जन्मभूमि कालडि गया, उनको नित्य नहलाने वाली नदी पेरियार को हाथ से छुआ। हाथ में उस नदी को लिया, ओठों से उसका आचमन किया, आंखें शीतल कीं, सिर धोया। ओंकारेश्वर गया, शंकर ने जहां दीक्षा ली थी। नर्मदा ओंकार का आकार ग्रहण करती है और उसकी दो धाराओं के बीच में एक टीला है, उसी पर ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग का मन्दिर है, उसमें जाने कैसे नर्मदा का पानी बराबर जाता रहता है। शिव को बोरे रहता है। ओंकारेश्वर गया था तो कार्तिक की पूनो थी, सहालग के दिन शुरू हो गये थे। नाव से नर्मदा पार की, देखा इधर का रिवाज है कि जिस कन्या का विवाह होने को होता है, उसे उसके परिवार की स्त्रियां सजा-बजाकर ओंकारेश्वर के स्थान पर ले जाती हैं, गाती बजाती हुई। मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था तो कुछ टोलियां उतर रही थीं, कुछ चढ़ रही थीं, गीत के बोल जैसे एक आवर्त्त बनकर घूम रहे थे। कतकी पूनो की उजास, मालवा के कंठ की मिठास और सहज गांव की शोभा के शिवार्पित होने का हुलास—इन सबमें लगता था कि शंकर का तत्वमसि ही रूपायित और शब्दायित हो रहा हो। यह सब तुम हो और तुम हो तो मैं नहीं है। मैं सहज अनुभव की इतनी ऊंची सीढ़ियों पर चढ़ नहीं पाता, नीचे ही ठिठक जाता है, उसके पास, कहां ऐसा कंठ, कहां ऐसी शोभा और कहां ऐसी उजास!

बहुत अंतराल के बाद बदरीनाथ गया। सुना था शंकर ने नरनारायण की मूर्ति का उद्धार किया था। उन्होंने वहीं व्यास गुफा में बैठकर ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर भाष्य लिखा था। और तीन ही दिनों में लगा कि शंकर यहीं अद्वैत वेदांत को भाषा दे सकते थे, और केवल शंकर ही काशी के चाण्डाल के रूपधारी विश्वनाथ से हारे हुए शंकर इस भू वैकुंठ में नर और नारायण का जोड़ बैठा सकते थे। नर के भीतर से नारायण को और नारायण की आंखों में से नर को झांकते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देख सकते थे। शंकर ने सुदूर दक्षिण से सुदूर उत्तर तक एक महासत्ता का प्रवाह देखा था, हर एक व्यक्ति में वह गूंगा हो तो क्या, मुखर हो तो क्या, एक चैतन्य की पश्यंती भाषा की प्रतिध्वनि सुनी थी, मिट्टी के कण-कण को उन्होंने सूंघा था, श्रीपति के चरणकमलों के पराग की गंध उन्होंने पायी थी, उन्होंने प्राण के स्पंदन में, पवन की हिलोर में, झंझा की झकोर में एक ही स्पर्श पाया था—न ठंडा न गरम, न रूखा न मुलायम, बस ऐसा कि रोम-रोम बज उठे। शंकर ने कितनी नदियों का, कितने घाटों का पानी पिया था, इतना पिया था कि वे स्वयं उत्तर-गामिनी गंगा हो गये, पूर्व-गामिनी नर्मदा हो गये, पश्चिम-गामिनी कावेरी हो गये, वे तीर्थों के तीर्थ हो गये। हिंदुस्तान के चार धाम शंकर की दी हुई प्रतिष्ठा के कारण इतने बड़े धाम हैं, उनकी परिक्रमा आदमी के लिए मुक्ति है, मुक्ति छोटे देश से, प्रदेश से, अधिष्ठान से। हर पानी में उन्होंने अव्यक्त परा पाक् की प्रसुप्त रसवंती का रस चखा था।

बदरीनारायण की यात्रा से लौटा, मैंने अभिमानवश परीक्षा लेनी चाही कि शंकर को मैं अब रच पाऊंगा या नहीं और लगा कि मैं जहां बड़े उल्लास के साथ विश्वास के साथ खड़ा हूं, वह कगार ढह गया और औचक ही मेरी रचना का अभिमान उस गर्त में गिर पड़ा, उसके साथ ही चिपका हुआ शंकर के तीर्थों के यात्री के अनुभव का अभिमान भी गिर पड़ा। जाने कहां गया तत्वमसि, जाने कहां गया 'जामें द्वै न समाहि'। लगा यह सब झूठ है, संसार को प्रपंच कहना, एक ही सत्ता का अस्तित्व देखना, एक ही भाव के लिए सबको अभिमुख और आकुल देखना सब भ्रमजाल है। मेरा तीर्थयात्री भाव या कोई भाव सब झूठ है। भाव कहीं है ही नहीं, सच है केवल टिकाव, सुरक्षा के छोटे-छोटे दुर्ग—एक दुर्ग दूसरे दुर्ग से निरंतर भयभीत और सच है हर दुर्ग के चारों ओर की परिखा और परिखा को घेरे हुए कंटीले झाड़ों की बाड़। आदमी भी उतना ही सच है, जितना इनसे घिरा हुआ है।

फिर लौट के आता हूं मूल प्रश्न पर, जीना किस लिए ? संशय के लिए, द्वैत के लिए, छोटे-छोटे वंचना के दुर्गों के लिए, चौड़ी खाई के लिए, कांटेदार बाड़ों के लिए ? महज़ जीने के लिए जीना बड़ा वैसा लगता है और मरना अपने लिए, अपनी दुराशा के लिए, अपनी यंत्रणा के लिए और भी वैसा लगता है। भवभूति ने जनक के शोक को व्यक्त करते हुए कहा था कि जो मेरी संतान का अपमान हुआ, उसको निर्वासित करने का भीषण अपराध हुआ, उससे ऐसा घाव है जो बराबर नया होता रहता है, जैसे कोई आरा से मर्मस्थल को धीरे-धीरे चीर रहा हो। मुझे भी कुछ वैसा ही लगता है, बल्कि लगता है हज़ार-हज़ार आरे लगे हुए हों, हज़ार जगह निरंतर चीरा जा रहा हूं।

समझ नहीं पा रहा हूं कि कौन-सा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टुकड़ा है जहां मैं बचा हुआ हूं या जहां मेरी संभावना बची हुई है।

शंकर पर पुस्तक लिखने के लिए कितना कुछ कटना है, छंटना है, समझ में नहीं आता; क्योंकि पुस्तक प्रकाशक के तगादे के बावजूद चल नहीं रही है, अटकी हुई है।

ममता और अहंता के विनाश के प्रतिपादन करने वाले को मां की ममता के वशीभूत क्यों होना पड़ा और मंडन की पत्नी भारती के प्रश्न का उत्तर देने के लिए उन्हें अमरुक होना क्यों पड़ा? क्या अद्वैत एक अधूरा सिद्धांत है? ममता न होती तो मां की अंत्येष्टि वे क्यों करते और अहंता न होती तो पर-काय-प्रवेश करके एक प्रेमिक राजा क्यों बनते? ऐसे शंकर को मेरे जैसा आदमी कैसे रचे, जिसकी ममता और अहंता के ज़र्रे-ज़र्रे हो गये हों तो भी वे सभी के अपने-अपने तार-तार जीवन को नचा रहे हों।

चित्र : जयचंद्र हेडाऊ

मैंने एक रचना और अधूरी रख छोड़ी है, 'विह्वल पल आखिरी', श्रीकृष्ण के जीवन की अंतिम संध्या का एक संश्लिष्ट चित्र। उस चित्र में इतने रंग भरने हैं कि समझ में नहीं आता कैसे उनका अनुपात रखूं। और श्रीकृष्ण उस समय विह्वल हैं भी कि नहीं, यह भी निर्णय नहीं ले पाया। शीर्षक ही दुविधा में है। पर मुझे यह लगता है विह्वल न होते तो अपने प्रिय मित्र उद्धव को पहले ही विदा न दे देते, न अपने सारथी को ज़बरन द्वारका भेज देते, न वधिक जरा को ही तत्काल पुण्यलोक देकर अपने पास से दूर भेज देते। कहीं न कहीं ऐसी बेकली थी, जिसका कोई साक्षी नहीं रहने देना चाहते थे। कहीं न कहीं घोर आंगिरस की बात चुभ रही थी। 'प्राणसंशितमसि', ऐसा सोचो कि तुम्हारे प्राण चीरे जा रहे हैं, तब जीवन का रहस्य समझोगे, पूरे जीवन को यज्ञ समझो, अमावस्या में जैसे चंद्रमा सूर्य में समा जाता है, चंद्रमा मरकर अमृत कला को प्राप्त करता है, वैसे ही जीवन को खाली करो, तभी सही तौर पर भरने का उपक्रम होगा।

जीवन को आनुष्ठानिक मृत्यु के रूप में साधो, जीवन के प्रत्येक खंड को सोम की पेराई के रूप में देखो, पहली पेराई होती है बड़े तड़के, तब पत्ती हरी होती है रस एकदम ताज़ा, तब उसमें मादन होता भी है तो तत्काल उतर जाता है। दूसरी पेराई होती है मध्याह्न में, पत्ती गरमा जाती है। रस कुछ कम हो जाता है, पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्र : डॉ. विष्णु भटनागर

मादन भाव तीव्र हो जाता है। तीसरी पेराई होती है शाम को, पत्ती एकदम सूख जाती है, रस बूंद-बूंद रह जाता है, पर तलछट का नशा बड़ा गहरा होता है। जीवन को दूसरों के आस्वादन के लिए ऐसे ही पेरते रहो और मृत्यु आये तो मानो अनुष्ठान पूरा हुआ, अब यज्ञ-समाप्ति (अवभृथ) का स्नान करना है। एक-एक बूंद निचोड़ ली गयी है, पत्तियों को फिर से धोकर गारना बच रहा है।

श्रीकृष्ण निश्चय ही अपने गुरु के इस उपदेश और उसके अनुसार जिये गये जीवन की मीमांसा करते-करते विह्वल हुए होंगे। पूरी पेराई हुई कहां, पूरा रस निचुड़ा कहां, पत्तियां अब भी हरी हैं, इन्हें क्यों धोयें ? एक-एक गोपी ने श्रीकृष्ण का रस जितना लिया, जितना पिया उससे हज़ार गुना श्रीकृष्ण को रस दिया, पिलाया। पेराई तो गोपी की हो गयी, श्रीकृष्ण की हुई कहां ? और श्रीकृष्ण की पत्तियों में इतनी पत्तियां मिलीं कि कौन वाली सूखी, कौन वाली हरी रही, इसका निर्णय करना कठिन हो गया।

श्रीकृष्ण सोचते हैं, इतनी निर्ममता का अभ्यास मैंने किया, इतने रिश्ते मैंने तोड़े, पर क्या मैं निर्मम हो सका और सोचते हैं, इसी को लीला कहा जायेगा। फिर अटक जाता हूं, श्रीकृष्ण की बेधक हंसी अटका देती है। एक पेड़ की जड़ पर सिर टेके रक्तस्राव से एकदम पीले पड़ते हुए श्रीकृष्ण क्यों हंस रहे हैं। मेरे सर्वशक्तिशाली शरीर में मेरे चरण सबसे अधिक शक्तिशाली, इतने कि उनसे गंगा की धार फूट जाती है और वे इतने वेध्य कि मामूली-सा तीर लगता है, पांव का तलवा चिर जाता है।

(शेषांश पृष्ठ ६३ पर)

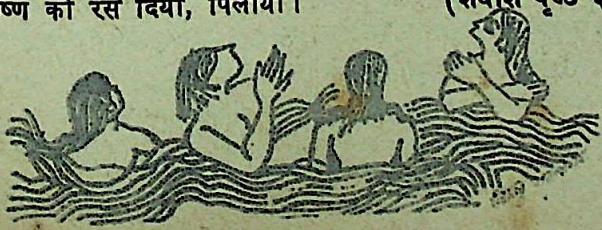

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ३५ का शेषांश)

षोमात्मक, प्राणापानात्मक, प्रक्रिया से यज्ञ का वितान होता है। वह वृक्ष वनस्पति से लेकर कीट मानव पर्यन्त है। यज्ञ विष्णु है। गायत्री छन्द उसका वाहन या गरुत्मा सुपर्ण है। गायत्री सुपर्ण के सोमाहरण अथवा प्राणापानन, अथवा गायत्री-सावित्री के व्यापार से ही यह शरीर यज्ञप्रवृत्त है। यह सुपर्णचिति कहलाती है। सुपर्ण पर ही यज्ञ रूपी विष्णु बैठता है। सैषा सुपर्ण-विद्या। यही गायत्री विद्या है। गायत्री विद्या से भूतविद्या कही जाती है। यह भूतात्मा शरीर अथवा यह भूपिंड जैसे सौर प्राण की प्राप्ति से स्व स्वरूप में स्थिर रहता है उसी की व्याख्या गायत्री विद्या है। प्रत्येक पिण्ड का जितना विज्ञानात्मक रहस्य है वह सब इसके अन्तर्गत है। किन्तु सबको संचालित करने वाली शक्ति प्राण-रूपी सुपर्ण है जिसके दो पक्ष अर्थात् प्राण और अपान इस भूत चिति को चलाते हैं 'अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानती व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥' प्राण और अपा की आन्तरिक रोचन या चिनगारी जीवन है। इस शरीर में जो महिष आप्य प्राण या वारुण प्राण या आपु प्राण है वह गायत्री रूप प्राणन से द्युलोक के सौर प्राण को प्राप्त करता है यदि शरीर में गायत्री छन्द न हो तो भूतात्मा मूर्च्छित हो जाय। गायत्री अमृत प्राण का आहरण कर रही है जिस हम सब जीवित हैं। वेदार्थ की समस्य हमारे लिए जीवन की भांति मूल्यवान है सृष्टि और जीवन दोनों की व्याख्या उसे होती है। हमारे लिए वह बुद्धि का कुतू हल नहीं है, बल्कि व्यानप्राण या हृदय प बल डालकर अर्थों के मन्थन करने का उनके साक्षात् ज्ञान करने की समस्या है।

□

प्रेम में अलगाव नहीं

दुर्गम पथ पर अपनी अंजुली फूलों से भरे भिक्षुणी बढ़ी चली जा रही थी। उसकी दृष्टि बचाकर अंजुली से एकाध पंखुरी जहां भी नीचे गिर जाती, धरती धन्य-धन्य हो जाती, पर्वत मुस्करा उठते। भिक्षुणी ने मौन खड़े एक भिक्षु के चरणों में वह अंजुली उंडे दी और अत्यंत श्रद्धा से नतमस्तक हो गयी। भिक्षु भिक्षुणी को अवाक् देखता रह गया और अचानक सहमकर बोला, 'यह क्या कर रही हो?'

भिक्षुणी का अकम्पित उत्तर था, 'मैंने भगवान बदल लिये हैं।'

'परंतु तुम मेरा रास्ता कैसे बदल सकती हो?' —भिक्षु उत्तेजित था।

'नहीं, भगवन्!' भिक्षुणी उसी स्थिर स्वर में बोली, 'मैं तो दोनों रास्ते एक कर रही हूं। प्रेम में अलगाव होता ही नहीं।'

—महीपाल

विजयमहल, डी. रोड, चर्चगेट, बंबई-२०

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ४७ का शेषांश)

क्या वह चाहते हैं कि रक्त उनके मस्तक में ऐसा चढ़ जाये कि फिर कुछ उन्हें रोकने के लिए ही न रहे ? पर वह अपने में कुछ भी अलग न पकड़ सके, कुछ भी उत्तर न पा सके। मुहूर्त्तभर तुमुल द्वन्द्व उनके भीतर मचता रहा। मानो उन्हीं के पाताल देश से क्रुद्ध प्रभंजन उठकर उन्हें झकझोरने लगा। उसके विस्फूर्जित आवेग में उनके संचित धारणा-संकल्प कहां टूट-फटकर रह गये हैं, मानो उन्हें कुछ पता नहीं चला।

इस प्रलयान्तक मुहूर्त के बाद उन्होंने आंख खोली। नृत्य शांत था। किन्तु एक नहीं, असंख्य, अनन्त अप्सराएं चतुर्दिक उनकी ओर देखती हुई मुस्करा रही थीं, मानो ऊर्ध्वबाहु की आज्ञा की ही प्रतीक्षा है! और....

तपस्वी की दृष्टि म स्पृहा जागृत हुई। उन्होंने आंखें मलीं और खोलीं। कहीं सब स्वप्न तो नहीं है। पर देखा अपरूप शोभाशालिनी अनंगलताएं उनकी ओर आ रही हैं–निकट आ रही हैं, निकट से और निकट आ रही हैं। इस रूप-लावण्य के सागर के लिए उनके रोम-रोम से आमन्त्रण स्फुरित होने लगा। मुख की चेष्टा बदल गयी और अनायास उनकी बांहें आगे को फैल गयीं। किन्तु बांहें फैली ही रह गयीं। कुछ उनमें न आया था। सब अनन्त विस्तृत दिशाओं की शून्यता में मिलकर पूरी तरह खो गया था।

ऊर्ध्वबाहु ने पाया, वहां बस वही हैं–व्यर्थ, खण्डित और एकाकी।

□

(पृष्ठ ६१ का शेषांश)

यदुकुल के मद का जो लौहखंड चूर्ण नहीं बना, वही तो श्रीकृष्ण को बींधने वाला तीर बना और श्रीकृष्ण इसी बात पर हंस पड़ते हैं। श्रीकृष्ण की हंसी के कारण यह रचना भी अधूरी पड़ी है।

और अब लगता है कि मैं जितना ही इन्हें पूरा करना चाहूंगा, उतना ही और खंडित होता जाऊंगा। बाणभट्ट की भांति यायावर हर रचनाकार की यही नियति है। रचना पूरी नहीं होती, व्यक्ति पूरा नहीं होता। बस पूरे होने की ख़ामख़याली में अधूरा और अधूरा होता जाता है। न पेराई ही पूरी होती है, न रस ही पूरा निचुड़ता है, न अवभृथ स्नान ही कोई आशा की संभावना का संकेत देता है।

कैसा विधाता है जो पेराई की यंत्रणा भी पूरी नहीं होने देता, कितनी बार यह कोल्हू चक्कर काटेगा, कब तक चक्कर काटेगा ? कुछ भी अंदाज़ नहीं लगता और बत्तीसवें वर्ष में जीवन लीला संवरण करने वाले शंकर एक सौ पचीसवें वर्ष में महा-प्रयाण करने वाले श्रीकृष्ण हंस रहे हैं, एक और हारा, एक और टूटा, संसार ने एक नया सावज मारा। उनकी हंसी की कल्पना मात्र से तिलमिला उठता हूं और जीवन हारा-थका धूलिधूसर ड्योढ़ी पर लौटा आता है। —पी-१ गोपाल कुंज,

बाग़ मुज़फ्फरखां, आगरा-२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

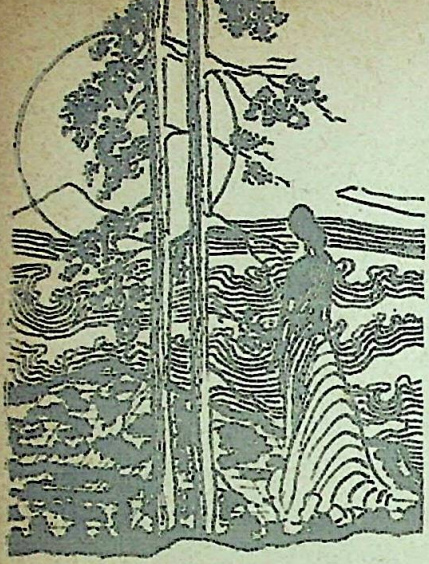

शारदीया

□

मदन मोहन तरुण

नील जैसा चंद्रमा आकाश में
खूब गहरी नीलिमा-सी छन रही है चांदनी चारों तरफ।
हवा, सर्राती हुई यों
शून्य के सब भेद जैसे खोलती है।
आह ! नभ की नीलिमा खुलने लगी
हंसिनी-सी श्वेत ऊपर सृष्टि सित स्वर्गीय
चंचु में पंकज सदृश दाबे हुए ब्रह्माण्ड
देखती है मुग्ध-मुख ऊपर
हंस रही है शारदा रमणीय प्रिय कमनीय
कम्प-हर्ष-दुकूल मर्मर वायु सलिल-तरंग
आह ! प्रातिभ यात्रा की इस महत सीमांतता की
चंद्र-चर्चित सृष्टि से लौटा दिया जाऊं न मैं,
बहुत संभव है कि ऊपर और भी नभ खुले !
किंतु, बाहर से किसी ने दी मुझे आवाज़
द्विधा निर्मित विश्व का अद्वैत
चलो मेरे बंधु, है अदृश्य में भी रंध्र
उसे खोलें, और उद्घाटित करें
कुछ और भी संसार !

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्मल कुमार की हिन्दी कहानी

बर्फ के फूल

सलमा सो गयी है। अब उसे कोई नहीं जगा सकता। 'ला मां।' की पुकार करता, आंसुओं से अपने अबोध लाल गाल भिगाये हामिद अभी घर से निकल ऊपर की तरफ भागा है। मगर आज उसके पीछे सलमा नहीं आ सकेगी.... सलमा उसकी बहन जिसका दिल हामिद की रोनी पर बाहर आ जाता था और जिधर भी वह जाता मिन्नतभरी, अपने लिए कुछ न चाहती हवा बन उसके क़दमों से, जिस्म से लिपट उसे पास ले आता था।

बर्फ गिर रही है। पहाड़ी क़ब्रिस्तान बर्फ के फूलों से ढक गया है, मगर वे फिर भी बरस रहे हैं। बरसते रहेंगे; क्योंकि कुदरत इन्सान की ज़रूरतों से ज़्यादा उदार है।

आज मेरा दिल सलमा के लिए रोने को हो रहा है। सलमा जिसने ज़िंदगी की देहरी पर खड़े होते ही एक सुंदर इंद्र-धनुष अपनी आंखों से निकल सामने क्षितिज पर फैलता देखा था मगर जिसकी रंगत अचानक यों उड़ गयी थी जैसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क़ब्रिस्तान में खड़े चनार के पेड़ों से पत्ते। एक बेरंग, बेनूर इंद्रधनुष देखते-देखते उसकी आंखें मरने से पहले मर गयी थीं।

फिर भी यह बेनूर इंद्रधनुष क्यों फैला रहा? क्या कुदरत इसका उत्तर देगी? क्या सपने देखने की सज़ा मिलनी ज़रूरी है? वे आंखें जो कभी अचानक उमंग और जोश में ज़िंदगी की कड़वाहट भूल, ज़िंदगी के नशे से भर उठती हैं—अचानक यों ही, जैसे गन्ने में रस भर आता है..... क्या वे आंखें कोई गुप्त पाप करती हैं ऐसा करके? कौन जाने कुदरत के नियम कौन से हैं, मगर इन्सान ही तो थी सलमा जैसे मैं इन्सान हूं और आज रो लेना चाहता हूं। न जाने कौन-सा दर्द है यह मेरे सीने में जो रो लेना चाहता है। मेरी कोई नहीं थी सलमा। मगर कोई दर्द है जो मुझमें भी उसी तरह है जिस तरह सलमा में था, जो हम सबमें है, इन्सानी ज़िंदगी का दर्द जो कल भी था, आज भी है और कल भी होगा। अब घरों से धुंआ उठता है, मुर्गियां बोलने लगती हैं, औरतें बच्चों को आवाज़ देती हैं या खच्चरों के गले की घंटियां सुनाई देती हैं तो वह दर्द मेरे सीने में लौ की तरह भड़क उठता है। सलमा की ज़िंदगी भी उसी प्राचीन इन्सानी दर्द की कहानी बनकर रह गयी..... क्या बस यही एक नाता है जो मुझे रुला रहा है?

०००

आफ़ताब दिलरुबा बजा रहा है। रात के सन्नाटे में गिरती बर्फ़ का शोर नहीं होता मगर जब बर्फ़ को हवाएं घसीटती हैं तो आवाज़ होती है। वैसे सब सफ़ेद ही सफ़ेद है। अंधेरे पर भी बर्फ़ की सफ़ेदी पुत गयी है और ऐसा भरम हो रहा है जैसे चांदनी खिली हो।

आफ़ताब से ज़रूर सलमा की रूह मिलने आयी होगी। यह सच है कि सलमा ने अफ़ताब का शादी का पैग़ाम ठुकरा दिया था। मगर वह न तो तंगदिली थी न संगदिली। यह नहीं कि सलमा आफ़ताब का दिल लेकर भूल गयी थी। सलमा हज़ारों में एक थी मगर अपनी सुंदरता का ऐसा दुरुपयोग सलमा को नहीं आता था। बस बात इतनी-सी थी कि सलमा भी एक पठान की बेटी थी। अपनी मां को आखिरी वक़्त दिये वचन से कैसे फिर सकती थी? आफ़ताब से मुहब्बत हो गयी थी मगर उसे क्या पता था कि किस्मत किसी दिन उसे यूं भी आज़मायेगी कि वक्त होगा नहीं और फौरन एक ही क्षण में ज़िंदगी के सारे फैसले कर लेने होंगे। मां बिस्तर से उठकर बाहर धान कूटती सलमा तक आ गयी थी। खांसी के मारे उसका सिर चकरा गया था और वह पत्थर की दीवार को पकड़कर हांफ रही थी। यौवन का नशा किस क़दर मासूम होता है! सलमा मां को डांटकर बोली थी, 'देख फिर आयी मां, तो अब्बा से कहूंगी। तू बिस्तर पर क्यों नहीं लेटती?'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मां गिरने लगी थी और गिरती-गिरती बेटी की मज़बूत बांहों में थम उसके गले से लग गयी थी और रोने लगी थी। 'मत रो, मां!' सलमा भी रो पड़ी थी, 'तू किसका दुख करती है। तू ठीक हो जा, हमें कोई ग़म नहीं है। किसी चीज़ की कमी नहीं।'

'हामिद का, बेटी, हामिद का....'

'हामिद का क्या, मां? हामिद तो सो रहा है।'

'कौन देखेगा उसे, बहुत छोटा है, बेटी। कब्र में भी उसकी फ़िक्र साथ रहेगी। उठ-उठकर आना पड़ेगा।' सलमा ने मां को सीने से भींच लिया और न जाने क्यों इस बार उसके आंसू नहीं निकले। वह गंभीर हो गयी मां को उठाकर बिस्तर तक लायी। उसे पानी देकर लिटाया और उसका सिर सहलाती हुई बोली, 'खुदा न करे ऐसा हो, मगर कुछ हो गया तो!' फिर रोनी फूटने को हुई मगर गले और कनपटियों के बीच आकर रुक गयी, 'मैं पालूंगी, मां, हामिद को। मैं मां का हक़ अदा करूंगी। हामिद कभी तेरी कमी नहीं महसूस करेगा। तुझे कभी याद नहीं करेगा।' उसकी आंखों से आंसू झरने लगे, 'तू आराम से कब्र में सोना, मां। तेरा नाम भी हामिद लेगा तो मेरे दिल पर चोट होगी।'

ooo

अब हामिद सो गया है। ढलते पर्वत पर अपने पत्थर के घर में हामिद अपने बाप के साथ सो रहा है। उसका नन्हा दिल अभी मौत से परिचित नहीं। उसकी अबोध आंखें सपना देख रही हैं—वह मुर्गी के बच्चों के पीछे भाग रहा है और सलमा बार-बार उसे पकड़कर खट्टे अनार के दानों से रोटी खिला रही है।

हामिद का बाप अब्दुल्ला थक गया है। आज वह काम पर नहीं गया; क्योंकि सलमा को दफ़नाना था। मगर वह बहुत थक गया है। अब उसके साथ जीने को कौन बचा है? हामिद बहुत छोटा है। उसकी दुनिया अब्दुल्ला से बहुत पीछे है। जब तक वह बड़ा होगा अब्दुल्ला कब्र में दूसरी करवट ले चुका होगा। उसके बाल सफेद हैं। उसके गाल लाल हैं तंदुरुस्ती के कारण नहीं, थकान और खुश्क हवाओं के कारण। आफ़ताब भी सो रहा है। ऊपर की बस्ती में दूर अपने घर में उसकी मां भी सो रही है। बाप भी सो रहा है। बहन भी सो रही है। दिल-रुबा एक किनारे दीवार से लगा खड़ा है। बाहर बर्फ़ गिर रही है, मुलायम फूलों जैसी बर्फ़। आफ़ताब जिसने हर मुमकिन कोशिश की सलमा को मुहब्बत की राह पर फिर से लाने की, वही आफ़ताब आज बिन-बोलती हवाओं का तूफ़ान दिल में छुपाये सो रहा है। मां जानती है उसका ग़म, मगर उससे ज़िक्र नहीं करती। उसे डर लगता है। कुछ ग़म हैं जो बोल लेने से और भी भड़कते हैं और फैल जाते हैं। पहले जिनसे सिर्फ दिल दुखता था फैल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाने से नस-नस दुखने लगती है।

सलमा भी सो रही है गीली मिट्टी के आगोश में। कब्र कच्ची है। बूढ़े अब्दुल्ला के पास इतने पैसे नहीं हैं कि उसे पक्की कराये। फिर वह अंधविश्वासी यह भी मानता है कि जो मर जाते हैं, वे अल्लाह में समा जाते हैं। पत्थर की कब्र से उठकर अल्लाह में समाने में सलमा को रुकावट होगी। उसका नाजुक जिस्म पत्थरों का बोझ कैसे हटायेगा?

मिट्टी के पीले बिस्तर के ऊपर बर्फ का सफेद कालीन पड़ा है। आसपास कोई

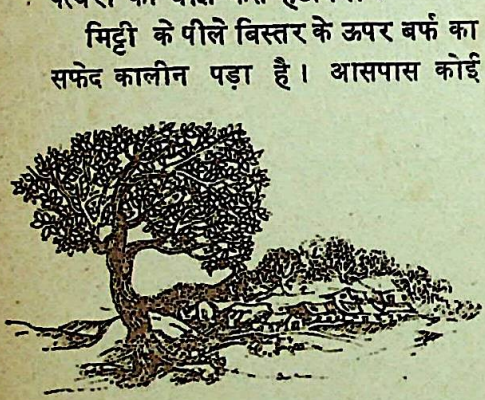

नहीं है। ऐसी नीरव शांति को कोई देर रात की चिड़िया भी नहीं तोड़ती। कोई जानवर नहीं तोड़ता। कहते हैं यह शांति नहीं बर्फ की परी का जादू है। इसमें सब सो जाते हैं। एक सफेद सन्नाटे में बर्फ के फूल परी की आंखों से झरते हैं जब कोई सलमा अपने साफ दामन की ताकत से बेखबर, उसमें लिपटी, मौत की वादियों में भटक आती है।

ooo

सलमा की मां जब मरी थी तब वह अट्ठारह बरस की थी और कल मरने के दिन तक सलमा इक्कीस की हो चुकी थी। हामिद जो तब डेढ़ बरस का था अब साढ़े चार का था, मगर लाख जतन करके भी सलमा उसके मुंह से वह पुकार दूर नहीं कर पायी थी—'ला मां।' जब भी वह दिल खोलकर रोता वही पुकार उसके दिल से निकलती और वह बस्ती में ऊपर की ओर उसी रास्ते पर भागता जिस रास्ते लोग उसका मां का जनाज़ा ले गये थे।

सलमा कितनी ही बार आंखें ढक-ढक-कर रोई थी इस बात पर। लड़खड़ाता, रोता, नन्हे-नन्हे पैरों पर भागता हामिद उसके दिल पर बड़ी चोट करता था। कहीं जाने का डर नहीं था मगर न जाने कौन-सी यादें थीं, किसके दर्द थे, उसके अपने या पुरखों के या उन हज़ारों-लाखों बच्चों के जिन्हें उनकी मायें छोड़कर चली गयी थीं। वे दर्द शायद हवाओं में आवारा भटकते रहते हैं और जब किसी बच्चे की मां मरती है और उसका शिशु हृदय फूटकर उसे पुकारता है तो ये सारे दर्द मानो कुछ देर को एक ज़िन्दा साथ पा जाते हैं और वहीं इकट्ठे हो जाते हैं।

सुबह की चढ़ती धूप में, चील के नोकीले परों की तरह हवाओं को चीरती, हामिद की पुकार ऊपर उठकर नीले आसमान में फैल जाती। पहाड़ अपने नीले चेहरे जैसे सुबह की किरणों से धोते-धोते ज़रा सहम जाते। कोई डर-सा सलमा के दिल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में होता। किसी अशुभ की आशंका, कोई अंधविश्वास था यह या फिर दर्दों का काफला था जिससे उसका नाजुक दिल डरता था। जैसे हज़ारों अपने-पराये दर्द जो उसके दिल में चुप-चुप पल रहे थे और जिन्हें कोई नहीं जानता था, हामिद की इस दर्दभरी पुकार पर दिल के दरवाज़े खोल बाहर निकल आते थे और सबको अपना पता दे देते थे और उसका पवित्र हृदय डरता था, बहुत डरता था, कहीं इन दर्दों में कोई दर्द ऐसा तो नहीं जो पाप हो, जो फर्ज़ की राहों से उसे पीछे खींचने की ताक़त रखता हो, जो उसकी कमज़ोरी से उसे परिचित करा दे।

ooo

चेरी के फूल थे। कैसा मौसम आया था जैसे सब पागल हो गये थे। बादलों पर भी ऐसी रंग-बिरंगी लकीरें आ जाती थीं, जिनकी वजह नहीं मिलती थी। कहां से आ गयी थीं इतनी रंग-बिरंगी चिड़ियें? क्यों आने लगी थी इतनी हंसी? सुनहरी-सुनहरी धूप का पानी सुबह-सुबह चेहरे को गुदगुदा देता था और आंख खुल जाती थी। एक नन्हे मासूम भेड़ के बच्चे की तरह जो मौत से बेखबर किसी ऊंचे पहाड़ के किनारे आ गया हो। ठीक ऐसी ही मासूमियत के साथ सुनहरा सूरज खिड़की के सामने ऊंचे पहाड़ पर चढ़ आता था।

ऐसे पगले मौसम में आफ़ताब ने उसे पकड़ लिया था। उसके हाथ चेरी के फूलों के नीचे थाम लिये थे। डर वह भी गया था अपनी बदतमीज़ी पर इसलिए कांप रहा था और बोल कुछ नहीं पा रहा था। इसलिए जब कुछ और न हो सका तो मुट्ठी-भर चेरी के फूल उठाकर उसने उसकी चुन्नी पर डाल दिये थे और वह हाथ छुड़ाकर भाग गयी थी।

उसके बाद भी अरसे तक वे नहीं बोले थे, मगर आफ़ताब की नज़रों के घेरे मजबूत होते जा रहे थे। अब उसकी बांहें उसके पैर सब बंध गये थे। सबमें हलका-हलका दर्द होने लगा था। वह कुछ भी नहीं कर सकती थी जो उसे नापसंद हो। और एक दिन जब पत्थरों की माला गले में डालते हुए उसे लगा था, यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

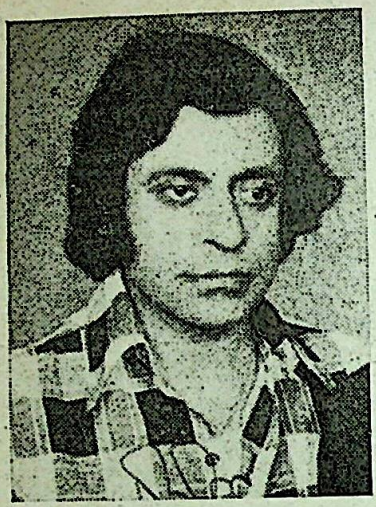

निर्मल कुमार

माला उसे पसंद आयेगी तो उसे हैरत हुई थी और कुछ लज्जा आयी थी। मगर यह विचार जैसे उसकी लाज देख और भी निर्लज्ज हो गया था। अब यह विचार उसके बोलों से निकल आंखों में आ गया था। अब उसकी आंखें शीशे में पड़ी उसकी सूरत से पूछ रही थीं: 'क्या मैं सच बहुत सुंदर हूं?' लजाकर उसने आंखें झुका लीं, मगर जैसे वे बेताब आंखें जवाब ज़रूर चाहती थीं। वे फिर शीशे में झांकते उसके प्रतिबिंब की ओर उठीं।

उसके बाद जैसे सज़ा देने के लिए उसने शीशे में मुंह देखना ही छोड़ दिया था। मगर कितने दिन चलती हैं ऐसी ज़िदें!

०००

आवारा भटकते मेरे मन को क
के अंधेरे में गरमाई महसूस होती है और
वह वहीं रुक जाना चाहता है। मैं चाहता
हूं, पूरी सर्दियों मैं भी सलमा की तरह
बेजान पड़ा रहूं बिना हाथ-पैर हिलाये
वहां सलमा की सूरत है जो अभी बिगड़
नहीं। मन की आंखें कब्र के अंधेरे में
उसे देख लेती हैं। मुझे न जाने क्यों खयाल
आ रहा है किसी बूढ़े भालू का जो न जाने
कहां, बर्फ से ढकी गुफा में सर्दियों
सर्दियों के लिए मर गया है। उसके पंजे
सिकुड़ गये हैं, नाखून मुड़कर हथेलियों
से लग गये हैं। बसंत का इंतज़ार कौन
करे? वह बर्बर पशु अपने बच्चे के
दिल को यह इंतज़ार नहीं सिखा सकता
वह मर जाता है और मौत उसके लिए
अस्थायी बन गयी है।

मैं भी चाहता हूं ऐसी ही अस्थायी
मौत। सलमा कब्र के अंधेरों को अपनी
हंसी के सितारों से जगमगाती ज़रूर होगी
क्योंकि कोई ऐसा ग़म नहीं था उसे जो
उसके साथ कब्र में जाता। कोई भी
ग़म उसके किसी बुरे कर्म से पैदा नहीं हुआ
था, सारे ग़म इसी दुनिया की देन थे
जब तक ज़िंदगी उसे इस दुनिया से जोड़े
रही वे ग़म साथ रहे। मौत के ठंडे बिस्तर
में उतरते हुए सारे ग़म धरती के अंधेरे
ही छूट गये।

०००

बूढ़े अब्दुल्ला को मालूम नहीं था कि
उसकी बेटी को तपेदिक घुन की तरह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा था। सलमा ने आफ़ताब को दुत्कार तो दिया था, मगर उसके अपने ही शब्द घुन बन उसके दिल में लौट आये थे। कभी-कभी जलती दागने वाली सलाखें बन जैसे वे ही निष्ठुर शब्द उसके अपने चेहरे को दाग़ जाते और तब सलमा को लगता उसके गालों पर, माथे पर, होठों पर जलते चाबुक के से निशान उभर आये हैं। कभी उसे लगता उसकी पीठ कोड़ों से छिल गयी है और तब सचमुच छूने पर उसे उभरे हुए निशान महसूस होते।

आफ़ताब बहुत रोया, बहुत दिनों तक उम्मीद का दामन थामे रहा, फिर न जाने कैसे सब कुछ आप ही आप छूट गया। पानी में बहाये बच्चे की तरह वह अपने अरमानों, चाहों के बने पालने में बहता-बहता दूर निकल गया और रोज़ न जाने किस ओर को उसका यह मानसिक सफ़र बढ़ता गया। यहां तक कि सलमा को देखकर भी अब उसकी आंखों में चमक आनी बंद हो गयी थी। उसका दिल पहचानता कि यह सलमा है मगर एक डर उसे बर्फ़ जैसा कर देता। उसे सलमा से डर लगने लगा था। वे फुसफुसाहटें, वह गुदगुदी जो उसके कोमल अंगों से लगकर उसने महसूस की थी, कहीं दूर पिछली यादों के दायरे में बंधकर रह गयी थी। उसकी आंखों का कोयलों की तरह चमकना और नज़रों में हज़ारों बातों का उभरना, वह तितलियों ही तितलियों के हुजूम का उसकी आंखों से निकलकर फज़ा पर छा जाना और मौजों का बल खाते हुए उसके कंधों और कमर से निकल नदियों में समा जाना.... ये सारे अनुभव दिल में गहराइयों में अब भी बहते हुए महसूस होते, मगर उनके ऊपर एक बर्फ़ का ग्लेसियर बैठ गया था।

लाख वह अपने को समझाता सलमा गुस्से में थी, सलमा मां के ग़म में बदहवास थी, मगर फिर भी उसके कटु शब्दों की वह मार उसका दिल न भूल पाया। उसकी आंखों का फिर जाना उस दिन कहीं बहुत भीतर, दिल के कितने ही मंदिरों के भीतर, सोते आफ़ताब को बुरी तरह अपाहिज कर गया था।

मैं सलमा के क़ाबिल नहीं हूं, मेरी सूरत भी तो कुछ नहीं है। शायद सलमा को चाहने वाले बहुत हैं। शायद उसकी नज़रों में कोई और चढ़ गया है। चोट खाये दिल को क्या पता मुहब्बत रोज़-रोज़ एक दिल में नहीं खिलती। ये फूल हरेक के लिए नहीं होते।

०००

और अब्दुल्ला को क्या पता था कि आज सुबह जो रोटियां सलमा ने दी हैं, वे उसके हाथों की बनी आखिरी रोटियां होंगी। वह तो ऐसे ही रोज़ जाता था अपने खच्चरों के साथ और ऐसे ही वह रोटियां बांधकर दे देती थी।

पीली ज़रूर हो गयी थी सलमा, मगर ग़रीबों के बच्चे तंदुरुस्त कहां रहते

(शेषांश पृष्ठ ७४ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गिरिजाकुमार माथुर
की प्रेम कविता

थोड़ी देर हो गयी

तुम मुझे इस तरह और ललचाओ मत
क्योंकि इस बात को भी अब
थोड़ी देर हो गयी है !

तुम्हें मालूम है
तुम्हारे इस भीने-रचे भरपूर बदन का छलकाव
कितनी दूर तक उड़ता है,

तुम्हें मालूम है
तुम्हारे चलने में जो मस्त रोशनी पैदा होती है
वह कितनी बेचैनियों पर
पांव धर चलती है,

तुम्हें मालूम है
कि कसे कपड़ों के बस में न आने वाली
तुम्हारी कुछ चीज़ें
हवा तक में फंस जाती हैं,

तुम्हें मालूम है
कि तुम एक आतिशी शीशा हो
जिसका अक्स
कहीं भी आंच देता है,

तुम अब तक कहां थीं
चाहे बतलाओ मत,
क्योंकि इस बात को भी अब
थोड़ी देर हो गयी है !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम्हें नहीं मालूम
कि प्यार के लिए कोई उम्र नहीं होती
कोई वक्त, कोई जगह
कोई रोक-टोक नहीं होती,

तुम्हें नहीं मालूम
तुम्हारी देह का कुहकता स्वाद
जो तुम मन के भीतर से उंडेलकर
अब तक किसी को दे नहीं पायीं,
उसमें कितनी शराब है
कितनी ज़्यादा संजीवनी
जिसे पाकर उम्र वापस मिल जाती है,

तुम्हें नहीं मालूम
तुम आंखें मुंदा देनेवाली लहक को
एक मुस्तकिल खुशबू
जो अंगों से लिपटकर
मिटती नहीं है,

तुम्हें नहीं मालूम
तुम एक जादुई ख़ज़ाना हो
जो बहुत धीरे-धीरे
इंच-इंच खोजकर मिलता है,

तुम पहले मिल जातीं
तो ज़िंदगी और ज़्यादा जीने लायक हो
जाती,

लेकिन इस बात को भी अब
थोड़ी देर हो गयी है !

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ७१ का शेषांश)

हैं! खांसती थी वह, मगर रज़ाई मुंह में ठूंसकर जिससे आवाज़ कम से कम निकले और वह भी थका-मारा, नींद की नर्माहट में कुछ सुना-अनसुना कर देता था। अच्छी हो जायेगी उसे उम्मीद थी। जवान जिस्म है, रोग पर काबू पा लेगा। हकीमजी ने तो नहीं बताया उसे दिल की बीमारी थी। बस खांसी पुरानी हो गयी थी और इलाज चल रहा था।

ooo

मुझसे कोई नहीं पूछता और मैं सुना रहा हूं जैसे कोई सुनना चाहता है—हां तो क्या हुआ सलमा का? क्यों मर गयी सलमा? सलमा कहती थी देवदारों पर जब बर्फ गिरती है और उसके बोझ से टहनियां झुक जाती हैं तो देवदार सीढ़ियां बन जाते हैं, जिन पर उतरकर आसमान से परियां आती हैं और फिर सामने वाली पहाड़ी पर उनकी महफिल सजती है।

ooo

आंखें फाड़े हामिद उस रात भी बहन की गोद में बैठा खिड़की के शीशे से बाहर उस लंबे देवदार को देख रहा था, जिससे उतरकर परियां आयी थीं।

'मगर मुझे तो नहीं दीखीं, दीदी।'

'अभी नहीं, जब तू सो जायेगा तो ये सब सपने में दीखेंगी। फिर सबके बीच मां आयेगी एक ऊनी गलीचे पर।'

'मां को ठंड नहीं लगेगी?'

'नहीं, नन्हे, मां के ऊपर मखमली छतरियां होंगी। मां का लिबास हम लोगों जैसा नहीं है, उसे फरिश्तों के लिबास मिले हैं!'

'और मां के पंख भी हैं?'

'हां, पंख भी.....'

'अब तू सो जा, मैं थोड़ा-सा काम निपटा लूं।' किसी तरह हामिद की आंख लगी और सलमा जल्दी-जल्दी बर्तन साफ करने लगी। उसे लगा उसने किसी उल्लू के रोने की आवाज़ सुनी। उसके रोंगटे खड़े हो गये। जब वह फर्श धोने लगी तो खांसी आ गयी और फिर कुछ खून गिरा। दवाई लेकर वह लेट गयी फिर उसकी आंख कुछ देर बाहर के फूलों के बीच आफ़ताब की बनती-मिटती सूरत देखती रही। कभी वहीं मां की भी सूरत मिल जाती। फिर उसे कुछ देर अपने अब्बा दूर कहीं पहाड़ी पगडंडी पर किसी सौदागर का माल खच्चरों पर लादे बकरी की खाल से अपने को ढके चलते हुए नज़र आते। उनकी अधपकी दाढ़ी, उदास फीकी आंखें और होंठों से बीच-बीच में फूटती आवाज़ 'अल्ला! अल्ला!' को देखते-देखते उसकी आंखों से गरम-गरम आंसू बरस पड़े। आंखें पोंछकर उसने करवट बदल ली।

ooo

न मालूम कितनी देर उसे झपकी आयी होगी। अब की बार आंख खुली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो उसे अंगों में बहुत स्फूर्ति और ताज़गी लगी। उसे लगा आफताब ने उसे बांहों में कस लिया है और सेबों के तले वह उसे चूम रहा है। वह उसे डांट रही है और हंस रही है। वह भागकर दूसरे पेड़ के पीछे चली जाती है। वह वहां भी आ जाता है। उसके दिल में जैसे किसी बच्चे की उंगलियां गुदगुदी कर रही हैं.....

फिर वह थक गयी, बहुत थक गयी। उसे लगा उसका सिर बुरी तरह चक्कर खा रहा है जैसे भंवर में फंसी कोई माला। उसका जी मचलाने लगता है और उसे फिर खून की क़ै होती है। सारा तकिया गंदा हो गया। वह चाहती है उसे उठकर साफ कर दे, मगर हाथ-पैरों को न जाने क्या हो गया, जैसे मन-मन के हो गये। हिलते ही नहीं, उसके कंधे भी नहीं हिलते। एक हाहाकार-सा उसके दिल में होता है जैसे सैकड़ों झोंपड़ों से दिये एक साथ बुझ गये और हामिद अंधेरी गलियों में भटक रहा है सिर्फ एक लंबी कमीज़ पहने.....

उसके गले में फिर कुछ आकर भर जाता है और फिर गरम-गरम खून उसके होठों के कोनों से निकलता है। उसके बाल भी इस बार खून में भीग जाते हैं। पर अब उसकी ख़ता नहीं, अब उसे होश नहीं है। बस उसे लग रहा है कुछ उसके मुंह और दिल के बीच हलचल-सी मची है।

ooo

सुबह अब्दुल्ला करीब आठ बजे काम से लौटा। रात भर उसे बर्फ के कारण ऊपर मंडी में रुकना पड़ा। हामिद सो रहा था। सलमा लिहाफ़ से मुंह ढके पड़ी थी। उसके होठों से खून निकलकर तकिये और बालों में लग गया था और वह बहुत दूर चली गयी थी जहां आफताब का दर्दीला दिलरुबा उस तक अपने सुर नहीं भेज सकता था। उसकी कुंआरी आंखों में अब घुटन भरी बदली नहीं जगा सकता था। अब उसमें आफताब के आगे मुजरिम जैसी अनुभूति ज़िंदगी नहीं जगा सकती थी।

—अतिरिक्त जिला अधिकारी,
कलेक्टर, बरेली, उ. प्र.

विरोधाभास

आजकल
हम बड़ा विरोधाभास पा रहे हैं
सीमेंट के अभाव में भी
आदमी-आदमी के बीच
नफ़रत की
दीवार बना रहे हैं!

—महेश मूलचंदानी

ooo

पाप-मोचन

भगीरथ इस युग में
पैदा होता
तो कुर्सियों का
पाप अवश्य धोता!

—नंदकिशोर नंदन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगता है कि आसमान उस कमरे का हिस्सा है

ज्योत्स्ना मिलन

की मुलाकात अपने आप के साथ

२०-१-८१

वहां मुझे लगता है कि आसमान उस कमरे का हिस्सा है या ये कि वह कमरा खुद ही आसमान का एक हिस्सा है। और आसमान का मुझ पर जादू का सा असर होता है। कितनी भी कैसी भी थकान हो, तनाव हो, चिंता हो, पर नज़र यकायक गलती से भी आसमान की ओर उठ जाती है तो बड़ी राहत मिलती है, जैसे आसमान ने उस थकान को, तनाव को, चिंता को समूचा सोख लिया हो। इस जादू को तो कई बार जाना है, फिर भी मज़ा ये कि मैं हर बार सिरे से भूल जाती हूं कि ऐसा भी कोई जादू होता है। नतीजा ये है कि हर बार आसमान को देखने पर वैसा ही असर होता है, जैसा पहली बार देखने पर हुआ था। और फिर आसमान का ही क्यों समुद्र का, जंगल का, पहाड़ का, आग का, रोशनी का, मिट्टी का, तेज़ हवा का, उसके झोंके की काया में घिर आती खुशबू का भी ठीक वैसा ही असर मुझ पर होता है। सोचने पर मुझे बड़ा अचरज होता है कि यह सब कुछ अक्सर मेरे आस ही पास होता है, पर मुझे इनके होने का एहसास कभी-कभी होता है और भीतर इस बात का अफसोस गड़ता रहता है।

०००

समुद्र किनारे का आसमान कभी वैसा वीरान, वैसा उजाड़, अंधा या धूसर नहीं होता। अक्सर नीला और पारदर्शी ही होता है। उस नीले आसमान में कमान की तरह मुड़ते हुए नारियल के नुकीले पत्ते इतने कोमल ढंग से हिलते हैं कि उनका नुकीलापन गड़ता नहीं, छूने जितना ही प्यारा लगता है। उन पत्तों के बीच से दिखता आसमान समूचे अस्तित्व से गतिमान, जीवित समुद्र की तरह उमड़ा चला आता-सा लगता है।

नारियल के पत्तों से स्वरूपवान बना यह आकाश मुझे अपने प्रिय व्यक्ति के चेहरे-सा ही लगता है, जो बड़ी से बड़ी यातना के बीच भी राहत देता है। उसे देखने के बाद एक शांति, एक ठंडक, एक रोशनी भीतर न उतरे, यह असंभव है। वहां एक ऐसी बालकनी तो थी जहां जंगल तो निश्चय ही नहीं था, पर चारों ओर पेड़-पौधे थे, ऊपर खुला आसमान था, रात का भरा-पूरा सन्नाटा था और समुद्र सामने तो नहीं था, फिर भी उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आस ही पास होने का आश्वासन तो था और इससे कितनी राहत मिलती थी ! समय की क़ैद से भाग निकलने का मौक़ा भी अक्सर मिल जाता था पर अब समय, समय, समय ! हरदम मेरी चेतना में एक कील की तरह क्यों गड़ा रहता है यह समय ? कामों की भीड़ को आगे-पीछे ठेलकर हर बार समय को प्रयत्नपूर्वक अलग निकाल लेना पड़ता है, जैसे उधार का समय हो और कभी भी छीन लिया जा सकनेवाला हो। मेरी आत्मा चीखती है, विद्रोह करती है, ऐसे उधार के समय में और हड़बड़ाई स्थिति में काम करने से। पर यों तो पूरा जीवन ही उधार के समय जैसा है, बिना हड़बड़ी के जितना मैं चाहती हूं उतना इस मोहलत की तरह मिले उधार के समय में किया जा सकता है क्या ? लेकिन काम करने की शर्त तो शायद यही रहेगी पर इसीलिए मैं अपने मन को, अपनी आत्मा को बचाना चाहती हूं। मुझे खुलापन चाहिये, स्पेस चाहिये, मुझे अपना अर्थ चाहिये। मैं मशीन होना नहीं चाहती, एक खराब मशीन की तरह ही सही मैं रुक जाना चाहती हूं।

०००

ता. २१-१-८१

अंधेरे में से उठकर एक आवाज़ मुझे क़ैद कर लेती है। खुशबू की कैद ! ओह जूही ! कितना अधीरज है तुम्हें, अभी बस आयी ही तो हूं ! और एक झोरा ! तू तो हरदम फूला ही रहता है, कभी ऐसा नहीं होता कि तू सूना हो, खाली हो।

ये पौधे ही तो थे मेरे उगते हुए भावों के साक्षी। इन्होंने उन्हें देखा था उगते हुए, पर्त-दर-पर्त खिलते हुए, होते हुए। वे जाकर इन्हीं पौधों से लिपट गये थे कि देखो हम हैं, जानो-महसूसो कि हम हैं। मुझे अपनी पहचान देते हैं, अपनी जड़ों से जोड़ते हैं ये। मेरे होने, निरंतर होते जाने की गवाही है इनके पास। शरीर के बढ़ने को तो और भी बहुतों ने देखा था लेकिन मेरे बढ़ते जाते, जंगल की तरह सघन होते जाते अंतरंग को तो इन पौधों ने, इस आसमान ने, उस कोने से उझककर झांकते समुद्र ने ही देखा था। यहां तक कि अपनी ही समृद्धि के दबाव से फटने-फटने को अकुलाते इस अंतर के

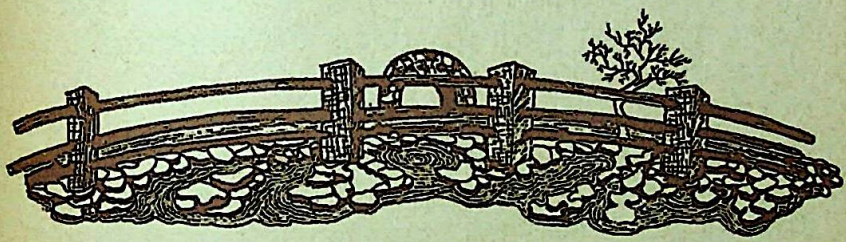

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दबाव को इन्होंने ही झेला है, तुम्हारे आने तक!

०००

११ मई '७८

मुझे हमेशा लगता है, अक्सर लगता है कि मैंने कुछ खो दिया है, मेरा कुछ खो गया है। क्या खो जाता होगा, यह मैं साफ़-साफ़ कभी नहीं जान पाती, पर एक अफ़सोस मेरे भीतर होता है कि मैंने कुछ खो दिया है—बहुत क़ीमती कुछ।

हर दिन एक अफसोस से घिरी तय करती हूं कि अब मैं पहरा दूंगी कि कुछ खोने न पाये लेकिन सारी चौकसी के बाद भी कुछ न कुछ खो ही जाता है। मेरे पास क्या-क्या है इसका भी कोई लेखा-जोखा नहीं है और उसमें भी क्या क़ीमती है क्या नहीं, इसका भी कुछ पता नहीं होता। जब कुछ खो जाता है तभी जान पाती हूं कि वह कितना क़ीमती था कि वह क्या था?

केशिया, गुलमुहर, अमलतास खिलते जाते हैं। गरमी के जलते, झाड़-झंखाड़ जैसे दिनों को कोयल की आवाज़ भिगोती-गुदगुदाती जाती है भीतर तक, रेगिस्तान की तरह मटीले और कोरे आसमान में घटाटोप बादल घिर आते हैं, जैसे वे उस आसमान में से ही उगे हों, वहीं फले हों, एक हरा झरना पहाड़ी से उतरता हुआ मकान के आसपास की बाड़ में फैल जाता है और मुझे हर बार लगता है मेरे पास कितना कुछ है।

और जब अचानक मस्ती से गानेवाले पेड़ खाली-गूंगे और उदास हो जाते हैं, चीज़ों को, आदमी को महज़ देखने की लाचारी से देखती निचुड़ी और भावहीन आंखों से सामना होता है, हरा-भरा जीवन रेगिस्तान में बदल जाता है और लोग उसका कुछ नहीं कर पाते, ठगे से टुकुर-टुकुर ताकते ही रह जाते हैं बिना अपराध के सज़ा पाये से और हरा झरना यकायक ठूंठ में बदल जाता है ..... और लगता है मैंने कुछ खो दिया है, बहुत क़ीमती कुछ। यह कितना अजीब है कि खो जाने के बाद ही चीज़ें, लोग मुझे मिलते हैं, समय के क्रम से बाहर।

०००

३-२-७९

किसी को भी तकलीफ पाते देखकर अक्सर ऐसी इच्छा होती है कि काश! उसकी तकलीफ़ को मैं एक स्याही सोख की तरह सोख ले सकती। वह भी इस तरह कि उसे कभी पता भी न चले कि वह कौन था जिसने उसकी तकलीफ़ को सोख लिया था। यहां तक कि उसे मालूम भी न हो कि उसकी तकलीफ़ दूर की गयी है—उसे लगे कि जैसे वह तो अपने आप ही बिला गयी है। लेकिन जो हर किसी की पीड़ा को सोख लेना चाहता है, उसे कितना-कितना उदार होना चाहिये, अपने प्रति कितना निर्मम होना चाहिये! पर फिर कभी-कभी ऐसा क्यों होता है कि यकायक किसी एक क्षण को मेरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदारता में बल पड़ जाते हैं, मैं ऐंठ जाती हूं और उस एक क्षण के बाद पछताना ही बच जाता है। कभी-कभी ही सही लेकिन ऐसा क्यों होता है ? गड़बड़ी कहां है ? क्यों है ? इसका क्या उपाय हो सकता है ? मुझे बीच-बीच में अपना यों ऐंठ जाना, जम जाना सहन नहीं है—इससे निजात पानी ही होगी। बार-बार इस स्थिति से गुज़रना और अवश छटपटाकर लहूलुहान होना बहुत कठिन लगता है।

ooo

कभी-कभी कोई बहुत छोटा, तुच्छ और भोथरा (संवेदनहीन) लगने वाला व्यक्ति भी किस क़दर हमारी तुच्छता को उजागर कर देता है, फिर वह कितनी ही कम, कितनी ही मामूली क्यों न हो। इस बात का एहसास मुझे इस बार बड़ी तीव्रता से हुआ। हमारे चाहने वाले तो हमारी अच्छाइयों को, हमारे उजाले को ही उजागर करते हैं, बल्कि उस उजाले की ओट में हमारे भीतर के अंधेरे को भी वे ढकने की कोशिश करते हैं। पर हमें न चाहनेवाले हमारे जाले को परे ठेलकर भीतर गड़े अंधेरे को खोदकर बाहर निकाल लाते हैं और उसे अपनी हथेली पर रखकर कहते हैं, देखो यह तुम्हारा ही अंधेरा है ! जिसे देखकर हम तिलमिला भले ही जायें पर यह स्वीकार करना नहीं चाहेंगे कि वह हमारा ही है, तब भी हम अच्छी तरह जान रहे होंगे कि अंततः वह है तो हमारा ही। हम इतने कमज़ोर

ज्योत्स्ना मिलन

क्यों होते हैं ? इतने डरपोक भी ? अपने अंधेरे को भी अपने उजाले की तरह ही क्यों नहीं स्वीकार पाते ? बहुत साहसी हुए तो अपने सामने स्वीकार लेंगे, पर किसी दूसरे के सामने नहीं ही स्वीकार पायेंगे। क्या यह दोहरापन नहीं है ? भीतर-बाहर में फर्क करना नहीं है ? अपने केंद्र और अपनी ही सतह के बीच आवरण डालना नहीं है ? दूसरों की, दुनिया की परवाह जब तक रहती है—पारदर्शिता असंभव है, तब तक आवरण रहेंगे ही, हम अपने को छलेंगे ही, क्यों कि हम दूसरे को छलना चाहते हैं और दूसरे को छलने की पहली शर्त है खुद को छलना। छल यानी आवरण-धुंध-मटीला-पन जिसकी आड़ में हम कुछ छिपाना चाहते हैं, छिपा सकते हैं—अपने से, दूसरों से। जब छिपाने को कुछ नहीं रह जाता, आवरण स्वतः ही व्यर्थ हो जाते हैं, पार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दाशता आ जाती है तल से सतह तक। लेकिन छिपाने की यह चाह, यह ज़रूरत कितनी मानवीय है। इसकी पीड़ा भी कितनी सुखद, कितनी सच्ची है।

०००

२७-२-७८

'हल्का आसमानी स्वर'—आसमानी यानी आसमान के रंग का, क्या आसमान के आकार का भी? यानी खालीपन के, शून्य के आकार का भी। यानी स्वयं शून्य जिसके अस्तित्व की बुनियादी शर्त हो वैसा स्वर। आसमानी स्वर—आसमान से संबंधित स्वर, आसमान को बहता हुआ स्वर!

मेरे अस्तित्व के केंद्र में उसकी जड़ों में कहीं शून्य है, मुझे उसका स्वाद मालूम है, इसी से कभी-कभी यकायक यह भरा-पूरा आसपास सूना हो जाता है, खाली-खाली-सा हो जाता है।

आसपास यह जो कुछ भी है वह सब मैं ही हूं यानी मैंने पेड़ होकर देखा, मैंने चिड़िया होकर देखा, मैंने स्त्री होकर, पुरुष होकर, पहाड़ होकर, पानी होकर देखा। मैंने हर चीज़ होकर, होने का अनुभव लेकर देखा। यह सब होने के अनंत अनुभव मेरे पास हैं। मैं ही हूं कि यह सब होकर देख रही हूं कि यह बनने का, वह होने का अनुभव क्या होता है? मैं अनुभव की निरंतरता हूं। एक साथ मैं कितनी सारी विरोधी चीज़ों से खचाखच भरी होती हूं। मैं एक उलझा हुआ गझिन

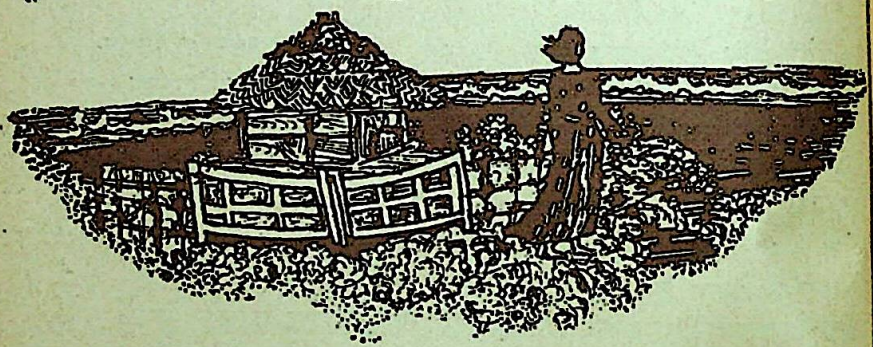

अनुभव हूं और मेरा हर होना, दूसरे होने से निहायत ही भिन्न है। भिन्नता मेरे हर अस्तित्व की बुनियादी शर्त है। मैं यानी एक मनुष्य! मनुष्य ने चाहा और अपनी इच्छा से यह सब कुछ होके देखा। यह होना कोई लाचारी का तर्क नहीं है या कर्मों का फल या सज़ा भी नहीं है कि उसे कई योनियों से गुज़रना ही पड़े—(चौरासी लाख या अनंत?) और फिर क्या इस सृष्टि की सारी चीज़ें पेड़-पशु-पक्षी-मनुष्य—हरदम अपने जीवन को इस तरह ढोते ही लगते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं जैसे वे सज़ायाफ्ता हों और मजबूरी में ही जीवन जी रहे हों ? क्या उनको जीवन में अपने होने की सार्थकता का अनुभव नहीं होता ? यों तो चौरासी लाख योनियों से गुज़रना कोई अच्छी बात नहीं मानी जाती। उन सारी योनियों से गुज़रना एक प्रकार से सज़ा भोगने की अनिवार्यता के तर्क से ही होता है। हर योनि के दुखों को भी तो भोगना पड़ेगा।

दिलचस्प बात ये है कि दुखों का हिसाब ही हम पहले लगाते हैं। जैसे कोई भी चीज़ होने या किसी भी योनि से गुज़रना सिर्फ दुखों का ही सिलसिला हो और उनके कोई सुख हों ही नहीं, या हों भी तो इतने नगण्य हों कि उनको गिनाना फिज़ूलखर्ची हो। जल्दी से जल्दी इन योनियों से गुज़रकर इनके दुखों से निपट लेना और हर योनि से छुटकारा पा लेना ही एकमात्र मक़सद होता है।

जब बच्ची थी तब भी बड़ा अजीब लगता था इतनी अच्छी-अच्छी और लुभावनी चीज़ों से बने हुए इस सुंदर जीवन में गोता लगा जाने की, उससे तदाकार होने की छूट नहीं है।

जीना एक लाचारी है इसलिए जियो और जिन चीज़ों के बिना जीवन संभव न हो उन चीज़ों का इस्तेमाल भी अनिच्छा से, मजबूरी में करने की तरह ही करो। ग़लती से भी किसी चीज़ या काम का मज़ा मत लो। उन चीज़ों के प्रति राग रखने से कर्म बंध होगा और फिर

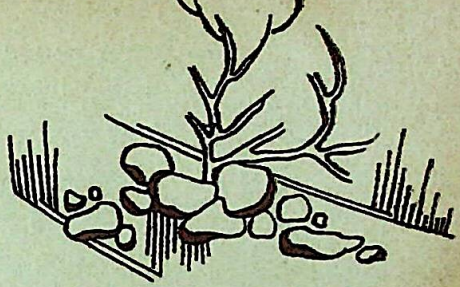

चित्र : नीता वैद्य

किसी दूसरी योनि के चक्कर में फंसना पड़ेगा। किसी चीज़ का मज़ा इच्छापूर्वक लेना अगर राग है तो किसी चीज़ को या काम को करते समय कहीं इच्छातथ्य का शुमार न हो जाये, इसी बात की रखवाली में सारा ध्यान लगा देना क्या दूसरे प्रकार का राग नहीं है ? महंगी चीज़ ही होना यह एक राग है तो सस्ती से सस्ती ही होना, दूसरे प्रकार का। मुझे तो सृष्टि की हर चीज़ होके देखने का चाव है—यदि रोशनी से तरबतर कायावाली इतनी सुंदर आग, हमें खुलाव देता, अर्थ देता यह आकाश, पानी की गझिन संवेदनशील गहराइयां और बहाव, जंगल का सघनतम भयावह एकांत, समूचे अस्तित्व को झकझोर कर सारी थकान को, चिंता को झाड़-बुहारकर अपने साथ उड़ा ले जाने वाली हवा हमारे आसपास हो तो फिर यह जीवन जितनी भी यातनाओं से, दुखों से भरा हो मुझे स्वीकार है। इन सुंदर चीज़ों के साहचर्य में कुछ भी सहा जा सकता है।

— ३/२ प्रोफेसर्स कालनी, विद्याविहार,
भोपाल, म. प्र.

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बंगला कहानी

नायक

मां चलो हम कल्पना करें कि हम यात्रा कर रहे हैं और एक अजनबी तथा विचित्र देश से गुज़र रहे हैं।

तुम पालकी में बैठी हो और मैं एक लाल घोड़े पर सवार हूं।

शाम हो जाती है और सूर्य डूब जाता है। जोड़ादीघी का बंजर हमारे सामने पसरा है--धूमिल और मटमैला प्रांतर निर्जन और बियाबान है।

तुम डर जाती हो और सोचती हो : 'पता नहीं हम कहां आ गये हैं।'

मैं तुमसे कहता हूं : 'डरो नहीं, मां।'

चरागाह में कंटीली घास है और उसके बीच से एक पतली-सी, ऊबड़-खाबड़ पगडंडी जाती है।

खुले मैदान में कोई पशु दिखाई नहीं देता; वे गांव में अपने बाड़ों में लौट गये हैं।

धरती और आसमान में धूमिलता छा जाती है, और हम नहीं जानते कि हम कहां जा रहे हैं।

यकायक तुम मुझे पुकारती हो और बुदबुदाकर पूछती हो, 'वह किनारे के पास रोशनी कैसी है?'

तभी एक चिल्लाहट फूट पड़ती है और कुछ आकृतियां दौड़ती हुई हमारी ओर आने लगती हैं।

तुम अपनी पालकी में दुबककर बैठ जाती हो और देवताओं के नाम ले-लेकर प्रार्थना करने लगती हो।

कहार डर से कांपने लगते हैं और कंटीली झाड़ियों में छिप जाते हैं।

मैं चिल्लाकर तुमसे कहता हूं, 'डरो मत, मां, मैं तुम्हारे पास हूं।'

हाथों में लंबी-लंबी लाठियां लिये, सिरों पर लंबे, घने, उलझे बाल लिये, वे पास, और पास, आते जाते हैं।

मैं ललकारता हूं, 'दुष्टो, वहीं रुक जाओ! एक भी क़दम और उठाया, तो मारे जाओगे।'

वे एक बार फिर भयंकर चीख मारते हैं और आगे बढ़ते आते हैं।

तुम मेरा हाथ पकड़ लेती हो और कहती हो, 'प्यारे बेटे, भगवान के लिए, उनसे दूर रहो।'

मैं कहता हूं, 'मां, तुम बस देखती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाओ।'

फिर मैं अपने घोड़े को एड़ लगाता हूं। वह सरपट दौड़ने लगता है; मेरी तलवार और फेंटा एक-दूसरे से टकराते हैं।

लड़ाई इतनी भयावह होती है, मां, कि तुम अपनी पालकी से देख सको, तो तुम कांपने लगो।

उन लोगों में से अनेक भाग जाते हैं, अनेक टुकड़े-टुकड़े होकर गिर जाते हैं।

मैं जानता हूं, तुम अकेली बैठी सोच रही हो कि तुम्हारा बेटा अब तक मर गया होगा।

लेकिन रक्त से पूरी तरह सना मैं तुम्हारे पास आता हूं और कहता हूं, 'मां; लड़ाई खत्म हो गयी।'

'मेरा बेटा आज मेरे साथ न होता, तो पता नहीं क्या होता!'

हर रोज़ हज़ारों बेकार की बातें होती हैं; फिर ऐसी कोई घटना क्यों नहीं हो सकती?

यह घटना किसी किताबी कहानी जैसी ही होगी।

मेरा भाई कहेगा, 'क्या ऐसा हो सकता है? मैं सोचता था, वह बड़ा नाजुक है!'

हमारे गांव के लोग भी आश्चर्य से भरकर कहेंगे, 'क्या यह भाग्य की बात नहीं थी कि बेटा मां के साथ था?'

रूपांतरकार : सुदीप

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्त्री-स्वातन्त्र्य : स्थिति परिवर्तन और साहित्य

राजी सेठ का विचारोत्तेजक लेख

किसी के भी लिए स्वतंत्रता के प्रश्न का बार-बार उठाया जाना इस बात का द्योतक है कि स्वतंत्रता से वह अब तक वंचित रहा है और स्वतंत्रता उसे वांछित है। स्त्री के संदर्भ में इधर इस बात की चर्चा, स्त्री की नियति के अतीत और वर्तमान पर एक साथ प्रकाश डालती है। पुरुष द्वारा किये गये विधान में उसकी ऐतिहासिक स्थिति अब तक क्या रही है, यह सर्वविदित है।

स्त्री सामाजिक पंगुता में रहे या उसके अधिकारों पर कुठाराघात किया जाये, ऐसा कोई विधान, वैधानिक न्याय में विश्वास रखने वाले सभ्यता के पोषक पुरुष ने कभी नहीं किया, अतः उसको न मानते होने का दबाव उसकी जातिगत अंतरात्मा पर कभी नहीं पड़ा, परंतु सामाजिक न्याय की तुला को अपने हाथ में रखकर अपनी जाति को सर्वकाल के लिए वज़नदार तौल ज़रूर लिया। ऊंची कुर्सी पर जमकर बैठे पौरुषीय न्याय ने स्त्री को सदा के लिए सामने खड़ा तो रखा, पर यह खड़ा रखना कभी अपराध साबित करने की मुद्रा में नहीं था। न घृणा, न द्वेष, न वैर, न आरोप, कुछ भी नहीं—मात्र अवहेलना—शुद्ध शाश्वत अवहेलना.... पूरी उदासीनता . . . . उसके अस्तित्व से पूरे का पूरा नकार। उस सारी सामाजिक व्यवस्था में वह आज तक किसी न किसी ऐसी चिन्ह की तरह रही जो किसी न किसी ज़रूरत को पूरा करने के लिए संपत्ति की तरह रखी जाती है और अपनी संपत्ति के प्रति जैसी जकड़, जैसी संकीर्ण सावधानी मन में होती है, उसके प्रति भी पूर्ण रूप से विद्यमान रही। किसी ने उसे यह नहीं बताया कि वह विश्व की आधी जनसंख्या का निर्माण और प्रतिनिधित्व करती है तथा मानवी है। न तो वह हवा में उड़कर धरती पर पड़े बीज में से जन्म पा सकने वाले वानस्पतिक जगत की है, न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जंगलों में सहज पल जाने वाले पशु जगत की है। मानव और मानव के बीच इतना अधिक दुराव, सभ्यता के विकास के लिए प्रतिबद्ध पुरुष जाति के अनैतिक श्रेष्ठत्व का ज्वलंत उदाहरण है।

कारणों पर जाना एक जाति के पूरे सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास से जूझना है, फिर भी संक्षेप में उस ज़मीन को टटोला जा सकता है जिसमें एक से मानवीय पारिवारिक परिवेश में रहते हुए ऐसी दोहरी दृष्टि पनपी होगी। लड़की बोझ है; क्योंकि वह घर की अर्थव्यवस्था में किसी तरह सहायक नहीं। उसकी प्रतिबद्धता इस घर की नहीं, पराई है। उसके होने की स्थिति घर से दहेज के रूप में धन-संपत्ति के निकास की स्थिति है। वह एक पहाड़ है जिसे ठिकाने लगाना है। वह अत्यंत शीलवान है अतः खंडनीय है। वह मर्यादा स्वरूप है अतः आक्षेप्य है। वह दुर्बल है अतः प्रहार्य है। वह संभावी मां है, अतः आक्रमणीय है। एक धुआं है, जो गीले ईंधन के सुलगते होने की-सी मानसिकता में से घर से उठता रहता है और सबको घोटता रहता है। उसे भी जल्दी ही लगने लगता है कि यह उसके व्यक्तित्व की प्राकृत वास्तविकता है, जिसे दीन-हीन भाव से स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। उसकी मानसिक शिक्षा-दीक्षा का यही रंग-रूप है। इस परिवेश में व्यक्तित्ववान हो सकना अकल्पनीय है।

मन में कहीं अटक जाता है, इस घर की ज़िंदगी उधार की ज़िंदगी है। यहां के सपने झूठे सपने हैं (विडम्बना है कि चिंता और ध्यान एक प्रकार की अपूर्ति और अतृप्ति से दूसरे प्रकार की पूर्ति और तृप्ति में जाने पर है, आत्म-विकास पर नहीं)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो कुछ भी अच्छा, सुंदर, सुखद, प्रीतिकर होगा, उस घर में होगा। पति देवता होंगे, घर मंदिर होगा, रास्ते फूलों के और दीवारें चांदनी की होंगी पर वह घर भी उन सब घरों जैसा एक घर होता है अति वास्तविक और यथार्थ। रिश्ते वहां जन्म-जात नहीं होते—त्याग, तपस्या करके, कीमत दे-देकर बनाये जाते हैं। अधि-कारों, कर्तव्यों की बांट वहां और भी निराली होती है . . . । अपनी सुध वहां स्वार्थ कहलाती है । पति देवता नहीं, मनुष्य होता है—शुद्ध मनुष्य (मनुष्य को मनुष्य की तरह देखने की सीख और तैयारी यदि बचपन से होती तो शायद इतना आघात न लगता, मोहभंग की टूटन से बचाव हो जाता और कुछ शक्ति का सदु-पयोग हो पाता) वहां कर्तव्यों ही कर्तव्यों की शृंखला में अधिकार मिल भी गये तो साग-भाजी, दूध-दही खरीदने तक . . . आगे.... और आगे .... और आगे तक एक ऐसा समुद्र दीखता है जिसका दूसरा सिरा उसे कभी दिखाई नहीं देता । उसे यहां भी संतुष्ट हो जाना चाहिये; क्योंकि सुरक्षा संरक्षण में उसकी गुज़र हो रही है ।

सवाल उठता है, इस गुज़ारे की सीमा यदि बढ़ा दी जाये, कुछ बड़े व्यय करने की सुविधा मिल जाये तो क्या सुधर जायेगी स्थिति ? मिल जायेगी आत्म-संतोष और आत्मसंपन्नता ? बात एक बाहरी ओढ़े हुए अधिकार की नहीं भीतरी विश्वास की है, जो सारी गति का विधान करता है । कोई व्यक्तित्व संपन्न हो तो उसे कुछ भी दिया जा सकता है—आर्थिक सामाजिक अधिकार भी, परंतु यही गुण प्रखर रूप से अनुपस्थित रहा है । उसकी योग्यता कभी पनपने नहीं दी गयी। अतः अस्मिता का प्रश्न नहीं उठता । आत्म-संपन्न व्यक्ति अपने विकास के ऊपरी सोपानों में स्वयं अस्मितावान हो जाता है।

अस्मिता, एक जाति के संदर्भ में सामू-हिक होती है । पुरुष एक समूह रूप में, जाति के रूप में स्वतंत्र है, कर्ता है, अतः इकाई रूप में भी वह सर्वत्र—सारे भौगो-लिक देश काल में भी स्वतंत्र है। स्त्री किन्हीं घरों में स्वतंत्र भी है, उसकी स्थिति बेहतर भी है, कहीं-कहीं वह कर्ता भी है, फिर भी वह स्वतंत्र नहीं कही जा सकती; क्योंकि उसकी सामूहिक अस्मिता कहीं भी इतनी स्वीकृत नहीं है, जो देशकाल के प्रश्न को बरतरफ रखकर उसकी स्वतंत्रता के अधिकार को यकसां तय कर दे । उसका संघर्ष अभी तो सामूहिक या जातिगत संघर्ष है, जिसमें यत्र-तत्र दीखने वाली स्वतंत्रता मरुस्थल में हरितभूमि की-सी प्रतीति देती है।

अस्मिता की चिंता तो विकास का उन्नत सोपान है, पर यहां एक जाति की—अपने कर्म, परिणाम और योगदान के स्तर पर—कुल जमा वास्तविकता यही रही है—पराये विवेक के सहारे कोल्हू के बैल की तरह उसी-उसी घेरे में घूमना । तवज्जह के लिए छोटी-छोटी बातों के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिए चीखना-चिल्लाना । शादी-ब्याह, तिथियों-त्यौहारों नहीं तो लड़ाई-झगड़ों के शोर और व्यस्तता की सतत प्रतीक्षा करना। बेटे या पति या परिवार के किसी और ज़रूरतमंद की चिंताओं में अपने को एकलय कर सकने की सार्थकता को तलाशते होना । मुट्ठी में भरे हुए पानी की तरह अवास्तविक होकर रीत जाने वाले बाहर के रसहीन संसार से मुख मोड़कर अपने भीतर के रूमानी स्वप्नों में आत्मलीन होते होना। पति की घर में उपलब्ध टुकड़ा भर मानसिक और दैहिक उपस्थिति की छाया (पुरुष का अधिकतम और सर्वोत्तम अपने कार्यक्षेत्र में व्यक्त होता है, घर में वह एक बेपरवाह, बेध्यान, निश्चिंत और असावधान मुद्रा में रहता है) में खुलते-खुलते छोटे से छोटा होते जाना और अपनी भावनाओं और गुणों का आकलन मूल्यांकन, पौरुषीय संस्कार की दृष्टि से कर-करके अपने को अपराधभाव और आत्मदया से आवेष्टित करते रहना । कहना व्यर्थ है कि वह आत्मरत क्यों है, उसकी सोच का क्षितिज छोटा और चिंताएं छोटी क्यों हैं ? क्यों अपने केंद्र में ही धंसे होने से अधिक सुरक्षा का स्थान उसे कोई दूसरा नहीं दीखता ।

इधर अरसे से स्थिति में कुछ परिवर्तन हो रहा है । विकास के नियम के अधीन पनपने वाली सभ्यता की क्रियाशीलता के तहत होने वाले स्वाभाविक परिवर्तनों ने उन चीजों को भी जागृत कर दिया है, जो अभी तक निश्चेष्ट पड़ी थीं । स्त्री की सामाजिक स्थिति में भी इस दौर में बड़ा परिवर्तन आया है यद्यपि यह परिवर्तन अधिकांशतः वहीं तक सीमित है, जहां तक शिक्षा की उजास पहुंची है । समाज अब तक भी चल रहा था, अब भी चलता रहता परंतु शिक्षा के अधिकार और सुविधा ने भीतर कहीं आत्मचेतना के बीज डाल दिये हैं और स्वतंत्रता का प्रश्न एक अहम प्रश्न बन गया है । यह बात विचारणीय है कि अशिक्षित या फिर खेत में घास खोदती, हल चलाती, पत्थर तोड़ती स्त्री स्वतंत्रता-अस्मिता की बात नहीं करती या तो वह अपने लिए निर्धारित कर्म में अधिक स्वतंत्र है या उसे इस ज़रूरत का कोई एहसास ही नहीं ।

शिक्षा सबको मिले यह एक राष्ट्रीय फैसला था । समानता सबका अधिकार हो, यह एक प्रजातांत्रिक वैधनिक मांग है। एक राष्ट्रीय हित का फैसला, राष्ट्रीय कारणों से कार्यान्वित होता है; स्त्री उसमें मात्र एक प्रापक वर्ग है—एक पिछड़ा हुआ वर्ग, परंतु वह छोटा-सा अधिकार जो उसे सामाजिक न्याय की बांट में मिला है, उसका उसने अपनी तरह उपयोग कर लिया है । वह विकास और प्रगति के बीजों को जल्दी आत्मसात करती है, क्योंकि उसमें भी वही विकासोन्मुख मानवीय चेतना है—अपने मौलिक, नैसर्गिक रूप में पुरुष के ही जैसी । उसके मन में अब तक के सुविधा-वंचित होने की व्यथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, जो उसे अपने कर्म में कुछ अतिरिक्त लगन देती है और उसकी सद्यः विकसित मानसिक संरचना में वह सुविधापरस्त परितोष भी नहीं है जो प्राप्तियों, उपलब्धियों के बीच युगों तक बने होने से आवश्यक रूप से व्यक्तित्व पनप जाता है। समय के इस खेप की स्त्री सचेत, जिज्ञासु, श्रमशील, तत्पर और जुझारू स्त्री है, अतः उसकी ऊर्जा जल्दी फल देने लगी है। कहना न होगा कि उसकी रचनात्मक ऊर्जा (दैहिक और मानसिक—यदि अनुकूलता में पोषित की जाये तो) अधिक है जैसी कि रचनात्मक सहिष्णुता अधिक। अधिक से अधिक ऊर्जा व्यय के बाद भी उतनी आसानी से वह चुकती नहीं। अपनी मर्यादाओं और सीमाओं के सांप की तरह लंबे होते होने के बावजूद, कुछ वैसी ही लचकीली, त्वरित क्षमता से वह सामंजस्य के सत्व तक पहुंचती रही है। सामंजस्य के लिए उसकी क्षमता पुरुष की अपेक्षा अधिक ग्रहणशील है।

यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि उसकी स्थिति में जो भी परिवर्तन हुआ है, वह किसी दूसरी स्थिति के परिणाम के फलस्वरूप हुआ है, किसी अभियान के रूप में नहीं। कोई भी अभियान अंतःचेतित होता है, दूसरों द्वारा वह उठाया भी नहीं जा सकता। उसकी सलीब व्यक्ति, वर्ग या जाति को स्वयं ढोनी पड़ती है। एक सामूहिक भावना से प्रेरित होकर अन्याय का प्रतिकार करने और अभियान उठाने के लक्षण आगे पनप सकते हैं, फिलहाल इस तरह की किसी स्थिति का योगदान इस विकास में लगभग अनुपस्थित रहा। एक व्यापक परिवर्तन के तहत ही उसकी स्थिति बदली है।

स्त्रियों का एक वर्ग—चाहे वह अभी छोटा ही है—स्वतंत्र विकसित आत्मचेतना संपन्न और अस्मितावान हो गया है। उसका बाहरी लक्षण आर्थिक स्वतंत्रता के रूप में और भीतरी अभिव्यक्ति की लालसा से प्रेरित है। यह अभिव्यक्ति उत्सुकता हर क्षेत्र में एक परीक्षण के रवैये से शुरू होकर उपलब्धि के लिए अपने को जांचने-परखने और तैयार करने की व्यापक तैयारी तक चली गयी है। ध्यान मात्र अपनी योग्यता और पात्रता को पाने तक ही नहीं, अब तक संदिग्ध दृष्टि से देखे जाने वाले अपने अस्तित्व को स्वीकार करवाने की ओर भी है, वस्तुतः इस वर्ग की स्त्री के सम्मुख संकट अस्मिता का नहीं, अस्मिता की स्वीकृति का है। क्योंकि अस्मिता का समर्थन और स्वीकार पाये बिना किसी क्षेत्र में भी सक्रियता असंभव है। यह सक्रियता और सुविधा वह अधिक श्रम करके अपनी मर्यादाओं का अतिक्रमण करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाना चाहती है। फिलहाल उसके घर के दायित्व अभी वहीं के वहीं हैं, (उसकी शक्ति का अधिकतम उपयोग करने वाले) और एक 'बड़े बाहर' की चुनौती उसके दायित्वों के साथ जुड़ गयी है। दोहरे श्रम की थकान और प्रतिबद्धता के अनिश्चय के बीच वह एक आत्मविश्वासी आश्वस्त स्त्री की अपेक्षा एक ऐसी संघर्षशील स्त्री का चित्र प्रस्तुत कर रही है, जिसका मुख चाहे प्रकाश की ओर है, परंतु जिसके पैर अभी दलदल से लड़ रहे हैं।

इस आत्म-संलग्नता (अब तक वह मात्र दूसरों की चिंताओं से घिरी थी) ने उसके स्वतंत्रता के संघर्ष को आपसी संबंधों के स्तर पर और भी जटिल कर दिया है। युगों से पोषित पुरुष संस्कार की दृष्टि को स्त्री का किसी महत्त्वपूर्ण बिंदु पर खड़े होकर अपने लिए नया विधान करने के औचित्य को तौलते होना एक प्रकार की अवज्ञा का-सा लग रहा है और अब तक स्त्री के प्रति चलता आया उसका उदासीनता का रवैया भी उसकी कुछ सहायता नहीं कर पा रहा; क्योंकि चुनौती सीधे उसको, उसके 'स्व' को, मिल रही है—उसके जातिगत संस्कार को, उसके भीतर के सर्वरूप संरक्षक को, कर्ता को, सृष्टा को, पोषक को, दाता को, निर्माता को, पथ-प्रदर्शक को, उसकी स्थिति और स्थान, योग्यता और पात्रता के पूरे के पूरे विधान को। बाहर से ठोस और निश्चेष्ट दीखने वाली धरती के नीचे खलबलाता

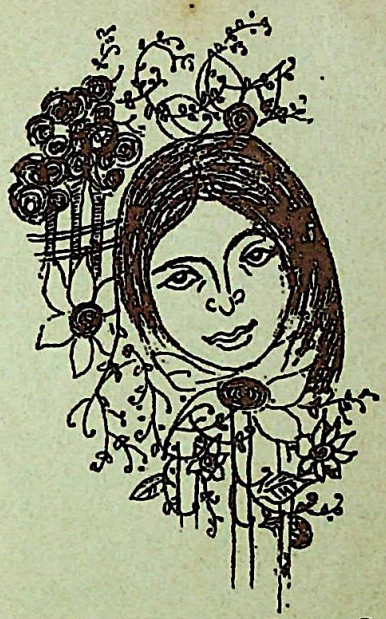

हुआ चैतन्य पुरुष की जातिगत अस्मिता के परितोष में किसी भूकंप के करवट ले उठने की थरथराहट का उद्वेग पैदा कर रहा है। यह थरथराहट किसी व्यक्तिगत उपलब्धि या कुछ जोड़ी चरणों की थपथपाहट न होकर दरवाज़े पर अंततः आ खड़े होने वाली स्त्री की जातिगत अस्मिता की आरंभिक दस्तक है, जिसमें एक आवेग है, और सामूहिक चैतन्य का प्रस्फुटन। एक अकेली आवाज़ की ऊंचाई या गहराई सामने वाले की सामूहिक सुरक्षा को हिला या चौंका नहीं सकती। व्यक्तिगत अस्मिता इतनी दुर्लभ होती भी नहीं, हर देश काल में मिल जाती है। स्त्रियों का इतिहास भी उससे खाली नहीं रहा। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत स्तर पर परिवारों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सामंजस्य सधता आया है और पारस्परिकता के गुण भी पनपते आये हैं।

यह प्रतिक्रिया चाहे संक्रमण काल में उपजी अस्थायी स्थिति ही है। फिर भी चोट उस स्थान पर पड़ रही है जो स्त्री-पुरुष के बीच सबसे मूल्यवान और कोमल स्थल है—भावात्मक पक्ष और पारस्परिक सामंजस्य की भावना। आघात वस्तुतः युगों से पोषित पुरुष के संस्कारों पर ही रहा है, पर चूंकि पुरुष प्रधान समाज में पुरुष ही पूरे समाज के न्याय का अधिष्ठाता रहा है, अतः सामाजिक प्रणाली पर आघात पुरुष पर आघात हो जाता है और आदान-प्रदान की पारस्परिक सहजता को बाधित करता है, परंतु अपने नैसर्गिक कारणों से यह स्थिति बहुत दिनों तक बनी नहीं रह सकती। परिवर्तन दोनों ओर से होता है। एक नये संबंध विधान की रचना अंततः होगी ही, परंतु इस समय इसे स्त्री की अस्मिता की स्वीकृति के संकट के एक और पहलू की तरह देखा जा सकता है। अस्मिता की स्वीकृति का संकट अस्मिता के मूल संकट से छोटा नहीं है। यह बात अलग है कि एक अस्तित्व की शर्त है, दूसरी विकास की, और अस्तित्व का प्रश्न निपट जाने पर ही स्वीकृति का प्रश्न उठता है।

स्वतंत्रता के प्रश्न को मात्र आर्थिक स्वतंत्रता के प्रश्न में समेटकर देखे जाने की प्रवृत्ति भी पनप रही है जबकि यह मात्र एक बाहरी सक्रियता है। एक ऐसी चीज़ की उपलब्धि जो अब तक उसे उपलब्ध नहीं थी यदि ऐसा होता तो पश्चिम की वैभव-संपन्नता में नारी-मुक्ति का आंदोलन खड़ा न होता।

इसमें संदेह नहीं कि आर्थिक स्वतंत्रता से उसकी स्थिति में गतिशीलता आती है, परंतु आर्थिक रूप से स्वतंत्र नारी का संघर्ष आर्थिक रूप से स्वतंत्र पुरुष से तब भी भिन्न रहेगा, क्योंकि एक चीज़ के सध जाने से पूरी जीवन पद्धति सध नहीं जाती। अभी भी क्यों ऐसा है कि आर्थिक रूप से स्वतंत्र नारी (विशेष मध्यवर्गीय) अपनी मनोवृत्ति में पुरुष द्वारा मिली सुरक्षा और संरक्षण की ही आकांक्षी है। अपने नैतिक-सामाजिक आचरण का निर्धारण वह अपने दायित्वबोध और आत्मविश्वास से न करके पुरुष की इच्छा, अपेक्षा के अनुकूल करना चाहती है तब ऐसा न कर पाने पर एक अपराधीभाव उसमें पनपता है, अपने पक्ष के प्रकाशन और समर्थन की प्रेरणा नहीं। स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाला आत्म-प्रत्ययों के प्रति भीतरी विश्वास अभी उसमें जागृत नहीं हो पाया, फिर भारत जैसे देश में जहां हिंसा शारीरिक अत्याचार, मानसिक पीड़न, दहेज, पक्षपातपूर्ण बर्ताव और नारी द्वारा नारी के शोषण जैसी स्थूल कुरीतियां अभी मौजूद हैं, वहां संघर्ष अभी काफी निचले स्तर पर है। मात्र आर्थिक स्वतंत्रता अर्जित करके स्वतंत्रता की उन्नत मानसिकता में क्रियाशील हो जाने की कल्पना करना ग़लत है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यहां प्रश्न पहले परिपोषक वातावरण में मिली वाहरी समानता का है। मात्र आंदोलनों से यह अनुकूलता नहीं मिलती। आंदोलनों की वात दूसरे देशों से उठायी गयी है जहां आर्थिक सुरक्षा वर्षों से है और वैभव-संपन्नता की एकरसता से लड़ने के लिए किसी भी चीज़ को जीवन में अतिरिक्त आवेग का संचार करने के लिए भी अपनाया जाता है। हर प्रत्यय हर देश में अपनी जलवायु के अनुकूल पनपता है, चाहे वह कितना ही देशकाल निरपेक्ष क्यों न हो, देशीय जातीय स्थितियों में उसका गुंफन ही उसके अपने विशिष्ट स्वरूप को निर्धारित करता है।

असल में स्वतंत्रता का प्रत्यय किसी न किसी के विरुद्ध या पक्ष में तना हुआ कोई तेवर नहीं है। स्वतंत्रता पुरुष से या रूढ़ि से, संस्कार से, समाज के विधान से पाने का प्रश्न भी नहीं है। स्वतंत्रता है आत्म-विश्वास और आत्मसंपन्नता की सुविधा को पाना, अपने परिवेश और परिस्थितियों के बीच सार्थक कर्म के चुनाव, सुविधा दिशा को अर्जित कर सकना और उसके अनुकूल आत्मविकास में प्रवृत्त हो सकना। शरतचंद्र ने कहीं लिखा था कि अंडे को फोड़ देने से उसके भीतर का जीव मुक्त नहीं हो जाता। उस कड़े खोल से मुक्ति जीव को स्वयं प्राणवान होकर अर्जित करनी पड़ती है। आत्मसंपन्न व्यक्ति—स्त्री हो या पुरुष—अपना अधिकार स्वयं कमा लेता है और समाज में अपने लिए स्थान और आश्वासन भी पा लेता है। पुरुष एक जाति के रूप में इसी सुविधा के कारण कर्मठ हुई है और स्त्री इसी के अभाव में कुंठित।

मात्र वैधानिक आलेखों और दवावों से मक्ति नहीं मिल सकती। सामाजिक न्याय या अन्याय की कार्यशीलता प्रायः इन आलेखों से आगे चल निकलती रही है जैसे व्यक्तिगत तेजस्विता सामाजिक विधान से भी आगे। इतिहास साक्षी है कि व्यक्ति की आत्म-संपन्नता, तेजस्विता और योग्यता ने पूरे समाज और उसकी रूढ़ियों को चुनौती दी है। यों भी एक व्यक्ति, परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया में समाज या राज्य से ज़्यादा स्वतंत्र और लचीला होता है। आज स्त्री को जितनी भी स्वतंत्रता मिली है, इकाई रूप में, उसके भीतर आत्म-संपन्नता बढ़ जाने के कारण मिली है, ढांचे के रवैये के कारण नहीं, बल्कि आत्म-संपन्नता बढ़ने से ढांचे के अपने स्वरूप में तब्दीली आ रही है। वस्तुतः व्यक्तित्व-संपन्नता की दिशा ही स्वतंत्रता की प्रथम और अंतिम दिशा है।

लेखक स्त्री ऐसी ही आत्म-संपन्न स्त्री है अतः अधिक जिज्ञासु, स्वतंत्र और आत्म-विश्वासी भी। सामान्य नारी से उसकी संलग्नता जातिगत या सामाजिक कही जायेगी अन्यथा वह सामान्य नारी का प्रतिनिधित्व नहीं करती, क्योंकि उपलब्धि के स्तर पर वह अस्मितावान है और संघर्ष

(शेषांश पृष्ठ २२५ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वामी गम्भीरानन्द द्वारा लिखित
श्री श्रीसारदा माँ की जीवनी में
आलेखित एक मार्मिक प्रसंग

□

भगवान परमहंस की सोहागरात

श्रीरामकृष्ण के भानजे श्री हृदयराम मुखोपाध्याय का घर शिहड़ में था। इस नाते श्रीरामकृष्ण वहां आया-जाया करते थे। श्रीमां का ननिहाल भी उसी ग्राम में था। इसके अतिरिक्त वहां के उत्सवों, कीर्तनों आदि में सम्मिलित होने के लिए जयरामबाटी तथा आस-पास के गांवों के लोग वहां जाया करते थे। ऐसे ही एक बार हृदय के घर में गाने के अवसर पर एक मज़े की घटना हुई, जिसका उल्लेख 'श्रीश्री रामकृष्ण-पोथी' में पाया जाता है (खंड २, विवाह)। छोटी बालिका सारदा गाने की एक मजलिस में एक महिला की गोद में बैठी हुई थीं। गीत समाप्त हो जाने पर उस स्त्री ने विनोद में सारदा से पूछा, 'इस जगह बहुत से लोग इकट्ठे हैं। इनमें से किसके साथ तू विवाह करना चाहती है?' सारदा ने तुरंत दोनों हाथ उठाकर समीप ही बैठे हुए श्रीरामकृष्ण को दिखा दिया। जिस दिन मां इस प्रकार स्वयंवरा हुईं, उस दिन उन्हें सांसारिक दृष्टि से 'विवाह' शब्द का अर्थ ज्ञात नहीं था। किंतु जिस दैव-प्रेरणा से उन्होंने अपने पति को हाथ फैलाकर बतला दिया, उसी दैव-विधान से उनके सत्यसंकल्प मन की अभिलाषा कुछ वर्षों में पूर्ण हुई।

श्रीमां ने उस समय पांचवें वर्ष को पार कर छठे वर्ष में पैर रखे थे। दूसरी ओर दक्षिणेश्वर के श्रीकाली मंदिर में श्रीरामकृष्ण की देह और मन के सहारे युगधर्म-प्रवर्तन के उद्योग के रूप में साधना का प्रबल झंझा चल रहा था। उससे अज्ञ व्यक्ति यह अनुमान लगाने लगे कि उनका मन डांवांडोल हो गया है। उनके वायु-रोगग्रस्त के समान व्यवहार अतिरंजित होकर उनकी माता चंद्रमणि के कान तक पहुंचे। माता चंद्रमणि अपने ज्येष्ठ पुत्र रामकुमार के वियोग से अत्यंत दुखी थीं ही, अब कनिष्ठ पुत्र की इस अवस्था का वृत्तान्त पाकर उनकी मानसिक व्यथा का पारावार न रहा। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को तुरंत अपने पास बुला लिया, और स्वजनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा मित्रों के परामर्श से उन्हें अच्छा करने के लिए औषधि-प्रयोग, शांतिपाठ, झाड़-फूंक इत्यादि कराने लगीं। पर इन प्रचलित उपायों से कोई लाभ न हुआ; परंतु साधना की तीव्रता से श्रीजगदंबा का अधिकाधिक दर्शन पाने के कारण श्रीरामकृष्ण का मन और बाह्य आचरण क्रमशः साधारण भूमि पर आने लगे। जननी को इससे कुछ ढाढ़स तो अवश्य हुआ, पर दुश्चिंताओं से पूर्ण मुक्ति नहीं मिली।

अन्य लोगों की तरह वे भी इस सिद्धांत पर पहुंचीं कि सांसारिक उदासीनता के कारण श्रीरामकृष्ण का मन फिर बिगड़ सकता है। अतः मंझले पुत्र श्री रामेश्वर से सलाह करके वे इस वैराग्यमय हृदय को विवाह-बंधन से बांधने के लिए छिपकर कन्या की खोज करने लगीं। किन्तु उनके सारे प्रयास निष्फल हुए। अंत में श्रीरामकृष्ण ने सारा वृत्तांत जानकर विरक्ति के स्थान पर बालक-सुलभ आनंद और उत्साह प्रकट करते हुए कहा, 'जयरामबाटी के श्रीरामचन्द्र मुखर्जी के घर जाकर देखो कि कन्या मेरे लिए चिन्हित कर रखी गयी है।' इस सार्थक संकेत के अनुसरण से कन्या के निर्वाचन में और विलंब नहीं हुआ। विवाह का शुभमुहूर्त भी निश्चित हो गया। संवत १९१६ वि. वैशाख में श्री रामेश्वर अपने कनिष्ठ भाई श्रीरामकृष्ण को लेकर जयरामबाटी में श्री रामचंद्र मुखोपाध्याय के घर उपस्थित हुए। शुभलग्न में श्रीमती सारदामणि देवी के साथ श्रीरामकृष्ण का विवाह संपन्न हुआ। विवाह में वरपक्ष की ओर से कन्या के पिता को तीन सौ रुपये मिले। श्रीरामकृष्ण ने उस समय चौबीसवें वर्ष में पदार्पण किया था।

शिव-शक्ति : खजुराहो

विवाह के समय के संबंध में श्रीमां कहा करती थीं, 'खजूर पकने के दिनों में मेरा विवाह हुआ। महीने की याद नहीं है। दस दिन के बीच जब मैं कामारपुकुर गयी, तब मैंने वहां, खजूर चुने थे। कामारपुकुर के ज़मींदार धर्मदास लाहा ने आकर कहा, 'इसी लड़की से विवाह हुआ है?' सूर्य के पिता (ईश्वर मुखोपाध्याय) अपनी गोद में मुझे कामारपुकुर ले गये थे।'

जयरामबाटी से श्रीरामकृष्ण श्रीमां को लेकर कामारपुकुर गये। इसके थोड़े ही दिन पश्चात् वे दक्षिणेश्वर लौटकर फिर साधना-सागर में डूब गये। इधर श्रीमां भी जयरामबाटी आयीं और पहले की भांति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

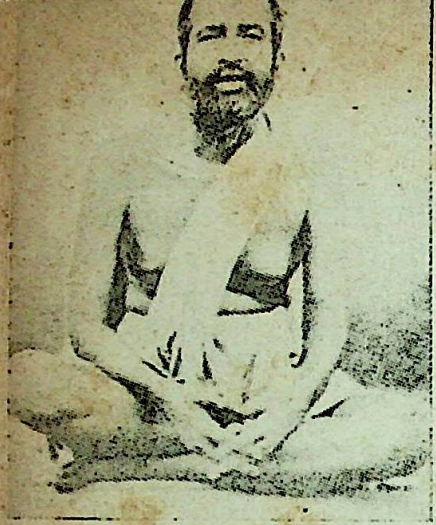

श्री श्रीभगवान परमहंस

स्नेहमयी माता के संरक्षण में ग्राम-सौन्दर्य के बीच अपने ढंग से बर्धित होने लगीं।

इसके पश्चात् तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था में श्रीमां दो बार कामारपुकुर गयीं; श्रीरामकृष्ण उस समय दक्षिणेश्वर में साधना में निमग्न थे। ससुराल में श्रीमां के जेठ, जेठानी और अन्य संबंधी थे। उनकी सास तब दक्षिणेश्वर में गंगा-तट पर निवास करती थीं। कामारपुकुर से पहली बार जयरामबाटी लौटकर श्रीमां पांच-छह महीने रहीं। इसके बाद फिर ससुराल जाकर डेढ़ महीने रहीं। इस बार नैहर में आकर वे चार महीने तक रहीं। इसी के पश्चात् संवत् १९२४ वि. में श्रीरामकृष्ण भैरवी ब्राह्मणी और हृदय को लेकर अपने ग्राम पधारे और श्रीमां को वहां लिवा लाये। इस बार श्रीमां वहां लगभग सात महीने रहीं।

सात महीने गांव में रहने के पश्चात् दक्षिणेश्वर लौटकर श्रीरामकृष्ण कामारपुकुर की सारी बातें भूलकर साधना में निमग्न हो गये। लेकिन कठिन साधनाओं के अंत में स्वास्थ्य गिर जाने के कारण, चिकित्सकों के परामर्श से उनको सं० १९३७ वि. तक कई वर्ष बरसात में कामारपुकुर जाकर चातुर्मास्य व्यतीत करना पड़ा। उस समय श्रीमां भी वहां उपस्थित हो जाती थीं। इस सुदीर्घ काल में श्रीमां कितनी बार ससुराल गयीं और वहां कौन-कौन सी घटनाएं घटीं, उनकी जानकारी का अब कोई उपाय नहीं है। फिर भी श्रीमां आदि की स्मृति के आधार पर दो-चार घटनाएं संरक्षित हैं, उनके अधिकांश का समय बतलाना असंभव है।

संवत् १९२४ वि. में दीर्घ साधना के पश्चात् हृदय और भैरवी ब्राह्मणी के साथ श्रीरामकृष्ण कामारपुकुर आये; श्रीमां को भी वहां बुलवा लिया। उन्होंने पहले ही आनुष्ठानिक रीति से संन्यास ग्रहण किया था, लेकिन संन्यासगुरु श्री तोतापुरी के मुख से सुन रखा था, 'स्त्री के निकट रहने पर भी जिसके त्याग, वैराग्य, विवेक, विज्ञान सदैव अक्षुण्ण बने रहें, वही ठीक-ठीक ब्रह्म में प्रतिष्ठित हुआ है। स्त्री और पुरुष दोनों को ही जो समभाव से आत्मा के रूप में देखता है और उसके अनुरूप व्यवहार करता है, उसी को वास्तविक ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई है। स्त्री-पुरुष के बीच भेद रखनेवाले दूसरे व्यक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साधक भले ही हों, किंतु ब्रह्मज्ञान से बहुत दूर हैं।' ('लीलाप्रसंग', साधकभाव, १७ वां अध्याय)। तत्वदर्शी तोतापुरीजी ने यह भी कहा था कि श्रीरामकृष्ण के समान निर्विकल्प-समाधिवान् पुरुष यदि निर्विकार चित्त से अपनी सहधर्मिणी के प्रति अपना कर्तव्य पालन करे तो धर्महानि नहीं है। अतएव हम सहज ही समझ सकते हैं कि सरल, सत्यनिष्ठ, धर्मसाधना में अद्वितीय साहसी श्रीरामकृष्ण ने श्रीमां को क्यों सादर ग्रहण किया था।

श्रीमां भी सात महीने तक उनके पावन सान्निध्य में अनुपम आनंद प्राप्त करके अगहन महीने में जयरामबाटी चली आयीं। श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य से उत्पन्न पूर्वोक्त आनन्द की उपलब्धि से उनके रहन-सहन, बोलचाल आदि में जो एक परिवर्तन हुआ, उसे हम भलीभांति समझ सकते ह; किंतु साधारण लोगों ने इसे शायद ही समझा हो, क्योंकि उस आनंदोपलब्धि ने श्रीमां को चपल न बनाकर शान्त स्वभाव, प्रगल्भ न बनाकर चिंताशील, स्वार्थ-परायण न बनाकर निःस्वार्थ-प्रेमिका बना दिया और उनके हृदय के सारे अभावों को दूर करते हुए जनसाधारण के कष्टों के प्रति अनंत संवेदनशीला बनाकर धीरे-धीरे उन्हें करुणा की साक्षात् प्रतिमा के रूप में परिणत कर दिया। ('लीला-प्रसंग', साधकभाव, २० वां अध्याय)।

ooo

जयरामबाटी लौटने पर श्रीमां ने देखा

श्री श्रीमां सारदादेवी

कि ग्राम की शोभा पहले की ही तरह है; माता-पिता, भाई-बहन तथा आत्मीयों का प्रेमभाव भी समान है; नित्य के क्रिया-कलाप, वार्तालाप पहले की ही भांति चल रहे हैं; परंतु फिर भी प्राण के अंतर्गत कोई अस्फुट व्यथा रह-रहकर जाग उठती थी। कामारपुकुर में वे जिस दिव्य आनंद की अधिकारिणी हुई थीं, उसकी स्मृति उनके अंतःकरण में निरंतर बनी रहती थी, परंतु बाह्य-जगत् में उसकी कोई प्रतिच्छवि न पाकर वह पग-पग पर बाधा-प्राप्त होने लगी, और उसकी प्रतिक्रिया उनके हृदय को मथने लगीं। शरद् के पश्चात् हेमंत एवं हेमंत के पश्चात् शिशिर ऋतु का आगमन हुआ। श्रीमां केवल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्कंठित होकर प्रतीक्षा करने लगीं, यदि दैवात् आदान-प्रदान की समस्त बाधाओं को लांघकर उन नरदेव का (श्रीरामकृष्ण का) कोई समाचार उदासीनप्राय छोटे ग्राम जयरामबाटी में आ पहुंचे। देखते ही देखते दीर्घ चार वर्ष से भी अधिक समय (१९६७-१८७१ ई.) बीत गया।

इसी बीच दक्षिणेश्वर की एकाध ऐसी बातें यकायक आ पहुंची, जिससे ग्रामवासियों को कल्पना की सामग्री मिल गयी। और वे इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि श्रीरामकृष्ण पागल हो गये हैं। श्रीमां के मन या कार्यों में उस समय पहले की तरह उत्साह न रहा; वे यंत्रवत् सारे कार्यों को करती थीं, किंतु अहर्निश श्रीरामकृष्ण की विरह-व्यथा से उनके मुख पर कालिमा छा गयी। इससे सहानुभूति-संपन्न ग्राम-बालिकाओं की दृष्टि तो उनकी ओर आकृष्ट हुई, लेकिन जब वे अज्ञता और संकीर्णता से मिश्रित सहानुभूति प्रदर्शित करतीं, तभी मां का दुख घटने के बजाय बढ़ जाता और उनका जयरामबाटी में रहना असहनीय हो उठता। सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए वे श्रीमां को बता बैठतीं कि उनके पति अवज्ञा के पात्र हैं। फिर जिन्हें दूसरे के दुख से आनंद होता है, वे श्रीमां की ओर संकेत करके कहा करतीं, 'पागल की पत्नी है'; अथवा सहानुभूति प्रदर्शित करने के बहाने श्रीमां के मन में कठिन दुख उपजाकर कहतीं, 'अरी, श्यामा की लड़की का विवाह एक पागल के साथ हुआ है।' इन सब अवांछित बातों को सुनने के भय से माताजी किसी के घर नहीं जाती थीं एवं रात-दिन कार्यों में ही अपने को व्यस्त रखती थीं। सती को पति-निंदा असह्य होती है, इसीलिए उन्हें एक ही स्थान में पिंजरबद्ध पक्षी की भांति रहना पड़ता था। मन के बिलकुल ऊब जाने पर वे गांव की भक्तिमती, सहृदया रमणी भानु बुआ के घर के बरामदे में अपना वस्त्र बिछाकर पड़ी रहती थीं।

शुद्ध-स्वभावा भानु बुआ में कुछ अंतर्दृष्टि थी, जिससे श्रीरामकृष्ण के दिव्य भाव का आभास पाकर उन्होंने श्रीमती श्यामासुंदरी से कहा था, 'भाभी, तुम्हारे दामाद शिव हैं, साक्षात् कृष्ण हैं। इस समय तो तुम विश्वास नहीं कर पाती हो, पर बाद में करोगी, यह मैं कहे देती हूं।' विवाहोपरांत जब दूसरी बार श्रीरामकृष्ण जयरामबाटी आकर श्रीमां का गौना ले गये, उस समय रसिका भानु बूआ हरगौरी की बात स्मरण करके गाना गाने लगीं, 'नतिनी, तू तो है सुरूपा, पर तुझे वर मिला है नंगा बावला।' हमें स्मरण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रखना होगा कि श्रीमां का शरीर उस समय अच्छा था और रंग भी गोरा था। भानु बुआ द्वारा पहले-पहल ही श्रीरामकृष्ण और श्रीमां को हर-गौरी रूप में पहचान लेने पर भी उनके अत्यंत भाव-प्रवण होने के कारण उनकी बात सुनकर भी लोगों ने अनसुनी कर दी। तथापि सारे गांव में श्रीमां के लिए भानु बुआ का घर ही शांति का एकमात्र स्थान था।

परंतु इस तरह आत्मगोपन को आत्म-रक्षा का महान अस्त्र बनाकर अधिक दिन नहीं काटे जा सकते। यह बात अवश्य थी कि श्रीराम-कृष्ण के संबंध में जो थोड़ी सी बातें उनके कानों में पहुंचतीं, उन्हें सुनकर भी श्रीमां उन पर विश्वास नहीं करती थीं। जिन प्रेमघनमूर्ति के पावन सान्निध्य में रहकर कुछ ही दिन पूर्व उन्होंने अनिर्वचनीय आनंद प्राप्त किया था, जिनके दिव्य भाव ने उनमें भी संक्रमित होकर अपूर्व उल्लास उत्पन्न किया था, जिनकी परहित-चिंता देखकर वे आश्चर्यान्वित हुई थीं, जिनके ज्ञानपूर्ण उपदेश और हास्य-विनोद सभी को मंत्रमुग्ध की तरह दीर्घकाल तक बैठा रखते थे, वे पागल हैं, यह बिलकुल अविश्वसनीय है। किंतु ग्राम के नादान लोग तो श्रीरामकृष्ण की उच्चावस्था को समझते नहीं थे। इसलिए उनकी उद्दाम कल्पनाएं अबाधित गति से चलती ही रहती थीं, और उनकी समालोचना का भी अंत नहीं होता था। अतः सती-साध्वी के मन में यह बात आयी, 'सभी ऐसा कहते हैं, मैं स्वयं एक बार जाकर देख आऊं कि कैसे हैं।'

फाल्गुन की पूर्णिमा के (संवत् १९२८ वि.) शुभ अवसर पर उस तरफ की अनेक स्त्रियां गंगा-स्नान करने जा रही थीं। श्रीमां की भी इच्छा उनके साथ जाने की हुई। लज्जा और भय के कारण वे पिता से कुछ कह नहीं सकती थीं; पर मन का भाव एकदम छिपा रखना असंभव हो गया। अंत में उन्होंने सब कुछ एक स्त्री से खोलकर कह दिया, एवं उस स्त्री ने पिता रामचंद्र से सारी बातें बता दीं। उदारहृदय पिता ने सुनकर कहा, 'जायेगी? अच्छी बात है।' वे स्वयं ही पुत्री के साथ चले।

अपनी कन्या और साथियों के साथ रामचंद्र पैदल ही तारकेश्वर की राह से कलकत्ते रवाना हुए। उन्हें लगभग ६० मील की दूरी तय करनी थी। पहले तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमां सबके साथ खुशी से चलीं। मार्ग के दोनों तरफ विस्तृत मैदान, उनके बीच में हरी-भरी चैती फसल, कहीं घने वृक्षों से आच्छादित ग्राम और कहीं पद्मों से सुशोभित तालाब मन को मोह रहे थे। फिर बीच-बीच रास्ते पर पीपल और वट के विशाल वृक्ष पथ के पथिक को विश्राम के लिए आदरपूर्वक बुला रहे थे। ये सब देखते-देखते श्रीमां के प्रथम दो-तीन दिन तो अच्छी तरह कट गये। लेकिन दक्षिणेश्वर पहुंचने के लिए शरीर में स्फूर्ति और मन में अदम्य उत्साह होने पर भी मलेरिया की जगह में रहने के कारण मां का स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं था। विशेषकर, उनके जीवन में इतना लंबा सफर यही पहली बार हुआ। दूसरों को असुविधा होगी, पिता चिंतित होंगे, इत्यादि बातें सोचकर तथा अपने स्वाभाविक संकोच के कारण उन्होंने दो-तीन दिन तक अपने चलने की असमर्थता को छिपाया; परंतु अंत में प्रबल ज्वर से श्रीमां बिलकुल विवश हो गयीं और तब पिता-पुत्री को बाध्य होकर एक चट्टी में आश्रय लेना पड़ा। उस अवस्था में श्रीमां के दारुण दुख का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। ज्वर की यंत्रणा उनके जीवन में कोई नयी वस्तु नहीं थी; अतः उससे हताश होने का कोई कारण ही न था। उन्हें अपरिचित स्थान में रहने की भी उतनी चिंता नहीं थी। पर उनके लिए सबसे कष्टदायक अमिट समस्या यह थी कि वे आकांक्षित पति का दर्शन कब कर सकेंगी।

इस मनोवेदना और शारीरिक यंत्रणा के बीच उन्हें एक दिव्य दर्शन से शांति प्राप्त हुई। जिस समय श्रीमां ज्वर से बेहोश पड़ी थीं, उस समय उन्होंने देखा कि एक रमणी उनके पास आकर बैठ गयी। उसका रंग काला था; किंतु ऐसा सुंदर रूप उन्होंने कभी नहीं देखा था। वह बैठकर श्रीमां के शरीर और सिर को सहलाने लगी। उसके सुकोमल और शीतल करों के स्पर्श से शरीर का ताप तुरंत ही मिट गया। श्रीमां ने पूछा, 'अरी, तुम कहां से आयी हो?' नवागत रमणी ने उत्तर दिया 'दक्षिणेश्वर से।' श्रीमां इसे सुनकर अवाक् हो गयीं और बोलीं, 'दक्षिणेश्वर से?' मैंने सोचा था कि 'दक्षिणेश्वर जाऊंगी, उन्हें (श्रीरामकृष्ण को) देखूंगी, उनकी सेवा करूंगी, किंतु रास्ते में ज्वर आ जाने के कारण वह सब नसीब न हुआ।' उस रमणी ने कहा, 'ऐसा क्यों? तुम दक्षिणेश्वर अवश्य जाओगी। अच्छी होकर वहां जाओगी और उन्हें देखोगी। तुम्हारे लिए ही तो मैंने वहां उन्हें रोक रखा है।' श्रीमां ने कहा, 'सचमुच? तुम हमारी कौन हो?' रमणी ने उत्तर दिया, 'मैं तुम्हारी बहन हूं।' श्रीमां ने कहा, 'हां, तभी तो तुम आयी हो।' ऐसे वार्तालाप के पश्चात् ही श्रीमां को नींद आ गयी।

दूसरे दिन प्रातःकाल देखा गया कि श्रीमां को ज्वर नहीं है। उस दिव्य दर्शन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के उपरांत उनके मन में भी काफी उत्साह आ गया। अतः अब उनके पिता ने कहा कि इस अनजाने प्रदेश में निरुपाय होकर पड़े रहने से धीरे-धीरे बढ़ना अच्छा है, तब वे सानंद सहमत होकर पिता के साथ चल पड़ीं। सौभाग्य से थोड़ी ही दूर पर एक पालकी मिल गयी। रास्ते में फिर ज्वर हुआ, लेकिन उसका प्रकोप उतना असह्य न था। इसके अलावा वे तब विवश न थीं; इसलिए पिता की चिंता बढ़ाना अनावश्यक समझकर उन्होंने अपनी बीमारी किसी से नहीं बतायी। धीरे-धीरे लंबा रास्ता तय हुआ। रात्रि के नौ बजे वे सब दक्षिणेश्वर पहुंचे।

जयरामबाटी से आये हुए लोग जिस समय दक्षिणेश्वर में गंगाजी के घाट पर उतर रहे थे, उस समय श्रीमां ने श्रीरामकृष्ण को यह कहते हुए सुना, 'अरे हृदू (हृदय), अशुभ बेला तो नहीं है ? पहली बार आती है।' श्रीमां इस विषय में निश्चित थीं कि उन्होंने गंगा में नौका पर ही वह समय बिता दिया था। इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण की इस पहली बात में ही इतने गहरे प्रेम का स्पर्श था कि उसके आकर्षण से वे सीधे उनके कमरे में जा पहुंचीं। अन्य लोग नौबतखाना अथवा अन्यत्र चले गये। श्रीरामकृष्ण ने श्रीमां को देखते ही कहा, 'तुम आ गयीं ? अच्छा किया।' इसके बाद समीप के एक व्यक्ति को आज्ञा दी, 'अरे, चटाई बिछा दे।' घर में ही चटाई बिछ जाने पर श्रीमां उस पर बैठकर श्रीरामकृष्ण के साथ बातचीत करने लगीं।

श्रीरामकृष्ण को जब यह मालूम हुआ कि श्रीमां बीमार हैं, तो वे उनकी चिकित्सा की व्यवस्था और आराम की चिंता से व्याकुल होकर सखेद बारबार कहने लगे, 'तुम इतने दिनों के बाद आयीं ! क्या अब मेरा संझला बाबू (मथुर बाबू) है जो तुम्हारी देखभाल करेगा। मेरा दाहिना हाथ टूट गया है।'...तब से कई मास पूर्व (१६ जुलाई, १८७१) दक्षिणेश्वर के श्रीकाली मंदिर की प्रतिष्ठात्री रानी रासमणि के दामाद और श्रीरामकृष्ण के प्रथम रसददार श्री मथुरानाथ का देहांत हो चुका था। प्रथम दर्शन और वार्तालाप के पश्चात् श्रीमां ने नौबतखाना जाने की इच्छा प्रकट की; परंतु श्रीरामकृष्ण ने कहा, 'नहीं, नहीं। वहां तुम्हारे इलाज की असुविधा होगी; इसी कमरे में रहो।' श्रीमां के लिए अलग शैया बनायी गयी।

श्रीमाताजी श्रीरामकृष्ण के कमरे में उन्हीं के पास शयन करती थीं। किंतु यह तो साधारण दाम्पत्य-जीवन था नहीं। पूर्णयौवन श्रीरामकृष्ण और नवयौवना श्रीमां इस समय जिस आत्म-परीक्षा, अथवा मानव-समाज की शिक्षा के लिए जिस लीला में प्रवृत्त हुए थे, उनके मुकाबले में अग्नि-परीक्षा भी तुच्छ प्रतीत होती है। देह-बोध-विहीन श्रीरामकृष्ण

(शेषांश पृष्ठ १०२ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामविलास शर्मा
की दो कविताएं

उसने कहा था

उसने कहा था
जानती हूं
अच्छा लगता है तुम्हें

घने बियावान जंगलों में
आकाश छूते दरख्तों के बीच
सन्नाटे की उंगली थाम
निर्द्वंद्व विचरना

लहरों के घुंघराले केश सहलाते
नदी के अथाह जल में
धंस जाना
और हांफने की हद तक तैरते रहना

एक अंधेरी सुरंग में
बेखौफ़ उतर जाना
और तीखी कमलगंध में डूब
होशोहवास खो बैठना

रंग-बिरंगे फूलों से लदे
अफीम-खेत कंधों पर लाद
पठारों पर
दौड़ते जाना, दौड़ते जाना

जानती हूं
अच्छा लगता है तुम्हें
उसने कहा था।

०००

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शाम की किताब

उफनती चंबल का मटियाला पानी
कगार पर बीहड़
उनके बीच–
लहलहाते बाजरे के खेत
पुरानी तंबाकू के रंग-सा क्षितिज
बादलों की–
भूरी, कत्थई, सांवली चट्टानें
और उनके पीछे झांकता
गुड़हल के फूल-सा सूरज

बंद करो यह शाम की किताब
जाने क्यों
एक बिसरा हुआ अनाम चेहरा
बार-बार याद आता है

ooo

चित्र : हेडाऊ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ९९ का शेषांश)

की प्रायः सारी रात समाधि में ही व्यतीत होती थी। एक रात्रि समाधि भंग होने पर वे बगल में लेटी हुई श्रीमां की रूप-यौवन संपन्न देह की ओर दृष्टि डालकर विचार करने लगे, 'ऐ मन, इसी का नाम स्त्री-शरीर है। लोग इसे अति उपादेय भोग-वस्तु समझते हैं और इसके भोग के लिए सर्वदा लालायित रहते हैं। परंतु इसे ग्रहण करने से मनुष्य शरीर में ही बंध जाता है और उसे सच्चिदानंद-घन ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। भाव के घर में चोरी मत करो—मन में एक बात और मुंह में दूसरी बात न रखो। सच बोलो, तुम इसे चाहते हो अथवा परमात्मा को? यदि इसे ही चाहते हो, तो यह तुम्हारे सामने पड़ी है, ग्रहण करो।' इतना सोचने के पश्चात् ज्यों ही उन्होंने अंग-स्पर्श के हेतु हाथ फैलाया, अकस्मात् उनका मन कुंठित होकर उच्च समाधि-मार्ग में दौड़कर विलीन हो गया। सारी रात फिर वह साधारण भूमि पर नहीं उतरा। दूसरे दिन बहुत समय तक ईश्वर का नाम सुनाने के पश्चात् ही उन्हें व्यावहारिक जगत् में लाना संभव हुआ।

श्रीमां ने श्रीरामकृष्ण के साथ आठ मास तक एक ही खाट पर शयन किया। उस समय जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण का मन ऊर्ध्वलोक में विचरण करता था, उसी प्रकार श्रीमां का मन भी इन आराध्य देव के ध्यान में ही निमग्न रहता था। अतः किसी के भी मन में भोग-स्पृहा का अवकाश नहीं था। इस तरह दिन पर दिन, महीने पर महीने, श्रीरामकृष्ण ने श्रीमां को अति निकट रहने देने पर भी उनमें बिंदुमात्र भोगेच्छा न देख पायी। इसीलिए बाद में उन्होंने भक्तों से इन पवित्रता-स्वरूपिणी की महिमा का बखान करते हुए कहा था, 'यदि वह (श्रीमां) इतनी पवित्र न होती और संयम खोकर मुझ पर आक्रमण करती, तो कौन कह सकता है कि मेरे संयम का बांध टूटकर देहबुद्धि आ जाती कि नहीं? विवाह के पश्चात् मैंने आर्तभाव से मां (श्रीजगदंबा) से प्रार्थना की थी, 'मां, मेरी सहधर्मिणी के मन से कामभाव एकदम दूर कर दे।' इस समय उसके साथ रहकर मैं समझ गया कि मां ने सचमुच मेरी प्रार्थना सुन ली थी।'

०००

यद्यपि श्रीमां और श्रीरामकृष्ण का संबंध दूसरे अनेक भावों और बातों से प्रकट हुआ, तथापि उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति श्रीषोड्शी-पूजा में हुई।

श्रीमां के पहली बार दक्षिणेश्वर आने के कुछ दिन पश्चात् उनके साथ एक ही खाट पर शयन करके श्रीरामकृष्ण उनकी पवित्रता के संबंध में निःसंदिग्ध हो गये। अब संवत् १९२९ वि., सौर २४ ज्येष्ठ अमावस्या को (५ जून, १८७२ ई.) श्रीफलहारिणी कालिका-पूजा का दिन आया। आज रात को श्रीरामकृष्ण को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रिपुरसुंदरी-रूप में श्रीजगदंबा की आराधना करने की इच्छा हुई; लेकिन उनकी इच्छा से पूजा का आयोजन मंदिर में न होकर चुपके से उन्हीं के कमरे में हुआ।

उस समय श्रीमां अट्ठारह वर्ष पूरा कर उन्नीसवें वर्ष में पदार्पण कर चुकी थीं। परंतु वे भ्रमवश प्रायः कहा करती थीं, 'मैं तब सोलहवें वर्ष में थी।' जिज्ञासु भक्तों ने श्रीमां से पूछकर जो कुछ और बातें जान लीं, उनका सारांश यह है:

पूजा के पहले श्रीरामकृष्ण ने श्रीमां के पैरों में महावर तथा ललाट में सिंदूर लगाया, उनको नया वस्त्र पहनाया, मुख में मिठाई और पान दिया। यह सुनकर लक्ष्मी दीदी ने जब सहास्य प्रश्न किया, 'अरे, तुम तो इतनी लज्जाशीला हो फिर कपड़ा कैसे पहनाया ?' श्रीमां ने सरल भाव से उत्तर दिया, 'पता नहीं, उस समय मैं कैसी हो गयी थी।' श्रीमां पूजा के समय गंगाजल के मटके की ओर मुंह किये बैठी थीं। उनकी दाहिनी ओर पूजा-सामग्री सज्जित थी। पूजा के समय कमरे का दरवाज़ा बंद था। इसलिए किसी को पूजा की खबर नहीं मिली तथा बाहर के उत्सव के कोलाहल से पूजा में कोई व्याघात भी नहीं हुआ। अंत में हृदय आ गये थे। पूजा की समाप्ति के पश्चात् श्रीमां के सम्मुख एक समस्या उपस्थित हुई। पूजा में प्राप्त शंख की चूड़ियां, साड़ी आदि वस्तुओं की क्या गति होगी ? क्योंकि उनके गुरु की पत्नी तो कोई थी नहीं, जिन्हें वे सामग्रियां दी जा सकतीं। सभी वस्तुओं में ब्रह्मदृष्टि रखनेवाले श्रीरामकृष्ण ने इस समस्या को सुनकर कुछ सोचने के बाद कहा, 'तुम उन्हें अपनी जननी को दे सकती हो, लेकिन देखना, उनमें मनुष्यबुद्धि करके मत देना, साक्षात् जगदंबा समझकर देना।' श्रीमां ने वैसा ही किया।

श्रीमां ने भाव-जगत में स्थित होकर श्रीरामकृष्ण की पूजा तथा उनकी साधनाओं के समस्त फलों को ग्रहण किया। इसके फलस्वरूप वे बिना साधना के ही समस्त सिद्धियों की अधिकारिणी हुईं। इसके सिवा व्यावहारिक दशा में भी उन्होंने सभी जीवों में ब्रह्मबुद्धि रखनी सीखी। इधर श्रीरामकृष्ण भी सहधर्मिणी के प्रति सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य का पालन करके जिम्मेदारी से बरी हुए।

□

कटोरी घड़े के सिर पर रखी रहती, फिर भी वह सदा खाली ही दीखती। अपनी रिक्तता पर खेद व्यक्त करते हुए एक दिन कटोरी ने घड़े से शिकायत की—'आप सभी पास आने वालों को भरपूर जल देते हैं फिर मुझ पर अनुग्रह क्यों नहीं करते ?'

घड़े ने कहा:—'दूसरे विनयपूर्वक झुकते और मांगते हैं, पर तुम तो अहंकार से मेरे सिर पर ही सवार रहती हो। तुम्हें दे भी पाऊं तो कैसे ? विनयशीलता के बिना किसी को भी तो कुछ नहीं मिलता।'

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रमेशचन्द्र शाह की अंतरंग दुनिया
डायरी पृष्ठों के वातायन से

□

'दुःखदग्ध जगत् और आनंदपूर्ण स्वर्ग, दोनों के एकीकरण का नाश ही साहित्य है।' ... प्रसाद की यह बात क्यों इस क़दर मर्म को छूती है ? इसलिए कि स्वयं प्रसाद के कृतित्व में हमें मानवीय अनुभव का वह समूचा वर्णपट अपनी दोनों चरमताओं के साथ धड़कता दिखाई देता है। एक विषाद और वैफल्य की गहनतम् अनुभूति से उपजी वे त्रासद पंक्तियां, जो हमारा पीछा नहीं छोड़तीं ... 'सुख आहत शांत उमंगें / बेगार सांस ढोने में / यह हृदय समाधि बना है। रोती करुणा कोने में' ... और दूसरी ओर उतनी ही मार्मिक अनिवार्यता के साथ-इसके एकदम विपरीत छोर पर आनन्दमग्न आत्मा का यह संगीत ... 'मैं हूं यह वरदान सरीखा / लगा गूजने कानों में / मैं भी कहने लगा मैं रहूं / शाश्वत नभ के गानों में...'। जीवनानुभूति का इतना बड़ा फलक, उसकी ऐसी गहराई और ऐसी उत्तीर्णता कम ही कवियों में मिलेगी। स्वर्ग और नरक दोनों के भीतर से गुज़री हुई इस कविता के पीछे जो व्यक्तित्व और जो जीवन-दर्शन है, वह इसलिए और भी मार्मिक और विशिष्ट हो जाता है कि उसमें हिन्दुस्तानी संस्कार की, हिन्दुस्तानी संवेदन की ख़ास अपनी पहचान बोलती है :

'मैं की मेरी चेतनता
सबको ही स्पर्श किये सी

रेखांकन : नलिनी मलानी

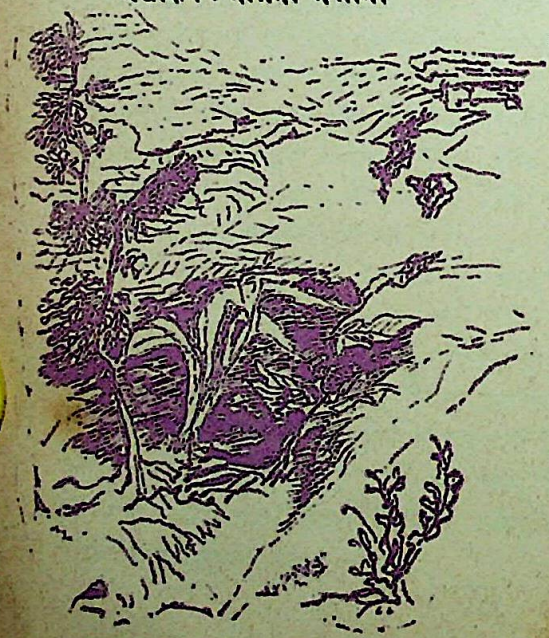

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सब भिन्न परिस्थितियों की
है मादक घूंट पिये सी'

एलियट ने एक बड़ी मार्मिक बात कही थी कि अपने व्यक्तित्व से उबरना चाहना, इस उबरने की छटपटाहट का एक कवि के लिए क्या अर्थ होता है यह वही जान सकता है जिसके पास व्यक्तित्व हो। जितना समृद्ध और जितना शक्तिशाली वह व्यक्तित्व होगा, उससे उबर आने की छटपटाहट का भी उतना ही मूल्य होगा। प्रसाद के कृतित्व और प्रसाद के व्यक्तित्व के बीच कुछ ऐसा ही अर्थवान् और मूल्यवान् संबंध मुझे दीखता है। एक चिंतक की हैसियत से भी अपनी विरासत का जैसा मन्थन प्रसाद ने किया है, वह हिंदुस्तानी मन और हिंदुस्तानी इतिहास ही जटिलता को समझने के लिए एक ऐसी दृष्टि हमें देता है, जो प्रसाद से पहले हमें कहीं नहीं मिलती।

यह उनकी अपनी खोज है जो हमारे अपने अनुभव को भी कहीं आलोकित करती है। इस चिंतन के पीछे एक बड़े कवि की जीवनानुभूति का, उसके अपने आत्म-साक्षात्कार का बल है।

मात्र एक काव्यान्दोलन की अगुवाई करने या महज़ अपने स्नायुओं का जीर्णोद्धार करने के लिए किया गया बौद्धिक पुरुषार्थ भर वह नहीं है। इसीलिए उसमें एक पुख्तापन और खुलाव है। एक ज़बर्दस्त आत्मालोचन और मोहमुक्त आस्था—जो अतीत के मानदण्डों

रेखांकन : नलिनी मलानी

से वर्तमान को ठुकराने का आसान रास्ता नहीं अपनाती; न किसी कोरे भविष्यवाद में मनुष्य की नियति को घुला देती है। मनुपुत्र को निश्शंक भाव से इड़ा के हाथों में सौंपने वाला कवि जिस 'मननशील और निर्भय कर्म' के विश्वास से प्रेरित है, 'डिस-इनहेरिटेड माइण्ड' का इच्छित चिंतन है, न उधार खाते का प्रगतिवाद। उसके पीछे एक ऐतिहासिक बोध-संपन्न नये भारतीय मनुष्य का विवेक है; और है वह वेदना-संपन्न आलोक जो 'रघुवंश' का उपसंहार करते हुए कालिदास के कवि को दिखाई दिया था।

० ० ०

पन्ना
१३.३.७२

'मैं पर्वतों में हिमालय, नदियों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जान्हवी... और कवियों में उशना कवि हूं।' ... यह कैसे ? उशना तो, जहां तक मुझे याद पड़ता है, असुरों के गुरु शुक्राचार्य का नाम है जिनके पास संजीवनी विद्या थी और जिसे छल से प्राप्त करने के लिए देवगुरु बृहस्पति ने अपने लड़के तक को दांव पर लगा दिया था। कितना अर्थगर्भ है यह मिथक—सृष्टि और सभ्यता में कवि की जगह समझने के लिए ! अकारण नहीं है कि वेदों में 'उशना' को 'काव्य' का विशेषण दिया गया। एक ओर तो वेद में (स्वयं गीता में भी) 'कवि' शब्द का प्रयोग आत्मा के सूक्ष्मतम और अमूर्ततम स्वरूप को नाम देने के लिए किया गया है। ईसाई ज्ञान-परंपरा के पिता और पुत्र की तरह वेदों में भी पिता-पुत्र की कल्पना मिलती है। जो परम अद्वैत सत्ता है, वह तो पिता, बल्कि पिता का भी पिता है। मगर व्यावहारिक जगत में इस पिता-स्वरूप आत्मा कवि के दो रूप हैं—एक तो अमृत रूप, जो मन, वाक्, प्राण, आंख, कानों की चैतन्य शक्ति में निहित है, और दूसरा मर्त्य रूप, जो देह का दिखाई देने वाला मूर्त रूप है। ये एक ही आत्मा के दो रूप हैं : धनात्मा कवि और ऋणात्मा शक्ति (अथवा वाक्)। यह जो दूसरा कवि है, यही 'पुत्र' है जो वाक् के साथ इस व्यावहारिक जगत् में द्वैत सत्ता के रूप में लीला कर रहा है। वह जैसे अपने पिता कवि (परमात्मा) का ही मूर्त रूप है। यह पिता कवि ही 'रस' है जिसकी देहरी तक पहुंचते-पहुंचते 'वाक्' को वापस लौटना पड़ता है। तो भी काव्य-रस, इस अव्यक्त रस का ही व्यक्त रूप है जिसका माध्यम यह पुत्र कवि बनता है अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की सहायता से।

सत्ता और कवित्व का यह तत्त्वचिंतन निश्चय ही काफ़ी गूढ़ है। पर प्रतीकवादी गूढ़ता और ख़ासकर मालार्मे के चिंतन से जिनका सावका पड़ चुका है, उनके लिए यह मीमांसा और अधिक उलझाने वाली न होकर कुछ सुलझानेवाली, कुछ आलोक प्रदान करनेवाली ही होनी चाहिये। अद्वैत पर आधारित यह काव्य-कला चिंतन तार्किक दृष्टि से एकदम नीरन्ध्र टिकाऊ लगती है। एक मात्र प्रश्न जो मन में उठता है, वह यह है कि ऐसी दृष्टि को साकार करने वाली जीवन की संरचना और व्यवस्था भी क्या महज एक सुदूर के तात्त्विक आधार पर खड़ी रह सकती है? याकि उसे बार-बार नये सिरे से अर्जित करना पड़ता है? क्या इसके लिए एक अतिरिक्त ऐतिहासिक बोध और युगदर्शी चेतना भी नहीं चाहिये? ऐसा क्यों होता है कि किसी सभ्यता और संस्कृति की जो सबसे विशिष्ट और चारित्रिक प्रेरणाएं होती हैं, वे सूत्रबद्ध होते ही जड़ता की शिकार होने लगती हैं? स्वयं हमारी सभ्यता का सूत्रकाल क्या ऐसा ही नहीं है जहां कलाओं की एकता और अंतर्निर्भरता का सिद्धांत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यवहार में असंगत होता गया और कौबीतकी ब्राह्मण में जो कलाएं उच्चतम सम्मान की अधिकारिणी मानी गयी थीं, पारस्कर गृह्यसूत्र तक आते-आते वे इस क़दर अपनी साख गंवा बैठीं कि द्विजवर्णों के लिए नाचना-गाना एकदम घटिया और निन्दनीय समझा जाने लगा।

० ० ०

भोपाल

२२.१.८०

... 'वह क्या है जिसे दुख या सुख की अनुभूति होती है? क्या वह यह मेरे हाथ या पांव है? क्या वह मेरे शरीर का मांस या रुधिर है? गौर करके देखें तो साफ़ दिखलाई पड़ेगा कि यह अनुभव करने वाला कोई पदार्थ नहीं हो सकता। वह कोई अभौतिक सत्ता ही हो सकती है।'

पास्कल का यह तर्क क्या 'केनोपनिषद्' के आरंभ की ही याद नहीं दिलाता? उसका दूसरा तर्क भी बड़ा मज़ेदार है। कहता है—'देखो कुछ तत्त्वज्ञ होते हैं जो अपने मनोवेगों को पूरी तरह वश में कर लेते हैं। बताओ न, कौन ऐसा जड़ पदार्थ है जो यह पराक्रम दिखला सके?'

० ० ०

अलमोड़ा

५.६.७९

आज सुबह से रवींद्रनाथ की वह बरसों पहले पढ़ी कहानी 'पोस्टमास्टर' क्यों मन में घूम रही है? .... 'पर रतन के मन में किसी तत्त्व का उदय नहीं

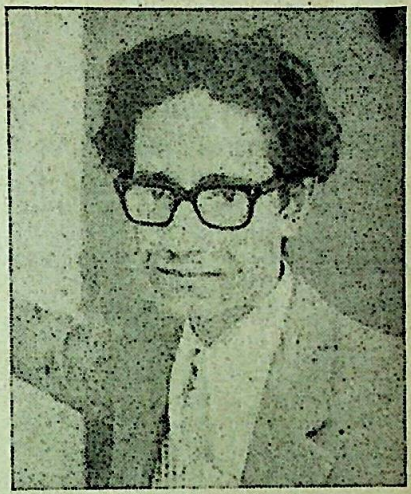

रमेशचन्द्र शाह

हुआ। ... हाय रे बुद्धिहीन मानव-हृदय तेरी भ्रांति किसी तरह मिटती ही नहीं। .... एक दिन आशा जब तमाम नाड़ियों को काटकर हृदय का खून चूसकर ग़ायब हो जाती है, तब होश आता है। किंतु आश्चर्य है तू तुरंत ही दूसरे भ्रांति-जाल में पड़ने के लिए व्याकुल हो उठता है।'

रवींद्रनाथ का कवि-हृदय इस रतन की 'भ्रांति' के साथ है, उस तत्त्व के साथ नहीं। 'संत तो सीधा मोक्ष पा जाता है, पर कवि को तो बार-बार इसी लीला में लौटकर आना है'—यह रवींद्रनाथ के मित्र कवि यीट्स की स्वभावोक्ति है। रवींद्रनाथ भले ही यीट्स नहीं हैं, पर यहां वे यीट्स से ज़रूर सहमत होते। विचित्र-सा लगता है कि तत्त्व के साथ यीट्स का रिश्ता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

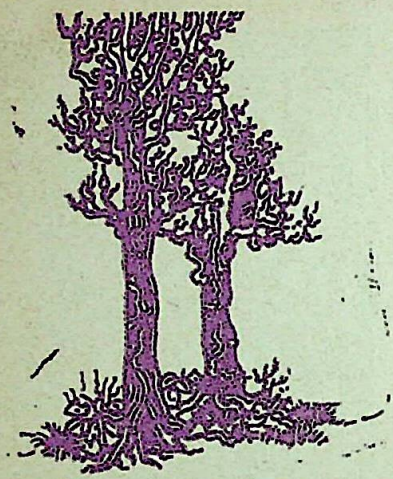

चित्र : चंदुलाल सांकला

अत्यंत अधीर-उत्कण्ठापूर्ण और आवेगमय है। जबकि बुद्धि-तत्त्व का रवींद्रनाथ अक्सर मखौल उड़ाते दीखते हैं। दुःख की अत्यंत तीव्र और गहरी पहचान के बावजूद रवींद्रनाथ के साहित्य में एक गहरा स्वीकार-भाव है—एक रहस्यमय आस्था, जो यीट्स से अलग पड़ जाती है जो उन्हें अकेलेपन से उबार लेती है, और आधुनिक मानस की संशयग्रस्तता से भी बचा लेती है। यह देखकर सचमुच अचरज होता है कि शरतचंद्र कहीं ज्यादा प्रश्नाकुल और आधुनिक हैं रवींद्रनाथ की तुलना में। पर हमारे देश के प्रजा जीवन में सैकड़ों सालों से जिस तत्त्व की नहीं, बल्कि तत्त्व-रूढ़ियों की जकड़बंदी चली आ रही है, रवींद्रनाथ उसके प्रति अत्यन्त संवेदनशील थे और उनके बुद्धि-द्रोह को इसी संदर्भ में समझना होगा। भ्रांति कहकर जीवन का तिरस्कार करने वाली परंपरा के स्वयं-नियुक्त ठेकेदार ही उनके व्यंग्य-विद्रूप के विषय हैं। निखालिस तत्त्व की दार्शनिक परंपरा के समानांतर उन्होंने उस परंपरा की खोज की जो इस भ्रांति में पड़कर, इस भ्रांति के भीतर से तत्त्व को कमाती है। वह कवियों, कर्मयोगियों और बिरले संतों की परंपरा होगी, और रवींद्रनाथ की सहानुभूति भी उसी परंपरा के साथ थी।

० ० ०

भोपाल
७.१.८०

गांधीजी की आश्रम भजनावली में एक श्लोक है जो बिना किसी बौद्धिक ग्लानि के वह आदमी भी पढ़ सकता है जो किसी तरह के धर्म-विश्वास में आस्था नहीं रखता। मगर जब ऐसे श्लोक को भजनावली में रखने की बात चली तो गांधीजी ने काका कालेलकर से एक ऐसी बात कही, एक ऐसी शंका उठाई जो सिर्फ वे ही उठा सकते थे। उन्होंने कहा, 'अद्वैत सिद्धांत तो मैं मानता हूं, लेकिन 'तद् ब्रह्म निष्कलमहम् न च भूतसंघः' कहते हुए संकोच होता है, क्योंकि उतनी साधना अभी पूरी नहीं हुई है।'

इस प्रकार की नैतिक अटक उसी आदमी को हो सकती थी, जिसने अपनी धार्मिकता को यथार्थदर्शी चेतना के साथ देशकाल की अनवरत रगड़ में से अर्जित किया हो। यह ऐसी चेतना थी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसने हिन्दू-धर्म की शक्ति और अशक्ति को ही नहीं, दिग्विजयी ईसाइयत की भी अंतः सामर्थ्य और अंतर्विरोधों को अच्छी तरह समझ लिया था। ईसा के अनुयायियों ने और जो भी किया हो, कम से कम अपने समाज को तो गतिशील रक्खा ही है, यह उन्होंने पहचाना था। स्वभावतः उनके मन में सवाल उठा कि क्या हमारा आज का सामूहिक चारित्र्य इस विरासत के योग्य है? अगर नहीं है, तो हम यह प्रार्थना किस बूते कर सकेंगे? धर्म को सिर्फ दर्शन-सिद्ध ही नहीं, लोक-सिद्ध भी होना पड़ेगा। आचरणगत हिन्दुत्व और दार्शनिक हिन्दुत्व के बीच जो अपाटच-सी खाई है, उसे गांधीजी ने बहुत अच्छी तरह भांप लिया था। संघबद्ध और अन्याय उत्पीड़न से अकेले जूझने का नैतिक अभय तो वे बहुत पहले दक्षिण अफ्रीका में ही सिद्ध कर चुके थे। उस संघर्ष के फलस्वरूप जो दिया उनके भीतर जला था, वह अपने तले का अंधेरा ही सबसे पहले देखता था। उनकी अनासक्त नैतिक संवेदना उनकी अपनी थी: पश्चिमी ढंग की राग-प्रेरित पैशनेट नैतिकता वह कैसे हो सकती थी? न, दूसरी ओर, उनमें जगद्गुरु कहलाने की आकांक्षा ही थी। इतना जरूर वे मानते थे कि 'भारत का ध्येय दूसरे दशों के ध्येय से कुछ अलग है; क्योंकि भारत ने आत्मशुद्धि के लिए स्वेच्छापूर्वक जो प्रयत्न किया है, उसका दुनिया में दूसरा उदाहरण खोजना मुश्किल है।' शायद इसी प्रतीति क चलते उन्होंने यह इच्छा प्रकट की (जिसने पंडित नेहरू को अनुप्राणित किया) कि 'भारत' अपनी अहिंसा के ज़रिए सारे विश्व के लिए शांति के दूत का काम करे।'

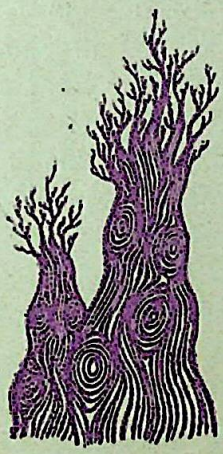

चित्र : ज. हेडाऊ

गांधीजी से पहले विवेकानंद हमारे प्रेरणा-स्रोत बने थे। पर उनका स्वप्न महज़ 'शांति-दूत' बन के रहने का नहीं था। वे अमरीकियों से कहते थे 'तुम्हें अध्यात्म चाहिये और मुझे तुम्हारे डालर—मेरे देश का दलिद्दर दूर करने के लिए।' इतना ऊंचा अध्यात्म गांधी के पास नहीं था। यरवदा जेल में लिखी महादेव भाई की डायरी में गांधीजी के इस मानसिक क्षोभ की झांकी मिलती है। उनकी दृष्टि में यह भीख मांगना है। उस 'आत्मशुद्धि' के प्रयत्न की ही घोर विडम्बना इसमें निहित है, जिसे वे भारत का सबसे बड़ा आध्यात्मिक-नैतिक गुण मानते रहे। उन्हें न तो जगद्गुरु बनना था, न गदर पार्टी चलानी थी। अंग्रेजी शासन का जुआ उखाड़ फेंकने भर से उनका काम चलने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाला नहीं था। शुरूआत ही उन्होंने जिस 'हिन्द स्वराज' से की थी, वह समूची पश्चिमी सभ्यता की तरफ फेंका गया एक कठोर नकार था। आर्थिक पराधीनता का इलाज स्वालम्बन होगा, डालर नहीं। बौद्धिक पराधीनता का इलाज हिन्दी है, अंग्रेज़ी नहीं। जिस देश में ये दो-दो पराधीनताएं गहरे जड़ जमाये बैठी हैं, वह देश अपनी आध्यात्मिक बलवत्तरता का भी कैसे बखान कर सकता है बिना नैतिक ग्लानि के? गांधीजी तो अध्यात्म के संदर्भ-ग्रंथों में भी भारतीय जन की मुक्ति का गणित ढूंढ़ते थे। ईशोपनिषद् के पहले श्लोक में ही उनको वह समाजवाद और साम्यवाद मिल जाता है, जिसकी हिंदुस्तान को—उनके हिसाब से—ज़रूरत है। मगर पश्चिमी सभ्यता या विचार-धारा का उनका तिरस्कार किसी आत्म-तुष्ट या अतीतजीवी मानसिकता से नहीं, उस खुले दिमाग़ से उपजता है जिसने यूरोप को किताब में नहीं, जीवन में पढ़ा और सुना है। कितनी सच्ची सराहना के साथ कहा है उन्होंने कि—'मैं पश्चिम की समाजव्यवस्था का सहानुभूतिशील विद्यार्थी रहा हूं और इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि पश्चिम की इस बेचैनी और संघर्ष के पीछे सत्य की व्याकुल खोज की भावना ही रही है।'

सत्य की व्याकुल खोज की भावना! निश्चय ही सत्य के साथ आजीवन प्रयोग करते रहने वाले गांधी के लिए यह एक बहुत बड़ा मानव-मूल्य था और पश्चिमी मानस में, पश्चिमी इतिहास में भी इस मानव-मूल्य की जैसी तेजस्विता उन्होंने देखी, अपने देश के निकट इतिहास में वह उन्हें अनुपस्थित लगी। इसीलिए उन्होंने स्वयं अपने व्यक्तित्व के निर्माण में, अपने सार्वजनिक कर्म में इसे सबसे ऊपर स्थापित किया। इस आत्मालोचन से प्रेरित सराहना का जो सीधा तर्क उनके लिए बना, वह यह नहीं था कि हिंदुस्तान पश्चिम का नकलची और ग़रीब बिरादर बन जाये। उन्होंने साफ़-साफ़ लिखा कि 'वैज्ञानिक जांच की उसी भावना से हम पूर्व की अपनी संस्थाओं का अध्ययन करें और मेरा विश्वास है कि दुनिया ने अभी तक जिसका सपना देखा है, उससे कहीं ज़्यादा सच्चे समाजवाद और साम्य-वाद का हम विकास कर सकेंगे। यह मान लेना ग़लत है कि लोगों की ग़रीबी के सवाल पर पश्चिमी समाजवाद या साम्य-वाद ही अंतिम शब्द है।'

हां, पश्चिम की प्राणवान् सभ्यता से गांधीजी अपने देश के लिए जो चीज़ ग्रहण करना चाहते थे, वह यही थी—'वैज्ञानिक जांच की भावना।' 'सत्य की व्याकुल खोज की भावना।' इस बात को आज नये सिरे से रेखांकित करना होगा। उनके लिए नहीं जो ख़ुद को उनका अनु-यायी मानते हैं, बल्कि उनके लिए, जो सहज बुद्धि से संपन्न ऐतिहासिक बोध रखते हैं और महाकवि यीट्स की इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उक्ति का मर्म जानते और जीते हैं कि 'सपनों के साथ ही दायित्त्व का आरंभ होता है (इन ड्रीम्स विगिन रैस्पौन्सिबिलिटीज़)।'

प्रार्थना रूढ़ि-पालन नहीं है। प्रार्थना सिर्फ नारायण को ही नहीं, उस नर को भी संबोधित होती है जिसकी 'अनझिप आंखों में नारायण की व्यथा भरी हुई है' (अज्ञेय)। यह अकारण नहीं था कि प्रार्थना के संदर्भ में वह नैतिक अटक और किसी ने नहीं, ख़ुद गांधीजी ने ही महसूस की। क्या था उनके मन में ? वही न कि अद्वैत सिद्धांत को मैं मानता हूं मगर 'जो शुद्ध ब्रह्म है, वही मैं हूं, यह पंचभूतों से बनी देह बिलकुल मैं नहीं हूं'—यह मैं कैसे कह सकता हूं ? जबकि रोज़ मेरी आंखों में हिंदुस्तान के करोड़ों नरकंकाल भटकते हैं। शुद्ध ब्रह्म की आत्मानुभूति इस दृश्य के सम्मुख कैसे टिके ? .... 'भूखों मरता आदमी रोटी का एक टुकड़ा पाने के लिए अपनी स्वतंत्रता और अपना सब कुछ बेच डालेगा। भारत में लाखों मनुष्यों की आज ऐसी ही स्थिति है। उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता, ईश्वर और ऐसे दूसरे शब्द निरर्थक हैं। वे उनके कानों को कड़वे लगते हैं।'... (Selections from Gandhi; Nirmal kumar Bose, P. 59)

० ० ०

महाशिवरात्रि
६ फरवरी '८०

इजा और कक्कू मंदिर के भीतर चले गये। मैं सीढ़ियों के नीचे उनकी चप्पलों की चौकीदारी करता बैठा था। मंदिर का विशाल प्रांगण खचाखच भरा था। उस विशाल जन-समुद्र में उठती हिलोरों ने मुझे छा लिया : पांवों का जंगल था वह—पांवों का समुद्र—कोमल फूल सरीखे पांव, जर्जर बिवाइयों से भरे पांव, नंगे काले खुरदरे पांव, गोरे, गहनों से अलंकृत पांव.... कमज़ोर और लड़खड़ाते पांव, फुरतीले थिरकते पांव.... पांवों का मेला था वह, मुझ पर से गुज़रता हुआ ....। और मैं ? मैं ... कहां था ? जंगल, उस समुद्र में ?...

क्या था वह ? वहां बैठे-बैठे मुझे क्या हो गया था यकायक ? वह जैसे एक बहुत पुरानी और जानी-पहचानी अनुभूति थी और फिर भी एक विचित्र अनिर्वचनीय ढंग से नयी। आंखें जैसे तैरने लगीं... जाने कितनी देर मैं न कुछ देख रहा था, न सुन रहा था। कुछ भी नहीं सोच रहा था... भीतर और बाहर सब कुछ निःस्तब्ध हो गया था। एकदम शून्य।

—३/२ प्रोफेसर्स कालोनी, विद्याविहार,
भोपाल, म. प्र.

□

संसार के मंदिर यह तो बताते हैं कि अमीरों के लिए स्वर्ग जाना कितना कठिन है, लेकिन यह नहीं बताते कि ग़रीबों के लिए संसार में जीना कितना कठिन है। —आशारानी

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय विद्याओं के साक्षात्कारी साधक और गहन अनुभवी विद्वान पं. देवदत्त शास्त्री का एक अतिक्रान्तिदर्शी लेख

□

कस्मै देवाय ? : पूर्णकाम युगल

यूरोप-यात्रा के प्रसंग में मैं इंग्लैंड गया हुआ था। जुलाई १९७९ के प्रथम सप्ताह में महाकवि शेक्सपीयर की जन्म-भूमि स्ट्रैफ्फर्ड जाना हुआ। मेरे साथ बंबई के उद्योगपति श्री मधुसूदन अमरसी और लेडी गीलिंहम् थीं। मधुभाई का कारोबार यूरोप के कई देशों में फैला हुआ है। युरोपीय कार्य व्यापार के लिए उन्होंने लन्दन में अपना हेड आफ़िस क़ायम कर रखा है। लेडी गीलिंहम् लार्ड फेमिंली की शिष्ट, संभ्रांत और सुसंस्कृत महिला हैं। विश्व की प्राचीन संस्कृतियों और दर्शनशास्त्र पर उनकी विशेष अभिरुचि है।

स्ट्रैफ्फर्ड से लौटते हुए लेडी गीलिंहम् ने कहा कि 'यदि आक्सफोर्ड होकर लंदन चला जाये तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगी ?'

नहीं, मैं प्रसन्नतापूर्वक चल सकता हूं, तीन बार आक्सफोर्ड हो आया हूं, किंतु उस विद्यानगरी के प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता ही जाता है। मेरा यह उत्तर सुनकर लेडी गीलिंहम् बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने बताया कि वह आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी की एकेडेमिक कौंसिल की सदस्या हैं, इन दिनों विश्वविद्यालय में दीक्षा-समारोह चल रहा है।

लेडी गीलिंहम् दीक्षा-समारोह में भाग लेने चली गयीं। मधुभाई के साथ मुझे दो घंटे आक्सफोर्ड नगरी घूमकर बिताने थे। आक्सफोर्ड महीयसी विद्यानगरी है। वहां की हर गली, वीथी, पथ और राज-पथ में विद्या-गौरव और गंभीर शांति विराजती है। अमंद-मंद प्रवाह से प्रवाहित नदी, स्थान-स्थान पर उद्यान, उपवन, शांत, गंभीर मुद्रा से आते-जाते छात्र ऋषिकुमार से प्रतीत हो रहे थे। वहां का वातावरण देखकर यह कल्पना करना अनुचित नहीं होगा कि प्रकृति ने इस भूमि को विद्यानगरी के रूप में ब्रिटेन को प्रदान किया है। विश्वविद्यालय परिसर और अनेक महाविद्यालय, छात्रावास ज्ञान-गरिमा के केंद्र बने हुए हैं। वैदुष्य, विनम्रता और चरित्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहां के वातावरण में सर्वत्र समाया हुआ है।

पूर्वनिश्चित समय पर घूम-फिरकर हम लेडी गीलिहम् से मिले। वह हमें सीनेट हॉल ले गयीं। वहां हमें बीस-पच्चीस अकादमीशियन विद्वानों से परिचित कराया गया और लेडी गीलिहम् ने जब मेरा परिचय उन्हें दिया, तो उन्होंने मेरे लघुतम व्यक्तित्व को महत्तम बना दिया। श्री अमरसी ने मुझे भारतीय विद्याओं का पारंगत विद्वान् बतलाते हुए ऐसा अतिशयोक्तिपूर्ण परिचय दिया कि मैं कांप उठा। किंतु वहां किसी प्रकार का प्रतिवाद करने की गुंजाइश ही नहीं थी। यदि मैं कुछ कहता भी तो उसे मेरी विनम्रता समझा जाता और मेरी विनम्रता विडंबना बन जाती; क्योंकि विनम्रता मेरे स्वभाव में नहीं है और उग्रता अनजाने मुझे वरण किये हुए है। लंदन पहुंचकर मैंने मधुभाई से पूछा कि डिग्री-डिप्लोमारहित मुझ जैसे यायावर का जो परिचय आपने आक्सफोर्ड में दिया था, वह बहुत ही अस्वाभाविक था। मधुभाई ने कहा कि उस समय मुझे आपमें अपना देश (भारत) दीख रहा था, आपको माध्यम बनाकर मैंने भारत का परिचय दिया था और भगवान ने प्रतिष्ठा रख ली, जब आपने वहां के विद्वानों के विविध विषयों के प्रश्नों के उत्तर देकर उन्हें पूर्ण संतुष्ट कर दिया।

आक्सफोर्ड की उस मिलन-गोष्ठी में एकत्र प्रायः सभी लोगों ने मुझसे भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रश्न किये थे और मैंने जो उत्तर देकर उनको संतुष्ट किया था, उसमें न तो मेरी अगाध विद्वत्ता थी और न कोई दैवी चमत्कार की सहायता ही। संयोग की बात थी कि जिन विषयों पर मुझसे पूछा गया था, उन विषयों पर मेरा अध्ययन, अनुभव पहले से ही था, इसलिए प्रश्नों के यथार्थ उत्तर देने में मुझे कहीं अटकाव-भटकाव नहीं हुआ। उस विद्वत् गोष्ठी में चार महिलाएं भी थीं, जो पुरुषों से अधिक मुखर और जिज्ञासु जान पड़ीं। एक आयरिश महिला प्राचीन-इतिहास-संस्कृति, पुरातत्त्व विषयों की शोध-निदेशक थीं। उन्होंने मुझसे भारत के प्राचीन मंदिरों में उत्कीर्ण मिथुन मूर्तियों का रहस्य पूछा तो मैंने विस्तारपूर्वक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्हें बताया कि :

यौन-भावों, मिथुन-भावों की कलात्मक अभिव्यक्तियों का इतिहास भी हमारे देश में बहुत पुराना है। इतिहास के धरातल पर समस्त विकासोन्मुख धार्मिक परंपराओं में मान्मथ-भाव निहित देखे जाते हैं। कला, संस्कृति और साहित्य सभी क्षेत्रों में मान्मथ-भावों का प्राचुर्य और प्राधान्य है। कला के क्षेत्र में मान्मथ-भावों के निदर्शन हमें ईसा पूर्व ५० वर्ष की मथुरा की यक्षिणियों की मूर्तियों में मिलता है। कौशांबी में प्राप्त कुषाणकालीन शिल्प-कला के खंडों में भी मान्मथ-भाव उत्कीर्ण हैं। यही नहीं, सिंधु घाटी में प्राप्त प्रागैतिहासिक कालीन मूर्तियों में भी मान्मथ-भावों के प्रदर्शन हैं।

मूर्तिकला में मान्मथ-भावों का अंकन खजुराहो, कोणार्क, भुवनेश्वर और पुरी के मंदिरों में पाया जाता है। इन मूर्तियों में कामसूत्रीय भावनाएं बड़ी संजीदगी से आंकी गयी हैं। वैदिक यज्ञों की यज्ञ-वेदियों में भी मान्मथ-भावों का अंकन वैदिक युग से चला आ रहा है। सांस्कृतिक क्षेत्र में लिंग पूजा इसका बहुत बड़ा और प्राचीन निदर्शन है। शिव-पार्वती, उमा-महेश्वर, लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधाकृष्ण की उपासना के मूल में भी मान्मथ-भाव सन्निविष्ट हैं।

साहित्य के क्षेत्र में वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, कल्पसूत्रों, पुराणों और महाकाव्यों में मान्मथ-भावों का उद्रेक और शृंगारिक भावों के चित्रण अपना अस्तित्व रखते हैं। नौ रसों में शृंगाररस सर्वोपरि माना जाता है। दार्शनिक साहित्य में रस को साक्षात् ब्रह्म कहा गया है। उपनिषदों में वामदेव्यगान की तुलना मैथुन—संभोग से की गयी है। वेदों, उपनिषदों और दर्शन-वेदांत में प्रकृति और पुरुष की व्याख्या में मान्मथ-भाव ही प्रधान है। प्रकृति और पुरुष के रहस्यमय मिलन में मान्मथ-मिलन ही की भावना है। यह मिलन-भावना उपनिषद् की भाषा में द्वैत में अद्वैत का आभास देती है। और यह भी घोषित किया गया है कि पुरुष और प्रकृति का मिलन सृष्टि-रचना के लिए आवश्यक एवं अवश्यंभावी है। वस्तुतः यही मिलन-भावना अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचकर कला और साहित्य के माध्यम से मुखरित और व्यक्त हुई है। खजुराहो और कोणार्क की मिथुन-मूर्तियों की कटु आलोचनाएं ज्यादातर हुआ करती हैं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल जैसे भारतीय मनीषी प्रगल्भ पुरातत्त्वविद् की दृष्टि से भी 'इस प्रकार का प्रदर्शन सामाजिक उर्वर शक्ति के पतन का प्रतीक है।'

डॉ. कुमारस्वामी, डॉ. गांगुली मान्मथ-भावों के अंकन को प्राचीनतम अवस्था की उर्वर शक्ति के दृश्य-प्रतीक मानते हैं। डॉ. बेंजामिन जैसे पाश्चात्य विद्वान् मिथुन-मूर्तियों के अंकन को आत्मा और परमात्मा के मिलन का प्रतीक मानते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डॉ. राधाकमल मुखर्जी का मत है कि देवालयों में मान्मथ-अंकन किसी कुरुचि या दुर्भावना के प्रतीक नहीं हैं, बल्कि आध्यात्मिक भावनाओं के प्रतीक हैं। कुछ लोग मंदिरों की मिथुन-मूर्तियों को तंत्रयान, मंत्रयान, वज्रयान और शाक्तमत से प्रभावित मानते हैं। कुछ आलोचक संभोग से समाधि तक या मोक्ष के द्वार तक पहुंचाने का साधन मानकर देवालयों की मिथुन-मूर्तियों को आध्यात्मिक चेतना की प्रेरणा स्वीकार करते हैं। कुछ लोग कला को जीवन की व्याख्या मानकर 'काम' को जीवन का सबसे महान सत्य स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में भारतीय कलाकार ने मिथुन-मूर्तियों द्वारा जीवन के सत्य को अभिव्यक्त किया है।

पूर्णकाम मिथुन : खजुराहो
(छायाकार : सूरज एन. शर्मा)

किंतु यदि मानव-प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो सर्वत्र और सभी में एक ही बात समान रूप से प्राप्त होती है, वह यह कि मनुष्य के जीवन में संपूर्ण तृप्ति के बाद ही मोक्ष की कामना उत्पन्न होती है। संपूर्ण तुष्टि और उसके बाद मोक्ष—यही दो हमारे जीवन के लक्ष्य तक पहुंचने के सोपान हैं। कोणार्क, पुरी, खजुराहो आदि स्थानों के देवालयों में मिथुन-मूर्तियों का अंकन मानव-जीवन के लक्ष्य का प्रथम सोपान है। इसीलिए इन्हें मंदिर के बहिर्भाग में अंकित किया जाता है। और दिव्य मोक्ष द्वितीय सोपान है, जिसकी प्रतिष्ठा देव प्रतिमा के रूप में मंदिर के अंतःभाग में की जाती है। मंदिर के प्रवेशद्वार और गर्भगृह (जहां देव प्रतिमा रहती है) के बीच जगमोहन बना रहता है। यह मोक्ष की छाया का प्रतीक है। मंदिर के बाहरी द्वार या दीवारों पर उत्कीर्ण ऐंद्रिय-रस-संयुक्त मिथुन-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूर्तियां देवदर्शनार्थी को, आनंद की अनुभूतियों को आत्मसात् कर जीवन के लक्ष्य की प्रथम सीढ़ी—कामतृप्ति को पार करने का संकेत करती हैं, स्मरण कराती हैं। जो व्यक्ति जीवन लक्ष्य के इस प्रथम सोपान को पार नहीं कर चुका है, वह देवदर्शन मोक्ष के द्वितीय सोपान पर पैर रखने का अधिकारी नहीं है।

मंदिरों के बहिर्भाग में उत्कीर्ण अश्लील भावों की मूर्तियां भौतिक सुख में भौतिक कुंठाओं और अश्लील वातावरण में भी आशायुक्त, आनन्दमय लक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। भारतीय कला का यह उद्देश्य समस्त विश्व के कला आदर्शों, उद्देश्यों एवं कला की व्याख्या और मानदंड से भिन्न और मौलिक है।

'मिथुन-चित्र जैसे अशिव तत्त्वों के स्थान पर कोई अन्य प्रतीक भी तो प्रस्तुत किये जा सकते थे ?'—आयरिश विदुषी मिसेज़ केनेडी ने बीच में ही प्रतिप्रश्न कर दिया। मैंने कहा कि यह समझना नितांत भ्रम है कि मिथुन-मूर्तियां या मान्मथ-भाव अशिव तत्त्व बोधक हैं। वस्तुतः ये शिवम् और सत्यम् की साधना के सर्वोत्तम माध्यम हैं। भारतीय संस्कृति और भारतीय वाङ्मय इसे परम तत्त्व मानकर इसकी साधना के लिए युगों से हमें प्रेरित करता आ रहा है। यह परम तत्त्व सृष्टि की स्थिति (उत्पत्ति) का अत्यन्त कारण है—

मैथुनं परमं तत्त्वं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।

इससे दुर्लभ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है—

मैथुनात् जायते सिद्धिर्ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम्।

देवमंदिरों के कमनीय कला-प्रस्तरों में हम एक ओर जीवन की सच्ची व्याख्या और उच्च कोटि की कला का निर्दशन पाते हैं, तो दूसरी ओर पुरुष और प्रकृति के मिलन की आध्यात्मिक व्यंजना भी मिलती है। इन कलाकृतियों में हमारे जीवन की व्याख्या शिवम् है और कला की कमनीय अभिव्यक्ति सुंदरम् है तथा रहस्यमय मान्मथ-भाव सत्यम् है।

मेरे उपर्युक्त कथन का निष्कर्ष प्रकट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करते हुए एक फ़िलासफर विद्वान ने कहा कि 'मंदिरों में मिथुन-मूर्तियों के अंकन का रहस्य है अद्वैत को पाने के लिए द्वैत का आश्रय लेना चाहिये।'

मैंने कहा कि एक ही वाक्य में आपने यथार्थ सारगर्भित उत्तर देकर मुझे कृतार्थ किया—बहुत-बहुत धन्यवाद! आपके इस कथन को मैं व्याख्यायित करना चाहता हूं। दर्शनशास्त्र का सिद्धांत है कि जीवन-वासनाए और मिथुन-वासनाएं ही भिन्न अणुओं और कोशों को मिलाती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि वे सभी भिन्नताओं को मिटाकर अद्वैत लाने की चेष्टा करती हैं। अद्वैत अवस्था तो प्रारंभिक अवस्था ही थी, किसी विशेष शक्तिपात से वह पदार्थ अनेक अणुओं में विभक्त हो गया होगा। मिथुन-शक्ति का काम उनको मिलाना है। प्लेटो ने भी अद्वैत प्राप्ति के लिए द्वैत का ग्रहण स्वीकार किया है। उसका कहना था कि 'द्यौस् की इच्छा से सभी प्रकृति द्विधा विभक्त की गयी, ताकि दोनों फिर मिल सकें।' ठीक यही बात वृहदारण्यकोपनिषद् भी कहती है—पहले अकेला आत्मा ही था। उसे आनंद की उपलब्धि न हुई। वह एकाकी रमण नहीं कर सकता था, अतः उसने दूसरे की इच्छा की ..... उसने अपने इसी स्वरूप को दो भागों में विभक्त किया जो पति और पत्नी के रूप में प्रकट हुआ।

दर्शनशास्त्र और संस्कृत साहित्य के एक निष्णात विद्वान् ने बड़ी शालीनता

से कहा कि मैं प्रश्न नहीं पूछ रहा हूं, अपनी जिज्ञासा प्रकट कर रहा हूं। वह यह कि विद्वानों का एक पक्ष वेदों को अपौरुषेय मानता है, दूसरा पक्ष पौरुषेय मानकर कहता है, कि वेद भिन्न-भिन्न समय में अनेक ऋषियों द्वारा रचे गये हैं। काल क्रम से उनमें भाषा का भी विभेद है।

मैंने कहा कि आपकी भांति कभी मैं भी जिज्ञासु नहीं शंकालु था, कि वेद मनुष्य-रचना है, अपौरुषेय और ईश्वरीय वाणी नहीं है, बल्कि यह कहना चाहिये कि मेरी यह धारणा बन गयी थी और मैं बहुत दिनों तक यह धारणा बनाये हुए था, किंतु अचानक एक ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ कि मेरी धारणा चूर-चूर हो गयी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और मैं वेदों को अपौरुषेय मानने ही नहीं लगा, बल्कि उनका स्वाध्याय ईश्वरीय वाणी के रूप में करके अपने को कृत-कृत्य बनाया।

'क्या आप उस घटना को प्रकट करेंगे, जिसने आपकी धारणा बदल दी है?' उन्होंने पूछा।

अवश्य, मैं एक दिव्य महापुरुष (जिन्हें दिव्य न समझकर एक सिद्ध महात्मा ही समझता था) के साथ हिमालय में तीन वर्ष तक घूमता रहा। उस भ्रमण में मैं एक ऐसे स्थान पर गया जो चारों ओर हिमाच्छादित पर्वतों से घिरा हुआ थाली के समान चौरस मैदान था। सतत हिमाच्छादित हिमालय के मध्य में स्थित उस भूखंड का नाम 'वेदिनी' था, हरी-भरी घास, छोटे-छोटे हरित वृक्ष, वीरुध विटपों से घिरा हुआ एक सरोवर था, जिसका जल स्फटिक की भांति स्वच्छ और पारदर्शक था। प्रकृति का लास्य वहां अहर्निश चलता था। सरोवर के चारों ओर घूमते समय आकाश में मंद-मंद गूंजती हुई वैदिक ऋचाएं मुझे सुनाई पड़ीं। अधिक उत्कंठित और समाहित चित्त होकर सुनने लगा तो गूंजती हुई ऋचाध्वनियों में से कुछ ऐसी ऋचाएं गूंजती हुईं मैंने सुनीं जो ऋग्वेद की थीं, और मुझे कंठस्थ थीं। बाद में उन महा-पुरुष ने बताया कि ऋषियों ने सर्वप्रथम यहीं पर आकाश में गूंजती हुई ऋचाओं का श्रवणकर वेदों का साक्षात्कार किया था। इसलिए इस स्थान को 'वेदिनी' कहा जाता है। मेरे यह पूछने पर कि श्रवण द्वारा प्राप्त ऋचाएं श्रुति इसीलिए कही जाती हैं? महापुरुष ने कहा—हां, किंतु ऋषियों ने ऋचाओं को सुनने के लिए श्रवण-दिव्यता प्राप्त की थी। ध्याना-वस्थित, श्रवण दिव्यता प्राप्त ऋषियों ने मंद्रजिह्व परमात्मा से उच्चरित ब्रह्मांड में गूंजती हुई ऋचाओं को श्रवणकर वेद के रूप में ऋचाओं की संहिताएं प्रकट की हैं।

यह सुनकर मेरा शंकालु हृदय उनसे पूछ बैठा कि मैंने तो कोई श्रवण दिव्यता प्राप्त नहीं की है, फिर मुझे कैसे सुनाई पड़ रही थीं? महापुरुष ने कहा कि कभी-कभी कुछ समय के लिए पुरातन संस्कार जाग्रत होने पर अनायास प्राप्ति पर तर्क और संदेह करना उचित नहीं है।

प्राध्यापक ने पूछा कि प्राचीन ऋषि श्रवण दिव्यता कैसे प्राप्त करते थे, उन महापुरुष ने बताया था आपको? नहीं, वे निहायत मितभाषी थे, मैंने उनसे पूछा भी नहीं था, किंतु जब मैं वेदों और आगमों का अनुशीलन कर रहा था, उस समय मुझे जो ज्ञात हुआ, उसका सार-संक्षेप यह है कि 'श्रोत्रों में दिव्यता का आविर्भाव बहिर्वृत्तिजन्य एवं अंतर्वृत्तिजन्य—इन दो साधनों से होता है। निरंतर नादब्रह्म की साधना करते रहने से इंद्रियों की वासनाएं नष्ट हो जाती हैं—सदा नादानुसन्धानात् संक्षीणा वासना भवेत्।

नाद का तात्पर्य अव्यक्त ध्वनि है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्णात्मक व्यक्त वाणी से अव्यक्तवाणी (ध्वनि) में महती शक्ति निहित रहती है। इसका खुलासा मुझे अथर्ववेद की इस ऋचा से मिला कि 'जो स्तम्भ रूप ब्रह्म की असत् और सत्—इन दो शाखाओं का निरूपण करता है, उसे ज्ञात हो जाता है कि असत् शाखा परम शाखा है, जिससे बृहन्त नामक देव पैदा होते हैं और दूसरी सत् शाखा अवर शाखा है। आधुनिक विज्ञान में असत्, शक्ति (इनर्जी) है और सत् निष्क्रिय तत्त्व (मैटर) है। एक गति को सूचित करता है, दूसरा स्थिति को। सारांश यह कि असत् निराकार है, अव्यक्त है, शक्ति है और सत् मैटर है, साकार रूप में व्यक्त है, रूपवाला है, किंतु निष्क्रिय है।

वेदों की ऋचाओं और आगम के मंत्रों को ऋषियों ने श्रवण-दिव्यता प्राप्त कर श्रवण किया और वे ऋचाएं तथा मंत्र उनके हृदय में प्रकट हुए। वस्तुतः श्रोत्र का संबंध आत्मा से होता है। प्राणवायु और वाणी का मेल, चक्षु और मन का मेल तथा श्रोत्र और आत्मा का मेल होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के इस अनुवाक् से स्पष्ट है कि आत्मा का संबंध हृदय से होता है, इसलिए श्रोत्र का संबंध हृदय से होता है।

ऋषियों ने श्रोत्रेंद्रिय में एकाग्रता लाकर अनवरत दिव्यता प्राप्त की थी। श्रोत्रेंद्रिय को एकाग्र करने की विधि तंत्रविद्या और योगविद्या में मिलती है। वह इस प्रकार —'ध्वनि तरंगें ज्यों-ज्यों आकाश में दूर-दूर तक होती जाती हैं, त्यों-त्यों वे मंद्र-मंद्रता रूप धारण करती ह। धीमी, मंद होती हुई ध्वनि-तरंगों को देर तक ग्रहण करने या सुनने में मन एकाग्र और केंद्रित होता है और श्रोत्र की प्रसुप्त शक्ति उत्तेजित और जाग्रत होने लगती है। श्रोत्र में मन जब एकाग्र हो जाता है तो अपादान क्रिया निर्बाध गति से प्रारंभ होती है। जब अपादान क्रिया सुचारु रूप से क्रियाशील होती है, तो श्रोत्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म मल विनष्ट हो जाते हैं, और श्रोत्र का आवरण नष्ट हो जाता है, जिससे एकाग्रता और संयम उत्पन्न होते हैं तब उससे दिव्य श्रोत्र की संपत्ति होती है।'

यह कहकर मेरे चुप होते ही एक मुखरा महिला बोल पड़ी—'क्या आपको श्रवण दिव्यता प्राप्त है? मैंने कहा, 'नहीं, मुझे कभी भी प्राप्त नहीं हुई है।'

'तब फिर आपने हिमालय में कैसे गूंजती हुई ध्वनि को सुना?' 'हां, कुछ क्षणों के लिए अकस्मात् श्रवण दिव्यता मुझे अवश्य प्राप्त हुई थी और मैंने गूंजती हुई ध्वनियों का स्पष्ट श्रवण किया था, किंतु यह आकस्मिक घटना है, मुझे खुद नहीं मालूम है। और यह भी सत्य है कि फिर उस दिन की-सी श्रवण दिव्यता का अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ।'

उसी महिला ने फिर पूछा कि हिंदू धर्म में देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का पूजन किया जाता है, क्या आप भी ऐसा करते हैं?

(शेषांश पृष्ठ २३३ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नौकर

नौकर तो भागते ही हैं, कोई खास बात नहीं, परंतु शिवशंकर उपाध्याय के नौकर भोलवा का भागना जैसे बहुत बड़ा मामला हो गया ! यह चर्चा गांव में कुछ इस प्रकार होती है जैसे इससे बढ़कर कोई और मनोरंजक आश्चर्य नहीं।

गांवों में अख़बार नहीं छपते हैं, परंतु कुछ ऐसे परोपकारी लोग प्रायः प्रत्येक गांव में मिलते हैं जो स्थानीय समाचारों के लिए समाचारपत्र का काम करते हैं। कहते हैं, गोविंदपुर के सोना जटी एक जीवंत आंचलिक अख़बार हैं। उनके मौखिक कार्यालय में तमाम-तमाम उड़ती ख़बरों का अंबार लगा होता है। कभी-कभी वो ऐसी ख़बरदार ख़बरों के लिए मौका मुआयना भी कर लेते हैं।

उस दिन सवेरे-सवेरे उनको ज्वार के खेत पर चिड़ियां उड़ाने जाना था, परंतु इस समाचार ने उनकी निःस्वार्थ सेवा भावना को इस प्रकार झकझोर दिया कि बगल में लाठी दबाये तथा हथेली पर सुर्ती खूंटते वे उपाध्यायजी के दरवाज़े पर पहुंच गये। तब घाम सहन पर उतर आया था। अतः कऊड़ पर से उठकर उपाध्यायजी ने जटीजी के लिए चारपाई डाल दी।

'सुना कि भोलवा भाग गया ?' उन्होंने पहुंचते ही पूछा, 'कुछ सामान वग़ैरह पर तो हाथ साफ नहीं किये हैं ? उसके भगने की जानकारी आपको कब, कैसे हुई ?'

पूरी जानकारी के बाद अचानक सोना जटी एक उच्चकोटि के तत्त्वचिंतक की मुद्रा में आ गये। आंखों में करुण सहानुभूति और मुखमंडल पर प्रशांत सर्वज्ञ भाव उतारकर उन्होंने अपनी नेक सलाह की धारा को पूरे प्रवाह में प्रस्तुत करते हुए कहा—

'खैर, एक कंबल मात्र ही वह साथ ले गया, कोई बात नहीं। लेकिन यह क्या कहते हैं कि उसके पास तीन-चार सौ रुपये हो गये थे ? बस, यही सब अतियां थीं कि वह फरार हो गया। आप लोगों ने उसे सिर पर चढ़ा लिया था। ये नीच भला किसी के अपने हो सकते हैं ? जहां रंचमात्र भी मन-बढ़ावा मिला कि बे-हाथ हुए ! फटा-पुराना पहनने को मिले, सड़ा-गला, बासी और रूखा-सूखा खाने को मिले तो ये ठीक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहते हैं। नित्य डांट-फटकार और लताड़-पूजा मिलती रहे, तो ये देवता लोग सीधे रहते हैं। क्यों क्या ग़लत कह रहा हूं।'

सवाल ठोककर उन्होंने उपाध्यायजी की ओर देखा।

'नहीं, आप भला ग़लत कहेंगे ?' उपाध्यायजी ने कहा और उत्तर की बेवसी छिपाते-छिपाते भी मुंह पर झलक गयी।

को नौकर की तरह रखिये। उसे घर के लड़कों जैसा दुलार देकर आप चौपट कर देंगे। कहीं दुनिया में आपने देखा है कि नौकर चारपाई पर सोता है ? जूता पहनकर खेत में जाता है ? कड़वे तेल की मालिश शरीर पर करता है ? दाल-भात खाता है ? ऊपर से सब्जी भी ? और सबसे अचरज की बात तो यह कि आपने उसकी पिछले

जटीजी की टिप्पणी दूने उत्साह से आगे बढ़ी—

'मैंने ये बाल धूप में नहीं सुखाये हैं, उपाध्यायजी, ठोस तजुरबे की बात कह रहा हूं। जहां अच्छा खाना-कपड़ा मिला कि भोलवा की जाति के लोग 'मोटे' हो जाते हैं। यही आपके यहां हुआ। आपको कई बार हमने खुद मना किया कि नौकर

तीन-चार साल की मजूरी के रुपयों को सुरक्षित रहने दिया। उसे दे दिया। क्यों है न ऐसी बात ?'

'हां। यह तो उचित ही था।'

'उचित था ? राम-राम ! गोया आपने समझ लिया कि अब यह आपका परमानेंट खुदमुख्तार हो गया ! अरे साहब, मुझसे सीखिये। साल भर काम कराकर ऐसों को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इधर-उधर टरका दिया जाता है। खाया-पिया यही बहुत है। अधिक से अधिक मोटिया का कपड़ा लेकर अधबहियां नपवा दिया! इधर आपने क्या किया कि . . . टेर-लिन, टेरीकाट! अरे महाराज, उसे सानी-पानी करता था, गोबर फेंकना था कि महफिल में बैठना था? अब अपनी करनी का फल भोगिये। बोलिये, सही कह रहा हूं न?'

'सही बात।'

'नहीं, मुंहदेखी मत कहिये! गलत कह रहा हूं तो आप कहिये, कहां क्या ग़लत कह रहा हूं?'

'सही बात।' इस बार ऊब मुंह पर झलक गयी।

'क्या सही बात? सही बात तो अभी मैं आपको बताने जा रहा हूं। आपका अकाज हुआ सो हुआ, वह अभागा कहीं का नहीं रहा। ऐसी बादशाही कहां मिलेगी। तुलसीदास ने साफ लिखा है कि 'क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई।' खल थोड़ उन में बौरा जाता है। वह खल था। गंवार और क्षुद्र था। शास्त्र में लिखा है, 'ढोल-गंवार शूद्र पशु नारी . . . ! भोलवा जूताखोर हो गया।'

'नहीं, नहीं। जटीजी, वह शायद नौकर से आदमी हो गया।' दाहिने हाथ का पंजा बढ़ाकर अब जटीजी को बोलने से रोकते हुए उपाध्यायजी बोले।

मगर जटीजी क्यों मानें? उनका पर-दुखकातर भोंपा अनचाहे बजता रहा—

'ज़रूर आदमी हो गया, चोर आदमी। अब मेरा कहा मानिये। तुरंत पुलिस में रिपोर्ट कीजिये। . . . मैं कि शिवशंकर उपाध्याय पेशर दमरी उपाध्याय, साकिन मौजा गोविंदपुर, परगना तहसील और ज़िला मज़कूर हलफ़ो-ईमान से बयान करता हूं कि मेरा ख़ितमतगार भोलवा बाशिंदा मौजा . . हां, वह कहां का रहने-वाला था, पंडितजी? . . क्या कहा? गांव-गिरांव का पता नहीं? हे भगवान, ऐसे लाखैरे और बहिकट को आपने कैसे इस प्रकार चंग पर चढ़ा दिया! घर का मालिक बना दिया? इतने बड़े पंडित होकर आप शास्त्र की बात भूल गये? कहां लिखा है कि ऐसे अज्ञात कुल-शील व्यक्ति को तिजोरी की कुंजी सौंप दो? अब बताइये रिपोर्ट कैसे होगी?'

'मुझे कोई रिपोर्ट-बिपोर्ट नहीं करनी है।'

'क्यों नहीं करनी है? ज़रूर करनी है। आप तमाम गांव की हवा ख़राब करेंगे? यह मामला आपका नहीं, सारे गांव का है। इसी प्रकार नौकर भगते रहे, तब तो खूब खेती होगी?'

इस वक्तव्य के बाद जटीजी कुछ क्षणों के लिए गंभीर चिंतक की मुद्रा में तर्जनी को दांतों में दबाये मौन हो गये। फिर जैसे उछाल लेकर बोले—

'हां, सोच लिया। कोई बात नहीं। रिपोर्ट से साकिन मौजा को निकाल दीजिये। बयान में दर्ज करें कि भोलवा नामक एक पंद्रह साल का लड़का जो मुलाज़मत की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

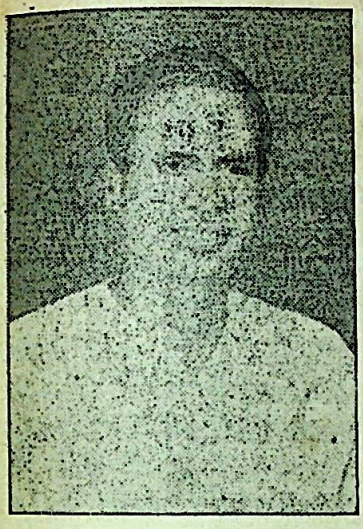

विवेकी राय

ग़रज़ से हमारे यहां आया, बतौर आज़माइश के उसे रखा गया। दो दिनों बाद कल वह कंबल-दरी और पांच सौ रुपया नकद चुराकर चंपत हो गया। उसकी शिनाख्त यह है कि उसके दाहिने हाथ पर हनुमानजी की तसवीर गुदी हुई है और चेहरे पर बायीं कनपटी के नीचे घाव का चिन्ह है।... है न ऐसा ही? हां, आखिर में तहरीर कीजिये कि यह शख्स जहां मिले फौरन गिरफ्तार कर हवाले जेल किया जाये और बरामद माल जिम्मे हम मालिकान किया जाये... अब मैं चलता हूं। खेत पर चिड़ियां बैठी होंगी। मैंने अपना फर्ज़ समझा कि आपको उचित सलाह दूं। अब आगे आपकी जैसी मर्ज़ी!' बात समाप्तकर सोना महाराज लाठी उठा चलने लगे।

उपाध्यायजी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। ज़रूरत भी नहीं थी। वास्तव में वे अपने भीतर कहीं और संघर्ष कर रहे थे। उन्हें तकलीफ अवश्य थी परंतु इस तृप्तिकारक जैसी तकलीफ के लिए क्या किसी की समवेदना की अपेक्षा थी? गांववाले लोग नाहक परेशान हैं। वे बारंबार सोच रहे थे, मैंने उसे क्या दिया? जितना दिया, उससे अधिक उसने चुका दिया। उन्हें लगता, उसकी नहीं, कहीं गहरे में शायद मेरी ग़लती है कि वह भाग गया। उसे अपने समान खाना-कपड़ा दिया, रहने-सहने की सुविधा दी और रुपया-पैसा दिया। नौकर जैसा व्यवहार नहीं किया। यह हमारा नौकर है, आश्रित है। क्या आश्चर्य कि व्यवहार में भी कभी अनजाने ठकुराई की कठोरता आ जाती रही हो। मनुष्य स्वतंत्र है। उसे खाना-कपड़ा और पैसा एक सीमा तक ही बांध पाता है। आदमी की स्वाधीनता को जगाकर उसे दास बनाकर रखना मुश्किल है। फिर वह आदमी जो अपनी अर्थात् अपने हाथ की कमाई पर आश्रित है, किसी का गुलाम कैसा? भोलवा भीतर से जब एकदम नौकर नहीं रह गया तो निकल गया। पता नहीं गांववाले क्या सोचते हैं? जो आता है खांची भर सीख लाद जाता है। अजीब आफत है। इस सोना ने तो हद कर दी! लेकिन अभी हद कहां हुई?

उपाध्यायजी के यहां से जाने के बाद भी जटी महोदय अपनी महत्त्वपूर्ण विस्तृत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी के आवेश से मुक्त नहीं हो सके। अब वे संपादकीय टिप्पणी के बाद अख़बार और हॉकर दोनों का काम करने लगे। दस कदम गये होंगे कि उधर से गांव के सबसे बूढ़े सुमेरसिंह आते हुए मिले। सोना जटी ने उन्हें समाचार सुनाया—

'सुना आपने ? भोलवा उपाध्याय को अंगूठा दिखाकर घर के कपड़े-लत्ते, गहना-गुरिया और मालमत्ता के साथ रातों-रात बंबई के लिए रवाना हो गया।'

सोना जटी के खेत तक पहुंचते-पहुंचते यह समाचार इतने अधिक लोगों को इतने अधिक प्रकार से प्राप्त हो गया कि पुछार करनेवालों से वे तंग हो गये। दरवाज़े पर भीड़ लग गयी। जितने लोग उतनी तरह की बातें। भोलवा के भागने का एक पैसा असर उनके ऊपर है तो ऐसा लगता है कि एक सौ पैसा समवेदना प्रकट करने वालों पर है। सौदागर चौबे बोले—

'अरे, साहब, मेरे यहां तो असाढ़ से लेकर अब तक सात नौकर आये और गये। आते हैं, महीना-दो महीना खटते हैं और ज़रा भी इधर-उधर हुआ कि डिसमिस। बोल देता हूं, भाग जाओ साले और वर्दी-पेटी रख दो। एक गया, दूसरा आया। एक ही वर्दी-पेटी पर कितनों ने जांगर ठेठाया। मेरा बिगड़ता क्या है ? जाता क्या है ? कुछ लेना-देना नहीं। काम तो होता ही है। गोबर काढ़ने वाले लिखनी नहीं न कर सकते ? झख मारकर आयेंगे ही। इधर इस उपाध्याय महाराज को देखो..!'

अब उभरा उपाध्यायजी की मूर्खताओं का खाता और उनकी आदमियत का आपरेशन देर तक चलता रहा। फिर यह तो एक सिलसिला था। चौबे जैसे लोगों की गांव में कमी कहां है ? हां एक अंतर अवश्य है। वैसी 'वर्दी-पेटी' का बंदोबस्त और कहीं नहीं। एक सस्ते पट्टे का अंडर-वियर है और गाढ़े की एक आधे बांह की धोकरी जैसी कमीज़ है। बस यही 'वर्दी-पेटी' है, जिस पर श्रीमान सौदागर चौबे के सेवक सेवा-टहल बजाते रहते हैं। चौबेजी कहते हैं कि इस प्रकार की पोशाक घर-गृहस्थी के कामों में सहूलियत पैदा करती है और नौकरों को बराबर याद रहता है कि वे नौकर हैं। ... उपाध्यायजी की तरह नहीं कि पहना दी बाबुओं के लड़कों जैसी पोशाक और फिर वह भूल ही गया कि नौकर है। आखिर समाज कैसे चलेगा ? नौकर नौकर है और बाबू बाबू!

चित्र : आलोक जैन

उपाध्यायजी ने कभी सोचा नहीं था कि गांववालों के पास नौकरों के बारे में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसा विस्तृत ज्ञान होगा। उनके नौकर-दर्शन की चकाचौंध से वे हतप्रभ हो गये। यह सारा दर्शन उन्हीं के द्वार पर घहराना था? उधर लोग टीका-टिप्पणी कर रहे थे और इधर वे क्षण भर के लिए अतीत में डूब गये थे। उन्हें वह दिन याद आ रहा था जब तीन-चार वर्ष पूर्व पहले-पहल भोलवा से भेंट हुई। वह स्थिति भी कैसी रोमांचक थी?

उन्हें एक गाय खरीदनी थी। अगहन का महीना था। बहादुरपुर के चौधरी के यहां पहुंचकर वे गाय देख रहे थे। तभी उन्होंने देखा चौधरी के दरवाज़े पर एक लड़का बैठा हुआ है। उसके कपड़े तार-तार हो गये हैं। सिर के बाल बढ़े हुए हैं। उन पर धूल गर्द की पर्त पड़ी हुई है। शरीर कितना दुर्बल और मलिन है। वह धूप की ओर मुंह करके बैठा है। उस बैठने में विचित्र ढंग की दयनीयता और लापरवाही है; कुछ मस्ती भी। तभी एक स्त्री बड़बड़ाती-झिड़कती एक रोटी लिये निकलती है—'इतना बड़ा लड़का कहीं काम क्यों नहीं करता? भीख मांगते तुझे लाज नहीं लगती है?' उस लड़के को देखते स्त्री की झिड़की उपाध्यायजी को अच्छी नहीं लगी, और फिर वे गाय के मोल-भाव में जुट गये।

चित्र : आलोक जैन

गाय खरीदी गयी। वह शीघ्र बच्चा देनेवाली थी। दाम चुकाने के बाद चौधरी ने उन्हें पगहा पकड़ा दिया। गाय लेकर दरवाज़े से उतरने के बाद उपाध्यायजी को लगा कि ग़लती हो गयी। सांझ होने वाली है और गाय लेकर अकेले नहीं चलना चाहिये। किंतु चल देने के बाद कौन पीछे मुड़ता है? अपने ही गांव-घर और देहात का मामला है। रास्ता निर्विघ्न कटने लगा। किंतु गोविंदपुर अभी दूर था कि गाय एक पेड़ के पास रुककर छटपटाने लगी। बच्चा देने के चिन्ह स्पष्ट थे। थोड़ी देर में वह प्रक्रिया भी प्रारंभ हुई और गाय की साधारण उछलकूद के बाद एक लैरू ज़मीन पर जगमगा उठा।

पक्के किसान होने के कारण इस प्रकार की स्थितियों की संभाल और सावधानियों के बारे में तो उपाध्यायजी जानत थे, परंतु समस्या थी कि उस नवजात बछड़े को जिसके शरीर से लसदार-लिजलिजा मैल लिपटा था कैसे ले चला जाये? अचानक बच्चा देने के बाद सीधी लगन वाली गाय के तेवर भी बदल गये और साथ ही अकेले आने का पछतावा सघन हो गया था। इस कठिनाई का क्या समाधान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दीपावली की शुभकामनाएं
और
नववर्ष का अभिनन्दन

पंडित प्रोसेस स्टूडियो

फोन : ४२२९४८०

दूसरी मंजिल, ब्लाक नं. १५,
प्रभादेवी इंडस्ट्रियल इस्टेट,
वीर सावरकर रोड,
बंबई–४०० ०२५.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है ? ऐसी चिंतामग्न स्थिति में उनका ध्यान रास्ते पर गया, जिससे मंद-मंद पैरों से नापता वह चौधरी के द्वार पर दिखायी देने वाला बालक चला आ रहा था। उपाध्यायजी को महान आश्चर्य हुआ कि निकट आने पर तथा उन्हें उस प्रकार खड़ा देखकर उस लड़के ने विना कुछ कहे-सुने चट बछड़े को खिलौने की भांति गोद में उठा लिया और बोला, 'चलिये, पंडितजी!' जैसे वह इसी कार्य के लिए वहां बुलाया गया हो !

उसका परिश्रम देखकर उपाध्यायजी दंग रह गये । रास्ते भर आदमी के बच्चे की तरह गा-गाकर खिलाते, बहलाते-बोलते, बात करते वह बालक हकड़ती-दौड़ती गाय के आगे-आगे बछड़ा लिये लगभग भागता हुआ घर आ गया । ऐसा लगा कि एक नहीं, गाय के साथ दो-दो बछड़े आ गये ।

रात में उसको खाना खाने के लिए खोजा जाने लगा। कहां सरक गया ?

बहुत तलाश करने पर मालूम हुआ कि उधर पश्चिम ओर बरगद के पेड़ के नीचे थोड़े से रखे पुवाल में वह नंगे बदन किकुरी मारे पड़ा है । पुवाल हटाकर उसे जगाने का प्रयत्न किया गया। वाह रे नींद; ऐसी गहरी नींद ! लालटेन की रोशनी में उसका भोलाभाला पवित्र, निर्विकार और ऐसी कठिन दरिद्रता में भी चमकता वह चेहरा ! उपाध्यायजी देर तक देखते ही रह गये ! यह भी किसी का बेटा है, किसी माई का लाल है ! '....अरे चल, उठ । पुवाल में घुसरकर सोने में ऐसा मज़ा है तो खा-पी कर सो ।'

सुबह पुवाल में से उठकर आंखें मलता सामने खड़ा हुआ तो उस धूल में खिले फूल को देख उपाध्याय की आंखें फटी की फटी रह गयीं । उसकी आंखों में क्या है कि इतनी साफ हैं! वे नीली-नीली दो भिक्षुक-आंखें . . . नहीं, इसे भिखारी समझनेवाले स्वयं भिखारी हैं ! उपाध्याय ने पूछा—

'क्या नाम है तुम्हारा ?'

'दमरी ? अरे यह तो मेरे पिताजी का नाम है, भोला बालक । दमरी उपाध्याय नहीं, तू भोलवा है । तू अब कहीं नहीं जायेगा ।'

...और वह सचमुच कहीं नहीं गया । पूरे तन-मन से साथ रहा, किसी सतयुग जैसी ईमानदारी के साथ । गया भी तो चोट नहीं, एक कचोट देकर । इस कचोट को न समझ गांववाले यह क्या बकझक करते हैं ? उन्होंने आंखें उठायीं, तो चौबे ने अपनी टिप्पणी का उपसंहार करते हुए हुए कहा —

'अच्छा, साहब, जो हुआ सो हुआ । आगे के लिए सावधान हो जाइये और अपनी ग़लती मान लीजिये ।'

'मान लिया । ग़लती मेरी है ।' उपाध्यायजी ने कहा ।

'और वह गलती कहां है ?'

'जहां भोलवा नौकर है ।'

—बड़ी बाग, गाज़ीपुर, उ. प्र.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दीपावली अभिनन्दन

श्रीवेंकटेश्वर प्रेस

आफसेट और लेटर प्रेस दोनों विधियों द्वारा कलात्मक उत्कृष्ट छपाई व प्राचीन सांस्कृतिक साहित्य का प्रकाशन केन्द्र

अध्यक्ष

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४०० ००४

दूरध्वनि : ३५७४५६ (दो लाइनें)

तार : वेंकटेश्वर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रुग्ण शैय्या पर आत्मीयों से घिरे हुए

महान मुंशी का महाप्रस्थान

□

शान्तिलाल तोलाट की एक स्मरणांजलि

१० प्रभा सदन, ६ ठा रास्ता,
सांताक्रुज, बम्बई–५५
२३–२–१९७१

प्रिय भाई श्री,

मुंशीजी के निधन के संबंध में आपका स्नेह और सहानुभूति-भरा पत्र मिला। मेरी व्यक्तिगत हानि को आप ठीक से समझ सके हैं। परंतु यह हानि तो संपूर्ण राष्ट्र की है। मुंशी के जाने से गुजरात ने स्वामी दयानन्द, गांधीजी और सरदार वल्लभभाई की पंक्ति में स्थान रखने वाले एक सुपुत्र को और भारत ने संस्कृति के पुनरुत्थान के एक सृष्टा को खो दिया है।

मेरा मुंशीजी से किस प्रकार परिचय हुआ, आपको लिख रहा हूं। १९५९ के मार्च महीने में मैं म्युनिसिपल कारपोरेशन के प्रिंटिंग प्रेस के जनरल मैनेजर के पद से सेवामुक्त हुआ और दूसरे ही दिन भारतीय विद्या भवन में प्रकाशन अधिकारी के रूप में जुड़ गया। उसके बाद की जानकारी आपको है ही। परंतु मुंशीजी के साथ मेरा प्रथम संबंध १९४७ में हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसी साल हमारा देश स्वतंत्र हुआ था। स्वतंत्र भारत में विदेशियों द्वारा स्थापित उनके हितों के प्रतिपादक वर्तमान पत्रों की स्पर्धा में भारतीय सम्पत्ति से स्थापित और भारतीय संपादकों-संचालकों की सुसज्ज सेवा वर्तमान पत्रों—अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषाओं में—की आवश्यकता का अनुरोध सरदार वल्लभभाई पटेल तथा अन्य नेताओं ने किया। परिणाम-स्वरूप सरदार के मार्गदर्शन में बंबई में पचास लाख रुपये लगाकर एक प्रकाशन-संस्था लिमिटेड कंपनी के रूप में स्थापित की गयी। उसका नाम था—अखिल भारत प्रिंटर्स लिमिटेड। इसके प्रथम चेयरमैन मुंशीजी नियुक्त हुए और सरदार के सुपुत्र डाह्याभाई पटेल मैनेजिंग डाइरेक्टर। अखिल भारत प्रिंटर्स लिमिटेड ने तीन प्रातःकालीन दैनिक पत्रों का प्रकाशन शुरू किया—१ भारत (अंग्रेजी), २. हिन्दुस्तान (गुजराती) और ३. नवभारत (मराठी)। हिन्दी दैनिक के लिए भी विचार चल रहा था। उस समय मैं बंबई के गवर्नमेंट सेंट्रल प्रेस में सहायक मैनेजर के रूप में काम कर रहा था। मुझे इस नयी संस्था में प्रेस के मैनेजर और कंपनी के संयुक्त मंत्री के रूप में जुड़ने का आमंत्रण मिला और मैंने सरकारी नौकरी से अलग होकर जून १९४७ में अखिल भारत प्रिंटर्स में अपना दायित्व संभाल लिया।

हमारे 'बापाजी' गृह-द्वार से बाहर आते हुए

उस समय मुंशीजी ने हैदराबाद में भारत सरकार के एजेन्ट-जनरल के रूप में कठिन दायित्व संभाल लिया था। १८ सितंबर १९४८ के दिन हैदराबाद में भारतीय सेना के प्रवेश के साथ ही मुंशीजी का वहां का काम पूरा हो गया। कुछ समय बाद वे बम्बई आ गये और दूसरे ही दिन सुबह मैं उनके आदेश से उनके तत्कालीन निवास-स्थान २६ रिज रोड पर उनसे मिलने गया। हमारे मराठी 'नवभारत' में प्रकाशित एक लेख के बारे में उन्हें जानकारी चाहिये थी, वह उन्हें दी। प्रस्तुत लेख हैदराबाद के संबंध में था और उसमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'टाइम्स आफ इंडिया' के उस समय के संपादक का कथित मानहानि का ज़िक्र था। उसके लिए हमारी कंपनी को कानूनी नोटिस मिली थी। मुंशीजी ने सारा विवरण ध्यानपूर्वक सुना और मुझे उसी दिन दोपहर को सुप्रसिद्ध वकील सर जमशेदजी कांगा (उसके बाद कांगा बंबई के एडवोकेट-जनरल नियुक्त हुए थे) के चेम्बर में हमारे सोलिसिटर के साथ उपस्थित रहने को कहा। उस समय मुंशीजी भी उपस्थित थे और उन्होंने जिस खूबी के साथ सर जमशेदजी से उस मुकद्दमे के मुद्दों पर कानून की दृष्टि से बारीकी से छानबीन की उसे मैं आज तक भूला नहीं हूं।

१९४९ में मुंशीजी को विधान-सभा की मसौदा-समिति के सदस्य के नाते कभी-कभी दिल्ली रहना पड़ता था। परंतु दिल्ली से भी भवन की सभी प्रवृत्तियों के संबंध में उनका मार्गदर्शन मिलता रहता। लंबे समय से वे सोच रहे थे कि भवन के प्रकाशनों के लिए उसका अपना एक आधुनिक ढंग का प्रेस होना चाहिये। उच्च स्तर का साहित्य सस्ती कीमत पर छापने की बात भी उनकी योजना थी। इन दोनों इरादों की सिद्धि के लिए भवन ने १९५१ में दि एसोसियेटेड एडवर्टाइजर्स एंड प्रिंटर्स नाम का प्रसिद्ध प्रेस खरीद लिया और 'बुक युनिवर्सिटी' ग्रंथमाला का प्रारंभ श्री राजगोपालाचारी के ग्रंथ 'महाभारत' के प्रकाशन द्वारा हुआ। डबल क्राउन सोलह पेजी आकार के चार

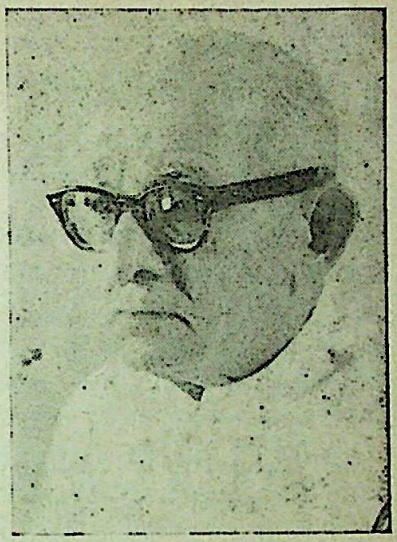

भारत की नित-नव्यमान संस्कृति के स्वप्नद्रष्टा मुंशीजी

सौ पृष्ठ के सुंदर रूपरंग वाले ग्रंथ की नाममात्र की कीमत केवल पौने दो रुपये रखकर उसे बाज़ार में बिक्री के लिए रखने का साहस मुंशीजी द्वारा संचालित संस्था ही कर सकती है। (आज उस ग्रंथमाला की २५० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और ४० लाख से अधिक पुस्तकों की बिक्री हो चुकी है) इस ग्रंथमाला के प्रारंभ से मैं उससे जुड़ा हुआ था।

१९५१ में सरदार के निधन बाद अखिल भारत ग्रुप के दैनिक पत्र ज़बर्दस्त घाटे के कारण बंद हो गये और बुक युनिवर्सिटी ग्रंथमाला के प्रकाशन के लिए मुंशीजी ने भारतीय विद्या भवन में मेरी नियुक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर दी। १९५२ की जुलाई तक मैं उस पद पर रहा। उसके बाद बंबई के म्युनिसिपल कारपोरेशन प्रिंटिंग प्रेस में जनरल मैनेजर के रूप में पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा मेरा चुनाव हुआ और मुंशीजी की अनुमति लेकर मैंने अपना पद-भार संभाल लिया। मुंशीजी उन दिनों उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे और उन्होंने मुझे अनुमति देते हुए जो स्नेह-भरा पत्र लिखा था—गुजराती में उनके हस्ताक्षरों से—वह मेरे लिए बहुमूल्य बन गया है। पत्र इस प्रकार था :

गवर्नर्स कैम्प, उत्तर प्रदेश

क्रमांक : ५०११/जी. एस. ता. १०-७-५२

प्रिय भाई तोलाट,

पत्र मिला। तुम्हें म्युनिसिपैलिटी में अच्छी जगह मिल गयी है, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

तुमने भवन और प्रेस के लिए बहुत किया है, मैं क्या नहीं जानता ? अंतिम दिनों में तो बुक युनिवर्सिटी की स्थापना के लिए भी तुमने बहुत अच्छा किया है और तुमने तो भवन के साथ एकात्मता साध ली थी, इसलिए तुमसे अलग होते थोड़ा दुख होता है, पर अच्छे स्थान पर जा रहे हो, उससे मैं प्रसन्न हूं। भवन के साथ संबंध बनाये रहोगे, तो अधिक प्रसन्नता होगी। स्नेह-स्मरण !

तुम्हारा-

क. मा. मुंशी

कहने की आवश्यकता नहीं है कि म्युनिसिपल प्रेस की आठ वर्ष की मेरी सेवा के दौरान भवन से मेरे संबंध घनिष्ट ही बने रहे। कभी-कभी मुंशीजी से मिलना होता रहता। उन दिनों की प्रकाशित हो रही दो पुस्तकें—'दि एन्ड ऑफ एन इरा' (हैदराबाद के संस्मरण) और 'स्वप्न-सिद्धि की खोज में' (हिंदी संस्करण के प्रकाशक राजकमल, दिल्ली) का मुद्रण कार्य मैंने संभाला था। उस समय पुस्तिका के रूप में प्रकाशित 'कुलपति के पत्र' तथा उसके बाद 'भवन्स जर्नल' के प्रारंभ में भी मेरा आवश्यक योगदान था।

मुंशीजी की इच्छा थी कि म्युनिसिपल प्रेस में से निवृत्त होते ही मैं भवन के प्रकाशन विभाग का काम संभाल लूं और उसी के अनुसार अप्रैल १९५९ में मैं पुनः भवन में जुड़ गया।

मुंशीजी का निवासस्थान भवन की भव्य इमारत की चौथी मंजिल पर है। मुझे विभागीय काम के लिए और उनकी गुजराती पुस्तकों के प्रकाशन की चर्चा करने के लिए कभी-कभी उनसे मिलना होता—प्रायः प्रतिदिन कहूं तो अनुचित न होगा। उन सभी मुलाकातों में उनका व्यवहार एक वात्सल्य-भरे बुजुर्ग की तरह का-सा होता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किसी भी दिन हम, भवन के कर्मचारियों को, यह अनुभव नहीं हुआ कि हम वेतनभोगी कर्मचारी हैं। हम उन्हें 'बापाजी' कहकर संबोधित करते और श्रीमती लीलावती मुंशी को 'मम्मी'। दोनों ने भवन के छोटे-बड़े सभी कर्मचारियों के प्रति हमेशा बुजुर्ग का-सा वात्सल्य-भरा व्यवहार किया। जैसे-जैसे इस सेवाभावी दंपति का परिचय बढ़ता गया, वैसे-वैसे उनकी महानता का और हृदय की विशालता का अनुभव होता गया।

आज मुंशीजी के चले जाने के बाद लगता है कि मैंने पिता का वात्सल्य खो दिया है—जबकि मेरे पिता मुझे तीन साल का ही छोड़कर संसार से विदा हो चुके थे।

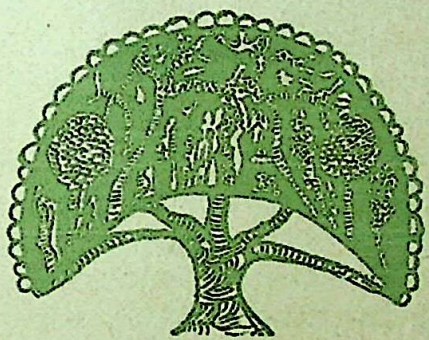

मुंशीजी के मार्गदर्शन में काम करने का आनंद अपूर्व था। मुस्कान के साथ बुलाते और बैठाते और फिर जिस बात के लिए उनसे मिलना होता, उसे ध्यानपूर्वक सुनते और उचित सुझाव देते। १९५९ के अप्रैल से उनके अवसान के दिन तक के अनेकानेक प्रसंग अच्छी तरह स्मृति-पटल पर अंकित हैं। वे इस महामानव के मानस की और हृदय के भिन्न-भिन्न गुणों की, उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा की अमूल्य यादगार बने रहेंगे। उनमें से कुछ का ही उल्लेख करूंगा।

१९५९ में भवन के दो पाक्षिक थे—अंग्रेजी में 'भवन्स जर्नल' और हिन्दी में 'भारती'। भवन में मेरे पुनः जुड़ने के बाद एक पत्रिका गुजराती में भी प्रकाशित करने के लिए मुंशीजी ने कहा। फलस्वरूप १५-११-१९५९ के दिन 'समर्पण' का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। पत्रों के नामकरण के लिए सरकार द्वारा निश्चित विधि होती है। उसके अनुसार कुछ नामों की सूची रजिस्ट्रार आफ न्यूजपेपर्स के पास उसकी मंजूरी के लिए भेजनी पड़ती है। ऐसा इसलिए करना पड़ता है कि देश में प्रकाशित हो रहे अनेक पत्रों में से कोई नाम दुबारा न आ जाये। इस तरह बापाजी की प्रथम पसंद का नाम 'भारती' स्वीकृत नहीं हो सका। उसके बाद तो 'ज्ञानामृत', 'श्रद्धा' और 'समर्पण' में से अंतिम नाम को स्वीकृति मिली। मुंशीजी जैसे सिद्धहस्त साहित्यकार की छत्रछाया के नीचे ग्यारह साल पूर्व का छोटा-सा 'समर्पण' आज अपनी पत्रिकाओं की अगली पंक्ति में है। 'जीजीमा की आत्मकथा' हमने 'समर्पण' के दूसरे अंक से प्रारंभ की और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसके संपूर्ण होने पर ७ अगस्त १९६० के अंक से मुंशीजी का 'कृष्णावतार' शुरू हुआ। आठ खंडों में प्रकाशित होने वाली यह महान कथा 'समर्पण' का विशिष्ट अंग बन गयी है (अभी छठे खंड का क्रमशः प्रकाशन हो रहा है)।

'कृष्णावतार' के लेखन और प्रकाशन के बारे में कभी-कभी मुंशीजी से मेरा मिलना होता रहता। प्रारंभ में एक–अधिक से अधिक दो–खंडों में पूरी की जाने वाली यह कथा जैसे-जैसे लंबी होती गयी, वैसे-वैसे मुंशीजी के श्रीकृष्ण के जीवन में जिन-जिन पात्रों ने महत्त्व के भाव का चिंतन किया था उनकी कहानी भी श्रीकृष्ण के पात्र को केन्द्रस्थ रखकर प्रस्तुत करने की कल्पना मन में पैदा हुई। वे बार-बार कहते कि वे पात्र रात में शान्तिपूर्वक नींद भी नहीं लेने देते। फलस्वरूप 'कृष्णावतार' की कथा अविरत आगे बढ़ती रही। मुंशीजी ने अन्य ग्रंथों के लिखने की जो योजना बनायी थी, उसे 'कृष्णावतार' के लेखन-कार्य के दर्म्यान स्थगित रखना पड़ा।

मुंशीजी की आत्मकथा की ग्रंथमाला का १९२६ के साल तक की जीवन कहानी पेश करती पुस्तक 'स्वप्नसिद्धि की खोज में' १९५३ में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद की उनके जीवन के विशेष महत्त्व के वर्षों की सामग्री भी कभी से तैयार थी–और इन वर्षों के शुरू होते ही दो प्रकरणों को उन्होंने १९५३ में ही लिख डाला था और मैंने उन्हें कंपोज़ कराकर उनके प्रूफ भी उन्हें लखनऊ भेज दिये थे (उस समय वे उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे)। प्रूफों का तकादा किया तो उन्होंने कहा–'हम इस समय के बहुत पास हैं, इसलिए फिलहाल यह कार्य यहीं रोक दो।' फलस्वरूप दो प्रकरणों का कंपोज़ मैटर तुड़वा देना पड़ा।

'कृष्णावतार' के चार खंडों का लेखन पूरा होने पर मैंने मुंशीजी का ध्यान पुनः आत्मकथा के बाकी रहे खंड की सामग्री की ओर सादर दिलाया। उन्होंने सस्मित उत्तर दिया–'इस "कृष्णावतार" के पात्र मुझे कहां छोड़ते हैं कि मैं आत्मकथा आगे बढ़ाऊं? "कृष्णावतार" के पूरे होने पर समय रहेगा तो आत्मकथा आगे बढ़ाऊंगा।' (आज अश्रुपूरित नेत्रों से अनुभव करता हूं कि समय नहीं ही रहा। 'कृष्णावतार' का ८ वां खंड भी थोड़े के लिए अधूरा रह गया और आत्मकथा तो १९५३ में जहां अटकी थी, उसके आगे फिर बढ़ ही न सकी।)

१९६९-७० के दर्म्यान मुंशीजी का स्वास्थ्य जब-तब बिगड़ने लगा। जैसे-जैसे तबीयत बिगड़ती गयी, वैसे-वैसे 'कृष्णावतार' शीघ्र पूरी करने की उनकी इच्छा तीव्र होती गयी। सातवां खंड पूरा हुआ, तब उन्हें कुछ राहत अनुभव हुई–'अब एक ही खंड बाकी है।' उन्होंने कहा।

मुंशीजी की योजना श्रीकृष्ण की लंबी हो गयी कथा को कुरुक्षेत्र की समरभूमि में 'शाश्वत धर्मगोप्ता' श्रीकृष्ण अर्जुन को विश्वरूप दर्शन कराते हैं, वहां तक ले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाकर ग्रंथमाला का समापन करने की थी।

आठवां खंड लिखा जा रहा था, उसी दर्म्यान एक लेखक मित्र का पत्र आया कि इस महान कथा का यथोचित अंत तो श्रीकृष्ण के देहोत्सर्ग के साथ होना चाहिय। यह पत्र मैंने मुंशीजी के सामने रखा—लंबी बीमारी के बाद वे अपने जुहू के बंगले में आराम कर रहे थे, तभी एक रविवार की सुबह। उनका उत्तर सूचक और अर्थपूर्ण था—'तोलाट, विचार तो अच्छा है, परंतु नवां खंड लिखेगा कौन ?' मैं तो मुंशीजी के स्वास्थ्य के प्रति सदैव आशावादी रहा हूं, परंतु उन्हें अपने जीवन का अंत निकट आ रहा है, ऐसी स्पष्ट आगाही उनका यह प्रत्युत्तर दे रहा था।

इस महामानव के साथ २३ वर्ष के संबंध को मैं अपने जीवन का एक अति भाग्यशाली समय मानता हूं। मेरी स्मृति-मंजूषा में उनके गुलाबी स्वभाव के विविध पहलुओं को उजागर करने वाले अनेक संस्मरण संचित हैं। इन सभी को प्रस्तुत करने का यह समय नहीं है, स्थान नहीं है। यह पत्र न चाहते हुए भी अधिक लंबा हो गया है, इसलिए अधिक कुछ किसी दूसरे समय लिखूंगा। उनकी साधारण ठीक तबीयत के समय जो उनसे अंतिम मुलाकात हुई, उसके बारे में संक्षेप में लिखकर इस लंबे हो गये पत्र को पूरा कर रहा हूं।

गुरुवार चार फरवरी १९७१ की वह शाम रात में बदल रही थी। भवन का कार्यालय बंद हो चुका था। सांताक्रुज जाने से पहले मुंशीजी से मिलने गया। वे आराम कर रहे थे और शाम का अखबार पढ़ रहे थे। अगले ही दिन मम्मी ने 'भवन्स कैम्पस' अंधेरी में १२-२-१९७१ से शुरू होने वाली पुष्प-प्रदर्शनी के लिए एक प्रेस कान्फ्रेन्स बुलायी थी। उसमें उन्होंने नवानगर की राजमाता साहिबा की तरफ से भवन्स कैम्पस में जो सुंदर पुष्प-वाटिका है, जिसमें अनेक तरह के विविध रंग के गुलाब उसकी विशेषता हैं, उसकी सुयोग्य देखभाल के लिए दीवाल बांधने के काम के लिए भी एक लाख एक हज़ार और एक रुपये का राजसी दान भवन को दिया था—उसकी घोषणा भी की थी। इस बारे में चर्चा हुई। मम्मी भी हाज़िर थीं और एक अन्य मित्र भी थे। बापाजी ने गंभीरतापूर्वक कहा—'आज राजाओं के राजभत्ते (प्रीवी पर्स) के बंद होने की बातें हो रही हैं, परंतु एक राजा के अलावा भवन को ऐसा दान कौन दे सकता था ?' मित्र न उत्तर दिया—'भवन को अच्छे दानदाता हमेशा ही मिलते रहेंगे।' बात को बढ़ाते हुए बापाजी ने कहा—'और अच्छे और सेवाभावी कार्यकर्ता भी।'

मित्र के चले जाने के बाद 'कृष्णावतार' की अगली किस्त जिसे उन्होंने लिखने का निश्चय किया था, उसके संदर्भ में प्राचीन यूनानी साहित्य में अश्वों के संबंध में उल्लिखित एक नोट तैयार करन के लिए मुझसे कहा। यह सामग्री सारथी के

(शेषांश पृष्ठ २३३ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुनीता जैन की एक विदग्ध ममताभरी कहानी

□

तुम चूड़ी पहनो, बिन्दी लगाओ, भाभी,...

रोज सुबह जब कालेज जाने के लिए मीता तैयार होकर निकलती है और आई. आई. टी. तक पहुंचती है, तो उसका जी करता है, वह कालेज न जाकर आई. आई. टी. में बनी पानी की छोटी-सी नहर के किनारे जाकर बैठी रहे। बचपन में भी

सुनीता जैन

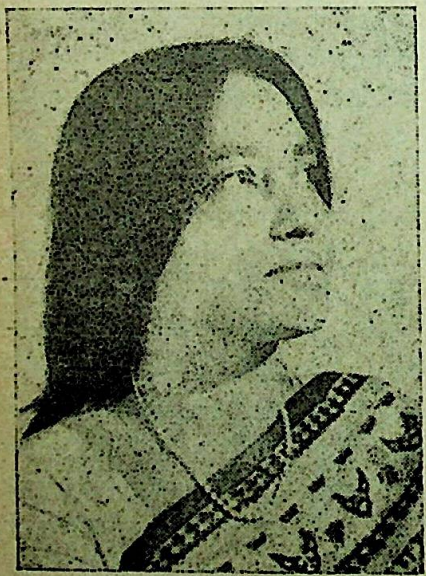

जब वह स्कूल जाया करती थी, तो स्कूल के रास्ते में बड़ा-सा तालाब पड़ता था। अक्सर आते-जाते वह वहीं रुककर जाने क्या-क्या सोचा करती थी। शायद सोचती नहीं थी, बस खड़ी रहती थी पानी के पास। आज और दिन से भी अधिक उसका जी कर रहा था कि वह पानी के पास जाकर बैठ जाये और आसपास कोई न हो। चलते-चलते उसे लगने लगा कि वह चल नहीं रही, बल्कि बैठी है किनारे पर, और पानी की गंदली गहराई से उठकर एक-एक कमल-कली सतह पर आती-जाती है और चटककर खुलती जाती है। कली के भीतर का बंद सोना यकायक सुख के भान-सा बिखरने लगा है। मीता बैठी है और देख रही है इतने सारे सुनहले लाल, गुलाबी खिले कमलों की ओर। देखती है कि पानी के चारों ओर बांस का घना जंगल है, जिसमें हवा सांय-सांय कर गुज़र रही है। हवा गुज़रती है, बांस खड़खड़ा कर रुदन करते हैं। उन टकराते बांसों से घिरे तालाब के किनारे कमल के खिलते फूलों को देखते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मीता सोच रही है कि उसने तो कहीं पढ़ा था, जब हवा बांस के जंगल से गुज़रती है, तब बांसुरी बजती है। फिर यहां टकराहट और खड़खड़ाहट क्यों है ? बांसुरी उसे सुनायी क्यों नहीं देती ?

अब तक मीता 'उचित दर' की दुकान के सामने पहुंच गयी थी। दुकान में जाकर बोली, 'लालाजी, वनस्पति घी आ गया है क्या ?' लाला ने एक क्षण उसे देखा, फिर खाता पलटते हुए बोला, 'समाप्त भी हो गया। आपको जो समय बताता हूं, उस समय आप आतीं नहीं।' कहने को हुई, कैसे आऊं ? नौकरी पर जाना होता है। समय की पाबंदी है। आप ही जो खयाल कर एक टिन रख देते। कितनी बार तो आ चुकी हूं।' पर वह कुछ नहीं कहती। चुपचाप बाहर आ जाती है। जो बात अन्य लोग इतने सहज ढंग से कह देते हैं, पता नहीं वही बात मीता के लिए कहना बहुत ही कष्टप्रद हो जाता है। मिसेज़ नायर ने उसे समझाया भी था कि लाला के पास दो-चार डिब्बे तो बतौर 'कर्टसी' रहते हैं। जरा अच्छे-से मांगना, जरूर दे देगा। पर मीता से नहीं मांगा जाता कुछ भी 'अच्छे-से'। फिर जब लाला ने कह ही दिया कि घी खत्म हो गया, तब वह कैसे आरोप लगाये कि लाला जी, दो-चार डिब्बे तो काउंटर के नीचे ज़रूर होंगे ?

०००

दुकान से बाहर आकर मीता सोचती है, जिम का पत्र आयेगा तो वह उसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिखेगी—'मैं आजकल कहीं से वनस्पति घी जुटाने की फिराक में रहती हूं, इसीलिए रिसर्च पेपर पूरा करके नहीं भेज सकी हूं।' फिर सोचती है कि नहीं, वह नहीं लिखेगी कुछ भी पत्र में। वह पत्र ही नहीं लिखेगी।

अमरीका से जब आने लगी थी, जिम ने कहा था, 'मीता, तू क्यों जा रही है?'

'जाना तो है ही एक दिन, जिम।'

'क्यों? यहां क्या अच्छा नहीं लगता?'

'नहीं, वह बात नहीं, अच्छा लगता है यहां रहना। शायद पूरी ज़िंदगी भी रह लूं, पर यहां मरना अच्छा नहीं लगेगा। जिम, परदेस में मरने की कल्पना से ही डर लगता है।'

'देख मीता, तेरी बहुत-सी बातें मुझे अजीब लगा करती हैं और यह मरने की बात तो बहुत ही अजीब है . . .'

'जानती थी, नहीं समझोगे।'

'वही 'कल्चरल डिफरेंस' की वजह से?'

'नहीं जिम . . . . .'

'तो समझाओ मुझे कि ज़िंदा रहना जहां निभ सकता है, वहां मरना क्यों नहीं हो सकेगा!'

'समझा पाऊंगी, यह उम्मीद नहीं। हां, यह ज़रूर जानती हूं, जब कभी खयाल आ जाता है कि मैं मर गयी हूं तुम्हारे देश में, तो बहुत ही "लोनली" महसूस करती हूं। हो सकता है मरना तभी तक प्रिय लगता है, जब रोने को कोई हो। स्वार्थ की बात है।'

'तुम्हारी बात में तर्क नहीं है ज़रा भी। पता नहीं कैसे पी-एच. डी. तुम्हारी हो गयी। किसी को कोई रोये क्यों? सुनो तो? ज़िंदगी सही ढंग से व्यक्ति जिये। करता रहे जो वह चाहता है, देता और पाता रहे। फिर शेष तो सब शेष है....'

'हां जिम, पर मेरी आंखों में तुम लोगों के कब्रिस्तान में बनी मेरी कब्र मुझे जब दिखती है, तो लगता है किसी पहाड़ी पर हवा जैसे सांय-सांय कर रही है। बड़ा वीरान लगता है। अच्छा छोड़ो, बात भावना की है, तर्क से कैसे समझाऊं?'

'भावना को मैं कम तूल नहीं देता। मीता, पर जीना छोड़ व्यक्ति कहीं मरने जाये, यह क्या भावना का सहारा लेकर आत्महत्या करना नहीं हुआ? मीता, मैंने तुम्हारा देश नजदीक से देखा है। तुम वहां अब पनप नहीं सकोगी।'

'ऐसा न कहो, जिम! इतने वर्ष परदेस में रहते मैंने अपने देश को मन का द्वीप बना रखा था, एक निराली 'तहीटी'। जब मैं उदास होती थी, मुझे सुकून वहीं जाकर मिलता रहा है। जैसे राग-रिश्तों-स्नेह का एक समूचा संसार वहां प्रतीक्षा में है, इसीलिए तो यहां भी क्या पनप सकी?'

'उसे मन का द्वीप ही रहने दो, मीता। जाने पर वह मिलेगा नहीं। जो है नहीं, वह मिलेगा कैसे? तुम बहुत छोटी थीं जब आयी थीं। अब लौटकर सुखी न होगी, यह मेरा मन कहता है। वहां जाकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम बंट जाओगी बिलकुल !'

०००

यकायक मीता सड़क छोड़ किनारे को छिटक गयी। सामने से ईंटों का एक ट्रक बहुत तेज़ गति से उसकी दिशा में आ रहा था। मानो ड्राइवर उसे ही डराने को इतने तेज़ और उसके इतने करीब से ट्रक को निकाल ले गया। ड्राइवर के तांबे-तपे चेहरे की भट्टी-सी मुस्कान की झलक भर मिलते ही ट्रक आगे निकल गया। पर एक ईंट उसमें से उड़ी और सड़क पर गिर-कर चूर हो गयी। मीता ठिठककर उस ईंट को देखती रही, जो मानो सड़क पर नहीं, उसके माथे में लगी हो। ईंट को देखते-देखते उसने देखा कि वह कार चला रही है और उसकी कार ट्रक के ठीक पीछे है। ईंट ट्रक से उड़ती है, कार का शीशा तोड़ती हुई उसके माथे में लग जाती है। सीने में उठती कराह को दबाती मीता का जी कर रहा था कि घर लौट जाये। कालेज न जाये आज। कालेज में उसे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता। अभी नयी-नयी वह यहां ट्रांसफर करवा कर आयी है। पहले जहां पढ़ाती थी, वह कालेज बहुत दूर था। पर वहां का वातावरण शांत था। लोग अच्छे थे। यहां का तो उसे हिसाब-किताब ही समझ में नहीं आता। जब आयी थी, तो लोग इशारे कर उसकी पीठ पीछे कहते, 'भई, यह अमरीका रिटर्न्ड है।' और सुननेवाले हंसते थे, 'अबे, अक्ल के अंधे, इतना तो सोच, अमरीका रिटर्न्ड होती तो इस कालेज में पढ़ाने आती ?'

मीता का जी किया कि सड़क के किनारे के नीम के नीचे किसी पत्थर पर बैठ जाये। पर नीम तले न पत्थर था, न छाया। धूप भी सिर पर आ गयी थी और पसीने की लाल सुइयां सांय-सांय करती हवा से तीखी हो चुभने लगी थीं।

कालेज के पिछले भाग में बनी कैंटीन की तरफ से मीता जैसे ही भीतर आयी, उसका पल्ला किसी ने छू लिया।

'मैडम !'

'अरे, रो क्यों रही हो तुम? क्या बात है?'

'मैडम, मेरी फ़ीस माफ करवा दीजिये। मेरे पापा बहुत बीमार हैं, काम पर नहीं जाते। मां फीस नहीं दे सकेगी, तो मुझे पढ़ाई छोड़नी पड़ेगी। भाई भी कोई नहीं है। मैं पढ़कर नौकरी करूंगी ...'

'तो रोने की क्या बात है, फीस माफ कमेटी को यह सब बता दो। फीस माफ हो जायेगी।'

'नहीं मैडम, फीस-माफ कमेटी में जो सर हैं, वे कहते हैं कि फीस माफ नहीं करेंगे।'

'क्यों ? अरे, फिर रोने लगी। क्यों नहीं करेंगे फीस माफ ?'

'मैडम, पहले शुरू में आप हमें पढ़ाती थीं न ? फिर आप दूसरी क्लास को पढ़ाने लगीं, तो हम सबने प्रिंसिपल को यह लिख-कर दिया कि हम मैडम से ही पढ़ेंगे, सेठी सर से नहीं पढ़ेंगे, क्योंकि उनकी बात हमारी समझ में नहीं आती। अब सेठी

(शेषांश पृष्ठ १४२ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीराम वर्मा की एक कविता

चिट्ठी

तुम्हें स्वाती के पानी से पानीदार कौन-सा नया संबोधन दूं
जबकि संज्ञाशून्य इतने दिनों में और कुछ नहीं हुआ।

महंगाई बरसात के टूटे-गिरे ज़िंदा तार की तरह बरक़रार
हर चीज़ को भीषण अछूत करती रही सिद्ध।
चीरघर पर हर दिन आती रहीं लाशें उसी तरह।
गिद्ध और चीलें तृप्त पूर्ववत् अदृश्य।

दवा के लिए होता रहा दर्द दिल का
और दर्द के लिए दवा उसी तरह चलती रही।

अख़बार से उठती बदबू में फ़र्क़ नहीं आया।
नाली की भभक वैसी ही है और छेंक नहीं पाती कभी
अख़बार का एक कॉलम भी।
रेडियो सोंधी ख़बरों का घर-घर इतर है गमकाता उसी तरह।
सड़कें चंद्रमा की सतह-सी आज भी हैं, कै बार कहूं।

सब कुछ ... सब कुछ ... सब कुछ ... यथावत् है यथापूर्व।

सिर्फ एक बात ऐसी हुई, जो हुई नहीं थी कभी।
(किसकी कहूं) सूखती एक साड़ी बंदर उठा ले गया।
यही नहीं, उसने उसे फाड़ा और बहुत बड़े पेड़ की
सबसे ऊंची दो काली डालों पर टांग दिया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगता था, ऊंचाई पर एक संभावित सर्वसुलभ
नाटक का पर्दा हिल रहा है।

बेला के गजरे की तरह बलाकाएं मंद-मंद जाती
क्षितिज तक काली मिट्टी के बर्तन का पारा लगने लगी थीं।
ढाक के पत्तों-सी तुम्हारी हथेलियों में
समाये संपूर्ण की तरह छांह देता
अधिकांश दिन उस समय चलनी बांध के
पार तमसा के हरे सेवार-जल में डूब चुका था।
और जब सुबह हुई, बंदर ने मानवीय मुहावरे की याद की
और धोती फाड़कर रूमाल कर दिया।
शायद आंसू पोंछने के लिए, और टहनियों पर टांग दिया।
सच बताऊं, टहनियां सूखी नसों की लपट हो उठी थीं।

आदमी की बिसात कहां तक है, सोचो ज़रा
बंदर तक दु:शासन से आगे हैं।
विकल्प क्या बचा है, बिना आंख बिछुड़े की बाट-सा
सब कुछ है निर्विकल्प
अपाहिज सारी ठहरी क्रियाओं में घिर्री लग गयी है—
और अनाम होता-होता
—तुम्हारा किस मुंह से कहूं—
हो गया हूं सर्वनाम।

— ए-९, पन्नालाल कालोनी, सिविल लाइंस,
आजमगढ़—२७६००१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ १३९ का शेषांश)

सर फीस-माफ कमेटी में हैं। वे कहते हैं फीस माफ नहीं होगी, नहीं तो यह बताओ वह चिट्ठी किसने लिखवायी थी, किसने लिखी थी ...'

स्टाफ रूम तक पहुंचते मीता का सिर चक्कर खाने लगा था। जिम की आवाज़ मानो चीखकर उसे कह रही थी—'मीता, तू क्यों जा रही है, क्यों जा रही है, मीता, तू क्यों जा रही है?' स्टाफ रूम के दरवाज़े का पर्दा सरकाते ही अरुण सेठी उसे दिखायी दे गया। जाकर उसी के सामने वह रुकी।

'मिस्टर सेठी, आप बच्चों को क्यों तंग कर रहे हैं? आपको जो कहना था मुझसे कहते!'

'मैं आपसे कोई बात नहीं करना चाहता।'

मीता का दुखता सिर झन्नाने लगा था। बड़ी ज़ोर से वह हंसी। स्टाफ के लोगों की ओर देखकर बोली, 'यह अरुण सेठी हैं। हम से बात नहीं करना चाहते। इनके खिलाफ विद्यार्थियों ने खत लिखा। मैंने इनसे कहा कि वह खत फड़वा डालते हैं, तो मुझसे बोले, आप किसी को इस विषय में कुछ बताना नहीं, पर अपने आप ये बच्चों से पूछते हैं कि बताओ खत लिखवाया किसने? उनकी फीस माफ करने से इन्कार करते हैं। मिस्टर सेठी, मुझसे पूछ लिया होता, अगर शक मुझ पर था आपका?'

'कहा न कि मैं आपसे बात नहीं करना चाहता। आपका बिहेवियर बहुत गलत है।'

'सो तो है ही, तभी आप कई दिनों से मुझे देखकर मुंह फेर लिया करते हैं। औरों को जाने क्या-क्या कहते रहे हैं। इसी से बहुत से लोग मुझसे आंखें चुराते हैं। हैलो का जवाब तक नहीं देते। क्या "बिहेवियर" तो सीखने आयी हूं...?'

मीता यकायक वहीं बैठ गयी है कुर्सी पर। सारा स्टाफ-रूम एलफ्रेड हिचकाक की फिल्म 'द वर्ड्स' का एक सीन बन गया है। ढेर-के-ढेर कौए उसकी तरफ कांव-कांव करके उतरे चले आ रहे हैं और अरुण सेठी गिद्ध की तरह डैने फड़फड़ाकर मंडरा रहा है इस प्रतीक्षा में कि कब मीता की घुटती सांसें आनी बंद हो जायें। अपने दोनों हाथों से मीता ने अपनी आंखें कसकर ढक लीं, जैसे उसके आंखें बंद कर लेने मात्र से यह दृश्य उसके मन से हट जायेगा।

०००

अपने कलाकार मौसाजी के पैरों के पास ज़मीन पर बैठी, गोदी में सिर डाले मीता बहुत देर से रो रही है। रोते-रोते उसकी हिचकी बंध गयी है। कालेज में उससे रुका नहीं गया था। टैक्सी पकड़कर सीधी अपने पिता, सखा, सहोदर अपने कलाकार मौसाजी के यहां चली आयी थी। तब से यहीं फर्श पर बैठी रो रही है। 'लोग इतने गंदे क्यों हैं? झूठ क्यों बोलते हैं? झूठ क्यों बोलते हैं...?'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोते-रोते जब रोना चुक गया और सुबकियां रह गयीं तो मौसाजी ने उसका मुंह ऊपर उठाया है। वे कुछ भी नहीं कह रहे। बस, गहरे उसकी आंखों में देख रहे हैं, उसकी आत्मा तक। वे यह भी नहीं कह रहे हैं कि 'लड़की, तू इतने दिन से आयी क्यों नहीं? कहां रही? यह क्या हाल बना रखा है तूने?' वे कुछ नहीं कह रहे हैं। बस बहुत गहरे उसकी आत्मा में यह देख रहे हैं कि जिसकी पीड़ा से वह इतना व्यथित हुई, वह घाव कितना पैना है। बिना कुछ पूछे, बिना कुछ कहे वे उसकी आत्मा तक देखते चले जा रहे हैं।

घर पहुंचने तक धूप बिलकुल ढल चुकी है। आकाश पर हलकी-सी बदली ने साया कर दिया है। मीता नहाकर आयी है। खुशनुमा छपाई की हल्की-सी जार्जट की साड़ी उसने पहन ली है। शीशे में अपना चेहरा ध्यान से देखते हुए उसे खयाल हो आया है कि आज बृहस्पतिवार है। विशु शायद आज आये। मीता ने सूने माथे पर बिंदी सजा ली है। विशु ही दे गया बिंदियों के ढेर-से पैकेट और मनियारे की तो मानो पूरी दुकान ही उठा लाया था।

'यह खाली कलाई मुझे अच्छी नहीं लगती, भाभी। तुम चूड़ी पहना करो न? बिंदी लगाया करो। क्यों नहीं लगातीं?'

'पगले, वहां बारह साल अमरीका में मैं क्या यह सब करती थी? वहां तो ये चीज़ें मिलती भी नहीं थीं, फिर अटपटा लगता है अब तो।'

'लगा करे अटपटा। कहो कि कलाई खाली नहीं रखोगी?'

दोनों हाथों में चूड़ी पहनते मीता सोचती है, शायद विशु आज भी न आये। पिछले सप्ताह नहीं आया। वह प्रतीक्षा करती रही। अक्सर चूक जाता है अब तो। नहीं रहा जाता तो पूछ ही लेती है, 'क्यों नहीं आया, बता?' जब नहीं पूछती तो गुस्से में कई-कई दिन अपने को साला करती है। एक-आध बार उसने झल्लाकर कहना भी चाहा है, 'क्यों रे, जब दोस्तों में बैठकर सिगरेट, पैग और प्रोग्राम चलते हैं तो तुझे क्या एक बार भी खयाल नहीं आता कि वह प्रतीक्षा करती होगी, शायद उसने खाना न खाया हो? इतना ही लापरवाह था तो तुझे परवाह ही क्यों हुई कि मैं चूड़ी पहनूं!'

छि., नहीं सोचेगी वह ऐसा। चूड़ी पहनेगी, बिंदी लगायगी। न बंधेगी, न बांधेगी। खुले रहने में ही मंगल है। कमल जब खुलता है तभी उसके भीतर सुख के भान-सा सोना बिखरता है और जब कभी भी विशु आयेगा, तो उसी तरह गोदी में लेटकर मचल-मचल कर कहेगा, 'मीता, मीता, मीता! कह मीता, तू मां है और मीता भी।'

'हां विशु, हां, मीता भी हूं, मां भी। और सुन, हवा जब बांस के जंगल से गुजरती है, तो बांस भले ही टकराकर खड़खड करें या सांय-सांय, पर बांसुरी बांस के दिल में बजा करती है।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वीरेन्द्रकुमार जैन का कामाध्यात्मिक सौंदर्य-दर्शन

□

खजुराहो

जहां काम ही मोक्ष हो गया है

यहां मेरी साधना-डायरी के कु पृष्ठ प्रस्तुत हैं। खजुराहो के संसार-प्रसि कामिक शिल्प का जो अवबोध मैंने अपनी अन्तर्दृष्टि से पाया है, उसी को शब्द-देह प्रदान करने की एक नाकाफ़ी कोशिश मैंने यहां की है —लेखक)

२७ अप्रैल, १९७२ : पन्ना : खजुराहो

आज सुबह बहुत जल्दी तैयार होकर मैं और रमेश (रमेशचन्द्र शाह) पन्ना के बस-अड्डे पर जा पहुंचे। देर हो जाने पर भी बस मिल गयी। जैसे किसी सुनिश्चित आयोजन के अन्तर्गत है यह यात्रा। और चलने से पहले ठाकुर ने चाय और पान का प्रसाद भी दे ही दिया।

. . . हम खजुराहो के मार्ग पर थे। मेरी मनोकामना का चिर अभीप्सित खजुराहो : संसार का अनुपम कलातीर्थ : पृथ्वी का अनन्य सौन्दर्य-तीर्थ। इस यात्रा में खजुराहो जाने का प्रस्ताव जब से रमेश ने किया था, तभी से मन में यह साध संजोये था कि मेरी जो कामाध्यात्मि कविताओं की 'सिरीज़' अधूरी पड़ी है, उ जीवन के इस ऊर्ध्वकाम पर्व में अब चेतना-स्तर पर समापित करना होग इसका इंगित-निर्देश खजुराहो के भगवा कन्दर्पेश्वर महादेव के श्रीचरणों में पा चाहूंगा। इसी गोपन जिज्ञासा को ले उस सुन्दर सवेरे मैं खजुराहो की ओ यात्रित था।

. . . ऐसी यात्रा में रमेश जैसा अभि आत्म-सहचर पाकर मैं बड़ी परिपू महसूस कर रहा था। बस में यकाय पाया कि मेरी चेतना बहुत प्रांजल औ स्निग्ध हो गयी है। रास्ता अत्यन्त सुन्द था। मध्य-प्रदेश रोडवेज़ की बहुत उम्दा, समरस, काली डामर की सड़ पर बस, जैसे मुलायम सुडौल बांह

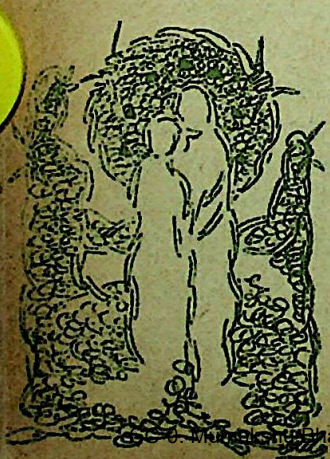

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चूड़ी की तरह फिसल रही थी। अप्रैल का हसीन बसन्ती सवेरा। दोनों ओर सूआपंखी आभा वाली मनोरम वृक्ष-मालाएं। दूरांत-व्यापी पहाड़ी प्रकृति का सुरम्य, सुगम्य सौन्दर्यप्रसार। राह में हठात् दूरी पर कोई एकाकी ऊंचा महल दिखाई पड़ा। सुना वह कोई प्राचीन गढ़ी है, और उसकी अपनी एक रहसिल-रोमांचक कहानी है। . . . रोमानी कवि की इस पहली लोक-यात्रा में सभी कुछ तो रोमानी है।

रास्ते में टेढ़े-मेढ़े चढ़ाव-उतारों वाले दो-एक घाट आये। पर्वती घाटों की खन्दकें मुझे यात्रा में बेहद आतंकित करती हैं। पर रमेश जैसे अन्तर्सखा का साथ, मध्य-प्रदेश की सुरक्षित चिकनी राज-सड़कें, सुखद बसें और कन्दर्पेश्वर की कोमल सौन्दर्य-यात्रा में मानो घाट और खाइयां भी एक स्निग्ध फलक पर अंकित दूरागत चित्र-से ही गुज़र गये। बड़ा ही 'सिरीन' और सुहाना सवेरा था। रास्ते में एक विराम-स्थल पर, झाड़ तले के एक होटल में गाढ़ी दूधिया चाय पी गयी। फिर खस्ता देशी पान, इलायची और केशरिया तम्बाकू के साथ जमाया गया। यहां का यह केशर-भीना ज़र्दा मुझे एक नयी फ़िज़ा में भाव-विह्वल कर देता है। केशर से अधिक कोई और खुशबू मुझे पसन्द नहीं। एक ऐसी गहरी सुगन्ध जिसमें एक साथ पाव-नता और विलासिता की अनुभूति होती है। . . . मेरी ममतामयी मां का नाम भी तो केशर था। . . .

कामेश्वर शिव और कामेश्वरी शिवानी का दिव्य मिथुन : खजुराहो

कोई डेढ़ दो घंटे में खजुराहो जा पहुंचे। पहले एक छायालस घाट वाला सुन्दर तालाब आया। हर नयी भूमिका, नया रूप मुझे नयी-नवेली अपरिचित प्रिया के परस से कातर-रोमांचित कर देता है। उस तालाब को देखकर भी कुछ वैसी ही अनुभूति मुझे हुई। . . . .

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

...एक सुव्यवस्थित आधुनिक रेलिंगों के फेंसिंग से घिरे विशाल उद्यान में भूरे-लहौहें पत्थरों के अनेक मन्दिरों का समूचा जगत् वहां उपस्थित था! बाग और फेंसिंग आज के और व्यवस्थित हो सकते हैं, पर नौवीं-दसवीं सदी के दौरान चन्देला राजवंशियों ने जब एक साथ इस वन-खण्ड में विभिन्न देवों के इतने देवालयों का निर्माण करवाया होगा, तो निश्चय ही उनकी कल्पना में कला, सौन्दर्य और देवत्व के समन्वय की एक अद्भुत 'दृष्टि' आविर्भूत हुई होगी। सदियां गुजर गयीं: हिन्दू संस्कृति का वह सुवर्णयुग अवसान पा गया, महाकाल के रंगमंच पर अनेक यवनिकाएं उठीं और गिरीं: हूण, शक, कुषाण, तुर्क, मुग़ल, पठान, फिरंगी—जाने कितनी राजसत्ताएं इस देश की छाती खूंद कर चली गयीं।...पर ऐसा जान पड़ता है, जैसे इस वन-खण्ड में एक सदावसन्त सवेरा चिरकाल से विद्यमान है। आतताई आक्रमणकारियों की तोपें और तलवारें कहीं बहुत दूर ही गरजकर और झनझना-कर टूट गयीं, अमर सौन्दर्य के इस अप्सरा-कानन का किनारा भी मानो वे छू न सकीं। कुछ ऐसा महसूस होता है जैसे कोई अलौकिक सौन्दर्य का स्वप्न यकायक इस वन्य-भूमि की प्रकृत शिलाओं में रातोंरात शिल्पित हो उठा होगा। किसी हवा में गुजरती अप्सरा का केलिगान मानों फूल बनकर यहां चू पड़ा है, और पृथ्वी के पाहनों में अदृश्य जादुई उंगली से आकार ले उठा है। अखण्ड, अछूता, अक्षुण्ण सौन्दर्य का कोई कल्पलोक जैसे पृथ्वी पर ठहरा-सा रह गया है। कला जिस तरह कालजयी होती है, उसका मूक और ज्वलन्त सन्देश है, खजुराहो के मन्दिरों का यह देव-कानन। पृथ्वी पर होकर भी ऐसा लगता है, जैसे यह मन्दिर-मण्डित भूखण्ड अपार्थिव है। इसके प्रांगण में प्रवेश करने पर लोकान्तर या जन्मान्तर करने जैसी एक आश्चर्यानुभूति होती है।....

कैसे होंगे वे राजपुरुष जिनके मनों में ऐसे भव्य-दिव्य स्वप्न का उदय हुआ। और कैसे होंगे वे कवि-शिल्पी, जिन्होंने पत्थरों के भीतर आत्मा की कोमलतम सौन्दर्य-उर्मियों को उकेरा है। निश्चय ही उनकी रक्त-शिराओं में दिव्य युगलों ने निरन्तर केलिक्रीड़ा की होगी। निश्चय ही रसेश्वर की रासलीला उनकी कई पीढ़ियों के रक्त में प्रवाहित हुई होगी। इसी से तो दो-सौ वर्षों तक अपने नाम-गोत्र, वंश, कीर्ति के सारे आत्मभान को भूलकर, पीढ़ी-दर-पीढ़ी वे इन पत्थरों में एक अखण्ड सौन्दर्य-स्वप्न को, अपनी अविराम छेनी के मृदु-मन्द और मौन आघातों से, अविरल और धाराप्रवाह साकार करते चले गये। मर्त्य मानव की सीमित सामर्थ्य से यह सम्भव नहीं। असीम और अनन्त अमृतेश्वर ने जब मर्त्य देह के

दायें पृष्ठ पर : खजुराहो का संसार-प्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ मिथुन-शिल्प

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भंगुर रक्त-मांस में अपनी अक्षय सौन्दर्य-धारा प्रवाहित की होगी, तभी कला की ऐसी लोकोत्तर स्वप्न-सृष्टि इन पाषाणों में रूपायित हो सकती है।

काल यहां ठहर गया-सा लगता है। नन्दन के कल्पकाम फूलों की सुगन्धों से भरे पवन में, अदृश्य रूप से उड़ते देव-देवांगना युगलों की उड्डीयमान मदन-केलि, किसी मानव-कलाकार के स्वप्नोन्मेष से खिंचकर पृथ्वी पर जाने किस एक रात मन्दार-कुसुम-सी यहां चू पड़ी है। किसी पार्थिव कवि के उद्दाम सौन्दर्य-काम की तरंग पर, यहां उर्वशी ने मानुषी गोद में आत्मार्पण किया है। अथाह नीलिमाओं की विराट् वीणा के नित-नूतन अदृश्य तारों की अविराम सुरावलियों में से हर दिन यहां सौन्दर्य की कोई अनोखी गान-लहरी उतर आती है, और नीरव भाव में गूंजती सुनायी पड़ जाती है। ....

... कितने व्याकुल प्राण लेकर, कैसे विचित्र भयादर के भाव से मैं सबसे पहले लक्ष्मण-मन्दिर की सीढ़ियां चढ़ा। ऊंचे चबूतरे के एक कोण पर, प्रचण्ड शार्दूल-मूर्ति दिखायी पड़ी, नीले आकाश में उरेही-सी अप्सरा की उद्भिन्न छाती पर पैर धरकर शार्दूल, उसके उन्मत्त रूप-यौवन के दर्प का दलन कर रहा है। यहां के सारे ही काम-केलि के मुसलसल शिल्पांकनों के बीच-बीच में, गीत की टेक की तरह हर जगह यही शार्दूलराज अप्सरा-भंजन करते हुए विराजमान हैं। तलछट तक कामभोग करके, अन्ततः पूर्णकाम होने पर, कामिनी-जय का दृश्य इन शार्दूलों में प्रतीकमान हुआ है। सारे ही मन्दिरों की परिक्रमाओं में, चौतरफा दीवारों और शिखरों में, हर सम्भव और कल्पनीय रूपों में, नर-नारी की काम-क्रीड़ा यहां उद्दाम-तम रूप में उत्कीर्णित है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने परमेश्वर प्रभु के समक्ष, यहां मनुष्य ने अपने मन के मनोज की सारी ही तरंगों को, मानव-आत्मा को निरन्तर बेचैन रखने वाले तमाम तूफानों को, उन्मुक्त भाव से खोल-कर निवेदन किया है। मानव के भीतर छिपे पशु ने, यहां पशुपतिनाथ के चरणों में निर्बाध आत्म-समर्पण किया है। इस नितान्त नग्न, उत्कट काम-क्रीड़ा में, तनाव और कसाव पराकाष्ठा पर पहुंचकर देह के रक्त-मांस के बन्धनों को जैसे चूर-चूर कर देता है। और अनायास ही चेतना मुक्त होकर अगाध अन्त-रिक्ष के 'ईथर' में तैरने लगती है। ये दृश्यावलियां शिराओं और मांस-पेशियों को जितना ही अधिक कसती और तानती हैं, उतना ही अकस्मात एक अजीब राहत और उन्मोचन का अहसास भी कराती हैं।

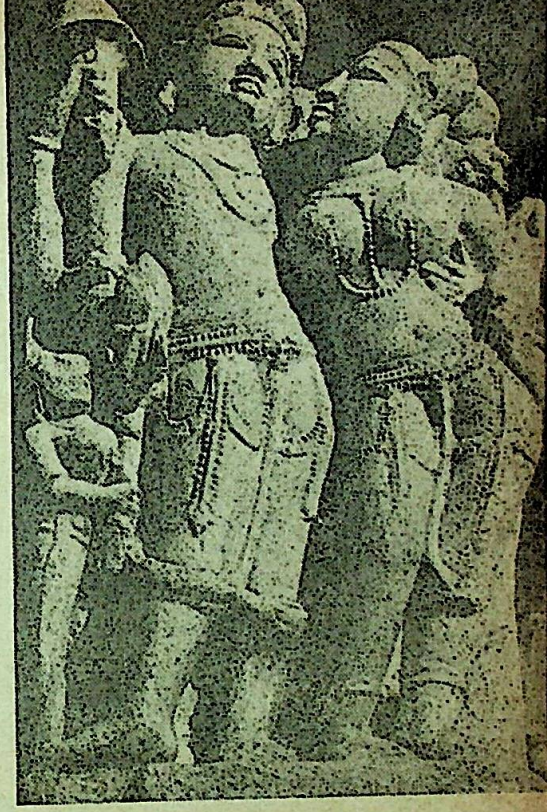

हमारे यहां के कई तथाकथित आधु-निकतावादी बौद्धिकजन, लेखक और कला-कार बिना जाने, बिना समझे-बूझे जो अचानक कभी-कभी हमारे धर्म-अध्यात्म और संस्कृति पर आरोप लगा बैठते हैं कि हमारे देश में कामवासना वर्जित है, निन्दित है, 'टेब्बू' है, उन्हें खजुराहो, जगन्नाथ, रामेश्वरम, कोणार्क और भुवने-श्वर के देव-मन्दिरों के इन मुक्त कामिक शिल्पों को नहीं भूल जाना होगा। ये किसी युग-विशेष की विकृत मनोदशा या भ्रष्टाचार के परिणाम नहीं। यह महज विलासी राजपुरुषों और पथभ्रष्ट वामा-चारी तांत्रिकों का विपथगामी व्यभिचार नहीं। यह भारत के मुक्तिकामी योगीश्वरों, द्रष्टाओं, योगी-कलाकारों और आत्मा की महावासना के आप्तकामी कवियों की विलक्षण सौन्दर्य-सृष्टि है। इसमें नित-नव्य प्रगतिशील और निरन्तर विकासमान अन्तर-आत्मा की मुक्ति-यात्रा की मनो-वैज्ञानिक प्रक्रिया का निगूढ़ रहस्य समाया है। कला-शिल्प में निर्ग्रन्थ काम-क्रीड़ा

इस लेख के सभी चित्रों के छायाकार : सूरज एन. शर्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वैत लीला में वे ही 'एक
वहुस्याम' होकर, अ
नर-नारी युगल के भी
काम-क्रीड़ा कर रहे
समग्र रूप में इस चरम-
सत्ता-स्वरूप का साक्षात
हो जाने पर, मैथुन आ
आप ही अन्तर्गत और अ
रल हो जाता है। न
वाहर के विखण्डित मैथुन
हम मात्र द्रष्टा रह
हैं। इस संयुक्त स्थिति
नर-नारी युगल के रूप
बाह्य मैथुन होने पर
उसमें रम्माण होकर
उसी अविभाज्य मुहूर्त
कालातीत रूप से हम
निश्चल, अविकल, द्रष्
साक्षी तथा स्वाधीन
आप्तकाम भोक्ता भी होते हैं। बाह
पुरुष और बाह्य-नारी, अन्तर-पुरुष
अन्तर-नारी के रूप में प्रत्यक्ष हम
भीतर स्वयम्भूत होकर, सहज
अन्तर-मैथुन में लीन हो रहते हैं। इ
विन्दु पर सम्भोग समाधि हो जाता है
नित्य, निरन्तर स्वायत्त सम्भोग
समाधि है। इसमें ज्ञान और रस का अ
यास अद्भुत समन्वय हो जाता है। मु
और भुक्ति यहां एकाकार होती है। प
पतिनाथ यहां पशु पर सवार हैं। ....

देवालय में बैठे हुए देवाधिदेव क

दिखाकर, मानव मन की तमाम जटिलतम ग्रन्थियों के स्रष्टा मनोज के सारे ही रहस्य-जालों को यहां अनावरित किया गया है। और इस प्रकार अनायास ही मानव-चेतना को अत्यन्त मनोवैज्ञानिक तरीके से निर्ग्रन्थ और उन्मुक्त कर देने का आयोजन इन शिल्पों में हुआ है।

कन्दर्प की समस्त लीलाओं के केन्द्र में, देवालय के भीतर बैठे हैं स्वयम कन्दर्पेश्वर। आप स्वयम् ही तो वे अर्धनारीश्वर हैं। अपनी दक्षिण देह में वे पुरुष हैं, अपनी वाम देह में वे नारी हैं। जगत् की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पंश्वर महादेव की विराट्, अखण्ड, समग्र देह हैं—ये खजुराहो के मन्दिर। यहां श्री भगवान् के सच्चिदानन्द समुद्र की उन्मुक्त लीला-तरंगों पर, काम मुक्त मदन-केलि करता हुआ, अनायास पूर्णकाम और आप्तकाम हो उठा है।

... यह है भारतवर्ष का चरम-परम सत्य-साक्षात्कारी जीवन-दर्शन। यह बुद्धि-मानसिक और वैकल्पिक चिन्तन-दर्शन नहीं है, यह परम सत्ता का जीवन-परक अनुभावन और ज्ञानालोकित साक्षात्कार है। भागवत की रास-लीला से लगाकर शैवों और शाक्तों के शिवशक्ति मिलन की तान्त्रिक साधनाओं तक में सच्चिदानन्द भगवान का यही चिद्विलास प्रतीयमान हुआ है। खयालों और भावनाओं से खेलने वाला आनुमानिक तर्कवाद यह नहीं; यह अवितर्क्य और अविकल्प अन्तिम सत्ता की अनन्त-आयामी संयुक्त लीला का खुली आंखों होने वाला अव्याबाध दर्शन है। यह दर्शन हो जाने पर, अविरल पर्सन-सुख सहज-सुलभ हो जाता है। तब आंखों में निरन्तर सुरा के समन्दर लहराते हैं, और गोद में निरन्तर सुन्दरी खेलती है। भगवान् दत्तात्रेय को एक बार इसी रूप में प्रत्यक्ष देखने पर, एक मानस-विकल्पी मानुष ने उनके देवत्व में सन्देह किया था और उन्हें व्यभिचारी समझ लिया था। पर निर्द्वन्द्व व्यभिचार ही तो अखण्ड ब्रह्मचर्य है, इस विगूढ़ रहस्य को वह बेचारा निपट मानसिक मनुष्य नहीं जानता था।

.... बात इतनी सूक्ष्म, गहरी और दूरगामी हो गयी है कि साधारण जन के लिए खतरनाक हो सकती है। पर अन्त तक हम साधारण नहीं बने रह सकते, सो इस बात के मर्म को समझना होगा

हिंदी डाइजेस्ट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्द्वन्द्व व्यभिचार का अर्थ अनर्गल विषय-भोग नहीं है। जो स्व-रूप में स्थित और रमणशील हो जाता है, वह सर्व में आत्म-भाव से अनायास ही रमण करता है। इसी को हमारे योगियों ने अपने अनुभव के आधार पर सर्वात्मभाव कहा है। जो आत्म-रमण हो जाता है, वह सहज ही सर्वरमण होकर रहता है। इसी से जो ब्रह्मचारी हो जाता है, वह अनजाने ही आपोआप व्यभिचारी हो जाता है। साधारण भाषा में, जो अनेक के साथ रमण करता है, वही तो व्यभिचारी कहलाता है। मूलगत रूप से हर स्त्री-पुरुष में व्यभिचार की लालसा होती है। शरीरतः एकबारगी ही नाना पुरुषों या नाना स्त्रियों के साथ रमण करके, इस लालसा की तृप्ति सम्भव नहीं है। आत्मिक भाव से ही प्राण की इस चरम चाह की तृप्ति पायी जा सकती है। इसी से इस तृप्ति को पाने के लिए पहले आत्म-रमण की क्षमता प्राप्त कर लेनी पड़ती है। आत्म स्वभाव से ही अनन्त, असीम, विराट्, सर्वव्यापी और सर्वात्म-भावी होता है। भगवान् की कृपा से योग द्वारा आत्म-स्वभाव में स्थिति अथवा चर्या हो जाने पर, सर्व में संचरण और रमण सहज-सम्भव हो जाता है। तब हर पुरुष को हर नारी के साथ और हर नारी को हर पुरुष के साथ रमण करने के लिए उसकी अनुमति नहीं लेनी पड़ती, उस पर निर्भर नहीं करना पड़ता। अपनी स्वेच्छा से और स्वायत्त भाव से, हर स्त्री हर पुरुष के साथ, हर पुरुष हर स्त्री के साथ अपने ही भीतर रहकर पूर्ण सुरति-सुख पा लेता है। इसी से योगी को सम्मुख पाकर, लोक की सारी ही रमणियां उस पर टूट पड़ती हैं, उसके चरणों में निछावर होती हैं। क्योंकि, उनके भीतर बैठी प्रकृतिजात व्यभिचारिणी को उसमें निर्बाधसुख की तृप्ति उपलब्ध होती है। इसी अर्थ

Digitized by eGangotri

में योगी अखिल सृष्टि का, अनन्त रमणियों का भोक्ता होता है। आत्म-ब्रह्म में चर्या होने पर ही, इस परम व्यभिचार की सामर्थ्य और सत्ता प्राप्त हो सकती है। तब कहना होगा कि पूर्ण ब्रह्मचारी ही पूर्ण व्यभिचारी हो सकता है।

आधुनिक मनोविज्ञान अवचेतन और अचेतन के तलों को छानता हुआ केवल यहीं तक पहुंच सका है कि प्राणी के मूल में कामभाव ही केन्द्रीय और सबसे प्रबल है। फ्रॉयड के अनुसार काम-चेतना के भीतर से ही सारा जीवन प्रवाहित और विकसित होता है। मनुष्य की सारी ही भावनाओं, चेष्टाओं, प्रवृत्तियों, प्रयासों और सर्जनों की प्रेरणा काम के भीतर से ही आती है। जीवन की व्यवस्था में यह काम अबाधित होने से ही अनेक ग्रंथियां और कुंठाएं मानव मन को ग्रस्त कर लेती हैं। इस विषय में मतभेद का कोई कारण नहीं है। फ्रॉयड की यह खोज मानव-मनोविज्ञान की एक महान् उपलब्धि है। पर बाधित कामेच्छा से सृजित इन ग्रंथियों का उन्मोचन, खण्ड-खण्ड व्यक्ति-देह के कामिक रमण द्वारा सम्भव नहीं है। यह खण्डित दैहिक-मानसिक रमण, खण्डित तृप्ति ही दे सकता है। यह ग्रंथियों का उन्मोचन करने के बजाय उन्हें और भी गुणानुगुणित ही कर सकता है। किन्तु मानव की मूल अन्तश्चेतना अखण्ड, अपार, सर्वरमण काम की उत्कण्ठा से आकुल-व्याकुल है। इसी से एक स्त्री एक पुरुष से, और एक पुरुष एक स्त्री से

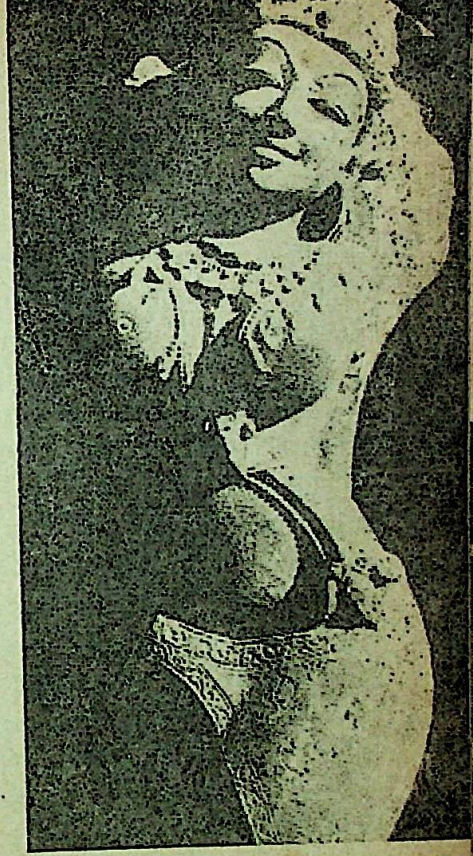

रमण करके पूर्ण तृप्ति नहीं पाता है। नित नव्य रूपों में, नितनूतन बार भोग-रमण करने की आर्त लालसा से मानव प्राण सदा आक्रन्द करता रहता है। योगियों ने अन्तश्चेतना के इस मूलगत काम के स्वरूप को पूर्णतया समझा है और उसका साक्षात्कार किया है। और इस अनन्त काम के भीतर ही छुपी, इसकी अनन्त तृप्ति के रहस्य का पता पा लिया है। इसी से वे उस उत्स तक पहुंचे हैं, जहां से यह काम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न होता है, और जिसके भीतर इस काम की पूर्ण परितृप्ति भी समायी है।

खजुराहो के केन्द्रीय देवालय के भीतर बैठे हैं स्वयम् कन्दर्पेश्वर, जो आप ही उस काम के उत्स हैं, जिसमें से यह द्वंद्वात्मिका सृष्टि प्रवहमान है। एकमेव अपनी स्वायत्त इच्छा से ही अनेक हुए हैं, और इस तरह उन्होंने इस नानात्मक सृष्टि की रचना की है। अपने स्वच्छन्द चिद्-विलास के लिए उन्होंने स्वयम् ही इस द्वन्द्व को उत्पन्न किया है, सो उन्हीं की स्वतंत्र इच्छा के भीतर इस द्वन्द्व का समाहार अथवा विसर्जन सम्भव है। इन मन्दिरों की समूची दीवारों और शिखर-परिसर में जो अपार और अविरल मदन-केलि उत्कीर्ण है, उसमें चराचर जगत् में व्याप्त काम की लीला को पराकाष्ठाओं पर अंकित किया गया है। दैहिक काम को यहां बेवाक कर दिया गया है: यानी बेवाकी की हद तक दिखा दिया गया है। यहां तक कि समलैंगिक मैथुन और पशु के साथ मानव के सम्भोग तक को इन शिल्पों में समेट लिया गया है। सम्भोग की हर सम्भव विधि और आसन तक को यहां अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। मदन-क्रीड़ा के एक ही संयोजन में एकबारगी ही अनेक स्त्री-पुरुषों के संयुक्त काम-भोग को भी यहां दिखाया गया है।

मंशा यह है कि मनुष्य की अनर्गल कामेच्छा को, उसकी बहुरमण की स्वच्छन्द व्यभिचार-कामना तक को यहां खुलकर खेलने का अवसर दिया गया है। इस प्रकार देह का काम यहां अपने को बेवाक करके, अनायास स्वयम् अपने को ही अतिक्रांत कर जाता है।

.. दर्शक के लिए इसमें एक निगूढ़ मनोवैज्ञानिक योजना है। वह यहां भोक्ता नहीं, उस अनर्गल काम-भोग का मात्र दर्शक होता है। इस प्रकार द्रष्टा होने का अवसर पाकर, काम की जटिलतम और सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति को देखने-जानने का उसे अवसर मिलता है। जब नर-नारी स्वयं भोगरत रहते हैं, तब वे अपने भोग में इस कदर डूब जाते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं कि उस समय की अपनी अंग-भंगिमाओं, मुख-मुद्राओं, गुम्फन की प्रगाढ़ताओं, तन-वदन के कसावों-तनावों, देह के विभिन्न अंगों के मैथुनाकुल सौन्दर्य-सौष्ठव, लय-संगीत, गतिमत्ता, आन्दोलन और आवेग-उन्मेष को वे देख नहीं पाते हैं। कला की यह सार्थकता और शक्ति है कि वह मनुष्य को उसकी सारी भावनाओं, संवेदनों, आवेगों, रागों, भोगों, भंगिमाओं, अभिव्यक्तियों का तद्गत रूप से साक्षात्कार कराती है। वह मनुष्य को अपने भोगों का ज्ञाता-द्रष्टा बनाती है। तद्गत रूप से चीज़ों और भावों को देखना ही, उन्हें उनके सम्यक् स्वरूप में जानना है। चीज़ों को उनकी समग्रता में देखना और जानना ही, उन्हें समग्रता में जीना है। और यह जानना, जानने वाले को सही और सच्चे अर्थ में तृप्त करता है, मुक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करता है। यही अभिनव गुप्त की मधुमती भूमिका है: अर्थात् वह चेतना-स्तर है जहां रस ज्ञान बन जाता है, और ज्ञान रस बन जाता है। इसी भूमिका में पहुंचकर मनुष्य पूर्णकाम भोक्ता बनता है। जो सम्पूर्ण ज्ञाता है, वही सम्पूर्ण भोक्ता है।

खजुराहो के कला-शिल्प का निर्माण इसी मधुमती भूमिका पर से हुआ है। भोगते समय हम अपनी भोग्या रमणी से अंग-प्रत्यंगों की सारी मरोड़ों, भंगिमाओं, उभारों के सौन्दर्य का समग्र दर्शन नहीं कर पाते हैं। यहां नर-नारी की भोगरत देहयष्टि के परिपूर्ण सौन्दर्य को समग्रात्मक अभिव्यक्ति दी गयी है। मुख, कपोल, चिबुक, ग्रीवा, स्कन्ध, बाहुमूल तथा भुजाओं, बांहों, स्तनों, वक्षदेशों, कटिदेशों, त्रिवलियों, जंघाओं, योनियों, नितम्बों, रानों और पगों को उनके सम्भवतः पूर्णतम और आदर्श सौन्दर्य-सौष्ठव के साथ यहां उभारा गया है। रमणलीन मानव देह के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों और अवयवों की इससे अधिक सुन्दर, सुडौल और परिपूर्ण अभिव्यक्ति संसार की शिल्पकला में शायद ही कहीं हुई हो।

खजुराहो की विशेषता यह है कि यहां सृष्टि की ओर से मानव की मूलभूत चेतना काम को उसके व्यंजक देह-सौष्ठव में सूक्ष्मतम सौन्दर्य-भंगिमाओं के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। काम से छलाछल उत्कंठित रमणी या अप्सरा के अंग-मरोड़ को, अंगभंग को, उन्मुक्त और निःशेष आत्म-निवेदन के सीमान्तक संवेदन के साथ यहां उभारा गया है। देह के कण-कण और रोम-रोम के इस अर्पण में जहां अंगों के अन्तहीन तनाव और कसाव हैं, वहां मुक्त होने की उद्दाम व्याकुलता के छोर पर, दर्शक की चेतना में अनायास एक चमत्कारिक उन्मोचन और मोक्षण घटित होता है।

मात्र देखने की प्रक्रिया में ही, यह विविध शृंगारिक मुद्राओं तथा सुरति-सम्भोगों की अन्तहीन और बेबाक परम्परा, चरमोत्कर्ष के एक बिन्दु पर पहुंचकर, अनजाने ही चेतना को निराकुल और मुक्त कर देती है। व्यक्ति अनायास स्वयम् आप हो रहता है। उसे आत्म-स्वामित्व का एक अनोखा बोध होता है। वह अपूर्व रूप से खुद अपने साथ और चीज़ों के साथ घरोपा महसूस करता है। मानों कि व्यक्ति अपने-आपको और आसपास की सृष्टि को आरपार और समग्रता में देखने लगता है। वह एक अविभाजित, सम्पूर्ण, अविच्छिन्न आत्मभाव में आ जाता है। वह अपनी ही गहिरतम सत्ता की अग्नियों में नहाकर, स्वच्छ और निर्मल होकर बाहर निकल आता है। सृष्टि के अवचैतनिक अन्धकारों में घुमड़ रहे तमाम अराजक तकाज़ों को अपने भीतर सुशृंखलित और सम्वादित अनुभव करने लगता है। मानों कि उनका स्वतंत्र स्वामी हो गया हो। मानों कि खजुराहो का यह कामिक शिल्प,

(शेषांश पृष्ठ २०४ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जयपुर की वारांगना रानी रसकपूर

सौन्दर्य, संगीत-नृत्य और प्रणय की एक दर्दभरी दास्तान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह कहानी है रसकपूर और जगतसिंह की . . . एक जयपुर रियासत के महाराजा और दूसरी अनिंद्य सुन्दरी – नृत्य और गायन कला में प्रवीण। महाराजा नृत्य-संगीत के पारखी . .प्रेमी. . .तबियत के विलासी . . .नृत्य-संगीत के लाल और हरे अखाड़े गुलाबी एड़ियों पर ठुनकते घुंघरुओं के साथ थिरकते रहते थे . . . सन १८०३ में इन्होंने शासन की बागडोर संभाली। मृत्युकाल रहा सन १८१८। . . . रसकपूर के हुनर और सौन्दर्य ने, तहजीबयाफ्ता व्यवहार ने और एकनिष्ठ समर्पित अनुराग ने उनके दिल-दिमाग़ पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि उन्होंने उस अकिंचन नर्तकी को आदर-सम्मान का बहुत ऊंचा दर्जा दिया . . .इतने अधिक खिताब-बहुमूल्य नजराने. . .इनाम और दैनिक जीवन के ठाठ-बाट दिये कि राजकीय ख़ज़ाना खोखला होकर रह गया. . . प्रजा में फैला खूब असंतोष; मुल्क में बदइंतज़ामी फैली . . . बाहरी आक्रमणों से आन-बान-शान को गहरा धक्का लगा . . . जनाने महलों का उच्चवंशीय क्षत्राणी लहू आक्रोश और लज्जा से खौल उठा . . . राज-घराने के गौरव पर धूल छाने लगी. . . लेकिन रसकपूर पर इनायतें बरस रही थीं. . . उसे

सावित्री परमार की गीतों-भरी कलम से आलेखित जयपुर राजघराने की एक रोमांचक इतिहास-कथा

राज्य के आधे हिस्से की रानी घोषित किया गया. . .राज्य का कुल बहुमूल्य सामान,कुतुब-खानह (पोथीखाना) तक आधा न्यौछावर कर दिया . . . जयमंदिर का ख़ज़ाना उसके हास-विलास पर स्वाहा होने लगा . . .उसके नाम का सिक्का जारी हुआ . . . न्याय-फैसले सब उसके हुक्म से . . . प्रत्येक राजसी तथा सार्वजनिक समारोहों–उत्सवों में वह राजा के साथ हाथी पर सवार होकर निकलती थी... उच्चकोटि के स्वाभिमानी राजभक्त सरदारों को आदेश था कि उसे रानियों के अनुसार ही अदब-कायदे का दर्जा दिया जाये . . . चारों तरफ राजपूती ख़ून खौल उठा. . .आंखों में अंगारे दहक उठे . . . दूणी के सरदार चांदसिंह का विद्रोह उस समय के इतिहास में अमर हो उठा, क्योंकि उसने सरे भरे दरबार में ऐसा करने से इंकार कर दिया . . . दण्डस्वरूप उन पर दो लाख का जुर्माना हुआ. . .रियासत की सारी प्रजा, सरदार, ठिकानों के ठाकुर, जागीरदार, आसपास के राजा और मुसाहिब सभी के भीतर तूफान. . . ऐसा अपमान ? रनवास अलग से प्रचण्ड क्रोधाग्नि से धधक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा था। उधर महाराजा भीमसिंह की अपूर्व सौन्दर्यशालिनी पुत्री कृष्णाकुमारी को पाने के लिए महाराज जगतसिंह ने युद्ध छेड़ दिया . . . परिणाम राज्य, धन और सेना की बुरी तरह बर्बादी . . . पराजय . . . बदनामी. . . कृष्णाकुमारी को विष ग्रहण करके प्राण त्यागने पड़े . . . इस घटना ने राजपूतों के असंतोष को और हवा दी. . . भयानक आरोपों से बुनकर रसकपूर के लिए जहरीला जाल तैयार किया गया . . . जिसमें उलझकर उसका लोम-हर्षक अंत हुआ . . .

यह सारी कथा-सामग्री 'रूलर्स एण्ड चीफ्स ऑफ इण्डिया'—ले. कर्नल टी. एच. हैण्डले तथा 'वीर-विनोद' से प्राप्त की है। ये दोनों पुस्तकें नवलगढ़ (भूतपूर्व स्टेट) के कुंवर संग्राम सिंहजी के सौजन्य से प्राप्त की गयीं। रसकपूर का दुर्लभ चित्र आचार्य रामचरण प्राच्य विद्यापीठ संग्रहालय से लिया गया। दोनों महानुभावों के सहयोग के लिए लेखिका आभारी है। शेष समस्त चित्रों के छायाकार श्री सूरज एन. शर्मा हैं।

सांगानेरी गेट के पास कांचमहल : जहां रसकपूर का जन्म हुआ और बचपन बीता

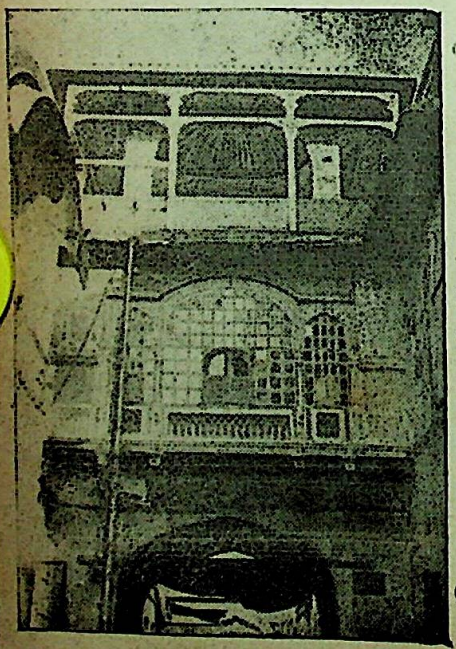

सावन की गदराई-पुरवाई सुबह..... रेशमी हरियाली का शबनमी कलेवर . . .सुगंधित फूल, पेड़ों, लताओं से आच्छादित बाग, बगीचे और रौसें . . . स्वर्ण-मुद्रिका के बीच हीरे की कौंध-सा चमचमाता महल...सीढ़ियों, रौसों, बारहदरियों, बरामदों और गलियारों में बिछे रंगीन कालीन...स्थान-स्थान पर फव्वारे..... स्वच्छ जल से प्लावित सरोवर...अठखेलियां करते कमल और कमलिनी..... भित्तिचित्रों से सज्जित दीवारें...कक्षों पर आदमकद तैलचित्रों का मोहक सिलसिला...कलात्मक गमलों में फूलों की मीठी हंसी...जूही-चमेली और मोगरे की गंध में घुलती हुई रजनीगंधा और रात की रानी की मदहोश खुशबू.....स्वर्ग का पूरा नंदनवन...

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उषा का कंगन आकाश की हवेली के पूर्वी झरोखे में बज उठा था। पौ फट गयी थी, जैसे किसी ने चंदन की कटोरी ढलका दी हो! तभी तरल-ताज़ा हवा में महलों से राजसी शहनाई का स्वर झंकृत हो उठा। गुणीजन खाने में हलचल शुरू हो गयी। एक नरगिसी साया दीवारों के सहारे मंथर गति से चलता हुआ प्याज़ी-फ़िरोज़ी पर्दों की झिलमिलाती फांकों के बीच बैठ गया। भोर की कचपचिया उजास में नथनी का गोल लालम चमक उठा। गिलाफ़ी पलकों की झपकन यकायक रुक गयी। मन में दूधिया ज्वार उमड़ने लगा। दृष्टि अवाक् होकर, घबराकर इधर-उधर देखने लगी...कहां गयी रतना सखी? कहां लाकर छोड़ गयी उसे? रतना के शब्द कानों की लवें तपाने लगे—'सुनो, रसकपूर! अपने रूप-सौन्दर्य से और ब्रह्माण्ड घुमा देनेवाले गायन-मंत्र से बींध डालो महाराज का भंवर-हृदय...अगर आज तुमने अपनी गायकी का सारा रस निचोड़कर बहा दिया और अगर महाराजा के नयन-कटोरों में प्रशंसा का सागर लहरा दिया, तो समझ लो तुम्हारी ज़िन्दगी जायेगी.... गुणीजनखाने पर छा ...गी... मन भावनी अन्तरंग राज-नर्तकी का सम्मान भी पा सकती हो। सोचो तो ज़रा कि एक वारांगना की बेटी को कितना बड़ा पद मिल जायेगा? फिर दूसरों को खुश करने के लिए घुंघरू बांधने नहीं पड़ेंगे...' ओह! कैसा तो

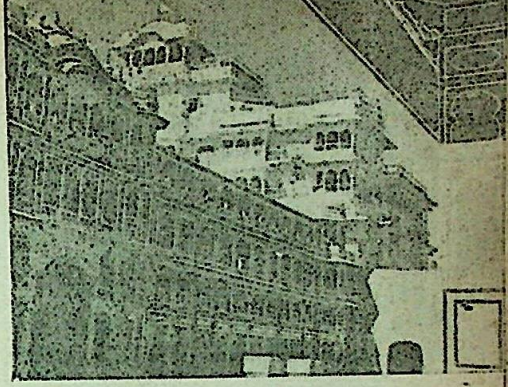

चन्द्रमहल, जहां महाराज जगतसिंह ने सबसे पहले रसकपूर की गान-लहरी सुनी और उसका सर्वस्वहारी मुखड़ा देखा

सुनहरा सपना दे गयी थी वह! उसकी मदालस पलकें फिर उठीं....

चन्द्रमहल का सुखनिवास...चांदी की पुतलियों में कसे ठोस पायोंवाला खूबसूरत छपरखट...सोने-चांदी के फूल-तारों वाले झीने नीलवर्णी पर्दे...पर्शियन कालीन और प्याले...फूलों-छाई रेशमी गुदकारी शैया...चारों ओर कलात्मक सज्जा... सलमे के गुच्छे-फुंदने कसे कामदार मसनद-तकिये ... इत्र-फ़ुलेल ... गंध-शलाकाओं पर जगी रात-भर की ठहरी अलस खुशबू ...महाराज जगतसिंह का शयन-प्रकोष्ठ...और उसपर सोया उनका आकर्षक पौरुष...जयपुर रियासत के महाराजा की पलकें गुणीजन खाने से आती हुई भोर-संगीत की लय पर ही प्रतिदिन खुलती थीं। आज भी उजली किरणों की डोली धीरे-धीरे हिचकोले ले रही थी। अचानक मदिर-मदिर स्वरलहरी से वातावरण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रागमय हो उठा...शतदल पर जैसे ओस-कण बिखर जायें, ऐसे ही संगीत लड़ी से छंद झरने लगे...

'रैन बिहानी जागो सांवरे....ऽऽ'... यह कैसा अनहद नाद? आज प्राणों में कैसी पागल अकुलाहट? पुखराजी सपनों के द्वार पर ये कैसी मोहक दस्तकें? धनुषाकार भौंहों में कंपन हुआ...सांवली पलक पांखुरियां हौले से थरथरायी... मनोहारी नेत्र-संपुट खुले...गुलाबी खुमार में आश्चर्य के हाशिये खिंच गये...आज की भोर का यह कैसा नया आह्वान! कौन है यह स्वर-साधिका! हैरान होकर महाराज गावतकियों पर झुक आये... दर्पण दिपदिपा उठे...चौड़े रोमिल मांसल वक्षस्थल पर हार वंकिम हो उठा...चंदन

शीशमहल : आमेर

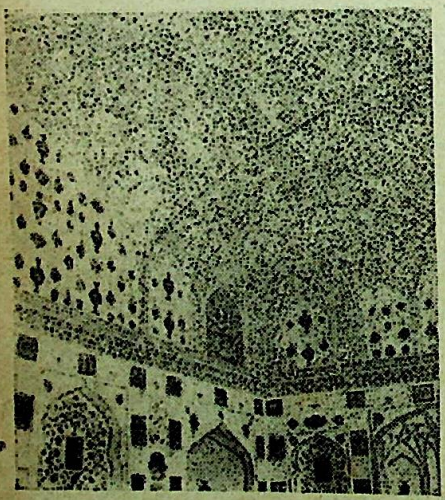

चर्चित भाल पर कुंचित केश लहरा उठे... गर्वीली गर्दन में एक लोच आया... मौन प्रश्नों से महुआ सांसें ओठों की शानदार तराश पर कांप उठीं...उनका कामदेवी सौन्दर्य सामने बैठी उर्वशी के स्वरों में डूबकर मूर्छित-सा हो उठा...कैसा उन्मादित कोकिल कण्ठ! चंपक उंगलियों की वीणा पर यह कैसी जलतरंगी फिसलन! अनूठा अहं लपेटे ये कैसी सौन्दर्य गरिमा?...

महाराज की दृष्टि की धूप का अहसास पाते ही कड़े-चूड़ले छनक उठे....अन्नदाता की सांसों के आरोह-अवरोह तीव्र हो उठे...उनके जागने का संकेत होते ही सोने की घंटियां टुनकाती पिंजरे की मैना कुहकुहा उठी...रसकपूर के पैरों की पायजेबें सिहर उठीं...सांसों की उत्तान तरंगों पर गलपटिया, पंचमणियां, कठुला और मणिकांतहार उद्वेलित हो गये। कस्तूरी गंध में नहाये चेहरे पर लाज का कुंकुम छा गया। वीणा कांपी कि नेवरी और रत्नजटित अनवट-बिछुए मुखर हुए। महाराजा के नेत्र चन्द्रवदनी की गुनगुनी गनगनाहट से सूरजमुखी हो कान तक उत्कीर्ण हो उठे...कंधों से उत्तरीय खिसक पड़ा...ओठों की जुम्बिश में पलाश दहक उठे....

'कौन हो तुम?' केवल मौन सांसों का स्पंदन....

'बताओ, कौन हो? गुणीजन खाने में आज नयी आयी हो?'....

अंगूरी घूंघट तनिक हिलोरा...तिर्यक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओठों की कोरों पर एक महीन-सी मुस्कान तैरी...कपोल कंधारी हो नीलवर्णी झील-सी आंखों के साहिल थाम बैठे...चितवन की घनी बरौनियों पर झूमर झूलने लगी... उंगलियों के हीरे-पन्ने बाजूबंद के साथ झूम-झूम होने लगे...दुपट्टे की शरबती चुन्नटों में कर्णफूलों के नीलम, झुमकों के मोती सिंगारपट्टी की लड़ियों के साथ विहंस कर कनबतियां कर उठे। यह कैसा मारक उपक्रम ?

महाराज स्तब्ध ! भोर की उष्मा में यह कैसी सुखद चांदनी ? इसे देखकर रोम-रोम में अनुरागी आलिंगनों के ऐसे मोतिया स्पर्श क्यों गुदगुदा रहे हैं ? आज गुणीजन खाने से यह कैसा वरदान ? मन को बार-बार आमंत्रित करने वाली यह कौन रूपसी...? महाराजा जगतसिंह ने सम्मोहित भंगिमा से अपने गले का कीमती हार उसके सामने फेंक दिया.... व्याकुलता फिर पुकार उठी, 'अब बताओ तुम कौन हो ?....क्या नाम है तुम्हारा ?'

फूलों की शाख लरज उठी। उसने झुक-कर जुहार की—'अन्नदाता हुजूर ! कनीज़ को रसकपूर कहते हैं...'

महाराज के ओठों के रेशे-रेशे में रस घुल गया। वह अपनी संगमरमरी उंगलियों में घूंघट की किंगड़ी कोर उलझाये श्वेता-म्बरी-सी असमंजस में दुहरी हुई खड़ी रही। क्या करे ? जाये या रुके ? मदालस झुकी-झुकी आंखें...रतनारी चितवन, जरी-सितारों से कढ़ी-जड़ी पिशवाज.... काम-

सावित्री परमार

दार पैजामा...कारचोबी की मखमली नाजुक जूतियां...सतरंगी मोरछल छा गये चारों ओर...लाजवर्दी रंग में डूबे पहर-क्षण। वह जाने को मुड़ी। पायलों के नूपुरों की नखरीली ठुमकन ने राजमोह भंग किया—

'रुको, तुम्हारे राग की मिठास हमें बहुत अच्छी लगी है...हर दिन तुम्हीं हमें गाकर जगाया करोगी। नृत्य भी करोगी। हमारा हुक्म है यह...अब जाओ।'

.....सुनकर चंचल हिरनी-सी वह पगला उठी। पलभर में मयूरपंखी हो उठी। राजा की नज़र चढ़ी कुंदकली .... आसव घूंट-सी मदमाती....नागिन-सी लहराती महल के कोनों में लुप्त हो गयी।

फिर क्या था ? गुणीजन खाने से उठता हुआ प्रातःकालीन शहदीला स्वर धीरे-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

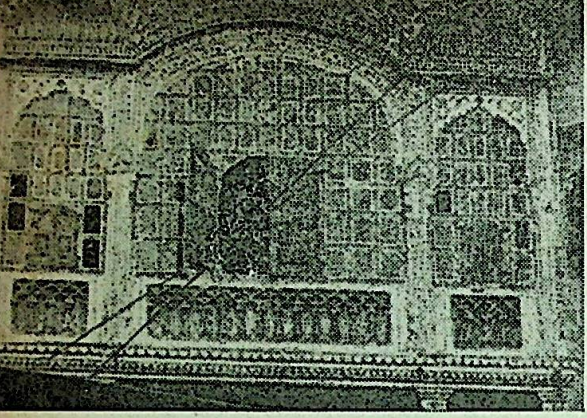

कांच दरवाज़े का वह शीशमहल, जहां रसकपूर ने नृत्य और गायन की शिक्षा ग्रहण की

महल—जहां हर संदली शाम को छनछनाते घुंघरुओं के बोल . . . तबलों की गूंज और सारंगी की दिलरुबा कशिश... दुपट्टों, पिशवाजों के इन्द्रधनुषों में कनेर-गुलाब महकते... हिना-संदल की खुशबू उड़ती . . . हंसी-मुस्कराहटों की बिजलियां गिरतीं. . . ठुमरी, दादरे और ग़ज़लों के मुखड़े-तोड़े शीरीं छिड़कते . . . घुंघराली लटों की नागिनें कमर पर अंगड़ाइयां कसतीं ... झूमर-परीबंदों के मोती-माणक जालियों-झिरियों में धूप-छांव पैदा करते रहते। इसी शीशमहल का नूर थी रसकपूर। मुसलमान नर्तकी मां और हिन्दू पिता की लाड़ली बेटी। यही नगरवधू महाराज के मन की एकछत्र मलिका, अपने सौन्दर्य और नृत्य-गायन की श्रेष्ठ कला के कारण, बन बैठी। वह अपलक उसे निहारते रहते ...एक-एक मुरकी पर, कलात्मक गुणों पर, उसकी तहज़ीब पर और उसके बेइन्तहा अनुराग पर उनकी सांसें तिरती रहतीं। वह केवल उसी के होकर रह गये। नृत्य के हरेक घुमाव पर, संगीत की हर रागिनी पर रत्नों की ढेरियां न्यौछावर करते. . .महावरी पांवों की लहराती रम-झोलों पर बहुमूल्य पोशाकें वार देते... हर घड़ी नज़रानों की वर्षा...साथ ही वह उनके स्नेह से नहा उठती...उसके ओठों से चुम्बित केसर-कस्तूरी के कसूमी

धीरे नज़दीक आता गया...हौले-हौले बहुत पास. . .और पास. . .संगीत के सुर-ताल बढ़ने लगे। दैनिक कार्यों में बाधा आने लगी। दास-दासियां सेवा-सामग्रियां थामे प्रतीक्षारत रहने लगे। पहर-क्षणों की उम्र बढ़ने लगी। भोर से दोपहर... दोपहर से शाम और शाम से रात केवल रसकपूर के नाम नज़र हो गयीं। महाराज के दिल-दिमाग पर एक बेपनाह नशा-सा छा गया। राजकाज, न्याय, प्रबंध, झरोखा दर्शन, प्रजा की गुहार, रणवास-रंगमहल, सेना-दरबार सब दब गये, तिरोहित हो गये। केवल एकनाम, एक धुन, एक संग-साथ...सबको भुलाकर महाराज रसकपूर-मय हो उठे...

सत्रहवीं सदी की थी यह कचनार रस-कपूर. . .जयपुर रियासत का विश्व-प्रसिद्ध जौहरी बाज़ार. . .वहीं सांगानेरी दरवाज़ा . . .इनके बीच एक और विशाल महराब-दार दरवाज़ा, कांच का दरवाज़ा—शीश-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्यालों से अपनी प्यास और भी तृषित बनाते रहते...उसकी शंखग्रीवा से कंदर्प-सौन्दर्य बने झूलते रहते...हंसी की खनकियों में खुशी के फल ही फूल। उनकी समूची दुनिया, उनका व्यक्तित्व रसकपूर के रस में नवरंगी बना रहता...डूबा-भीगा हर पल...एक विकट लालसा में लिप्त उनका लोभ...एक प्यास। रसकपूर भी प्यार और समर्पण का अतुलनीय वैभव पाकर बौरा उठी। दिन इन्हीं मांदल उर्मियों पर थिरकते रहे। समय ने पंखपाल खोल लिये थे...रसधारा बहती जा रही थी ....

ऐसे ही मुग्ध पलों में वास्तु-कला का बेजोड़ नमूना चन्द्रमहल रसकपूर को दे दिया गया। सैकड़ों दास-दासियां, अहलकार, सिपाही, पालकी-रथ-घोड़े, गांव-पट्टे, धन-दौलत उसके इशारों पर नाचने लगे। बांदियां उसका शृंगार-प्रसाधन करतीं। नर्तकियां दिल बहलाव। पोशाकें बनाने के लिए दर्जियों-कारीगरों की लाइनें...स्वर्णकार गहने गढ़ते रहते...महाराज ने अपने हाथों चन्द्रमणि केशों में गूंथ दी...उंगली में पहना दी राजसी मुद्रिका और गले में जड़ाऊ नवलखा हार...दीर्घ सुवासित केशों की घटाएं स्वयं ओढ़ लीं अपनी नशीली पलकों पर। चन्द्रमहल के शीशमहल में लाखों दर्पण रसकपूर के सौन्दर्य से विकीर्ण हो उठे। अजीब उनींदा-सा स्वप्नलोक। एक रसकपूर क्या नृत्य करती, लाखों शीशों में रजत रश्मियां रूपायित हो उठतीं... झाड़-फानूसों के बिल्लौरी बिंब अमृत-कलश हो उठते...सुनहरी चौखटों में जड़े विशाल दर्पणों में वह रतिरूपा होकर ललित-मोहिनी, लवंग-लता-सी मचल उठती और महाराज के मनमंदिर में उसके

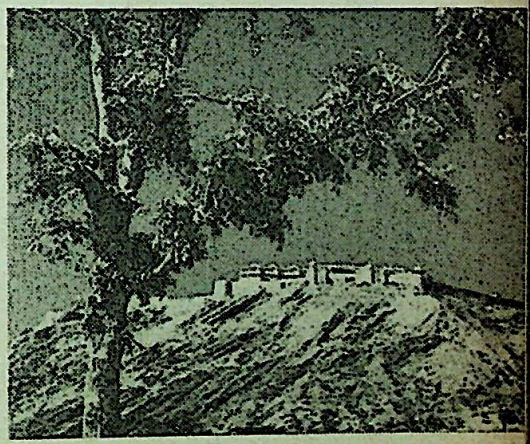

सुदर्शनगढ़ : नाहरगढ़ का किला, जहां रसकपूर ने हीराकनी चाटकर आत्मघात कर लिया

लिए अनुराग का अखण्ड दीपक प्रज्वलित रहता। ऐश्वर्यपूर्ण विशाल गौरवशाली रियासत के स्वामी की प्रेमपगी वासंती बयार-सी थी वह। कलावंत, शूरवीर महाराज केवल सौन्दर्य प्रेमी बनकर रह गये थे।

रसकपूर का वैभव चरमसीमा पर बढ़ता गया। परिचारिकाओं की भीड़

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगी रहती—कभी चंदन-उवटन, कभी सुगंधियों से तैयार किया गया आलेप, कभी गुलाव-मौलसिरी की भाप से अर्चित केश-सज्जा, पुष्पराग-गुलाबजल का छिड़काव। दिन के जितने पहर, उतनी ही पोशाकों की इत्रसज्जा। आभूषणों का चुनाव...अलंकरण-मोतियों का शृंगार... शैया और कालीन पर बिछाने के लिए कोमल पल्लवों की सजावट...मीनाकारी की कामदार झारियों में महकते आसव ...केवड़ा-जल से ताज़ा किये हुक्के और जाफरानी गमक महकाते चिलम-जाली के नखरे...चांदी के वर्कों में मुड़ी मोहिनी गिलौरियां...आरसी-हथफूल के बीच मेंहदी के दिलकश माढ़ने।

मोतियों में उलझी घुंघराली ज़ुल्फों के खम सुलझाते-सुलझाते राजा खुद का धर्म-कर्म सब विसार बैठे... रंगमहल सिसक उठा...ड्योढ़ियां तरस गयीं देखने को। एक ही चर्चा, एक ही पीड़ा कि यह सौत-कांटा कैसे उखाड़ फेंका जाये? रियासत के उच्चाधिकारियों की सारी तरकीबें व्यर्थ। कैसे महाराज का ध्यान इस प्रचण्ड आकर्षण से हटाया जाये? सियासती ज़रूरतें सुन्न...हर ओर काना-फूसी...ठिकानेदार, ताज़ीमी सरदार, ठाकुरों के रजवाड़े, ज़मींदारों के बांके तेवर अब बौखला उठे थे। ऐसी बात नहीं थी कि जगतसिंहजी अनभिज्ञ थे—ज़र्रे-ज़र्रे की महीन करवटों की शिकनें उनकी आंखों में स्पष्ट थीं। सारा आक्रोश...इसका कारण...रणवास की फूत्कारें सबकी जानकारी थी, लेकिन मन का मधुमाह उसी कोहनूरी आव की गुनगुनी छुअन में मुग्ध रहता था...आनन्दबिहारी बन अपनी रसिक प्रिया के कृष्णचूड़ा में मंडरा रहता था...दूधिया-केसरिया सौन्दर्य अंजुरी में भरे हरसिंगारी सौरभ से उन्मत्त भंवरा बना हुआ था...रसकपूर और चन्द्रमहल बस यही उनकी पुतलियों में आलोड़ित थे।

उनकी वीरभोग्या रियासत का कीर्ति-हंस संवलाया जा रहा था। मेनका-रूप सुन्दरी के चरणों में पड़ी वीरता जंग खा रही थी। उधर रसकपूर उस वीर पुरुष पुरुष सौन्दर्य की विलक्षण कांति को आंखों में काजल-डोर सी डाले रखती थी। दृष्टि की पारदर्शी झील में बस एक ही प्रतिबिंब...जरी-सितारों की शानदार कढ़ाई की हुई मखमली अचकन...हीरे-पुखराज के बटन...रेशमी लहरों में कसमसाती चूड़ीदार पायजामा ... कारचोबी-किमख्वाव का कमरपट्टा...हीरे-पन्ने का जड़ाऊ कण्ठा...बहुमूल्य मोतियों के सतलड़े पंचमणिये। राजपूती साफे पर सूर्य-आभा सी दीप्त किलंगी। कसूमीज़री का पेच। कामदार जूतियां, गर्वीली चाल। पन्ने-माणक-हीरों से दमदमाती उंगलियों में सजी अंगूठियां। मोहित करने वाली जानदार मुस्कान। सोने-चांदी की मूंठोंवाली जड़ाऊ तलवार। पच्चीकारी युक्त गंगा-जमनी म्यान...बाजूबंदों और किलंगी में झूलते रत्नों-मूंगों के झब्बे...सुवासित सांसें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में बसा मदांध सौरभ... स्वाभिमान-अभिमान-अनुराग से भरी-पगी रतनारी अनुरक्त नज़र....स्वच्छ सीपियों-सी-पलकों में राजसी संस्कारों की पानीदार छवि...बड़ा प्रलोभनीय रूप-बिंब.... रसकपूर की मुट्ठी में त्रैलोक्य। अतीत धुल गया था...वर्तमान के मलयजी झकोरे उसे बौराये हुए थे...भविष्य को सोचने का समय कहां था?

अनुराग के ऐसे ही उत्तप्त क्षणों में एक दिन महाराज ने उसे आधा राज्य भी दे दिया। पूर्वजों के स्वाभिमान का प्रतीक—महाराजा सवाई मानसिंह की साहित्यिक अभिरुचि का ज्ञान-भण्डार पोथीखाना उस पर न्योछावर कर दिया। हुक्म जारी हुआ कि सारे काम, इंतज़ाम, न्याय और नये फरमान रसकपूर के द्वारा होंगे। इनाम-सज़ा वही देगी। उसी की दया पर भाग्य उदय और अस्त होंगे। पूरी रियासत में उसी की आज्ञा सर्वोपरि होगी।

उसकी मोहरें बन गयीं, सिक्के ढल गये। दरबार में, समारोहों में वह राजा के साथ रहती। समारोहों में, सार्वजनिक उत्सवों में, होली-पर्व की सवारी में वही राजा के साथ हाथी पर बैठकर चलती थी। महाराज की वर्षगांठ के नज़राने उसे दिये जाते। आज्ञा हुई कि सभी अमीर-उमराव, अहलकार, राजपुरोहित उसे जुहार करेंगे। राजरानियों वाला पूरा सम्मान देंगे—जो इस अदब में बेअदबी करेगा, वह दण्ड का भागी होगा...

सुनते ही राजपूती हथेलियां तलवारों-कटारों की मूंठों पर कस गयीं.... मूंछों के बांके बल शेषनागी फुंकारों से ज़हरीले झाग उड़ाने लगे... ठाकुरों की रण-बांकुरी भुजाएं फड़क उठीं...अपमान-क्रोध से लहक उठे। हम राजपूतों की पीढ़ियों से आती हुई स्वामिभक्ति का...,हमारी सेवाओं-उपलब्धियों का इतना अधिक अपमान! एक तुच्छ तवायफ का ऐसा चूड़ान्त सम्मान? क्रोध ही क्रोध.... पूरे चंदन-वन को जैसे आग लग गयी हो? एक ओर रियासत का गौरव...महलों की इज्ज़त, रक्षा का दायित्व, शत्रुओं से सावधानी रखने का प्रयास और दूसरी ओर लज्जा तथा अपमान के कड़वे विवश घूंट। लेकिन यह कैसे संभव कि आन-बान के धनी-तलवार-ढाल के चितेरे खुद तलवार की धार परखने के लिए सिर काट देने वाले विकट साहसी जुझारू राजपूत क्या उस नर्तकी के सामने सिर झुकायेंगे? उसकी ड्यौढ़ी पर न्याय की भीख मांगने जायेंगे? रानी-महारानी के अधिकारों को रौंदकर वह राजसी हौदे में सवार होगी और हम जुहार करेंगे? प्रजा पर उसका दर्पचक्र चलेगा? नहीं, कभी नहीं। नेह-रस-आसक्ति में रियासत की यश-कीर्ति का प्रतीक मुकुट यदि गर्त में डूब गया है, तो हम भी अपना धर्म भूल जायेंगे?

हरेक चेहरा अपमान की स्याही से ओज-विहीन हो उठा। राजभक्त सरदारों की भृकुटियों की प्रत्यंचाएं तन गयीं...उधर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अंतःपुर में तहलका मच गया इन आज्ञाओं को सुनकर। ईर्ष्या, बेइज्ज़ती, खण्डित गर्व। प्रतिशोध की आग में रंगमहल धू-धू करके जल उठा। षड्यंत्रों की शतरंजें बिछ गयीं.. लेकिन उन दोनों युगल प्रेमियों के दिन और रात नृत्य-संगीत और केलि-क्रीड़ाओं में विहरते-सिहरते रहे। शीशमहल सितार, वीणा, सारंगी और रबाब की मधुवर्षा में भीगता रहता—तीतर-पांखी पांवों की नृत्य-थिरकन किर्च-किर्च को सब्ज़-रोशन किये रहती। मान-मनुहारों और हंसी-खुशी के जश्नों में दो दिल धरती-आकाश बने रहते। जयपुर रियासत गूंगी-बहरी बनी, विवश आक्रोश से हथेलियां मींडती रह गयी थी। जनाने महलों में रश्क, जलन, क्रोध और प्रतिहिंसा अपना कपट जाल बुन रही थी। खज़ाना रिक्तप्राय। बदइंतज़ामी फैल गयी। मामूली ऐरे-गैरे लोग ऊंचे पद हथिया रहे थे, शत्रुओं के सिर ऊंचे हो रहे थे, बाहरी आक्रमणों का भय और भीतरी षड्यंत्रों का भयानक विस्फोट कभी भी विकराल परिस्थिति पैदा कर सकता था। सारी अर्थ-व्यवस्था और राजतंत्र तहस-नहस हो गया था, प्रत्येक की इज्ज़त दांव पर लगी हुई थी।

इसी उथल-पुथल के बीच एक और घटना घटित हो गयी।

मेवाड़ के प्रतापी महाराणा भीमसिंह के एक पुत्री थी कृष्णाकुमारी। अत्यधिक सौन्दर्यशीला, गुणवंती और स्वाभिमानिनी। किसी ने महाराजा के सौन्दर्य-पिपासु हृ में उसे प्राप्त करने की तीव्रतम लालसा उ दी। मारवाड़ के महाराजा मानसिंह लिए महाराणा भीमसिंह ने पहले से कन्या-दान की धारणा स्थिर कर ली थी जैसे ही जयपुर के महाराजा जगतसिंह चार हज़ार सेना की सुरक्षा में विवाह मंगलसूचक नारियल, मूल्यवान पोशाकें आभूषण और स्वर्णमोहरें भेजीं, ही कृष्णाकुमारी का हाथ मांगने का स भी, वह चौंक उठे...

महाराजा मानसिंह के गुप्तचरों इसका पता लगा, उन्होंने राजा तत्काल सूचना दी। वह अपनी वाग्द के प्रति यह अनचाही इच्छा बर्दाश्त कर सके और बीच मार्ग में ही ये सारे उपहार लूट लिये। सैनिक मार कुछ भाग गये। महाराजा के मित्र-रा मराठा शेर सिंधिया ने भी महाराणा भी सिंह को चुनौती दे दी कि अपनी कन्या हाथ राजा जगतसिंह के लाख प्रलो अथवा धमकियों के बावजूद भी सौंपना है, अन्यथा आप हमारे युद्ध के लिए सन्नद्ध रहें।

महाराणा की पहले ही जान आफ़त थी। एक तरफ राजा मानसिंह, दू ओर राजा जगतसिंह। दोनों ही प्रतिद्व एक से बढ़कर एक। कन्यारत्न किसे दें मंत्रियों की सलाह पर वे शक्तिशा मराठों से मिल गये। अब जयपुर राजा विरुद्ध तीन विशाल सेनाएं थीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जयपुर राज्य की धन-जन और मान-मर्यादा की बड़ी हानि हुई। कृष्णाकुमारी को प्राप्त न कर पाने की खिसियानी कचोंट के कारण जगतसिंह बौखला गये। इसी झंझलाहट में राजा मानसिंह के विरुद्ध एक लाख सेना लेकर छ-सात माह तक घेरा डाले पड़े रहे। रसद-पानी की परेशानी। वातावरण की कठिनाइयां। मन में प्रतिशोध की ज्वाला। सैनिक दुखी और निरुत्साहित। अपने ही लोगों के चेहरों पर संवेदन-शून्य भाव, आंखों में अवमानना। फिर भी सफलता हाथ नहीं लगी। इस अपमान और आर्थिक क्षति से जयपुर रियासत क्षत-विक्षत होकर एकदम लंगड़ा उठी। उधर कृष्णा-कुमारी को विषपान करा दिया गया। इस लोमहर्षक मृत्यु का कलंक-तिलक भी इसी रियासत के स्वच्छ भाल पर टीका-यत हुआ। पहले ही एक-एक जन दुखी और क्षुब्ध था—इस घटना ने क्रोध-अनल में घी का काम किया।

इन दिनों राजा जगतसिंह को चूंकि दीर्घकाल तक बाहर युद्ध-घेरावों में उलझना पड़ा था, इसलिये रसकपूर के खिलाफ भयानक जाल बनकर तैयार किया गया। क्योंकि जनानी ड्योढ़ी भट्ठी की तरह तप रही थी। दूनी के रावराजा चांदसिंह को भी अपने अपमान का बदला लेना था। सभी अमीर-उमरावों ने, मुंहलगी चहेती गोली बांदियों ने अपने-अपने हाथों में जहरबुझी शलाकाएं उसके विरुद्ध ले रखी थीं। राजा के बाहर जाने से रसकपूर एकदम अकेली पड़ गयी थी। बात के धनी और वंश-परम्पराओं में रचे-बसे स्वाभिमानी ठाकुर तने हुए थे। भले ही टूटना पड़े, लेकिन झुकना नहीं जानते थे। दूनी के रावराजा की तरह सभी सुलग रहे थे। सम्मान बेचकर कोई समझौते को तैयार नहीं था। कैसे भूल सकते थे राव-राजा चांदसिंह अपना अपमान!

एक बार इनकी जागीर का एक मुकद्दमा रसकपूर की खास अदालत में पहुंच गया। रावराजा को बड़ी बेइज्ज़ती महसूस हुई। उन्होंने इस मुकद्दमे की अपील अन्नदाता के दरबार में की। महाराजा ने यह कहकर अपील खारिज कर दी कि फैसला वही करेंगी। राव-राजा आग बबूला हो गये। यह पहले ठाकुर थे कि राजा के समक्ष भरे दरबार में विद्रोही स्वर में फूट पड़े—'आप हमारे अन्नदाता हैं। हम भी तलवार के धनी और रियासत के लिए प्राण न्योछावर करने वालों में से हैं। हमारा भी गौरव है, बुजुर्गों की अर्जित की हुई प्रतिष्ठा है। मेरा जो भी फैसला होगा, उसे केवल आप करेंगे। मैं एक पातुर के सामने याचना नहीं करूंगा। अभी चांदसिंह का राज-पूती खान्दान इतना बेग़ैरत नहीं हुआ है, महाराज। हम सभी राजपूत कितने दुखी और अपमानित हो रहे हैं, राज्य की चिंता हमें कितनी चाट रही है, इसे शायद आप

(शेषांश पृष्ठ २११ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रदीप

तीन भविष्यवान किशोर कवियों की कविताएं, पहली बार प्रकाशित

सुप्रतिष्ठ साहित्यिक दम्पति सौ. लीला बांदिवडेकर तथा डा. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर के प्रतिभाशाली पुत्र प्रदीप बांदिवडेकर की यहां प्रस्तुत तीन मराठी कविताएं आगामी कल की संभाव्य कविता की दिशा संकेत देती हैं।

०

भूल

ढलती धूप ... अकेला बादल
आ घेरता है आसमान को
और कोने में अकेले खड़े हरसिंगार की
सुगंध से ..... याद में आती हो तुम–
फूलों के लिए पागल-सी
और
महसूसता हूं
नहीं लाया था फूल कभी अपने से
तुम्हारे लिए
इस असीम नीलाभ में
जब तुम
होती हो ज़रा-सी धूमिल
लगता है
थोड़ा-थोड़ा
ग़लत ही होता गया
बहुत कुछ
मेरा स्वामित्व-संभव क्रोध
तुम्हारे घर भर गुनगुनाने वाले
आनंद पर
लगाता था अर्गला

आज जब अकेला गुनगुनाता हुआ
फिरता हूं मैं घर भर में कभी कभार
लगता है...
थोड़ा-थोड़ा
ग़लत ही हो गया
बहुत कुछ

तुम अभी हो
इर्दगिर्द मेरे ... लिपटी-सी
आकाश की तरह ....
इतने वर्षों बाद भी
पुकारता हूं तुम्हें .... अचानक
और होता हूं ख़ामोश
शर्मिंदा बनकर
तब लगता है
कभी पुकारा ही नहीं तुम्हें
यों ही ... बिलावजह
और
लगता है
होता ही गया थोड़ा-थोड़ा ग़लत
बहुत कुछ।

०००

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवशेष

द्वीप की चट्टान को
स्पर्श करती न करती-सी लहर
तिरोहित हो जाती है.....
जमती जाती हैं चट्टान पर
शैवाल की पर्तें
होते हैं उदास रंग सघन

हर लहर भर लाती है आसमान
तुम्हारी आंखों का
अनामिक यक्ष का दर्दीला एहसास
थाम लेता है सिसकी को ..

नीली सनकी लट के पीछे से
आंख भर-भर कर बताये जाती हो
लेकिन मूक असहाय ओंठ
होते हैं लय एक जपा-पुष्पी चुंबन में

धुंध सांसों के मोतिया तूफ़ान में
सप्रयास रोका हुआ एक उच्छ्वास
कभी का गड़ गया है मेरे मन में
और तुम
सुरंग को बंद करना चाहती हो

हर समझदार पंछी की भांति तुम भी
जतन से बना रही हो एक घोंसला
टूटे घोंसले की यादों को दफन कर
उसी घोंसले में
लेकिन
इस बार की सचेत चिंता और माया
कह ही जाती है पहलेवाले अवशेष
संगम में पूरी तरह झोंक देने के बावजूद
एक दर्दीली धारा को टिकाये रखने का
पागल हठ

पतझड़

कुहरिल नज़र के सामने पतझड़ में
गिरता जाता है एक-एक पत्ता हिलोरता
झुर्रियोंदार रेशों का जाल और
बेजान कंपते सिरे

आरामकुर्सी में मेरी नस-नस में
उछलती जाती है एक लहर बूढ़े खून की
सूखते समुद्र की रेत पर
फेलनेवाले मृत लहरों के हिलकोरे
हर दिन ऐसा ही—रीतने के लिए
और बूढ़ी रात ... दिन की अंधी लकड़ी
झूले के मंद झोंके हृदय के ठेके में
आसमान से डरनेवाले.....
धीमे घास-से जीवन में
बीतता है बहुत-सा समय मूंदी आंखों से

गोधूलि बेला में छायाएं गड्डमड्ड हो जाती हैं
और स्मृतियों का हो जाता है गोलमाल
उलझ जानेवाले अबूझ लोग
अनचाहे हो जाते हैं .... लोगों के नाम
और हलचलें बहती जाती हैं
बाढ़ में बहनेवाले ठूंठों की तरह
और क्षीण पड़ता जाता है अपना प्रतिकार
और सामने दिखता है डूबते हुए
अंतिम दमघोंट पड़ाव

०००

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कु. शशि कुक्रेजा की तीन आकाश-कविताएं

कु. शशि कुक्रेजा

विदा, आसमान...

विदा, आसमान, विदा।
आज तक हम तेरे व्यक्तित्व पर
सितारों को खिलते
चांद को मुस्कराते
सूर्य को रोज़ आते-जाते देखकर
मुग्ध होते रहे हैं।
हम हर बार
तुझे देखकर भूल जाते थे
हमारे पांव गहरे कीचड़
ऊंची-नीची खाइयों
टूटी-बिखरी आत्माओं के
बीच धंसे हैं।
पर आसमान
आज इन आत्माओं ने
तेरे भी द्वार खटखटाये हैं
तू शक्तिवान
चाहे तो इन्हें ध्वंस कर दे
चाहे तो आत्मसात कर ले
पर आसमान
हम तो तुझसे विदा लेते हैं,
तब तक, जब तक
तू अपने विस्तार से
हममें फिर से मुग्ध जिज्ञासा न भर दे।

ooo

बताओ तो !

तूने देखा है युगों से
पीढ़ियों को
जीते और मरते हुए
तेरी छत्रछाया में
यहां मानवों ने
अपना इतिहास
बनाया-बिगाड़ा है
युगों से तू इस तरह
हर परिवर्तन को
देता आया है अपना स्नेह
अपनी सुंदरता
आकाश ! कहां से पाया
तूने यह अटल विश्वास ?
कहां है तेरे प्रेम की
प्रेरणा का पुंज ?

ooo

अकेलापन

मौन, स्याह आकाश पर
बिखरे सितारे बेचारे
अकेले-अकेले
युगों से जी रहे हैं
मानव मन की नियति।

ooo

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कु. पद्मजा घोरपडे की तीन कविताएं

पद्मजा

स्पर्श

मेरी संवेदनाओं पर
तुम्हारे ढेर सारे स्पर्शों-यादों का
हिमालय खड़ा हो गया है
और तुमने मुझे
उस शिखर की शिला बनने का
वरदान दिया
जहां सूरज की किरन
बहुत कम पहुंचती है।
मैं चाहती हूं
कभी तो तुम
सूरज बनो
औ' मैं
'ग्लेशियर' बन बह सकूं
पर, देखती हूं
दिन-ब-दिन
हिमशिलाओं की तादाद
बढ़ रही है।
तुम चाहते हो
मैं गल ना जाऊं, बह ना जाऊं
पर, तुम्हें क्या पता
हिमालय पर भी आवर्तों की कमी नहीं है!!

ooo

चांद

चांद की हसीन देह पर
जब दुनिया फ़िदा होती है
वह दाग़ मुझे आंतकित कर देता है—
चांद की सफ़ेद देह ज़हरभीनी लगती है
और मैं सोचती हूं
कौन होगी वह नागिन?
—अपने ज़हर का रंग तो
छिड़क दिया
पर, 'धर्म' गोदना भूल गयी!
....तब चांद मुझे बेहद दर्दीला
यातना से आतंकित
ज़हर पचाने की आपाधापी में ज़िंदा
अपनी मौत को ढोता
स्याह क़फन दिखता है!!

ooo

शहीद

मैंने कीलों पर चढ़
शहीद होना चाहा
पर, कीलें महंगी थीं
मैंने शब्दों को कीलें समझ
अपने विचारों को शहीद बनाया!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वासुदेव पोद्दार का पारदर्शी अनुसंधान

विश्व के आदि महाकाव्य रामायण और महाभारत

भारतीय विद्या और संस्कृति के अतलगामी अध्येता, खोजी और मौलिक विचारक श्री वासुदेव पोद्दार की तरुण तेजस्वी प्रतिभा के प्रकाश को हिन्दी-संसार पहचाने, इसी अभीप्सा के साथ हम उनका यह गहन गवेषणात्मक लेख यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास मानव के ऐतिहासिक यथार्थ के सबसे बड़े तत्त्व-द्रष्टा कवि हैं। रामायण और महाभारत इतिहास के काल प्रवाह पर गंगा की तरह फैलती हुई, आदर्शवादी यथार्थ की सबसे बड़ी कविता है। इन दोनों महान् काव्यों का प्रारंभ एक संपूर्ण मानव के संपूर्ण दर्शन के रूप में होता है। यह संपूर्णता इनके भीतर अनुपद समाहित है—कथानक की दृष्टि से, कथानायक की दृष्टि से, शिल्प की दृष्टि से, शब्द चयन की दृष्टि से, कथा के गठन और उसकी गतिशीलता की दृष्टि से; आदिकवि और महर्षि वेदव्यास की यह महान् कथा संपूर्ण है। संपूर्ण मानव का यह महान् इतिहास अपनी अप्रतिम ऊंचाइयों पर उठता हुआ, संपूर्ण मानव के विराट् तत्त्व-दर्शन के रूप में प्रकट होता है जो विश्व के इतिहास में रामराज्य एवं भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है।

रामायण की प्रथमता का अतिक्रमण विश्व की कोई भी कविता आज तक नहीं कर सकी। इसकी इस प्रथमता ने भारतीय इतिहास की सुदीर्घ व्यापी काल-रेखा को सर्वत्र एक युग-विभाजक आधार-दण्ड की तरह विभक्त और विस्तृत किया है। ऋग्वेद के पश्चात् भारतीय इतिहास का काल-प्रवाह रामायण और महाभारत युग के नाम से प्रसिद्ध है। भारतवर्ष के इतिहास की सुविस्तृत कालरेखा का विभाजन, विश्व के इतिहास की युग-विभाजक रेखा से कुछ भिन्न प्रकार का है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय इतिहास का युग-विभाजन राजाओं या कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के आधार पर नहीं, बड़े-बड़े ग्रंथों के नाम पर विभाजित हुआ है—वैदिक-युग, ब्राह्मण-युग, आरण्यक-युग, रामायण-युग, महाभारत-युग, सूत्र-युग आदि-आदि।

इसका पाश्चात्य—भावी इतिहासकार और इतिहास—सामंतवादी ढांचे में ढले हुए समाज का इतिहास है, जो कालांतर में धारावाहिक रूप में आगे बढ़ता हुआ मध्ययुग के सामंतवादी संस्कारों से निपीड़ित होता रहा। इन जड़ संस्कारों की विकृत परंपरा डा. सांकलिया और डा. चाटुर्ज्या तक चली आयी।

कार्ल मार्क्स के पश्चात् इतिहास के युग-विभाजन का संपूर्ण सिद्धांत और आधार ही बदल गया। इतिहास के तत्त्व-शास्त्र की इस बदलती हुई भूमिका पर स्पेंगलर, सोरोकिन, टोयनबी, क्रोबर, डेनिलेवस्की, वेरदेव, यास्पर्श की बड़ी-बड़ी व्याख्याएं आ चुकी हैं। इतिहास के निर्वचन के सारे सैद्धांतिक आधार ही बदल चुके हैं, पर भारतीय इतिहासकार आज भी उसी प्रकार सामंतवादी युग के अंधविश्वास और जड़ता से जुड़ा हुआ है, जिस तरह वह १८ वीं और १९ वीं शती में था।

भारतीय इतिहास के ये दोनों महान् ग्रंथ काव्य हैं। काव्य और काल का संबंध बिंब और प्रतिबिंब भाव का संबंध है। काल बिंब है, कविता उसका प्रतिबिंब। भारतीय इतिहास के समग्र काल-प्रवाह के भीतर रामायण और महाभारत आकाश की तरह व्याप्त हैं। ये ग्रंथ इतिहास के किसी एक बिंदु से जुड़े हों ऐसी बात नहीं, कविता के इतिहास में रामायण और महाभारत का इतिहास हर युग में लिखा गया है। तमसा के तट पर बिद्ध क्रौंच का आर्तनाद भारतवर्ष की सारी नदियों के तट पर फैलता चला गया—व्यास, भास, अश्वघोष, कालिदास, कुमारदास, विमलसूरि, रविषेण, भवभूति, भट्टी, क्षेमेंद्र, गुणभद्र, पुष्पदंत, प्रवरसेन, कंबन, तुलसीदास, रंगनाथ....

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कितने अंतहीन नामों की विराट् परंपरा हर युग में रामायण के साथ जुड़ती ही चली जा रही है। नगपति से नल-सेतु तक भारतवर्ष की समग्र भाषाओं के महानद रामायण और महाभारत की ऊंची अधित्यकाओं से उतरते हैं। यह समवेत-सलिल-समष्टि वज्र-खर-रुद्र-गंभीर होती हुई आगे बढ़ती है, कितने वृहत्-क्षुद्र-स्वच्छ-पंकिल-क्षार-मधुर-तिक्त जीवन के जल-स्रोत इसमें अविच्छिन्न भाव से विलीन होते चले जाते हैं।

आदिकवि ने जिसे देखा था, सुना था और गाया था—भारतीय इतिहास ने उसे हर युग में पाया है—उसे जन और जनपद तक पहुंचाया है—कवि व्यास और कालिदास के रूप में, कभी कंबन, कृत्तिवास, तुलसीदास, गांधी और रवींद्र के रूप में। संपूर्ण भारतीय इतिहास का काल-प्रवाह रामायण और महाभारत के द्वारा द्विफाल-बद्ध हो गया है—जिसका युगांतव्यापी निष्वान सारे भारतवर्ष के जनमानस की कथा है। इतिहास के महान् तत्त्वद्रष्टा—Oswald Spengler ने ठीक ही कहा है: 'The attempt to treat history scientifically always at bottom involves contradictions ..... It is nature that is to be treated scientifically. History is the business of a poet. All other solutions are impure.'

—इतिहास का सबसे बड़ा तत्त्वद्रष्टा कवि है। भारतीय दर्शन ने कवि को क्रांतद्रष्टा कहा है। क्रांतद्रष्टा का अर्थ है—जिसकी दृष्टि काल के प्रवाह से प्रतिहत नहीं होती। कवि सर्वप्रथम काल को मूर्तिमंत करता है—फिर प्रत्यक्ष की सीमा पर उसका निर्वर्तन। आदिकवि ने रामायण के विषय में स्पष्ट लिखा है—'चिरनिर्वृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्।'

वैदिक युग से लेकर भगवान बुद्ध से पूर्व तक का दीर्घ इतिहास इन दोनों ग्रंथों के भीतर अनुपद समाहित है। मिथक या मायथालॉजी के लिए यहां कोई अवकाश ही नहीं है। वाल्मीकि ने रामायण के भीतर सारे वैदिक देवतावाद को एक नया आकार दे दिया—देवता से ऊपर मानव की प्रतिष्ठा। वेदों के अग्नि, जल, वायु, इन्द्र, सब मनुष्य की सेवा करने के लिए धरती पर उतर आते हैं। वेदों के सारे बड़े-बड़े देवता रामायण के भूगोल पर वानर और भालू बनकर घूम रहे थे। रामायण का राम मानव है—उसे विष्णु की संज्ञा की कोई आवश्यकता नहीं। वह अपने को संपूर्ण रूप से मनुष्य मानता है—'आत्मानम् मानुषं मन्ये।' वेदों के विष्णु के ऊपर आदिकवि ने अपने नर राम की प्रतिष्ठा की है। जिन क्रूरताओं को विष्णु सहित सारे देवता मिलकर भी समाप्त न कर सके उसे वाल्मीकि के मनुष्य राम ने अपने धनुष के दीर्घ मंडल के भीतर घेर कर समाप्त कर दिया। रावण की शक्ति सारे देवताओं से अधिक प्रचंड

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थी। मानव राम ने रावण की क्रूरता को समाप्त करदेवत्व के ऊपर मनुष्यत्व को प्रतिष्ठित कर दिया। वैदिक देवतावाद के संदर्भ में यह वाल्मीकि की बहुत बड़ी नयी क्रांति थी। जिसने इन्द्र और वरुण के लिए भारतीय इतिहास के कालप्रवाह में कोई भी स्थान न छोड़ा।

महाभारत-युग तक आते-आते इन्द्रध्वज की संस्कृति को ही कृष्ण ने उखाड़ फेंका। महाभारत की दृष्टि में मनुष्यसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है—'न मानवात् श्रेष्ठतरंहि किंचित्।' इतिहास के धारावाहिक गतिशास्त्र का यह सबसे बड़ा संदर्भ है—जहां व्यक्ति, समाज और विश्व की न्यूनतम इकाइयों का विभेद समाप्त होता है—वहीं इतिहास के तत्त्वदर्शन का महान यथार्थ—मानवीय संपूर्णता की उन ऊंचाइयों पर स्थिर हो जाता है, जहां मिथक या कल्पना-विलास का तो प्रश्न ही नहीं, भौगोलिक दूरियां, विश्व के दुर्धर्ष और अलंघ्य भूखण्डों की खंडित इकाइयां भी इतिहास के अल्पस्थायी आयाम को नकारती हुई स्वयं एक महान् सांस्कृतिक निकाय के रूप में प्रकट होती हैं। रामायण और महाभारत इसी कोटि का ऐतिहासिक निकाय है।

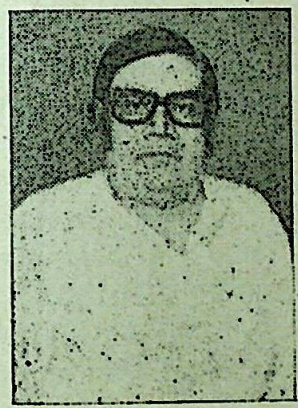

वासुदेव पोद्दार

रामायण की यह प्राचीनतम कथा एक विशाल नदी की तरह बड़े-बड़े पर्वतों और पठारों पर घुमड़ती हुई—सहस्राब्दियों तक वीणा के मंडल पर झूमती हुई, काल के अलंघ्य भूधरों से उतरती है। इतिहास के अचल शिला-खंडों को समतल में बदलती हुई सागर संगम तक पहुंचती है। एशिया का महान सांस्कृतिक परिकर राम की कथा से घिरा है। विश्व के इतिहास की कौन-सी ऐसी ऊंचाई शेष रह गयी है, जिसे राम ने अपनी भुजाओं से न मापा हो। भारतीय आकाश के सांस्कृतिक क्षितिज का कौन-सा अंतराल रिक्त रह गया है, जहां राम न हों। भारतीय संस्कृति की महान श्रद्धा ने राम की प्रतिमा पर फूलों के पहाड़ लगा दिये। राम और बुद्ध के मध्य कितने समय का अंतर रहा होगा, यह इतिहासकारों के लिए बहुत बड़े विवाद का विषय भले ही हो, पर जहां-जहां भगवान बुद्ध ने एशिया के सांस्कृतिक इतिहास पर अपना चरण रखा है, वहां-वहां राम का निष्पंक व्यक्तित्व आकाश की तरह छाया हुआ है। यहां तक कि दक्षिण, पूर्व, पश्चिम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं मध्य एशिया तक के काव्य-स्रोत ही राम की वाङ्मयी मूर्ति को अपने भीतर समाहित कर लेने के लिए मचल उठे हों, ऐसी बात नहीं, वहां के कठोर शिलाखंड राम के प्रतापघन विग्रह को उत्टंकित कर लेने के लिए मोम की तरह पिघल गये। सुमात्रा, जावा, कम्बोडिया, चीन, जापान, तिब्बत, तुर्किस्तान, यूनान तक रामकथा की संस्कृति कठिन एवं अलभ्य परिस्थितियों में भी अपनी असाधारण सम्प्रेषणीयता के बल पर उन संस्कृतियों के भीतर प्रवेश कर गयी। महर्षि वाल्मीकि ने होमर की नकल कहीं नहीं की—होमर ने यूनान की प्रकृति एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल राम की कथा को इलियड में विकृत किया है।

वाल्मीकि पर होमर का प्रभाव सिद्ध करने के लिए डा. जेकोबी और वेबर से लेकर डा. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या तक की परम्परा के पास काल्पनिक मनोविलास को छोड़कर और कोई भी प्रमाण नहीं है। योरोप के प्रसिद्ध इतिहासकार पोकोक ने तो यहां तक कह दिया है—Heroes of India are the gods of Greece. भारतवर्ष केयोद्धा ही कालान्तर में यूनानी संस्कृति के देवता बन गये।

इन पंडितों ने रामायण और महाभारत की सारी स्थिति ही संदिग्ध बना डाली है—आज इन पंडितों की दृष्टि में महाभारत क्षेपकों का बहुत बड़ा स्तूप है, जिसके भीतर मूल को खोज पाना ही कठिन है। रामायण और महाभारत पर उल्लेखनीय चर्चाओं को आगे बढ़ानेवाले इतिहासकार इस प्रकार हैं—Bopp, Roth, Bothlingk, Prof. Lassen, H. Jacobi, Webber, Monier Williams, H. Oldenberg, Soren Sorensen, E. Washburn Hopkins, Holtzmann, L. V. Schroeder, Winternitz, J. J. Mayer, Barth, Keith, Sylvain Levi, Pischel, J. Dahlmann, आर. सी. दत्त, सी. वी. वैद्य, सुकठंकर, डा. सांकलिया, डा. डी. सी. सेन, डा. चाटुर्ज्या, डा. डी. सी. सरकार, सी. बल्के, स्वामी करपात्री आदि-आदि।

कहना न होगा १८ वीं - १९ वीं शती के इन सामन्तवादी ढांचों पर उभरे हुए विसंवादों के द्वारा रामायण और महाभारत की सम्पूर्ण गरिमा और प्रामाणिकता को विनष्ट एवं विशृंखलित करने का सामूहिक प्रयास किया गया।

महाभारत भारतवर्ष की हिरण्यगर्भा संस्कृति का सबसे विशाल विश्व-कोष है—भारत ज्ञान का महासागर है जिसकी अनन्त तरंगों पर उतरता हुआ महाकाल का सारा स्वर समुच्चय शब्द-शब्द होकर भारतीय इतिहास के काल-प्रवाह पर उतरता चला गया। जैसे महासमुद्र की तरंग भुजा न उससे पृथक है, न विभक्त और न असम्बद्ध।

मानव के 'जय' की महान उदीर्णा के साथ इस महाकाव्य का विषय प्रवर्तन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होता है। सम्पूर्ण महाभारत की महान् शब्द-राशि का अन्वय वेदव्यास ने—'यतो धर्मः स्ततो जयः' की महान् पंक्ति के भीतर किया है।

महाभारत को पंचम वेद कहकर भारतीय संस्कृति में इसका ग्रहण और उपादान भी श्रुति की तरह ही किया गया है। संहिता शब्द से सर्वत्र इसको संबोधित करते हुए इसके स्वरूप को विकृतियों से संभाला गया है। पाठ-भेद या क्षेपक के रूप में जिसकी चर्चाएं इतिहासकार करते हैं, वह तो वेदों की तरह ही सम्प्रदाय क्रम का शाखा भेद है, विकृति का तो प्रश्न ही नहीं। ईसा से तीन हज़ार वर्ष पूर्व निर्मित यह विशाल ग्रन्थ अनुपद समाहित और संगठित है। यहां तक की अज्ञातवास की काल-गणना के न्यूनान्तर पर तो महाभारत के महायुद्ध का बिगुल ही बज गया था। महाभारतकार ने तिथि और नक्षत्रों के साथ इसकी सम्पूर्ण काल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे प्रकाश
तू आता कहाँ से है ?

अंधकार को भेदनेवाले सूर्य से ?
या खिलते हुये बनफूलों पर फुदकती
तितलियों के स्वर संगीत से,
हाँ, हाँ, हमें मालूम है
तू चमक रहा है किसी के नयनों में
किसी की मुस्कान में
दीपावली का हर्षोल्लास बनकर !
हे प्रकाश ! उनकी आँखों की चमक
और मुस्कान की रक्षा तो तुझे ही
करनी है
तू बचत का आकाशदीप बनकर
उनके जीवन को
आलोकित कर दे न !

स्टेट बैंक
आइए, साथ बढ़ें!

CHAITRA-S61-807-HIN

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्मिता को प्रत्येक स्थल पर संभाला है।

इस पंचम वेद की महान परम्परा याज्ञवल्क्य, जैमिनी, पैल, सुमन्तु, सौति, वैशम्पायन आदि महान् आचार्यों की सम्प्रदाय परम्परा का शाखा-क्रम ही इतिहासकारों की संकुचित बुद्धि में विकृति का भ्रम उत्पन्न करता रहा है। आज इस समुपलब्ध महाभारत के साथ एक सत्य और भी जुड़ा हुआ है—उसका सम्बन्ध विकृति से नहीं, इसके विशाल माहात्म्य से है। समय-समय पर उपर्युक्त आचार्यों ने इस पर बड़े-बड़े निर्वचन और व्याख्यान प्रस्तुत किये हैं। आचार्यों के ये निर्वचन और व्याख्यान महाभारत के रहस्यमय संदर्भों को समझने के लिए इतने गम्भीर और महत्त्वपूर्ण थे, जिन्हें काल के इस दीर्घ प्रवाह के भीतर महाभारत से पृथक करके नहीं रखा जा सका, वे इस महा-समुद्र के भीतर अपने असामान्य महत्त्व के कारण जल की कुछ बूंदों की तरह विलीन हो गये। आचार्यों की यह प्रचण्ड जागरूकता महाभारत के महत्त्व को और भी बढ़ा देती है। यह श्लोक संख्या इस पुष्कलकाय 'भारत-सूर्य' के भीतर मेरी दृष्टि में अधिक नहीं।

द्वापर की चिता-भस्म पर खड़े होकर महर्षि वेदव्यास ने अपने युग के सारे अन्तराल को इस ज्ञान, विज्ञान के महा-समुद के भीतर समेट लिया है। संपूर्ण इतिहास का निर्मूल एवं यथार्थ सम्पादन करने के लिए वेदव्यास हिमालय की गहन गुफाओं के भीतर गये हैं। वैदिक युग से लेकर द्वापर तक के सारे इतिहास को निर्मूल प्रामाणिकता पर खड़ा कर देने के लिए महर्षि ने आठ हज़ार श्लोकों की वृहत् सिनोप्सिस बनायी। फिर उसे भारतीय संस्कृति के प्रवहमान मूल्यों की सारी प्रामाणिकता के साथ महाभारत के रूप में प्रस्तुत कर दिया।

भारतीय संस्कृति के इस विशाल विश्व-कोश को इतने बड़े-बड़े नामों से सम्बोधित किया गया जो आज तक विश्व में किसी भी ग्रन्थ के साथ प्रयुक्त न हुए। वेदों के कर्मकाण्ड का उपबृंहण भृगु आंगी-रस अग्नि का चयन करते हुए प्रामाणिकता के साथ हुआ—यज्ञ के ब्रह्मा ने इसे—'भारत सूर्य' के नाम से अभिहित किया।

यह ग्रन्थ इतिहास में 'भारत-सावित्री' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसका आकार, इसकी अखण्ड समग्रता इतनी असाधारण है—इसलिये यह महान ग्रन्थ महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है।

इसमें मानवता की विजय का इतिहास है—इसलिये यह 'जय' है।

भारतीय संस्कृति की परम्परा में यह वेद है, पुराण है, इतिहास है, गाथा है—स्मृति-शास्त्र और दर्शन-शास्त्र है, ज्ञान-विज्ञान का बहुत बड़ा विश्व-कोश है। काव्य-शब्द की गम्भीरता और उसके अर्थ-विस्तार का सबसे बड़ा आयतन महाभारत को छोड़कर विश्व में कोई अन्य ग्रन्थ ही नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज का
पराभौतिक विद्या-संबंधी साक्षात्कारी लेख

महान आत्मविज्ञानी परमहंस विशुद्धानंद और सूर्यविज्ञान के दिव्य चमत्कार

स्वामीजी का परिचय मुझे १९१७ ई. के अंतिम चरण में एक आकस्मिक कारण के प्रभाव से प्राप्त हुआ।

परमहंसजी से मिलने के पहले दिन ही मुझे आशीर्वाद मिल गया। मेरी ओर से प्रार्थना किये विना ही अपनी ओर से इंगित द्वारा उन्होंने प्रकाश किया कि उनसे मुझे दीक्षा मिलेगी। इनके विषय में मैंने सुना था कि ये महायोगी हैं और बहुत वर्षों तक तिब्बत में रहकर योग विद्या और विभिन्न प्रकार का आर्षविज्ञान प्राप्त किया है, जिनमें सूर्य-विज्ञान प्रधान है। यह सुनकर कुतूहल हुआ कि इनका दर्शन करें और इस रहस्य का पता लगायें। पहले दिन की भेंट से ही मुझे इनके व्यवहार से ऐसा मालूम पड़ा कि जैसे ये हमसे चिरपरिचित हैं। प्रणाम करते ही पूछा, 'बेटा तुम्हारे हृदय की अवस्था इस समय कैसी है?' १९११ ई. में एम. ए. (अंतिम वर्ष) में पढ़ने के समय मेरे हृदय में कुछ कष्ट हो गया था, जिसके लिए मुझे एक वर्ष तक अध्ययन स्थगित करना पड़ा और १९१२ की परीक्षा में उपस्थित नहीं हो सका। उस समय विशिष्ट चिकित्सकों की सहायता प्राप्त करने के बाद मुझे स्वास्थ्य लाभ के उद्देश्य से वायु-परिवर्तन के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों में जाना पड़ा था। ये बातें और किसी को ज्ञात नहीं थीं। स्वामीजी के एतद्विषयक आकस्मिक

गोपीनाथ कविराज

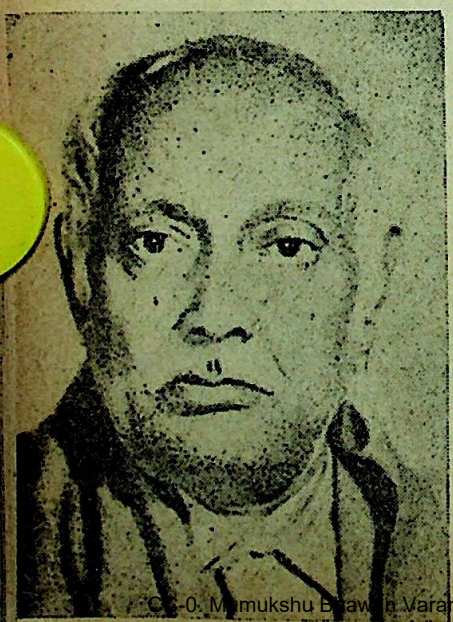

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रश्न से मैं चकित हो गया। उनके कहने से मुझे पता लगने लगा कि जागतिक परिचय न रहने पर भी उस समय से ही वे मुझे जानते थे। दीक्षा के पहले प्रायः प्रति दिन परिचय के बाद अपराह्न में इनसे सत्संग करने जाता था। उस समय इनका घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने का मुझे अवसर मिला।

स्वामीजी प्रत्यक्षवादी थे। उनका कहना था कि जब तक कोई तत्त्व प्रत्यक्ष न किया जाये और उसे दूसरे को प्रत्यक्ष न कराया जा सके तब तक उसमें पूर्ण विश्वास नहीं हो सकता। प्रसंगतः एक दिन मैंने पूछा, 'योग शास्त्र में लिखा है 'सर्व सर्वात्मक'—इसका रहस्य क्या है?' स्वामीजी ने कहा—'पतंजलि का यह सिद्धांत पूर्णतया सत्य है। वास्तव में सबमें सब कुछ है। परंतु सब रहते हुए भी जिसकी अधिकता होती है, नामकरण उसी के आधार पर होता है और उसी नाम से उस वस्तु का जगत में परिचय मिलता है। इतना ही नहीं, वस्तु की गुणक्रिया भी प्राधान्य के अनुसार ही होती है।'

मैंने पूछा 'क्या यह प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है?' उन्होंने कहा 'क्यों नहीं? सर्वज्ञ, सर्वदा, सर्व प्रकार से अनुभव हो सकता है।' यह कहकर वे बोले, 'देखो, अभी दिखा देते हैं।' उस समय उनकी मेज पर गंधफूल (मेरी गोल्ड) की एक माला रखी हुई थी। उसमें से एक फूल लेकर उन्होंने कहा, 'देखो यह कौन फूल है?

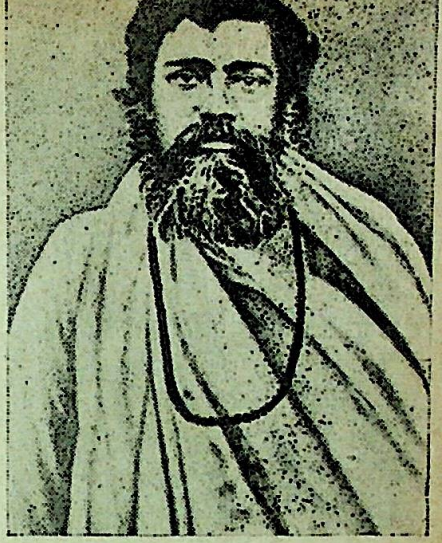

परमहंस विशुद्धानंद

यह गंधफूल है। इसमें सब प्रकार के फूल ही नहीं और भी वस्तुएं विद्यमान हैं। अभी इसे गुलाब में परिणत किये देता हूं।' यह कहते हुए वे उस फूल को हाथ में लेकर धीरे-धीरे हिलाने लगे, थोड़ी देर के बाद बोले, 'इसमें गुलाब के परमाणु आ रहे हैं।' हम लोगों के देखते ही देखते वह गुलाब में परिणत हो गया। फिर थोड़ी ही देर में बाबा ने उसे जवापुष्प बना दिया। इसके बाद वे बोले, 'इस प्रकार सभी वस्तुओं में सबकी सत्ता है, परंतु जिस वस्तु का अंश अधिक रहता है उसी की गुण क्रिया अभिव्यक्त होती है और फिर उसी रूप में उसका प्रकाश होता है। इसी प्रकार असत् में भी सत् का अस्तित्व रहता है और शुद्ध वस्तु में अशुद्ध तत्त्व विद्यमान रहते हैं। अतः असाधु व्यक्ति भी कालांतर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में साधु हो सकता है और साधु के भी पतन की संभावना रहती है।' मैंने पूछा, 'आपने जो परिवर्तन किया है क्या वह योगबल से हुआ है?' उन्होंने कहा, 'नहीं, यह योग नहीं, सूर्य-विज्ञान की क्रिया है।'

इसी प्रकार मैं प्रतिदिन मध्याह्न में उनके पास जाता था और योग तथा विज्ञान की चर्चा सुनता था। इससे जो कुछ मैं समझ सका, उसके अनुसार इनके सूर्य-विज्ञान का सिद्धांत संक्षेप में इस प्रकार है, 'सूर्य शक्ति का परिज्ञान होने पर इन रश्मियों के विशिष्ट प्रक्रियामूलक संघटन से कोई भी वस्तु उत्पन्न की जा सकती है। परंतु रश्मियों को पहचानना अत्यंत कठिन है। रश्मियां विभिन्न रंग की हैं, सबसे पहले एक श्वेत प्रकाश लाया जाता है, जिसको शास्त्र में विशुद्ध सत्व कहते हैं। इस शुभ्र सत्ता के ऊपर प्रयोजन के अनुरूप विभिन्न रश्मियों का उद्भावन और संयोजन किया जाता है। उससे वस्तु का आविर्भाव होता है। सामान्यतया प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक वस्तु का अंतर्भाव है। परंतु गुण प्रधान भाव है। अर्थात् कुछ अंश प्रबल, कुछ दुर्बल रहता है।'

मैंने प्रश्न किया, 'यदि गुण प्रधान भाव न रहे, सब बराबर रहे, तब क्या होगा?'

वे बोले, 'गुण प्रधान भाव न रहने से साम्यावस्था हो जायेगी। तब वस्तु का लय हो जायेगा। सृष्टि और संहार परम सूक्ष्म अणुओं का खेल है। सूर्यरश्मि के द्वारा इन अणुओं का परिचय मिलता है। रश्मि है व्यंजक, अणु है व्यंग्य। व्यंजक के आकर्षण से व्यंग्य का आविर्भाव होता है। वस्तु में विभिन्न उपादानों का संघात है। प्रत्येक वस्तु का पृथक्-पृथक् संघात है। तदनुसार व्यंजक वर्णों के भी क्रम के पृथक्-पृथक् सूत्र (फार्मूले) हैं। विज्ञानविद् को इन्हें जानना पड़ता है। यहां ज्ञान का उपयोग होता है और क्रिया के द्वारा इसी क्रम से उपादान का आकर्षण करना पड़ता है। यह क्रिया-विशिष्ट ज्ञान ही विज्ञान है। विज्ञानविद् प्रत्येक वस्तु का विश्लेषण करना जानता है, तदनुसार क्रम का ज्ञान भी उसे होता है। इस क्रम का अनुसरण करते हुए व्यंजक रश्मियों का आकर्षण करना पड़ता है। इसमें एक रहस्य यह है कि जब तक क्रमांतर्गत सभी रश्मियों का क्रमशः आकर्षण करने पर भी अंतिम रश्मि का आकर्षण नहीं होता तब तक बाह्य दृष्टि से उस वस्तु का कुछ भी पता नहीं चलता। अंतिम रश्मि के आविर्भाव के साथ ही साथ रश्मि-व्यंग्य उपादान का आविर्भाव हो जाता है और उसी के साथ वस्तु का भी स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है। यह एक अपूर्व व्यापार है। अंतिम रश्मि को छोड़कर शेष रश्मियों का आहरण करके दीर्घकाल तक रखा जा सकता है, फिर प्रयोजन के समय एक रश्मि के आहरण से ही वस्तु का उदय हो जाता है। यह वस्तु कल्पित नहीं, शुद्ध वस्तु है और जागतिक वस्तु से कहीं अधिक निर्मल और स्थायी होती है।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वामीजी ने इस प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहा, 'एक प्रश्न यह है कि रश्मि का संयोजन या मिलाप कैसे हो सकता है ? यह प्रश्न इसलिए उठता है कि रश्मि क्षणिक होती है, प्रकट होने के साथ ही लीन हो जाती है। ऐसी स्थिति में एक रश्मि के साथ दूसरी रश्मि का संयोजन किस प्रकार संभव है ? यह तभी हो सकता है जब दोनों रश्मियां समकाल स्थायी हों। इस अत्यंत निगूढ़ विषय का समाधान यह है। इन सभी रश्मियों के अंतराल में एक विशुद्ध शुभ्र किरण रहती है। उसमें तीव्र आकर्षण शक्ति होती है। सृष्टि में उस शुभ्र किरण का स्फुरण नहीं रहता। यह समग्र सृष्टि की पृष्ठभूमि में रहती है। परंतु विज्ञानविद् खंडरूपेण उसे प्रकट कर सकते हैं और तत्काल स्थायी बना करके रख भी सकते हैं। इस रश्मि का किसी से विरोध नहीं है; क्योंकि यह स्वच्छ है। जब इस शुभ्र रश्मि के ऊपर किसी रश्मि का आहरण किया जाता है तब इससे आकृष्ट होकर वह आहरत रश्मि इसमें संलग्न रहती है अर्थात् उसका तिरोधान नहीं होता। ऐसी स्थिति में क्रमानरूप द्वितीय रश्मि आकृष्ट होकर उसके साथ युक्त हो जाती है। इस प्रकार दो रश्मियों का संयोग संभव है। तृतीय, चतुर्थ, पंचमादि रश्मियों का संयोजन भी इसी भांति किया जाता है। रश्मि संयोग का तात्पर्य है उसके अभिव्यंग्य उपादान का संयोग। जब अंतिम उपादान का संयोग होता है तब द्रव्य का आविर्भाव होता है। यही सृष्टि का रहस्य है। अनलोम-विलोम दोनों प्रकार से रश्मियों का क्रम जानना चाहिए।'

बाबा कहा करते थे कि सूर्य-विज्ञान सृष्टि का मूल विज्ञान है। सूर्य का नाम 'सविता' इसी कारण से पड़ा है। इसी प्रकार उन्हें चंद्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, शब्द-विज्ञान, क्षण-विज्ञान प्रभृति का भी सविशेष ज्ञान था। ये सब विज्ञान उन्होंने तिब्बत में रहने के समय योग-शिक्षा के साथ आयत्त किये थे। उसका विशेष विवरण मेरे लिखे हुए दो ग्रंथों—विशुद्धानंद प्रसंग (बंगला-पांच खंड) और विशुद्ध वाणी (बंगला-नौ खंड) तथा श्री अक्षरकुमार दत्त गुप्त विरचित 'योगिराजाधिराज विशुद्धानंद (बंगला) नामक ग्रंथ में मिलेगा।

तिब्बत स्थित सिद्धभूमि ज्ञानगंज

दीक्षा के बाद प्रायः बीस वर्षों तक मुझे बाबा का घनिष्ठ संपर्क प्राप्त हुआ। इस बीच उनकी असंख्य अलौकिक विभूतियों एवं शक्तियों का परिचय मिला, साथ ही उनकी अपार करुणा तथा प्रेम का भी अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ। ये तिब्बत में स्थित ज्ञानगंज नामक सिद्धभूमि में चौदह वर्ष की अवस्था में ही गये थे और वहां रहकर ब्रह्मचारी, दंडी तथा संन्यासी—इन तीनों अवस्थाओं का साक्षात् अनुभव प्राप्त किया था। ब्रह्मचारी अवस्था में १२ वर्ष तक तथा दंडी और संन्यासी की

(शेषांश पृष्ठ २२३ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

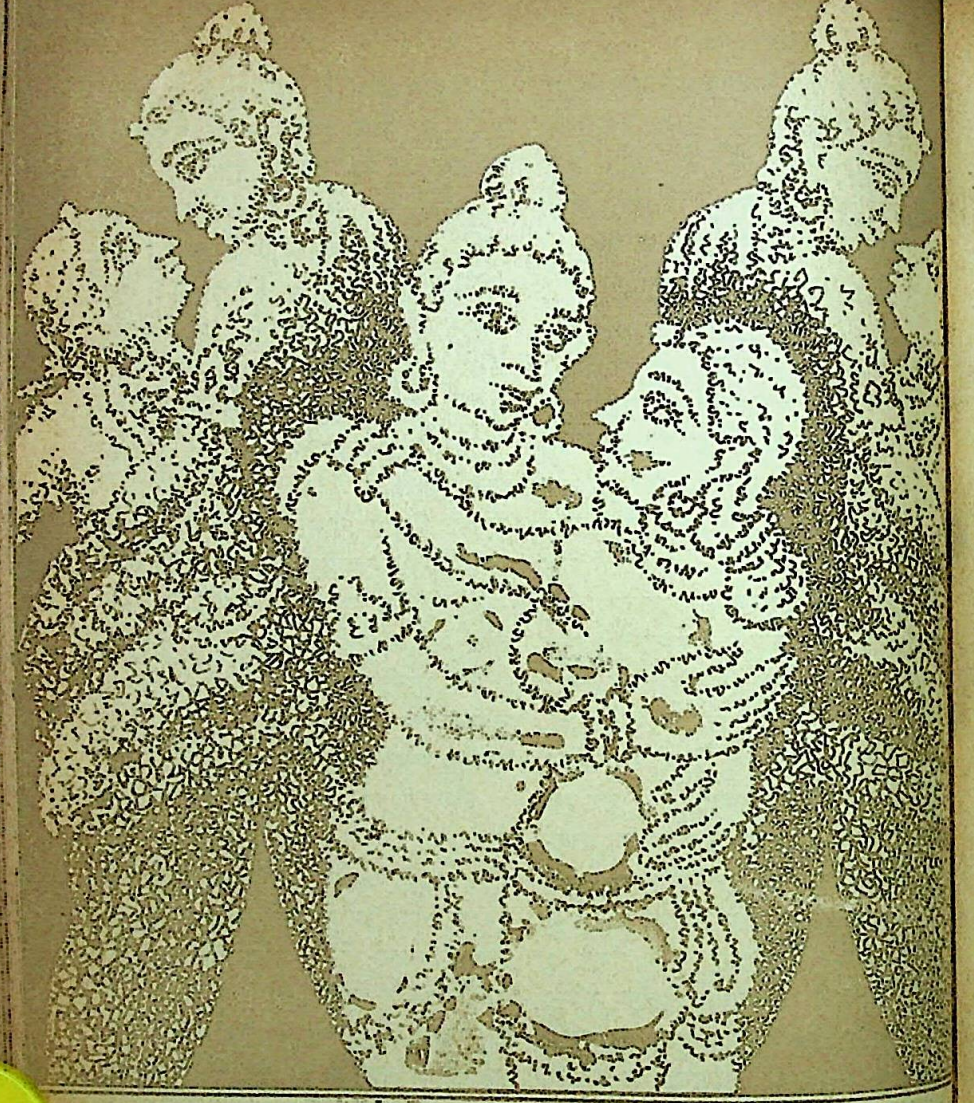

महाकवि दंडी के अमर संस्कृत उपन्यास 'दशकुमार चरितम्'
का हरिमोहन शर्मा द्वारा संक्षिप्त हिंदी रूपांतर

दशकुमार चरित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□

महाकवि दण्डी की यह औपन्यासिक कृति संस्कृत के कथा-साहित्य में कई दृष्टियों से अनुपम है। इसमें अपने काल के यथार्थ को दण्डी ने बड़ी निष्पक्षता से कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

यह उस काल के भारत के उस पट को खोलती है, जब चाणक्य द्वारा निर्धारित नीतियां समाज में सर्वमान्य थीं, जब वणिक समाज के सर्वाधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली अंग थे, और मध्यपूर्व के देशों के साथ समुद्री व्यापार करते थे। जब पतिव्रत धर्म की महिमा थी, किंतु वेश्याएं और गणिकाएं भी समाज में प्रतिष्ठित थीं। जब कन्याएं छिपकर अपने प्रेमियों से मिलती थीं, और उन्हें प्रेम करने के लिए उकसाती थीं। जब समाज में अंधविश्वासियों, जुआरियों, जादूगरों और धूर्तों का बोलबाला था।

दण्डी ने अपने काल के समाज की गहराइयों के अलावा, विभिन्न पात्रों के मन में गहरे पैठकर, जिस रोचक आख्यान को जन्म दिया है, उसकी तुलना उनके समकालीन बाणभट्ट की, जो उनके समान संस्कृत गद्यकाव्य के सशक्त प्रणेता थे, की 'कादम्बरी' से ही की जा सकती है।

□

कभी राजहंस नामक राजा मगध की राजधानी पुष्पपुरी में राज्य करता था। वह अपनी रानी वसुमती के साथ सुखपूर्वक रहता था। उसने एक तुमुल युद्ध में मालवा के राजा मानसार को पराजित किया था। इस विजय के बाद, उसे एक और शुभ समाचार मिला। वसुमती गर्भवती थी। राजा प्रसन्न हुआ, क्योंकि पुत्र-प्राप्ति के लिए वह काफ़ी समय से देवताओं की आराधना करता आ रहा था।

किंतु राजा की यह प्रसन्नता अपने एक गुप्तचर से यह समाचार पाकर कि मानसार उस पर आक्रमण की तैयारियां कर रहा है, कम हो गयी। गुप्तचर न बताया कि मानसार ने उज्जयिनी के महाकाल मंदिर के महेश्वर को प्रसन्न कर, उनसे एक भयंकर रुद्र-गदा प्राप्त की है। यह चिंता का विषय था, मगर चिंता को त्यागकर उसने विशाल सेना के साथ मानसार से युद्ध किया।

युद्ध में राजहंस पराजित हुआ। रुद्र-गदा ने उसके सारथी को मारकर उसे मूर्च्छित कर दिया। रथ के अश्व रथ को भगाकर उस वन में ले गये, जहां राजहंस ने पहले ही वसुमती तथा अपनी अन्य रानियों को भेज दिया था।

वसुमती को जब अपनी सेना की पराजय और अपने पति के गायब हो जाने का समाचार मिला, तो उसने प्राण त्याग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करने का निश्चय किया। किंतु, उसके मंत्रियों ने उसे यह कहकर रोकना चाहा, 'राजा की मृत्यु का कोई समाचार नहीं मिला है, और ज्योतिषियों का कहना यह है कि आप शीघ्र ही एक वीर पुत्र को जन्म देने वाली हैं।'

लेकिन, रानी न मानी, और आधी रात को प्राण त्याग करने वन में गयी। वहां संयोग से, उसने अपने पति को कराहते सुना। मंत्रियों और अमात्यों की सहायता से वह उन्हें अपने शिविर में ले आयी, जहां कुछ दिन बाद राजहंस सेवा-सुश्रूषा से भले-चंगे हो गये। स्वस्थ होकर वे मुनि वामदेव से मिले। मुनि ने उन्हें परामर्श दिया कि वे कुछ दिन शांत बैठें। 'पुत्ररत्न की प्राप्ति के पश्चात् तुम्हारे दिन फिरेंगे।'

और एक दिन शुभ मुहूर्त में वसुमती ने सब लक्षणों से युक्त एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम राजवाहन रखा गया। उसी समय राजा के चार अमात्यों—सुमति, सुमंत्र, सुमित्र और सुश्रुत के घर प्रमति, मित्रगुप्त, मंत्रगुप्त और विश्रुत इन चार पुत्रों ने भी जन्म लिया। ये चारों राजवाहन के बाल-साथी बने, और वह रोज़ उनके साथ खेलने लगा।

कुछ समय बाद, एक तपस्वी से राजा को उपहार में एक बालक प्राप्त हुआ, जिसका नाम राजा ने उपहारवर्मा रखा। वह वास्तव में राजा के मित्र, मिथिला के राजा प्रहारवर्मा का पुत्र था। प्रहारवर्मा राजा राजहंस की सहायता करने के लिए आये थे, और राजहंस की हार के बाद अपनी शेष रही सेना के साथ अपने नगर को लौट रहे थे कि शबरों के एक दल ने उन्हें घेर लिया। मिथिलाराज का यह पुत्र अपनी धाय के पास था। शबरों ने उससे उस बालक को लेकर एक तपस्वी को दे दिया। वही तपस्वी इस बालक को राजा राजहंस के पास लाया था।

उस बालक को अपने पास रखकर, राजहंस मिथिलाराज के दूसरे पुत्र और उपहारवर्मा के भाई की खोज में निकले, जो तपस्वी की सूचना के अनुसार, शबरों के पास ही था। काफ़ी खोज के बाद, वह बालक भी राजा को एक शबर के पास मिल गया। राजा राजहंस उसे अपने साथ ले आये, और उसका नाम अपहारवर्मा रखा।

०००

कुछ दिन बाद, राजा को मुनि वामदेव के शिष्य सोमदेव शर्मा के पास से एक और बालक मिला, जिसका नाम उन्होंने पुष्पोद्भव रखा, क्योंकि उसके पिता का नाम रत्नोद्भव था। रत्नोद्भव एक बार समुद्री व्यापार करते-करते कालयवन नामक द्वीप में पहुंचा। जब वह वहां से अपनी पत्नी सुवृत्ता के साथ वापस लौट रहा था, तो नाव डूब गयी। उसके साथ वह भी डूब गया। सुवृत्ता बच गयी, और उसने तट पर पहुंचकर एक पुत्र को जन्म दिया। बालक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर जन्म लेने के बाद अनेक संकट आये, मगर वह उन सबको झेलकर अंत में सोमदेव के पल्ले पड़ा। बाद में राजा को मालूम पड़ा, रत्नोद्भव उनके अमात्य सुश्रुत का छोटा भाई था। इसलिए, उन्होंने पुष्पोद्भव को सुश्रुत को सौंप दिया।

राजा के एक मंत्री थे धर्मपाल। उनके पुत्र कामपाल ने एक यक्ष-कन्या तारावली से विवाह किया था। एक रात वह रानी वसुमती के पास आकर बोली, 'मेरे पिता मणिभद्र यक्ष ने आदेश दिया है कि मैं अपने पुत्र को राजवाहन की सेवा में लगा दूं। अतः, आप मेरे पुत्र को स्वीकार करें।' राजा ने इस बालक को स्वीकार कर, उसका नाम अंगपाल रखा, और उसे सुमंत्र अमात्य को सौंप दिया।

बालकों के आने का सिलसिला जारी रहा।

मुनि वामदेव के एक और शिष्य को राजतीर्थ में स्नान करते समय, एक वृद्धा की गोद में रोता एक सुंदर और चंचल बालक दिखायी दिया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह राजा के मंत्री सितवर्मा के छोटे पुत्र सत्यवर्मा का पुत्र था। राजा ने बालक का नाम सोमदत्त रखकर, उसे उसके ताऊ सुमति मंत्री के सुपुर्द कर दिया।

इस प्रकार, दसा बालक राजा राजहंस की देखरेख में पलने लगे। सब राजवाहन के मित्र थे, और उसके साथ उठते-बैठते और खेलते थे।

राजवाहन की शिक्षा-दीक्षा में राजा राजहंस ने कोई कोर-कसर न उठा रखी। उसे सब देशों की भाषाओं का ज्ञान कराया गया। उसने काव्य, नाटक, आख्यायिका, इतिहास, वेद-पुराण, धर्म, व्याकरण, ज्योतिष-शास्त्र, नीति-शास्त्र, मीमांसा, तर्क आदि का अध्ययन पूरा कर, संगीत, चित्र-कला आदि कलाओं और मणिमंत्र, द्यूतक्रीड़ा, चौर्यकला आदि छल-कौशलों में भी निपुणता प्राप्त की। हाथी-घोड़ों के अलावा सब प्रकार के वाहनों की सवारी और युद्ध-कला में भी वह प्रवीण बना। राजा राजहंस उसकी प्रगति से अत्यंत प्रसन्न थे।

ooo

एक दिन मुनि वामदेव राजा से भेंट करने के लिए आये। वहां उन्होंने राजवाहन को देखकर उसे आशीर्वाद देकर राजा से कहा—'अपने राज्य की वृद्धि के उद्देश्य से आप कुमार राजवाहन को उसके साथियों के साथ दिग्विजय-यात्रा पर भेजिये।' राजा ने एक शुभ मुहूर्त में मुनिवर की आज्ञा का पालन किया।

अपनी दिग्विजय-यात्रा में अनेक राज्यों को पार करता हुआ, राजवाहन जब विंध्याटवी वन में घुसा, तो उसकी भेंट एक ऐसे पुरुष से हुई, जो देखने में तो किरात जैसा लगता था, लेकिन उसने ब्राह्मणों की भांति यज्ञोपवीत भी धारण कर रखा था। उसने राजवाहन से कहा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'तुम्हारे मित्रों से मुझे तुम्हारा परिचय प्राप्त हो चुका है, राजकुमार! मेरी पूर्व कहानी बड़ी विचित्र है। वह कभी बाद में सुनियेगा। फिलहाल इतना ही जान लीजिये कि मैं वन में अकेला रहता हूं, भगवान शिव का स्मरण करता हुआ। कुमार! आप मेरे साथ आयें। मुझे आपसे एकांत में कई एक गुप्त बातें करनी हैं।'

एकांत में मित्रों से अलग राजवाहन को उस पुरुष ने बताया, 'मैंने ब्राह्मवेला में एक स्वप्न देखा था। चंद्रशेखर महादेव ने मुझे दण्डकारण्य के बीच बहती नदी के तट पर स्थित एक स्फटिक लिंग के बारे में बताया है, जिसके पीछे भगवती के पांवों के चिह्नोंवाला एक पाषाण है। उसके पास के बिल में प्रवेश करोगे, तो तुम्हें एक ताम्रपत्र मिलेगा। उस पर जो लिखा है, उसके अनुसार आचरण करोगे, तो तुम पाताललोक के स्वामी बन जाओगे। इस कार्य में एक राजकुमार कहीं से आकर तुम्हारी सहायता करेगा। अब आप आ गये हैं, अतः मेरी सहायता करें।'

आधी रात को दोनों उस बिल में घुसे। अंदर पहुंचकर, दोनों को एक ताम्रपत्र दिखायी दिया। उसे पढ़कर शिव-भक्त ब्राह्मण यज्ञ करने बैठ गया, और राजवाहन के देखते ही देखते यज्ञ की अग्नि में कूद गया। जब वह अग्नि में से बाहर आया, तो उसकी देह सोने के समान चमक रही थी।

तभी एक सुंदरी युवती उस पुरुष के पास आयी और उसे एक मणि देकर बोली, 'मैं न जाने कब से आपकी प्रतीक्षा कर रही हूं। मेरे पिता आसुरराज एक युद्ध में भगवान विष्णु से परास्त हुए थे। तब एक मुनि ने मुझसे कहा था कि एक दिन एक दिव्य देह वाला पुरुष यहां आयेगा, और तुझसे विवाह करके तेरी रक्षा करेगा। अब आप मुझे अपनी भार्या बनाकर इस लोक पर राज्य करो।'

राजवाहन से आज्ञा लेकर उस पुरुष ने कालिंदी नाम की उस युवती से विवाह किया और सुखपूर्वक वहां राज्य करने लगा।

पुरुष की सहायता करने के बाद राजवाहन ने पृथ्वी पर वापस लौटने का निश्चय किया। कालिंदी ने उसे एक मणि दी, जो भूख-प्यास को मिटाती थी। लेकिन जब वह बिल के मार्ग से पृथ्वी पर आया, तो अपने मित्रों में से किसी को न पाकर, दुखी हो गया, और उन्हें इधर-उधर ढूंढ़ने लगा।

एक दिन, जब वह विशालापुरी के एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपवन में विश्राम करने जा रहा था, तो उसने एक पुरुष को अपनी ओर आते देखा। वह सेवकों से घिरा था, और उसके साथ पालकी में सवार एक युवती थी। वह पुरुष राजवाहन को देखते ही लिपट गया, और बोला—'आपने मुझे पहचाना नहीं, मेरे स्वामी? मैं सोमदत्त हूं।' जब राजवाहन ने सोमदत्त से उसकी कुशलता और पालकी में बैठी युवती के बारे में पूछा तो सोमदत्त ने उत्तर दिया, 'जब आप सहसा गायब हो गये, तो मैं वन में आपको ढूंढ़ने लगा। एक देवमंदिर के पास मुझे चतुरंगिणी सेना पड़ी दिखायी दी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह इस राज्य के राजा वीरकेतु की है। लाट देश का राजा मत्तकाल वीरकेतु को डरा-धमका कर उसकी बेटी को भगाकर ले आया था कि उसे अपने राज्य में ले जाकर उसके साथ विवाह करेगा। वीरकेतु का मंत्री मानपाल अपनी सेना लिये यहां बैठा है कि शिकार से लौटते हुए मत्तकाल को घेरकर उससे अपने राजा की पुत्री को छीन ले। जब उसने चोरी के एक घटना-क्रम में मत्तकाल के सैनिकों का अपमान किया, तो मत्तकाल उत्तेजित होकर अपनी थोड़ी-सी ही सेना के साथ वीरकेतु की सेना पर टूट पड़ा। इस युद्ध में मैं भी मानपाल की ओर से लड़ा, और मत्तकाल का सिर काटने में सफल हुआ। वीरकेतु मेरे पराक्रम से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह मुझसे कर दिया। मैं उसे पालकी में बैठाकर, विदा कराके ला रहा हूं।'

राजवाहन को सोमदत्त की कहानी सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सोमदत्त को अपने अनुभव भी सुनाये।

तभी उसने पाया कि पुष्पोद्भव ने न जाने कहां से आकर उसके पांवों पर अपना माथा रख दिया है। राजवाहन ने उसे गले से लगाकर अपनी कहानी सुनायी, और फिर पूछा, 'तुम कहां रहे मित्र? कहां से आ रहे हो?'

पुष्पोद्भव ने अपनी कहानी इस प्रकार सुनायी :

'आपको न पाकर, हम सब अलग-अलग दिशाओं में आपको खोजने चल पड़े थे। चलते-चलते मैं एक विशाल वृक्ष के नीचे सुस्ताने को बैठ गया। तभी अपने माता-पिता से, जिन्हें हम मृत समझ बैठे थे, मेरा विचित्र मिलन हुआ। आराम करते-करते मैंने देखा कि एक आदमी पर्वत से कूदकर आत्महत्या करने की कोशिश कर रहा है। मैंने जाकर उसे बचाया। पूछने पर उसने बताया, 'मैं मगध के राजा के अमात्य पद्मोद्भव का पुत्र रत्नोद्भव हूं। व्यापार के सिलसिले में, मैं कालयवन द्वीप से, वहां की एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वणिक-कन्या से विवाह करन के बाद लौट रहा था कि मेरा जलयान एक चट्टान से टकराकर नष्ट हो गया। सौभाग्य से मैं किसी तरह किनारे आ लगा। एक तपस्वी ने मुझे बताया था कि सोलह वर्ष बाद, मेरा अपनी पत्नी से मिलन होगा। सोलह वर्ष बीत गये हैं, मगर अभी तक पत्नी से भेंट नहीं हुई। इसलिए मैं आत्महत्या करना चाहता हूं।'

'मैं उन्हें बताना चाहता ही था कि वे मेरे पिता हैं कि मुझे किसी स्त्री के रोने का स्वर सुनायी दिया। मैं तुरंत उसकी ओर भागा। देखा कि एक स्त्री आग में जलने को तैयार है, और उसके पास बैठी एक वृद्धा रोती हुई उसे और प्रतीक्षा करने को कह रही थी। मैंने जब वृद्धा से उस स्त्री के बारे में पूछा— तो ज्ञात हुआ कि वे वास्तव में मेरी मां सुवृत्ता ही हैं। मैंने उन्हें प्रणाम कर अपना परिचय दिया, और पिताजी से उनकी भेंट करायी। फिर उन दोनों को एक मुनि के आश्रम में छोड़कर मैं फिर आपकी खोज में लग गया। विंध्यावटी के एक प्राचीन नगर के ध्वंसावशेषों में मुझे पेड़ों के नीचे गड़ा धन मिला। मैं धनी हो गया, और मालवा के एक वणिक चंद्रपाल के साथ मेरी घनिष्ठ मित्रता हो गयी। उसके पिता वंधुपाल ने मुझे समझाया कि आप मुझसे तभी मिलेंगे, जब मिलने का मुहूर्त होगा। तब तक, धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करना ही उचित है।

'एक दिन मैंने बालचंद्रिका नाम की एक वणिक कन्या को देखा, और देखते ही मदनवाण से पीड़ित हो गया। प्रेम और लज्जा के उसके हाव-भावों से मैंने जान लिया कि वह भी मुझ पर मोहित हो गयी है। तब तो वह अपना प्रेम मुझ पर प्रकट नहीं कर पायी, लेकिन जब एक दिन हम दोनों एक सरोवर के तट पर मिले, तो एकांत का लाभ उठाकर उसने मुझसे कहा, 'मैं आप पर मोहित हूं, और आपकी ही होना चाहती हूं किंतु मालवा के दो राजपुत्रों में से एक दारुवर्मा मुझे कुदृष्टि से देखता है, और मेरे साथ बलात्कार करना चाहता है।' मैंने उसे अपने अंक से लगाकर आश्वासन किया कि मैं एक युक्ति से दुष्ट दारुवर्मा की हत्या कर, मार्ग के इस कंटक को दूरकर, तुम्हें अपनी वल्लभा बनाऊंगा। मैंने अपनी युक्ति से उस दुष्ट को हराकर बालचंद्रिका से विवाह किया। चंद्रपाल ने मेरी आपसे भेंट का आज का शकुन निकाला था, जो सच निकला।'

०००

मानिनी युवतियों को चंचल करने वाला, रसिकों के हृदय में मदनोत्सव मनाने का उल्लास भरने वाला, और वियोगियों के हृदय सुलगाने वाला वसंत आ गया। मालवा के राजा मानसार की रति की सी सुंदरी पुत्री अवंतिसुंदरी अपनी सखी बालचंद्रिका के साथ एक उद्यान में विहार की उत्कंठा से गयी। और उसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखने राजवाहन अपने सखा पुष्पोद्भव के साथ ऐसे आ पहुंचा, जैसे कामदेव अपने साथ वसंत को लेकर आता है। उन्हें देखते ही अवंतिसुंदरी काम के वश में हो गयी, और वालचंद्रिका से उनके बारे में पूछने लगी। चतुर वालचंद्रिका ने कहा, 'यह सकल कलाकुशल एक ब्राह्मण-पुत्र हैं। आप इनकी पूजा करें।' कामपीड़िता अवंतिसुंदरी को लगा, सखी ने उसके मन की बात कह दी। उसने राजवाहन को एक आसन पर बैठाकर कुसुम, अक्षत, कपूर आदि से पूजा की।

दोनों को लग रहा था कि पूर्वजन्म में वे पति-पत्नी थे। दोनों ही प्रेम से पीड़ित थे, मगर दोनों की ही समझ में नहीं आ रहा था कि इस जन्म में, अब उनका मिलन कैसे संभव होगा?

तभी एक ऐंद्रजालिक ब्राह्मण विद्येश्वर ने राजवाहन से भेंट करके, उसे आश्वासन दिया कि वह इंद्रजाल विद्या से मानसार को मोहित करके नगरवासियों के सामने अवंतिसुंदरी से उसका विवाह कराके दिखा देगा।

अगले दिन प्रातःकाल रस-भावरीति-चतुर विद्येश्वर अपने साथियों के साथ राजमहल में पहुंचा, और राजा को संदेश भिजवाया कि एक जादूगर जादू के खेल दिखाना चाहता है। राजा उसका खेल देखने को तैयार हो गये।

खेलों के दौरान, राजा-प्रजा के सामने उसने पहले विषधर नाग प्रकट किये, जिन्हें देखकर सब डर गये। फिर उसने गिद्धों को प्रकट किया, जो इन नागों को पकड़कर उड़ गये। इसके बाद उसने नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु की छाती फाड़े जाने वाला दृश्य प्रस्तुत किया। अंत में, विनीत स्वर में बोला—'अब मैं एक मांगलिक दृश्य दिखाऊंगा। इस दृश्य में आप अपनी पुत्री जैसी दिखने वाली एक युवती को एक आदर्श राजकुमार से विवाह करते देखेंगे।'

विद्येश्वर ने सबको सम्मोहित करके सबके सामने मंत्रों का उच्चारण करके राजवाहन और अवंतिसुंदरी का विवाह करा दिया। सब इसे एक जादू समझकर तलियां बजाते रहे।

विवाह के बाद, राजवाहन ने बड़े कौशल से अवंतिसुंदरी के अंतःपुर में प्रवेश किया और एकांत सुख भोगा।

०००

जब मानसार और उसकी महारानी को इस कपट-विवाह के बारे में पता चला, तो वे बहुत सुखी हुए क्योंकि उन्होंने राजवाहन को देखते ही उसे अपना दामाद स्वीकार कर लिया था। किंतु मानसार की बुआ के दो पुत्रों ने जो राजपुत्रों के रूप में मालवा पर शासन कर रहे थे, राजवाहन को मारने की धमकी दी। लेकिन मानसार ने यह कहकर उसकी जान बचा दी कि 'यदि तुमने इसे मारा तो हम भी मर जायेंगे।' पर, वे राजवाहन और पुष्पोद्भव को जेल जाने से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न रोक पाये।

बाद में, घटनाएं कुछ इस प्रकार से घटीं कि राजवाहन का शत्रु राजपुत्र चंडवर्मा मारा गया, और राजवाहन बंदीगृह से मुक्त हो गया। बंदीगृह से मुक्त होने पर उसकी भेंट अपने खोये साथी अपहारवर्मा से भी हो गयी, जो दोनों के लिए अपार हर्ष का कारण बनी।

अपहारवर्मा ने राजवाहन की भेंट धनमित्र नाम के एक आज्ञाकारी सेवक से करायी। उसने कहा, 'मैंने विध्वस्त कोष और वाहनों को फिर जुटाया है। यह सारा सामान हमारे पक्ष के राजा के पास है। आप उनके पास जाकर बड़े खुश होंगे।' राजवाहन उन दोनों के साथ जाने को तैयार हो गया।

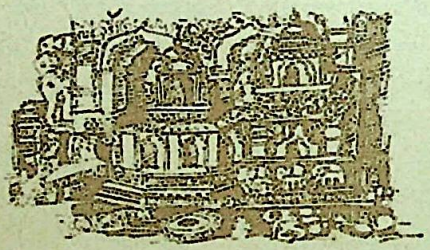

चित्र : चंदुलाल सांकला

मार्ग में राजवाहन की भेंट उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मैथिल प्रहारवर्मा, काशीपति, कामपाल और चंपेश्वर सिंहवर्मा से हुई, जिन्होंने राजवाहन को प्रणाम किया और कहा, 'आज सहसा हम सब मिले। लगता है आज से हमारा अभ्युदय होगा।' काशीपति, मिथिलेश और अंगराज, इन तीनों वृद्धों ने बाद में राजवाहन को आशीर्वाद दिया।

जब मेल-मिलाप पूरा हो गया, तो राजवाहन ने अपने और सोमदत्त और पुष्पोद्भव के अनुभवों की कहानी सुनाकर अपने साथियों से अपने-अपने अनुभवों की कहानी सुनाने को कहा।

सबसे पहले, अपहारवर्मा ने अपने अनुभव सुनाये।

०००

'जब हम सब आपको खोजने के लिए इधर-उधर गये,' अपहारवर्मा ने राजवाहन को संबोधित करते हुए कहा, 'तब मैं अंगदेश की गंगा के तट पर स्थित चंपानगरी जा पहुंचा। वहां मुझे महर्षि मरीचि के बारे में पता चला, जिनके तप से दिव्य दृष्टि मिल जाती थी। मैं उनके आश्रम में पहुंचा। वे मिले तो, मगर एक वारवनिता की चाल में आकर अपनी सारी साधना को गंवा बैठे थे। रति, जुआ, व्याकरण, तर्क, ज्योतिष, कामविद्या, नृत्य, संगीत आदि में निपुण इस वेश्या ने राजकुल की एक स्त्री से शर्त लगायी थी कि वह महर्षि मरीचि को जीतकर दिखायेगी, नहीं तो आजीवन उसकी दासी बनकर रहेगी। वेश्या ने पहले तो बड़ी श्रद्धा से महर्षि की सेवा कर उन्हें प्रसन्न किया, फिर उन पर अपना प्रेम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धीरे-धीरे बढ़ाने लगी। मरीचि भी उस पर आसक्त हो गये, और उस वेश्या कामंमंजरी—से विवाह करने को तैयार हो गये। इस प्रकार काममंजरी शर्त जीत गयी, और महर्षि पुनः साधना के लिए अपने आश्रम में आ गये।

'महर्षि से विदा लेकर मैं आगे बढ़ा। एक जैन विहार में मेरी भेंट एक दुर्बल, कुरूप क्षपणक से हुई, जो महर्षि मरीचि को चकमा देने वाली काममंजरी पर अपना तन, मन, धन, सर्वस्व गंवा बैठा था। मैंने उससे कहा, 'घबराओ नहीं, मित्र! मैं कुछ ऐसा करूंगा कि वह सब कुछ तुम्हें वापस लौटा दे।'

'नगर में आकर मैंने चौरशास्त्र के प्रवर्तक कर्णीसुत की शिक्षाओं का पालन करना और जुआ खेलना सीखना आरंभ किया। जुआरियों के पास बैठ-बैठकर, मैंने तरह-तरह के जुओं में की जाने वाली चालबाज़ियों के बारे में जाना। हेकड़ी दिखाकर, ऊंची-नीची बातें करके अपने पक्ष को मज़बूत करने, रिश्वत देने, लोभ देने, दाव के भेद, जीते धन का बंटवारा करने और अदालत के ज़रिये हारे हुए जुआरी से पैसा वसूलने में मैं धीरे-धीरे माहिर हो गया। एक बार मैंने जुए में १६,००० मुद्राएं जीतीं, मगर मैंने सारी रक़म लोगों में बांट दी। इससे मेरा बहुत नाम हो गया। एक दिन मैंने नीले रंग का लबादा पहनकर कमर में पैनी तलवार बांधकर, सेंध मारने की शबरी, कैंची, संड़ासी, रस्सी वगैरह लेकर एक अमीर आदमी के घर में सेंध भी लगायी, और एक मूल्यवान आभूषण चुराने में सफल हो गया।

'काममंजरी पहले लोभमंजरी के नाम से प्रसिद्ध थी। दूसरों का धन हड़पने के लिए वह हर प्रकार की धूर्तता कर सकती थी, और करती भी थी। लेकिन मैंने उससे न केवल क्षपणक को धन वापस दिलाया, चोरी के अपराध में उसे सज़ा भी दिलवायी। इन्हीं दिनों मालवा के एक राजपुत्र चंडवर्मा ने अंगराज सिंहवर्मा पर क्रुद्ध होकर चंपानगरी को घेर लिया। अंगराज उसकी शर्त को नहीं मान सके थे। युद्ध में सिंहवर्मा का कवच टूट गया, और चंडवर्मा ने उनकी पुत्री अंबालिका को पकड़ लिया, और उसे विवाह करने के लिए भवन में उठा ले गया। पर, राजकुमारी अंबालिका से तो मैं विवाह करना चाहता था। मैंने अपने मित्र धनमित्र को अपनी योजना समझाकर चंडवर्मा के अंतःपुर में प्रवेश किया। वहां विवाह की तैयारियां चल रही थीं। जैसे ही चंद्रवर्मा ने अपना हाथ पाणिग्रहण के लिए अंबालिका की ओर बढ़ाया, मैंने उसके हृदय में छुरी भोंक दी। कुछ और लोगों को भी मौत के घाट उतारना पड़ा। फिर राजकुमारी को अपना परिचय देकर, मैं उसका सान्निध्य सुख प्राप्त करने के लिए उसे लेकर शयन-कक्ष में पहुंचा। और अब, पुनः आपकी सेवा में उपस्थित हूं।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब राजवाहन ने उपहारवर्मा से कहा, 'अब तुम अपनी कहानी सुनाओ।'

उपहारवर्मा ने अपनी कहानी इस तरह सुनायी :

'मैं घूमता हुआ विदेहपुरी पहुंचा, वहां एक मठ में मैंने एक वृद्धा को रोते हुए पाया। रोने का कारण पूछने पर उसने कहा, 'पहले यहां प्रहारवर्मा नाम के राजा थे, जो मगध के राजा राजहंस के मित्र थे। जब राजहंस की पत्नी वसुमती गर्भवती हुई, तो प्रहारवर्मा की रानी प्रियम्वदा उनके पास थी। उसी समय मालवा के राजा मानसार ने राजहंस पर आक्रमण किया। प्रहारवर्मा राजहंस की सहायता करने मगध पहुंचे, किंतु, जब लौटकर आये, तो पाया कि उनके बड़े भाई संहारवर्मा के पुत्र विकटवर्मा ने शासन अपने हाथ में ले लिया है। प्रहारवर्मा अपने भानजे सुहृत्पति से सहायता लेने जा रहे थे कि वन में शबरों ने उन्हें लूट लिया। मेरी गोद में प्रहारवर्मा का छोटा लड़का था। मैं उसे लेकर शबरों से बचने के लिए वन में भाग गयी, पर वहां एक सिंह ने मुझ पर हमला किया। इस चक्कर में लड़का मुझसे बिछुड़ गया। बाद में मुझे मालूम पड़ा कि वह लड़का किरात-प्रमुख के पास पूर्णतया सुरक्षित था।'

'मैंने वृद्धा को बताया कि वह लड़का मैं ही हूं। यह सुनकर वृद्धा ने मुझे छाती से लगाकर मेरा माथा सूंघा।

'अब मैं विकटवर्मा को, जिसे पौरजनपद का समर्थन प्राप्त था, मारकर अपने पिता का राज्य पुनः हस्तगत करने की योजना बनाने लगा। इस योजना को सफल बनाने में वृद्धा की पुत्री पुष्परिका ने जो विकटवर्मा के अंतःपुर के सब रहस्यों से परिचित थी, बड़ी सहायता की। उससे मुझे ज्ञात हुआ कि कागरूप के राजा कालिंदवर्मा की पुत्री कल्पसुंदरी ने अपने सौंदर्य और नृत्यगीत निपुणता से विकटवर्मा को अपने वश में कर रखा है। मैंने अपना एक चित्र पुष्परिका के हाथ कल्पसुंदरी के पास भिजवाया। जिसे देखकर वह मोहित हो गयी, और सोचने लगी कैसे इस सुंदर युवक के दर्शन कर आंखें ठंडी करूं। पुष्परिका ने उसके मन का हाल जानकर, चित्र वाले कुमार को उससे मिलाने का वायदा किया।

'कल्पसुंदरी का चित्र देखकर और उसका गुण-वर्णन सुनकर मैं भी उसे पाने को उत्सुक हो उठा था। पुष्परिका ने हम दोनों के मिलन के लिए राजमहल के निकट माधवीलता का एक मंडप निश्चित किया, जहां मैंने कल्पसुंदरी से भेंट की। उसके बाद, वह हाथ जोड़कर मुझसे कहने लगी, 'नाथ! अब मैं वापस महल नहीं जाऊंगी। आपके साथ ही जाऊंगी।'

'लेकिन, विकटवर्मा के रहते, कल्पसुंदरी को पाना असंभव था, इसलिए मैंने विकटवर्मा की मौत की एक योग्य योजना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बनायी, जो मेरे सौभाग्य और स्वयं उसकी मूर्खता से सफल हुई। विकटवर्मा के अंत के बाद, मैं कल्पसुंदरी के साथ सुख भोगने को स्वतंत्र हो गया। माता-पिता मुक्त हुए। सब सुख थे, मगर आपका साथ न था। अब आपका साथ पाकर सुख पूरा हो गया।'

राजवाहन ने अब अर्थपाल से कहा, 'अब तुम अपनी आप बीती सुनाओ।'

०००

अर्थपाल ने अपनी आपबीती इस प्रकार वर्णित की :

'आपको खोजता-खोजता मैं वाराणसी पहुंच गया। वहां पूर्णभद्र नामक एक शक्तिशाली पुरुष के माध्यम से मुझे पता चला कि काशिराज चंडसिंह ने मेरे पिता को पकड़कर घोषणा की है कि उनकी आंखें ऐसे निकाली जायें कि उनकी मृत्यु हो जाये। मैंने पूर्णभद्र से कहा, 'मैं हज़ार योद्धाओं का वध करके भी अपने पिता को बचाने की सामर्थ्य रखता हूं, लेकिन अगर किसी ने भीड़ में से उन पर वार कर दिया, तो मेरे सब प्रयास व्यर्थ हो जायेंगे।'

'तभी सामने की दीवार से बड़े फन वाला एक नाग प्रकट हुआ। मैंने मंत्र-बल से नाग को पकड़कर पूर्णभद्र से कहा, 'भद्र! अब काम हो जायेगा, ऐसा मान लो। मैं भीड़ में घिरे, अपने पिता पर इस नाग को फेंककर उससे उन्हें डसवा दूंगा। विष को स्तंभित करने से वे मरेंगे नहीं। फिर उन्हें घोषित सज़ा नहीं मिलेगी। आप यह बात मेरी मां को बता देना और यह भी बता देना कि मैं अंत में पिताजी को बचा लूंगा।' पूर्णभद्र मेरी बात मान-कर चला गया।

'जब पीछे से हाथ बांधे मेरे पिता कामपाल को भीड़ के आगे लाया गया, तो मैंने उन पर नाग डाल दिया। नाग के पिता को डसते ही, मैंने उसके विष को स्तंभित कर दिया। लोगों को भ्रम में डालने के उद्देश्य से यह भी कहा, 'राजा ने तो इस पापी के नेत्र ही छीने थे, भग-वान ने प्राण भी छीन लिये।' तभी, उस नाग ने मेरे पिता का वध करने वाले चांडाल को भी डस लिया। राजा ने मेरी माता को मेरे पिता का शव घर ले जाने की आज्ञा दे दी।

'घर पर पिता का विष दूर कर मैंने उन्हें जीवित किया। उन्होंने बताया कि घर के तहखाने में बहुत से अस्त्र-शस्त्र भरे पड़े हैं, और नगर के बहुत से लोग उनके साथ हैं। उन्हें अपने साथ लेकर और अस्त्र-शस्त्रों की सहायता से राजा सिंहघोष की हत्या की जा सकती है।

'मैंने सिंहघोष के प्रकोष्ठ में पहुंचने के लिए एक सुरंग खोदी, और आधी रात को उसमें होता हुआ प्रकोष्ठ में घुस गया। उसके पांवों में बेड़ियां डालकर मैंने उसे बंदी बना लिया। मेरे माता-पिता उसे बंदी देखकर बड़े प्रसन्न हुए, और उन्होंने उसकी पौत्री मणिकर्णिका से मेरा विवाह करा दिया। तभी आपका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेवक अंगराज सिंहवर्मा सहायतार्थ मेरे पास आया, और उसकी सहायता करते-करते, मुझे आपके दर्शनों का सौभाग्य भी प्राप्त हो गया।'

राजवाहन ने कहा, 'सिंहघोष को मुक्त कर दो, और मुझसे मिलने को कहो। और प्रमति, अब तुम सुनाओ, तुम पर क्या बीती?'

०००

राजवाहन को प्रणाम करके, प्रमति ने अपनी कहानी इस प्रकार आरंभ की: 'स्वामी! आपको खोजता-खोजता मैं विंध्याचल के निकट पहुंच गया। वहां मैंने एक आश्चर्य देखा। थककर, मैं एक वृक्ष के नीचे सो गया था। लेकिन जैसे ही जागा, अपने को एक राजमहल में पाया—जहां एक शैया पर कल्पवृक्ष की रत्नमंजरी की आभा जैसी एक नवयुवती मुझे दिखायी दी। उसके अछूते वक्ष पर से वस्त्र खिसक गये थे। उसके कोमल और स्निग्ध अंगों को देखकर लगता था कि वह अभी तक कुमारी है। मैं उस पर अनुरक्त हो गया। अपनी शिष्ट मर्यादा को लांघकर मैंने उसे छुआ। वह रोमांचित होकर जागी, और मुझे देखकर उसके नेत्रों में स्नेह झलक आया। लाज भी झलकी, जिसे देखकर मुझे निश्चय हो गया कि प्रेम का वाण उसके हृदय में भी लग गया है।

'तभी मुझे फिर नींद आ गयी। जागा तो, राजमहल कहीं न था, और मैं वृक्ष के नीचे पड़ा था। मैं चकित रह गया। तो क्या, मैंने सपना देखा था? तभी, एक दुर्बल और क्लांत स्त्री दिखायी पड़ी। मैंने उसे प्रणाम किया, तो उसने स्नेह से मुझे छाती से लगा लिया। उसने जो कहानी सुनायी वह बहुत विचित्र थी, पर उससे मुझे यह विश्वास हो गया कि वही मेरी मां थी।

उसने कहा, 'एक, राक्षस ने मुझे शाप दिया था, जिसके कारण, मेरी स्मृति क्षीण हो गयी थी। इसीलिए तुझे देखकर भी मैं ठीक-ठीक पहचान नहीं पायी। मुझे कल रात श्रावस्ती में महादेव-मंदिर के उत्सव में जाना था। तू मेरा अतिथि था, तुझे वृक्ष के नीचे अकेला छोड़कर कैसे जाती? मैं तुझे सोते से उठा लायी, और श्रावस्ती में राजा धर्मवर्धन की पुत्री नवमालिका के राजमहल में तुझे सुला दिया। मंदिर में त्रिभुवनेश्वर शिव के आशीर्वाद से मेरा शाप दूर हो गया, और मैंने तुझे पहचान लिया। मैंने तेरे और नवमालिका के प्रेम को भी देखा। क्योंकि मुझे तुझे वापस वन में लाना था, इसलिए मैंने युक्ति से तुझे सुला दिया, और फिर वन में लाकर वृक्ष के नीचे लिटा दिया। अब तुझे नवमालिका को पाना हो, तो उसका उपाय तू कर; मैं तेरे पिता कामपाल के पास चली।'

'मैं नवमालिका को पाने के लिए श्रावस्ती की ओर चल पड़ा। मार्ग में मैंने देखा, कुछ लोग मुर्गों की लड़ाई करा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहे थे। पूर्व की नारिकेल जाति के एक मुर्गे की लड़ाई पश्चिम की बलाका जाति के ज़्यादा शक्तिशाली मुर्गे से हो रही थी, जिसमें जीत पश्चिम के मुर्गे की हुई।

'मेरे पास एक धूर्त वृद्ध बैठा था, जो मुर्गों का विशेषज्ञ लगता था, क्योंकि उसने मुर्गों की बहुत-सी कहानियां सुनायीं। उसने मुझे अपना मित्र बताकर, मुझे अपने घर भोजन कराया, और विदा करते समय बोला, 'कभी मेरी ज़रूरत पड़े, तो निःसंकोच याद कीजियेगा। मैं अवश्य आपकी सहायता करूंगा।'

'श्रावस्ती पहुंचकर, मैं एक लता-मंडप के नीचे सो गया। जागा, तो अपने सामने एक सुंदरी बाला को खड़ा पाया। वह बार-बार मेरा मिलान उस चित्र से कर रही थी, जो उसके हाथ के चित्रपट पर अंकित था। आश्वस्त-सी होकर, वह मुझे अपने घर ले गयी, जहां उसने मेरे स्नान-भोजन की अच्छी व्यवस्था की। वह राजकुमारी नवमालिका की सखी थी, और जो चित्र उसके पास था, वह मेरा था, और राजकुमारी ने स्मृति से बनाकर उसे दिया था, मेरी खोज करने के लिए। जब मैंने भी उस चित्र के पीछे की ओर राजकुमारी का चित्र बनाकर दिखा दिया, तो उसने पूछा, 'राजकुमारी के मन की पीड़ा को आप कब दूर करेंगे?' मैंने उससे कुछ दिन प्रतीक्षा करने को कहा।

'मैं वापस लौटकर अपने वृद्ध मित्र—पांचाल शर्मा—से मिला, और उसे उसके वायदे की याद दिलायी। उसने ऐसी छल-योजना बनायी, जिससे राजा धर्म-वर्धन अपने मंत्रियों के साथ आकर मेरे चरणों में गिरा, और अपनी पुत्री नव-मालिका का विवाह मुझसे कर दिया। इतना ही नहीं अपना सारा राज्य भी उसने मुझे सौंपा। नवमालिका के साथ भरपूर आनंदमय जीवन बिताने के बाद जब मैं चंपापुरी आया, तो भाग्य से आपके दर्शन हो गये। अब मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूं।'

राजवाहन को प्रमति की कथा सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर उसने मित्रगुप्त की ओर देखकर कहा, 'मित्र! अब तुम्हारी बारी है।'

०००

मित्रगुप्त कहने लगा: 'आपको खोजता हुआ मैं सुह्मदेश के दामलिप्त नगर के बाहर एक उद्यान में पहुंचा। वहां एक उत्सव हो रहा था, जिसे देखने के लिए काफ़ी भीड़ जमा थी। एक वीणावादक और कोशदास नाम के युवक से पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह उत्सव क्यों होता है? सुह्मदेश के राजा तुंगधन्वा के कोई संतान न होती थी। एक मंदिर की देवी ने उनकी आराधना से प्रसन्न होकर उनसे कहा, 'तेरे एक पुत्र होगा, और एक पुत्री। पुत्र अपनी बहन के अधीन रहेगा। पुत्री को चाहिये कि सातवें वर्ष के बाद, वह प्रत्येक कृत्तिका नक्षत्र में कंदु (गेंद) से खेलती-नाचती, मेरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आराधना करती हुई योग्य पति की कामना करे। जिस युवक को कंदुकोत्सव के समय चाहे, उससे ही उसका विवाह कर देना। वही राजपुत्री कंदुकावती आज चंद्रशेखरा देवी की पूजा करने आयेगी। मैं राजकुमारी की धाय की पुत्री चंद्रसेना के प्रेम में पीड़ित हूं, पर राजकुमार भीमधन्वा ने उसे रोक रखा है। इसी से मैं दुखी मन से वीणा बजा रहा हूं।'

'तभी, चंद्रसेना आ गयी, और युवक से लिपटकर, उसे कहीं और ले जाने का आग्रह करने लगी। पर राजकुमारी कंदुकावती के आगमन के कारण, उसे अपने प्रेमी को छोड़कर राजकुमारी के पास जाना पड़ा। इधर, मैं अपूर्व सुंदरी कंदुकावती को देखते ही, कामदेव के बाणों से घायल हो गया। अनेक कंदुक-क्रीड़ाएं करके, जिनमें वह स्वयं कंदुक-सी हो जाती थी, देवी की पूजा करके, वह चंद्रसेना तथा अपनी अन्य सखियों और मेरे हृदय को लेकर अपने महल में वापस लौट गयी।

'कोशदास मुझे अपने घर ले गया, जहां मैंने स्नान करके भोजन किया। तभी उसकी प्रेमिका चंद्रसेना आ गयी, और मुझसे कहने लगी, 'कंदुकावती आपको देखकर प्रेम से पीड़ित हो रही हैं।' सुनकर मैं उसके मिलन सुख का स्वप्न देखने लगा। चंद्रसेना ने कहा, 'तीन-चार दिनों में आपका विवाह राजकुमारी से हो जायेगा। फिर राजपुत्र भीमधन्वा, जो मुझे प्रेम करता है, उसके अधीन हो जायेगा। पर जब आप राजा हो जायें, तो कोशदास के साथ मेरे विवाह को कौन रोक सकेगा?'

'एक कुब्जा ने चंद्रसेना की यह बात खिड़की के बाहर से सुन ली, और भीमधन्वा को बता दी। उसने अपने सेवकों से मुझे पकड़वाकर, समुद्र में फेंकने का आदेश दिया। मेरे हाथ बांधकर मुझे समुद्र की लहरों के हवाले कर दिया गया। मैं एक काठ से चिपक गया। चौबीस घंटे उससे चिपके रहने के बाद, मुझे एक नौका पर सवार यवनों ने बचाया। पर, शीघ्र ही भीमधन्वा की युद्धनौकाओं ने आकर उस नौका को घेर लिया, और उसके सैनिक यवनों से युद्ध करने लगे। मैं लोहे की जिन जंजीरों से बंधा था, उन्हें खुलवाकर, भीमधन्वा और उसके सेवकों पर बाण चलाने लगा। भीमधन्वा को मैंने जीवित ही पकड़ लिया। यवन व्यापारियों ने मेरी ही जंजीरों से उसे बांधकर मेरी पूजा की।

'यवनों ने एक द्वीप में लंगर डाला। वहां एक पर्वत था, जिसकी मनोरम शोभा से आकर्षित होकर मैं उस पर चढ़ गया। वहां मेरी भेंट एक ब्रह्मराक्षस से हुई, जिसके जटिल प्रश्नों के सही उत्तर देकर मैंने अपनी जान बचायी। उसे धूमिनी, गोमिनी, निम्बवती, नितम्बवती की कथा भी मैंने सुनायीं।

'जिन्हें सुनकर ब्रह्मराक्षस बहुत प्रसन्न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आ। मैं उससे विदा ले रहा था कि आकाश से मोती के दाने गिरते दिखायी दिये। ऊपर देखा, राक्षस एक नवयुवती को पकड़े लिये जा रहा था। चूंकि मैं आकाश में न उड़ सकता था, इसलिए शोक करने लगा। इस पर, ब्रह्मराक्षस आकाश में पहुंचकर उस राक्षस से लड़ने लगा। नवयुवती राक्षस की जकड़ से छूटकर कल्पवृक्ष की मंजरी-सी नीचे गिरी। मैं जब उसके पास पहुंचा तो चकित रह गया। वह तो मेरी प्रिया कंदुकावती थी। उसने बताया कि यह सुनकर कि उसके पापी भाई भीमधन्वा ने मुझे समुद्र में डबा दिया है, वह क्रीड़ावन में अकेली आत्महत्या करने गयी। वहां यह मायावी नीच राक्षस आकर मुझसे प्रेम करने को कहने लगा। जब मैंने मना किया, तो मुझे पकड़कर उड़ा ले चला। अब वह पहाड़ पर मरा पड़ा है। यह कैसा संयोग और सौभाग्य है कि आप मुझे यहां सकुशल मिल गये।

'मैं उसे नाव पर सवार करके दायलिप्त पहुंचा। वहां वृद्ध तुंगधन्वा व उनकी पत्नी अनशन करके प्राण त्यागने को तैयार थे। सारी प्रजा रो रही थी। हम दोनों को देखकर सब प्रसन्न हुए। मेरा कंदुकावती से और कोशदास का चंद्रसेना से विवाह हो गया। भीमधन्वा मेरे अधीन हो गया। अब आपकी सेवा में उपस्थित हूं।'

अब राजवाहन ने मुस्कराकर मंत्रगुप्त की ओर देखा। वह ओष्ठ्यवर्णहीन वर्णों में, (चूंकि उसकी प्रिया ने उसके होठों पर दंतक्षत कर दिया था) अपनी कहानी सुनाने लगा।

०००

'आपकी खोज करता हुआ, मैं कलिंग देश की ओर निकल गया। वहां रात होने पर श्मशानभूमि के निकट सो गया। कड़ी सर्दी वाली आधी रात को मैंने किसी को दुख से चिल्लाते सुना। कुछ दूर जाकर देखा, एक सिद्ध हवन करता हुआ, एक किंकर को आज्ञा दे रहा था, 'जा! कलिंग के राजा कर्दनक की पुत्री कनकलेखा को उसके रनिवास से यहां ले आ।' किंकर कनकलेखा को लेकर आया, तो सिद्ध ने एक तलवार से उसका गला काटना चाहा। मैंने तुरंत उसके हाथ से उसकी तलवार छीनकर उसके जटाजूट-सिर को काट डाला, और एक पुराने कोटर में उसे डाल दिया।

'उसकी मृत्यु से किंकर को (जो वास्तव में सिद्ध का दास राक्षस था) भी हर्ष हुआ, और कनकलेखा को भी, जिसने कोकिल-स्वर में अपना निवेदन किया, 'आर्य! मैं अपना हृदय आपको हार बैठी हूं। मेरे रनिवास में चलें और मुझे अपनी सेवा का अवसर दें। मेरी सखियां आपकी उपस्थिति का समाचार किसी को न देंगी। आप निःशंक चलें।'

'मैं स्वयं उस सघन जघना मृगनयनी के प्रेम में बंधा था, और उसी में बंधा-बंधा उसके साथ उसके रनिवास में पहुंच गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहां मैंने उसे अपने वक्ष से लगाकर आनंद से समय विताया। यों ही दिन बीतते रहे। एक दिन यह स्तब्धकारी समाचार मिला कि आंध्र देश के राजा जयसिंह ने अपनी नौसेना की सहायता से समुद्र तीर के विहारोद्यान में छुट्टियां मनाते कलिंग-राज, उनकी पुत्री और रानियों को क़ैद कर लिया है। यह सोचकर कि मेरी हृदयेश्वरी कनकलेखा अब जयसिंह की हो जायेगी मैं खाना-पीना भूल गया। मुझे लग रहा था, कनकलेखा के विना मैं विछोह दाह से समाप्त हो जाऊंगा।

'तभी, मेरी भेंट आंध्र देश के एक ब्राह्मण से हुई। उसने बताया कि जयसिंह कलिंग-राज को मारकर कनकलेखा से विवाह करने का इच्छुक है, मगर चूंकि कनक-लेखा को किसी यक्ष ने घेर लिया है, इसलिए वह किसी तांत्रिक, मांत्रिक या सिद्ध की मदद से उस यक्ष को भगाना चाहता है। मुझे एक उपाय सूझा। मैंने कोटर से मृत सिद्ध का जटाजाल निकाला, और उसे सिर पर धारण करके फटे-पुराने वस्त्र पहने। फिर, मार्ग में चमत्कार दिखाता और श्रद्धालुओं पर अपना प्रभाव डालता हुआ, मैं आंध्र प्रदेश पहुंचा। वहां मैंने अपनी चतुराई और ठगी से अपना यश चारों ओर फैला दिया। मेरी ख्याति सुनकर, एक दिन जयसिंह ने मुझे बुला भेजा। वह मेरे द्वारा कनकलेखा को यक्ष से मुक्ति दिलाना चाहता था।

'मैंने एक युक्ति द्वारा उसे जल के अंदर गला घोंटकर मार डाला। फिर जल के बाहर निकलकर मैंने घोषणा की कि यक्ष को मारकर मेरा (राजा जयसिंह) का कायाकल्प हो गया है। सबने मेरी बात पर विश्वास कर लिया, और मैं हाथी पर सवार, राजछत्र लगाये, राज-महल की ओर चला। मैंने दरबार में कहा, 'यक्ष ने अपनी शक्ति से जल को ऐसा सुसंस्कृत कर दिया था कि उसमें प्रवेश करते ही मेरा शरीर कमल-दलों सा सुंदर हो गया।' सारे दरबारी मेरी जय-जयकार करने लगे, जिससे दशों दिशाएं गूंजने लगीं।

'इसके बाद, मैंने कनकलेखा से विवाह किया, और आंध्र देश और कलिंग दोनों राज्यों का नरेश हो गया। जब यहां सेना सहित आंध्रराज की सहायता के लिए आया, तो आपके दर्शनों का सौभाग्य मिला।'

मंत्रगुप्त का अभिवादन कर, राजवाहन ने विश्रुत से कहा, 'अब तुम सुनाओ अपनी कहानी!'

०००

विश्रुत ने कहा—'आपकी खोज में विंध्याटवी में घूमते-घूमते, मैंने करीब आठ वर्ष के एक बालक को एक कुंए के पास देखा। वह बहुत परेशान था। उसने बताया कि कुंए में उसका एक बूढ़ा साथी गिर गया है, और वह उसे बाहर निकालने में असमर्थ है। मैंने वृद्ध को कुंए से निकाला, और उससे उसका तथा बालक का परिचय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूछा। उसने कहा, 'विदर्भ देश में सर्व-गुण संपन्न पुण्यवर्मा नामक राजा थे। उनकी मृत्यु के बाद उन्हीं के समान सर्व-गुणसंपन्न पुत्र अनंतवर्मा गद्दी पर बैठा, पर चूंकि वह अपने पिता के समान सावधान और कड़ा नहीं था, इसलिए उसके दरबारी और उसकी प्रजा उसके 'दंड' का आदर नहीं करते थे। वह अपने पिता के काल के सम्मानित वृद्ध मंत्री की सलाह न मानकर खुशामदी और स्वार्थी दरबारियों की बात मानने लगा। नतीजा यह हुआ कि इन स्वार्थी दरबारियों के चक्कर में आकर वह अपने प्राणों को गंवा बैठा, और उसके राज्य पर उसके शत्रुओं का अधिकार हो गया। यह बालक अनंतवर्मा का पुत्र है, जिसकी रक्षा मैं इसकी माता महादेवी वसुंधरा के आदेश से कर रहा हूं। मैं इसे शत्रुओं से बचाकर उसकी माता के पास पहुंचा देना चाहता हूं। वृद्ध पुरुष का नाम नालीजंघ था। जब उसने बालक के माता-पिता के बारे में बताया, तो मैंने कहा, 'अरे! इस बालक की माता और मेरे पिता, दोनों के नाना एक ही हैं।' और बालक को प्रेम से हृदय से लगाकर मैंने वायदा किया, कि मैं प्रयत्न करके इसे इसके पिता की गद्दी पर आसीन करूंगा।

'उस वृद्ध मंत्री की, जिसकी सलाह अनंतवर्मा नहीं मानता था, सहायता से, और अनेक वेशधारी गुप्तचर बनाकर उनके द्वारा मैंने राज्य के शत्रुओं को नीचा दिखाया। सब राज्य-बाधाओं को उखाड़ फेंका, और उस बालक—भास्करवर्मा—को अपने पिता की गद्दी पर बैठाकर, पुनः आपको खोजने निकल पड़ा। कृतज्ञ भास्करवर्मा और उसकी मां ने मुझे उत्कल के राजा, प्रचंडवर्मा का राज्य दे दिया। तभी अंगराज सिंहवर्मा ने मुझे सहायता के लिए बुलाया, तो आपसे पुनर्मिलन हो गया।'

०००

चंपापुरी में राजवाहन, अपहारवर्मा, उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्र-गुप्त, मंत्रगुप्त और विश्रुत एकत्रित हो गये थे। पाटलिपुत्र में सोमदत्त अपनी भार्या वामलोचना के साथ युवराज-पद पर आसीन था। राजवाहन ने दूत भेजकर उसे भी बुला लिया।

एक दिन ये सब कुमार आपस में प्रेम से बातें कर रहे थे कि कुछ राजसेवक राजा राजहंस का आज्ञापत्र लेकर आये। आज्ञा-पत्र में लिखा था :

'स्वस्ति। श्री पुष्पपुर राजधानी से श्री राजहंस चंपा में निवास कर रहे राज-वाहन और अन्य कुमारों को यह आज्ञापत्र भेजते हैं। त्रिकालज्ञ वामदेव से हमें पता चला था कि राजवाहन के कारण सब कुमार कुछ दिनों तक कष्ट भोगेंगे, और सोलह वर्ष पश्चात् राजवाहन को लेकर वे हमारे पास आयेंगे। मुनि की बात पर विश्वास कर मैंने और रानी वसुमती ने १६ वर्षों तक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा की। अब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रेष्ठता का अनुसरण ही हमारे जीवन का मार्ग है

जमा करना हो

या

अग्रिम लेना हो

अथवा

विदेशी मुद्रा का कोई कार्य हो

शीघ्र सहर्ष सेवा ही

हमारा आदर्श है ।

न्यू बैंक ऑफ इंडिया

[भारत सरकार का एक उपक्रम]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१६ वर्ष बीतने पर, वामदेवजी की सेवा में गये, तो उन्होंने कहा, 'राजन् ! राजवाहन तथा अन्य कुमारों ने दिग्विजय पूरी कर ली है, और अब चंपानगरी में हैं।' मुनि के वचनों को सुनकर हम यह आज्ञा-पत्र भेज रहे हैं। तुरन्त आकर मिलो।'

राजवाहन तथा अन्य कुमारों ने तुरंत जाने का निश्चय किया।

पर लौटने से पूर्व, विजित राज्यों में आत्मीयजनों द्वारा सुरक्षा की व्यवस्था करना और पुराने शत्रु मानसार को हराना आवश्यक था। सभी कुमार अपनी-अपनी पत्नियों के साथ मालव गये, और उज्जयिनी पहुंचकर मानसार की हत्या कर दी। जाते समय, उसकी पुत्री अवंतिसुंदरी को साथ लिया, और बंदीगृह से पुष्पोद्भव को उसके परिवार सहित मुक्त किया। मालव की रक्षा की समुचित व्यवस्था करके, सेना सहित सब कुमार पुष्पपुर आये, जहां राजवाहन को आगे करके सबने राजा राजहंस और देवी वसुमती के चरणों में प्रणाम किया। मुनि वामदेव भी वहां उपस्थित थे। उन्होंने सब कुमारों से कहा, 'अब तुम जाकर अपने-अपने राज्य का न्यायपूर्वक शासन करो। जब मन हो, माता-पिता के चरण छूने आ जाया करो।'

राजवाहन को पुष्पपुर और मालव के सिंहासन पर बैठाकर, और राजा राजहंस को मुनि वामदेव के आश्रम में, उन दोनों की इच्छा से, वानप्रस्थ दिलाकर सब कुमार अपने-अपने राज्य का शासन करने लगे। उनमें आपस में बड़ी एकता थी। जो सुख इंद्रादि देवताओं ने भी न भोगे होंगे, वे उन सबने भोगे।

जड़ और चेतन बनाम वृक्ष और मनुष्य

'तुम चल क्यों नहीं सकते ?' कवि ने पूछा।

वृक्ष ने उत्तर दिया—'मेरे पैर नहीं हैं।'

'ईश्वर ने तुम्हें पैर क्यों नहीं दिये ?'

'अगर मेरे भी पैर होते तो मुझमें और मनुष्य में अंतर ही क्या रहता ?'

'किंतु मनुष्य की चैतन्य शक्ति तो तुमसे अधिक है।'

'वह मुझसे अधिक चैतन्य रहे या न रहे; किंतु मानव जाति में भी तो बहुत से जड़ प्राणी हैं। वे मेरी ही जाति के हैं ! ऐसों को ईश्वर ने अगर पैर न दिये होते; तो वे भी जड़ ही कहलाते।'

'तो क्या, तुम्हारे विचार से वे मनुष्य नहीं हैं ?'

'हां हैं; किंतु चैतन्य नहीं हैं। मनुष्य कहे जाने वाले वे मेरी ही जाति के प्राणी हैं।'

—दिलीपकुमार, पूर्णिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ १५५ का शेषांश)

अचेतन और अवचेतन आत्म की इन समूची गहन, अन्धी, अज्ञात, अराजक अग्नियों का एक सृजनात्मक, सम्पूर्ण साक्षात्कार और अचूक उत्तर है।

अपनी प्रिया के साथ सुरतिलीन अवस्था में, कौन देख पाता है—उसकी उद्दाम निवेदनवती बाहुओं के उत्कंठाकुल मरोड़ों को, उसके गुम्फनाकुल बाहुमूलों, भुजाओं, स्तनों के नानाभंगिम लहजों लहरावों, तनावों और बहावों को। उसके सौ-सौ भंगों में मुड़-मुड़कर निछावर होते कटि-प्रदेश और नितम्बों के बलखावों को; उसके कटाक्षों में उमड़ते सुरा के समन्दरों को, बंकिम मुसकानों से उसकी कपोल-पाली के सरोवरों में पड़ते भंवरों को, उसके वक्षोजों के अपरम्पार उछलते रस-सागरों को, उसके योनि-प्रदेश के उठावों, उभरावों, और गहरावों को। किंचित् अंशों इस सबकी झलकें पाकर भी, समग्रता में, अन्विति में, एक समग्र सम्वादिता में, एक सम्पूर्ण एकात्मता में, एक अनन्तगामी लयात्मकता में हम सृष्टि के इस महान मिलन-संगीत को कहां सुन पाते हैं, भोग पाते हैं, जी पाते हैं। समुद्र में गोता लगाकर भी हम प्यासे ही बाहर निकल आते हैं। हमारी तृष्णातता का अन्त नहीं होता। एक विषण्ण शान्ति और मलिन अवसाद में हम अपने से ही हारकर, जड़ निद्रा में पर्यवसान पा जाते हैं।

खजुराहो में हम नर-नारी की मिलनाकुल देह के इस संगीत को, उसकी असीमगामी सुरावलियों में समग्र रूप से आस्वादित करते हैं। यहां देह का वह भोग-वैभव, दृश्य-सौन्दर्य बनकर अनन्त हो उठा है। यहां काम ही स्वयम् अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचकर मोक्ष हो गया है। यहां चिर अतृप्त, खण्डित काम, अनायास ही पूर्ण तृप्तिदायक, अखण्ड और अशेष काम हो उठा है। यहां रति के बाद का अवसाद नहीं, पूर्णकाम सुरति का उन्मुक्त आह्लाद है। इसी से कहना चाहता हूं कि खजुराहो या इसी प्रकार के कामकेलि-शिल्पित भारत के अन्य देव-मन्दिरों को देखने पर स्पष्ट प्रतीयमान होता है कि यहां देह और आत्मा का चिरकालीन विरोध विसर्जित हुआ है। काम का यहां विरोध, निषेध, वर्जन नहीं: उसका नकारात्मक नहीं, किन्तु विधायक स्वरूप शिल्पकला में साक्षात्कृत हुआ है। यहां काम ही अपनी परिपूर्ण गतिमत्ता में पहुंचकर, पूर्णकाम, महाकाम, अनन्त काम हो उठा है। काम की समग्र सर्वांगीण लीला, एक ही अविभाज्य निमिष में यहां कामेश्वर के भीतर से पल-पल प्रसारित होती हुई, सहसा उन्हीं के भीतर पल-पल अपसारित होती दिखायी पड़ती है।

इन भूरे-गुलाबी पाहनों में उत्कीर्णित मदनाकुल देह की एक-एक भंगिमा, अवयव-रेखा, भाव-संवेदना, एक-एक चेष्टा और समग्र 'कण्टूर', अत्यन्त जीवन्त,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवाही, तरल, चंचल और सतत गतिमान है। यह सब देखकर ऐसी स्पष्ट प्रतीति होती है कि जैसे अगति और जड़त्व के कठोरतम प्रतीक पत्थर में शाश्वत जीवन की निरन्तर गतिमत्ता, प्रवाहिता और लयात्मकता को ज्वलन्त शिल्पित करके, यहां मानव शिल्पी ने जड़ पर चेतन की अव्याबाध विजय को उद्घोषित किया है।

ऐसा लग रहा है, जैसे भगवती महाशक्ति ने मेरे जीवन में अब अधोमुखी काम-पर्व को समाप्त कर दिया है। वे मां अब मुझे देह के खण्डित काम से, आत्मा के अखण्ड और ऊर्ध्वमुखी काम में उन्नीत किया चाहती हैं। वे मुझे अपनी ही आत्मा के स्वाधीन अन्तःपुर में नित्य विराजमान, एकान्त रूप से अपनी प्रिया के साथ चिरन्तन मिलन और अविरल मैथुन में प्रतिष्ठित किया चाहती हैं। इससे पहले अपने जीवन के कामपर्व के अन्तिम भाग में, जो कामाध्यात्मिक किस्म की कविताओं का एक सिलसिला चला था, उसकी अपने जीवन की इस नयी भूमिका में कैसे पूर्णाहुति की जाये, इसी का एक माकूल समाधान मैं कई दिनों से खोज रहा था। यों तो मेरी सृजन-चेतना पहले ही से इस क़दर अतिक्रान्तिनी है कि जो कामिक काव्यमाला मैं लिख रहा था, वह अनायास ही महज़ कामिक न हो कर कामाध्यात्मिक थी। यानी काम और पराकाम की द्वाभा अपनी चेतना में मूलगत रूप से ले कर ही मेरे कवि का जन्म हुआ है।

फिर भी भगवती की कृपा का जो यह नितान्त हाल का पर्व चल रहा है और यहां जो उसका नया विधान मेरे जीवन के लिए खुल रहा है, उसके सन्दर्भ में मैं अपनी कामाध्यात्मिक कविता को भी निरी मानसिक चेतना से उच्चतर, किसी उपरिमानसिक या अतिमानसिक चेतना में उन्नीत पाना चाहता हूं। भगवती चितिशक्ति की कृपा तो इस दिशा में समग्र रूप से मेरे भीतर फिलहाल क्रियाशील है ही। पर उसी कृपा-तले मैं अप्रतिम कामतीर्थ खजुराहो में, भगवान् कन्दर्पेश्वर के श्रीचरणों में, काम और पराकाम के बीच की निगूढ़ रहस्य से आवरित खाईं का साक्षात्कार पाना चाहता था। वह खाईं जहां भागवत चेतना में विलीयमान हो जाती है, और जहां हठात् सारे विरोधों और द्वन्द्वों का विसर्जन और समाहार आपोआप हो जाता है, रसेश्वरी चितिमां की उस मधुमती भूमिका में विहार करना चाहता था। और उसी नव साक्षात्कार और नयी दृष्टि के प्रकाश में मैं अपनी कामाध्यात्मिक काव्यमाला को उत्क्रान्त किया चाहता था। खजुराहो आने के मेरे संकल्प के पीछे यही अन्तःप्रेरणा काम कर रही थी।

. . . कन्दर्पेश्वर मन्दिर के चबूतरे पर पहुंचने से पहले मैं लक्ष्मण-मन्दिर की परिक्रमा में यहां के कामिक-शिल्प का समूचा परिचय प्राप्त कर चुका था। कन्दर्पेश्वर की परिक्रमा में घूमकर देखते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुए मदन की आक्रान्ति बड़ी प्रबलता से रक्त में अनुभव होने लगी। गत कई महीनों से इस भाव की ओर से जो एक निर्वेद या निरासक्ति-सी मन में समा गयी थी, उसको बहाता हुआ, एक ज़बरदस्त काम का वेग शिराओं में उमड़ने लगा। पहले उसके प्रति एक निषेध का-सा भाव मन में आया: यह दिशा अब मेरे लिए वर्जित है: मेरी गति अब ऊपर की है, नीचे नहीं उतरना है। फौरन ही भीतर बोध हुआ: ऊपर की ओर गति मेरे किये नहीं हुई है, और अब रक्त में यह जो हिल्लोल नीचे की ओर धंस रहा है, वह भी उसी महाशक्ति की इच्छा का खेल है, जो मुझे यहां लायी है और इस अनिर्वार काम-समुद्र में गोते लगाने को जिसने मुझे यहां ला फेंका है। . . . मैं, समर्पित हो गया उस हिल्लोल के प्रति: मदन की उस प्रचण्ड आक्रान्ति के प्रति। रोम-रोम, शिरा-शिरा, रक्त की बूंद-बूंद में व्याप्त कर वह तूफान देह के तटबन्धों को जैसे चूर-चूर करता चला गया। . . .

मैं और रमेश मुक्त भाव से प्रत्येक शृंगारिक नारी-मुद्रा तथा मदन-केलि के शिल्प की एक-एक कामिक क्रिया का, पूर्ण तीव्रता से आस्वाद लेते हुए, बोलकर उत्कटतापूर्वक उसका पारस्परिक वर्णन करते हुए वहं सब देखने लगे, घूमने लगे। बीच-बीच में अवयवों के 'कण्टूरों', रेखाओं, भंगों, मरोड़ों, भंगिमाओं के सौन्दर्य को भी हम अत्यन्त अनभूति-सम्वेदन के साथ, वर्णनापूर्वक आस्वादित और विवेचित करने लगे। प्रत्येक आकृति, प्रत्येक अवयव, प्रत्येक गुम्फन, आलिंगन, परिरम्भण, चुम्बन, प्रत्येक बाहु, उरोज, उसके उभार-उछाल का, प्रत्येक पकड़ का अलग-अलग और संयुक्त रूप से, हर दर्शन के अपने नितान्त निजी एकान्त में हम उपभोग करने लगे।

. . . सम्पूर्ण और समग्र भाव से, निर्द्वंद्व और अकुण्ठ आत्मार्पण के साथ, मैंने अपनी समस्त सत्ता में काम की उस अव्याहत मस्ती को आत्मसात् किया। केलि के उस महासमुद्र में मैं खोता ही गया, डूबता ही गया। वर्जनाहीन, उद्दाम उन्मुक्तता के साथ अपने दैहिक, प्राणिक, मानसिक, ऐन्द्रिक 'मैं' को उसमें मिटाता और गलाता ही चला गया। . . . और . . . और . . . जाने कब जैसे मैं स्वयम् ही काम का एक स्वयम्भू-रमण समुद्र बन गया। आक्रामक और आक्रान्त से परे, भोक्ता और भोग्य से परे, मैं जैसे एक अव्याबाध भोग का सर्ववाही पारावार बनकर, दिक्काल के तटों तक को अपनी उत्ताल तरंगों, आलोड़नों, गर्जनाओं से चूर-चूर करता चला गया। ... समर्पण ... समर्पण ... समर्पण ...।

. . . परिक्रमा-दर्शन में अपने उस तुमुल कोलाहल को आप ही सुनता, भोगता, झेलता—मैं यकायक मन्दिर की सीढ़ियां चढ़ चला। निज देवालय के बाहर की वेदी के सम्मुख पहुंचते ही, सामने गर्भ-गृह में शून्य में दिखायी पड़ा एकाकी श्वेताभ शिवलिंग। एकमेव-एकेला, लम्ब-गोला-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कार, लिंग, केवल मात्र लिंग। ...

. . . उस पर दृष्टि पड़ते ही, विपल मात्र में, समयातीत रूप से सब कुछ स्तब्ध हो गया। एक अगाध, अपार शान्ति में निमग्न होकर, मैंने अपने को निस्तब्ध और विश्रब्ध पाया। सारी गतियां, आक्रान्तियां, तूफान यहां विराम पा गये। काम का वह उद्दाम और निर्बन्धन समुद्र ही स्वयम् स्तम्भित होकर, उस अन्तर्देवालय में बिराजमान निश्चित शिवलिंग हो गया।...

. . . अविकल्प बोध प्राप्त हुआ कि काम और कामातीत के बीच मूलतः कहीं कोई विरोध, विपर्यय या द्वन्द्व नहीं है। अपनी स्थिति में जो कामातीत कन्दर्पेश्वर है, अपनी गति और विस्तृति में वही काम है। अपनी गति में वे स्रष्टा होते हैं, और अपनी संस्थिति में वे उस सृष्टि के ज्ञाता-द्रष्टा और भोक्ता होते हैं। स्थिति और गति यहां संयुक्तरूप से विराजमान हैं: इस एकमेव लिंग-पुरुष तथा उसकी परिक्रमा में उत्कीर्ण मदन-केलि के रूप में। इसी से खजुराहो मूर्तिमान योग है। विशुद्ध अध्यात्म के क्षेत्र में जो योग मात्र एक अन्तर्भूत परोक्ष आत्म-स्थिति होता है, उसे सौन्दर्य-शिल्पी कलाकार ने यहां मूर्त कर दिया है। योग में वर्जना नहीं होती, क्योंकि उसमें द्वैत और अद्वैत, द्वन्द्व और द्वन्द्वातीत अपने तात्विक और विशुद्ध रूप में संयुक्त भाव से बिराजमान रहते हैं। सृष्टि और मुक्ति, संसार और निर्वाण यहां एककार हैं। एकमेव सत्ता के ही वे दो विभिन्न आयाम हैं, विविधमुखी पहलू हैं।... यहां कन्दर्पेश्वर अपनी ही स्वतन्त्र इच्छा से उत्पन्न काम पर आरूढ़ हैं। हम अपने साधारण जीवन में स्थिति और गति के योग में नहीं जीते: हम केवल गति की तरंग होते हैं, इसी से काम द्वारा हम मुक्त होते हैं, उसे भोगते नहीं हैं। काम का सच्चा भोक्ता अनिवार्यतः काम का स्वामी ही हो सकता है। समीचीन और यथार्थ भोक्ता होते हैं केवल योगीश्वर—कन्दर्पेश्वर शंकर।

इस कामिक शिल्प के दर्शन की प्रक्रिया में, सम्पूर्ण समर्पण द्वारा मैं अनायास ही अपने छद्म भोक्ता-भाव से मुक्त हो चला था। अपने को अधिकाधिक छोड़ता चला गया था। काम के हर प्रबलतर आघात के साथ, अपने भिन्न 'मैं' को अधिकाधिक मिटाता हुआ, मैं स्वयम् उस काम-समुद्र की एक निष्काम तरंग मात्र होकर रह गया था। . . . इसी से कामेश्वर शंकर को सम्मुख पाते ही, निमिष मात्र में मैं उनके भीतर लीन हो गया। मैं स्वयम् कन्दर्पेश्वर होकर, कन्दर्पेश्वर के दर्शन करने लगा। भागवत कृपा तले होने वाला यह अनुभव वचनातीत है। इतना कुछ कहकर भी, क्या मैं उसे पूरा व्यक्त कर सका हूं? नहीं . . . वह सम्भव नहीं।

. . . अगले ही क्षण मैं जाने कैसे प्यार से उमड़ आया। गर्भगृह में जाकर मैंने लिंग के शीर्ष पर माथा ढाल दिया। अपने को अन्तिम रूप से छोड़ दिया, अपनी चिर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काम्या शिवानी की गोद में । . . . आंखें गहरी मुंद गयीं । अनिर्वच शान्ति के अथाह में मैं विसर्जित हो गया । . . .सहसा ही, जैसे एक विजली का-सा झटका अनुभव हुआ । एक फिल्म-सी सामने प्रत्यक्ष खुलने लगी । . . . दिखायी पड़ा—प्रवाही मदन-क्रीड़ा की एक अटूट और अन्तहीन धारा वही जा रही है । नाना कामकेलि-गुम्फित मिथुनों की एक जाज्वल्यमान नदी : अत्यन्त सरल, प्रांजल, स्निग्ध, ऋजु, कोमल अगमगामिनी सरिता—आलिंगनों, चुम्बनों, परिरम्भणों की । कामकेलि का एक दिक्कालवाही समुद्र . . . अविरल, अविराम, अन्तहीन . . .। लहर-लहर में सौ-सौ स्तन : सुगोलतम कलशाकार स्तन : लहर-लहर में परिरम्भणाकुल बाहुएं . . . बाहुओं की अपरम्पार सरणियां, उरोजों और उरुओं की स्निग्ध लहरावलियां। एक विराट् असीम, स्तब्ध महासमुद्र की तरंगों में तरलायित, प्रवाहित, उठ-उठकर विलीन होतीं मदन-लीलाएं : हर लहर के हर भंग में लरजते अंगों के आलोड़न, उरोजों के उत्तोलन ।... अनन्त कोटि मैथुन-विद्ध मिथुनों की मंडलाकार राशियां—असीम में चक्रायमान । . . . मैथुन . . . मैथुन . . . मैथुन . . . अविरल और सघन मैथुन . . . नित्य भोग, अशेष भोग, अपरम्पार मिलन-लीलाओं की कल्पकाम शैयाएं... क्षीर-समुद्र में दोलायमान । . . . सहसा ही 'खटका बन्द' का झटका अनुभव हुआ । और सम्मुख देखा—निश्चल, शान्त निस्तब्ध—वही एकमेव श्वेताभ लिंग । एक परम ज्योतिर्मय सुमेरु, अटल फिर भी अपनी प्रभा में चिर-चिर चंचल और नितनूतन । . . . .

. . . ध्यान की तन्द्रा भंग हुई । वाहर आकर मैं दूर से लिंग को निहारता रहा। एक अपूर्व प्रत्यय में अपने को स्थिरीभूत पाया । पर शिव, सदाशिव भगवान कन्दर्पेश्वर के चरणों में, समयातीत भाव में तत्काल मानो एक पूर्णकाम तृप्ति का अनुभव हुआ । आप्तकाम सुखानुभूति में जैसे समस्त चेतना विराम पा गयी। आज अन्तिम रूप से काम और पराकाम के बीच का विरोध मेरे भीतर विसर्जित हो गया । पशुपतिनाथ ने यहां पशु का तिरस्कार नहीं किया है । उन्होंने अपनी ही देह-स्वरूप इन मन्दिरों की परिक्रमाओं में उसकी पाशव लीला को पराकाष्ठाओं में कृतार्थ करके, उसे अपने महाभाव-सिन्धु में मुक्त कर दिया है। उद्दाम कामिक चेतना से, आज तक जो भगवान् और भगवती के मिलन की कविता मैंने लिखी थी, उसे उनका समर्थन प्राप्त हो गया। उसके आगामी प्रवाह को उन्होंने अपनी मधुमती भूमिका में उन्नीत और उत्क्रान्त कर दिया । स्पष्ट प्रतीयमान हुआ कि आज तक आकाशवाही उन्मादना से जो मैंने दुर्दान्त महावासना को अपनी कविता में मुक्तभाव से गाया था, वह व्यर्थ या अधोगामिनी नहीं थी । वह निश्चय ही अतिक्रान्त और ऊर्ध्वमुखी महाकाम की कविता थी । जो साध लेकर मैं अपने प्यारे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शंकर के पास आया था, उसे उन्होंने अपनी शाम्भवी कृपा से परिपूर्ण कर दिया। मेरी आगामी कविता का पथ परात्पर शिव की परब्राह्मी शिवानी के ज्योतिर्मय स्तन-मण्डल से जगमगा उठा। ..... इसके उपरांत सूर्य-मंदिर तथा अन्य छोटे-बड़े और भी सब मन्दिर देखे। वैसे ही मैथुन-शिल्प की पुनरावृत्तियां नवनूतन सौन्दर्य के साथ उन सबमें भी उत्कीर्ण हुई हैं। मूल प्रतीक चिह्न के इस कदर दोहरावों के बावजूद, कहीं भी बोरियत महसूस नहीं होती। मैथुन यहां क्षणिक भोग नहीं, शाश्वत और दिव्य योग बन गया है...

दर्शन के समापन में, कुछ देर को मैं अकेला सूर्य-मन्दिर के पीछे के प्रांगण में विचरता रहा। ..... दूर पर बासन्ती आकाश की पारदर्शी नीलिमा में, बोगनवेलिया की विपुल गुलाबी आभा स्तब्ध दिखाई पड़ी। उस अबोले नीरव की खामोशी में, सारा अवकाश छुवन से भर उठा था। हवा की बारीक लहर में सहसा ही गुलाबी फूल कुछ बोले—मरमराये। ...

फिर सूर्य-मन्दिर के सामने ही झाड़ तले बैठकर हम दोनों ने भोजन-प्रसाद पाया। वहीं कुछ दूर पर धरती में आधे गड़े मटकों का शीतल जल हम पीते ही चले गये। भोजन-पान में भी अपूर्व तृप्ति का अनुभव हुआ। बाहर निकलकर दूकानों में ढेर सारी मिथुन-मूर्तियों की मिट्टी की अनुकृतियां देखीं। पास ही के एक कारखाने में वे बनती हैं। सन्दर्भ में उच्छिन्न, ये काम-क्रीड़ा की मूर्तियां, कारखाने के सांचे में हज़ारों की संख्या में ढलकर, सस्ते दामों पर बिकती हैं। साधारण जन के लिए वे तब अपनी यौन लालसाओं को उभारने या सहलाने का साधन मात्र ही रहती हैं। एक समग्र रचना में से उसके अंग विशेष को तोड़ लेने पर, उसका समूचा भाव और अभिप्राय कितना खण्डित और विकृत हो जाता है। .. प्रेम से चाय-ताम्बल का सेवन कर, हम दोनों सखा खजुराहो का म्यूज़ियम देखने गये। जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव विभागों में विभाजित इस पुरातत्वालय में खजुराहो की कुछ अत्यन्त विलक्षण और प्रतिनिधि शिल्प-कृतियां सुरक्षित हैं। उन्हें देखते हुए समन्वित भागवत् चेतना की एक अद्भुत अनुभूति से मन-प्राण आप्लावित हो उठे।

... चार बजे वाली अन्तिम बस के प्रयाण का भोंपू जब बज उठा, तभी हमारी तन्मयता भंग हो सकी। दौड़कर आखिर हमने उसे पकड़ ही तो लिया। लौटते हुए फिर अपराह्न की केसरिया धूप से छाये तालाब पर निगाह दौड़ गयी। उसके घाटों में कहीं मन की कोई सुन्दरी जैसे पीछे छूट गयी! और फिर जैसे यकायक वह अपने ही भीतर झांकती दिखायी पड़ी। ... वियोग नहीं, योग की सृष्टि ही मेरे कवि की इस प्रथम लोक-यात्रा का लक्ष्य है।

इस लौटती यात्रा में रमेश के और मेरे बीच, अनायास मानो कृष्णार्जुन की अटूट मैत्री का भाव प्रकट हो उठा। वह आनन्द-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विभोर होकर मुझे बार-बार वासुदेव कहकर पुकार रहा था, मैं उसे 'हे पार्थ . . .' कहकर सम्बोधित कर रहा था। यह मात्र पिछली आगमन-यात्रा से भी अधिक सुन्दर सुखद, स्निग्ध, सम्पूरित लग रही थी। हम दोनों के बीच एक विलक्षण एकात्मता और भाव-संगति निर्मित हो गयी थी। बातों में दिमागी तनाव नहीं, हार्दिक घुलाव था—हम परस्पर एक गहिर से गहिरतर आन्तरिक लयबद्धता में एकतान भाव से स्वरायित हो रहे थे। सूर्य-मन्दिर के सामने एक दो-फनी टेढ़ी-मेढ़ी जंगली लकड़ी मिल गयी थी। उसे ही मैं त्रिशूल के वजन पर द्विशूल की तरह धारण किये ठीक महेश्वर शिव-शंकर के भाव में तल्लीन यात्रा कर रहा था।

. . . पन्ना के बस-अड्डे पर जब उतरे, तो सामने की एक दूकान में गरमा-गरम कचौड़ी-पकौड़ी उतर रही थीं। सो हम दोनों ही भोजन-प्रेमी बान्धव लपककर उसमें जा बैठे। खूब तृप्तिपूर्वक गुलाब-जामुन तथा ताज़ा नमकीनों के साथ चाय पान हुआ। फिर रमेश के एक मनपसन्द पानवाले के यहां केसरी ज़र्दे वाली गिलौरियां जमाकर घर की ओर धावित हुए। घर पर ज्योत्स्नाजी (कहानीकार ज्योत्स्ना मिलन) अपनी किसी सुन्दर मेहमान का सत्कार में व्यस्त थीं। यह हम दोनों कवि-सखाओं के बस का नहीं था कि उस रसोत्सव में शरीक न हों।

अबेर रात गये भोजन हुआ। उसके बाद बातचीत सम्भव न हो सकी। . . एक गहरे तन्द्रिल मौन में मैं डूबता चला गया। शैया में लेटते ही निविड़ ध्यान में निमग्न हो गया : चेतना स्तब्ध, एकाग्र हो गयी। ध्यान-तन्द्रा में सहसा ही पूर्णाकार विष्णु और श्वेत लिंगाधिष्ठित महाकाल शंकर के दर्शन हुए। चराचर-व्यापी समस्त काल की तरंगों को अपने में समाये, स्वयम् केवलकाम भगवान् ने दर्शन दिये। काल-लीलाओं का दर्शन अनावश्यक हो गया। आत्मभान होते ही कवि-योगीश्वर एकनाथ की ये पंक्तियां मन में स्फुरित हो उठीं :

'जो देखि लिया देखणें सरे : जो चाखिलिया चाखणें पुरे।
जय चेनि अंग-स्पर्शे : देह-देहीपणें नासे॥

. . . जिसे देख लेने पर देखने का अन्त हो जाता है। जिसे चख लेने पर चखना पूरा हो जाता है। जिसके अंग-स्पर्श से देह-देही भाव समाप्त हो जाता है। . . .

□

रेल में बैठे दो मुसाफिरों में लड़ाई हो रही थी। एक खिड़की खोल देता था और कहता था, 'गर्मी लग रही है, इसलिए खिड़की खुली रहने दो।' दूसरा खिड़की बंद कर देता और कहता, 'सर्दी लग रही है, इसलिए खिड़की बंद रहने दो।' जब लड़ते-लड़ते काफी देर हो गयी तो तीसरे मुसाफिर ने कहा, 'क्यों लड़ते हो, भाई! कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि खिड़की में सिर्फ फ्रेम ही है, कांच नहीं।'

—कमल सोगानी

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ १६७ का शेषांश)

नहीं जानते। ठीक है, यह भगतण आपके लिए रियासत की रानी हो सकती है, हमारे लिए नहीं है। हमारी इज्ज़त पर वह उंगली नहीं उठा सकती. . .'

पूरे दरबार में उस वीर पुंगव के शब्द कटारी की तेज़धार के समान महाराज को चीर गये। सभी ठाकुर-सरदार थर्रा उठे की चांदसिंह का सिर क़लम होकर ही अब रहेगा शायद, परंतु उस बबर शेर की आंखों से आग का दरिया बह रहा था। भाले की तरह तना शरीर और आंतरिक उद्वेलन से कांपते ओंठ। महाराज इस व्यवहार से चकित और अपमानित से हो उठे. . . .

'रावराजा! क्या तुम रसकपूर से नफ़रत करते हो? हमारी आज्ञा के उल्लंघन की सज़ा जानते हो? रसकपूर के लिए जिन शब्दों का प्रयोग कर रहे हो, इसका नतीजा नज़र में है? उससे बैर करके आप हमको नाराज़ कर रहे हैं, पता है?'

बिजली फिर कड़क उठी—'सब कुछ समझता हूं—यह भी जानता हूं, अन्नदाता, कि मेरी किसी से दुश्मनी नहीं है, न आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने का मेरा कोई उद्देश्य है। आप हुक्म दें, अभी, इसी समय आपके चरणों में सिर काटकर रख दूं। लेकिन, महाराज, सोचिये ज़रा, जिसका खान्दान...जो खुद कल तक रईसों, सेठों, उमरावों, सरदारों और ठाकुरों का नाच-गाकर, कांचमहल में महफिलें सजाकर दिल बहलाती रही हो, उसकी देहरी पर फरियाद में ठाकुर का सिर क्यों झुकेगा? मैं आपका वफादार हूं, लेकिन किसी ऐरी-गैरी औरत का नहीं। मौत की सज़ा आप दे सकते हैं, मुझे मंजूर है। हम खून की एक-एक बूंद दे सकते हैं, लेकिन पगड़ी के पेच नहीं। मैं भरे दरबार में यह भी प्रण करता हूं कि उन सभी राजसी समारोहों में, होली-दिवाली की महफिलों में और आपके जन्मदिन के नज़रानों में कभी सम्मिलित होने नहीं आऊंगा, उन सभी अवसरों का त्याग करता हूं, जिनमें रसकपूर रथ पर, हाथी पर और सिंहासन पर आपके साथ होगी...'

दरबार में भयानक सन्नाटा छा गया.... देखें, क्या दण्ड मिलता है अब रावराजा को! महाराज का चेहरा स्याह पड़ गया था। वातावरण में भविष्य के किसी गूढ़ षड्यंत्र की गंध उन्हें मिल रही थी। तभी राजाज्ञा घोषित हुई—रावराजा पर बीस लाख का जुर्माना हुआ, जिसे अविलंब जमा कराना था।

इन्हीं सारे आक्रोशों में, पटरानी-रानियों और सामंतों के मज़बूत जाल में अब रसकपूर फंस गयी थी...भीतर-भीतर ही भीतर कितना लावा दहक रहा है, वह जान तक नहीं पायी थी।

०००

लंबी लड़ाई की थकान ... शिकस्त के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाद मानसिक क्लेश लिए जब महाराजा अपनी रियासत की ओर लौटे, तब उनका स्वागत करने के लिए भव्य तैयारियां होने लगीं। दरबारियों में उल्लास छा गया। रंगमहलों में केवड़ा-हिना बरसने लगा। सभी कटिबद्ध थे कि इस बार रसकपूर को बिलकुल ही जलाकर खाक कर देना है। राजा के कानों में गर्म शीशे की पिघलती धारें बहाने के लिए शिकायतों के अंबार इकट्ठे कर लिये थे। राजगद्दी की मर्यादा को और महाराज के गौरव को बचाने के लिए होड़ लग गयी थी।

महाराज के पधारते ही महफिलों और समारोहों का दौर शुरू हो गया। ठाकुरों, सरदारों, सेठ-साहूकारों और निजी रिश्तेदारों ने नज़रानों के ढेर लगा दिये। रानियों के इतने रास-रंग ... सीमाएं उलांघती मौज-मस्तियां, लेकिन रसकपूर का शृंगार अनदेखा क्यों? वह पागल-सी हो उठी ... उसका मन पीपल के पत्ते-सा कांप उठा ... उसका मस्तिष्क भयानक तूफान की आशंका से घबरा उठा ... नंगी तलवारों जैसे प्रश्न घायल कर उठे ... महाराज को आये इतने दिन हो गये, लेकिन उससे मिलने क्यों नहीं आये? ये सारी महफिलों के दिलकश जश्न तो यहीं होने थे।

फिर? वे तो एक पल भी दूरी बर्दाश्त नहीं करते थे। अब? न कोई संदेश, न बुलाहट ... कारण? उसने कितने-कितने संदेश विश्वासपात्रों के हाथों भिजवाये थे, कोई उत्तर, महाराजा की ओर से कोई समाचार उसे क्यों नहीं मिला? अब सब स्पष्ट होता जा रहा था। वह तो सोच रही थी कि उनके पीछे मिले दर्दों को, उपेक्षाओं-अवहेलनाओं को महाराज के सामने बयान करेगी, उनके अनुराग की शीतल छुअन से मन की सारी पीड़ा दूर करेगी। इतने दिनों के विरह की उदासी को उनकी निर्मल-मुग्ध हंसी से धो डालेगी...लेकिन? फूलों-रत्नों का शृंगार टीसता रह गया। क्या दुश्मनों की कपटलीला काम कर गयी? वरना मितवा की ओर से इतनी भीषण अवहेलना क्यों होती?

दूसरे दिन पता चला कि संदेश ले जाने और लानेवाले हरकारों को मौत के घाट उतार दिया गया। ओफ्फ! शीशमहल, घुंघरू, सितार-सारंगी, रेशमी झालरों वाले पर्दे सब उसी की तरह रंजो-गम में डूबकर परित्यक्त बने सिसक उठे... दृष्टि के कजरारे खंजन घायल और ओठों के महकते गुलाब पीले हो गये ... इन्हीं झंझावातों के बीच उसका मनभावन पर्व होली आया ... उसे आशा बंधी कि शायद महाराज इस मौके पर याद करें? पारंपरिक दस्तूरों से गठी हुई राजघराने की प्रसिद्ध होली—महीनों पहले लाल-सुर्ख दरियों-गलीचों पर खास हाथियों-घोड़ों को चलने का अभ्यास कराया जाता था, ताकि हाथी-घोड़े सड़क पर बिछी मनों गुलाल को देखकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भड़कें नहीं। तब महाराज की पूरी शान-शौकत के साथ हाथी की सवारी निकलती थी। रसकसूर साथ बैठती। रंगीन चपड़ियों की गेंदों में रंग भरा हुआ... गुलाल के पोटे होते और प्रजा-राजा की होली पाशी होती ... सड़कें, हवेलियां हरे, पीले और लाल अबीर में लिपटकर दुल्हन बन जातीं ...

रसकपूर ने सुबह से ही राजा की पसंद का शृंगार किया और प्रतीक्षा में आंखें बिछा दीं। शायद महाराज बुला भी लेते, लेकिन रंगमहल और दरबारी सतर्क थे। पहले ही राजा के कानों में शिकायतें और दिल-दिमाग में संदेहों के बीज घोल दिये थे। दूणी के रावराजा की घृणा, उनका अपमान याद आया... सामंतों के स्वरों में एक दृढ़ निश्चय की चेतावनी हुंकार उठी... एक पक्का निर्णय ... नहीं, अब नहीं... तुमुलनाद में समवेत स्वर गरज उठे—या तो महाराजा राज-गद्दी छोड़ें, अन्यथा इस नर्तकी को त्यागें —यह विश्वासघातिनी है, राज्य और महाराज का अनिष्ट चाहती है। एक ओर हम सब, राज-वैभव और अंत:पुर की शालीन मर्यादा और दूसरी ओर मामूली गायिका ! अब राजा साहब, जिसे चाहें अन्नदाता चुनें, जिसे चाहें छोड़ दें ..

आखिर प्रजा और सत्ता के जन-आक्रोश की तथा ज़नानी ड्योढ़ियों के विद्रोही स्वरों की विजय हुई। भयानक षड्यंत्र सफल हुआ। रसकपूर के महलों के दीप बुझ गये। मन परेवा क्षत-विक्षत होकर आकाश से गिरकर जलती ज़मीन पर छट-पटा उठा। वहशी सन्नाटे के नुकीले नाखूनों ने उसे जकड़ लिया। सूनी अमावसी दीवारों से टकरा-टकराकर वह मूर्च्छित हो गयी। कौन था अब उसे संभालने वाला ! चंद्र-मणि माथे से खिसककर धूल में जा पड़ी... कृष्णचूड़ा, सुहागपट्टी और अनवट-बिछुए असंख्य जिह्वाओं से उसे डसने लगे...

दूसरे दिन का मनहूस सूरज महाराज का हुक्म लेकर आया कि सुदर्शनगढ़ (नाहरगढ़) के किले में रसकपूर को कैद कर दिया जाये। सुनते ही वह चीत्कार कर उठी। आंखों में श्मशान और कानों में काली आंधी ! शरीर का खून सर्द हो गया ... चंद्रमहल की मलका धूल-धूसरित हो गयी। यहां ठहरने के कुछ पल ही शेष . . .पहरेदार और खवास-मुसाहिब जल्दी मचा रहे थे ... जर्कवर्क पोशाकें.... जड़ाऊ आभूषण उतार लिये गये .... बड़े उपहासपूर्ण और अपमानजनित वातावरण में उसके भाग्य ने उसे मैले गूदड़ों में लपेटकर गर्द-कांटों में पटक दिया ! नाचीज़ गुलाम-बांदियां उसकी खिल्ली उड़ाने लगीं ... पुरुषों की आंखों में, व्यवहारों में अभद्रता झांकने लगी .... लज्जाहीन संबोधन उड़ने लगे ... राजा की आंखों की अंगूरी नूरे-आब उतरी हुई पत्थर की ठीकरी हो गयी... वह अनु-रागिनी, समर्पिता निरपराध नारी महाराज की एक झलक पाने के लिए अकुला उठी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेकिन वहां था कौन अपना ? उसके सारे सगे-संबंधी, जो अच्छे पदों पर लगे हुए थे, वे या तो मार डाले गये, या भगा दिये गये। वह मुरझाई लता-सी चंद्रमहल को आखिरी सलाम करके चल पड़ी... जालीदार गोखों में बैठी रानियों के चेहरों पर शरद-चांदनी छिटक उठी... आलीशान महल से वह दूध में गिरी मक्खी-सी निकाल-कर फेंक दी गयी !

अचानक उसे अपने बचपन के एक गरीब सखा के शब्द याद हो आये, जब वह स्वर्णपालकी में बैठकर आमेर महलों की ओर राजा के प्यार में सराबोर हुई चलने लगी थी, तब कहा था—'ठीक है, बन्नो ! अब तुम राजमहलों की वीथियों में राजा की प्रिया बनने जा रही हो। मैं निर्धन भला तुम्हें क्या दे पाता ? लेकिन, रसकपूर ! इन नक्काशीदार दीवारों के बड़े खुरदरे-पथराये दिल होते हैं . . . शीशमहल के लाखों दर्पणों में ज़हरीले साये लपलपाते हैं। तक़दीर का सितारा चुटकी बजाते ही अंधे-अंधेरे कुओं में डूब जाता है। इन झूठे विलासों पर, स्वार्थी—कच्ची मनुहारों पर यकीन मत करना, वरना जब भयानक हकीकत से तुम्हें दो-चार होना पड़ेगा, तब देखोगी कि तुम्हारी आवाज़ और छाया तक भी धोखा दे जायेगी...' सुनकर तब वह कितना हंसी थी, परंतु अब उसका कहा हुआ एक-एक शब्द याद आ रहा था—सचमुच ही प्यार के नग्मे कितने बेदर्द निकले !

उसका मन गर्म फफोलों से भर गया, आहें जलती हुई सलाखों में बदल गयीं। रह गयी उसके हाथों में अलबेले सपनों की मुर्दा राख ! दो घड़ी बाद उसने सुना कि उसके बचपन के उस गरीब साथी का भी क़त्ल कर दिया गया। जिसे वर्षों से देखा तक नहीं था, वह भी तलवार की धार पर रेत दिया... यह भी उसने सुना की राजा के कान भरे गये हैं कि 'अन्न-दाता ! यह नर्तकी इतनी चरित्रहीना और विश्वासघातिनी निकली है कि इधर तो आपको अपने मोह-जाल में अटकाये रही और हर रोज़ अपने इस पुराने मितवा से मिलती रही ...'—उसने सुनकर कानों पर हाथ रख लिया, ओफ्फ ! कितना घिनौना झूठ !

महलों से निकालकर पहले उसे एक गंदी कोठरी में लाकर पटक दिया था, एक दिन के लिए। वहां से अब उसकी अंतिम विदाई का समय आ गया था। एक मुसाहिब उसे वहां से निकालकर तीन दिन की मैली-कुचैली पोशाक में पैदल ही आतिश तक लाया। वहां सग्गड़ (बैलगाड़ी) खड़ा था, जिसमें न कुछ बिछा हुआ था, न कोई पर्दा था। एक बार घूमकर उसने दर्दीली नज़रों से चंद्रमहल को देखा, जहां मन का सावन हर दिन हरियाया था... जहां रुपहली चांदनी नित नयी दुल्हन की तरह सजती रही थी... हर शाम एक दीवानी ...फागुनी ऋतु पांवों में सरगम बनी लिपटी रही...

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने सरकार की सांसों की हवा पाकर मधुबनी हुई खिलती रही... महाराज की गुलमुहरी छाया में मुदित होकर बहकती रही.... कितने सतरंगी अवगुंठन, कितनी मादक मनुहारें, रूप के कितने लजीले अंदाज़, पायलों के कितने नशीले स्वर, कितने उन्मादी क्षणों की दास्तानें ... नाजुक स्पर्श... हंसती-खनकती कल्पनाओं के छंद-काव्य... जाने कितने नेत्र-संगीत ...ललछौंहे अधरों पर कितने-कितने सुरमई अंतरंग संबोधन ! जाने क्या-क्या ! गवाह रहना शीशमहल के एक-एक दर्पण। आज रसकपूर तुमसे विदा ले रही है। आंखों की झील में कंपन हुआ ... छींटे पलकें न भिगो दें, इससे पहले ही वह सिर झुकाकर सग्गड़ में बैठ गयी। कई अहलकार, सेवक, मुसाहिब और चालीस घुड़सवारों के साथ उसका सग्गड़ जंगल-पहाड़ियों की ओर चल पड़ा। पहिये से लगा हुआ एक मुसाहिब चल रहा था। किसी कारण सग्गड़ थोड़ा रुका। रसकपूर ने अपनी इस बर्बादी का कारण जब उससे जानना चाहा, तब वह धीरे से बोला –

'बाईजी ! महाराज को आपके गंदे इरादों का और कुटिल षड्यंत्रों का पता लग गया है कि किस तरह कछवाहों की यह पूरी रियासत हड़पने की आपकी योजना रही है। आपने ऐसा गिरोह भी तैयार किया कि या तो महाराज को मार डाला जाये, या क़ैद कर लिया जाये और फिर आप रियासत को मुट्ठी में कर लें। आपने जंत्र-मंत्र कराया है हमारे राजा पर, जादू-टोने करके दरबार और महलों से उनका मुंह फिरवाया। उन्हें बहका-फुसलाकर खज़ाना-ज़ेवर लूटा है। सारी रियासत आपने आर्थिक रूप से खोखली कर दी है। इधर प्यार-प्रीत के स्वांग रचाती रहीं, उधर तुम्हारी चरित्रहीनता के किस्से महाराज पर अब जाकर उजागर हुए हैं। एक नाटक किया है क्या तुमने ? रानियों को मिटाने पर तुल गयीं, पटरानी साहिबा के लिए अपमानजनक शब्द बोलती रहीं। जाने और भी क्या-क्या शिकायतें हैं उनके पास... ! अब किये का भुगतो... आखिरकार रहीं तो बाईजी ही न ? ज़मीन पर पड़ा ठीकरा क्या कभी हीरा बन सकता है ?' कहकर बड़ी कुटिलता से वह मुस्कराया।

रसकपूर तो जैसे काठ हो गयी थी। इतने ओछे और झूठे इल्ज़ाम ? वह तो जी-जान से जिन चरणों की पुजारिन बनी रही, उसी चंदन-शरण में इतने विषधर ! उसकी श्रद्धा, उसके प्रेम-विश्वास पर कितने भीषण अपराधों की आरोपित गंदी शृंखलाएं ! उसने तो महाराज की तसवीर को अपनी कंवारी गंध के मण्डप में स्थापित किया था ... अनछुई भावनाओं की सप्तपदी पर मन से स्वीकृत भांवरें ली थीं... उनके अनुराग की लाल चूनर ओढ़ उनके कमनीय स्पर्शों के आभूषण सजाये थे ... याद आया कि एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दर्द से तुरन्त आराम

नोवा

पेन बाम

अनेक लाभदायक औषधियों
का सुयोग्य मिश्रण याने
नोवा पेन बाम

दि नोवा कंपनी

भांडुप, बंबई–४०० ०७८

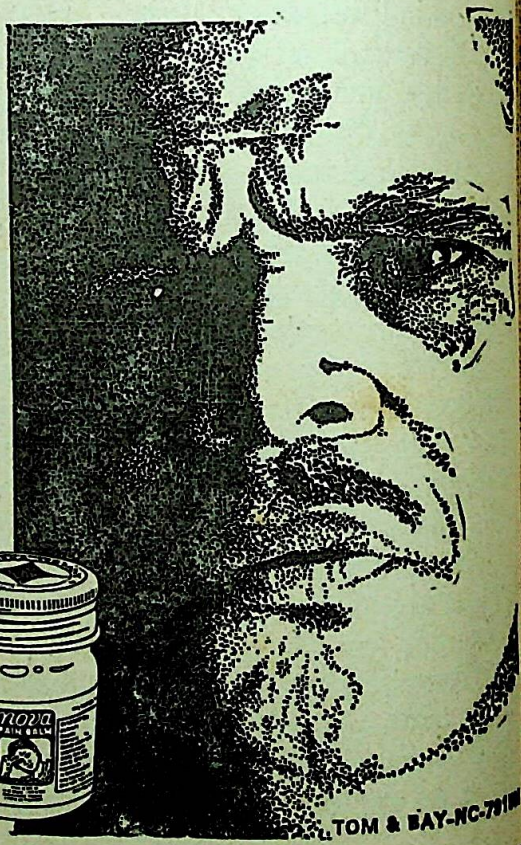

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिन. हंसी-हंसी में वह कह बैठी थी कि ऊंची पहाड़ी पर सुदर्शनगढ़ कितना सुंदर लगता है! उन्होंने तुरंत कहा था कि तुम्हें सचमुच यह शानदार गढ़ पसंद है, तो हम उसे किसी खुशी के मौके पर दे देंगे। और सचमुच ही इस अभागिन को उन्होंने सुदर्शनगढ़ में जाने का प्रबंध कर ही दिया, न! कैद की बेड़ियों के साथ ... कल एक बूढ़ी दासी बता रही थी कि इस नाहरगढ़ का उपयोग बागियों और कैदियों के लिए होता है। जाने कितनी मृत प्रेतात्माएं इसमें भटकती रहती हैं, कितने नर-कंकाल यहां दफन हैं, कितने कटे सिरों को, फांसी पर झूलते शरीरों को देखने की गवाह हैं इसकी विशाल प्राचीरें? हर समय इसके भारी द्वार मज़बूत तालों से आबद्ध रहते हैं। खुली तलवारों-भालों के कड़े पहरे, ... जब किसी बदनसीब की मौत यहां उसे खींचकर लाती है, तभी चहल-पहल होती है, वरना इस मौत-महल में प्रेत-पिण्ड-सा मुर्दा सन्नाटा छाया रहता है... सुनकर उसका सर्वांग थर्रा उठा था....

जिस रसकपूर के नाम से पूरी स्टेट रश्क करती थी, कल तक जिसके नाम का सिक्का चलता था, पदों की पुख्तई और बर्खास्तगी जिसके हुक्म पर निर्भर थी, वही रानी से भिखारिन बनी काले चीथड़ों में लिपटी विक्षिप्त-सी खड़ी थी। जो मुसाहिब, नायब-दारोगा, सदर पहरेदार-हरकारे उसको नज़राने देकर जुहार में झुकते थे, वही उसकी छाया को भी नफ़रत के भाव देख रहे थे ... हंसी उड़ा रहे थे। सदर दरवाज़े पर थाप पड़ते ही किलेदार ने फाटक खोला, उसे अलग ले जाकर कुछ कहा गया। लौटकर बड़ी अभद्रता से उसने रसकपूर को भीतर ढकेल दिया ...

आलीशान, प्रलोभनीय, उच्च स्तर की प्रस्तरकला का खूबसूरत नमूना नाहरगढ़ ... आसमान छूती जिसकी कलात्मक बुर्जियां ... इसी मनोरम नक्काशी के नीचे गहरे, विशाल, सीलन और अंधकार से भरे डरावने तहखाने.... छोटी-छोटी दो-चार झिर्रियां, जिनसे सांस लेने भर को हवा की महीन लकीर आ सके या पीली रोशनी की झलक मिल सके। 'आओ, बाईजी! अब महलों के ख्वाब भूल जाओ। इस तहखाने की कैद में आराम करो, जब तक अन्नदाता का दूसरा हुक्म नहीं आता।' और रसकपूर की कंचनिया देह को उस स्याह अंधी गहराई में झोंक दिया गया। गर्द-जाले और सूखी-नुकीली घास... गुलगुले गलीचों पर थिरकने वाले रूई के फाहे से पांव सुर्ख-लहू हो उठे! याद आने लगे शरद पूर्णिमा के दिलफरेब नज़ारे ... उसके संगमरमरी शरीर पर श्वेत परिधान होता था। सारे आभूषण हीरे और बसरे-बगदाद के मोतियों के... पर्दे, कालीन, वाद्यों की खोलियां, सबके वस्त्र, सब कुछ श्वेत। महाराज स्वयं आभूषणों, कलंगी, पोशाक, जूतियां, और तलवार-म्यान आदि श्वेत-रंग की धारण करके देव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

SKYSCRAPERS

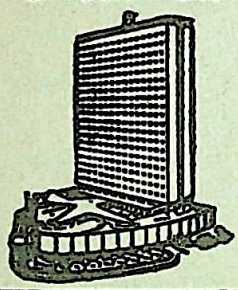

FLY-OVERS

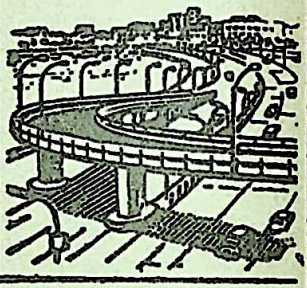

STADIUMS

BRIDGES

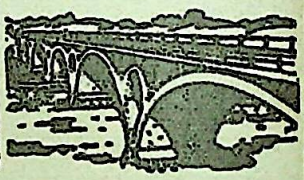

For modern projects

ANCHOR

CONCRETE SHUTTERING PLYWOOD

is used
to cut drastically
shuttering and centering
costs.

For details write for our Technical Bulletin.

THE INDIAN PLYWOOD MFG. CO. LTD.
Regd. Office: 9 Wallace Street, Fort,
Bombay 400001

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष बने रहते। और दीपावली की सुरंग महफिलें? काली लकदक पोशाकें और सजावट... पन्ने के जड़ाऊ गहने... शीश-महल के शीशों में लाख-लाख दीप-प्रतिबिंब—इन्हीं में रंभा-उर्वशी बनी कंपित शिखा-सी वह महाराज की बांहों में पिघलती रहती रोशनी की तरह... और आज? वह मूर्च्छित-सी घास के तीरों पर लुढ़क गयी। भयानक गर्मी, गला चीरने वाली प्यास, अंतड़ियां मरोड़ती रुलाई, गंदे, झूठे, आरोपों की अबोली छटपटाहट, चटखती सिर की शिराएं... ओह! कैसा क्रूर मज़ाक!

अंधेरे में कीड़े-मकोड़े रेंग रहे थे... बदबू, मक्खी-मच्छर अलग... चमगादड़ों की मनहूस आवाज़ें... गढ़ के आसपास फैले भयानक जंगल से जानवरों की डरावनी आवाज़ें... गीदड़ों का रुदन... भयानक सन्नाटा और चुप्पी के बीच अपने मन के चीत्कार... ओह! क्या कसूर रहा उसका!

चंद्रमहल आज भी नृत्य-संगीत के बीच खिलखिला रहा होगा? गुणीजन खाने से शहनाई पर भैरवी लहराती होगी? वह आर्तनाद करती हुई दीवारों से टकरा-टकराकर प्रलाप करती रही, लेकिन उसके मन की सच्चाई नापने वाला वहां कौन था? .. निगाहों का खेल था बस। मुग्ध हुईं, तो सोने के वरकों में लपेटकर कलेजे की मूंगिया डिबिया में रख लिया .... जब टेढ़ी हुईं, तो रौरव नरक के खौलते दरिया में डाल दिया! स्नेह के एक-एक पल, मनुहारें, मनौवल-न्यौछावरें, प्रीत-पगे लाड़-चावले सभी कुछ भुलाये न भूलते। जरा-सा पत्ता भी खड़कता कि वह सिहर उठती। अब भी मन के कोने में यह राग घुलता रहता कि शायद महाराज मिलने आ जायें? ... नहीं, अब केवल मौत की अगवानी करनी थी ... जाने उसकी किस्मत का फैसला कब होगा?

अंत में वह मनहूस घड़ी भी आ पहुंची, जब उसके मुकद्दमे का फैसला हुआ। दुश्मनों के ही गढ़े-बनाये गये आरोप, उन्हीं की तैयार की गयीं हज़ारों गवाहियां—सभी के बयानों ने चीख-चीखकर यह साबित कर दिया कि रसकपूर बड़ी खतरनाक, चालाक और स्वार्थी थी। वह राजसत्ता पर अपना पूरा अधिकार कर महाराज को कैद करके मरवाना चाहती थी...

महाराजा जगतसिंह के मन में नफ़रत का ज़हर ठाठें मार रहा था—हमारा ताज! हमारा सिंहासन! और वह नाचीज़ औरत! ऐसी जुर्रत! हम विषैली नागिन को कुचल देंगे... बस, रसकपूर को मौत की सज़ा का हुक्म दे दिया गया। नहीं, नहीं, ऐसी बग़ावतखोर और बदचलन औरत को सूरज निकलने से पहले कल दीवार में चुनवा दिया जाये—धौंसा बजने पर जैसे ही पहली तोप दगेगी, तुरंत यह काम हो जाना चाहिये।

जिसने भी सुना, वही आश्चर्य से दंग रह गया। इतनी भयानक मौत?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेंट्रल बैंक की परिवार कल्याण योजना

बूंद-बूंद से बनता सागर

आवर्ती जमा योजना

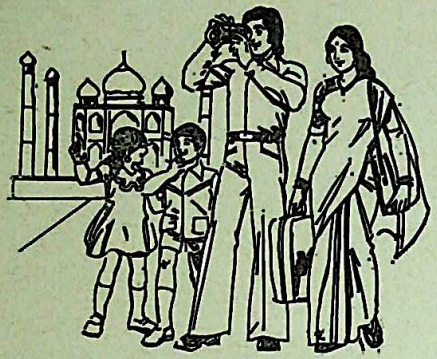

नौकरीशुदा लोगों के लिए एक आदर्श योजना प्रति माह रु. 5/- जितनी मामूली या उसके गुणकों में कोई भी रकम 12 से 120 माह की अवधि के लिए जमा कीजिए. 7.5% से 10% प्रति वर्ष की दर से तिमाही चक्रवृद्धि से आपकी रकम बढ़ती रहेगी.

आपके नन्हें-मुन्नों के लिए एक बढ़िया उपहार

धन-वृद्धि जमा योजना

रु. 100/- या उसके गुणकों में कोई भी रकम 12 से 120 माह तक जमा रखिए. आपकी जमाराशि 87 माह में दुगुनी या 120 माह में $2\frac{1}{2}$ गुनी बढ़ जाएगी. अपने परिवार की सुख-समृद्धि का ख्याल रखिए. 7.5% से 10% प्रति वर्ष की दर से तिमाही चक्रवृद्धि ब्याज मिलेगा.

सेंट्रल बैंक ऑफ़ इंडिया

(भारत सरकार का एक उपक्रम)

यही वह बैंक है जो हर जगह हर मनुष्य को सहायता देने में तत्पर है

दुश्मनों के दिलों में दीवाली जगमगा उठी। महलों के कोने-कोने में घृतदीप जल उठे। जड़ समेत मीठा कांटा निकाल-दिया गया था। षड्यंत्र सफल हो गया था!

रसकपूर के अंत को लेकर कई रहस्य फैल गये, क्योंकि यह मौत की सज़ा की आज्ञा थी, किसी साधारण आदमी की तो वहां पहुंच थी नहीं। कहते हैं कि कुछ मुसाहिबों, पहरेदारों को उसके इतने भीषण अंत पर दया आयी। महाराज के मन का कच्चा कोना भी शायद थोड़ा गीला हो गया होगा और उस श्वेत-कंवली को हीरक-कनी चाटनी पड़ी, जो भयंकर हलाहल में पकाई गयी थी। यह भी कहा गया है कि वह रात में ही किले की दीवार फांदकर किसी प्रकार निकल भागी, लेकिन बीहड़, गहरे जंगलों में रास्ता नहीं पा सकी और इसी किले की दीवारों, भूलभुलैयों में टकराती-भटकती समाप्त हो गयी। बात कुछ भी रही हो, अधिक सत्य यही माना गया है कि उसे हीरा चाटकर मरना पड़ा और वह अपने स्वामी से मिले बिना आकुल-छटपटाती हुई गहरे स्नेह की वेदी पर बलि हो गयी... महाराजा जगतसिंह का नाम जब भी आयेगा, रसकपूर याद आती रहेगी....

—श्रीमहावीर दि. जै. उ. मा. विद्यालय,
सी-स्कीम, जयपुर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Presenting the latest concept in convenient and economical cooking

It's a wonder pan for your kitchen! Coated with the miracle polymer finish the world is raving about: Teflon!

EASY TO COOK WITH

Owing to its non-stick properties, Teflon ensures that sticky ingredients like rice won't stick to the sides of the pan.

HIGHLY ECONOMICAL

As a result of its non-stick surface, Crown Hi-Fri needs very little oil to cook in. A real boon from every view point!

EASY TO CLEAN

As nothing sticks to it's surface, you can clean Crown Hi-Fri in a jiffy: with soap and water!

ACCEPTED THE WORLD OVER

The Teflon II Seal-invented and patented by the reputed Du Pont Company of USA, is given only to select International Manufacturers, on pure merit. To earn it and to retain it, samples of Teflon-coated products have to be tested initially and then again regularly on Du pont premises. In India only Crown Hi-Fri has won this coveted Seal of quality: an honour we plan to have permanently.

MADE BY EXPERTS

A product of Jeewanlal (1929) Ltd., India's leading Manufacturers of aluminium utensils, Crown Hi-Fri is the first of a series of Teflon-coated cookware to come.

Manufactured by:

Jeewanlal (1929) Ltd.

Liberty Building,
2nd Floor, New Marine Lines, Bombay-400 020.
Phone: 291156
Show Room: Kansara Chawl, Kalbadevi Road, Bombay–400 002.
Phone: 354860.

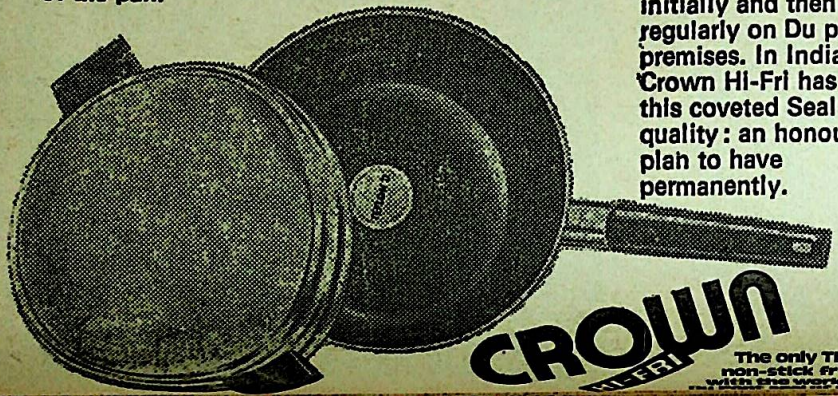

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ १८३ का शेषांश)

स्थिति में क्रमशः चार-चार वर्ष तक रहे थे। इस प्रकार लगभग २० वर्ष का समय उन्होंने गुरु आश्रम में विताया था। यह सिद्धाश्रम साधारण लौकिक आश्रमों की भांति नहीं है। सामान्य जन के लिए अगोचर है। तिब्बत प्रदेश में होते हुए भी परिव्राजकों तथा पर्यटकों की दृष्टि में यह नहीं आता; इसीलिए किसी भ्रमणकारी भारतीय संन्यासी अथवा विदेशी पर्यटक ने इसका उल्लेख अपने यात्रा-विवरण में नहीं किया है। स्थूल होने पर भी यह भौतिक स्थान नहीं है। वस्तुतः यह स्थूल नहीं है सूक्ष्म भी नहीं है, एकाधार में स्थूल भी है, सूक्ष्म भी है।

ठीक जैसे सिद्ध पुरुषों का देह दर्शन-स्पर्शन योग्य होने पर भी क्षण मात्र में अदृश्य हो जाता है ऐसी ही सिद्धाश्रमों की भी स्थिति है—स्थूल दृष्टि से वह स्थूल और सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्म है। दोनों समन्वययुक्त हैं।

बहुत लोग स्थूल भाव से इसके अन्वेषण के लिए व्यर्थ भ्रमण करके लौट आये हैं। आश्रम के अधिष्ठातृ वर्ग की विशेष अनुज्ञा के बिना इसकी प्राप्ति तो दूर की बात है, दर्शन भी नहीं हो सकता।

मैंने स्वामीजी के मुखसे सुना है कि वहां बहुत से योगी, विज्ञानविद्, भैरव-

चित्र : चंदुलाल सांकला

भैरवी, शिक्षार्थी तथा आचार्य विद्यमान हैं। केवल इतना ही नहीं इस आश्रम से संबंध होने पर लौकिक जगत् से भी इसका प्रत्यक्ष अनुभव मिलता है, यहां तक कि उस स्थान को यहां से क्षण भर में वस्तुएं भेजी और वहां से आकर्षित करके मंगायी जा सकती हैं।

यह क्रिया मैंने अपनी आंखों से बाबाजी के सान्निध्य में अनेक बार देखी है।

स्वामीजी के गुरुदेव ज्ञानगंज आश्रम के मनोहर तीर्थ नामक स्थान तथा राजराजेश्वरी मठ में विराजते हैं—ऐसा मैंने सुना है।

उन्हें इस आश्रम में पहुंचने का सुयोग किस अलौकिक भाव से प्राप्त हुआ, इसकी अपनी कहानी है। इसके अनुग्रह से बहुत कुछ अलौकिक रहस्य मेरे देखने में आये।

[आगामी अंक में पढ़िये सूर्य-विज्ञान के रोमांचक चमत्कारों की विस्मयकारी कहानी]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

OUR INTENTIONS HAVE ALWAYS BEEN PURE

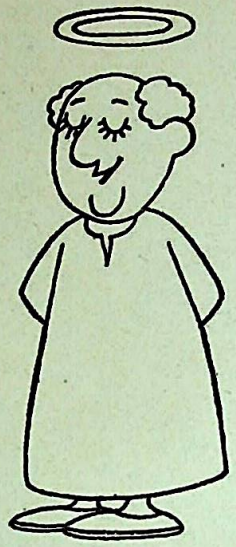

Whether it's fluid handling systems in the treatment of sewage and effluent waste or air-conditioning and refrigeration for temperature control in specialised industries, Batliboi is on par with the world's best. Batliboi's expertise has won them turnkey projects on global tenders.

With their broad-based infrastructure of engineering resources and proven record, Batliboi is fully geared to meet the challenges of tomorrow, today. On more fronts than one.

Also manufacturers of Machine Tools and Textile Machinery. Distributors and exporters of a vast range of industrial products, farm equipment, etc.

For further details, write to:

BATLIBOI & COMPANY LIMITED

Regd. Office: Apeejay House, 6th floor, Dr. V. B. Gandhi Marg, Fort, Bombay-400 023.

Branches, Associate and Dealers-ALL OVER INDIA.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ९१ का शेषांश)

के स्तर पर जीवन में और लेखन में भी अपनी अस्मिता के लिए नहीं, अस्मिता की स्वीकृति के लिए जूझ रही है।

इस समय की जागरूकता के वातावरण में अपनी विपुलता में प्रदर्शन की हद तक चला गया अभिव्यक्ति का उत्साह और प्रस्फुटन जहां चारों ओर एक विकास की प्रक्रिया के तहत देखा जा रहा है, वहां स्त्री लेखन के क्षेत्र में स्त्रियों की सांख्यिक वृद्धि अविश्वास और संदिग्धता का वातावरण उपजा रही है। इस स्थिति को संपादकों की व्यावसायिक नीयत और स्त्रियों की आत्मप्रदर्शन की ललक की घुली-मिली महत्त्वाकांक्षा के विकृत रूप में व्याख्यायित किया जा रहा है। प्रस्फुटन की यह स्थिति यदि अन्य क्षेत्रों—प्रशासकीय सेवाएं, पुलिस, कानून, इंजीनियरी, आर्किटेक्चर, वाणिज्य, विज्ञान आदि-आदि में लक्षित न होतीं तो इस आरोप को मान लेना आसान था। वस्तुतः उसके लिए यह एक आत्मानुभूति है। लहरों द्वारा विसर्जित कर दिये गये सागर-तट की धरती पर पैर रखकर अंतर्हित तरावट के दर्शन कर सकने की उत्सुकता। उसमें न किसी षड्यंत्र की चालाकी है, न प्रतिद्वंद्विता की तेज़ी; बहरहाल अपनी पारंपरिक नियति से मुक्ति पा लेने की तड़प ज़रूर है और आत्माभिव्यक्ति की अदम्य चाह। यह बात काफी स्पष्ट है कि वह आज जो कुछ भी व्यक्त कर रही है, उसमें अपने पंखों की उड़ान को नापने का प्रयास अधिक और किसी बहुत बड़े परिप्रेक्ष्य के प्रति समझ की उठान अपेक्षाकृत कम दीखती है। उसके लेखन पर सीमित यथार्थ के आकलन का आरोप ही उसके कर्म की आरंभिक अवस्थाओं को इंगित करता है। वह अपने लेखन संस्कारों में गहरी तो गयी है, (क्योंकि यह गहराई भीतर के यातना स्थलों के दर्द से अर्जित की गयी है) परंतु व्यापक सोच की चुनौतियों से जूझने के लिए भी दीक्षित नहीं हुई है। उसके लिए यह अब तक के कर्फ्यू-घोषित प्रदेश में डर-डरकर एक-एक कदम रखने के साहस और निष्ठा को पा लेने का अभियान है, जिसे उसके सामाजिक इतिहास से अलग करके देखा नहीं जा सकता।

लेखन कर्म में उसकी मर्यादाओं का संबंध उसकी सामाजिक स्थिति और नियति से जोड़ा जायेगा, साहित्यिक क्षमता की सीमाओं से नहीं, साहित्य तो उस सामाजिक स्थिति का परिणाम मात्र है। यह एक यातनादेह स्थिति है कि समाज एक जातिगत स्तर पर स्त्री को जिन चीज़ों को जीने का हक नहीं देता, लेखन में उससे उसके आकलन की अपेक्षा करता है। वह चिंताएं, जो उसके जीवन-यथार्थ का भाग नहीं रहीं—जैसे राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मुद्दे, आर्थिक द्वंद्वों की समझ, शोषण की कार्यप्रणालियां, सामाजिक न्याय-अन्याय के प्रश्न, समानता, स्वतंत्रता की बातें,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बचपन के दिन...सपनों के दिन!

संजू अभी-अभी अस्पताल से अपने प्यारे छोटे भाई को देखकर लौटा है। उसके मन में वहीं एक नयी कल्पना जागृत हुई और उसने एक सपना सँजोया– वह था डॉक्टर बनने का। लेकिन उसके सपने को पूरा करने की ज़िम्मेदारी आपकी है।

उसकी उच्च शिक्षा ही उसके जीवन की सफलता होगी। आप अभी से इस बारे में सोचिए– बैंक ऑफ़ इंडिया की अपनी नज़दीकी शाखा में पधारिए। हमारे पास आपकी तथा आपके परिवार की हर ज़रूरत को पूरा करनेवाली कई बचत योजनाएँ हैं। आइए और देश के सबसे बड़े राष्ट्रीयकृत बैंक की मदद से अपने बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बनाइए।

बैंक ऑफ़ इंडिया

(भारत सरकार का उपक्रम)

सेवा में श्रेष्ठता ही हमारी विशेषता है।

CONCEPT-BOI-4452 HIN.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विद्रोह और क्रांति के मूल स्रोतों की पहिचान—उन्हें आत्मसात् किये होने की अपेक्षा करता है, जबकि इनमें से एक-एक मुद्दे को केन्द्र में रखकर स्त्री की वास्तविकता सामाजिक स्थिति से उसके वैपरीत्य पर विचार किया जाये तो काफ़ी तकलीफ़देह तथ्य हाथ लगेंगे ।

उससे बड़ा विरोधाभास यह भी है कि एक तरफ तो अनुभव की प्रामाणिकता और यथार्थ के ईमानदार आकलन के नारे लगाये गये और दूसरी ओर जैसा अनुभव यथार्थ हाथ में है, उसके अंकन को खुल्लमखुल्ला नकार दिया जाये । यह यथार्थ चाहे सीमित है या बृहत, यही यथार्थ उसका अपना जीवन यथार्थ है, यही उसके अस्तित्व की सामाजिक सांस्कृतिक सच्चाई है ।

अभी तो जो लिखा जा रहा है, वही प्रामाणिक है । यह स्पष्ट है कि स्त्री-लेखन अभी अपने अनुभव से बहुत सटकर चल रहा है। पुरुष भी लेखन में जब अपने जीवन से इतना सटकर चलता है तो उसके भीतर का परिवर्तनकारी स्वप्नद्रष्टा 'विज़नरी' वास्तविकता की चपेट में आ जाता है और वह समाज को मूल्यात्मक स्तर पर कुछ नहीं दे पाता, पर यह स्थिति ठहर जाने की स्थिति नहीं है—विकास यात्रा का एक सोपान है। अभिव्यक्ति की क्षमता का विश्वास स्त्री-लेखन में पर्याप्त मात्रा में झलकता है, प्रश्नों की व्यापकता से सरोकार उत्तरोत्तर बढ़ती बौद्धिक सजगता से आयेगा ।

साधारणतया अपनी अस्मिता के प्रति विश्वास लेखन में भीतरी ऊर्जा के रूप में काम आता है, परंतु इस समय उसकी पीड़ा और घुटन उसकी ऊर्जा का काम दे रही है, और उसकी वाणी का पर्याय बन रही है। इस स्थिति को पार किये बिना शायद अपने को अतिक्रमित नहीं किया जा सकता । अपनी यात्रा स्वयं चलकर पार करनी होती है, उसका कोई शार्टकट नहीं होता । इसमें संदेह नहीं कि अंततः अभिव्यक्ति का यही दौर उसकी पीड़ा-मुक्ति का आधार बनेगा । इसमें से गुज़र चुकना अपने इतिहास-लेखन की पीड़ा में से गुज़र चुकना है । यह ज़रूरी है कि स्त्री-लेखन की इस प्रावस्था को पारंपरिक स्त्रीत्व से उबरने का आधिकारिक इतिहास लेखन काल समझा जाये । क्यों उसे अपनी मुक्ति-यात्रा के वास्तविक स्तंभों से उखड़ जाने की चुनौती दी जाये । स्वतः आगे चल निकलना इसकी सही दिशा तथा अगली कड़ी होगी।

हो सकता है, स्वतंत्रता और समानता की मांग को हथेली पर रखकर खड़ी स्त्री द्वारा मूल्यांकन की इस प्रकार की सुविधाओं और छूटों का मांगा जाना एक हास्यास्पद स्थिति हो, विशेषतः वहां जहां न केवल कार्यक्षेत्र (लेखनकर्म) एक है, बौद्धिक क्रिया एक-सी है, बल्कि सृजन परिणाम भी जहां एक ही मापदंड—रचना में निहित अर्थवत्ता—से नापे जाते हैं, परंतु साहित्य और लेखन के क्षेत्र में यह स्थिति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओरियन्ट पेपर एन्ड इन्डस्ट्रीज़ लि.

रजि. आफिस :
ब्रजराजनगर, उड़ीसा

उत्तम प्रकार के प्रिंटिंग–राइटिंग, पेकिंग–रेपिंग
कागज और पेपर बोर्ड के निर्माता

मिल्स : ब्रजराजनगर–७६८२१६
अमलाई–४८४११७

शीघ्र पत्र विवरण हेतु पोस्टल पिन कोड व्यवहार करें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जितने महत रूप से सामाजिक और परिणामोन्मुखी है किसी और क्षेत्र से नहीं, क्योंकि साहित्य का संबंध सीधा मनुष्य की जीवन-स्थितियों से है । किसी भी रचनाकार का लेखन, उसकी अपनी जीवन-स्थितियों के बीच जीवन से संपर्क साधने की चेष्टा में कमाया गया दृष्टिकोण और उसका प्रस्तुतीकरण है, अतः बार-बार व्यक्तित्व के घटकों तक जाने की ज़रूरत पड़ जाती है । पुरुष अपनी सामाजिक सांस्कारिक नियति और स्थिति में स्वीकृत है, अतः लेखन में भी वह अपने सरोकारों में आगे निकल गया है, स्त्री स्वीकृति के लिए लड़ रही है, अतः उसका यही संघर्ष उसके लेखन में प्रतिबिंबित हो रहा है। उसकी स्थिति अभी ड्राइंग की कक्षा में बैठे शिक्षार्थी की-सी है जो वस्तु से अपना संपर्क साधने के अपने बिंदु को पकड़ने में व्यस्त होता है, आगे की स्थिति उस बिंदु का अतिक्रमण कर पाना है ।

देखना यह है कि क्या स्त्री-लेखन अपने अस्तित्व और परिवेश से आगे की यात्रा करने की संभावना जगाता है ? क्या वह अपनी परिस्थितियों का अपनी योग्यता द्वारा अतिक्रमण कर पाने के संकेत दे रही है? क्या उसकी भावात्मक यातना किसी बौद्धिक सजगता में शामिल हो सकेगी ?

यहां यह स्पष्ट करना अप्रासंगिक न होगा कि अतिक्रमण की व्याख्या अपने अनुभव संदर्भ से कूदकर दूसरे के (पुरुष) अनुभव संदर्भ में जाना न होकर अपने अनुभव के केंद्र से अर्थ की पूरी परिधि को पहचानने की चेतना है । चुनौती अपने सीमित सत्य से व्यापक सत्य की ओर प्रवृत्त होने की है, पुरुष के समीकरण में घुल जाने की नहीं । एक का दूसरे के पक्ष में बदल जाना न आवश्यक है, न अपने-अपने जीवन-यथार्थ से विलग होना। किसी भी स्तर पर निरस्त्रीकरण पर अस्वाभाविक रूप से इतना बल दिया जाना वास्तविकता (जीवन में भी दोनों की भूमिका एकात्म होने की न होकर पूरक होने की है) की विशिष्टता को खो देना है । अपने भाग के यथार्थ से संसिक्त दृष्टि पूरे यथार्थ का अविभाज्य अंग है ।

समस्या का मूल यही है कि किस तरह स्त्री को वह सामाजिक सांस्कृतिक भूमि मिले जिसमें उसकी चेतना अपने से बृहत्तर सरोकारों के लिए दीक्षित हो । और कुछ वैसी ही चिंताएं उसके लेखन में प्रतिबिंबित हों। मात्र दफ़्तरों, दुकानों में काम करती व्यावसायिक दक्ष नारी स्वतंत्र नारी नहीं कहलाती; क्योंकि स्वतंत्रता का एहसास भीतरी होता है, वह अपने प्रति विश्वास में से गुज़रता हुआ दूसरों में अपने कर्म का समर्थन और स्वीकार भी जगाता है । यह आवश्यक है कि अपने मानसिक क्षितिज का विस्तार करने की प्रेरणा स्त्री को भीतर से मिले, इस एहसास के साथ कि बड़ा लिखने के लिए बड़ी जानकारी से जुड़ना और ज्ञान संपन्न होना ज़रूरी है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

INDOKEM LIMITED

221. Dr. D.N. Road,
Fort
Bombay – 400 001.

Phone : 267881/10 Gram: "INDOKM" Telex: 011-294

Marketing:

Dyes. Chemicals. Pigments. Leather Binders; Auxiliaries; Synthetic Tanning Agents. Leather Colours, Fat Liquors; Synthetic Resins, Textile Auxiliaries, Polyester Fibre, paints, menthol, Non-textile Auxiliaries etc.

Manufactured By:

Indian Dyestuff Industries Ltd.,
Colour Chem Ltd.
Aniline Dyestuffs & Pharmaceuticals (P) Ltd.,
Cellulose Products of India Ltd.
Dai-Ichi Karkaria Pvt. Ltd.
Haryana Rang Udyog
National Chemical Industries
Iudian Organic Chemicals Ltd. (Futura Polyester Fibre)
Hypo Chemiedye
Gujchem Distillers India Ltd .
Lalji Mentha (P) Ltd.

Branches at:

Ahmedabad Calcutta Delhi Madras Nagpur
Kanpur Secunderabad.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह ठीक है कि अनुभव की प्रामाणिकता के आधार पर किया गया लेखन, साहित्य को एक प्रकार से छद्म से बचा लेता है, परंतु इस बात की आड़ में अपने बचाव की भूमिका ढूंढ़ने लगना भावात्मक अस्त्रों द्वारा किया गया पाठकों का वैचारिक शोषण तो है ही, आत्मघाती भी है। आत्मदया और आत्मपीड़न के तार पर साधा हुआ साहित्य कितना भी मार्मिक क्यों न हो, अंततः निःसत्व हो जाता है। इस यातना को—कि परंपरा या इतिहास ने नारी को कुंठा के सिवा कुछ नहीं दिया—एक निषेधात्मक आक्रोश के स्वर में सहते रहने और साहित्य में दोहते रहने के आत्मपीड़क दवाव से जितनी जल्दी मुक्ति मिले अच्छा है। इस भावात्मक पीड़न से उबरने के बाद ही एक तटस्थ बौद्धिक सजगतापूर्ण रवैये का निर्माण हो सकता है, जिसमें लेखन को एक अस्त्र के रूप में नहीं वरन् समस्याओं के प्रति दायित्व तथा वैचारिक एवं मूल्यात्मक योगदान के माध्यम के रूप में देखा जाये।

लेखन में होना दोहरे दायित्व का सामना करना है अपने प्रति और समाज के प्रति, क्योंकि लेखक ही वह पात्र है जिसमें समाज का उपभोग्य रचाया-पकाया जाता है। किसी संत ने एक बार प्रार्थना की थी कि 'मेरा शरीर तुम्हारा घर है प्रभु, अतः मैं उसे पवित्र रखना चाहता हूं'। व्यक्तित्व-संपन्नता के पक्ष में अर्जित की गयी ऐसी आत्मलिप्तता लेखक के लिए ज़रूरी है। स्वतंत्र प्रबुद्ध चेतना अपने स्वरूप में स्वतः दायित्वोन्मुखी होती है। स्त्री—जब वह लेखन में आ ही गयी है—को अपनी नियति में परिवर्तन स्वयं ही करना है। उसकी चुनौती उस बौद्धिक वैचारिक सजगता को पाना है, जो अपने मूल में व्यक्तिगत केंद्रों का अतिक्रमण करने में सक्षम होती है। उसकी चिंता वैचारिक और सामाजिक आत्मनिर्भरता के लिए होनी चाहिये, क्योंकि आत्मनिर्भर होने से सामाजिक स्तर पर उसकी भूमिका स्वतः बदल जाती है। जो ढांचा उसके पराधीन होने की वास्तविकता पर खड़ा है, वह स्वयं ढह जाता है, और वह सामाजिक सांस्कृतिक भूमि उसे स्वयं मिल जाती है जो एक दायित्वपूर्ण व्यक्तित्व संपन्न मनुष्य का अधिकार है। —१/१२, सर्वप्रिय विहार,
नयी दिल्ली-१६

□

शादी के लिए छुट्टी

मैनेजर—'तुम पहले ही काफी छुट्टियां ले चुके हो। कभी अपनी पत्नी को स्टेशन छोड़ने के लिए, कभी सास के दाह-संस्कार के लिए, कभी अपने बेटे की शादी के लिए, अब किसलिए छुट्टी चाहिये ?'

कर्मचारी—'जी, अपनी शादी के लिए।'

—यशपाल जैन 'आदर्श'

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

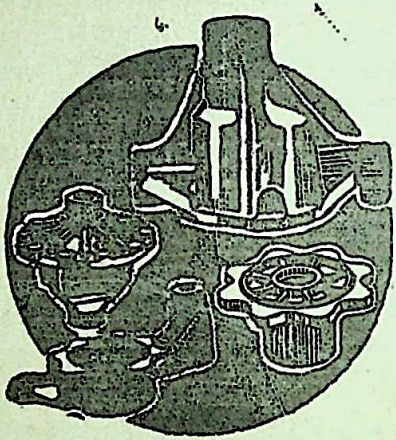

दि इंडियन स्मेल्टिग एंड रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड

का आपको निमंत्रण है, आयात प्रतिस्थापन को सफल बनाइये

एस० जी० आइरन के कास्टिग

कांसा, पीतल, गनमेटल या लौहेतर धातुओं तथा इस्पात के पुर्जों व हिस्सों का स्थान ले सकते हैं।

मैलिएबल आइरन के कास्टिग

अनेक प्रकार की चीजों में इस्पात के कास्टिग का काम दे सकते हैं।

एस. जी. आइरन और मैलिएबल आइरन के कास्टिगों में उच्च भौतिक गुण होते हैं। वे खरीदने में सुगम, दृढ़ एवं तन्यतायुक्त होते हैं, उनमें घिसाव कम होता है।

संपर्क कीजिये :
फेरसफाउंड्री, पंचपाखाड़ी, पहला पोखरन लेन, थाना (महाराष्ट्र)
उच्च श्रेणी के कास्टिग्स् व बचत के लिए डबल हैमरवांड
आग्रह कीजिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ११९ का शेषांश)

'हाँ मैं भी मूर्तिपूजा करता हूं। इसलिए कि भगवान के संबंध में हमारा विचार मूर्तियों और चित्रों द्वारा बनता है। बिरले ही ऐसे लोग हैं, जो परमात्मा में गंभीर विश्वास रखते हैं और अपनी श्रद्धा के लिए कोई प्रतीक नहीं खोजते हैं। आपके क्रिश्चियन धर्म में तथा मुसलमानों के इस्लाम धर्म में भी प्रतीकोपासना है। जिनका मानसिक स्तर ऊंचा नहीं है, जो सत्य को ग्रहण करने के लिए उत्सुक रहते हैं, उन्हें प्रतीकों का सहारा लेना चाहिये।

मूर्तिपूजा के विरोध में प्रायः कहा जाता है कि जो व्यक्ति मूर्ति से प्रार्थना करता है, वह पत्थर की दीवार से बकझक करता है, किंतु ऐसा नहीं है। उस पत्थर में जिसकी आकृति उत्कीर्ण है अथवा जिस शक्ति का वह अधिष्ठान माना गया है, उसकी मनोवैज्ञानिक विद्यमानता से, विश्व शक्ति से हम प्रार्थना करते हैं।

मूर्तिपूजा ईश्वरी साधना का भक्तिपूर्ण साधन है। साधना द्वारा हम जीवनकी तुच्छताओं से ऊपर उठकर शाश्वत के सान्निध्य तक पहुंच जाते हैं, किंतु साधना में पूर्ण ईमानदारी होनी चाहिये।

इस तरह के अनेक प्रश्नों और उत्तरों का सिलसिला पौने दो घंटे तक चलने के बाद स्नेह-मिलन गोष्ठी समाप्त हुई।

— ८४, नया बैरहना, इलाहाबाद

(पृष्ठ १३५ का शेषांश)

रूप में श्रीकृष्ण जिस रथ पर अर्जुन को ले जाने वाले थे, उसके अश्वों के वर्णन के लिए उन्हें गीता में वर्णित अश्वों से तुलना के लिए आवश्यक थी। (वे जीवन के अंतिम दिनों में भी 'कृष्णावतार' के लिखने की चिंता में डूबे रहा करते थे।)

पांच फरवरी की सुबह मुंशीजी की तबीयत गंभीर रूप से बिगड़ गयी। उस दिन कार्यालय में पहुंचते ही यह समाचार सुनकर गहरा आघात लगा। उनके दर्शनार्थ ऊपर उनके निवास पर गया। उस समय उन्हें आक्सीजन दिया जा रहा था। छठीं, सातवीं और आठवीं फरवरी के दिन उन्होंने गंभीर अस्वस्थता में बिताये। आठवीं फरवरी की शाम को ५ बजकर ५५ मिनट पर उन्होंने अपना भौतिक शरीर त्याग दिया।

* * *

आज महाशिवरात्रि का पुण्य पर्व है। मुंशीजी को गये पखवाडा पूरा हो गया है। आज सुबह उनकी अस्थियां पवित्र नर्मदा मां की गोद में विलीन हो चुकी होंगी—और रेवा माता ने अपने इस शुभमंगलकारी पुत्र की अस्थियों को अपूर्व मातृवात्सल्य से अपने में समा लिया होगा।

हृदय भर आता है, अधिक लिख नहीं पाता। कुशल से होंगे। स्नेह-स्मरण!

आपका—शान्तिलाल तोलाट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"१० में से
७ स्कूली बच्चों को
दंतछिद्रों की
शिकायत होती है"

स्कूली सर्वेक्षण मार्च १९७८
इंडियन डेन्टल एसोसियेशन

दांतों के सड़न की पहली निशानी है दांत में दर्द.
आपके मुंह में मौजूद कीटाणु अन्न कणों को
हानिकारक तेजाबों में बदल देते हैं जिनके हमले से
आपके दांतों में पीड़ादायक दंतछिद्र पैदा हो जाते हैं.

लीजिए फ्लोराइड युक्त सिग्नल 2
आपका दंतरक्षक

फ्लोराइड युक्त सिग्नल 2, दो तरह से दांतों को सड़न से बचाती है.
यह मुंह में तेज़ाब पैदा करने वाले कीटाणुओं पर काबू पाकर दंतछिद्रों की
रोकथाम करती है. दंतछिद्रों का मुकाबला करने के लिए दांतों के एनामल
से जुड़कर उन्हें अधिक मज़बूत बनाती है. क्योंकि इसमें दंतछिद्रों की रोकथाम
करने वाला एक विशेष तत्त्व है—फ्लोराइड, जो सिग्नल की अनोखी रचना
में सबसे बेहतर कार्य करता है.
अब तकलीफ होने का इंतजार मत कीजिए, लीजिए सिग्नल 2 — आपका दंतरक्षक

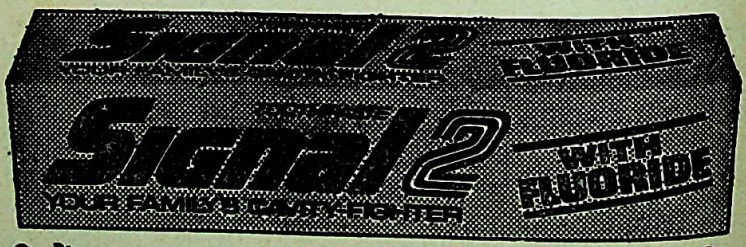

दंतछिद्रों का मुकाबला करने वाली इससे बेहतर टूथपेस्ट कोई नहीं.

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

LINTAS-SG2.23-1411

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

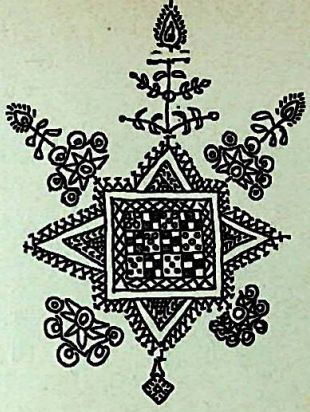

फिर दिवाली आ गयी

आयुर्वेदाचार्य पं. सुरेशचन्द्र चतुर्वेदी

यह दिवाली हर साल आती है और नया जीवन, नया उत्साह, नयी उमंग और नयी प्रेरणा भी साथ में लाती है। यह त्यौहार बच्चे, जवान., बूढ़े हर स्त्री-पुरुष के मन में नया आनंद ला देता है, इसीलिए सभी इसकी प्रतीक्षा में रहते हैं और कई महीने पहले से ही इसकी बाट देखने लगते हैं।

पांच दिन पांच बातें

दिवाली का त्योहार एक दिन का होता है, लेकिन इससे दो दिन पहले और दो दिन बाद भी इसका वातावरण रहता है। धनतेरस, नरक चतुर्दशी, दिवाली, नया वर्ष और भैयादूज इन पांच दिनों का स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। इन पांच दिनों के अवसर पर पांच बातें विशेष महत्त्व रखती हैं जिनमें :

१. घर की स्वच्छता एवं रंग आदि करना।

२. नये बर्तन खरीदना, नये वस्त्र तथा नये आभूषण धारण करना।

३. शरीर पर उबटन, तैल मालिश, स्नान, सुगंधित फूल-द्रव्य धारण करना, एवं स्वादिष्ट—मीठे आहार पदार्थों का सेवन।

४. घर के द्वार पर मांगलिक तोरण बांधना, मांगलिक चित्र तथा रांगोली आदि चित्र अंकित करना।

५. रात को द्वार पर दीप जलाना एवं पटाके छोड़ना।

आयुर्वेदिक दृष्टि

यदि आयुर्वेदिक दृष्टि से इस विषय पर संक्षेप सें विचार किया जाये तो यह पर्व वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद शरद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जालिम लोशन

लगाईये

जी हाँ..जालिम लोशन लगाईये !!

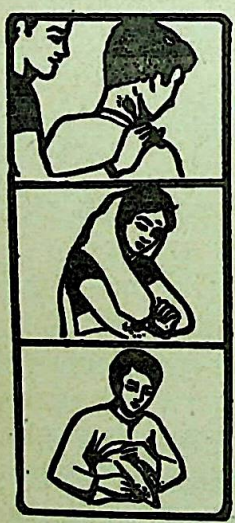

- जालिम लोशन चमड़ी की गहराई में पहुँचकर दाद खुजली का नाश करता है।
- जालिम लोशन सड़ी गली खराब चमड़ी को कागज की तरह निकाल फेंकता है।
- दवा लगाते ही सूख जाती है। कपड़ों पर दाग नहीं पड़ता।

दाद, खुजली से छुटकारा पाइये

ORIENTAL CHEMICAL WORKS, RAO (INDORE) INDIA

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऋतु में होने के कारण विशेष महत्त्व का होता है। वर्षा ऋतु में गंदगी के कारण और जगह-जगह पानी भर जाने के कारण जीव-जंतु व जाते हैं—जिससे प्राणियों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और अनेक प्रकार के रोग सामाजिक स्वास्थ्य को विकृत कर देते हैं। वर्षा ऋतु में अनेक रोगों का प्रकोप होने के कारण, व्यक्ति स्वस्थ नहीं रहते, अतः शरद ऋतु में इन सभी रोगों का निवारण अच्छी प्रकार से हो सकता है। यदि ठीक प्रकार से आहार-विहार किया जाये तो रोग-मुक्ति के बाद आगे आनेवाली हेमंत और शिशिर ऋतुएं अर्थात् नवंबर से फरवरी तक का काल स्वास्थ्य संवर्धन के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होता है, क्योंकि इस शीत काल में अच्छे पदार्थों का सेवन और व्यायाम शरीर को पुष्ट करने वाला होता है।

धनतेरस

इसी दिन श्री धन्वंतरिजी समुद्र में से अमृत कलश लेकर प्रकट हुए थे, इसीलिए इस दिन धन्वंतरि जयंती मनायी जाती है। इसी का अपभ्रंश धनतेरस है। यह दिन स्वास्थ्य-प्राप्ति नियमों का आचरण करने के प्रतीक के रूप में माना गया है। लौकिक रूप में आज भी अनेक बातें प्रचलित हैं।

स्वच्छता का पर्व

यदि धनतेरस के दिन लौकिक व्यवहार में आनेवाली सभी क्रियाओं पर स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार किया जाये तो उन सभी का शरीर एवं मन पर अवश्य ही हितकारी परिणाम होता है। जैसे कि घर आदि की स्वच्छता को अनेक प्रकार के रोगों का प्रतिबंधक उपाय माना है; क्योंकि इससे घर में संचित होनेवाले मक्खी, मच्छर, खटमल, लाल कीड़े आदि का नाश हो जाता है। घर में नया रंग करने से भी घर की शुद्धि तथा मन की प्रसन्नता बढ़ती है। शरीर पर तैल मालिश और उबटन से मांसपेशियां मजबूत होती हैं तथा शरीर का रंग साफ हो जाता है। शरीर में स्फूर्ति आती है। वायु एवं कफ के विकार नष्ट हो जाते हैं, नये वस्त्रों के धारण से शारीरिक स्वच्छता तथा मानसिक प्रसन्नता बढ़ती है। घर के दरवाजों पर तोरण आदि मांगलिक कार्यों से समाज को यह अवगत करा दिया जाता है कि हमने अपने घर की पूर्ण स्वच्छता कर ली है, हम सामाजिक स्वास्थ्य में समाज के साथ हैं और सुख-संपदा के आगमन का स्वागत करते हैं।

मंगल कामना

मांगलिक चित्रों का द्वार पर अंकित करने का तात्पर्य है कि आगामी वर्ष के लिए मंगल कामना में इस पवित्र पर्व पर हम भी समाज को शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। इस शभ अवसर पर दरवाजे पर दीप जलाना इस बात का प्रतीक है कि हम अंधकार से प्रकाश की ओर जा रहे हैं 'तमसो मा ज्यो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

HINDON

जीने का एक नया ढंग

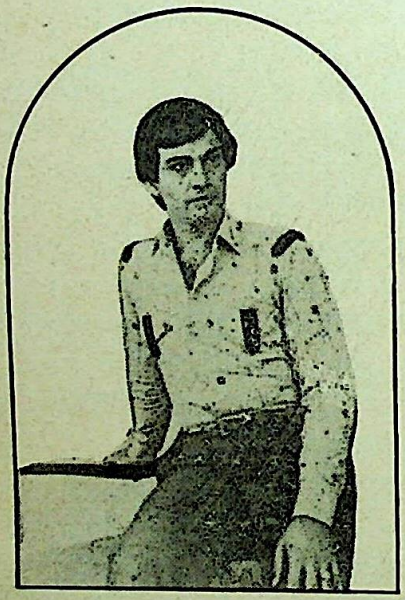

हिण्डन

सूटिंग्स . शर्टिंग्स

सर्वाधुनिक मिल द्वारा निर्मित कपड़े

DCM
TEXTILES

५०० से भी अधिक डी सी एम रिटेल
तथा अन्य रिटेल स्टोर्स पर उ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिर्गमय' ये दीप जिस प्रकार से हमारे घर के अंधेरे को दूर करते हैं, उसी प्रकार हमारे ग्राम, नगर और देश के अंधकार को भी दूर करते हैं। जिस प्रकार एक दीपक से अनेक दीपक जलाये जाते हैं, उसी प्रकार एक स्वस्थ व्यक्ति अनेक व्यक्तियों को स्वस्थ्य रखने के लिए प्रवृत्त करता है।

घर में नये बर्तनों को खरीदने में भी आहार पदार्थों में पात्रों के गुणों की शुद्धि का ही उद्देश्य रहता है; क्योंकि टूटे पात्र आहार पदार्थ को दूषित भी कर देते हैं।

शरीर पर नये वस्त्रों का धारण करना और पुराने वस्त्रों का त्याग भी आरोग्य-प्राप्ति में सहायक माना गया है, क्योंकि जीर्ण वस्त्र हमारे शरीर एवं मन दोनों को दूषित करते हैं। गहने, पुष्प आदि के धारण से मन प्रफुल्लित रहता है और इनके स्पर्श से आरोग्य प्राप्त होता है।

आहार व्यवस्था

दिवाली के अवसर पर प्रायः सभी लोग विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थों का सेवन करते हैं, जिनमें मावा, शक्कर, बेसन आदि से बनी हुई विभिन्न प्रकार की मिठाइयां तथा नमकीन पदार्थों का समावेश है। फलों में अंगूर, सेव, केला आदि का विशेष ध्यान रखा गया है।

शरद ऋतु में पित्त (गरमी) का प्रकोप होने के कारण मीठे पदार्थ पित्त को शांत करनेवाले होते हैं। इसलिये इन पदार्थों की मिठाइयां विशेष रूप से सेवन की जाती हैं।

मानसिक स्वास्थ्य

इन सभी बातों को यदि हम दीपावली के दिन अच्छी तरह से व्यवहार में लायें तो निश्चय ही हमारे शारीरिक स्वास्थ्य में वृद्धि होगी और उसका परिणाम मन पर भी अच्छा पड़ेगा। मन ही सुख और दुःख का कारण होता है और मन ही इस संसार में बंधन एवं शक्ति का कारण होता है। अतः धनतेरस से दूज तक अपनायी जानेवाली सभी व्यावहारिक लौकिक क्रियायें मन की व्यथा को नष्ट कर प्रसन्नता लाने वाली होती हैं।

दीपों का जलाना अबाल-वृद्ध, नर-नारी सभी के लिये प्रसन्नता का विषय होता है। इस मांगलिक पर्व पर अपनाये जाने वाले सभी कार्यों पर यदि हम विचार करें तो सभी ज्ञानेन्द्रियां एवं कर्मेन्द्रियां, मन एवं आत्मा को प्रसन्न करनेवाली होती हैं।

इन सभी बातों पर विचार करने से यह निश्चित हो जाता है कि भारत ही नहीं, अपितु समस्त विश्व के प्राणियों के अनेक कष्टों को दूर करने और शारीरिक एवं मानसिक सुख-शांति प्राप्त कराने एवं आध्यात्मिक शक्ति की वृद्धि हेतु इसी लोक में अनेक लोगों के सुख की कामना करने के लिए स्वास्थ्य संबंधी नियमों का पालन एवं संकल्प करना, यही दीपावली के दिन हमारी धार्मिक परंपरा का संदेश है।

—महन्त रोड, विलेपार्ले पूर्व, बंबई—५७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

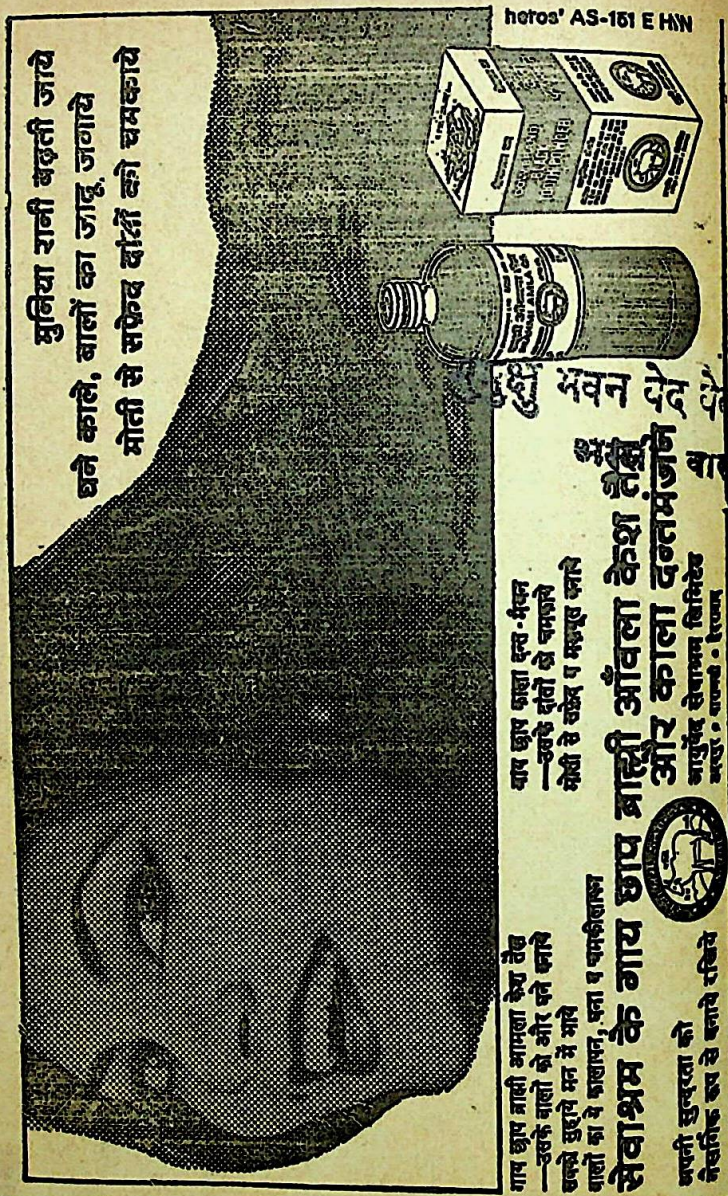

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००७ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज़ श्रीकृष्णदास मार्ग, बबई-४०० ००४ में मुद्रित।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जेनिथ स्टील पाइप्स एंड इंडस्ट्रीज लि.

उच्चतम दर्जे के निर्माता

* स्टील पाइप्स
* रोल्स एंड शिअर्स
* स्पेशल स्टील्स
* केमिकल्स

प्रतिष्ठा का आधार है क्वालिटी की वचनबद्धता

रजिस्टर्ड कार्यालय : मोती महल
१९५, चर्चगेट रेक्लेमेशन
बम्बई–४०० ०२०

टेली. : २२११२२

टेलेक्स : ०११-२४५८ और ०११-६३३४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Regd. No. BYW 2

everest/81/PP/291-hn

पार

नन्हे मुन्नों की मुस्कान से आबाद है जहान

उन्हें दीजिये प्यार भरी देखभाल

पारले ग्लुको—

स्वाद में निराले, शक्ति से भरपूर

दूध, गेहूं, शक्कर, और ग्लूकोज़ के
स्वाद और पौष्टिक गुणों से भरपूर

पारले ग्लुको भारत के सबसे ज़्यादा बिकनेवाले बिस्किट

वर्ल्ड टेलिविज़न पार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

There's something very different about this machine distributed by Batliboi

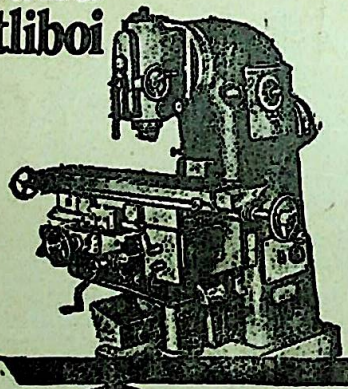

Batliboi have emerged as manufacturers of fine machine tools in their own right—not just the people known for distribution, service and export.

At Udhna in Gujarat, Batliboi turn out superb high precision machine tools including

Drilling machines, Shaping machines, Tapping machines and Milling machines... Shown here are three from the range.

Call on Batliboi for your needs. Our total engineering capabilities are at your service.

FA3 Milling Machine
Vertical/Horizontal/Universal
Features
Clamping surface of table 300 x 125
Spindle taper ISO
Speed range 45—2000 r.p.m.
Motor Power 3.7 h.p.

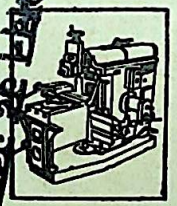

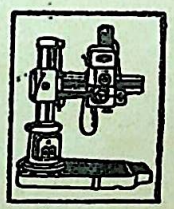

It's built by Batliboi!

BATLIBOI

BATLIBOI A COMPANY Ltd.

Regd. Office: P.B. No. 190A,
V. B. Gandhi Marg,
Fort, Bombay 400 023.
Branches and Dealer network
ALL OVER INDIA.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया

भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

वीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

*

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन

*

आवरण-चित्र

आकाश में पत्ते और चिड़िया

कोरियाई चित्रकार चोंग जोंग यो

की कलाकृति

[सौजन्य : चरन शर्मा]

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३१; अंक : ६

नवनीत: आपकी निगाह में ५

भारतीय ग्राम्य कला की दुनिया

पुपुल जयकर १२

अनुत्तर योगी १६

महाकवि फिराक़ गोरखपुरी

निर्मल कुमार १८

आध्यात्मिक चिकित्सा :

एक चमत्कारिक अनुभव ३२

प्रार्थना ३३

जब भगवान मेरे जीवन में आये

महाकवि जयदेव गोस्वामी ३४

उपन्यास की मृत्यु और उसका पुनर्जन्म

निर्मल वर्मा ३६

आत्माओं के अनोखे शिल्पी

श्रीगुरु मुक्तानन्द परमहंस

वीरेन्द्र कुमार जैन ४८

भारतीय नवोत्थान के स्वप्नद्रष्टा :

युवराज डा. कर्णसिंह

डा. प्रभाकर माचवे ६०

महाकवि निराला का दारागंज

प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त' ६५

मृत्यु और ओडीसियस

लार्ड डनसेनी ७१

भूमध्य सागर और मालवा

डा. भगवतशरण उपाध्याय ७२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४००००७

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग विद्यालय
अस्सी, वाराणसी

जून १९८२

सम्राट हेनरी अष्टम का प्रेम-पत्र ७८
दहशत (हिन्दी कहानी)
रज्जन त्रिवेदी ८०
हिमालय : मेरा मार्ग-दर्शक
रामनाथ पसरीचा ९२
जिन्दगी जीने का एक अंदाज यह भी
मनीषा वियाला ९७
बेगम का तकिया (उपन्यास-सार)
आनन्द कुमार १००
गुड़िया (उर्दू कहानी)
खान अहमद हुसेन १२१
लाभ (कविता)
नन्दकिशोर 'नन्दन' १२७
आखिर क्यों लिखा जाये ?
पाल राविंसन १३४
स्मृति के अंकुर
भट्टाचार्य, शुक्ल, १३८
बम्बई के आधे से अधिक.....
हरि १४०
परमात्मा की असीम अनुकंपा
सुंदररानी माथुर १४३

चित्रसज्जा : वी. एन. ओके, कमलाक्ष शर्मा, रामनाथ पसरीचा, आर. डी. पुरोहित, ठाकोर राणा, चंदुलाल सांकला, जयचंद हेडाऊ, श्रवण शर्मा, संतोष जड़िया और भाऊ समर्थ।

अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पूर्वदत्त शिक्षा, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी संस्था न्यास, संस्थापक : कुलपति क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री धरमसी म. खटाऊ, उपाध्यक्ष : श्री गिरधारीलाल मेहता, श्री जयसुखलाल हाथी।

सहयोगी प्रतिष्ठान

१– मुम्बादेवी संस्कृत महाविद्यालय २–भारतीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३–सरल संस्कृत परीक्षा विभाग ४–गीता विद्यालय ५–मूलचन्दलाल बोधनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६–मुन्शी सरस्वती मंदिर (पुस्तकालय) ७– बालमजी रामजी बाल पुस्तकालय ८–भारतीय संगीत विद्यापीठ ९– भारतीय नर्तन विद्यापीठ १०–भारतीय इतिहास विभाग ११–प्रकाशन मंदिर, पुस्तक मुनिवर्सिटी, मुन्शी साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या मैगजिन), चकना जर्नल (अंग्रेजी मासिक), संविद (संस्कृत मैगजिन), नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट (हिन्दी मासिक), नवनीत समर्पण (मुम्बाडी मासिक) १३–प्राचीन अंतर्दृष्टियां और आधुनिक आविष्कार योजना १४–औपनिवेशिक योजना १५–रामायणी मतवादियों समिति १५– म. म. कला कालेज और म. म. विज्ञान विज्ञान संस्थान (अंधेरी) १६–वल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (नयी दिल्ली) १७–हजारीमल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (चौपाटी, बम्बई) १८– सरदार पटेल अभियांत्रिकी कालेज (अंधेरी) १९– रणछोड़लाल अचरतलाल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०– रणछोड़लाल अचरतलाल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१–यशोदाबेन वाणिज्य कालेज, (डाकोर) २२– कला एवं विज्ञान कालेज (डाकोर) २३– स्वामीनारायण पालिटेक्निक (डाकोर) २४– श्री अमृतलाल कालिदास जोशी महिला कालेज (जामनगर) २५– ब. ह. मेहता विज्ञान कालेज (भरवारी) २६– राजेन्द्र प्रसाद संप्रेषण एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मूर्निट : शामलाल देवकरण नानजी संप्रेषण एवं प्रबंध-विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंप्रेषण कालेज, नयी दिल्ली; हरिलाल भगवती जनसंप्रेषण कालेज अहमदाबाद तथा बंगलौर; सोमानी जनसंप्रेषण कालेज, एलाकुलम्; बड़ोदा, चंडीगढ़, गुंटूर, हैदराबाद, मंगलौर तथा सिपूर में स्थित जनसंप्रेषण कालेज) २७– जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नयी दिल्ली २८– ब. ह. वाडिया स्कूल (अंधेरी) २९– वल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याभवन) बड़ोदा तथा भरवारी ३०–भवन का विद्या मंदिर, एलामक्कर, एरनाकुलम ३१– कोचीनवार्ड पर भवन का स्कूल, कोचीन ३२– वल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याभवन) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३– भवन का पब्लिक स्कूल, मेल, रामचन्द्रपुरम्, हैदराबाद ३४– संयुक्त संस्थाएं : संस्कृत विश्व परिषद; भारतीय स्त्री सेवा संघ; ज्योतिष परिषद् (बंबई) ३५– संस्कृति पाठ्यक्रम पुस्तकें।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ोदा, भोपाल, भुवनेश्वर, कलकत्ता, चंडीगढ़, कोयम्बतूर, डाकोर, दिल्ली, एरनाकुलम, गुंटूर, हैदराबाद, जम्मू, जामनगर, काकीनाडा, कानपुर, नागपुर, मद्रास, मथुरा, मंगलौर, मुम्बाई, नागपुर, सिलोन, श्रीनगर, सिपूर, विशाखापट्टनम्, लंदन (संयुक्त राज्य)।

भारतीय विद्या भवन
के.एम.मुन्शी मार्ग,चौपाटी, बम्बई-४००००७

फोन : ३५१४६१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Use fire-resistant

ANCHOR CEILING TILES

to save life and property

They are safer on every count:

FIRE RESISTANCE

TERMITE RESISTANCE

WATER RESISTANCE

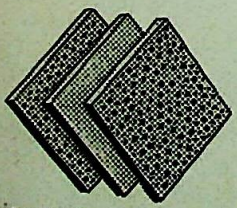

Made from Phenol-bonded all-teak Particle Board for greater durability

ANCHOR ceiling tiles

Approved by Government and Insurance Authorities

Available
Plain, Half Perforated,
Fully Perforated.
Perforated designs ideally suited for Acoustic Treatment.

THE INDIAN PLYWOOD MFG. CO. LTD.
9, Wallace Street, Bombay 400001

RATAN BATRA/IPM/E/157

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नवनीत : आपकी निगाह में

फरवरी-८२ का अंक पढ़ा। नवनीत अपने नाम को सार्थक करने के प्रति पूर्ण सजग है। विचार मंथन के उपरांत नवनीत सदृश सामग्री ही प्रकाशित होती है। 'राम और कृष्ण के काल में संजीवनी' प्राचीन औषधि वैज्ञानिक लेख तथा 'सुनसान में' और 'मुक्ति बोध के लिए' नामक कविताएं विशेष रुचिकर लगीं। पत्रिका के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए हार्दिक शुभ कामनाएं।

—संतोष पटौरिया शास्त्री, महोबा

०००

शीघ्र ही नवनीत का वार्षिक शुल्क प्रेषित कर रहा हूं। नवनीत भारतीय संस्कृति का स्वच्छ दर्पण है। इसे पढ़ते रहने पर कोई भारतवासी अपना आदर्श नहीं भूल सकता।

—योगेन्द्र मधुप, बाराबंकी

०००

नवनीत वास्तविक ज्ञानकोश है। गत फरवरी-८१ से हमारे यहां नवनीत का अंक देखने-पढ़ने को उपलब्ध होता आ रहा है। मार्च १९८२ का अंक भी बड़ी उत्सुकता के साथ मैंने पढ़ लिया। नवनीत के पठन के समय भारतीय विद्या भवन की पूर्व प्रकाशित पाक्षिक पत्रिका 'भारती', जिसमें जुलाई १९६६ में मेरी एक रचना भी प्रकाशित हुई थी, का स्मरण होता रहा। धर्म, संस्कृति और समाज के नैतिक मूल्यों के उन्नयन हेतु नवनीत में इसी प्रकार साहित्य-सामग्री अतीव उपयुक्त सिद्ध होती रहे। आज की मानसिक उद्विग्नता के निराकरणार्थ समाज का यानी पर्याय में राष्ट्र का चरित्र संवर्धन आवश्यक होता जा रहा है और यही महान कार्य नवनीत के माध्यम से भारतीय विद्या भवन जो कर रहा है, उसके लिए समाज और राष्ट्र आपका ऋणी तथा कृतज्ञ रहेगा।

—गणेश त्र्यंबक कुलकर्णी, सोलापुर

०००

नवनीत का मार्च १९८२ का अंक देखा। वैसे तो मेरी यह धारणा है कि आज पत्रिकाओं की भीड़ में एकमात्र नवनीत ही वैचारिक और तथ्यपूर्ण पत्रिका है, जो मनोरंजन के साथ ज्ञानवर्धन भी करती है। प्रस्तुत अंक के सभी लेख सराहनीय हैं। कहानी 'मसहरी' और सुधा का लघु उपन्यास 'के पतिआ लय जायत' पसंद आया। प्रस्तुति सशक्त रही। ब्रज की होली का चित्रण भी सावित्री परमार ने काफी संवेदना के साथ किया है। इस अंक के समस्त लेखकों को बधाई और पत्रिका के संपादक मंडल को हार्दिक मंगल कामनाएं।

—रवींद्र कुमार मिश्र, कानपुर

०००

नवनीत मैं नियमित रूप से पढ़ता हूं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विमल सहर्ष पेश करते हैं
फेशनेबल वस्त्रों का एक सुखी परिवार.

असंख्य डिजाइनों एवं रंगों में
सूटिंग्स • शर्टिंग्स • साड़ियाँ • ड्रेस मटीरियल

अद्वितीय VIMAL विमल
A RELIANCE PRODUCT
अंतर्राष्ट्रीय श्रेणी की गुणवत्ता

Madan/RTV 6/86

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्य पत्रिकाएं न किये के नीचे पड़ी-पड़ी तुड़-मुड़ क्यों न जायें। क्या लिखूं और क्या न लिखूं नवनीत के बारे में। शांति-प्रसाद ने तो बातों ही बातों में हिंदी साहित्य के न जाने कितने आयामों की चर्चा कर डाली है। मुझमें इतनी योग्यता कहां? मैं तो केवल इतना कहना चाहता हूं कि नवनीत का संपादक यदि मैं होता तो इसे इतना अच्छा न निकाल पाता, जितना अच्छा तुम निकाल रहे हो। तुम्हारी संपादकीय प्रतिभा और सुरुचि को प्रणाम करता हूं। युग-युग जिओ और युग-युग जिये तुम्हारा नवनीत। एक मात्र यही पत्रिका तो ऐसी है जो गहन, शाश्वत और कल्याणकारी साहित्य को छाती से लगाये जन-मंगल में दत्तचित्त है। 'सत्यं शिवं सुंदरम्' का शुद्ध नवनीत है यह। —बांकेबिहारी भटनागर, भू.पू. संपादक 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' दिल्ली

०००

श्रीमती चंद्रकांता कक्कड़ की कहानी 'अपना घर' (फरवरी-८२) निम्नवर्गीय परिवारों के मुखियाओं की उस मानसिकता को चरितार्थ करती है, जिसमें वे घर की बहू-बेटियों को मिट्टी का खिलौना समझकर बेचने का प्रयास करते हैं। इस संतुलित हृदयस्पर्शी कहानी के लिए बधाइयां।

—सिंघई सुभाष जैन, इंदौर

०००

मैं लगभग डेढ़ वर्ष से नवनीत पढ़ रहा हूं। इस अवधि में मैंने महसूस किया है कि नवनीत हिंदी की एकमात्र पत्रिका है, जो अपने हर नये अंक में अपने नाम को सार्थक करती चलती है। इसके लिए आप अपने पूरे संपादक मंडल के साथ बधाई के पात्र हैं। परंतु इधर कुछ अंक अध्यात्म की ओर अधिक उन्मुख प्रतीत हुए। पत्रिका अपने आप में पूर्णरूपेण स्वस्थ है। फरवरी अंक में श्री रमेश दवे की कविताओं ने बेहद प्रभावित किया।

—प्रेमशंकर रस्तोगी 'शशांक', रायपुर

०००

नवनीत का मार्च-८२ का अंक कई उत्कृष्ट लेखों के कारण एक साहित्यिक निधि के रूप में संग्रहणीय एवं सुरक्षणीय है। श्री वीरेंद्र जैन के साक्षात्कारी लेख के द्वारा इंद्रायणी के मनोहारी तट पर संत भक्त ज्ञानेश्वर की लीला-भूमि आलंदी की यात्रा का आनंद मिला तथा उनके साथ ही भावजगत में भाव-मूर्च्छा के लोकोत्तर जादुई अनुभव सुलभ हुए। उनके साथ ही 'जीते जी मानो कि एक और जन्मांतर हो रहा है।' खूब 'भींजे दास कबीर' की भांति चिर तृषार्त कंठ को रसानुभूति की तृप्ति मिली। आंसू उमड़े और दिव्य भारत देश की शाश्वती सांस्कृतिक प्राणधारा के जीवंत प्रवाह की सघन और गहनतम अनुभूति हुई। 'एक संन्यासी, नयी ज़िंदगी' में भावात्मक अंतर्द्वंद्व का मनोरम चित्रण है। विवेकानंद जन्म से कायस्थ थे, न कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रेखा के रंगरूप को चाहिए लक्स का प्यार-दुलार.

रेखा खुल कर कहती है कि लक्स के प्यार-दुलार से ही उसका रंगरूप इतना निखरा-निखरा रहता है.

खुद रेखा के शब्दों में: "लक्स की प्यार भरी सुरक्षा मेरे रंगरूप को कोमल और सुंदर रखती है."

Rekha

शुद्ध, सौम्य लक्स—
फ़िल्मी सितारों का सौंदर्य साबुन.

हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

HTB-HLL-7518

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेखकों से निवेदन

हमारे कार्यालय में बहुत-सी रचनाएं ऐसी आती रहती हैं, जिनके साथ वापसी के लिए पर्याप्त टिकट लगा लिफाफा संलग्न नहीं रहता, भविष्य में ऐसी रचनाओं पर विचार नहीं किया जायेगा और न उनके संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार ही किया जायेगा। —संपादक, नवनीत

ब्राह्मण। यह त्रुटि हो गयी है। आचार्य विजयेंद्र स्नातक की समीक्षा विद्वतापूर्ण है। वेदाध्ययन की परंपरा के पुनरुज्जीवन की आवश्यकता पर उचित बल दिया गया। ब्रज की मदमाती होली का सजीव दर्शन भी हुआ। ऐसे अप्रतिम संकलन के लिए बधाई देना शब्दों की सीमित क्षमता से परे है। नवनीत भारतीय संस्कृति की मुखपत्रिका हो गयी है। बधाई।

—शिवानंद, प्रधानाचार्य, मेरठ

०००

गागर में सागर भरनेवाले लेखों, मनोरंजक शिक्षाप्रद कहानियों एवं भावपूर्ण कविताओं से परिपूर्ण नवनीत का फरवरी १९८२ का अंक अपने आप में अद्वितीय रहा। 'सुकरात की पत्नी जांतिपी', 'सर्वाधिक गुणकारी नीबू', 'भारतीय साहित्य की अस्मिता : द्वंद्व और द्वंद्वातीत की संयुति', 'राम और कृष्ण के काल में संजीवनी', 'तिब्बत : तब और अब' और 'साहित्य की सार्वभौमिकता' लेख विशेष अच्छे लगे। 'भारतीय... संयुति' तथा 'साहित्य की सार्वभौमिकता' लेखों में विराट् हिंदू सम्मेलन के अध्यक्ष, भारतीय संस्कृति तथा हिंदी के महान उपासक एवं संरक्षक, कश्मीर के भूतपूर्व सदरे-रियासत एवं भूतपूर्व केंद्रीय मंत्री डॉ. कर्णसिंह की जो प्रशंसा की गयी है, वह उचित, सामयिक तथा सराहनीय है। 'राम और कृष्ण के काल में संजीवनी' लेख में जिस महौषधि संजीवनी तथा शीघ्रातिशीघ्र औषधिवाहक वायुपुत्र की उड़न-शक्ति का उल्लेख है, निश्चय ही वह आम जनता के लिए कुतूहलप्रद तथा आधुनिक विज्ञान के शोध का विषय है।

—शकुनचंद गुप्त विशारद, रायबरेली

□

पुरस्कार

बात सन १९२५ की है। उस वर्ष नोबेल पुरस्कार बर्नार्ड शा को दिया गया था। उन्होंने पुरस्कार का प्रमाण तो ले लिया लेकिन पुरस्कार की राशि स्वीकार नहीं की। वे बोले—'मेरे इनाम की यह राशि आप स्वीडन के उन गरीब लेखकों में बांट दीजिये, जो भ्रष्ट प्रकाशकों के कारण दरिद्रता की ज़िंदगी जी रहे हैं।' शा की बात मान ली गयी और उनकी वह पुरस्कार की राशि एक ऐसे ट्रस्ट को सौंप दी गयी, जो गरीब लेखकों के हित में काम करती थी।

—असीम चक्रवर्ती

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस मास का रत्न

इंडियन बैंक के ग्राहक-रत्नों से निष्ठा का आभूषण बना है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोती (पर्ल) जून में जन्मे लोगों का रत्न माना जाता है। गुलाबी, चांदी जैसे, क्रीम, सुनहरी, हरे, नीले या काले रंग मे मिलता है। मोझ पैमाने पर इस का ठोसपन 3 से 4 तक है। यह धीरता, पवित्रता और निष्ठा का प्रतीक है।

ADWAVE/IB/1951/11HIN

इंडियन बैंक - हर मौसम में, हर मानक से बैंक-रत्न

बैंकिंग धन का प्रतीक है। धन, जो व्यक्तियों, संस्थाओं, राष्ट्रों की सुख-समृद्धि मे सहायक है। सामाजिक व आर्थिक उत्थान के साधन के रूप में, इंडियन बैंक उत्पादक कार्यों के लिए धन प्रदान करता है और विभिन्न प्रकार के लेन देन में बैंकिंग सेवा भी।

इंडियन बैंक में, आप के निर्देश के अनुसार किराये, बीमा किस्त, और अन्य राशियों का लगातार समयानुसार भुगतान किया जाता है, धन का संचार भी। साथ ही आपके चैक, डिविडेंड वारंट व पैन्शन की भुनाई भी कराई जाती है।

इंडियन बैंक में ऋण-सहायता के लिए एक विशिष्ट विभाग है जो रियायती ब्याज दरों पर कमज़ोर वर्गों की अपना धंधा शुरु करने में कई योजनाओं के आधीन मदद करता है। लघु उद्योग चालक, किसान तथा निर्यातकर्ता भी तरजीही सेवाएं पाते हैं। और आप की बचत में तेज़ बढ़ोतरी के लिए, इंडियन बैंक में कई योजनाएं है जो आपकी ख़ास-ख़ास ज़रूरतें पूरी करती हैं।

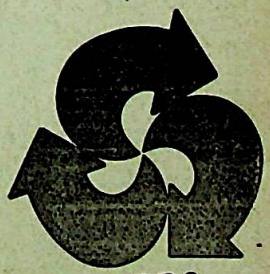

इंडियन बैंक

आपकी सुख-समृद्धि में सहायक

अब प्लैटिनम में जड़ित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रख्यात भारतीय कलाविद् पुपुल जयकर का लेख

भारतीय ग्राम्य कला की सहज सुरम्य दुनिया

□

समाज-सेवा के लिए पद्मविभूषण की उपाधि से अलंकृत पुपुल जयकर ने भारतीय कला और शिल्प पर दो पुस्तकें लिखी हैं। वे वाणिज्य मंत्रालय की हस्तशिल्प-परामर्शदात्री भी हैं।

भारतीय ग्राम्य कला की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति के दर्शन हमें गांवों में रहने वालों, आदिवासियों और यायावरों की संस्कृति, धार्मिक कृत्यों, शिल्प-विज्ञान, जादू-टोने और पुराणकथाओं के विलयन में मिलते हैं।

कलाकारों का अनामत्व भारतीय ग्राम्य कला की एक विशिष्टता है। उसकी एक अन्य विशिष्टता यह है कि वह ग्रामीण जीवन के सुपरिचित और अपरिवर्तनशील रूप-विधान को भी प्रतिबिंबित करती है। ग्रामीणों की साधारण आवश्यकताओं, उनके हर्षों, उनके भयों, परंपराओं से उनके अंतर्संबंधों आदि का प्रतिबिंबन भी हमें ग्राम्य कला में देखने को मिलता है। ग्राम्य कलाकार ग्रामीण

ऊपर का चित्र : कृष्ण और गोपियां : गुजराती पट-चित्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिवेश में प्रवेश करने वाले सब नये तत्वों का समावेश अपनी कला में करते रहते हैं।

ग्राम्य कलाकारों के शिल्प में एक अद्भुत सुघट्यता दिखायी देती है। यह सुघट्यता सिर्फ़ रूप-विधान में ही नहीं है, मिट्टी, लकड़ी, मोम आदि उन पदार्थों में भी है, जिनकी सहायता वे अपनी कला-कृतियों के, जो अनुपात और लक्षणों के ब्राह्मणी आदेशकों से सर्वथा मुक्त है।

गांव के कुम्हारों, घासियों, सुतारों और सुनारों आदि शिल्पियों की कला-परंपरा में मानवतारोपी रूप-विधान और पूजा-पद्धति के प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं।

आदिवासियों में शिल्पी-संरचना का कोई आधार नहीं है, उनके शिल्पी वृत्ति-मूलक आवश्यकताओं के आधार पर अपने बर्तनों, आभूषणों, वस्त्रों, खेती में काम आने वाले औज़ारों आदि को तैयार करते हैं। उनकी कला-परंपरा ग्राम्य कलाकारों की कला-परंपरा से अलग नहीं है।

ग्राम्य कलाकारों की कलाकृतियों में रंगों के प्रति उनके प्रेम, देवी-देवताओं के उन्मुक्त-प्रेमों और कृत्यों और उर्वरता के चित्रांकन के प्रति उनके लगाव को आसानी से देखा जा सकता है। ये कलाकृतियां झोंपड़ों और सड़कों की दीवारों पर अंकित की जाती हैं; वे ही इन कलाकृतियों की कला-दीर्घा की भूमिका निभाते हैं। अधिकांश कलाकृतियों के विषय देवी-देवताओं और चरित-नायकों के कारनामे होती हैं।

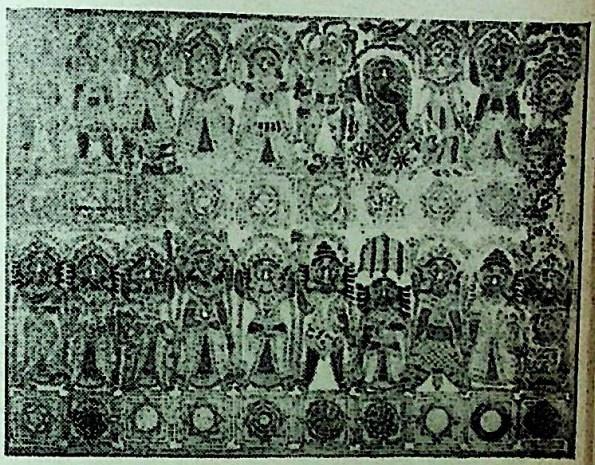

दस महाविद्या : तांत्रिक चित्रकार बटोही झा द्वारा चित्रित : मैथिली पट-चित्र

चूंकि ये कलाकृतियां अल्पकालिक होती हैं, और उनके कलाकारों का यह आग्रह नहीं होता कि वे उन पर अपना नाम लिखें, इसलिए जैसे ही कोई कलाकृति धूमिल पड़ती है, उस पर सफ़ेदी पोतकर, कोई दूसरा कलाकार उसके स्थान पर नयी कलाकृति बना देता है, नयी ऋतु के बारे में या किसी धार्मिक अनुष्ठान के बारे में।

कागज़ का प्रचलन भारत में पंद्रहवी सदी में आरंभ हुआ था। उसी काल में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद

किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद.

सुपर रिन से नियमित धुलाई करने पर आपके कपड़ों में ऐसा फ़र्क आये कि दूर से दिखे. किसी दूसरी डिटर्जेंट टिकिया या बार के मुकाबले सुपर रिन कहीं अधिक सफ़ेदी लाता है, क्योंकि सुपर रिन में अधिक सफ़ेदी की शक्ति है.

आज़माइए और सबूत पाइए:

किसी अन्य डिटर्जेंट बार से धोया हुआ

सुपर रिन से धोया हुआ

सुपर रिन

अधिक सफ़ेदी की शक्ति से भरपूर

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

लिंटास-RIN. 35-1511 HI

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनेक देशी भाषाओं का जन्म भी हुआ, और इन देशी भाषाओं और बोलियों में लोककथाएं लिखी और सुनायी जाने लगीं। आम आदमी के लिए ऐसी लोक-कथाओं को समझना आसान था। लेखक और कलाकार परंपरागत आख्यानों को सचित्र पांडुलिपियों के माध्यम से प्रस्तुत करने लगे। कला परिवहनीय हो गयी। दीवारों से यात्रा करते हुए वह चीरकों, पटुओं और कागज़ के पन्नों तक पहुंची। झोंपड़ों की मिट्टी की दीवारों और महलों की पक्की दीवारों से प्रगति करके, ग्राम्य कला छाल-पत्रों से निर्मित पांडुलिपियों पर प्रकट होने लगी। ग्राम्य कलाकार अब देवी-देवताओं तथा गृह-देवता का अंकन कागज़ों और कपड़ों पर करके उन्हें तीर्थयात्रियों को बेचने लगे। चित्रकार के रूप में प्रख्यात ग्राम्य कलाकार अब तीर्थ यात्रा पर आये यात्रियों की आवश्यकता-नुसार चित्र बनाने लगे। आगे चलकर, ये चित्रकार पत्थर, लकड़ी और गच को भी अपनी कला का माध्यम बनाने लगे।

पुरी, नाथद्वारा, तंजौर, मिथिला, कालीघाट में जो मूर्तियां हमें देखने को मिलती हैं, वे विशुद्ध मिट्टी या वनस्पतियों के रंगों में बनी हैं। उनमें हम मूर्ति, गाथा, सामान्य प्रतीकों की तादात्म्यता और चित्रपट को एक ही माध्यम में ग्रथित हुआ पाते हैं। रूपांतर : हंस

('स्पैन' से साभार)

□

जो प्रज्ञावान होते हैं वे किताब और जीवन को साथ-साथ पढ़ते हैं।

—लिन यू तांग

०

ऐसा नहीं है कि मैं मृत्यु से डरता हूं। मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता हूं कि जब ऐसा घटित हो, तब मैं वहां न रहूं।

—वूडी एलेन

०

अहम्‌वादी सबसे ज्यादा चोटे उसे पहुंचाता है, जिससे वह सबसे ज्यादा प्यार करता है—यानी अपने आपको !

०

युवक भी हो और सुंदर भी हो तो यह प्रकृति का एक संयोग है। वृद्ध हो और सुंदर हो तो यह प्रकृति की कला है।

—मार्जरी ग्रीनबो

०

यूरोपीय एकता के जनकों में एक, राबर्ट श्यूमैन कुंवारे थे, 'सब चीज़ों को समझकर,' वे कहा करते थे, 'मैंने राजनीति को भी पसंद किया। यह भी महिलाओं की तरह ही चंचलमति है, पर उनसे कम ईर्ष्यालु है।' संकलन : कुमार प्रशांत

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'नवनीत' के एक पाठक की निगाह में इस युग की सबसे बड़ी उपलब्धि : 'अनुत्तर योगी'

□

[एक भावक का पत्र : सम्पादक 'नवनीत' के नाम]

परम आदरणीय वीरेंद्रजी — पटना

सादर नमस्कार ! — ३–४–८२.

आप और आपका परिवार खुशहाल होगा, इसी उम्मीद के साथ पत्र लिख रहा हूं। शायद आपको आश्चर्य होगा, कि मैं एक अनजाना-सा, पर अनजाने नाम के व्यक्ति से पारिवारिक कैसे वन गया ! तो यह पृथ्वी का निर्माण, और काल की गति के साथ-साथ इसका विध्वंस सब कुछ अनजाने ही होते आया है। मैं पिछले दो-तीन वर्षों से आपके पास पत्र लिखने के लिए सोच रहा था, पर संकोचवश नहीं लिख पाता था। लेकिन 'अनुत्तर योगी' ने मेरे संकोच को हटा दिया। जैसे पाषाण के ऊपर बैठकर कोई कुशल कलाकार संगमरमर की मूर्ति में प्राण फूंकने की कोशिश करता है, फिर भी वह प्रकृति और ईश्वर के नज़दीक अपने को विवश पाता है। ठीक उसी तरह **नवनीत** पत्रिका आपके लेख के बग़ैर प्राणहीन रह जाती है। पिछले कई वर्षों से मैं **नवनीत** को नियमित रूप से पढ़ता आ रहा हूं, लेकिन सर्व प्रथम सूची में आपके नाम को देखता हूं। और जब कभी आपका लेख नहीं मिलता है, तो एक घनीभूत अंधकार से घिर जाता हूं। मैं और मेरी ज़िंदगी पुस्तकों के बीच सिमट कर रह गयी है।

नवंबर' ८१ के अंक में खजुराहो के बारे में आपने जो लेख लिखा, वह हिंदी-साहित्य के लिए ही नहीं, इस संसार के लिए एक अमूल्य निधि है। उसे पढ़ने के बाद मैं पुनः एक बार खजुराहो गया और मंदिर के हर परिवेश को वीरेंद्र जैन की लेखनी के रूप में घूरते पाया। सब कुछ अद्भुत था। जो कुछ था, वह दिल के चाहने पर भी शब्दों की कमी के चलते लिख नहीं पा सकता हूं। उसके बाद जून' ८१ के अंक में 'अनुत्तर योगी' का एक अंश पढ़कर मैं इस लोक को भूल गया। बहुत ही आरजू और मिन्नत के बाद मैं प्रकाशक महोदय से 'अनुत्तर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगी' मंगाने में सफल रहा। पुस्तक है! विचित्र है! प्रसाद-साहित्य को पढ़ने के बाद मुझे लगा था, कि काल की गति रुक गयी है। उसके बाद कहीं ठहराव अगर मुझे मिला तो स्व. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी में। फिर तो लोग आते रहे और जाते रहे। प्याज़ के उतारे छिलके में सौंदर्य झांकते रहे और नयी कविता और प्रगतिवादी कविता की वाहवाही लूटते रहे। पर कहीं किसी की लेखनी ने हृदय को स्पर्श नहीं किया। लेकिन सागर को शब्द एवं सुंदर वाक्य-खण्ड बनकर झरने के रूप में 'अनुत्तर योगी' में मैंने झरते पाया। यह इस सदी की, इस युग की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

नवनीत के मार्च' ८१ के अंक में आपने अपनी लेखनी के माध्यम से संत ज्ञानेश्वर को बिलकुल सामने ला खड़ा किया है। लगता है, सब कुछ आंखों के सामने घटित हुआ हो। चांगदेव और ज्ञानेश्वर का प्रसंग जहां आता है, लगता है कि इस महान लेखक को भगवान इतनी लंबी उम्र दे कि वह अमर बन जाये। उम्र से हों या न हों, पर अपनी लेखनी के द्वारा आप अमर बन गये। आप मानव नहीं, महामानव बन गये हैं। आपका – कृष्णवल्लभ शर्मा, पटना

आशीर्वाद

ऐसी कथा है।

महान् यूनानी दार्शनिक प्लेटो (अफलातून) मरण शय्या पर पड़े हैं। अरस्तू तथा दूसरे शिष्य महर्षि को घेरे बैठे हैं। महर्षि की जैसे ही मूर्च्छा टूटी, उन्होंने आंखें खोलीं, देखा सिर नीचा किये अरस्तू सिसक रहा है।

'प्रिय . . . तुम . . . रो रहे हो ? . . . जन्म और मृत्यु के . . . रहस्य को . . . जानने वाले तुम . . . आंसू . . . ?'

'गुरुदेव . . आशीर्वाद दीजिये, गुरुदेव. . . . आशीर्वाद दीजिये कि हम अपने को इस योग्य साबित कर सकें कि दुनिया कहे कि हम महर्षि प्लेटो के शिष्य हैं।'

कमरा यकायक अट्टहास से गूंज उठा। आसन्न मौत से बेखबर गुरु अफलातून उन्मुक्त हंसी हंस रहे हैं।

'दुनिया कहे कि तुम प्लेटो के शिष्य हो ? क्या तुम्हारा अपना नाम काफ़ी नहीं . . . ? हां . . . . आशीर्वाद . . . मेरा आशीर्वाद है, वत्स, कि तुम इतने योग्य बनो कि दुनिया तुम्हें तुम्हारे नाम से जाने।' और ऋषिवाणी मौन हो गयी। आज अरस्तू मानव-इतिहास में अरस्तू होने के नाते ही जीवित है।

—लीलाधर पिरसाली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युवापीढ़ी के सूर्यमान प्रतिभा-पुरुष निर्मल कुमार का लेख

महाकवि फ़िराक़ गोरखपुरी :

सौन्दर्य ही जिसका ईश्वर था, और सौन्दर्यानुभूति ही जिसका आत्मज्ञान था

एक अजीब इत्तफाक है कि जो दिन यम ने मुकर्रर किया उर्दू की सबसे बड़ी आधुनिक काव्य प्रतिभा फिराक़ गोरखपुरी की मृत्यु के लिए, उसी दिन मशहूर मसखरे केस्टो मुखर्जी और बदनाम डाकू छविराम को भी अपने दरबार में बुलवाया। तीनों में कोई ज़ाहिरा संबंध नहीं है। एक रुबाइयों की नाजुक भीनी बदली में लिपटी रूह है। दूसरी कहकहों की आवाज़ों का विलास पहने है। तीसरी यमदूतों की बराबरी करने वाले काले लिबास में मुंह ढाटे से छुपाए हुए है। क्या कहकहों में, डकैती और अपराधों में और नाजुक खयाली में कोई भीतरी संबंध है? है तो। क्योंकि ये तीन रंग हैं मनुष्य की आत्मा के। जुंग कहता है कि जो असत् है वह चार चेहरों वाला और और जो सत् है उसके तीन चेहरे हैं। असत् हरदम इस कोशिश में रहता है कि उसे सत् समझा जाये। इसके लिए वह अपना एक चेहरा छुपा लेता है। वह चौथा चेहरा उस साधारण आदमी का हो सकता है जिसमें इन तीनों के गुण नहीं, मगर जिसमें ये तीनों रहते हैं। कोमल अहसास बनकर, हंसी बनकर और भय बनकर। उस गली-मुहल्ले के आदमी को भी इन विशिष्ट लोगों के साथ अपनी वादी में वही जगह देकर मौत ज़िंदगी की उस तसवीर को पूरा कर देती है जिसे खुद ज़िंदगी पूरा नहीं कर पाती। ये चारों कभी इकट्ठे नहीं हो सकते। और इकट्ठे न होंगे तो ज़िंदगी के टुकड़े कहलायेंगे, ज़िंदगी नहीं।

फिराक़ भी ज़िंदगी का एक ऐसा ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टुकड़ा था जो इसलिये कि वह एक टुकड़ा था ज़िंदगी न हो पाया। फिराक़ कभी ज़िंदगी जी न सका —

उम्र फ़िराक़ ने यूं ही बसर की
कुछ ग़में दौरा कुछ ग़में जाना

अनुभूतियां कुछ इतनी तेज़ और पैनी मिली थीं कि अक्सर शामो-सुबह के रंग, फूलों का मदमाता जोवन या तो इंतहा ग़म जगा देते थे या इंतहा खुशी, इतनी कि ज़िंदगी बर्दाश्त के बाहर हो जाती थी। खुद फिराक़ ने अपने बचपन का ज़िक्र करते हुए कहा है कि मामूली-मामूली बातें जो औरों के लिए कोई मायने नहीं रखतीं उसके मासूम बचपन पर ही भारी होने लगी थीं। कविता की देवियों ने बचपन में ही उसके दिल की खिड़की पर अपनी भोली सूरतें दिखाना शुरू कर दिया था, इस तरह कि कुमार रघुपति ठगा-सा रह जाता था। अक्सर अपने को औरों से अलग देखकर उसका दिल होता, कहीं छुप जाऊं। उसे इतनी शर्म घेरे रखती कि, खुद उसके शब्दों में, 'एक झाड़ू की तरह' वह सबकी नज़रों से छुपकर ही घर में जीना चाहता था।

मगर ज़िंदगी अपनी छेड़खानियों से कहां बाज़ आती है। जिसे उसकी अनुभूतियां, तीखे दर्द, अनोखी चाहें खुद अपने से, अजनबी बनाये दे रहे थे। उसे शब्दों ने एक सुंदर मूर्ति की तरह अपने सारे सौंदर्य में नग्न कर दिया। जिसने भी सुना बोला, यह कौन है, यह कौन है?

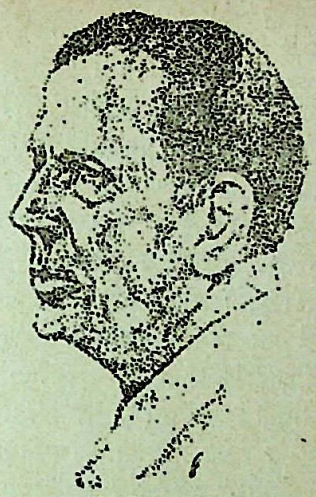

महाकवि फ़िराक़ गोरखपुरी
शाश्वती में जयवन्त हों

मीर के बाद रेखती ने यह कैसा सिंगार किया है! ये गंधर्व बालाएं कब से उर्दू बोलने लगीं? ये कालिदास की यक्षणियां मुशायरों को रामगिरि पर्वत समझ कैसे अपने यक्ष को ढूंढ़ने आ गयीं?

फिर तो यह हुआ कि एक हुजूम-सा लग गया।

दूर-दूर से लोग मिलने आने लगे, कोई फिल्मी दुनिया से, कोई पत्रिकाओं से, कोई विद्वता की धूल से उठकर, कोई दिल के शोरों से घबराकर। मगर इनमें वह अभिन्नता कहां थी जो उस 'लज्जित झाड़ू' को सहारा देती। वे तो एक जीनियस से मिलने आते थे जैसे लोग अजायबघर में जाते हैं अजीब चीज़ें देखने। और इतने मिलने वालों की भीड़ के बीच भी अकेली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रह गयी जो, वह फिराक़ की आत्मा तड़पकर, रोकर बोली—हां।

'मिल आओ फ़िराक़ से भी एक दिन वह शख्स एक अजीब आदमी है।'

तनहाई ने रंग बदला। तनहाई अनोखापन बन गयी। लज्जा तेवर बन गयी। अब फिराक़ ने अपने को किस्सों की धूल से ढक लिया। उसकी जीनियस के, उसके अजीब स्वभाव के, उसके अप्राकृतिक शौकों के किस्से बनने लगे जो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के होस्टलों में ही नहीं, समूचे भारत के विश्वविद्यालयों में मशहूर हो गये। इतना ही नहीं वैताल और रिचीरिच की तरह उसके नाम और रूप को लेकर लड़कों की कल्पना नये-नये किस्से गढ़ने लगी। अकेलेपन में जीने वाला लजीला फिराक़ लोगों के दिमाग में बेलिबास हो गया! फिराक़ के हौसले थे कि उसी ज़िंदगी में रम गया। यूनिवर्सिटी के लड़के, मुशायरे, उनका उसे खींचकर वहां लाना, कहकहे, शराब के नशे में चूर फिराक़ की गालियां 'रिक्शेवालों की औलाद,' 'तांगेवालों की औलाद', फिर कहकहे और एक अनुशासन विहीनता का उठता सागर जो उसकी मौजूदगी में कभी अपना संयम भी न तोड़ता था—ये ज़िंदगी फिराक़ को मिली तो उसने कहा यही सही। कोई पद पाने की लालसा न थी, समाज में कोई स्थान बनाने की चाह न थी। बस था यह कि सरस्वती मुझे खुद अपना बेटा कहे और उसके लिए थी ज़रूरत लगन की, मौन एकांकी साधना की। और फिराक़ डूब गया उसमें।

निजी ज़िंदगी से न कुछ लिया न दिया। जो पत्नी मिली उसके लिए खुद फिराक़ के शब्दों में, 'पाव भर सत्तू खाकर एक कोने में लेटे रहना ही स्वर्ग था।' जीवन के दुर्लभ सौंदर्य की न उसे अनुभूति थी न आवश्यकता। उसने नारी की न जाने कैसी मूरत फिराक़ की निजी ज़िंदगी में रख दी कि उसे नारी ने फिर कभी आकर्षित नहीं किया। मगर यह उसकी निजी ज़िंदगी की बात है। नारी का सौंदर्य, कोमलता, मातृत्व और मधुर अनुभूतियों से महकता रूप उसकी कल्पना में हमेशा खिला रहा।

रंगत है कि घुंघरुओं की मद्धम झंकार,
जोबन कि पिछली रात बज रहा सितार।

किस वेदना का काम था यह कि उसने फिराक़ के दिल के दो टुकड़े कर दिये। एक टुकड़े में नारी का निजी अनुभवों से बना वह कुरूप, संवेदनाहीन रूप बस गया, जिसने जीवन भर उसे इतना तंग किया कि इससे पनाह लेने को वह अप्राकृतिक यौनाचार की ओर बढ़ा। दूसरे टुकड़े में उसने नारी का वह सुंदर और दिव्य रूप सजाकर रखा जिसमें जीवन का उन्माद और मातृत्व की पवित्रता एक साथ मिल गये:

लहरों में खिला कंवल नहाए जैसे
दोशीज़ाए सुबह गुनगुनाए जैसे
ये रूप ये लोच ये तरन्नुम ये निखार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बच्चा सोते में मुस्कराए जैसे।

एक भरी पूरी, मांसल, कामोत्तेजक तसवीर के होंठों पर बच्चे की पवित्र मुस्कान रखकर फिराक ने नारी के उस निरापद, अमर सौंदर्य को जीवित किया जो पुरुष के लिए दिव्य का इशारा भी है।

काश कि फिराक़ ने उस साधारण गली-कूचे के आदमी की सूरत से अपनी सूरत मिलाई होती। शायद तब उसे उसकी सत्तू खाकर ऊंघने वाली, संवेदनाहीन के दिल में छुपे उस खज़ाने का पता चलता जो फिराक़ की तरह बहुमूल्य तो न था, मगर इतना मूल्यवान ज़रूर था कि उसके अभाव में फिराक़ की अपनी ज़िंदगी रुक गयी, ठिठक गयी, घुट गयी, नष्ट हो गयी।

वह उन अनुभूतियों को न जी सका जो नारी ने छेड़-छेड़कर उसकी कल्पना में भर दी।

फिराक़ मीर की तरह खुद नारी से प्रेम की वह ज़िंदगी न जी सका जिसके बिना उसका निजी जीवन बिना बदली का सावन बन गया। मगर उसकी संवेदना मुखर थी। जो औरों ने जिया उसे संवेदना के ज़रिये खुद अपने पर गुज़रे जैसा महसूस करने की शक्ति उसे प्रकृति ने दी थी। अंग्रेज कवि ईट्स ने कहा भी है: 'जो ज़िंदगी को भुगतता है और जो उसे महसूस कर चित्रित करता है दर-असल दो अलग-अलग हस्तियां हैं।' फिराक़ इन दोनों हस्तियों में दूसरी तरह की हस्ती बन गया।

संवेदना के तार उसकी सांसों के सितार पर कुछ इस तरह छिड़ गये कि रूसी क्रांति आयी तो वह झनझना उठा और 'धरती की पुकार' जैसी कविताएं बन गरजने लगा :

एक हल्कए जंज़ीर तो जंज़ीर नहीं होती
एक नुक्तए तसवीर तो तसवीर नहीं होती
तकदीर तो कौमों की हुआ करती है
एक फर्दकी किस्मत कोई तकदीर नहीं होती

फिर जब हिटलर ने विश्वयुद्ध छेड़ा तो भयग्रस्त मानवता की मनोदशा उसकी संवेदना से इस तरह छू गयी कि सौंदर्य महक बन छाता रहा और उसी के बीच बीच इंसान की विश्वयुद्ध से त्रस्त आत्मा भी उभरती गयी।

करीब चांद के मंडरा रही है एक चिड़िया
भंवर में नूर के चले नाव जैसे करवट से
मुफलिसी न हो तो कितनी हसीन है दुनिया
ये हरसिंगार के पेड़ अपनी ही हया से बोझल
सिपाहे रूस कितनी दूर है बर्लिन से।

एक सुंदर रेशमी दुपट्टे में क्या एक टाट का पैबंद सुंदर लग सकता है? लग सकता है।

यह कमाल केवल कवि की संवेदना को आता है।

निजी ज़िंदगी के आंगन पर ज्यों-ज्यों साये लंबे होते गये जीने की अनबुझ ललक ने सारी धूप ज़िंदगी के घर के आगे फैली दूर-दूर तक जाती सड़क पर ले ली। सड़क गुलज़ार थी, रोज़ नये-नये चेहरे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताज़गी की एक लहर!

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं। जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की लहर। आप अपने आपको कुछ और ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।

क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी आस पास बिखरे सूनेपन में ताज़गी भर देते हैं।

जियाजी

सूटिंग-शर्टिंग

कॉटन प्रिण्ट्स

जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड,

बिर्ला नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

MAPP

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे। फिराक़ के घर में रोशनी न सही इनके चेहरों पर तो ज़िंदगी की धूप थी। फिर क्या था दीवानों के लिए इतना ही काफी था :

घर छोड़े हुओं को कोई मंज़िल न सही,
होती नहीं सहल कोई मुश्किल न सही
हस्ती की एक रात काट देने को
वीराना सही तेरी महफिल न सही।

अजीब अंदाज़ थे एक शख्स के—फिराक़ जिसका नाम था। वह नहीं चाहता था कि वह एक समाज-सुधारक बने। उसे चिढ़ थी समाज-सुधारकों से। इसका सबब उसने भगवान महावीर का ज़िक्र करते हुए कुछ इस अंदाज़ से दिया : 'एक बात जो महावीर के व्यक्तित्व में थी और जिसने मुझे सबसे ज़्यादा प्रभावित किया वह यह थी कि वे कोई समाज-सुधारक नहीं थे....' फिर अपने अनोखे, बोलते अंदाज़ में फिराक़ एक क्षण चुप हुआ और उसने बात यों पूरी की, 'यह गुलाब जो मेरे लान में खिल रहा है यह किसी कांटे को नहीं सुधारता !'

फिराक़ संघर्ष को अनावश्यक समझता था। संघर्ष अज्ञान की निशानी है। यह उनके लिए ज़रूरी है जो द्वैत से घिरे हैं और अभी उससे ऊपर उठ नहीं पाये हैं। जो ऊपर उठ गये वे केवल सौंदर्य और संवेदना में सांस लेते हैं। वे कुरूपता और कठोरता को मिटाते नहीं, क्योंकि अगर वे ऐसा करने लगें तो कुरूपता और कठोरता को सौ गुनी ज़िंदगी मिल जाती है।

यह भी एक अजीब इत्तफाक कहिये या फिर इसके भी पीछे प्रकृति की किसी बज़्मे अदब का बुलावा होगा कि फिराक़ के मरने से एक हफ्ते पहले उसका सबसे प्यारा दोस्त 'जोश' मलिहाबादी चल दिया। इस जोश ने उसे बहुत दुःख दिया था—एक बार बदगुमां होकर और दूसरी बार पाकिस्तान जाकर। मगर इस तरह चले जाने से कहीं टूटते हैं बंधन ये दिल के! तीसरी बार जब जोश पाकिस्तान से भी चला गया तो फिराक़ चुप था। एक लंबी बीमारी में दरो-दीवार देखते-देखते आंखें पथरा चुकी थीं। एक झोंक आयी तबियत में और चादर जिस्म पर डाल वह हज़ारों को रौनक देने वाला सौंदर्य का मासूम बेटा, अपनी मां के पवित्र सौंदर्य को देखता-देखता चला गया। इन रिंदों को देखकर तो कुछ हौसले थे भी, साकी में तो कभी रुचि थी नहीं, अब जीते तो किसकी खातिर !

'अहले रिंदा की वो महफिलें सबूत हैं
इसका फिराक़ / कि बिखर कर भी यह
शीराजां परेशां न हुआ।'

बुरा न मानें तो कह दूं कि मुझे तो फिराक़ की ज़िंदगी एक चुनौती लगती है भारत की नारियों के लिए। कभी तो उसके दिल की उस नाज़ुकी को किसी ने पहचाना होता जिसने औरत के सौंदर्य में शाश्वत सौंदर्य अंत तक देखा। किसी नारी ने तो ज़िंदगी की राह पर फिर से उसको ला दिया होता जहां से एक संवेदना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

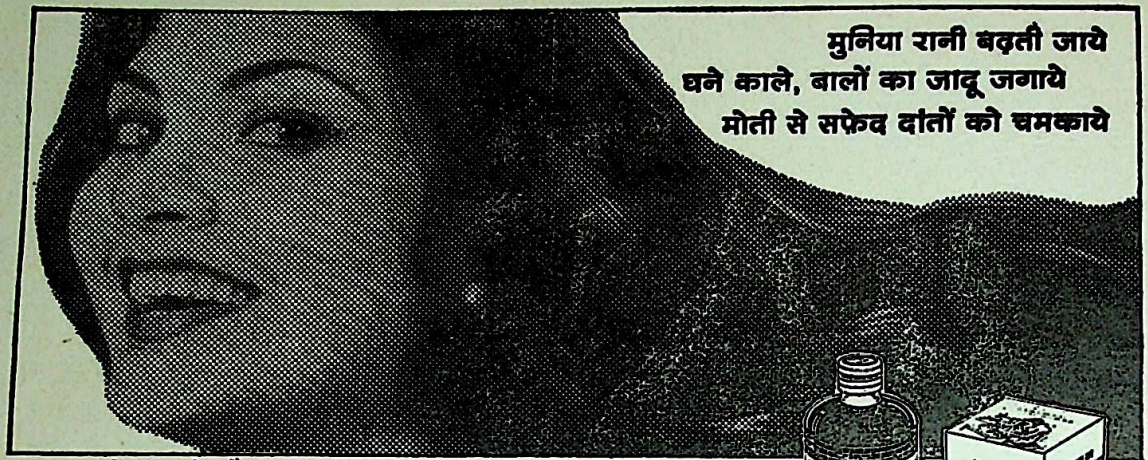

गाय छाप ब्राह्मी आमला केश तैल
—उसके बालों को और घने बनाये
सबको सुहाये मन में भाये
बालों का ये कालापन, घना व चमकीलापन

गाय छाप काला दन्त-मंजन
—उसके दांतों को चमकाये
मोती से सफ़ेद व मज़बूत बनाये

सेवाश्रम के गाय छाप ब्राह्मी आँवला केश तैल और काला दन्तमंजन

अपनी सुन्दरता को
नैसर्गिक रूप से बनाये रखिये

आयुर्वेद सेवाश्रम लिमिटेड
उदयपुर • वाराणसी • हैदराबाद

heros' AS-161 E HIN

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विहीन नारी की मार से डरकर वह भाग गया था!

कभी इन्हीं भारतीय ललनाओं में एक लोपामुद्रा ने अगस्त जैसे विकट ऋषि की ज़िंदगी को नारीत्व से पूरा था, कदंम जैसे ऋषि की तड़प को देवहूति बनकर प्यार में महकाया था, वसिष्ठ ऋषि की अकेली भटक को अरुंधती बन अपनी बांहों में जीवन के और अमर आत्मा के सारे रहस्य समझाये थे। मगर आज वे नारियां नहीं तो इसकी कोई शिकायत नहीं। मैरलिन मनरो, एरिका जोंग, लिज़ टेलर के आदर्शों में पली नारी मनु के प्रति उस कर्तव्य को अगर कर्तव्य नहीं मानती जिससे शतरूपा को ब्रह्मा ने बांधा था तो इसके लिए शायर की नाजुक-ख्याली में शिकायत के शब्द भी कहां थे। वह तो खुश था इतने पर भी कि :

रौशन होके हयात औरों में बंटी
वह जितनी बढ़ी उतनी ही घटी
खतरों से इबारत थी हर मौजे नफ्स
मानिंद चराग़ उम्र धड़कों में कटी

फिराक़ का सुसंस्कृत जीवन हमेशा परहेज़ करता रहा।

उसे परहेज़ रहा आम आदमी की संस्कृति से जो उसकी नज़र में बेहूदगी है जिसे वक्त ने ज़बान दे दी। उसे परहेज़ रहा समानता से। मैथ्यू आर्नल और डा० जांसन की तरह वह एक बौद्धिक अमीर था। उसकी रुचि इस हद तक परिष्कृत थी कि शब्दों का थोड़ा भी दुरुपयोग उसे क्रोध से भर देता था। आम आदमी से यह दूरी उसने हमेशा बनाकर रखी। उसके पैमाने बहुत सख्त थे और जो चीज़ उसके पैमानों पर सही नहीं उतरती थी उससे उसे ज़रा भी सहानुभूति नहीं थी। इसलिये उसकी ज़िंदगी अकेली होती चली गयी।

बैंक रोड पर बने उसके बंगले पर सचमुच रोज़ शामे-फिराक़ उतरती थी। उसकी हल्की रोशनी, उसके हरसिंगार के पेड़, वीरान-से बगीचे से उसमें रहने वाले वियोगी का पता चलता था।

फिराक़ वियोग का कवि है, उसे संयोग से क्या काम! चकवा-चकवी की तरह उसका व्यक्तित्व था। कहते हैं हर इंसान के भीतर नारी भी है और पुरुष भी। फिराक़ के भीतर जो मर्द था और जो औरत थी वो दोनों ज़िंदगी भर एक-दूसरे की तरफ पीठ किय एक-दूसरे को याद करते रहे। फिराक़ का वियोग इस कारण एक स्थायी वियोग है। यह वह वियोग है जो संयोग में नहीं बदलना चाहता। उसके वियोग में एक ऐसा माधुर्य है जो मनुष्य को जकड़ लेता है जैसे साइरिस के संगीत ने यूलिसिस को जकड़ लिया था। फिराक़ी नस्ल के वियोग से ज़्यादा सुंदर प्रेम में और कुछ नहीं लगता। पढ़ने वाले को लगता है प्रेमिका से मिलन वियोग के इस मधुर-स्वप्न को भंग कर देगा। मौत का नशा फिराक़ की शायरी में है। उसका यक्ष मिलन की उम्मीद नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पंडित गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना

पुलिस प्रशासन और प्रशिक्षण तथा न्यायिक विज्ञान की मौलिक और अनूदित हिन्दी पुस्तकों के लिए पुरस्कार

भारत सरकार ने पुलिस से संबंधित विषयों पर हिन्दी की मौलिक पुस्तकों अथवा अनूदित पुस्तकों के लिए, पंडित गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार शुरू करने का निश्चय किया है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य इन विषयों पर हिन्दी के प्रकाशनों को प्रोत्साहन देना है।

पुरस्कार : उपर्युक्त विषयों पर हिन्दी में लिखी गई मूल पुस्तकों के लेखकों को प्रतिवर्ष निम्नलिखित पुरस्कार दिए जाएगें :—

1. पहला पुरस्कार—10,000/- रु० (दुर्लभ पुस्तकों के अनुवाद उपरोक्त विषयों पर ख्याति प्राप्त लेखकों से अनुरोध करके मूल हिन्दी पुस्तकें लिखाने पर।)

2. दूसरा पुरस्कार—7,000/- रु० (उपरोक्त विषयों पर उत्कृष्ट हिन्दी पुस्तकों के लिए प्रत्येक पंचांग वर्ष में 5 पुरस्कार)

3. तीसरा पुरस्कार—3,000/- रु० (इन विषयों पर अन्य भाषाओं में मूल रूप से लिखी प्रामाणिक पुस्तकों के हिन्दी अनुवादों के लिए प्रतिवर्ष दो पुरस्कार।)

पात्रता : भारत के सभी नागरिक इस योजना में भाग ले सकते हैं। चूंकि यह वर्ष पुरस्कारों का पहला वर्ष है, अतः 31 मार्च 1982 तक प्रकाशित सभी मूल पुस्तकों, पांडुलिपियों और प्रामाणिक पुस्तकों के हिन्दी अनुवादों पर पुरस्कारों के लिए विचार किया जाएगा। इस योजना के लिए भेजी जाने वाली पुस्तकें पहले ही पुरस्कृत नहीं होनी चाहिए।

पुस्तकों का चयन : पुरस्कार पाने योग्य पुस्तकों का चयन एक मूल्यांकन समिति द्वारा किया जाएगा। पुरस्कारों के संबंध में इस समिति का निर्णय अंतिम होगा। यदि मूल्यांकन समिति द्वारा किसी भी पुस्तक को पुरस्कार योग्य नहीं पाया जाता तो सभी पुरस्कार अथवा कोई एक पुरस्कार नहीं दिया जाएगा। प्रविष्टियां प्राप्त करने की अंतिम तारीख 31 अक्तूबर, 1982 है।

पुस्तक का नाम, विषय, लेखक और प्रकाशक का पूरा नाम और पता, प्रकाशन तिथि, कापीराइट रखने वाले का नाम व पता, यदि कोई हो, पुस्तक की कीमत, पृष्ठ संख्या आदि के पूर्ण विवरण के साथ सामग्री की चार प्रतियां इस पते पर भेजी जांय :—

निदेशक,
पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो,
बी-1688 कस्तूरबा गांधी मार्ग बैरेक्स,
नई दिल्ली-110001

डी ए वी पी 82/15

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करता, इच्छा तो है ही नहीं। हसरत है कि यह न हुआ, काश यह हो जाता। मगर इसके आगे मीर वाली मिलने की तड़प फिराक़ में नहीं है। न गालिब का नाजुक हास्य है जो गहरे से गहरे दुःख में भी गुदगुदाए रखता है। फिराक़ गंभीर है। आकाश पर छिटके तारे वक्त की तनी भंवों की तरह हैं जिनके नीचे कुछ भी हल्कापन बर्दाश्त होने की गुंजाइश नहीं है।

वियोग को फिराक़ ने उपहार बना दिया। 'क़फस की तीलियों से छनता नूर' इस कदर खूबसूरत है कि वस्ल की चमक फीकी लगती है। फिराक़ ने प्रेम के विनाश को सुंदर बनाया है। उसकी यह चेष्टा उसे कहीं-कहीं जादुई भव्यता तक ले गयी है, उस सीमा तक जहां से आगे काव्य-सौंदर्य को खुद अपना पता नहीं रहता, जहां पहुंचकर शायर को संशय होने लगता है कि क्या काव्य-सौंदर्य की सीमा आ गयी, क्या एक कदम भी आगे बढ़ाना सौंदर्य का विस्फोट नहीं कर देगा ! जैसे:

मौत रात एक गीत गाती थी
जिंदगी झूम-झूम जाती थी।

ये वो धुंधलके हैं जहां ज़िंदगी और मौत के भेद मिटने लगते हैं। ये वो जादुई नगरी है जहां काव्य की युवती दर्शन की वृद्धा में किसी भी क्षण बदल सकती है। मगर इस नाजुक हद पर लाकर भी फिराक़ ने उसका यौवन बचाकर रखा।

दुई का दर्द फिराक़ की शायरी में शुरू से आखिर तक है। वही चकवा है, वही चकवी। फिराक़ वियोग को ही प्रेम की पराकाष्ठा मानता है। वियोग के बाद मिलन, सच्ची प्रतीक्षा के बाद प्रिय की बांहों में आयी नींद कोमल दर्द के माधुर्य से भी मधुर हो सकती है— ऐसा अनुभूति न फिराक़ को हुई न वह देता है।

आज की इस ध्वस्त और नग्न ज़िंदगी पर फिराक़ की शायरी खंडहरों पर सर्दियों की सुबह उतरती सुनहरी धूप है। वह रोज़ हो रहे विनाश और वियोग को सुंदरता से जीने का ढंग सिखाता है। बेवफाई के दुख और ज़िंदा क्षणों की कंजूसी के बीच भी जीने की एक मधुर कला है :

यूं तो हुआ है कौन किसी का उम्र भर फिर भी
ये हुस्नो इश्क तो सब धोखा है मगर फिर भी

फिराक़ को ज़िंदगी से शिकायत नहीं है। उसे भाग्य से कोई शिकवा नहीं। इन मायनों में वह यथार्थ का एक सशक्त कवि है। यथार्थ की कटुता, सुखों की क्षणिकता, भाग्य के छल से उसे कोई शिकायत नहीं। वह कुछ और कहता है। वह कहता है एक क्षण मिला सच्चे प्रेम का पूरी ज़िंदगी में तो वह क्या कम है। अनुभूतियां अगर सजीव हैं और अगर दिल सच्चा है तो वह क्षण पूरी ज़िंदगी पर छा जायेगा और उसे सुरभित कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृपालु पाठकों से नम्र निवेदन

कागज की निरंतर बढ़ती महंगाई और छपाई के खर्चों में होती जा रही वृद्धि के कारण हमें जनवरी - १९८२ से नवनीत के चंदे की दरों में वृद्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा है। आशा है कि नवनीत के कृपालु पाठक नवनीत को अपना पूर्ववत् स्नेह प्रदान करते रहेंगे और उसे अपने बहुमूल्य सुझावों से लाभान्वित करते रहेंगे।

जनवरी १९८२ से नवनीत के चंदे की नयी दरें :

भारत में : १ वर्ष : २८ रु.; दो वर्ष : ५४ रु.; ३ वर्ष : ८० रु.।

विदेशों में (समुद्री डाक से) : १ वर्ष : ८० रु.; २ वर्ष : १५० रु.; ३ वर्ष : २२० रु.।

सीलोन, पाकिस्तान, बांग्लादेश :

१ वर्ष : ४० रु.; २ वर्ष : ७८ रु.; ३ वर्ष : ११५ रु.।

विदेशों में हवाई डाक से : (पाकिस्तान, श्रीलंका, अफगानिस्तान और वर्मा)

१ वर्ष : १२५ रुपये। अन्य सभी देशों के लिए २०० रुपये।

एक प्रति : २·७५ रुपये। — व्यवस्थापक

मनोकामना सिद्धि के लिए अमूल्य रत्न

श्री वटुक भैरव साधना

(दुर्लभ चित्रों एवं मन्त्रों से परिपूर्ण)

लेखक : डा. रुद्रदेव त्रिपाठी डी. लिट्.

भगवान भैरव की साधना के बिना किसी भी शक्ति की साधना पूर्ण नही होती। यह बात तंत्र ग्रंथों में स्पष्ट रूप से कही गयी है। शास्त्रीय विधि के अनुसार कोई भी साधक सरलता से उपासना कर सके इसलिए विद्वान लेखक ने साधना के प्रत्येक पक्ष को सरल एवं सुबोध भाषा में समझाया है। अत्यन्त प्रामाणिक रूप से भैरव के विभिन्न अवतारों का परिचय, उनकी पूजा के साथ-साथ अचूक मन्त्रों, यन्त्रों एवं तंत्र प्रयोगों की सहायता से तात्कालिक कष्टों का निवारण, लक्ष्मी प्राप्ति, पुत्ररत्न प्राप्ति, आदि के लिए साधना के गुप्त रहस्यों का ज्ञान कराया गया है।

आपदुद्धारक वटुक भैरव के अष्टोंतर शतनाम की महिमा, मूलपाठ, पाठ करने के तांत्रिक प्रकार, त्रिक पाठ, लोम-विलोम पाठ, कवच, सहस्रनाम, भैरवदीपदान विधि, स्वर्णाकर्षक भैरव मंत्र एवं सिद्ध स्त्रोत्र, श्री शरभेश्वर भैरव मंत्र एवं सिद्ध स्त्रोत्र का अनूठा संग्रह दिया गया है।

मूल्य : पच्चीस रुपये।

प्राप्ति स्थान : सर्वार्थ सिद्धि प्रकाशन, १४०-बी, कटवारिया सराय, नयी दिल्ली-१६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देगा :

हर लमहे पर साया है अबदियत का
एक रात मुहब्बत की एक रात नहीं होती

फिराक़ को कहीं भगवान से कुछ नहीं कहना है। उसकी आत्मा की शक्ति यहां बहुत निखरकर उभरती है। वह कहीं भी ईश्वर को अपने दुखों के लिए उत्तरदायी नहीं मानता। आखिर तक वाल्तेयर की तरह उसने ईश्वर को अपनी उदास ज़िंदगी में नहीं उलझाया। फिराक़ एक खालिस कवि है, एक ऐसा कवि जिस पर कविता इतनी पूर्णता से हावी हुई कि धर्म की उसे ज़रूरत ही नहीं रही। सौंदर्य ही उसका ईश्वर था। सौंदर्य की अनुभूति ही उसके लिए आत्म ज्ञान था।

जिस तरह वाल्तेयर अंत तक बुद्धि के सहारे जिया उसी तरह फिराक़ ने सौंदर्य को अपना सहारा बनाया। वाल्तेयर की तरह उसने भी धर्म की शरण नहीं ली। वाल्तेयर की मृत्यु के समय धर्मगुरु ने आकर उसे कहा: 'गुनाह कबूल कर।'

'तू कौन है ?' वाल्तेयर ने बंद होती आंखें मुश्किल से खोलकर पूछा।

'मैं ईश्वर का दूत हूं।'

'अपना परिचय-पत्र दिखा।' कहकर वाल्तेयर ने हमेशा के लिए आंखें मींच लीं। ऐसे लोग ईश्वर का नाम नहीं लेते क्योंकि वे उसके अस्तित्व को इतनी पूर्णता से अपना चुके होते हैं कि उन्हें उसके नाम से कोई मतलब नहीं रहता।

फिराक़ हिंदी-उर्दू के द्वैत को नहीं मानता था। उसका ख्याल था कि यह एक ही भाषा थी जिसे अमीर खुसरो, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, मीर, गालिब और फिराक़ ने अपने-अपने वक्तों में संवारा। उसके विचार से इस शताब्दि में इसे संवारने का सेहरा उर्दू वालों के सर रहा। उसके शब्दों में महादेवी, पंत और गुप्त की कविता 'विशुद्ध बदसूरती है जिसे शब्द मिल गये।' फिराक़ इस विषय पर जीवन भर विद्वेष-ग्रस्त रहा। आधुनिक हिंदी पर उसने अपनी राय बिना पढ़े ही बनायी और उसकी पुष्टि के लिए पढ़ना उसने ज़रूरी नही समझा। ऐसा ही अनोखा व्यक्ति था फिराक़ जिसमें गहन विद्वता और बचकाना विद्वेष साथ-साथ जीते थे। मगर उसके विद्वेष को कभी किसी ने गंभीरता से नहीं लिया।

सभी जानते थे कि उसका एक आदर्श आस्कर वाइल्ड भी था जिसकी नज़र में सच बोलने से मसालेदार बात कहना ज्यादा महत्वपूर्ण था।

मगर फिराक़ की इस बात पर बहुत से आधुनिक मनीषी, भारत और पाकिस्तान (?) में, विचार कर रहे हैं कि हिंदी और उर्दू को दो भाषाएं न मानकर एक भाषा माना जाये। जिसकी दो लिपियां हों, जिसमें दो अंदाज़ स्वीकृत हों। 'संस्कृत-जन्य हिंदी' और 'फारसी-जन्य हिंदी' इन दोनों अंदाज़ों को पाठ्यक्रमों में ऐच्छिक पेपर घोषित कर दिया जाये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उषा की नई कल्पना, महान रचना, डीलक्स फर्नीचर जो बहुउपयोगी

उषा, एक ऐसा नाम जो कलात्मक और टिकाऊ वस्तुएं बनाने में सदैव आगे है। श्रेष्ठता और कुशलता की उसी परम्परा में अब प्रस्तुत है — काष्ठ-कला का अद्भुत उदाहरण। ऐसा फर्नीचर जिसका आप सिलाई के बाद अपनी सुविधानुसार प्रयोग कर सकें।

- रंगीन उपहार पैक में विशेष बेस और कवर।
- जगह की बचत करने वाली बहुउपयोगी डीलक्स फोल्डिंग मेज और कैबिनेट मॉडल।

स्ट्रीमलाइन्ड

तथा अन्य सभी उषा सिलाई मशीनों के साथ उपलब्ध

● ब्रिटेन, जर्मनी, अमरीका और अन्य देशों को निर्यातित ● सिलाई वाले क्षेत्रों में रोशनी की व्यवस्था ● सामान्य सिलाई से कशीदाकारी में बदलने की तुरन्त सुविधा ● बॉबिन को सरलता से बदलने के लिए कब्जे वाली स्लाइड प्लेट ● पांच वर्ष की गारण्टी।

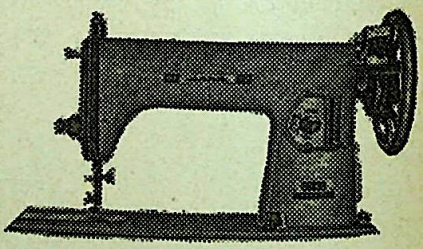

उषा

कुशलता की परम्परा

आज ही खरीदिए। एक लाख से भी अधिक इनाम पाइए।

UHA-JEM-1232 HIN

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस तरह उत्तर भारत की संस्कृति का रुका प्रवाह खुल जायेगा। यह रुका इसीलिये है कि संस्कृति का यह प्रवाह दो में टूट गया।

हिंदी और उर्दू में इसका टूटना ऐसा टूटना नहीं हुआ जैसे गंगा का सरयू और गोमती नाम की दो धारों में टूटना। यह टूटना रासायनिक टूटना हुआ जिससे संस्कृति का पानी हाइड्रोजन नाम की दो गैसों में बदलकर उड़ गया।

ये दोनों भाषाएं भविष्य में संस्कृति का संगम रचती हैं या नहीं यह तो इन भाषाओं के ज्येष्ठों की समझ और विशाल-हृदयता पर निर्भर करेगा। मगर यह निर्विवाद है कि फिराक़ इन दोनों साहित्यों के पितामहों में गिना जायेगा। उसने जिन मुहावरों के कंगन खनकाए, उसने जिन उपमाओं की मेंहदी रचाई, उसने जिन शब्दों को तराशकर बिंदी की तरह चमकाया उनसे हिंदी और उर्दू दोनों में सौंदर्य सरसता रहेगा। उसकी काव्य साधना ने सौंदर्य के वो मंत्र रचे हैं जिनके स्मरण मात्र से सौंदर्य के राजहंस उतरकर गुंबदों, मीनारों और कलशों पर बिना भेदभाव के बैठते रहेंगे। शायद इस तरह भावानात्मक एकता का सपना, जिसे दार्शनिकों की नेकनीयती और उनकी सच्ची दलीलें साकार न कर सकीं, अपने आप ही सौंदर्य के आवेश में सहज हो सकेगा।

वह एक हरसिंगार का पेड़ था जो 'अपनी ही हया से बोझल' था और अगर बुद्धि और भावना की, संवेदना और अनुभूति की मुफलिसी न होती तो कितनी हसीन होती यह दुनिया जिसके आंगन में छियासी बरसों तक यह हरसिंगार का पेड़ खड़ा-खड़ा शर्माता रहा। तेज़ बारिश में हवाओं के उघाड़ते झोंकों के बीच भी लाज बचाये रहा और जब तेज़ धूप पड़ी तो भवों का पसीना पोंछकर बस यों मुस्करा दिया :

'य ज़िंदगी के कड़े कोस! याद आता है,
तेरी निगाहे करम का घना-घना साया।'

कौन-सा वह आश्वासन था जो प्रकृति ने दिल ही दिल में उसे दे दिया था! कौन-सा वह अमृत था जो निराशा और एकाकीपन में बिखरकर भी उसकी ज़िंदगी का शीराजा कभी परेशां न हुआ! हर रोज़ केशों की तरह दुख के बादलों को झटककर उसकी ज़िंदगी का चांद चमक आता था और इतने लंबे-चौड़े नभ पर अपनी अनंत यात्रा को ही मंज़िल मान चलता रहा।

'एक लिली की तरह खिली काई भरे
पत्थर के किनारे किसी
एक तारे की तरह सुंदर सरल जो
अकेला था आसमां पर'

वर्ड्सवर्थ की ये पक्तियां फिराक़ को बहुत प्रिय थीं। क्या यह कोई गुप्त वसीयत थी कि मरने के बाद उसकी समाधि पर उसके लिए ये ही दो पक्तियां लिख दी जायें!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आध्यात्मिक चिकित्सा : एक चमत्कारिक अनुभव

कम्युनिस्ट देश रशिया की यह बात है।

एक रेस्टोरेन्ट में 'जूना दपिताश्वली' नाम की महिला नौकरी करती है। ग्राहकों को भोजन परोसने का उसका काम है।

एक दिन अचानक जूना को कोई एक ईसाई धर्म की साध्वी का संपर्क हुआ। जूना की कोई आन्तरिक योग्यता साध्वी ने देखी होगी—साध्वी ने जूना को कुछ आध्यात्मिक मार्ग की साधनाएं बतायीं। जूना ने श्रद्धा और विश्वास से साधनाएं सीख लीं।

आध्यात्मिक क्षेत्र में सरल हृदय की श्रद्धा ही महत्वपूर्ण होती है। निःस्वार्थभाव, निष्कामभाव ही साधना की सफलता में श्रेष्ठ माध्यम होते हैं।

जूना में आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत हुई।

किसी को भी औषधि नहीं, कोई भी उपचार नहीं, और जूना लोगों को रोगों से मुक्त कर देती है। ७३ वर्षीया अपरिणीता जूना को पूछा गया कि 'आप बिना दवाई और उपचार, किस प्रकार रोगियों को ठीक कर देती हैं ?'

जूना ने कहा : 'कुछ भी नहीं, मात्र ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास करती हूं और रोगी के स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रार्थना करती हूं। मेरा विश्वास फलित होता है, और रोगी ठीक हो जाता है।'

रशिया के दैनिक पत्रों में जूना की इस आध्यात्मिक चिकित्सा के विषय में विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ है। रशियन नेता ब्रेझनेव ने भी, जब वे अस्वस्थ हुए थे, तब जूना की आध्यात्मिक चिकित्सा से उन्होंने स्वास्थ्यलाभ किया था।

एक रशियन पेपर में छपा है कि 'जूना ने अल्सर के एक पुराने रोगी को मात्र १५ मिनट में ठीक कर दिया ! एक पुराने सिरदर्दी की आंखों पर अपनी अंगुलियां फेरकर उसको अच्छा कर दिया ! दर्दी को देखकर ही वह बता देती है कि उसका उपचार हो सकता है या नहीं। यह भी बता देती है कि उपचार से कितने समय में दर्दी अच्छा हो जायेगा।'

साम्यवाद जिसमें धर्म, ईश्वर, गुरु आदि तत्त्वों का कोई स्थान नहीं है, उस साम्यवाद को मानने वाले रशिया में जब ऐसी घटनाएं बनती हैं तब तो दिव्य तत्त्वों के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता !

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

उद्यानं ते पुरुष ! नावयानं
जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि
आ हि रोहेमयमृतं सुखं रथम्
अथ जिर्विर्विदथमावदसि ।

हे पुरुष ! तेरा उत्थान हो, अवनति न हो। तेरे जीवन को मैं बलवान करता हूं। इस सुखकर अमृत रूप रथ पर आरोहण कर और अवस्था प्राप्त करने पर ज्ञान का प्रचार कर।

अथर्ववेद, ८.१.६

रेखांकन : आलोक जैन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब भगवान मेरे जीवन में आये

□

गीत-गोविन्दकार महाकवि जयदेव गोस्वामी

अमर काव्य 'गीत गोविंद' की रचना जयदेव की कृष्ण-भक्ति की मधुर परिणति के रूप में हुई थी। ऐसी मान्यता है कि स्वयं 'भागवत' के रचयिता वेदव्यास ने जयदेव के रूप में जन्म लिया था क्योंकि वे 'गीत गोविंद' के माध्यम से सारे देश में भक्ति की गंगा प्रवाहित करना चाहते थे।

अपनी अमर काव्य-कृति 'गीत गोविन्द' के लिए विख्यात कवि-संगीतज्ञ जयदेव का जन्म पुरी (उड़ीसा) में हुआ था। राधा और कृष्ण के अनूठे प्रेम का जैसा सूक्ष्म और प्रभाविक वर्णन जयदेव ने इस कृति में किया है, वह अन्यत्र पढ़ने को नहीं मिलता।

जयदेव ने बंगाल के एक छोटे से गांव में पुरी के भगवान् जगन्नाथ के भक्त नारायण शास्त्री के घर में जन्म लिया था। उनकी मां कमलाबाई भी जगन्नाथ को अपना आराध्य-देव मानती थीं। उनके जन्म के संबंध में देश भर में एक दंत-कथा प्रचलित है।

कहा जाता है कि नारायण शास्त्री भगवान् जगन्नाथ की भक्ति में हर समय इतने अधिक लीन रहते थे कि उन्हें कभी यह खयाल नहीं आया कि संतानोत्पत्ति द्वारा अपने वंश की परंपरा को आगे बढ़ाया जाये। लेकिन उनकी धर्मपत्नी कमलाबाई चाहती थीं कि इनकी कोई संतान हो, जो उनकी वंश-परंपरा को आगे बढ़ा सके।

शास्त्री दंपत्ति की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् जगन्नाथ ने एक रात नारायण शास्त्री के सपनों में प्रकट होकर कहा, 'वत्स! शीघ्र ही तुम्हारी पत्नी की इच्छा पूरी होगी।' शास्त्रीजी जब जागे, तो उन्हें यह अद्भुत सपना याद रहा। यद्यपि वे इस बात से खुश थे कि भगवान् उनके सपनों में आये, तथापि इस बात का खेद भी था कि उनकी पत्नी ने अपने आराध्य-देव से संतान जैसी सामान्य वस्तु की मांग की। इस 'भूल' के लिए उन्होंने अपनी पत्नी को कभी क्षमा नहीं किया। लेकिन, इस मामले में वे स्वयं भूल कर रहे थे, इस बात का अहसास भगवान ने उनके सपनों में दुबारा प्रकट होकर उन्हें कराया। नारायण शास्त्री से भगवान् ने कहा, 'वत्स! तुम्हारे लिए पुत्र आवश्यक है। उसी के द्वारा तुम अपने पुरखों के ऋण से मुक्त हो पाओगे। तुम्हें इस बात को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लेकर अपनी पत्नी से अप्रसन्न नहीं होना चाहिये।'

शीघ्र ही, कमलाबाई ने एक स्वस्थ, सुंदर पुत्र को जन्म दिया। यही लड़का आगे चलकर 'गीत गोविन्द' के अमर कवि जयदेव के नाम से विख्यात हुआ। बंगाल और उड़ीसा में यह मान्यता है कि जयदेव के रूप में स्वयं 'भागवत' के रचयिता वेद-व्यास ने जन्म लिया था, क्योंकि वे 'गीत गोविन्द' के माध्यम से भक्ति मार्ग का प्रचार करना चाहते थे, भक्ति की गंगा सारे देश में प्रवाहित करना चाहते थे।

ooo

अमर काव्य 'गीत गोविन्द' की रचना जयदेव की कृष्ण-भक्ति की मधुर परिणति के रूप में हुई थी।

'गीत गोविन्द' की रचना के दौरान अनेक अद्भुत घटनाएं घटीं। एक बार वे काव्य की एक पंक्ति के 'चारुशीले. . .' शब्द पर आकर रुक गये। इस पंक्ति में वे इस भाव को अभिव्यक्त करना चाहते थे कि विरहाग्नि में झुलसते कृष्ण ने इस अग्नि को शांत करने के लिए राधा से कहा कि वे अपने चरण-कमल उनके अशांत मस्तक पर रख दें।

पर, इस पंक्ति को पूरा करने के बाद, उन्हें लगा कि इस भाव में कृष्ण-निंदा निहित है। उन्होंने फ़ौरन इस पंक्ति को काट दिया, और अपने शरीर पर तेल की मालिश कराने चले गये। मालिश कराने के बाद जब वे वापस लौटे, तो उन्होंने अपनी पत्नी पद्मावती से कहा, 'प्रिये, मेरी काव्य-पांडुलिपि तो लाना। मुझे अभी-अभी एक संशोधन सूझा है, और इससे पहले कि मैं उसे भूल जाऊं, मैं उसे पांडुलिपि में तुरंत लिख देना चाहता हूं।'

यह संशोधन करने के बाद, जब बाद में जयदेव फिर उस पांडुलिपि को लेकर काव्य-रचना करने बैठे, तो उन्होंने आश्चर्य से पाया कि पांडुलिपि के अंतिम पृष्ठ पर एक सर्वथा नयी और अपरिचित रचना अंकित है। उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा, 'पद्मा! क्या तुमने मेरी पांडुलिपि में कुछ लिखा है?'

'नहीं, नाथ! मैं ऐसी धृष्टता कैसे कर सकती हूं?'

'मैं जब मालिश कराने गया था, तब जो अधूरी पंक्ति मैं छोड़ गया था, उसके स्थान पर एक बिलकुल नयी पंक्ति लिखी

(शेषांश पृष्ठ १३१ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्मल वर्मा का पारदर्शी साहित्य-चिन्तन

□

उपन्यास की मृत्यु और उसका पुनर्जन्म

० ० ०

० निर्मल वर्मा मौजूदा हिन्दी साहित्य की उन विरल प्रतिभाओं में से हैं, जिनके भीतर अपने समय के पार देखने की एक तीखी प्रश्नाकुलता है। आगामी कल को टोहती, दस्तक देती, एक बेचैनी है।

० प्रस्तुत लेख में निर्मल ने हिम्मत की है उपन्यास की मौजूदा हदों को तोड़ने की; पहल की है उपन्यास की आगामी संभावना को रेखांकित करने की। आज की बासी और मोनो-टोनस हो गयी तथाकथित हिन्दी आधुनिकता के घुटन-भरे माहौल में निर्मल ने एक नया हवादान खोलने की पेशकश की है। उन्होंने अकेले पड़ जाने का खतरा उठाया है। बधाई।

० जिस सम्भाव्य 'विशुद्ध भारतीय उपन्यास' का स्वरूप निर्मल वर्मा ने यहां प्रस्तुत किया है, वह कई संगत सवाल उठाता है। क्या आधुनिक भारत की तमाम उपन्यास-परंपरा, नितांत आयातित और अभारतीय है? क्या है वह, जिसे निर्मल 'विशुद्ध भारतीय' के रूप में पहचानते हैं? उनका जो विज़न है 'विशुद्ध भारतीय उपन्यास' का, क्या वैसा कोई उपन्यास इस बीच हिन्दी में नहीं लिखा गया? उनके प्रस्तावित भारतीय उपन्यास के जो मूल तत्त्व हैं, क्या उनका मूर्तन हमारे वर्तमान कथा-सर्जन में कहीं नहीं हुआ? क्या कोई रचनाकार, उनकी बनायी लकीर को नहीं तोड़ गया? क्या इस बीच किसी ने उपन्यास के स्थापित ढांचे और हदों को नहीं तोड़ा?

० तमाम समकालीन भारतीय लेखक-मंडल को हम न्यौता देते हैं, कि निर्मलजी की इस नयी प्रस्थापना पर वे हमें अपनी मूल्यवान टिप्पणियां भेजें। 'नवनीत' के जागृत-मना पाठकों के अभिमत भी सहर्ष आमंत्रित हैं। सारे गुटों और वादों से परे 'नवनीत' एक मुक्त विचार-मंच है। हम आपकी साहसिक और बैलौस टिप्पणियों का इंतज़ार करेंगे।

० इस लेख के साथ ही, 'नवनीत' अपने सर्वसमावेशी खुले मंच के उद्घाटन की कुंकुम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पत्रिका आपको भेज रहा है। इसके माध्यम से हम समग्र जीवन, कला, संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान के नये क्षितिजों के अनावरण और नये मूल्यों की तलाश का एक संयुक्त अभियान आरंभ कर रहे हैं। उस 'रिनेसां' (नवोत्थान) का आवाहन कर रहे हैं, जो इस वक्त मानव-चेतना की तहों में बेचैनी से सुगबुगा रहा है। आनेवाली सुबह का एक ख़ामोश सूर्य-विस्फोट! एक अनिवार्य नवोदय का अज्ञात में से सुनायी पड़ रहा शंखनाद : अनहद नाद...

० ० ०

अर्से से हम यह अफवाह सुनते आये हैं कि उपन्यास ने अपना चोला छोड़ दिया है, लेकिन हज़ारों की संख्या में उपन्यास अब भी लिखे जाते हैं। शायद ही किसी विधा को मरने में इतना समय

लगा हो जितना उपन्यास को। यद्यपि उसकी मृत्यु की भविष्यवाणियां समय-समय पर होती रहती हैं, 'फीनिक्स' की मानिंद हर बार वह अपनी मृत्यु की राख झाड़कर पुनः उठ खड़ा होता है। लेकिन यह भी हो सकता है कि शायद अफवाह सच है, और उपन्यास सचमुच मर गया है, जैसा हम उसे अभी तक जानते आये थे। 'डिकेन्स', 'फ्लोबेर', 'तोल्सतोय' 'दोस्तोएवस्की' की रक्त-मांस मण्डित प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, सांसारिक महत्वाकांक्षाओं में लिथड़ी गाथाएं, जिन्हें आज तक हम उपन्यास की संज्ञा देते आये थे, हमारे समय तक आते-आते वे एक अंधी गली मे गुम हो गयी हैं, अपने पीछे एक भी ऐसा सुराग नहीं छोड़ गयी हैं, जिन्हें पकड़कर उपन्यास की पुरानी गौरवगरिमा को उजागर किया जा सके। अब हम जिन पुस्तकों को 'उपन्यास' के बहाने पढ़ते हैं, क्या वे उसकी मृत काया की महज़ प्रेत-छायाएं हैं?

देखा जाये तो उपन्यास हमेशा से तकलीफ में था और जितना अधिक वह फलता-फूलता गया, उसके भीतर की अदृश्य तकलीफ भी बढ़ती गयी। यह आत्म-चेतना की तकलीफ थी, जिसने अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानस को एक विशिष्ट और असाधारण मन:स्थिति में ढाला था। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था कि मनुष्य सिर्फ एक 'व्यक्ति' में बदल जाये और समाज एक ऐसी भीड़ में, जिसका अपना कोई चेहरा नहीं। मनुष्य का एक व्यक्ति में सिकुड़ जाना और दूसरी तरफ समाज का इस हद तक फैल जाना, जहां व्यक्तित्व-हीनता ही उसका संस्कार हो—उपन्यास की तकलीफ इन दो पाटों के बीच फंसे मनुष्य की बदहवासी, लक्ष्यहीनता और अकेलेपन को प्रतिबिंबित करती थी।

मनुष्य क्या है? यह सनातन प्रश्न है और एपिक, कविता, नाटक जैसी सनातन (क्लासिक) विधाओं में इस प्रश्न को अनेकानेक स्तरों पर उघाड़ा गया था, किन्तु व्यक्ति क्या है? इस प्रश्न के साथ सीधी-सीधी पहली मुठभेड़ उपन्यास ने की थी। व्यक्ति जो चाहे किसी भी वर्ग, सम्प्रदाय धर्म या परिवार का सदस्य क्यों न हो, किन्तु जिसकी प्रामाणिकता, उसकी सदस्यता (Belonging) में नहीं, उसके होने (Being) में निहित होती है। व्यक्ति जो अपने को व्यक्त करता है और व्यक्त करने के दौरान ही अपने होने का प्रमाण देता है, पहले उसके प्रमाण-पत्र में दूसरों के हस्ताक्षर होते थे, वे उसके होने के साक्षी थे। माता-पिता, वर्ग-जाति और सबसे ऊपर ईश्वर; वे थे, इसलिए वह था, उनके बिना वह कुछ नहीं था—महज़ शून्य। समाज में व्यक्ति की अवधारणा ही एक अभूतपूर्व घटना या चाहें तो कहें दुर्घटना थी। क्योंकि उसके होने के सबूत में सिर्फ उसका मैं था और ईश्वर और न्याय और नियम की अदालत में मैं की शिनाख्त स्वयं मैं कैसे कर सकता है? इसलिए व्यक्ति के अस्तित्व पर शुरू से ही संदेह की छाया पड़ चुकी थी। उपन्यास ने पहली बार ऐसे व्यक्ति की गवाही लेने का प्रयास किया था, जो अपने लिए इस दुनिया में किसी को साक्षी नहीं बना सकता था। नंगा और निरीह व्यक्ति, संपूर्ण रूप से स्वतंत्र और संपूर्ण रूप से संदिग्ध, असंख्य संभावनाओं में खुला हुआ और हर संभावना को अंतिम परिणति तक पहुंचाने की जिम्मेदारी ढोता हुआ। वह कुछ भी हो सकता था—सन्त, हत्यारा, शैतान। दोस्तोएवस्की का यह कथन कि यदि ईश्वर नहीं है तो मनुष्य कुछ भी कर सकता है, न केवल व्यक्ति के जोखिम भरे संसार को उद्घाटित करता है, बल्कि उस संसार की अंतहीन अराजकता को भी रेखांकित करता है, जिसे उपन्यास ने अपनी विधा के घेरे में पहली बार समेटा था। उपन्यास की तकलीफ बहुत कुछ व्यक्ति के जन्म होने की प्रसव पीड़ा से जुड़ी हुई थी।

व्यक्ति की जिस अंतरात्मा को उपन्यास ने अपना केंद्र बिंदु बनाया था, उसी चीज़ ने उपन्यास को कथ्यात्मक बिरादरी की अन्य समस्त विधाओं से अलग भी कर दिया। एपिक, आख्यायिका, दन्तकथा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फेबल, लोककथाएं, किस्से-कहानियां, ऊपर से देखने पर लगता है कि उपन्यास इन्हीं प्राचीन कथ्यात्मक शैलियों की आधुनिक और परिष्कृत उत्पत्ति है। इस भ्रम का कारण शायद यह है कि उपन्यास और इन कथ्यात्मक शैलियों में यदि एक चीज़ समान रहती है तो वह है—कहानी।

ये समस्त कथ्यात्मक विधाएं किसी-न-किसी रूप में कोई किस्सा-कहानी सुनाते हैं; लेकिन क्या उपन्यास सिर्फ कहानी सुनाने का माध्यम है? यदि ऐसा होता तो उपन्यास जैसे विशिष्ट फार्म को अन्वेषित करने की क्या आवश्यकता थी—मनुष्य की कहानी को अभिव्यक्त करने के लिए क्या पुरातन काल से चलती आयी कथ्यात्मक शैलियां काफी नहीं थीं? काफी नहीं थीं, क्योंकि किस्सागो के सुरक्षित संसार में जो मनुष्य बसता था उपन्यास का 'व्यक्ति' उस संसार की हदों से कहीं दूर जा पड़ा था। पुरातन कथा-शैलियों में हमें कितने पात्र याद रहते हैं? एक राजा था—कहानी यहां से शुरू होती है; कौन-सा राजा? यह अप्रासंगिक है...क्योंकि राजा और रानी और राक्षस और पक्षी हमारे पुरातन-लैंडस्केप की 'आर्कीटाइप' स्मृतियों को उभाड़ते हैं—वे सार्वभौमिक ह, अटल हैं; कहानी शुरू होते ही वे कठपुतलियों की तरह नाचने लगते हैं। लेकिन मदाम बावेरी? हम उसके बारे में क्या जानते हैं? उपन्यास पढ़ने के बाद जो याद रह जाता है, वह मदाम बावेरी की कहानी नहीं, जो हज़ार औरतों की कहानी हो सकती है, बल्कि वे हज़ार घटनाएं, जिनके अद्भुत और अप्रत्याशित संमिश्रण से एक मदाम बावेरी का जन्म हुआ था; एक स्वतंत्र स्त्री, जिसके अपने संकल्प और अपने स्वप्न थे।

उपन्यास से पहले की कथ्यात्मक विधाओं में पात्रों पर घटनाएं घटती हैं, किन्तु उपन्यास में व्यक्ति-पात्र अपनी इच्छाओं और संकल्पों से किसी-न-किसी रूप में इस घटना-चक्र में अपना हस्तक्षेप करना चाहते हैं; इसमें वे असफल हों, पराजित हों, घटनाओं के रथ तले कुचले जायें, यह बात दूसरी है—बल्कि 'यही बात' उपन्यास को कहानी-किस्सों से अलग करती है। उपन्यास भी कथ्यात्मक विधा है, किन्तु वह कहानी कहने का 'शुद्ध माध्यम' नहीं है। 'डान क्विग्हाते' और मदाम बावेरी के स्वप्नों और सांसारिक घटना-चक्र की अनिवार्य लौहवत्ता के बीच एक तनाव-भरा द्वंद्व बराबर चलता रहता है। एक द्वंद्वात्मक टकराव—इसीलिए उपन्यास का फार्म पुरानी कथा-विधाओं से इतना अलग है।

इसीलिए वे आलोचक, जो उपन्यास को 'विदेशी विधा' मानकर भारतीय उपन्यास का उद्धार पुरानी आख्यायिका, लोक-कथाओं और किस्सों की शैली को पुनर्जीवित करने में देखते हैं, शायद समस्या का सीधा-सीधा सामना नहीं करते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्र : टी. ए. राणा

उपन्यास विदेशी विधा है ज़रूर, किन्तु भारतीय समाज के उलट-फेर में जो 'व्यक्ति' आज आकार ग्रहण कर रहा है, क्या पुरानी कथ्यात्मक शैलियां उसके विकट, संघर्षमय संसार के वीहड़ अन्त-र्द्वंद्वों को अपने में समेट पायेंगी, मुझे इसमें संदेह है।

क्या यह महज संयोग था कि हजारी-प्रसादजी अपनी 'किस्सागोई' गप्प शैली में आधुनिक जीवन पर कोई उपन्यास लिखते हुए हमेशा झिझकते रहे? विदेशी वोझ से छुटकारा दुर्भाग्यवश हमेशा परम्परा में ही नहीं मिलता, जब तक स्वयं परम्परागत शैलियों को आधुनिक दवाव तले पुनर्निर्मित और परिवर्तित नहीं किया जाता। उपन्यास के 'भारतीय-करण' की समस्या को उपन्यास से पहले की सहज और भोली और अपेक्षाकृत सरल स्थिति में लौटकर नहीं सुलझाया जा सकता।

लेकिन एपिक? वह तो सबसे प्राचीन कथ्यात्मक विधा है? कुछ उपन्यासों को पढ़ते हुए हमें क्यों वार-वार 'होमर' या 'वाल्मीकि' याद आते हैं? शायद इसी-लिए हेगल ने उपन्यास को 'आधुनिक 'मध्य वर्ग के महाकाव्य' के रूप में परि-भाषित किया था। हेगल की इस परि-भाषा का अनुकरण करते हुए, किन्तु दुर्भाग्यवश उनके प्रति आभार न प्रकट करते हुए, डा. नामवर सिंह ने भारतीय उपन्यास को 'किसान-जीवन का महा-काव्य' माना है। यह परिभाषा कितनी भ्रामक है, मैं उस वहस में यहां नहीं जाना चाहूंगा। सिर्फ इतना कह देना काफी है कि जवकि हेगल के सामने वूर्जुआ वर्ग के विकास का समूचा भविष्य फैला था, वहां भारतीय किसान का वह अंध-कारमय—मार्क्स के शब्द में कहें, तो मैलन-कोलिक-भविष्य डा० नामवर सिंह नहीं देख पाते, जहां भूमि से उन्मूलित होकर भारतीय किसान का वर्ग-संस्कार, उसका 'किसानत्व' ही संकट में पड़ गया है। प्रेमचंद ने अपने अन्तिम उपन्यास और कहानियों में किसान की 'मैलनकोली'-औपनिवेशिक विषाद को अभिव्यक्त किया था, किन्तु आज की स्थिति में इस 'विषाद' के लिए भी कोई गुंजाइश नहीं बची रही है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि व्यावसायिक औद्योगीकरण की मार भारतीय किसान पर उतनी ही निर्ममता से पड़ती रही, जिसका दुःस्वप्न मार्क्स ने देखा था, तो अगले कुछ वर्षों में हमें अपने गांवों में पूंजीवादी फार्मर जो किसान या (Peasant) नहीं है या खेतिहर मज़दूर मिलेंगे—किसान नहीं। जॉयस का 'यूलिसिस' तो अपनी संरचना में 'ओडिसी' के समानांतर ही चलता है। दोनों विधाओं की यह समा-

नता अस्वाभाविक भी नहीं है; ऐसे उपन्यास हैं, जो महाकाव्य के पैमाने पर विभिन्न व्यक्तियों के समग्र जीवन को एक विराट भित्तिचित्र की तरह अपने पन्नों पर अंकित करते हैं।

यह अकारण नहीं है कि 'ब्रदर्स कारामाजोव' या 'युद्ध और शान्ति' या अगर बीसवीं सदी में रचे गये प्रूस्त के 'रिमेंब्रेंस आव थिंग्स पास्ट' को ही लें, उन्हें पढ़ते हुए हमें अनायास क्लासिक युग में रचे महाकाव्यों या आइसलैंडी 'सागा-ग्रंथों' की याद हो आती है—जन्म से मृत्यु तक मनुष्य के संपूर्ण जीवन की गाथाएं, ज़िन्दगी का विराट समंदर, जिसमें हर उठती लहर और मरते हुए ज्वार के 'भवसागर' को नापा जाता है। किन्तु उपन्यास एपिक की याद ज़रूर दिलाते हैं, असल में एपिक की संभावनाओं को छूते-छूते रुक जाते हैं, कुछ छोटे पड़ जाते हैं—इसलिए नहीं कि तोल्सतोय या प्रूस्त की यथार्थ की पकड़ कहीं ढीली हो जाती है या उनकी अथक सृजन-ऊर्जा कहीं बीच में मन्द पड़ जाती है, बल्कि इसलिए कि जिस समूचे मनुष्य की विराट सृष्टि को एपिक एक समय में चित्रित करते थे, वह बूर्जुआ समाज तक आते-आते खण्डित व्यक्तित्वों में ही इतने भयानक ढंग से बिखर गया है कि उपन्यास उसे केवल नास्टाल्जिया के क्षणों में याद कर सकता है या कभी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुर्लभ क्षणों में पकड़ पाता है। बाकी समय उसे अपना माथा उन दीवारों से फोड़ना पड़ता है, जो न केवल हर व्यक्ति को अपने समाज से अलग करती हैं, बल्कि स्वयं उसकी अन्तरात्मा में एक फांक की तरह खिंची रहती हैं।

आल्डस हक्सले ने अपने एक बहुत दिलचस्प निबन्ध 'एपिक और सम्पूर्ण सत्य' में इस बात को रेखांकित किया था—होमर के महाकाव्यों में कैसे मनुष्य का हर क्षण उसके जीवन की निरंतरता में संपूर्ण बन जाता है। कोई घटना आकस्मिक नहीं है, वह एक समूचे पैटर्न में अर्थ ग्रहण करती है; वह एक तरह का दैवी, पूर्व निर्धारित पैटर्न है, हर चीज़ वैसे ही होगी, जैसे उसे होना है—प्राकृतिक नियमों की तरह अनिवार्य और अर्थसंगत जिसमें पवित्र और सांसारिक, धार्मिक और संसारी सीमाएं एक दूसरे में घुल जाती हैं।

उपन्यास में क्यों नहीं ऐसा संभव हो पाता? शायद इसका एक कारण यह है कि उपन्यास शुद्ध रूप से 'सेक्यूलर' विधा है, जिसमें से समस्त देवी-देवताओं, प्रकृति के अलौकिक चमत्कारों और नियति की भविष्यवाणियों को बहिष्कृत कर दिया गया है। वहां सब कुछ व्यक्ति के स्वायत्त स्वेच्छाचारी निर्णयों पर निर्भर है, इसलिए सब कुछ आकस्मिक और सांयोगिक है। बड़े-से-बड़े उपन्यास को पढ़ते हुए क्यों यह तकलीफ मन को कोंचती रहती है कि घटनाएं नितान्त दूसरी तरह से घट सकती थीं कि उनके पीछे ऐसा कोई दैवी या प्राकृतिक 'सैंक्शन' नहीं, जो उन्हें किसी दूसरे क्रम में संजोने से रोक सकता हो। क्यों यह सन्देह मन को सालता रहता है कि यदि 'अन्ना केरेनिना' चाहती तो अपने जीवन की घटनाओं के पहिये विपरीत दिशा में मोड़ सकती थी, उनके क्रम को बदल सकती थीं और इस तरह अपने को आत्महत्या के भयावह अन्त से बचा सकती थी? यह नहीं कि उपन्यास में उसकी मृत्यु विश्वसनीय और अनिवार्य नहीं जान पड़ती—यही तो सबसे बड़ी विडम्बना है— उपन्यास में जो चीज़ सबसे अधिक अनिवार्य और स्वाभाविक जान पड़ती है—जीवन के सम्पूर्ण प्रवाह में वही चीज अचानक सांयोगिक (Contingent) और संदिग्ध-सी बन जाती है। मेरी मैकार्थी ने अपने एक निबन्ध में लिखा था कि यदि अन्ना केरेनिना व्रान्स्की से स्टेशन पर न मिलती—जो निरा संयोग था—तो उसकी ज़िन्दगी पूर्ववत् अपनी लगी-बंधी पटरी पर चलती रहती। यह भीषण सत्य है। एक आकस्मिक घटना समूचे जीवन की नियति को बदल सकती है। यह बात मदाम बावेरी पर लागू नहीं होती, जो अपनी स्थिति से छुटकारा पाने के लिए किसी भी प्रेमी के साथ भाग सकती थी। इस दृष्टि से अन्ना का चरित्र मदाम बावेरी से कहीं ज्यादा स्वतंत्र है और उसका प्रेम जितना सांयोगिक है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उतना ही संहारकारी। एपिक की घटनाओं और पात्रों की नियति की अनिवार्यता में कहीं प्रकृति का समर्थन और साधुवाद है, जो उसे निश्चित और नियामक बनाता है। किन्तु उपन्यास की अनिवार्यता एक व्यक्ति के ठिठुरते अरक्षित निर्णयों पर निर्भर है, जिसे बाहर की कोई शक्ति—समाज, प्रकृति, ईश्वर—अपना संरक्षण देकर वैध नहीं करार कर सकती। उपन्यास की घटनाएं कलात्मक रूप से अनिवार्य होने के बावजूद किसी तरह की नैतिक वैधता (Legitimacy) या प्राकृतिक क्रमबद्धता प्राप्त नहीं कर पातीं। क्या औपन्यासिक जगत की इस अराजक अवैधता को देखकर ही तोल्सतोय ने अन्तिम वर्षों में अपने महान् उपन्यासों को इतनी निर्ममता से अस्वीकार नहीं कर दिया था।?

व्यक्ति के इस स्वेच्छाचारी और अराजक संसार के भयावह तर्क को काफ्का अन्तिम परिणति तक ले गये, जहां मनुष्य को अपराधी तो घोषित किया जाता है, किन्तु कोई ऐसा नियम या न्यायालय नहीं, जिसके सामने हम यह पता चला सकें कि आखिर उसनें कौन-सा ऐसा काम किया है, जिसका अपराध उस पर मढ़ा जा रहा है। दोस्तोएवस्की की अराजक नियमहीनता का संसार—जिसमें व्यक्ति सब-कुछ कर सकता है—काफ्का तक आते-आते अपना पूरा एक चक्र समाप्त कर लेता है, जिसमें व्यक्ति की यही सब कुछ करने की स्वाधीनता ही उसका सबसे बड़ा पाप और अपराध बन जाती है। उनका अंतिम उपन्यास 'कासल' एक दुर्गम अंतहीन, यातनामय खोज है, किसी ऐसे सर्वोच्च अधिकारी (ईश्वर?) को पाने की तलाश, जिसके 'ला', नियम या आदेश के अन्तर्गत मनुष्य अपने जीवन की अर्थवत्ता को उपलब्ध कर सके—एक ऐसा ईश्वरीय सन्देश, जो हमें अंतिम और स्पष्ट रूप से बता सके कि इस धरती पर मनुष्य का दायित्व—धर्म, 'वोकेशन' क्या है? काफ्का अंतिम उपन्यासकार थे, जो उपन्यास की इतर-नैतिक और सेक्यूलर सीमाओं को लांघकर नियम और धर्म की वैध दुनिया में जाना चाहते थे और 'लांघने' के इस असम्भव प्रयास में दोनों दुनियाओं के 'बार्डर' पर ही खत्म हो गये थे। क्या उनका अंत एक अजीब ढंग से हमें वाल्टर बेंजामिन की मृत्यु की याद नहीं दिलाता, जो नात्सी यूरोप के अधर्म से छुटकारा पाने के लिए लोकतंत्र की धर्म-संपन्न व्यवस्था में जाना चाहते थे और जिन्होंने घोर हताशा में धर्म और अधर्म की अंतिम सीमा पर ही आत्महत्या कर ली थी?

यह वह क्षण था, जब पहले-पहल यूरोप में उपन्यास—या ज्यादा सच्चाई से कहें तो यूरोपीय उपन्यास की मृत्यु की अफवाह सुनायी देने लगी थी। ध्यान से देखें तो पश्चिमी संस्कृति का यह क्षण ठीक वही था, जब पहली बार यूरोपीय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समाज में व्यक्ति की मृत्यु की चर्चा भी शुरू होने लगी थी—एक ऐसा व्यक्ति—जो अकेला और अरक्षित होने के बावजूद अपनी भावनाओं और विचारों में स्वायत्त था, राज-सत्ता और जन-समूह से अलग अपनी विशिष्ट इकाई पहचानता था : आत्म-केन्द्रित लेकिन स्वाभिमानी व्यक्ति जिसकी छवि को यूरोप के रोमैंटिक साहित्य में अनेक लेखकों ने उकेरा था। किंतु उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में जिस औद्योगिक, नागर सभ्यता का अभ्युदय हुआ, उसने एक ऐसी भीड़ को जन्म दिया, जिसकी क्षुद्र बाजारू रुचियों को देखकर फ्लोबेर इतना आतंकित हुए थे; जन के नाम पर जिस चेहराहीन, दृष्टिहीन, रुचिहीन व्यक्तियों की भीड़ ने भेड़ों की तरह यूरोपीय नगर को घेरा था, उससे बचने के लिए फ्लोबेर ने अपने एकांत कमरे में शुद्ध कला की साधना में ही जीवन की अर्थवत्ता खोजनी चाही थी; पहली बार कलाकार के स्वतंत्र और स्वायत्त व्यक्तित्व पर संकट की छाया मंडराने लगी थी; स्वयं व्यक्ति का रोमैंटिक उज्ज्वल चरित्र एक औसत आदमी की सपाट और सतही और यंत्र-चालित दुनिया में अपनी वैयक्तिक विशिष्टता खोने लगा था।

पहले महायुद्ध के बाद व्यक्ति का यह संकट इतना गहरा हो चुका था कि स्पेनिश चिंतक और दार्शनिक जोंस आर्तेगाई गास्से ने अपनी पुस्तक 'द रिवोल्ट आव् द मासेज़' में पहली बार यूरोप के व्यक्ति को भीड़ के मनुष्य (Mass man) में कायाकल्पित होते देखा था. और यह भयावह कायाकल्प था—क्योंकि. भीड़ का मनुष्य 'रेनसेन्स' के विलक्षण और विशिष्ट गरिमा संपन्न मनुष्य और उन्नीसवीं शती के रोमैण्टिक हीरो की अनोखी विशिष्टता से स्खलित होकर व्यक्ति के सबसे औसत, निम्नतम आत्मसंहारी और संवेदन-शून्य संस्करण में बदल गया था—एक आत्महीन मनुष्य, जिसने अपने व्यक्तित्व को एक असहाय बोझ मानकर भीड़ की अमानवीय सत्ता के हवाले कर दिया था। स्वतंत्रता का दर्द और सोच अब उसे नहीं मथता था। एक सोचहीन मनुष्य, जो अपनी अंतिम परिणति में हमें काम्यू के 'आउटसाइडर' की याद दिलाता है, खाने-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीने वाला व्यक्ति, जो अपनी मां की मृत्यु के दूसरे दिन ही स्विमिंग-पूल में तैरने जाता है, अपनी प्रेमिका के साथ सोता है, और जिसे ठीक-ठीक याद भी नहीं रहता कि उसकी मां की मृत्यु कब हुई थी, कल या परसों ?

जरा कल्पना कीजिये दोस्तोएवस्की के 'नोट्स आव द अन्डरग्राउण्ड' के विक्षिप्त, बदहवास, घृणा, प्रेम, आत्म-जुगुप्सा और नैतिक-अनैतिक प्रश्नों की दलदल में कलपता 'अउटसाइडर' काम्यू के अजनबी तक

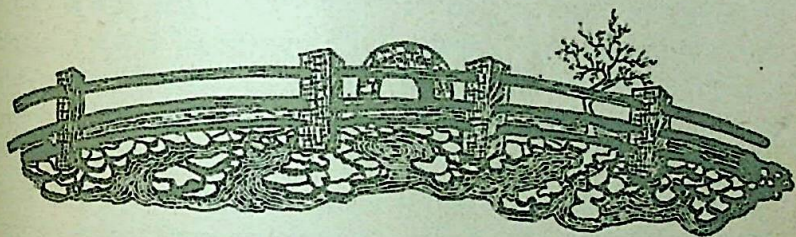

आते-आते कैसे एक उदासीन, दैनिक कार्य-कलापों में डूबे भावशून्य 'रोबो' में बदल गया है? काम्यू का नायक इसलिए 'अजनबी' नहीं है कि समाज से अलग अपनी भावनाओं या आदर्शों में विशिष्ट है-उन्नीसवीं शती के निहिलिस्ट, विद्रोही आउटसाइडर की तरह—बल्कि इसलिए कि उसका व्यवहार शुद्ध रूप से आज के 'भीड़ मनुष्य' का स्वाभाविक चरित्र है—हम सबका चरित्र—किंतु जहां हम अपनी—भावशून्यता और आध्यात्मिक दिवालियेपन को अपने छद्म सरोकारों और संसारी नैतिकता की काई तले छिपाये रहते हैं, काम्यू का हीरो हमें इसलिए अजनबी लगता है, क्योंकि उसने इस काई को अपने ऊपर से उतारकर अपने को जस-का-तस प्रस्तुत कर दिया है।

एक औसत, दैनिक और आयामहीन पुरुष, दोस्तोएवस्की का नायक अपनी आत्मा के अन्डरग्राउण्ड अंधेरे में आउटसाइडर था, काम्यू का अजनबी ऊपर सतह की रोशनी में घूमता-फिरता नगर की भीड़ का एक ऐसा टिपिकल प्राणी है, जो अपने औसतपन की चरमावस्था के कारण भयावह-सा जान पड़ता है; पहला दूसरों के औसत संसार से अलग छिटककर अपनी आत्मा की अनन्त परतों को छीलता है, दूसरा भीड़ के अनन्त समूह के बीच एक औसत इकाई है, जिसकी आत्मा शून्य की अथाह परतों के नीचे दबी है।

लगता है जैसे इन दो उपन्यासों के बीच यूरोपीय मनुष्य ने व्यक्तित्व के चरम बोझ से व्यक्तित्वहीनता के चरम हल्केपन तक की पीड़ित यात्रा तय की है। उपन्यास विधा, जिसका जन्म ही व्यक्ति की विशिष्ट अवधारणा से जुड़ा था, यदि हमारे समय की घोर व्यक्तित्वहीनता तक आते-आते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने को इतना थका और क्लान्त और सम्भावना-शून्य पाये, तो क्या यह आश्चर्य की बात होगी ?

यूरोप में व्यक्ति की यह परिणति, 'सब कुछ' से 'कुछ नहीं' तक की यात्रा क्या अनिवार्य थी ? इस प्रश्न को थोड़ा-सा बदलकर ऐसे भी पूछ सकते हैं कि जिस समाज में व्यक्ति की अवधारणा मनुष्य के सर्वसत्ता सम्पन्न और आत्मकेन्द्रित 'अहं' (इगो) से शुरू होती है, उसका अंत यदि इस अहं के आत्मसंसार में हो, एक खंडित और खोखला अहं, तो यह क्या अस्वाभाविक बात होगी ? एक ऐसी संस्कृति में, जहां आत्मा और अहं, इगो और सेल्फ के बीच कोई स्पष्ट अन्तर न हो, जहां एक को दूसरे के साथ उलझाया जाता रहा हो, वहां मनुष्य अपने अहं का अतिक्रमण करके अपनी आत्मा के साक्षात्कार करने का जोखिम नहीं उठाता बल्कि अहं के बोझ से छुटकारा पाने के लिए स्वयं अपने 'सेल्फ' को ही नष्ट कर डालना चाहता है। बीसवीं शती के उत्कृष्ट उपन्यासों में इस खोये हुए सेल्फ, 'इस लुप्त आत्मा को पाने की छटपटाहट जरूर दिखायी देती है', जिसके बिना कोई भी व्यक्ति अपनी अस्मिता, अपनी पहचान, धरती पर अपने 'होने' का अर्थ परिभाषित नहीं कर सकता। 'साल बैलो' के पात्र 'हरजौग' का कॉमिक ट्रैजिक संघर्ष यही है कि बीसवीं शती की औद्योगिक दुनिया में अपनी असली पहचान, अपने सही रोल, अपनी आत्मा के नक्शे को निर्धारित कर सके, क्योंकि वह जिस दुनिया में रहता है, वहां लोगों की अथाह भीड़ तो है, असंख्य 'अहमों' का कुलबुलाता समूह, किंतु स्वयं व्यक्ति का सेल्फ, उसका अपनी आत्मा से संबंध इतना धूमिल और संदिग्ध बन गया है, कि यह पता लगाना भी असंभव बन गया है, कि उसका अपना 'स्वयं' कितना उसका अपना है, कितना दूसरों से उधार लिया हुआ, दूसरों द्वारा अनुशासित। हरजौग अंधी गली के जिस अंतिम मोड़ पर पहुंच गये हैं, वहां यदि एक तरफ हमें यूरोपीय उपन्यास का 'डेड एंड' दिखायी देता है, तो दूसरी तरफ वह कुंजी भी मिल जाती है, जो मनुष्य के अंधियारे मन, अहं की परतों तले दबे आत्मन् का ताला खोल सके, जिसके दरवाज़े एक दूसरी दुनिया की तरफ खुलते हैं।

कैसी है यह दुनिया, जो यूरोपीय उपन्यास के अहं-केंद्रित संसार से मुड़कर हमें एक ऐसे मन से साक्षात् कराती है, जहां अहं के भयभीत आक्रामक साम्राज्य की सीमाएं खत्म हो जाती हैं, एक ऐसे 'सेल्फ' के दरवाज़े खोलती है, जिसके भीतर व्यक्ति का मन इगो, सुपर-इगो जैसे अंधेरे तहखानों में बंटा नहीं है, बल्कि जहां मन, आत्मा और देह एक संपूर्ण सृष्टि के 'मिनिएचर' में स्वयं मनुष्य के भीतर अखण्डित रूप से मौजूद है। क्या हम इसे 'भारतीय मन' की दुनिया कह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सकते हैं? मुझे नहीं मालूम, किन्तु अवश्य ही यह वह दुनिया नहीं है, जिसका चित्र हमें आज तक यूरोपीय उपन्यासों में उपलब्ध होता रहा है। फिर कैसा है यह संसार, जिसके भीतर इस मन का संस्कार बसा है, जिसके तन्तुओं से स्वयं इस मन का टेक्सचर बना है ? यूरोपीय उपन्यास की अहं-आक्रांत दुनिया से निकल कर यदि हमें इस अनोखे मन, मनुष्य के आत्मन्-संस्कार में प्रवेश करने का अवसर मिल सके तो हमें सहसा लगेगा 'मानो हम इकाइयों की दुनिया से निकलकर संबंधों की दुनिया में चले आये हैं।'

यहां सब जीव और प्राणी एक दूसरे में अंतर्गुम्फित हैं, अन्योन्याश्रित हैं, न केवल वे प्राणी जो प्राणवान हैं, बल्कि वे चीज़ें भी जो ऊपर निष्प्राण (Inanimate) दिखायी देती हैं। इस मायावी दुनिया में चीज़ें आदमियों से जुड़ी हैं—आदमी पेड़ों से, पेड़ जानवरों से, जानवर वनस्पति से, और वनस्पति आकाश से, बारिश से, हवा से। एक जीवंत, प्राणवान, प्रतिपल सांस लेती, स्पन्दित होती हुई सृष्टि—अपने में संपूर्ण सृष्टि जिसके भीतर मनुष्य भी है, किंतु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मनुष्य सृष्टि के केंद्र में नहीं है, सर्वोपरि नहीं है, सब 'चीज़ों का मापदण्ड' नहीं है, वह सिर्फ संबंधित है और अपने संबंध में वह स्वायत्त इकाई नहीं है, जिसे अब तक हम 'व्यक्ति' मानते आये थे, बल्कि वह वैसे ही संपूर्ण है, जैसे दूसरे जीव अपने संबंधों में संपूर्ण हैं।

जिस तरह मनुष्य सृष्टि का ध्येय नहीं है उसी तरह मनुष्य का ध्येय व्यक्ति होना नहीं है। हम साधन और साध्यों की दुनिया से निकलकर संपूर्णता की दुनिया में आ जाते हैं। यूरोपीय मनुष्य का ज्वर, जो व्यक्ति के अलगाव और अकेलेपन के कारण उपन्यास की मर्मांतक तकलीफ बनकर प्रकट हुआ था, संबंधों की इस परिकल्पना में अपने-आप नष्ट हो जाता है, घुल जाता है। हेगल ने जहां व्यक्ति की अस्मिता दूसरों के विरुद्ध—अन्य के खिलाफ—परिभाषित की थी, वहां उसके विपरीत संबंधों की दुनिया में विवेकानंद बिल्कुल दूसरे कोण से व्यक्ति को आंकते हैं, 'व्यक्ति का जीवन संपूर्ण के जीवन में बसा है, उसका सुख संपूर्ण के सुख में निहित है। संपूर्ण के बिना व्यक्ति की परिकल्पना असंभव है। यह ऐसा शाश्वत सत्य है, जिसकी आधार-शिला पर समूचा विश्व टिका है। इस अनंत संपूर्ण की ओर धीरे-धीरे अग्रसर होना, उसके प्रति अगाध सहानुभूति और समानता महसूस करना, उसके सुख में सुखी और उसकी यातना में दुःखी अनुभव करना—यही व्यक्ति का एकमात्र कर्तव्य है। इस कर्तव्य के उल्लंघन में उसकी मृत्यु है।'

विवेकानंद ने 'व्यक्ति' की मृत्यु के बारे में जो चेतावनी उन्नीसवीं शती के अंत में दी थी, हमारी शती की ढलती

(शेषांश पृष्ठ १३२ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

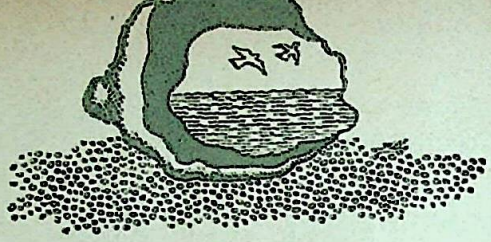

वीरेन्द्र कुमार जैन की आत्मस्पर्शी स्वानुभव-कथा

□

आत्माओं के अनोखे शिल्पी श्रीगुरु मुक्तानन्द परमहंस

[गतांक से आगे]

अपनी उस मोहरात्रि से बाहर आना मेरे वश का नहीं था। मैं उसी में खोया रहा, और पराधीनता की दारुण वेदना झेलता रहा। आख़िर भगवान ने स्वयम् मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। मेरे मोह के आधार में ही सुरंगें लगा दीं। एक दिन ऐसा आया, कि जैसे किसी ने मेरी पीठ में छुरी भोंक दी। मेरे विश्वास के मूलाधार ध्वस्त हो गये। वह धरती ही फट पड़ी, जिस पर मैं खड़ा था। महाचण्डिका महाकाली ने जो दायें हाथ से दिया था, वही बायें हाथ से छीन लिया। मां ने मुझे गोद में लेकर, मेरे हृदय के आरपार अपनी कटार उतार दी। सारे अन्धकार फट गये। जीवन हाथ से निकल गया। होश-हवास चला गया। हंसी-मुस्कान चली गयी। घनघोर विषाद में डूब गया। नितान्त सर्वहारा, आत्महारा हो गया। पराकाष्ठा पर मैं अपमानित और दलित किया गया। मुझे मिट्टी में मिलने को अकेला छोड़ दिया गया। एक दिन जो मैं शब्द का स्वामी और वाणी का वाचस्पति था, मूक पशु की तरह, निर्जीव ठूंठ की तरह मूक और निर्वाक् हो गया। सर्वस्व चला गया, तन-मन क्षीणतर होता गया। मैं मृत्यु का इन्तज़ार करने लगा।...

ooo

बाबा के पास आश्रम जाने की हिम्मत नहीं थी। एक तो अकेले जाने लायक हालत न थी। चौबिस घंटे व्यथा, यंत्रणा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और भय में रहता था। सारे चिकित्सक, ट्रैंक्विलाइज़र व्यर्थ हो चुके थे। डाक्टर जवाब दे चुके थे। पागल की तरह राहों पर विक्षिप्त, बदहवास घूमता था। मनुष्य मात्र का पराया हो गया था। आश्रम मुझे कौन ले जाये, और बाबा पर से भी आस्था जाती रही थी। दूसरे, आश्रम में पुराने दिनों की ऐसी स्मृतियां, हर जगह, चप्पे-चप्पे पर छपी थीं, कि उन यादों को सहना और दुहराना मेरे वश का न था। संसार में एकदम अकेला हो गया। सारे मानवीय सम्बन्धों की सीमाएं और स्वार्थ नग्न होकर सामने खड़े हो गये थे। क्यों जीऊं, किसके लिए जीऊं? कौन है यहां मेरा? हर दिन मैं मृत्यु के निकटतर पहुंच रहा था।

उस चरम विनाश की घड़ी में, एक दिन हिम्मत करके मैं अकेला ही गणेशपुरी को चल पड़ा। वैशाखी पूर्णिमा के तीसरे-चौथे दिन, बाबा के जन्मोत्सव की भीड़ छंट जाने पर ही, वहां पहुंचना मुझे उपयुक्त लगा। ताकि किंचित् एकान्त में, उनके निकट अपना अन्तिम निवेदन पहुंचा सकूं।

अब तो आश्रम राजमहल जैसा विशद-विस्तृत हो गया था। मैं बरसों बाद गया था। पीछे चौक में गया। बाबाजी अपने आवास से बाहर आ रहे थे—चौक में। सोनहरी किनार के रेशमीन केशरिया उत्तरीय से मण्डित, हिने के इत्र की गहरी केशर-कस्तूरी से वातावरण को सघन

आगामी आध्यात्मिक अतिक्रान्ति के अग्रदूत
स्वामी मुक्तानंद परमहंस

करते, वे भव्य योगि-राजेश्वर अपनी सदा की सिंहगति से आते दिखाई पड़े। मैं पैर छूने को झुका, तो वे पीछे दूर खिसक गये। पैर न छूने दिये। पूछा:

'कैसा है तुम?'

मुझसे बोला न गया। बमुश्किल कहा:

'आप देख तो रहे हैं, जीवन का अन्त सामने है।'

अचल स्वर में बोले: 'अच्छा है तुम!'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मैं अच्छा हूं ? इस हालत में . . . ? बोल भी नहीं पाता।'

'अच्छा है . . .!' कहकर वे आगे बढ़ गये।

पूरे तीन दिन और दो रात, मैं आश्रम में रहा। लेकिन कितने संत्रास और यातना में बीते वे दिन-रात। बाबा ने कोई सहारा न दिया, एकदम अकेला छोड़ दिया। पहले से भी अधिक अकेला। कण्ठ में वाणी नहीं, ओठों पर स्पन्दन नहीं। और सांसों में निरन्तर आरियां चल रही थीं। कितनी-कितनी मोह-ममता भरी यादें थीं आश्रम में, पुराने दिनों की। उस पूरे परिवेश पर वे छायी थीं। मन्दाग्नि पर्वत और वज्रेश्वर पर्वत की वे सुरम्य वनालियां कितनी सूनी हो गयी थीं। डॉर्मेटरी में सोता था : बहुत दूर पर तारे की तरह कोई एकाकी दीया चमकता था, जिसमें कभी अपनी ममता की मूरत को देखा करता था। उन बेचैन, बेनींद रातों में वह दीया, किस क़दर मेरे सीने को चाक़-चाक़ कर देता था।

इतने बड़े आश्रम में कोई पुरसाने हाल नहीं दीखा। और बाबाजी के सामने जाने की हिम्मत नहीं होती थी। पहले ही दिन सामने आते ही उन्होंने मेरे चलनी हो गये हृदय में, अन्तिम छुरी उतार दी थी। क्या यही मेरे त्राता श्रीगुरु हैं, जिन्होंने एक दिन मुझसे अपरिसीम प्रेम का वादा किया था, और आज मेरी मरण घड़ी में, मेरे लिए एक आश्वासन या प्यार का बोल भी नहीं है उनके पास? मेरे रोष, क्षोभ और पीड़ा की सीमा नहीं थी। जब व्यथा से छाती फटने लग जाती, तो बाबाजी को अकेला देख, उनके पास दौड़ जाता। पैरों में सर डालता, तो पैर खींच लेते थे, सर मेरा पत्थर पर पड़ता था। मैं रो-रोकर कहता : 'बापू, अब नहीं सहा जाता। या तो मारो या तार दो। इस फांसी में अब जी नहीं सकता। मेरी इस हालत पर तुम्हारी निगाह भी नहीं उठती ?'

भृकुटी चढ़ाकर कठोर स्वर में उन्होंने पूछा :

'क्यों हुई यह हालत ?'

'तुमसे क्या छुपा है, भगवान् ?'

'फिर अभी भी वोई . . . ?'

'कुछ भी तो नहीं है। ओंठ पर शब्द नहीं, कण्ठ में वाचा नहीं, स्मृति दिन-दिन क्षीण हो रही है।'

'क्षीण नहीं हो रही, वह भी चली जायेगी, ऐसा ही रहा तो।'

ज़ख्म पर ज़ख्म दिये जा रहे थे भगवान्। कल्पनातीत था उस वज्र का आघात। मानुषोत्तर था मेरा वह पीड़न, वह मेरा अकेलापन और अनाथत्व। और मुक्तानन्द तुले हुए थे, कि वे मुझे अन्तिम रूप से अकेला और अनाथ करके छोड़ देंगे।

मैंने एक सुबह बहुत फूटकर, बहुत निहोरा करके कहा :

'बापू, तुम्हारी कृपा के बिना इस पाश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग विद्यापीठ

से छूटना सम्भव नहीं। मुझ पर कृपा करो, और फांसी के फन्दे से मुक्त करो।'

तमककर बोले श्रीगुरुनाथ :

'हमारा कृपा तो सदा सब पर है। अब तो तुम स्वयम् अपने ऊपर कृपा करो!'

'वह कर सकता, तो तुम्हारे पास क्यों आता?'

बाबा को कोई उत्तर नहीं देना था। अवज्ञा होती ही चली गयी, पीड़न परा कोटि को पार कर गया था। शुरू के दिनों में बाबा का ऐसा लाड़-प्यार मिला था, जैसे उनका युवराज होऊं। लेकिन फिर वे मेरे प्रति कठोर से कठोरतर होते गये। सारे ज़माने के लिए उनके पास बड़े-बड़े आशीर्वाद थे, अवढर कृपाएं थीं, देने को जगत के तमाम ऐश्वर्य और सुख थे। लेकिन मुझे हर चीज़ नकार दी गयी थी। मुझे हर तरह वंचित कर दिया गया था। मेरी जो सबसे बड़ी पुकार और वेदना थी, उसके लिए कभी कोई आश्वासन उन्होंने मुझे न दिया। लेकिन वे मुझे बहुत प्यार करते थे, यह कई अम्मा लोग बताती थीं, तो मुझे विश्वास नहीं होता था। अपने चरण मुझे फैलाकर पूरे दे देते थे, चाहे उन्हें सीने से लगा लूं, कि चूम लूं मुझे पूरी आज़ादी थी। प्राय: उनकी जांघ पर सर रख देता था, मगर हाथ कभी न रक्खा सर पर, लेकिन गोद खुली थी मेरे लिए। बाक़ी फिर मैं मरूं या जीऊं, उन्हें मेरी फिक्र नहीं थी। नौकरी छूट गयी तो राह-राह अपमानित होने की छोड़िए, याद याद न दी, कोई तसल्ली, कोई उम्मीद न दी। सबकी राहों में उन्होंने फूल बिछाये थे, मगर मेरे प्रति उनकी कठोरता वज्र को मात करती थी। मेरे लिए उन्होंने एक ही रास्ता छोड़ा था : तलवार की धार पर चलना होगा, उसी पर सोना होगा।... आज सोलह वर्ष के बाद जब मनुष्य की दुनिया में सम्राट की तरह उन्नत भाल चलता हूं, तो लगता है कि मुक्तानन्द के युवराज के लिए फूल की शैया नहीं हो सकती थी, तलवार की धार ही हो सकती थी!

...वे मुझे अपने साथ तदाकार कर देना चाहते थे।..आज अपनी देह में—अपनी छाती, बांहों और उदर में, अपनी चाल, बोली और भंगिमा तक में अचानक उनका आविर्भाव अनुभव करता हूं, तो लगता है कि मेरे भीतर वे अपनी ही मूर्ति उतारना चाहते थे, इसीलिए मेरी माटी को उन्होंने इतनी निर्ममता से रौंदा था।

वे दो रात, तीन दिन मैंने गुरु के आश्रम में, अंगारों पर बिताये। जाने के दिन शाम बिदा लेने गया। रो-रो कर कहा :

'बापू, आज के बाद तुम्हारे सिवाय, और किसी को याद न करूं, ऐसी शक्ति दो।...'

'फीर...!' कहकर वे कुछ नर्म हो आये। मैंने पैरों में सर रख दिया। उन्होंने पैर नहीं खींचे। तब कैसी फांसी कटी थी, कैसी राहत की सांस ली थी मैंने। मैंने पूछा :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'एक महीने बाद कॉलेज खुल जायेगा। मेरे मुख में वाणी नहीं है। कैसे लेक्चर दूंगा ?'

'भगवान वाणी देंगे !'

लगा कि कोई आश्वासन दिया गया है। क्या सचमुच मैं सदा की तरह फिर वैसा ही धाराप्रवाह बोल सकूंगा। मेरी वागीश्वरी लौट आयेगी ? मैंने पूछा :

'बाबाजी, मैं अच्छा हो जाऊंगा ?'

'अच्छा है ... अभी, होना नहीं है ... !'

विश्वास कैसे आये। देह गल चुकी थी, नाड़ी-चक्र ध्वस्त हो चुका था—ट्रैंक्विलाइज़र खा-खाकर। और जगत में अपना कहने को कोई बचा ही नहीं था। परिजन, मित्र, आत्मीय, प्रियजन सब बेग़ाने हो गये थे। राह बचाकर चलते थे। कोई बात करने वाला भी नहीं था। तो अच्छा कैसे हूं—भीतर तो सांसों में छुरियां चल रही थीं। . . . लेकिन लगा कि शायद, आगे कोई राह है मेरे लिए। ठीक चलते समय गोद में सर रख दिया, तो आपत्ति नहीं की। लेकिन सर पर हाथ फिर भी नहीं रक्खा। फिर भी आश्वस्त होकर, उमड़ती आंखों से विदा हो गया। हॉल में भगवान नित्यानन्द के दर्शन किये, वे प्रसन्न दीखे। आंसू का तार टूट नहीं रहा था। दिल में दहशत थी, कि बस के रास्ते में दोनों ओर पहाड़ों पर शाम के उदास साये ढलते दीखेंगे, तब जाने कितनी यादें टीसेंगी, वह कैसे सह सकूंगा।

. . . लेकिन बस ने ज्यों ही, आश्रम से ज़रा ही दूर चलकर, वसीन रोड पर टर्न लिया, तो हठात् लगा कि मेरे कांपते हृदय को किसी ने दोनों हाथों से थामकर ऊपर उठा दिया है। किसी ध्रुव पर मेरी चेतना को जैसे किसी ने निश्चल कर दिया है। एक अजीब खुशी और मुक्ति मेरी नस-नस में उमड़ती महसूस हुई। मैंने अपने दिल में तमाम पुराने ज़ख्मों को जगाया, इस क्षण तक के सारे पीड़क विचारों और यादों को ताज़ा किया। मगर वह सब व्यर्थ हो गया। कुछ भी मुझे पस्त (डिप्रेस) न कर सका। जहां उठा लिया गया था, वहां से कुछ भी मुझे नीचे न ला सका। धुंधलके में दूरियों पर महाराष्ट्र के छोटे-छोटे गांवों के विरल दीये दीखते थे, तो लगता था कि अपने घर लौट रहा हूं, इन्हीं दूर के घरों में कहीं मेरा भी घर है, उसमें सुख,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्नेह और विश्रान्ति का दीपालोक फैला है। बरसों-बरसों बाद जैसे घर लौट रहा था।... मगर कहां कोई घर या शैया थी मेरे लौटने को ? इस संसार में तो मेरा कोई घर अब रह नहीं गया था। फिर कहां है वह दीपालोकित घर, जहां लौट रहा हूं ? पता नहीं।

कोई चिन्तामणि लेकर, अपने तथा-कथित घर आया था। हर्षित होकर अपनी उपलब्धि की कथा कहता रहा। लेकिन उसे सुनने वाला, या उसमें सहभागी होने वाला आस-पास कोई न था।

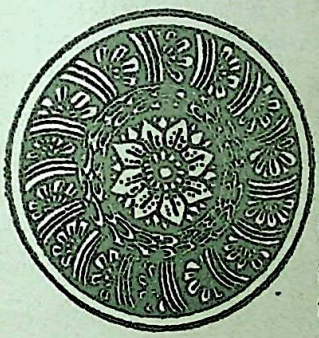

०००

हर सप्ताह मैं आश्रम जाने लगा। बराबर ही ऊपर उठता गया, तन-मन स्वस्थतर होता गया। जीवन में आनन्द की बंसी बजने लगी, रुद्ध वाणी के निर्झर फूट पड़े। और ठीक एक महीने बाद, कॉलेज के पहले दिन की क्लासों में जो लेक्चर मैंने अंग्रेज़ी में दिये, वैसे तो शायद पहले कभी न दिये थे। ध्वस्त नाड़ीचक्र सावुत हो गया। मैं जीवन से उफनता हुआ तनकर खड़ा हो गया। अनेक नयी प्रवृत्तियों के साथ भरपूर जीवन आरम्भ हो गया।

इसी बीच आश्रम में दूसरी बार जब गया था, तो अचानक बाबा के साधना-काल के पुराने भक्त, चालीसगांव के श्री राजगिरि कई बरसों बाद अचानक मिले थे। मुझे देखकर बोले :

'जैन साहब, क्या बताऊं, मानेंगे ? आप कितने दुबले हो गये हैं। आपका यही रूप एक दिन गहरे ध्यान में दीखा था, तो चौंका था। डर गया था... अचानक देखा कि आपकी इस क्षीण काया की तरफ अन्धकार में से कोई भीषण पंजा बढ़ा आ रहा है। यम का पंजा ? और वह पंजा आप पर झपटने को ही था कि, हठात् मैंने देखा— आपके पीछे से बाबा उठ खड़े हुए और ललकारकर बोले : अभी छोड़ दो इसको, नहीं ले जा सकते, इससे हमको कुछ काम लेना है।.. पंजा गायब हो गया। और आज आप मिले, सच ही वैसे ही दुर्बल, जैसे ध्यान में दीखे थे। क्या आप बीमार रहे ?'

मैंने कहा : 'नहीं, छोड़िये वह संकट बीत गया। अब तो बाबाजी ने मुझे हाथ में ले लिया है।'

'ले लिया न ? देखो, मेरा ध्यान प्रत्यक्ष द्रष्टान्त सिद्ध हुआ। जैन साब, एक बात मेरी याद रखना, अब बाबाजी आपके हाथों से कोई बड़ा काम कराने वाले हैं। आपके जीवन में कोई बड़ा काम अब होगा।'

... और इसके एकाध वर्ष बाद ही,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान महावीर की २५ वीं निर्वाण शती के उपलक्ष्य में, उनकी जीवनी पर एक विशाल महाकाव्यात्मक उपन्यास लिखने का संकल्प मेरे मन में जागा। बाबाजी का सम्पूर्ण आशीर्वाद उसके लिए प्राप्त हुआ। आपोआप उसकी आर्थिक व्यवस्था भी हुई। गत नौ वर्षों में 'अनुत्तर योगी : तीर्थंकर महावीर' नाम से उस वृहद् कृति के चार-चार सौ पृष्ठों के चार खण्ड रचे गये, प्रकाशित हुए। अब अन्तिम पंचम खण्ड लिखने की प्रक्रिया में चल रहा हूं। इधर तीन वर्षों से स्वास्थ्य भी ठीक नहीं चल रहा, उससे सृजन विलंबित हुआ है, फिर भी सिलसिला जारी है। इस महागाथा में आर्यावर्त की हज़ारों वर्षों की संस्कृति और साधना का समन्वित इतिहास सिमटा है। आर्य प्रज्ञा की अखण्ड महाधारा की यह एक कथात्मक दस्तावेज़ सिद्ध हुआ है। इस देश के विशाल भाविक और जागृत पाठक-समुदाय के हृदय में यह किताब पानी की तरह जज़्ब होती चली जा रही है। इन सारे बरसों में मेरी सृजनात्मक ऊर्जा और मेरी सरस्वती झरनों की तरह फूटी, समन्दरों की तरह उमड़ी, और उसकी सुगन्ध हज़ारों हृदयों में व्यापती चली जा रही है।

राजगिरि भाई ने जो उस दिन अपना ध्यान-द्रष्टान्त सुनाया था वह आज मूर्त हो सका है। एकाएक विश्वास नहीं होता है। क्या मैं ही वह बाबा के मन का महाकवि हूं, जो अब प्रकट हुआ है? क्या यह विराट् कृति मेरा ही सृजन है? नहीं, यह केवल श्रीगुरुनाथ और श्रीभगवान की दिव्य शक्ति का चमत्कारिक प्रकटीकरण है। इसमें उन्हीं की इच्छा पूरी हुई है। मेरा इसमें कुछ भी नहीं है।

०००

इस सन्दर्भ में एक बात याद आती है। बीच के बरसों में अपनी आर्थिक समस्या हल करने को मैं कई व्यावसायिक प्रयत्न भी करता रहा। बारबार कोई योजना लेकर बाबा के सामने जाता था, आशीर्वाद चाहता था। प्रायः टाल दिया करते थे। एक बार अपने स्नेही एक बड़े उद्योगपति से कास्टिक सोडा का कोटा प्राप्त करने के प्रयत्न में था। बाबा से ज़िक्र किया। बोले—'बात करके देखो।' मैंने कहा—'आशीर्वाद दें, तब तो बात करूं!' आशीर्वाद नहीं दिया, केवल दुहरा दिया : 'बात करके देखो!' मेरे मन में ख़ुर्दशा पैदा हो गया था। मैंने उन उद्योगपति के आगे प्रस्ताव रक्खा। उत्तर मिला : 'नहीं भैया, वह नहीं हो सकता। सबके कोटा सरकार से बंधे हैं। होता तो तुम्हारे लिए क्या ना हो सकती थी?' इससे कुछ बरस पहले मध्य प्रदेश में एक काग़ज़ का बड़ा कारख़ाना बनने की भारी योजना थी, जिसमें ग्वालियर की महारानी भी शरीक थीं। मेरे एक अभिन्न मित्र भी उसमें साझी थे, और कहते थे कि उसमें पब्लिक-रिलेशन्स आफिसर पद पर मैं हूंगा, और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरे शेयर्स भी होंगे । मैंने बाबाजी से आशीर्वाद चाहा । तो बोले कि—'अच्छा है, कुछ प्रयत्न करके देखो। दिल समझाने को, मन मनाने को अच्छा है ।' आशीर्वाद न दिया । और वह काग़ज़ की फैक्ट्री फिर कभी न बन सकी । ऐसे और भी कई प्रसंग हैं, जिनका उल्लेख ज़रूरी नहीं । .... पीछे एक बार प्रसंगात् बाबा ने मुझसे कहा था : 'जैन, तुमको जो मिलेगा, अपनी क़लम से मिलेगा, सरस्वती से मिलेगा । अन्य सब व्यर्थ होगा । सरस्वती से ही जगत्-विख्यात् तक हो सकोगे । लक्ष्मी, सुख, शान्ति, शक्ति, कीर्ति, जो पाओगे—अपनी क़लम से ही ।' आज समझ पाता हूं : मेरा अदृष्ट, मेरी नियति कैसी साफ़ उनकी आंखों आगे झलक रही थी । वे ठीक-ठीक जानते थे कि मुझे क्या होना है।

सन ७१ में जब नियमित आश्रम जाने लगा था, पर्वोत्सवों में रात-रात भर विभोर होकर नाम-कीर्तन में नाचता-गाता था, तो यौवन की एक उद्दाम ऊर्जा-तरंग मेरे रक्त में नये सिरे से उद्वेलित होने लगी थी । बाबा कहते रहते थे : 'जैन, उस भूतकाल से निकल आओ, निर्मूल । तुम्हारी प्रकृति (स्वास्थ्य) सुन्दर हो जायेगी । धीरे-धीरे, जो बिगड़ा है, सब संवर जायेगा । परिवार में सब उन्नत होंगे । तुम्हारा भाग्य बदल जायेगा । .... और एक दिन तुम्हारा कायापलट हो जायेगा । तुम एक दम बदलकर, नया आदमी हो जायेगा ।...' आदि-आदि ।

उस भूतकाल से आमूलचूल बाहर निकल आना सहज नहीं था । अन्तहीन थी वह मोह-रात्रि । महामाया के उस तमस राज्य की मोहिनी का अन्त नहीं था । वह भी तो मां की ही एक लीला थी, महाकाली चामुण्डा ने मेरे पोर-पोर को बींधकर, मेरे शरीर के अनेक कोश और त्वचाएं छील-छील कर उतार दी थीं । उसके उपरान्त जो आया, वह 'सदा वसन्तम् हृदयारविन्दे, भवम्भवानी सहितम नमामी !' का शाश्वत वसन्तोत्सव है, जिससे आज मेरी नस-नस में नवनव्य सृजन और निर्माण का अजस्र यौवन हिलोरे मार रहा है ।

'अनुत्तर योगी' के रचना-यज्ञ में आज नौ वर्ष से अविराम आहुति चल रही है । अविश्रान्त श्रम का तपस जारी है । मेरी ऊर्जा में पवमान, पर्जन्य और वरुण के अश्व एक साथ धावमान हैं । मेरी चेतना में सविता और सावित्री की युगल लीला अनाहत चल रही है । मेरी व्यस्तता देश-काल से बाहर अटूट हो गयी है । प्यारे बाबाजी के पास जाने तक से, महीनों महेरूम रहता हूं । लेकिन भीतर एक जुड़ाव की विद्युत्-धारा अखण्ड बह रही है ।

ध्यान में नियमित बैठने की आदत कभी न रही । शक्तिपात के तुरन्त बाद जब ध्यान का आवेश मुझ पर धारासार बरस रहा था, तब भी अलग से ध्यान में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कभी न बैठा। बस अनायास सोते-जागते, उठते-बैठते काम करते हुए, जो परम कृपा का वसन्त अनुभव होता है, उसी में मेरा कवि तल्लीन भाव से विहरता हुआ, रचना करता रहता है। 'अनुत्तर योगी महावीर' की रचना ही, एक महाध्यान हो रहा, दस वर्ष की महासमाधि लग गयी। महावीर को मैं जीवन्त रचकर खड़ा कर सका हूं, ऐसी लोकवाणी सर्वत्र सुनायी पड़ती है। वह जो भी हो, बाबाजी जानें। लेकिन 'अनुत्तर योगी' के सर्जन ने मुझे आपाद-मस्तक नया रचकर खड़ा कर दिया है, यह तो मुझसे अधिक कौन जान सकता है, सिवाय उन सद्गुरु परमात्मा के जो आज मेरे अंग-अंग में खेल रहे हैं।

ooo

बाबाजी जब दूसरी बार अमेरिका जा रहे थे, तब महीनों बाद उनके दर्शनार्थ गया था। 'अनुत्तर योगी' प्रथम खण्ड तब समाप्त कर चुका था। मैंने बहुत हर्षाकुल होकर बाबाजी से कहा था: 'मैं तो मर चुका था, अब जो तुम्हारे सामने है—यह तुम ही हो, हम नहीं।' बाबाजी आनन्द विभोर होकर बोले थे: 'मर नहीं गया था, मृतप्राय हो गया था। यह नवजन्म हुआ तेरा। और भी देखो अभी . . .'। समझ गया, अचूक और पूर्ण आशीर्वाद मिल गया है। बाबाजी पौने तीन वर्ष बाद लौटे। इस बीच 'अनुत्तर योगी' द्वितीय खण्ड निकल चुका था। मेरी सरस्वती सुगन्ध की तरह लोक-हृदय में गहरी-गहरी व्यापती चली जा रही थी। कवि की कीर्ति दिगन्त चूम रही थी। हृदयों में 'अनुत्तर योगी' का महाभाव राज्य व्याप गया था। बाबाजी के लौटने पर, प्रथम मिलन में, उन्हें दोनों खण्ड भेंट किये, निवेदन किया कि—इस कृति में जगह-जगह मेरे प्यारे बाबाजी की भावलीला तरंगित हुई है। कुछ स्थल बताये। तो पढ़ने लगे—और वे बालक की तरह आनन्द-क्रीड़ा से चपल और विभोर दिखायी पड़े थे। मेरे परम पिता के हृदय में, मेरी सिद्धि का हर्ष समा नहीं रहा था।

इस बार के अमरीका-प्रस्थान की सुबह, एयरपोर्ट में एक भव्य-दिव्य पण्डाल में बाबाजी का बिदाई-समारोह हो रहा था। मैं एक छोटा-सा केशरिया रेशमी रूमाल, बाबा के प्रिय हिना के इत्र में बसाकर, भेंट करने को ले गया था। विशाल दरबार लगा था। सुवर्णतार-खचित छत्र तले गुरुभगवान राजराजेश्वर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की तरह विराजमान थे। उनके सामने अमरीका से आये विपुल वैभव के उपहारों और अमरीकी फूल-दस्तों के ढेर लगे थे। यहां के भक्तों के उपहार भी कम मूल्यवान नहीं थे। ऐसे में एक छोटा-सा तहाया हुआ अपदार्थ केशरिया रूमाल—और उस पर रक्खा एक जोगिया गुलाब का फूल—क्या हस्ती रख सकता था। उपहारों के बीच एक चौकी खाली पड़ी थी। मैंने कांपते हाथों गुलाब सहित रूमाल उस पर चढ़ा दिया। प्रणाम किया, और भरी आंखों बाबाजी की ओर टकटकी लगाये रहा। लेकिन उनकी निगाह मेरी ओर न उठी। मन आहत हो गया। राजैश्वर्य के इस अम्बार में मेरा और मेरे इस तुच्छ रूमाल का क्या मूल्य हो सकता है!

कहीं श्रोताओं में दूर जा बैठा था। भक्तों के अभिनन्दन भाषण समाप्त हुए। बाबाजी बोलने को प्रस्तुत हुए: माइक एडजस्ट हो रहा था। तभी अचानक चौकी पर रक्खे रूमाल को उन्होंने एक ही झटके में खोलकर उठा लिया, दूसरे हाथ से गुलाब उठा लिया। एक मुट्ठी में रूमाल भिंच गया। दूसरे हाथ से वे गुलाब को सूंघ रहे थे। और फिर हठात् रूमाल से ओंठ पोंछकर उसे भी सूंघ लिया। और उसके बाद बाबाजी ने बिदाई का भाव-भरा सन्देश दिया, सार्वभौमिक ध्यान-क्रान्ति की उद्घोषणा की।

चलते समय सारे उपहार वहीं छूट

गये थे। केवल वह नाकिस केशरिया रूमाल, प्रभु की मुट्ठी में बड़े शौक़ से दबा हुआ था। बीच में जलपान को गये, पास के मकान में। वहां से निकलते हुए, और अन्ततः कस्टम-हॉल में प्रवेश करते समय भी वह रूमाल भगवान की मुट्ठी से दूर न हो सका था। उसी क्षण समझ गया था, कि मेरे परम पिता ने आज मुझे अपना ही राजराजेश्वर बना दिया है।

आज जो मेरी अन्तर-बाह्य अवस्था है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसका वर्णन शब्दों में सम्भव नहीं है। वह मैं नहीं, कोई तीसरी ही शक्ति है, जो उत्तरोत्तर मेरे भीतर से अधिकाधिक जाज्वल्यमान होकर प्रकट हो रही है। कोई ध्यान-साधन नहीं, कोई बाह्य तप-त्याग, नियम-आचार नहीं। जो है—वह केवल सृजन है। वही भजन है, वही अमृत-प्राशन है, वही तपस्या है, वही चिद्शक्ति-विलास है, वही काम-कला विलास है। सारे आदेश, सारे विधि-निषेध आपो-आप टूट गये हैं। अन्तस्तल में कोई विकल्प नहीं, द्वंद्व नहीं, प्रश्न नहीं। कोई ग्लानि नहीं, कोई अवसाद नहीं, कोई कुण्ठा या ग्रंथि बद्धमूल नहीं। अपने वैरी और विद्वेषी के प्रति भी अचानक प्यार उमड़ आता है, आंखें भर-भर आती हैं।

मेरे चारों ओर प्रेम और आकर्षण का विश्रुत-चुम्बकीय दरिया बह रहा है। जहां जाता हूं, वहीं सकल नर-नारी वृन्द, आबाल-वृद्ध-वनिता मुझे किस कदर प्यार करते हैं। घर-घर में मेरे लिए वृंदावन हो गया है। सर्वत्र राधारानी की वह विदग्ध प्रेमाकुल चितवन और भंगिमा सामने आती है। यह ऐश्वर्य मानुषिक नहीं, मेरा नहीं, श्रीगुरुनाथ का है, श्री भगवान का है—भगवान नित्यानन्द-मुक्तानन्द का है।

एक अदम्य आत्मनिष्ठा, और अविचल प्रत्यय के साथ सर्वत्र विचरता हूं। सब कहीं कितनी-कितनी आंखें एक साथ मुझे देख उठती हैं। महसूस करता हूं कि मेरे भीतर एक हिमालय चल रहा है, विन्ध्याचल गतिमान है, एक सूर्य उद्भासित है—स्वयम् अनुत्तर योगी महावीर चल रहे हैं, स्वयम् भगवान नित्यानन्द-मुक्तानन्द चल रहे हैं। मैं नहीं . . मैं नहीं . . . मैं नहीं। केवल एकमेव वही। श्रीगुरु की ठोकरों से अहम् कितना टूटा, नहीं मालूम। लेकिन वह अहम् सोहम् होकर रहने को विवश हो गया है।

मेरे गुरु ने अपना शरीर भी मुझे दिया है, और अपनी सर्वसम्मोहिनी, प्यारी बोली भी मुझे दी है। कभी-कभी चलते हुए अचानक भान होता है, मैं नहीं, बाबाजी चल रहे हैं। वही मस्ती, वही निर्भीकता, वही निर्द्वंद्वता, वही सिंहमुद्रा। मैं लुप्त हो जाता हूं। केवल गुरु भगवान को चलते हुए देखता हूं—लीला करते देखता हूं, राह-चौराहों पर, बाज़ारों, प्लेटफार्मों पर, ट्रेनों में, सभाओं में। एक ऐसी सत्ता, जिसे इस दुनिया की बड़ी से बड़ी ताक़त भी तोड़ नहीं सकती। मेरी भुजाओं और वक्ष में ऊर्जा का ऐसा समन्दर घुमड़ता है—कि जैसे इस ब्रह्माण्ड को दोनों हाथों में पकड़कर शीर्षासन करवा सकता हूं।

कई बार वार्तालाप या भाषणों के दौरान या कॉलेज के लेक्चर में, एकाएक अपने को ठीक बाबा की तरह बोलते हुए सुन लेता हूं। वैसे ही उच्चारण, वही लहजा, बोली का वही झटका और खटका, टोन में वही प्रभुता और अमूकता का अहसास। वही भंगिमा, वही अन्दाज।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हठात् ऐसा तदाकारिता का आवेश होता है, कि ऊर्जा और अन्तर-सुख के स्पन्दनों और प्रकम्पनों से सारा शरीर आलोड़ित रोमांचित हो उठता है। यह क्या हो गया है मुझे ? अजीब चमत्कार मेरे चारों ओर हर समय जारी है। जीवन का हर दिन एक नूतन वसन्तोत्सव हो गया है। एकाएक विश्वास नहीं होता, कि ऐसा भी हो सकता है मेरे साथ, मेरे इसी जीवन में ? कभी कल्पना न की थी। स्वप्न सत्य हो रहा है, और सत्य स्वप्न हो रहा है—एक ही अन्तर-मुहूर्त मात्र में। फिर भी मेरे कष्टों का, बाधाओं का अन्त नहीं है। लेकिन इसी निरन्तर त्रासदी के बीच एक गहरी सुखान्तिका चल रही है।

बार-बार आंखों में अपार कृतज्ञता के आंसू उमड़ आते हैं, अपने अभिन्नात्मक वल्लभ प्यारे बाबा के प्रति। श्रीसुन्दरी भगवती कुण्डलिनी के क्रोड़ में उत्संगित होने का सुख जब कभी सारी मर्यादाएं तोड़कर वह उठता है, तो एकाएक मेरे कण्ठ से फूट पड़ती हैं बारम्बार मेरी अपनी ही पंक्तियां :

द्वार-द्वार के अपमानित को,
तुमने, प्रभु, सम्राट बनाया।
मुझ माटी को लगा वक्ष से,
तुमने अपना सूर्य उगाया।।

इसके आगे, शब्द की गति नहीं : 'गिरा अनयन, नयन बिनु बानी !'

(समाप्त)

लेखनी का प्रेरणास्रोत

चींटियों का झुंड एक लेखनी को एक कागज़ पर चित्र बनाते हुए देख रहा था। एक चकित-मुग्धा चींटी ने दूसरी चींटी से कहा, 'देखती है, इस लेखनी को ! कैसे सुंदर चित्र बना रही है !'

'चित्र लेखनी नहीं, उंगली बना रही है। लेखनी तो उसका एक साधन मात्र है' दूसरी चींटी ने पहली को समझाते हुए कहा।

तीसरी चींटी ने उन दोनों की बात सुनकर कहा, 'यह काम उंगली का नहीं बांह का है, जिसकी शक्ति से पतली उंगली चित्रांकन कर सकती है।'

विवाद बढ़ता गया।

अंत में एक चींटी ने जो सब चींटियों में सबसे अधिक विलक्षण थी, कहा, 'चित्रांकन की योग्यता उस शरीर में कहीं स्थित नहीं है जो नींद और मौत में अचेत हो जाता है, शरीर उस आत्मा का एक आवरण-मात्र है, जो उंगलियों को चित्रांकन के लिए प्रेरित करती है, और शक्ति-स्फूर्ति प्रदान करती है।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा. प्रभाकर माचवे का एक व्यक्तित्व-परक लेख

भारतीय नवोत्थान के स्वप्नद्रष्टा युवराज डाक्टर कर्णसिंह

डा. कर्णसिंह का नाम यद्यपि राजनीति में आता रहा है और कुछ समय के लिए वे भारत के केंद्रीय शिक्षा मंत्री भी रहे।

फिर भी हम लिखने-पढ़ने वालों की जमात में उनको आदर उनके पद से नहीं है।

वे युवराज रहे, सदर रियासत रहे या जम्मू-कश्मीर की कांग्रेसी राजनीति के एक महत्वपूर्ण कर्णधार रहे। यह सब बातें गौण या दोयम हैं। अव्वल बात यह है कि वे एक उत्तम वक्ता हैं। मैंने उन्हें हिन्दी, डोगरी, अंग्रेज़ी में धाराप्रवाह बोलते हुए देखा-सुना है—बिना किसी पूर्व सूचना या तैयारी के, जिसमें उनके प्रत्युत्पन्नमतित्व से मैं चकित हुआ हूं। और तैयारी के साथ, औपचारिक समारोहों में भी।

उनके बोलने के बाद, बाकी सब वक्ता फीके लगने लगते हैं।

ऐसा कुछ जादू डा. राधाकृष्णन् की वाणी में था, जब वे अंग्रेज़ी बोलते थे। ऐसा जादू हिन्दी में माखनलाल चतुर्वेदी और डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी की वक्तृत्व-कला में था। उनके यहां संस्कृत पांडित्य, विश्व का दार्शनिक ज्ञान सब करतलाम्लकवत्, सहज रूप से अवतरित हो जाता था।

प्रोफेसर लोग अच्छा बोलें, तो समझ में आता है; वह उनका पेशा ही है। राजनैतिक नेता 'सभाजीत सिंह' हों यह भी समझ में आता है; रात-दिन वे जनता की आंखों में शब्दों की सुनहली धूल फेंकते ही रहते हैं। पर जो पेशे से 'लेक्चरर' या 'प्रोफेसर' न हो; और मंच गुंजाना और 'हेरैंगिंग' जिनकी 'वृत्ति' न हो, ऐसे व्यक्ति के पास वाग्मिता का ऐसा नाना-वर्णीय चमत्कार, एक ईश्वरीय देन ही है।

वे कभी भी अपने भाषण में नाटकीयता या वृथा भावुकता का प्रश्रय नहीं लेते; विवेक और संयम के किनारे नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छोड़ते और फिर भी श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर दे सकते हैं। शब्दों पर उन्हें विलक्षण अधिकार प्राप्त है।

उनका पाठान्तर बहुत अच्छा है। एक बार नई दिल्ली के रामकृष्ण मिशन आश्रम में स्वामी रंगनाथनन्दन की किसी पुस्तक का विमोचन था, श्रीमती इन्दिरा गांधी के हाथों। तत्कालीन एक मंत्री सी. सुब्रह्मण्यम् भी बोले। पर डा. कर्णसिंह ने आकर उपनिषद का पाठ शुरू किया, और जनता उनकी वाणी का अमृत ग्रहण करती गयी। शुद्ध सस्वर काव्य पाठ, संस्कृत हो या अंग्रेजी, हिन्दी या डोगरी, वे बहुत प्रभावशाली ढंग से घण्टों कर सकते हैं।

उनकी स्मृति बहुत अच्छी है, उच्चारण भावानुसारी हैं, स्पष्ट और स्वराघात-युक्त। अतः उनकी बात का प्रभाव भी उतना ही अच्छा पड़ता है। रामचरित-मानस-चतुःशती का विशाल समारोह था। डा. कर्ण सिंह ने धन्यवाद का पांच मिनिट का भाषण क्या दिया—सारी सभा को हिलाकर रख दिया। ऐसा ही संस्मरणीय भाषण श्री अरविन्द शताब्दी में उन्होंने एक संगोष्ठी में दिया। मैंने उनका दिल्ली के डोगरी भाषियों के साहित्य सम्मेलन का उद्घाटन-भाषण सुना है। और कुमार आसान शताब्दी महोत्सव में अध्यक्षीय भाषण भी। वे सदा मौलिक, औरों से एकदम भिन्न, सबमें अलग से चमक उठने वाले वक्ता हैं।

उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता इस बात से आती है कि वे केवल एक कवि, निबन्धकार, शोधकर्ता और साहित्यप्रेमी ही नहीं हैं, संस्कृत प्रेमी आस्तिक साधक हैं। दिल्ली के कालीबाड़ी के मन्दिर में वे अपने रचे गीत और भजन डोगरी में गाते हैं। श्री अरविन्द की कविताओं के पाठ का एक 'एल. पी.' रेकार्ड अरविन्द शताब्दि के अवसर पर अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में इण्डिया इण्टरनेशनल सेन्टर

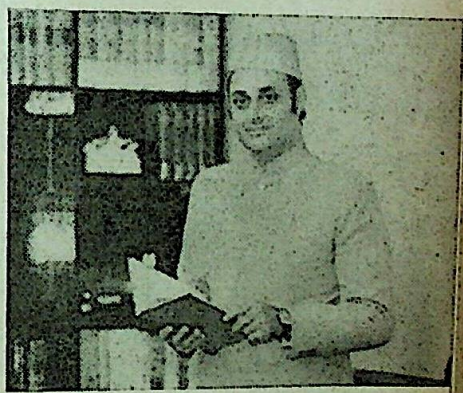

डा. कर्णसिंह : अपने अध्ययन-कक्ष में

में विमोचित हुआ।

मुझे जम्मू में उनके पुश्तैनी राजप्रासाद में उनका आतिथ्य ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरे साथ में पं. विष्णु-कान्त शास्त्री थे, जो डुग्गर-देश के जामाता हैं। स्वयम् डा. कर्णसिंह ने अपना दुर्मिल मध्ययुगीन चित्रकला संग्रह दिखलाया। वे जम्मू के रघुनाथ मन्दिर ट्रस्ट के केवल ट्रस्टी नहीं हैं वहां की दुर्मिल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सांस्कृत हस्तलिखित पोथियों के संरक्षक भी हैं। कश्मीर शैव-मत के दर्शन सम्बन्धी शोधकार्य को प्रोत्साहन देने के लिए उन्होंने विशेष अनुदान भी दिये हैं।

डा. कर्णसिंह अपने आपको हिन्दी-भाषी नहीं कहते। वे अपनी मातृभाषा डोगरी बताते हैं। उन्हीं के प्रयत्नों से (स्व.) डा. सुनीति कुमार चटर्जी के अध्यक्षता काल में केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने डोगरी भाषा को साहित्यिक मान्यता दी। गरीब बेचारी अकादमी माता का कुनबा बढ़ता गया : पहले संविधान सम्मत पन्द्रह भाषाओं में ही वह काम करती थी। अब बाईस बच्चे हो गये। जब तक मैं मंत्री था (१९७५ तक) अकादमी के बजट की सीमा वही थी। अतः सभी बिलखते थे कि हमें समान हिस्सा नहीं मिला। अब शायद स्थिति बदल गयी है। देश से 'गरीबी हटाओ' जिस मात्रा में अधिक कारगर होती जाती है, बेचारे भाषाई लेखकों की भी आर्थिक दशा शायद सुधरती जायेगी। पर मुझे अपने जीते जी भारतीय लेखक विदेशी लेखक की तरह—चाहे पूंजीवादी देशों का हो, या साम्यवादी—आराम से रह सकेगा, इसका इमकान या भरोसा नहीं है। डा. कर्णसिंह नौजवान, उत्साह से भरे, आशावादी लेखक हैं। वे अपने सामने श्री अरविन्द के ऊर्ध्व-मानस का अवतरण जन-जन में अवश्य देखेंगे। परन्तु सुमित्रानन्दन पन्त तो वह सपना देखते-देखते ही स्वर्ग सिधार गये। यह कुछ विषयांतर हो गया।

लेखक का आर्थिक पक्ष ही प्रधान नहीं होता। लेखन भी तो सार्थक बनता जाना चाहिये। पी. लाल ने डा. कर्णसिंह की अंग्रेजी कविताएं अपनी विश्व विख्यात 'ऐंथोलोजी' में छापी हैं। हिन्दी में डाक्टर साहब के एक संग्रह का अनुवाद हुआ है। डोगरी में और भी सशक्त कवि, कवयित्रियां हैं। वे सब हिन्दी में आना चाहिये। पर मुझे कश्मीरी विरुद्ध डोगरी या डोगरी विरुद्ध पहाड़ी भाषाओं का विवाद बहुत कम समझ में आता है। मैं सब भाषाओं को समान आदर और स्नेह से देखता हूं। अतः डा. कर्णसिंह के संस्कृत, हिन्दी, डोगरी और अंग्रेजी के साहित्यों और साहित्यकारों के, भारतीय परिप्रेक्ष्य में, प्रोत्साहन, विकास, उन्नयन और सहयोग के सब सद्प्रयत्नों की सराहना करता हूं। इन्हीं प्रयत्नों में एक डा. कर्णसिंह नेहरू फेलोशिप के एक प्रमुख-न्यासी के नाते, भारत के विभिन्न चिन्तकों, वैज्ञानिकों, साहित्यकारों का जो चुनाव करते रहे हैं, उसके प्रति भी लेखक-बिरादरी की ओर से मैं उन्हें आभार देता हूं।

डा. कर्णसिंह आधुनिक राजनीति-दर्शन के पण्डित हैं। उनका शोध प्रबन्ध श्री अरविन्द के राजनैतिक दर्शन पर है, जो अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुका है। मैंने मनोयोगपूर्वक पढ़ा है। अरविन्द शताब्दि वर्ष (१९७२) में मुझे डाक्टर साहब की कृपा से देशभर में चार सेमिनार, अरविन्द-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साहित्य पर, देश के चार क्षेत्रों में, आयोजित करने का सौभाग्य मिला। तब मैंने जाना कि श्री अरविन्द ने बहुत वर्षों पहले, लोकमान्य तिलक की ही तरह, इस देश की मूल समस्या को जान लिया था। आत्म-शक्ति और आत्म-ज्ञान का अभाव वह मूल समस्या थी। डा. कर्णसिंह ने तत्कालीन भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, श्री अरविन्द के राजनैतिक दर्शन के क्षेत्र में अवदान पर बहुत गहरा और दूरगामी विचार प्रस्तुत किया है।

इन सब बातों के अलावा डा. कर्णसिंह के व्यक्तित्व का एक और विशिष्ट पहलू है, जिससे वे मेरे निकट स्नेह और आदर के पात्र हैं। वे कलाकारों और साहित्यकारों की कद्र करना जानते हैं। उनके आवास में उत्तम चित्रों का संग्रह है। जब वे उड्डयन मंत्रालय में थे तब सारे विमान-तल के कार्यालय अत्यंत सुरुचिपूर्ण ढंग से भित्ति-चित्रों से सुसज्जित हो गये थे। मैंने उनके घर में कवि-गोष्ठियां सुनी हैं। वे मुशायरे और 'पोएट्री रीडिंग्ज़' में भी उतनी ही दिलचस्पी रखते हैं, जितनी डोगरी लोक कवि-सम्मेलन में। वे सच्चे अर्थ में 'रसिक' और 'कद्रदान', और कला प्रेमी व्यक्ति हैं। यह सुरुचि उन्होंने अध्ययन और साधना से, भारतीय इतिहास और दर्शन के गहरे स्वाध्याय और मनन से, अर्जित की है। इसी विद्या-प्रेम ने उन्हें विजयी बनाया है।

उन्हें कहीं भी अहंकार छू भी नहीं गया है। जिस किसी व्यक्ति के प्रति उनकी एक धारणा बन जाती है उसे वे बराबर निभाते हैं। राजनैतिक या सामाजिक पद प्रतिष्ठा का माप-दंड उनके लिए प्रधान नहीं—वे व्यक्ति की सहृदयता के सहारे संबंधों को बनाते हैं। इसीलिए अवसरवादिता प्रधान चंचला राजनीति की ऊंच-नीच में भटक नहीं गये। अपने आदर्शों को वे बराबर बनाये रखते चले गये। चाहे स्वास्थ्य मंत्रालय हो या यातायात, शिक्षा हो या उड्डयन, वे एक-सी लगन और पूरी निष्ठा से अपने कार्य में दत्तचित्त रहे। उनके बारे में विरोधियों को भी आलोचना करने या आक्षेप करने का कोई अवसर नहीं मिला। वे छोटी-छोटी बातों, ईर्ष्या-द्वेष और गोटी बिठाने-जमाने की सियासत से सदा दूर रहे। जो उन्हें नापसन्द था, वह साफ-साफ कहा। उन्होंने कभी भी किसी की अनावश्यक स्तुति नहीं की, न अनावश्यक निन्दा। सिद्धान्त को लेकर आलोचना की, व्यक्तिगत राग-द्वेष से प्रेरित होकर नहीं। जबकि कश्मीर और जम्मू की काफी चक्करदार और उलझी हुई राजनीति में क्या दक्षिणपंथी और क्या हिन्दू और क्या मुस्लिम—उनके अनेक आलोचक बराबर दुष्प्रचार करते रहे। पर डा. कर्णसिंह की प्रतिभा धूमिल नहीं हुई।

डा. कर्णसिंह मनुष्य के नाते बहुत ऊंचे हैं। उनका पारिवारिक, वैवाहिक, दाम्पत्य जीवन बहुत निर्मल है। एक भार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीय आदर्श गृहस्थ की तरह से वे हैं। वे देश-विदेश घूम चुके हैं। दीन-दुनिया का बहुत तजुरबा उन्होंने छोटी उम्र में हासिल किया है। पर वे मुक्त विचारों के स्वतंत्र व्यक्ति हैं। वे किसी दल, खेमे या गुट के अनुगत नही हैं। वे अपने ढंग के, अपना रास्ता खुद बनाने वाले चिंतक हैं। भावी भारत को उनसे बड़ी आशाएं हैं।

मैंने सुना है कि वे अपनी आत्म-कथा लिख रहे हैं—अवश्य ही वह एक बड़ा ही मूल्यवान दस्तावेज़ होगा अपने युग का, और आशा करूं कि उसमें हम जैसे पाठकों के लिए भी कुछ सामग्री होगी, जो 'युग' से अधिक 'युग-युग' की बात खोजते हैं। जिन वरेण्य महान् ग्रंथों का अध्ययन उन्होंने मूल संस्कृत में किया है, उनकी छाप उनके मानस पर अवश्य पड़ी होगी। इसलिए वे क्षण से अधिक अनंत, खंड से अधिक अखंड, और मृण्मय से अधिक चिन्मय के चिरंतन शोध में अपनी लेखनी और वाणी का उपयोग करेंगे ऐसी मेरी मंगलकामना है।

वे शतायु हों, यह तो सभी आशीर्वाद देते हैं। पर वे इस शताब्दि के भारत के एक शलाका-पुरुष बनें ऐसी मेरी हार्दिक अभिलाषा है। यह शताब्दि भारत के लिए बहुत निर्णायक है, और डा. कर्ण सिंह जैसे कम विचार नेता हैं जिनके पास परंपरा और विद्या का ऐसा संतुलित समन्वय और साथ ही स्पष्टवादिता और सत्यनिष्ठा का साहसमय संकल्प हो।

□

विभाजन पूर्व की बात है। पेशावर में अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध भाषण देने के अभियोग में प्रसिद्ध आर्य नेता कुंवर सुखलाल आर्य मुसाफिर को गिरफ्तार कर अदालत में पेश किया गया। अंग्रेज़ जज ने उनसे पूछा, 'मिस्टर सुखलाल, टुम कहां का रहनेवाला हाय?' उन्होंने उत्तर दिया, 'यू. पी. का।' 'यू. पी. से टुम पेशावर क्यों आया?' जज ने पूछा।

'अपने धर्म का प्रचार करने,' उत्तर था।

'धर्म का प्रचार करने के लिए टुम्हें यू. पी. में जगह नहीं मिला?' जज ने फिर पूछा।

'आप सात समुद्र पारकर हुकूमत करने हमारे मुल्क में आ सकते हैं, तो मैं अपने ही देश के हिस्से में अपने धर्म के प्रचार के लिए क्यों नहीं आ सकता?' कुंवर सुखलाल ने उत्तर देते हुए कहा।

जज ने निरुत्तर हो उन्हें पेशावर छोड़ देने के आदेश के साथ बरी कर दिया।

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

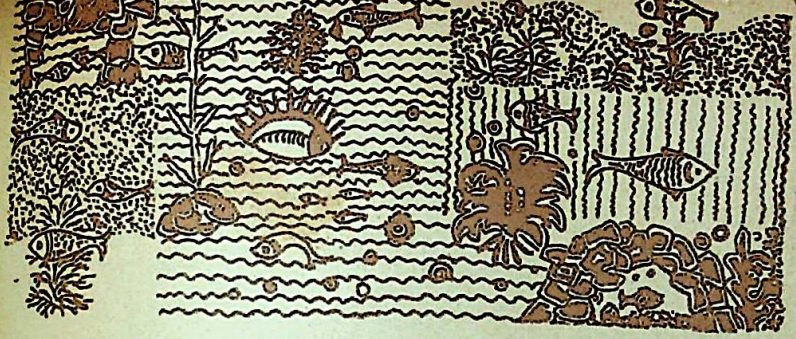

प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त' का एक आत्मीय संस्मरण

□

महाकवि निराला का दारागंज : यादें पुराने इलाहाबाद की

जिस समय की बात कह रहा हूं यानी इस शती की दूसरी दशाब्दी की, उस समय इलाहाबाद और काशी—यू. पी. के ये दो नगर हिंदी साहित्यिकों और साहित्यिक गति-विधियों के केंद्र थे। इलाहाबाद इस अर्थ में काशी से तगड़ा था कि इसी दशाब्दी के अंतिम चरण में वह राजनैतिक गति-विधियों का भी केंद्र बन गया था और स्वाधीनता प्राप्ति के समय तक बना रहा था। वह दशाब्दी भी, इस शती के अपने कालखंड में इसलिए विशिष्ट थी कि उसी अवधि में यूरोप में प्रथम विश्व-युद्ध का आरंभ और अंत हुआ था, उसी में ख़िलाफ़त आंदोलन शुरू हुआ था, उसी में जलियांवाला बाग़ का पैशाचिक नरमेध हुआ था जिसने सारे भारत को झकझोर कर रख दिया था, उसी में महात्मा गांधी ने देश को असहयोग का महामंत्र दिया था और उसी अवधि में प्रेमचंद का हिंदी में (शायद) पहला उपन्यास 'सेवासदन' प्रकाशित हुआ था। ये सभी घटनाएं अपने आप में अत्यंत महत्वपूर्ण थीं, जिन्होंने देशों के नक्शे बदल दिये थे, मानव के जीवन-मूल्य बदल दिये थे और भारत में एक नयी क्रांति का सूत्रपात किया था।

गंगा के किनारे, दक्षिणोत्तर फैली एकमात्र सड़क पर बसा दारागंज, इलाहा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाद का एक छोटा-सा मुहल्ला है। इसकी मुख्य सड़क से पूर्व और पश्चिम की ओर जानेवाली अनेक गलियों ने मुहल्ले का तानावाना बुना है। पूर्व की ओर जाने वाली सारी गलियां गंगा-तट पर जाकर ख़त्म हो जाती हैं और पश्चिम की ओर वाली गलियां निम्नवर्ग वालों के कच्चे मकानों और बाग-बगीचों की ओर जाकर खो जाती हैं। दारागंज की उत्तरी सीमा पर नाग वासुकि का प्रसिद्ध मंदिर है, जहां सावन में गुड़िया का मेला लगता है; उत्तरी सीमा पर, त्रिवेणी (गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम-स्थल) के निकट हनुमान मंदिर है, जिसमें प्रतिमा भूमि-शयन मुद्रा में है। मंदिर के ठीक ऊपर, मुग़लकालीन किला है, जो उत्तर से आने-वाली गंगा और पश्चिम से आकर उससे मिलनेवाली यमुना के कोण पर स्थित है।

दारागंज की पश्चिमी सीमा पर अलोप-शंकरी देवी का मंदिर है, जिसमें कोई मूर्ति नहीं है। मंदिर के गर्भ-गृह में संगमर्मर का एक चबूतरा है, जिसके बीच एक छोटा-सा कुंड है। यह कुंड सदा जल से भरा रहता है और उसमें चाहे जितना जल डालो, वह कभी उमड़ता नहीं, छलक-कर बाहर नहीं गिरता। कहते हैं, भगवती इसी कुंड में अंतर्धान हो गयी हैं।

दारागंज में, बस्ती के अंदर, विशिष्ट मंदिर एक ही है—वेणीमाधव मंदिर। छोटे-मोटे मंदिर तो अनेक हैं। इनके अतिरिक्त दशाश्वमेध घाट है, निर्वाणी अखाड़ा है और बड़ी कोठी है।

धार्मिक परिवेश वाले इस छोटे-से मुहल्ले में, उस ज़माने में, इलाहाबाद का दिल धड़कता था। दारागंज की नाड़ी पर हाथ रखकर इलाहाबाद की गति-विधियों का पता लगाया जा सकता था। यही दारागंज साहित्य और साहित्यिकों का भी अखाड़ा था। यहां मैंने आंखें खोली थीं और १९१३-१४ से, जब मैं ३-४ साल का था और नियमित रूप से पिताजी की गोष्ठी में बैठने लगा था, १९२०-२१ तक की धुंधली-उजली स्मृतियां मेरे मन में आज भी बनी हुई हैं।

दारागंज में उस समय जो साहित्यिक और उत्कट साहित्य-प्रेमी रहते थे, उन सबका स्मरण इस समय संभव नहीं प्रतीत होता, लेकिन मुझे पं० द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी याद आते हैं, जिनको मैंने कभी घर से बाहर निकलते नहीं देखा था। मैं जब भी उनकी गली से गुज़रता या तो उन्हें लिखने में तन्मय देखता, या उनकी बैठक के दरवाज़े बंद मिलते। वह तो शायद किसी के यहां आते-जाते ही नहीं थे, मैंने उनके यहां भी किसी को आता-जाता नहीं देखा था। मुझे आज भी उनकी याद आती है तो लगता है कि संभवतः वह दिन-रात लिखते रहते थे और थक जाने पर विश्राम करते होते थे।

कुछ समय बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी विलायत से शिक्षा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्त करके लौटे थे। यह वह समय था, जब हिंदुओं की, विशेषत: ब्राह्मण-पुत्रों की, विदेश-यात्रा को घोर अधर्म माना जाता था और उसके लिए उन्हें प्रायश्चित करना पड़ता था। मुझे स्मरण नहीं कि पं० श्रीनारायणजी को प्रायश्चित्त करना पड़ा था या नहीं अथवा उनकी समुद्र-यात्रा को लेकर कुछ शोर-गुल मचा था या नहीं, लेकिन उनकी प्रथम स्मृति मुझे तभी की है। वह बड़ी उल्लसित मुद्रा में पिताजी के पास आये थे और घंटों उन्हें विदेश-गाथा सुनाते रहे थे। उन्होंने अपनी कुछ कविताएं भी पिताजी को सुनायी थीं। सौभाग्यवश वे आज भी हमारे बीच विद्यमान हैं।

हमारे घर के ठीक सामने पं. दयाशंकर दुबे रहते थे—छोटा क़द, भरा शरीर, बुद्धि-दीप्त आंखें। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के अध्यापक थे। उन्होंने अर्थशास्त्र की कुछ पुस्तकें भी लिखी थीं। अक्सर उनके यहां श्री भगवान दास केला आकर टिका करते थे, जो अपने समय के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री थे। अर्थशास्त्र विषयक उनकी अनेक पुस्तकों की बड़ी चर्चा हुई थी। लेकिन वे स्वयं इतने सीधे-सादे और ढीले-ढाले थे कि यह अनुमान करना भी सहज नहीं होता होगा कि वे इतने बड़े विद्वान हैं। मैं सोचता हूं, आज की पीढ़ी के लोगों को क्या केलाजी के नाम की भी जानकारी है?

पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी कवि और लेखक थे। उन्होंने मेघदूत का पद्यानुवाद किया था। मुझे याद है कि वे कभी दाढ़ी-मूंछ बढ़ा लेते थे और कभी सफाचट हो जाते थे। स्वर उनका बड़ा मधुर था। पिताजी के साथ नौका-विहार में कई बार मैंने उनको बड़ी तन्मयता से 'अयि भुवन मन-मोहिनी' गाते हुए सुना था।

पं. काशीराम शर्मा स्कूल-इन्सपेक्टर थे। पर्वतीय ब्राह्मण, अत्यंत साधु-स्वभाव, जैसे विद्वान वैसे ही विनयी। पिताजी से उनका गहरा लगाव था—घर-जैसा सरोकार। उनके दो पुत्र थे: चंद्रधर इस्सर और गंगाधर इस्सर। कालांतर में गंगाधर से मेरी कुछ घनिष्ठता हो गयी थी। लेकिन १९३५ में जब मैं इलाहाबाद छोड़कर पटना जा बसा तो उन लोगों से संपर्क टूट गया। ३०-३५ वर्षों के बाद एक बार अचानक पं. चंद्रधर इस्सर को अपने दरवाज़े पर देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया था। वे किसी निजी काम से पटना गये थे और बड़े प्रयत्नपूर्वक उन्होंने मेरा घर ढूंढ़ लिया था। उन्होंने ही बताया कि वे जयपुर जा बसे हैं और वहां के श्रेष्ठतम वकीलों में गिने जाते हैं। उन्होंने गंगाधर के बारे में भी कुछ बताया था, लेकिन इस समय उसकी बिलकुल याद नहीं है। गंगाधर, मेरे लिए, इस दुनिया की भीड़ में हमेशा के लिए खो गये हैं।

पं. शेषधरजी भरे शरीर के गौरवर्ण व्यक्ति थे—प्रसिद्ध ज्योतिषी। वे पिताजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की गोष्ठी के नियमित सदस्य थे। विचित्र बात है कि उनके संबंध में स्मृति कुछ अधिक साथ नहीं दे रही। केवल इतना स्मरण है कि जब मैं बहुत छोटा था, ३-४ साल का, वे मुझे 'बाबूजी, हर-हर बोलत बा' कहकर चिढ़ाया करते थे। इस चिढ़ाने की एक पृष्ठभूमि थी।

मैं शायद डेढ़-दो साल का रहा होऊंगा। पांवों के बल चलने लगा था और अक्सर पिताजी की बैठक में रेंग आया करता था।

चित्र : श्रवण शर्मा

वहां पिताजी की पुस्तकें और पांडुलिपियां मुझे सबसे अधिक आकर्षित करती थीं और अवसर मिलते ही मैं उनका विध्वंस करने लगता था। कुछ समय बाद तो मेरा यह व्यसन इतना उत्कट हो गया था कि पिताजी को बाध्य होकर मेरे फाड़ने के लिए, एक रुपया सैकड़ा मिलनेवाली प्रचार-पुस्तिकाएं ख़रीदनी पड़ती थीं और फाड़ने के लिए, प्रतिदिन उनकी एक निश्चित संख्या मुझे दी जाती थी। लेकिन फिर भी, जब मैं पिताजी की बैठक में पहुंच जाता तो वे सतर्क हो जाया करते और मेरी पहुंच की सीमा में आने वाली पुस्तकों-पांडुलिपियों को सुरक्षित कर लिया करते थे।

उन दिनों इलाहाबाद के कमिश्नर एक ऐसे अंग्रेज़ थे, जो संस्कृतज्ञ थे और पिताजी के मित्र भी। उनका नाम तो स्मृति से उतर चुका है, लेकिन उनकी याद बनी हुई है। कभी-कभी अपने प्रशासनिक कामों से समय निकालकर वे भी पिताजी की गोष्ठी में आया करते थे। उनका रूप-रंग और उनकी वेश-भूषा देखकर तथा उनका संस्कृत बोलना सुनकर मैं भयभीत हो जाया करता था और वे जब भी मुझे पिताजी की बैठक में देख पाते, सबसे पहला काम यह करते कि मुझे उठाकर लंबी-सी मेज़ के एक कोने में खड़ा कर दिया करते थे। फिर जब तक वे पिताजी से बातें करते रहते, मैं प्रस्तर-मूर्ति बना, भीत-आतंकित वहीं खड़ा रहता था।

एक दिन वह सुबह-सबेरे आ पहुंचे थे। संयोगवश, उनसे ठीक पहले मैंने कमरे में प्रवेश किया था। सदा की भांति, सबसे पहले उन्होंने मुझे उठाकर मेज़ पर खड़ा कर दिया, फिर वे पिताजी से बातें करने लगे। मैं बहुत देर तक प्रतीक्षा करता रहा। मेरी ओर किसी का ध्यान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं गया। लघुशंका का वेग संभालना मेरे लिए असंभव हो रहा था। मैं स्वयं मेज पर से उतर नहीं सकता था, न मुझ में इतना साहस था कि पिताजी से कहूं कि वे मुझे उतार दें। परिणाम वही हुआ, जो हो सकता था। जहां खड़ा था, मैंने वहीं से लघुशंका कर दी। ठीक नीचे कुछ कागज़-पत्तर रखे थे। उन पर जल की धार पड़ने से जो ध्वनि उत्पन्न हुई उससे सारा भय-आतंक भूलकर मैं किलक पड़ा, 'बाबूजी, हर-हर बोलत बा।' पं० शेष-धरजी इसी घटना का संकेत देकर मुझे चिढ़ाया करते थे।

चित्र : श्रवण शर्मा

दारागंज में दो प्रसिद्ध वैद्य भी थे। एक पं० ठाकुर प्रसाद वैद्य, और दूसरे पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल। पं० ठाकुर प्रसाद के ज्येष्ठ पुत्र पं० लक्ष्मीकांत डॉक्टर थे, लेकिन चिकित्सा अधिकांशतः, पिता के साथ, आयुर्वेदिक ही करते थे। शुक्लजी की कुछ रुचि लिखने-पढ़ने में भी थी। हिंदी साहित्य सम्मेलन से भी किसी तरह का संबंध था। वे शतायु होकर दिवंगत हुए। जब तक मैं इलाहाबाद में रहा, वे न तो चिकित्सा के क्षेत्र में स्थापित हो सके थे, न साहित्य के। इलाहाबाद छोड़ने के बाद, बहुत दिनों बाद, एक बार अचानक ही पटना में उनके दर्शन हो गये थे। किसी वैद्य-सम्मेलन में वे पटना गये थे और व वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन में ठहरे थे। वहीं, पास ही, मेरा निवास था। राह-चलते भेंट हो जाने पर, उन्हें पहचानकर मैं निकट गया था। पिताजी के नामोल्लेख-सहित मैंने उन्हें प्रणाम किया था। पिताजी की चर्चा करते हुए वे अत्यंत भाव-विह्वल हो उठे थे और आंसू पोंछते हुए चले गये थे। जीवन के अंतिम दिनों में उन्हें प्रचुर सामाजिक और राजकीय सम्मान मिला था, यह जानकर मेरे मन को बड़ा सुख, बड़ी तृप्ति मिली थी।

श्री केदारनाथ गुप्त दारागंज हाई स्कूल में अध्यापक थे। वे संभवतः स्काउट कमिश्नर भी थे। बड़े चुस्त-दुरुस्त आदमी। अनुशासनबद्ध और अनुशासन-प्रिय व्यक्ति। आजीवन वह समय-बद्ध जीवनचर्या का पालन करते रहे हैं। उत्साह और कार्य-क्षमता उनके भीतर से छलकती-सी जान पड़ती थी। कालांतर में वे अग्रवाल विद्यालय के प्रधानाध्यापक बने। उन्हींके अनवरत उद्योग से वह 'अग्रवाल इंटर कॉलेज' बना और वे उसके प्रिंसिपल के रूप में सेवा-निवृत्त हुए।

गुप्तजी जब दारागंज हाईस्कूल में अध्यापक थे, तभी उन्होंने 'छात्र-हितकारी पुस्तकमाला' का प्रकाशन आरंभ किया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

था। उसमें अनेक उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। मुझे उनकी लिखी एक पुस्तक का स्मरण आता है : 'हम सौ वर्ष कैसे जियें ?' इस पुस्तक में, अपने अध्ययन और अनुभव के आधार पर गुप्तजी ने सौ वर्ष जीने के सरल और अचूक उपाय बताये थे। जिन दिनों यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, उसके कुछ समय पहले से महात्मा गांधी कहते आ रहे थे कि वे सौ वर्ष जियेंगे। पुस्तक छपी तो गुप्तजी उसकी एक प्रति लेकर गांधीजी से मिले। उन्होंने कहा—'महात्माजी, आप सौ वर्ष जियेंगे या नहीं, लेकिन मैं निश्चित रूप से सौ वर्ष जीकर दिखा दूंगा।'

दस-बारह साल पहले मैं इलाहाबाद गया तो दारागंज जाकर गुप्तजी से मिला था। तब वे अस्सी की उम्र पार कर चुके थे।

दारागंज में और भी अनेक उल्लेख्य व्यक्ति थे और बीतते दिनों के साथ उनकी संख्या बढ़ती जाती थी। वहां पं० लल्ली प्रसाद पांडेय थे, जो आरंभ से ही इंडियन प्रेस से जुड़े रहे थे और अपनी यौगिक क्रियाओं के लिए विख्यात थे। कवि आनंदी प्रसाद श्रीवास्तव थे, सिद्धिनाथ दीक्षित थे, पं० गिरीशदत्त शुक्ल थे। कुछ समय बाद प्रसिद्ध कथाकार भगवती प्रसाद वाजपेयी और पं० उदयनारायण तिवारी भी आ गये थे। १९२१-२२ में जब पिताजी ने दारागंज छोड़ा था, यह सिलसिला तब भी चलता रहा था। निरालाजी ने भी दारागंज में ही दम तोड़ा था।

लेकिन दारागंज की चर्चा करूं और त्रिभुवन गुरू को भूल जाऊं यह संभव नहीं है। वह घाटिया पंडा थे। अखाड़ा उनके घर में ही था। वहां पहलवानों को कुश्ती लड़ाते और गंगा का घाट अगोरते थे। कसरत से कसी काठी, गोरा रंग, धड़ पर रखा हुआ माथा, जिसमें गर्दन की तलाश में थोड़ा वक्त लगता था। शायद इसी वजह से उनके गले में अकल्पनीय शक्ति थी। गंगा के तट से जब वह अपने जजमानों को ललकारते थे तो स्नानार्थी एक किलो मीटर दूर से ही धराशायी हो जाता था। त्रिभुवन गुरू का चीत्कार सुने बिना किसी के लिए यह कल्पना असंभव थी कि मनुष्य के स्वर में इतनी बुलंदी और दूर तक मार करने की शक्ति हो सकती है। उस समय तक न तो प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण हुआ था, न लाउडस्पीकरों का आविर्भाव, लेकिन मैं सोचता हूं कि जिस किसी ने इनका निर्माण किया होगा, उसने पहले त्रिभुवन गुरू की आवाज़ ज़रूर सुनी होगी।

लेकिन आज तो न वह समय रह गया है, न वह दारागंज, न दारागंज के वे लोग ही रह गये हैं। जो गिने-चुने लोग बच रहे हैं, उनमें से भी कई दारागंज से नाता तोड़कर अलग हो गये हैं। शायद, शतायुष्य की प्रतीक्षा में दो-एक तेजस्वी पुरुष अब भी वहां टिके हुए हैं।

—द्वारा, अशोक प्लाइउड ट्रेडिंग कंपनी,
ज्वालापुर, हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोधकथा :

मृत्यु और ओडीसियस

□

लार्ड डनसेनी

ओलिंपिया के विशाल प्रांगण में प्रेम मृत्यु पर हंस रहा था, क्योंकि मृत्यु बदसूरत थी और प्रेम इसके लिए कुछ कर नहीं सकता था। मृत्यु कभी कोई अच्छा काम नहीं करती थी और प्रेम हमेशा करता रहता था।

और मृत्यु को यह बात कतई पसंद नहीं थी कि उसका मज़ाक उड़ाया जाये। वह हमेशा अकेली बैठी सोचती रहती और तय करती रहती कि इस नाकाबिले बर-दाश्त बर्ताव का खात्मा कैसे करे।

लेकिन एक दिन मृत्यु दरबार में हाज़िर हुई और सबने उसे देखा, 'अब क्या करने का इरादा है?' प्रेम ने पूछा। और मृत्यु ने बड़ी संजीदगी से जवाब दिया. 'मैं ओडीसियस को डराने जा रही हूं।' और अपने मटमैले लबादे को अपने बदन पर लपेटते हुए वह द्वार से बाहर निकल गयी। उसका मुंह पूरब की ओर था।

जल्दी ही वह इथाका पहुंच गयी, फिर उस कक्ष में, जिसे एथीनी भली भांति जानती थी, उसने द्वार खोला और वहां उसे प्रख्यात ओडीसियस नज़र आया। अपने सफेद बालों को लिये, आग पर झुका, वह हाथ सेंकने की कोशिश कर रहा था।

खुले द्वार से हवा का तेज़ झोंका अंदर आ गया।

मृत्यु चुपचाप ओडीसियस के पीछे जा खड़ी हुई और फिर अचानक चिल्ला दी।

लेकिन ओडीसियस बड़ी शांति से अपने हाथ सेंकता रहा।

अब मृत्यु उसके और निकट चली आयी और उसे देख-देखकर मुंह बनाने लगी। कुछ देर बाद ओडीसियस घूमा और बोला, 'तो, बुढ़िया नौकरानी, जब से मैंने तुम्हें इलियॉन में काम करने के लिए छोड़ा है, तुम्हारे मालिकों का बर्ताव दयापूर्ण तो रहा है न?'

मृत्यु कुछ देर शांत खड़ी रही, क्योंकि उसे प्रेम की हंसी याद हो आयी थी।

फिर ओडीसियस ने कहा, 'आओ, अपने कंधे का सहारा दो मुझे।' फिर उस हड्डियल कंधे का सहारा लिये-लिये वह उसके साथ द्वार से बाहर निकल गया।

[अनुवाद : सुदीप]

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा. भगवतशरण उपाध्याय का खोजपूर्ण लेख

□

भूमध्य सागर और मालवा

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में जो नगरों अथवा प्रदेशों के विकास की सीमाएं बांधी जाती हैं, इतिहासेतर प्रमाणों से वे ही सीमाएं असामान्य पूर्वतर सिद्ध होती हैं। मालवा, अथवा उससे पूर्व अवंती नाम से जाना जाने वाला प्रांत, शुद्ध इतिहास के अनुक्रम में संभवतः ई. पू. ७-८ वीं सदी से पूर्व का जाना हुआ नहीं लगता। परंतु अनेक ऐसे साधन हैं जिनके ज़रिये कालक्रम पर दृष्टिपात करने पर उज्जयिनी अथवा अवंती कहीं अधिक प्राचीन सिद्ध होती हैं।

भारत का सबंध सुदूर पश्चिम से ई. पूर्व तीसरी सहस्राब्दि में ही हो गया था। यह ऊर, तेल, अस्सर आदि की खुदाइयों से प्रमाणित हो चुका है। बलूचिस्तान में आज बलूचियों द्वारा बोली जाने वाली द्रविड़ परिवार की भाषा 'ब्राहुई' इसका प्रमाण है कि सिंधु सभ्यता के सांस्कृतिक इलाकों का प्रसार मकरान की राह ईरान को छूता था और संभवतः कारवानों की एक राह मकरान के समुद्र तट और ईरानी मरुभूमि के बीच से चली गयी थी। कुछ अजब नहीं जो मकरान के जिस रेगिस्तान में सिकंदर की तीन-चौथाई सेना प्यास के मारे चौथी सदी ई. पूर्व में विनष्ट हो गयी थी, दर्रा-बोलन के दोनों ओर के वे भू-भाग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस काल से प्राय: २५०० साल पहले मोहेनजो-देड़ो आदि की ही भांति लह-लहाते हरियाले खेत रहे हों।

तब यद्यपि माहेश्वर आदि की खुदाई से मालवा की प्रागैतिहासिक सभ्यता का अस्तित्व प्रमाणित है—उज्जयिनी बस चुकी थी या नहीं, यह कह सकना कठिन है। वेदों में तो उसका उल्लेख नहीं मिलता है पर महाभारत में उसके राजकुलों का विशद वर्णन मिलता है। यह वर्णन निःसंदेह महाभारत के उस कथा प्रवाह में सुरक्षित है जिसके लेखन का पूर्वतम छोर ई. पूर्व ५ वीं सदी माना जाता है। तब तक निश्चय ही उज्जयिनी नगर का निर्माण हो चुका था और अनेक राजकुल वहां शासन कर चुके थे। साम्राज्य के लिए बुद्ध के प्राय: समकाल में ही जो मगध, कोसल, वत्स और अवन्ती में कशमकश हुई इसमें उज्जयिनी के प्रद्योतों का ऐतिहासिक राजकुल अग्रणी था। अवंती की साम्राज्य लिप्सा का शिकार वत्स तो हो ही गया स्वयं मगध के अजात-शत्रु को भी चंडप्रद्योतों के आक्रमण के आतंक से अपनी दक्षिणी सीमा मज़बूत करनी पड़ी थी। इस प्रकार उज्जयिनी के इतिहास में हम छठी सदी ई. पूर्व तक आसानी से पहुंच जाते हैं। पर बेशक यही सदी उस महानगरी की बुनियाद नहीं है। कारण कि उस सदी में तो जैसा शूद्रक के 'मृच्छकटिक' से प्रमाणित है संसार का पहला राजविप्लव निम्नवर्गियों द्वारा घटित हुआ था। यह तो हुई शुद्ध इतिहास की बात परंतु ऐतिहासिक प्रद्योतों का आरंभ मात्र उनसे ही नहीं हुआ था। उनसे पहले हैहयों की एक शाखा वहां राज करती थी। हैहय राज सहस्रबाहु अर्जुन के उन हज़ार हाथों को परशुराम द्वारा फरसे से काट देने की बात चाहे काव्य कल्पित हो अथवा उन हाथों से रेवा की धारा को रोक महल की रानियों

चित्र : चंदुलाल सांकला

के साथ जल-क्रीड़ा की चाह कपोल-कल्पित हो, हैहयों का दोनों ओर संपर्क प्रद्योतों और महाभारतकालीन हैहयों के बीच एक सेतु प्रस्तुत कर देता है, बेशक वह सेतु रामायणकाल तक स्पष्टत: भले ही पहुंच न पाता हो।

मालवा अथवा अवंती के नाम से पहचाना जाने वाला प्रदेश निष्कर्षत: प्रागैतिहासिक काल में ही यूरोप के भूमध्य-सागर वर्ती प्रदेशों के संपर्क में आ गया था। ग्रीक अंधकवि होमर ने अपने 'ईलियद' नामक महाकाव्य में जिस 'ट्रोजन-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युद्ध' का गेय वर्णन किया है वह एशिया माइनर के ईलियम प्रांत में लड़ा गया था। ईलियम आज का हिसारलिक है जो तुर्की के शासन में ईजियन-समुद्र से लगे मार-मोरा सागर के तट पर है। यह युद्ध 'हैलेन' नामक स्पार्ता की ग्रीक रानी के लिए यूनानी आर्यों और मिनोई सभ्यता के ट्रोजनों में लड़ा गया था। उस त्रोय नगरी के राजा प्रियम के गढ़ को ग्रीकों ने तेरहवीं-बारहवीं सदी ईसा पूर्व में नष्ट कर दिया और उसे नष्ट करने के लिए जिस वंचक माया का उन्होंने उपयोग किया था वह थी उस काष्ठ निर्मित अश्व की प्रक्रिया जिसके उदर में ग्रीक सैनिक छिपा दिये गये थे, उस नगरी की भूमि के उदर से श्लीमान ने खोदकर निकाल लिया। त्रोय का युद्ध महाभारत के युद्ध से संभवतः कुल प्रायः २०० वर्ष पहले लड़ा गया था। महाभारत के युद्ध में व्यास के उस महाकाव्य के अनुसार उज्जयिनी के राजकुल के वीर कुरुक्षेत्र में लड़े थे। यदि वैज्ञानिक इतिहासकारों के अनुसार महाभारत का युद्ध ईसा पूर्व दसवीं सदी में हुआ तो छठी सदी ईस्वी पूर्व में संसार में पहला राज्य विप्लव प्रस्तुत करने वाली और सातवीं सदी ईसवी पूर्व में महती गतिमति, उज्जयिनी प्रसिद्धि पा चुकी थी। वस्तुतः साहित्य में जो पहला संकेत किसी पश्चिम की विख्यात घटना का मिलता है वह उज्जयिनी के ही कथा-कलाप के प्रसंग में उपलब्ध है। 'स्वप्नवासवदत्ता', और 'प्रतिज्ञा योगंधरायण' नामक नाटकों के रचयिता भास और परवर्ती 'मृच्छकटिक' के प्रणेता शूद्रक दोनों ने वत्सराज उदयन को बंदी बनाने के प्रसंग में त्रोजन युद्ध के अश्व-साधन की ही भांति अपना कपट साधन गज को बनाया। गज के उदर में त्रोजन युद्ध के अश्व की ही भांति प्रद्योत ने अपने सैनिक भर दिये थे जिन्होंने सीमा के वनों में गज का आखेट करते उदयन को बांध लिया। यह प्रसंग इतने महत्व का माना गया है कि इसका वर्णन बार-बार संस्कृत रचनाओं की कथा वस्तु बना और यह लोकप्रिय भी इतना हुआ कि दूसरी सदी ई. पूर्व के कलावंतों ने मिट्टी के ठीकरों पर इस संदर्भ को उभार लिया। होमर का वह काव्य ९ वीं सदी ई. पूर्व का है, उज्जयिनी के नगर-विन्यास के प्रायः दो ही सौ वर्ष पूर्व का। ज़ाहिर है उज्जयिनी पश्चिम के संपर्क में तब तक आ चुकी थी।

अन्य साधनों से भी इतिहासकार इसी निष्कर्ष की ओर पहुंचता है। भूगोलकार तोलेयी और पहली सदी ई. पूर्व के पेरिप्लस (पेरिप्लस आफ दी इरिथ्रियन सी) दोनों ने उज्जयिनी का 'ओजेन' नाम से उल्लेख किया है। पेरिप्लस ने तो उज्जैन के साथ ही उसके समीप आकर आगर और आष्टा नाम के दो मालव नगरों का भी उल्लेख किया है। पेरिप्लस का लेखक अनामा रह गया है, पर उस ग्रंथ से प्रकट है कि वह जाति से ग्रीक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

था और मिस्र का निवासी था। वह निर्भीक नाविक भी था और उसने उस ग्रंथ में उन सारी वस्तुओं की तालिका दी है जिनका व्यापार पश्चिम और पूरब के बीच होता था।

मालव-मुख्य द्वारा शकों का पराभव और संभवतः उसी के स्मारकस्वरूप विक्रम संवत् का आरंभ या उन सिक्कों का संचालन जिन पर 'मालवानं जयः' खुदा है, उज्जयिनी की ऐतिहासिक प्रामाणिकता पहली सदी ई. पूर्व में तो घोषित कर ही देते हैं, प्रायः मौर्य-काल में प्रचलित सिक्कों पर उन चिन्हों की उपस्थिति भी जिन्हें 'उज्जयिनीलांछन' कहते हैं, उस नगरी का अस्तित्व छठी सदी ई. पूर्व में सिद्ध कर देती है। स्वयं मौर्य-साम्राज्य में उज्जयिनी का उसके पश्चिमी प्रदेशों का राजनीतिक केंद्र होना और कुमार अशोक का वहां अपने पिता का उपराज होना भी उस नगरी को हिन्दूकुश पार के हेरात और कंधार आदि के संपर्क में ला देता है। ये प्रदेश उसके पितामह चंद्रगुप्त द्वारा सीरिया के राजा सेल्युकस के पराभव से मौर्य साम्राज्य के उत्तर-पश्चिमी भाग में समा गये थे। सिकन्दर से पूर्व के उन ईरानी सम्राटों के अतिरिक्त भी, जिनका अधिकार एक ओर रावी नदी तक, दूसरी ओर ग्रीस तक हो गया था, स्वयं सिकंदर के आक्रमण के बाद हिन्दूकुश के इस पार से यूरोप और यूगोस्लाविया के सिकंदर के ही मूल प्रदेश मकदूनिया तक, ग्रीक राज्यों के अतिरिक्त छोटी-छोटी ग्रीक बस्तियां भी बस गयी थीं। वस्तुतः उनका महत्त्व अशोक की दृष्टि में इतना बढ़ गया था कि उसे अपने अभिलेखों में से एक को ग्रीक-भाषा और लिपि में खुदवाना पड़ा। निश्चय उज्जयिनी, जहां कुमारावस्था में अशोक शासक रह चुका था तब पाश्चात्यों के निकट संपर्क में आ गयी जब उसी अशोक ने मकदूनिया तक, मिस्र और यूरोप तक फैले पांचों ग्रीक राज्यों में मनुष्यों और पशुओं के इलाज के लिए ओषधि के गुणों से युक्त न केवल पौधे लगवाये बल्कि उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए संभवतः अपने प्रतिनिधि भी भेजे।

पहली सदी ईस्वी का काल भारत के लिए विशेष महत्त्व का है। तब इस देश पर कुषाणों का साम्राज्य स्थापित हो चुका था और उसकी दक्षिणी सीमा मालवा और उत्तरी सीमा आमूदरिया की घाटी बनाती थी, जिसमें ईरान का पूर्वी भाग भी सम्मिलित था। रोमन राजाओं और कनिष्क के बीच दूत-मंडलों का आदान-प्रदान हुआ और रमन्ना का दरबार लंबे चोगे और कुलह पहिने कुषाण राजदूतों को देखने के लिए दर्शकों से भर जाया करता था। आष्टा, आकर और उज्जयिनी की दूकानों में पश्चिमी संसार से आयी व्यापार की वस्तुएं अटी पड़ी थीं। इस देश में से गयी वस्तुओं से यूरोप का बाज़ार कितना प्रभावित था यह इतिहासकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्लिनी (पहली सदी ई.) के उद्गारों से प्रकट है। वह लिखता है कि २०० प्रतिशत कर लगाने पर भी भारत से रोम को मलमल, मोती और गरम मसालों का आयात नहीं रुक पाता था, और इतिहासकार सहज ही उद्विग्न हो कह उठा था कि श्रीमान् और शौकीन नारियों की फैशनपरस्ती के कारण रोम का सारा सोना भारत में धारासार बरसता जा रहा है।

अठारहवीं सदी के प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार और आधुनिक इतिहासकारिता के जनक गिब्बन ने अपनी अमर रचना 'द डिक्लाइन ऐंड फाल आफ रोमन एंपायर' में एक दिलचस्प घटना का उल्लेख किया है। जब पांचवीं सदी में विजिगोथ अलारिक अपनी संहारिणी सेना के साथ अमर नगरी रोम के द्वार पर जा खड़ा हुआ तो वहां के वरिष्ठ वृद्धों ने उससे पूछा कि वे उसको क्या अर्पित करें जिससे वह उनकी नगरी को नष्ट न करे और उसके नागरिकों को तलवार के घाट न उतारे। और अलारिक ने रोम के नागरिकों की रक्षा के बदले जो मांगा उसमें महत्त्व की वस्तु थी तीन हज़ार पाउंड (साढ़े सैंतीस मन) भारत से आयी काली मिर्च ! इस प्रकार काली मिर्च ने उस रोम नगरी की प्राणरक्षा की जिसका कभी संसार में साका चला था।

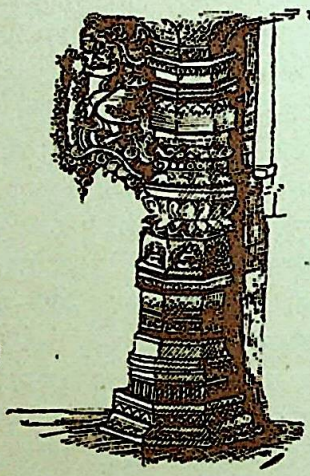

गुप्तकालीन मालव के ऐश्वर्य का प्रतीक

काली मिर्च तो केरल के बंदरों से सीधी ही सागर पार पश्चिम को जाती थी, पर दक्षिण और उत्तर पश्चिम की राह करवानों द्वारा लाई वस्तुओं का अंबार पहले उज्जयिनी की आढ़तों में रखा जाता फिर प्रदेशों में वितरित होता। समुद्र की राह आने वाली वस्तुएं भी शूपीरक (सोपारा), भृगुकच्छ (भड़ौच), कल्याणी (कल्याण) में उतरतीं और उज्जयिनी के गोदामों में भर जाती। पूर्वी मालवा की विदिशा में गजदन्तकारों का गजकर्म में निष्णान्त अद्भुत समुदाय था। मथुरा की प्रसिद्ध स्तंभ-यक्षियों का गजदन्त में निरूपित अद्भुत मूर्ति कुषाण-कालीन विसूवियस ज्वालामुखी से विनष्ट पोम्पेई नगर के ध्वंसावशेषों में मिली है, जो मालवा के पाश्चात्य संबंध को स्पष्ट प्रकट करती है।

अनंत ऐसे ऐतिहासिक प्रसंग हैं जिनसे मालवा का पश्चिम एशिया और भूमध्यसागर वर्ती अफ्रीकी तथा यूरोपीय देशों से अत्यंत प्राचीन कालीन संबंध प्रमाणित होता है। इतिहास काल से पूर्व यह संपर्क

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साथों के ज़रिय स्थापित होता था। पश्चिम के कारवां जो मिस्र के मेम्फिस और थीब्ज नगरों से, जेरूसलम और दमिश्क से चलते, वे अपना कमरबंद उज्जैन में पहुंचकर ही खोलते। मिस्र और इज्रायल के कारवां दजला और फरात पार कर ईरान में प्रवेश करते और पर्सिपोलिस की राह हेरात पहुंचते जहां से वे हिन्दूकुश की राह कंधार और पंजाब में दाखिल होते।

अनेक सदियों पहिले जब मकरान की खाड़ी से लगी राह भयावह रेगिस्तानी न थी तब काफिले उधर से भी चलकर बोलन की राह सिंध पहुंचते थे। डैन्यूब (दानूब) की घाटी में आने वाले यूरोपीय कारवां दमिश्क और अलेप्पो से चलने वाले साथों से ब्लैक सागर के तीर मिल जाते और कास्पियन के तट से आमूदरिया की घाटी में जा उतरते। फिर समरकंद, बुखारा में अपना माल बेचते-खरीदते वे कपिशा की ओर चल निकलते जहां से खैबर की राह भारत

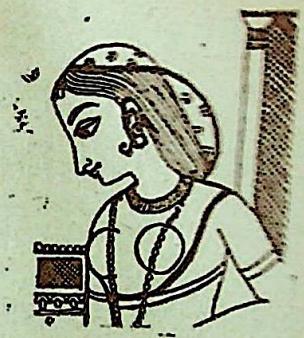

मालव-कवि कालिदास
के स्वप्न की यक्ष-प्रिया

पहुंचा जाता था। मथुरा से कारवां कौशाम्बी पहुंचते जहां से एक राह पाटलिपुत्र को पूरब की ओर जाती थी। दूसरी दक्षिण दिशा में भरहुत और विदिशा होती उज्जयिनी को। उज्जयिनी में ऐसे अनेक कुल बसे थे जिनका पेशा ही साथों को राह दिखाना था।

उज्जयिनी और मालवा इतिहास के कालचक्र पर सहस्राब्दियों चढ़ते-उतरते सिप्रा के सर्पिल क्रोड़ में खेलते रहे हैं।

('मध्य प्रदेश संदेश' से साभार)

□

अपनी-अपनी जगह

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ग्लैडस्टोन (१८०९-१८९४) हमेशा अपनी रेल-यात्रा तीसरी श्रेणी में ही करते थे। उनका पुत्र रेल-यात्रा प्रथम श्रेणी में करता था। एक अधिकारी ने ग्लैडस्टोन से पूछ ही लिया—'सर, आप तीसरी श्रेणी में रेल-यात्रा क्यों करते हैं जब कि आपका लड़का प्रथम श्रेणी में यात्रा करता है।'

ग्लैडस्टोन ने मुस्कराते हुए कहा—'दोस्त, मैं ब्रिटेन के एक गरीब किसान का लड़का हूं और वह उसी ब्रिटेन के प्रधानमंत्री का लड़का है। हैसियत के हिसाब से हम दोनों अपनी-अपनी जगह ठीक ही यात्रा करते हैं।'

—अतुल गोस्वामी

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्राज्ञी कैथरीन की दासी अन्ना बोलिन के नाम सम्राट हेनरी अष्टम का प्रेम-पत्र: और अन्ना का एक मर्मवेधक पत्र हेनरी अष्टम के नाम

कैथरीन के साथ तेरह वर्ष तक सुखी वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के बाद, हेनरी अष्टम कैथरीन की दासी अन्ना बोलिन के प्रेम में पड़ गये। उनके अगले ग्यारह वर्ष कैथरीन से तलाक लेने में बीते, ताकि वे अन्ना से विवाह कर सकें। १५३३ में उनके प्रयास सफल हुए, और उन्होंने कैथरीन को तलाक देकर महत्त्वाकांक्षी अन्ना से विवाह किया, पर इस विवाह के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड पोप के प्रभाव-क्षेत्र से अलग हो गया। नीचे प्रस्तुत है हेनरी द्वारा अपनी प्रेमिका अन्ना को लिखा गया एक प्रेम-पत्र और एक मर्मवेधक पत्र अन्ना का अपने प्रेमी के नाम।

प्रियतमे,

यह पत्र मैं तुम्हें यह सूचना देने के लिए लिख रहा हूं कि तुम्हारे जाने के बाद मैं नितान्त एकाकी अनुभव कर रहा हूं। इतना ही नहीं, समय अब लम्बा भी मालूम होता है, जबकि जब तुम थीं, तब मालूम ही नहीं होता था कि समय कब बीत गया। मेरा खयाल है कि मेरा उत्तप्त प्रेम और तुम्हारा सौम्य और कृपालु स्वभाव इस विचित्र अनुभूति के लिए जिम्मेवार हैं।

इस पत्र को लिखने से पूर्व, मैं तुम्हारे विरह में जला जा रहा था, पर अब वह आग बुझती-सी लग रही है। इस पत्र को समाप्त करते-करते मैं अपनी पुस्तक को पूरी करने के सही मूड में आ जाऊंगा। मेरा यह पत्र संक्षिप्त इसलिए है कि मुझे अपनी पुस्तक को पूरा करने की इच्छा है।

पत्र के अंत में मैं कल्पना की आंखों से देख रहा हूं कि तुम मेरी बांहों में हो, और मैं तुम्हें चूमे जा रहा हूं ... चूमे जा रहा हूं।

यह पत्र लिखा है उसने, जो सदा तुम्हारा था, तुम्हारा है, और सदा तुम्हारा रहेगा।

एच. आर.

ooo

(तीन वर्ष बाद, नव-विवाहिता अन्ना के प्रेम से ऊबकर, हेनरी ने अन्ना के विरुद्ध अनेक झूठे आरोप लगाकर किले में बंदी बना दिया। यहां तीस वर्ष की आयु के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाद उसने अपनी सारी युवावस्था एक अधेड़ और क्लांत शाही प्रेमी के प्रेम की ख़ातिर नष्ट कर दी। उस करुणाजनक पत्र में, जो उसके बंदी-काल में लिखा गया था, अन्ना हेनरी से 'अपनी कर्त्तव्य-परायण पत्नी' के चरित्र पर लगे कलंक के दाग़ को मिटाने की मर्मस्पर्शी ढंग से प्रार्थना करती है ...)

महोदय,

आपकी अप्रसन्नता और मेरा कारावास, ये दोनों चीज़ें ऐसी हैं, जो आज तक मेरी समझ में नहीं आयीं। इसलिए मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं अपने पक्ष में क्या लिखूं, और यह कैसे सिद्ध करूं कि मैं निर्दोष हूं।

आप चाहते हैं कि मैं सच्चाई को कबूल कर लूं, मगर कौन-सी सच्चाई को कबूल कर लूं, यह मेरी समझ में नहीं आता। जैसे ही उस सच्चाई का पता मुझे लग जायेगा, मैं उसे कबूल कर लूंगी।

मैं तो एक ही सच्चाई जानती हूं, और वह यह कि मैं सदा से आपकी आज्ञाकारी पत्नी रही हूं, और मरते दम तक रहूंगी। आपने मुझे अपनी रानी बनाकर मुझे जो सम्मान दिया, वह मेरे लिए गौरव की बात है।

उस गौरव को खोने का विचार मेरे मन में कभी नहीं आ सकता। मैंने एक निम्न कुल में जन्म लिया था, और आपने मुझे उत्तम कुल में स्थान दिलाया। अब मैं आपके कुल, आपके वंश की ही हूं, और मुझे लांछित करके आप क्या अपने कुल और वंश को ही लांछित नहीं कर रहे हैं?

यदि आप मुझ पर मुकदमा ही चलाने के इच्छुक हैं, तो मेरी प्रार्थना है कि मुझ पर सही ढंग से मुकदमा चलाइये, और मेरे शत्रुओं को मेरे न्यायाधीश बनने का अवसर न प्रदान कीजिये। यदि आपने मुझ पर यह कृपा की, तो आप देखेंगे कि सच्चाई सामने आ जायेगी, और आपके सब संशय अपने आप दूर हो जायेंगे।

लेकिन यदि आपने मुझ पर लांछन लगाकर मुझे मारने का ही निश्चय कर लिया है तो मैं अपने लिए भगवान से प्रार्थना ही कर सकती हूं।

यदि मेरा नाम आज भी पहले की भांति आपके कानों में मधुर संगीत को जन्म देता हो, तो आपसे मेरी प्रार्थना है कि मुझे अधिक कष्ट न देकर मुझे जल्दी से जल्दी, मृत्यु-दण्ड दिलाने की कृपा करें, ताकि आपको और मुझे दोनों को शांति मिल सके।

आपकी वफ़ादार पत्नी
अन्ना बोलिन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रज्जन त्रिवेदी की हिन्दी कहानी

□

दहशत

श्यामजी हर रात सोते वक्त राधा से हंस, बोल लिया करते थे। सुधीर और सत्या के जन्म के पहले दोनों पति-पत्नी के बीच भले ही मन की बातें कम रही हों, पर तन के रिश्ते अधिक रहे हों, पर जैसे-जैसे उम्र की यात्रा बढ़ती गयी, पड़ाव उलझनों के बीच पड़ते रहे। फिर बोलने-बताने को मन ही रह गया। दोनों ने अपनी गृहस्थी बहुत सोच समझकर बनायी थी। वे कालेज चले जाते और पत्नी गर्ल्स हाईस्कूल में पढ़ाने चली जाती। बच्चे जब छोटे थे, तब उन्होंने आया को रखकर काम चला लिया था। धीरे-धीरे बच्चे बड़े होते गये, आया की भी उन्हें ज़रूरत नहीं रह गयी। दोनों की कमाई से अपना घर बन गया। सत्या की धूम-धाम से शादी हो गयी। सुधीर एम. एस-सी. के द्वितीय वर्ष में था। उन्हें लगने लगा था कि वह हाथ से निकला जा रहा है। वैसे प्रथम वर्ष में उसके अंक भी अच्छे थे, मिज़ाज भी। कालेज में लड़कों को एडमीशन का झांसा, पेपरों की खोज-खबर, नंबर बढ़वाने की एजेंसी, प्रोफेसरों के रख-रखाव के सारे नुस्खे, नेतागिरी, चुनावी झगड़े, छुरे और चाकुओं का प्रदर्शन, हस्तलाघव, गिरोह-बाजी, धमकियों के बारे में वे काफी सुन चुके थे। इधर नारों की चीख-चिल्लाहटों के बीच रात देर-अबेर आना, बदहवासी में आना, आते ही मां पर बिगड़ जाना। कभी-कभी तो वह जामे से भी बाहर हो जाता, तब श्यामजी को ज़ोर से डांटना पड़ता। सुधीर कहता तो कुछ नहीं, पर उसकी आंखों में लगता खून उफनने लगा है। एक गर्म ज्वालामुखी आंखों में ठहर गया है। थोड़ी देर को वे उसकी आंच से सहमते, पर पितृत्व की गरिमा झुकने से बचा ले जाती।

तीन दिन और तीन रातें एक-एक कर बीत गयीं, पर सुधीर घर नहीं आया है। दोनों पहले सोचते रहे कि पुलिस में रिपोर्ट कर आयें, कहीं दुश्मनों ने बदला न निकाला हो गायब करके। कहीं खून-खराबा न हो गया हो। उसके साथी-संगियों को देखकर उनके सूखे-सूखे बेतरतीब बाल, माथे पर बंधी पट्टियां, ढीले-ढाले या सख्त रंग-बिरंगे कपड़े, कड़कती, निरर्थक, डरवानी आवाज़ें, आंखों में शून्य नंबर का चश्मा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बुद्धिजीवी कहलाने के अंदाज़ में हाथ में एक-दो फटी किताबें, बेढंगे कदमों भरी चाल, छाती में चांदी की चेन में लटकती तावीज़, कभी क्रास, कभी गंडा वे अपनी आंखों से देख चुके हैं। रूमालें नयी-नयी, कहां-कहां से सेंटेड होकर उस तक आ जातीं, अंग्रेजी के प्रेम-वाक्य अक्सर उसकी गोल गले की बनियान में उभरे दिखते। चार-छह लड़के इसी किस्म के आते, ले जाते।

मां पूछती तो वह झट से कहता, 'कालेज जा रहा हूं।'

'तू तो कहता था न कि छुट्टियां लग गयी हैं,' मां दरवाज़े पर आकर कहती।

'प्रेक्टिकल के लिए कभी भी जाया जा सकता है,' वैसे ही कड़कते स्वरों में कहता।

'अच्छा, जल्दी चले आना,' मां दुलराते हुए कहती।

लड़के खिलखिलाते, किस्म-किस्म की आवाज़ें निकालते, मटकते, उछलते, जैसे मां को चिढ़ा रहे हों हल्ला-गुल्ला मचाते आगे बढ़ जाते। पास-पड़ोस की खिड़कियां, दरवाज़े सहमते-सहमते खुलते, संधियों से आंखें लेकिन बाहर न आतीं। कभी थोड़ी दूर जाकर सुधीर लौट आता। और दरवाज़े पर खड़ी मां से उसी कड़कती आवाज़ में कहता, 'दस रुपये हैं ?'

राधाजी मां हैं न, अपमान सहने के बाद भी कुछ नहीं कहतीं। बक्से से दस रुपये निकालकर दे देतीं। वह अपनी सारी ज़रूरतों को अक्सर मां के द्वारा ही पूरा करवा लेता या मां के सामने उन्हें रख देता। अपने बाबूजी से कम कहता, कम सामने आता। उनके प्रश्नों के सामने, चश्मे के पीछे ठहरी चमकती आंखों के सामने, निष्कंप भौंहों के सामने वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने को, अपनी कड़कती आवाज़ को अक्सर निरीह मानने लगता था।

इन आंखों में क्या है? जो सिर नहीं उठाने देतीं, और तो, मेरी आंखों को देख सहम जाते हैं, उनकी हड्डी कांप जाती है, पर यहां कौन-सा दबाव है, कौन-सी आत्म-तपन है, जो कुछ कहने ही नहीं देती।

मां को भी यही लगता कि सुधीर यहां से, हमसे हट रहा है। यहां का उसके निकट कुछ भी नहीं बच रहा, कुछ भी नहीं छू रहा, न जुड़ ही रहा। सभी कुछ बाहर ही बाहर का हो रहा है, भीतर जम रहा है, जुड़ रहा है। इस भीतर बाहर के मोर्चों पर ममता, संवेदना, अदब को जैसे दबोचने की कोशिश की जा रही हो।

नवंबर की घनी होती ठंड में राधाजी शाल लपेटे सोफे पर बैठी ऊन और सिलाई से उलझी हुई हैं और श्यामजी कोच पर पड़े-पड़े कभी लम्प को देखते हैं, कभी रोशनी के वर्तुल घेरों को जो लैम्प-शेड से निकल-निकलकर कभी छत पर, कभी सामने छा जाते हैं, गिर जाते हैं। इन्हें देखकर लगता कि चांदनी बुंदेवाली पत्तियों के बीच से झर-झर गमले में नहीं कमरे में फैली जा रही है। वे कभी उस वर्तुल को देखते जो ऊपर रुक जाते, और कभी टूटते-गिरते वर्तुलों को देखते। खिड़की के हाथ-करघे वाले परदे अपनी मोटाई के बावजूद हवा को भीतर आने से रोक नहीं पा रहे थे। कभी रोशनी के ये वर्तुल हवा के झोंकों से कांपने लगते, नाचने से लगते। श्यामजी के पैरों पर काश्मीरी पट्टू का शाल पड़ा था। घुटने तक चढ़ आये पैजामे को वे बार-बार पैर की अंगुलियों से खींचते, लेकिन पैजामा फिर चढ़ जाता। कभी सलाई और ऊन की ओर, कभी पत्नी की ओर गौर से देख लेते। वे सब सुनकर भी चुप थीं, बोल नहीं रही थीं। दरवाज़े की ओर देख लेती थीं।

थोड़ी देर पहले वे चिंतातुर स्वर में कह चुके थे, 'तुमने ही इसकी आदतें बिगाड़ी हैं, तुम इसे कसकर रखतीं तो इस ढंग से हिम्मत करता ... तुम उसके लिए मायने खोती जा रही हो, तुम्हारी मां उसके सामने सहम जाती है, ममता जम जाती है, हम वहां, उसके पास कमज़ोर हो रहे हैं, उसका गुर्राना ... ओफ !'

कहने को तो वे कह गये थे, पर लगा उनकी पकड़ से यहां भी रोशनी के वर्तुल बाहर हुए जा रहे हैं, भागे जा रहे हैं। कभी लगता वे ठिठककर, घूमकर आंख दिखा रहे हैं, ढीढ़ हो गये हैं, ठीक वैसे ही जैसे सुधीर, उसके आसपास बनते घेरे, चढ़ी गुर्राती आंखें, ढीढ़ होते शब्द, वाणी, व्यवहार ..., इन्हें ही दोष देना कहां तक ठीक है... ? कहां तक ... ?

लेकिन, बीच ही में राधाजी बोलने लगी थीं, 'हर बात मुझ पर थोप देते हो, जो कुछ हूं वह मैं ही हूं, मेरा ही दोष है? तुम क्या किया करते हो? तुम भी तो उसे देखा करते हो, क्यों नहीं बोलते? क्यों नहीं रोकते? मैं उसके लिए अपने होने के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मायने खोते जा रही हूं, कमज़ोर होती जा रही हूं, तेवर देखकर सहम जाती हूं, वह मुझे खा जायेगा ? और...और...मैं पूछती हूं, तुम तो उससे अपने होने के, पितृत्व के मायने के बारे में पूछ सकते हो, अपने को जतला सकते हो, महसूस करा सकते हो। सच बोलो, उससे अपने को बचाते नहीं हो ?'

बोलते-बोलते वे जरा रुक गयीं, आवाज़ जरा तेज़ हो गयी थी, फिर बोलने लगीं, 'छोटा-सा नहीं रह गया है, जो मारकर, डाटकर सम्हालूं। अब सयाना हो गया है। वहीं तक आंखें दिखानी चाहिये, जहां तक आंखों का जवाब लौटाया न जाय। आंखों की बात समझ जाता है, अभी यही कम नहीं है। जैसे हवा चल रही है, वह सयाने लड़कों का दिमाग खराब किये दे रही है। उसे आपको भी देखना है, देखना चाहिये, बोलना, बताना है, इस सबकी जिम्मेदारी सिर्फ मेरी ही नहीं है। मुझ पर अपना गुस्सा निकालकर आप अपनी जिम्मेदारी से बच नहीं सकते। हमारा ही सुधीर नहीं, वरन उसके और साथी-संगी लगता है एक कटाव रचते जा रहे हैं मुख्यधारा से कट रहे हैं, हमसे हमारे कट रहे हैं। अपने को काट रहे हैं। इनका गुर्राना, कड़कना, ऐंठना कौन से व्यवहार की भाषा बोलता है? हम सब सहने से, उस कटने या कटाव से विचलित नहीं हुए जा रहे हैं ? व्यथित या सहमे हुए नहीं हैं, बोलिये ... बोलि ... ये ... ?'

उनके बोलने में आवाज़ फिर तेज़ होने लगी थी, जबकि वे चाहती थीं बात धीरे हो, धीरे बोलकर ही समझा या समझाया जा सकता है। वैसे सुधीर के घर न आने से तनाव बना हुआ है। हर बात, हर चीज़ ऐसी लग रही है कि जिसे भी छू दो, कह दो आग लग जायेगी, भभक जायेगी, स्पर्श भर की देर है। न चाहने पर भी आवाज़ तेज़ हो गयी, इसलिए वे जल्दी-जल्दी सलाई चलाने लगीं जैसे कोई गलती हो गयी हो और वे उससे अपने को छिपा, बचा ले जाना चाहती हों, दो सलाइयों के बीच। लेकिन ऊन भी तो आसपास खूब बिखर गया है, उसके बीच कौन झांकने लगता है ?

रोशनी के वर्तुल रह-रहकर बिखरे ऊन के बीच आने लगे थे, आमने-सामने।

'मुझ पर तुम मुफ्त में दोषारोपण कर रही हो, मुझसे वह बोलता-बताता ही कितना है ? सभी कुछ तो तुम्हारे माध्यम पाता है। हमेशा कहता रहा हूं, उस पर निगाह रखो। उसके तेज़ मस्तिष्क को, गरम खून को सम्हाला न गया तो अनर्थ हो सकता है, वह अनर्थ कर सकता है। रोशनी के टुकड़े यदि सम्हाले न गये तो आग लगाने को काफी होते हैं। ये खुद भी जलते हैं और हमें भी जलाते हैं, जलाये जायेंगे। सोचा था, एम. एस-सी के बाद इसे आई. ए. एस. में बैठाल ले जायेंगे, लेकिन तुम हंसकर टाल जाती रहीं। जब भी तुम्हें कहा, जावो कमरे में देख आवो, क्या कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा है ? तुम यही कहतीं, कमरे में पढ़ रहा होगा, और क्या कर रहा होगा ? कर ही क्या सकता है ? हमेशा टाल जाती रहीं।

'जब तुमने खिड़की से देख लिया कि वह सिगरेट में मल-मलकर हशिश भर रहा है, चिलम के लंबे-लंबे कश खींच रहा है, तो मेरा मुंह देखने लगीं। उसके सामने किताब कहां थी ? कितनी हशिश की

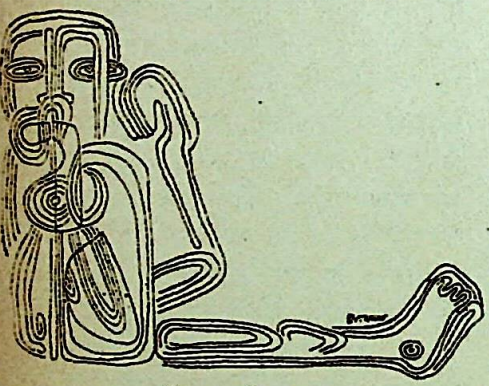

चित्र : टी. ए. राणा

पुड़ियां इधर-उधर बिखरी थीं ? सिगरेट की डिब्बियां, टूटी चिलमें, ऐश-ट्रे में ठुंसे हुए टोंटे, कुचले पान की लुद्दी, क्या नहीं कह रही थीं ? प्रयोगशाला के उपकरणों की जगह बल्वों में तेज़ाब, नंगा चाकू, हाकी स्टिक, औरतों की नंगी तस्वीरें, चिलम फिराते जोथरे धराये लड़के-लड़कियों के फोटोग्रुप देखकर तुम थरथराने नहीं लगी थीं ? बोलो . . बोलो . . ?

'तुम्हें अपनी रचना के विकृत होते रूप को देखकर कंपकंपी आ गयी थी। मेरी कही बातों को तुमने इसके बावजूद हमेशा लाड़-प्यार के नीचे दबा दिया। मैं उसकी चढ़ी आंखों को, बदहवासी को, पैर पटक-कर चलने की अदा को, शक की निगाह से देखने लगा था। नकेल कसकर रखा जाना, तुम्हें अब लगता होगा कि ज़रूरी था। आज उसी कमी ने तुम्हें निराश कर दिया है। तुम्हारे प्रभाव क्षेत्र का टूटते जाना अब तुम्हें भी सालने लगा है। उसका इस तरह सामने आ जाना कचोटने लगा है, पता नहीं कब क्या कर दे ? खून के धब्बों से ज़िंदगी के मायने पूछने लगे, क्या न वह करने लगे, अब वह प्रश्न लगने लगा है, प्रश्न ?'

श्यामजी ने ज़रा देर को रुककर पत्नी की बात के बाद, जिस ढंग से वे आवेश में बोलती चली गयी थीं, ठीक उसी ढंग से कह डाली। प्रभाव क्षेत्र, नकेल, निराशा, खून के धब्बों में ज़िंदगी के मायने, प्रश्न सा क्या हो जाये आदि बातों से लगा उन्हें फिर धक्का लगा है। वे चुप हो गयीं।

अब वे उत्तर नहीं देना चाहती थीं, अन्यथा उन्हें मालूम था कि सारी बातें कुरेदी जाने लगेंगी। सत्या के विवाह के समय ये विवाह की बात आते ही टाल जाया करते थे—

'कौन अभी बड़ी हो गयी है, बच्ची ही तो है खाने-खेलने दो, क्यों गृहस्थी में इतनी जल्दी फंसाती हो, फिर तो सारी ज़िंदगी दाल-रोटी के चक्कर में ही रहेगी।'

तब उन्हें कहना पड़ा था—'तुम भी कालेज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में रहते हो, मैं भी स्कूल में रहती हूं। सत्या कालेज से लौटने के बाद घर पर अकेले रह जाती है। सुधीर तो काफी देर से आता है। असमय या देर से आना लड़के या लड़की का किसी गलत होने वाली स्थिति का अग्रिम संकेत होता है। फिर सयानी लड़की का अकेला रहना दीवालों को भी कमज़ोर बना जाता है। एकांत में आदमी का क्या नहीं टूटता ? क्या भीतर का, क्या बाहर का, फिर यौवन की गंध बांधी भी तो नहीं जा सकती। कस्तूरी डिब्बी में बांधी जा सकी है ? तुमने आस-पास की निगाहों को नहीं देखा है ? आंखों को नहीं पढ़ा है ? जब तक बच्चे कुछ कहें नहीं, तब तक हमें कुछ समझना ही नहीं चाहिये ? उनके लिए कुछ करना नहीं चाहिये ? कहीं कुछ हो गया तो – मेरा अपना ख्याल है कि दुर्गंध में बदलने के पहले ही गंध को सुगंध में बदल लेना बेहतर है।'

और तब ये भी 'तो' पर आकर अटक गये थे। 'तो' की गंभीरता ने लगा अपने अर्थ को परिभाषित कर दिया था। हालांकि सत्या ने हलका विरोध किया था पर मान गयी थी। अभी वह दबाव के बाहर नहीं थी। पात्र अभी कुम्हार के हाथों में ही था न! अभी कच्चापन था जैसा चाहो वैसा ढाल लिया जाये। बाहर की धूप लगने लगी तो फिर मन चाहा कहां ढल पाता है, कड़ापन दबाव में टूटेगा नहीं ? इसी सुधीर ने शादी का काम कितने उत्साह से किया

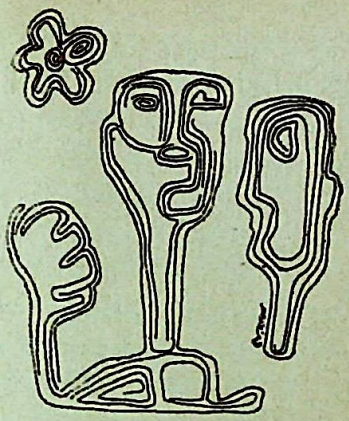

था। वह अपने घर जाकर आगे भी पढ़ने लगी, दूर जाकर भी जुड़ी हुई है। लेकिन सुधीर तो अपने घर ही में पढ़ने से, काम करने से, घर से कटने लगा है, बचने लगा है, कटहा हो गया है। कब क्या कर जायेगा, कौन जाने ? ज़रा-ज़रा सी बात को अपमान के अर्थ में ले लेता है, जैसे जो कुछ भी है, वही है। मां-बाप कुछ नहीं हैं, यह व्यक्तित्व बनाना है या अपनी कमियों को उपद्रवों से ढंकना है, अपने से ही अपने को दूर करना नहीं है ? ज़रा से काम के लिए कहो तो चीखने-चिल्लाने लगता है, बिना बात के। मुफ्त में श्रेय लेने के लिए निकम्मे लोग कितनी जल्दी आगे आते हैं, कुछ न कुछ बकने लगते हैं, कुछ न कुछ दिखाने लगते हैं, जैसे साफल्य इन्हीं के द्वारा संभव हुआ है। कर्महीनता को चिल्ला-हट या इस तरह के ढोंग से छिपाया जा सकता है ? काम करने वाले बोलते नहीं, करके दिखा देते हैं। और चुप बने रहते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं, जैसे उन्होंने कुछ किया ही न हो और ...और इस सुधीर को क्या हुआ जा रहा है?

सहमे हुए रोशनी के वर्तुलों की ओर उन्होंने ज़रा आंख उठाकर देख लिया, फिर रह-रहकर वही सुधीर सामने आ जाता है, वही सुधीर—कंपकंपी भीतर तक कैसे दौड़ जाती है—खुद को ही अपने से तोड़े डाल रहा है। यह सब उसे हम लोगों से मिला है या जिनके बीच वह उठता-बैठता है ? उसकी शक्ल कितनी अजीब होती जा रही है। किस कदर उसके जबड़े सख्त होते जा रहे हैं लगता है हर बार बात करते समय दांत पीस रहा है। आंखों के कोये तो ऐसे लगने लगे हैं जैसे वहां हमेशा सुलगते हुए अंगारे आ गये हैं, धर दिये गये हैं।

श्याम बाबू पट्टू को पैरों से सरकाकर पैताने कर चुके थे। बायें पैर को दायें पैर के घुटने पर रखे रोशनी के रह-रहकर अलग होते वर्तुलों को, दरवाज़े को देख लेते, कभी राधा की सलाइयों को, उनके चेहरे को कभी लगता, कहीं वे अपने को ही तो नहीं बुने जा रही हैं ?

सन्नाटे से सब हल होने वाला नहीं, सन्नाटा दूरी ही बनाता है, अकेलेपन को पैदा करता है, सब साफ-साफ कह देने में ही भलाई है। मन तो हलका हो जायेगा।

वे उठकर बैठ गये और कोच पर पैर नीचे लटकाये हुए कहने लगे, हाथकरघा के परदे भी धीरे-धीरे हिलने लगे, 'मैंने तुमसे कहा था, नौकरी मत करो। कन्या-शाला में जाकर दूसरों के बच्चों का भला करने की अपेक्षा अपने ही बच्चों का भला कर लो, आज यही सबसे बड़ा कर्म है, अपने को समझ लो, अपने को हल कर लो, दुनिया अपने आप हल हो जायेगी। लेकिन तुमने कभी माना ? पैसे की भाग-दौड़ में सुविधाओं को बटोरने की फिक्र में। मकान, फ्रिज, टी. वी., फोन, स्टेटस तो बन गया लेकिन भीतर कितना क्या बन पाया ? भीतर भी झांककर देखा ? कहां क्या बन रहा है, कहां क्या टूट गया है, टूट रहा है? कहां क्या उबल रहा है, गर्म हो रहा है ? रिक्तता को ढंकने के लिए बाहरी स्टेटस ज़रूरी हो सकता है, वह सब कुछ तो नहीं है न ? तुम सुधीर को चेकअप किये रहतीं तो आज ऐसा होता, जो हमारे सामने हो रहा है, घट रहा है ? जब बच्चे के ढलने के, बनने के दिन आते हैं तो हम उन्हें उपेक्षित कर देते हैं, उन्हें प्यार के खुलेपन में फेंक देते हैं। वे एक ढंग से वहीं ढलने, बनने लगते हैं, वहीं का उनके संस्कारों में प्रभाव जुड़ने, भिदने लगता है। उसके बाद घर का, माता-पिता का, शिक्षा का नया प्रभाव उस सबको छांटने में काम आ पाता है ? परिवेश के संस्कारों से इस नयी पौध को बचाया जा सकता है ? बचाया जाना चाहिये ? ये आज किसे चुनने के लिए लपक रहे हैं ? सरलता से हर चीज प्राप्त करना इनकी कोशिश का अंग नहीं होता ? आज हर आदमी बिना कुछ किये ही सब नहीं पा जाना चाहता ?'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगा वे कहते-कहते आखरी-आखरी में चीख से गये हैं। सुधीर को दबाने के लिए उबल से पड़े हैं, जब कि वह अनुपस्थित है, उनकी सांसें चढ़ गयी हैं। अगर वह होता तो त् त् तो तो . . .

अब राधाजी को लगा सलाइयां अपने आप धीरे-धीरे चलने लगी हैं। पति की बात वे ध्यान से सुनने लगी हैं। वे बीच ही में उत्तर दे देना चाहती थीं, ओंठ फड़ककर भी रह गये, सलाइयां ठिठकीं भी, लेकिन वे बोलते-बोलते रह गयीं। उनके माथे पर लकीरें बन-बनकर ठीक उसी तरह मिट रही थीं जैसे नदी के किनारों पर दूर तक फेन की लहरों से बनती और हवा से मिट जातीं। इसके बावजूद नौकरी वाली बात लग-सी गयी थी, वे उसी को लेकर कुछ बोलना चाह रही थीं, नाक की लौंग का लाल इमिटेशन किरण से चमक-चमककर नये-नये वलय बनाता, फेंकता जा रहा था, सलाइयां ज़रा रुकीं भी, वे बोलने लगी थीं।

'नौकरी की बात एक पक्षीय नहीं थी, आपकी भी उसमें स्वीकृति थी। आप सिर्फ मकान ही नहीं, कार भी लेना चाहते थे। जो दोनों की कमाई ही से संभव थी। मैंने दोनों बच्चों को बनाने के लिए क्या नहीं किया है? सुधीर को हाईस्कूल तक बराबर ट्यूशन दी है, पहनने, ओढ़ने बोलने-बताने तक पर बराबर ध्यान दिया है। लेकिन उसके साथ बाहर जाने से तो रही। वह कहां जाता है? क्या करता है? सिर्फ पूछा है और तुमसे कहा भी है। तुम मुश्किल से दिन में दो या तीन पीरियड लेकर आते और दिखाते यह रहे कि युनिवर्सिटी तुम्हारे ही कंधों पर टिकी है, बड़े थक गये हैं, जबकि सिवा सहजीवियों के खिलाफ राजनीति करने के आप लोग करते ही क्या हैं? एक दूसरे को नीचा दिखाने, रीडर या प्रोफेसरी के चक्कर में तुमने या तुम्हारी जात ने पढ़ाया है जिसके लिए प्रतिबद्ध रहे? वो तो यह कहो जो लड़के कुछ बनना चाहते रहे, जिनमें कुछ संस्कारों से मिला है, प्रतिभा है, वे स्वयं के श्रम ही से उछल जाते रहे हैं। और तुम लोग मार्गदर्शन के नाम पर यश बटोरते नहीं रहे?'

उन्हें लगा दरवाज़ों पर दस्तकें हुईं, लेकिन वह भ्रम था!

लाल इमिटेशन के वलय ने जैसे उनका भी ध्यान खींचा हो, एक बार गौर से लौंग को देखकर वे फिर बोलने लगीं, भौंहें कसी हुई लग रही थीं, 'छात्रों में भय भरकर अपने-अपने अस्तित्व की रेखाएं खींचने की हीनता से कभी बच सके हैं? यह सब अपने कर्म के प्रति धोखा नहीं है? अपने व्याख्याता या बुद्धिजीवीपन की यह खिलाफत नहीं है? यह फ्रॉड किसी न किसी रूप में संतति में ट्रांसफर हो जाये तो कौन-सा आश्चर्य? जिस स्तर पर आप या आपकी कौम छल करती है, वह आत्म-हनन नहीं है? शिक्षा जैसे क्षेत्र में सिवा ज़हर फैलाने के आप लोगों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने किया ही क्या है ? इसी तरह की हलचलें, हथकंडे राजनीति में सीढ़ी बन जाते हैं, वह सब हमारे आप ही से पैदा होता है और जब वह विकृत और वीभत्स रूप में सामने आता है तो उसमें डरने या चौंकने की क्या बात है ? इस सारे रूप में हमारे सुधीर जैसे न जाने कितने फंस गये हैं, फंसा लिये गये हैं। आज कौन-सा राजनीतिज्ञ उनकी जवानी को फुसलाना नहीं चाहता बोलो न...बोलो...?'

माथे पर रेखाएं घनी हो चली थीं, श्यामजी के, तेवर बदलकर बोलने लगे, 'ऊपर से दोष मुझी पर मढ़े जा रही हो। जब-जब तुम्हें मैंने चौकन्ना होने को कहा, उस तरफ तुमने ध्यान दिया ?'

'सुनिये, सुनिये आप मुझे बोलने दीजिये,' राधाजी की सलाइयां अब बिलकुल स्थिर हो गयी थीं, उनका बीच में बोला जाना उन्हें जैसे अच्छा न लगा हो, ओठों पर बराबर थिरकन उभर रही थी, जीभ फिराते हुए फिर बोलने लगीं, 'मैं दिन भर स्कूल में खटने के बाद सुधीर के पीछे-पीछे कहां जा सकती हूं ? घर की भी तो कोई व्यवस्था है। अक्सर देखती रही हूं, सुधीर कमरे में बैठकर दोस्तों के साथ बोर्ड रंगते रहा है, लिखते रहा है, नारे लिखता रहा है। ये नारे, दोस्त, सभी के तेवर उत्तेजित। ये लोग इस तरह की भद्दी भीड़-भाड़, चीख-चिल्लाहट के लिए पैसे कहां से लाते हैं ? मतलब यह कि इन्हें कहीं न कहीं से पैसा मिलता है। इनने हमेशा उनकी चाही आवाजें, जो निरी उनके व्यक्तिगत स्वार्थों की, बहकी हुई थीं, उछाला। सस्ते और महंगे को, अमीरी और गरीबी के अंतर को समझे बिना, ये आवाज़ें लगाते रहे। ये परस्पर विरोधी पार्टियों के लिए उत्तेजना और भिड़ाव के लिए ही तो काम आते रहे हैं। सुधीर और उसके दोस्तों के पास भगतसिंह की कुर्बानी, सुभाष की युवा चेतना, नेहरू की युवा हुंकारे क्यों नहीं हैं ? ये देश की तस्वीर बनाती थीं, कौम के हौंसले बुलंद करती थीं। आज वे सिर्फ आदमी में, पद में सीमित हो गयी हैं। जो तोड़-फोड़, बरबादी, मुंहजोरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के माध्यम बने हुए हैं।'

श्यामजी फिर कुछ बोलने-बोलने को हुए पर उन्होंने उन्हें संकेत से रोका। उनके बालों के बीच रोशनी के टुकड़े चिरैया के बच्चे की तरह घोंसले से आ-जा रहे थे, वे उससे बेखबर थीं, बोले जा रही थीं।

'इस निरर्थक चीख-चिल्लाहट को ललकार या क्रांति का अर्थ पहनाया जा सकता है? जबकि इन्हें यह समझ नहीं कि इन्हें कौन फुसला रहा है? सारी जवानी का दिमाग बटुओं में बंद कर दिया गया है और उन्हें उससे निषंग बनाकर धूम-धाम करने के लिए छोड़ दिया गया है। रोशनी अंधेरे से कैद कर ली गयी है? इमली को आम कहने की लाचारी इनके सामने आ गयी है, इनका अपना कोई सोच नहीं है। आपने तोड़-फोड़ वाले इरादों, गुंडागोरी, धृष्टता वाले आचरण, फिजूल-खर्ची, बिना कुछ किये नाम कमाने की, पैसा कमाने की आदतों को बरजा है? कभी रोक लगाने की बात की है? दूसरों की निंदा करके अपने अपराध, अपनी हीनता पर पर्दा डालने की कोशिश निहायत गंदी है, इसे मैं अकर्मण्यता की शहादत-मानती हूं।'

थोड़ी देर को लगा खिड़की पर किसी के सख्त पंजे उभरे हैं, लेकिन वहां हाथ-करघे के परदे खिंच गये थे!

वे क्षण भर को रुक गयीं और फिर गौर से श्यामजी की ओर देखा। वे पहले ही जैसे गंभीर थे, पलकों ने फड़फड़ाना बंद कर दिया था, नथुनों की कांपती कमान इस बार स्थिर हो गयी थी, बार-बार दरवाज़े की ओर जाने वाली आंखें सहमी-सी लग रही थीं। उन्हें लगा कि वे चुप रहेंगी तो वे फिर कुछ न कुछ बोलने लगेंगे, वे कहने लगी

चित्र : आर. डी. पुरोहित

थीं, 'बिना समझे तेज़-तर्रार बनकर ऐंठा जा सकता है, जुलूस निकालकर हक की लड़ाई दिखाई जा सकती है लेकिन इनने व्यवस्था की जड़ों की ओर भी देखा है? उसे पहचाना है? डिग्रियां सिर्फ नौकरी पाने के लिए ही हैं? छोटे-बड़े किसी रोज़गार की ओर बढ़ने की वे कहीं बात नहीं करतीं? तुम्हें खुद कुछ नहीं सूझता? परंपरागत रूप से प्रतिभा यहां गुलाम ही रही है, तुम भी उसी के लिए प्रतिबद्ध हो। कूवत को चीखों के गोदाम में डाल देने वाले ही हारकर आश्रमवासी हो जाते हैं, हारा हुआ आदमी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही उपदेशक बन जाता है। युवा क्षणों को बरबाद करते हुए, अपने में लौट आने का, अपने को पहचानने का, अपने को ही पहले विजित कर लेने का खोखला दर्शन कर्म के दरवाज़ों को कभी नहीं खोल सकता है, यह सब कर्म से भागने की, बचने की वंचना है। जिन हाथों में ज़िंदगी के मचलते ज़लज़ले होने चाहिये, वहां माला पकड़ा दी जाती है। यही फर्स्टेशन का इलाज है? यही जययात्रा की शुरूआत है?'

बोलते-बोलते राधाजी की सांस फूल गयी थी। पति के सामने कालेज या स्कूल की बातें ज्यादातर आवेश में हो जाती थीं। ये बातचीत अपने और पराये का अंतर लेकर चला करती थीं, जिनमें एक तटस्थता दोनों ओर से होती थी। लेकिन आज सुधीर के कारण तटस्थता खत्म हो गयी थी। सुधीर का अस्तित्व सामाजिक जीवन के लिए ही नहीं वरन् भविष्य की चिंता का विषय बन गया था, जब वे बोलते-बोलते रुक गयीं तो उन्हें मन ही मन लगने लगा कि वे उन्हीं बातों को क्यों कर रही हैं, कहीं उनके भीतर भय तो नहीं जमा जा रहा जिसे वे बातों की उष्मा से पिघला रही हों, उस सबसे ध्यान हटा रही हैं। कान आवाज़ सुनने को चौंक-चौंक से जाते।

थोड़ी देर को सन्नाटे को सांसों के स्ट्रोक देते से लग रहे थे। राधाजी को लगा नहीं... नहीं.., वैसी बात नहीं, वे उन्हीं बातों को नहीं दुहरा सकतीं जो सत्या की शादी के पहले सुधीर के देर से आने को लेकर हुई थीं।

'तुम इस लड़के को समझाते क्यों नहीं हो, समय पर घर आ जाया करे, घर में जवान बहन है, घर में उसका रहना उसे आश्वस्त करता है, कितने अजीब ढंग से इसने दाढ़ी बढ़ा रखी है, सिर के बाल तो देखो। कभी पूछा है, यह सब अपनी विशिष्ट पहचान बनाने के लिए ही है न? दाढ़ी-सिर के बाल बढ़ा लेने ही से पहचान नहीं होती, पहचान होती है प्रतिभा से, योग्यता से जो किसी भी ऊपरी रख-रखाव, बनाव-सिंगार की मुंहताज नहीं होती। चीखते-चिल्लाते आता है, मुंहजोरी करता है, यह सब आसपास के लोगों को नहीं दिखता? रह-रहकर पिता के खिलाफ बातें करना, गढ़ना, पिता को नकारने की, व्यवस्था को नकारने की बात नहीं है? जो तुम्हें आचरण और विश्वास देते हैं, उसकी उपेक्षा करना अपने भीतर बनने वाले क्षणों को तोड़ना नहीं है? रहा पड़ोस, वह किसी की भी हरकत को देखता है, तो पहचान भी बनाता है। पड़ोस की आंखों से कौन बच सका है? वहां अपने को छिपाया भी जा सकता है? याद रखो, हरकतें ही व्यक्तित्व गढ़ती हैं, स्थान बनाती हैं, आपको समझाना चाहिये, पहल लेना चाहिये।'

उसने सारी बातें मन में ही दुहराकर अपने को चुप बनाये रखा है, इतना ताव पैदा करके भी क्या फायदा कि तपत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तपते बात गल जाये, सोने को पहचानने के लिए ही वहीं तक तपाया जाना ठीक है जहां गलने का अंदेशा न हो।'

पत्नी की बात से लगा वे थोड़े विचलित हो चले हैं, गालों पर ओंठों पर एक सिहरन बार-बार दौड़ लगाने लगी थी, माथा कई बार खिंच-खिंच जा रहा था। पत्नी ने उन पर राजनैतिक शिक्षा और व्यवहार की तोहमत लगा थी। और कोई दिन होता तो वे चुप भी रह जाते। सुधीर की अनुपस्थिति को लेकर जो दबाव, भय वे महसूस कर रहे थे, उससे भी कुछ राहत मिलने की, ध्यान बंटा ले जाने की संभावना से वे उठे और हाथकरघे वाले खिड़की के परदे को पहले समेटा और कोच पर लौटकर बैठते हुए बोलने लगे :

'तुम समझती रही हो कि हम कालेज में सिवा राजनीति के कुछ नहीं करते, ये शिक्षा संस्थाएं चुनावी जोड़-तोड़ का अड्डा बनकर रह गयी हैं, यहीं लड़के शतरंज के मोहरें चलाना सीखते जाते हैं, यहीं लड़कों का गलत कामों में ज्यादा समय जाता है, यहीं वे सारी कारगुज़ारी की दीक्षा पाते हैं—यही समझती हैं न, देवीजी?' कहकर वे राधाजी की ओर ज़रा देखने लगे, रुककर फिर बोल चले।

'मैं आपको बता दूं, आज कोई भी शिक्षा संस्था ऐसी नहीं है जिसमें राजनीति का आधार नहीं है। हमाल हो, कुली हो, रिक्शेवाला हो, तांगेवाला हो, फलवाला, संतरेवाला, चाहे पंचर जोड़नेवाला ही क्यों न हो, जब वह राजनीति पर बहस कर सकता है, उसमें उलझ सकता है। ढाई रुपये किलो शक्कर वाली सरकार और पंद्रह रुपये किलो शक्कर वाली सरकार पर बहसें कर सकता है, तो पढ़ा-लिखा युवक क्यों नहीं कर सकता? जबकि उसका रिश्ता उससे ज्यादा है, उसकी बौद्धिक संवेदनाएं ज्यादा हैं, वह ज्यादा जागृत है। बात सच यह है कि असमानता तो शिक्षा के साथ जुड़ी हुई है। पब्लिक स्कूलें, प्राइवेट स्कूलें चाहे वे नैनीताल, ऊटी, ग्वालियर, रायपुर या कहीं की ही क्यों न हों ये असमानता के ज़हर को बचपन से ही उनकी शिराओं में ऊंच-नीच के नाम, छोटे-बड़े, खान-पान, पहनने-ओढ़ने के फर्क के नाम भीतर ही भीतर जमा करती जाती हैं। बड़े होते ही वे अपनी-अपनी दीवारें खड़ी कर लेते हैं। पढ़-लिखकर भी ऊंची डिग्री लेने के बाद यह गारंटी नहीं कि इन्हें अच्छी नौकरी मिल जायेगी। उन अच्छी नौकरियों को ब्यूरोकेसी की औलादें पहले ही से अपने लिए सुरक्षित करवा लेती हैं। दीवारों के उस तरफ रहनेवाले लोग अपने बच्चों को छोटा आदमी या बेकार आदमी कभी रहने ही नहीं देते।'

सलाइयां तेज़ी से चल रही थीं। ज़रा रुककर उन्होंने देखा और फिर बोलने लगे, 'ये दीवारें कभी टूटेंगी? पढ़-लिखकर बेकार घूमने पर मिलने वाली उपेक्षा

(शेषांश पृष्ठ १०२ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

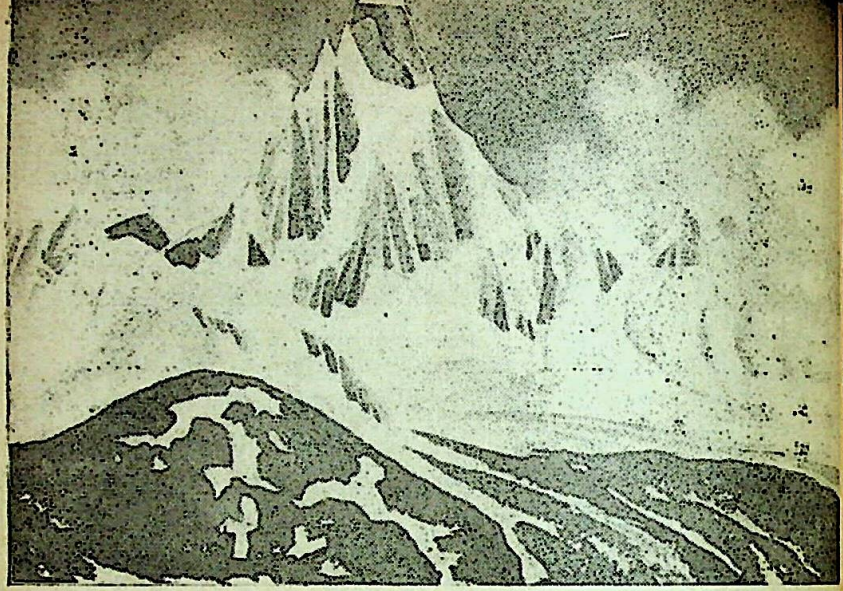

हिमालय में निसर्ग निर्मित हिमानी शिवलिंग

कलाकार रामनाथ पसरीचा का आत्म-कथ्य : और उनका विज़नरी हिमालय-चित्रण

□

हिमालय : मेरा मार्ग-दर्शक

एक लंबा सफर—कब से चल रहा हूं, वीरान सायों तले—वही साये आज मेरे साथी बन चुके हैं। ३३ साल से पीठ पर कागज़, ब्रश और रंग उठाये दिल्ली के आसपास अरावली के जंगलों में घूमा हूं, फिर हिमालय की अनगिनत वादियों में गया हूं। हिमालय की गगनचुंबी चोटियां, बर्फ के मैदान, अंधेरी चट्टानी घाटियां, सुनसान अंधेरे, तेज़ बर्फानी हवाएं अब मेरी ज़िंदगी का हिस्सा बन चुके हैं। अब वही वीराने मुझे भाते हैं।

कालेज से निकलकर जब ज़िंदगी का सफ़र शुरू करने का समय आया तो बड़े वलवले थे। मगर हालात ने स्कूल की मास्टरी कराई, दुकानदारी कराई और क्लर्की के दिशाहीन ढर्रे पर लाकर खड़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर दिया। दिशाहीनता एक भयानक अजगर की तरह सारी ज़िंदगी को निगल लेना चाहती थी। ज़िंदगी रास्ता ढूंढ़ने लगी और ढूंढ़ निकाला। स्कूल में ड्राइंग अच्छी थी, बस कागज़, रंग और ब्रश खरीदे और दिल्ली के आसपास के प्राकृतिक दृश्य बनाने शुरू कर दिये। तब दिल्ली की आबादी बहुत कम थी और चारों ओर घने जंगल, खेत और गांव थे। यमुना का किनारा सुहाना था। मगर उस समय के चित्रों में अनाड़ीपन था, मायूसियां थीं। मगर कोई काम ऐसा भी हाथ से निकल जाता था जो अपने में स्वयं एक दिशा बन जाता। किसी आर्ट कालेज में जाने का समय नहीं था। हां, सुबह और शाम थीं, छुट्टियां थीं और लगन थी। उस समय के कुछ काम जब नुमायशों में भेजे तो कला-पारखियों ने और प्रसिद्ध कलाकार अवानी सेन ने हौसला बढ़ाया। अवानी सेन के संपर्क में उस्ताद की कमी पूरी हो गयी।

प्राकृतिक दृश्य अंकित करने वाले कलाकार को घूमने-फिरने का शौक पड़ जाना स्वाभाविक है। नये दृश्य और माहौल उत्साहवर्धक होते हैं। इस विचार से पहली बार दिल्ली से निकलकर मसूरी गया। हर चीज़ नयी थी। बड़ी-बड़ी वादियां, गहराइयां, ऊंचे पहाड़, घने जंगल, बादलों की तेज़ चाल, रंगों की चटख को कागज़ पर उतारना आसान न था। तजुरबे की कमी थी। एक सुबह आसमान साफ था। उस दिन जब क्षितिज पर हिमालय की चांदी की सी चमकती चोटियों पर नज़र पड़ी तो दृश्य ने दिल को मोह लिया। एक मिक्नातीसी कशिश थी जिसने पल भर में ज़िंदगी को एक नया मोड़ दे डाला। इस कशिश से आज तक नहीं छूट पाया हूं, न छूटना चाहता हूं। आने वाले सालों में मैं कश्मीर गया, वहां से अमरनाथ पहुंचा। गढ़वाल में केदारनाथ, बद्रीनाथ, हेमकुंड की यात्रा की। कुमाऊं में पिंडारी ग्लेशियर गया, और यात्राओं के दौरान दृश्य चित्रित किये। हिमालय की यात्राओं में अनोखा

एक लद्दाखी युवती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आनंद आने लगा था। कला के दृष्टिकोण से नये अनुभव होने लगे थे। धीरे-धीरे एक सुलझे हुए और सहानुभूति रखने वाले उस्ताद की तरह प्रकृति मेरे काम को दिशा देने लगी, उसे संवारने लगी, उसमें निखार लायी। साथ ही मैंने किताबों को पढ़कर, उस्तादों का काम देखकर आर्ट कालेज की कमी को पूरा करना आरंभ कर दिया।

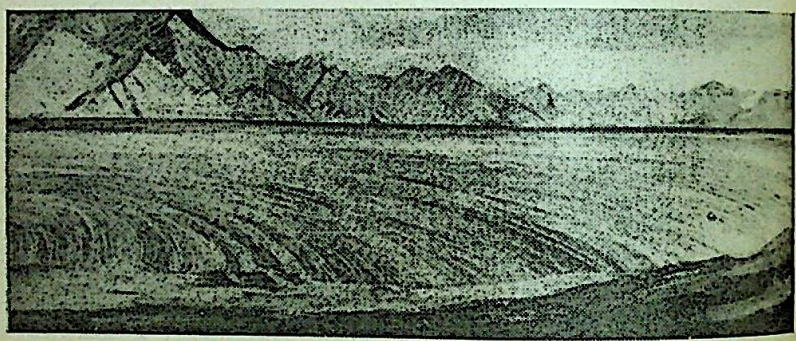

पेंगोंग झील : लद्दाख

मैं १९५७, १९५९ और १९६१ में भारतीय वायुसेना की पार्टियों के साथ किनौर, लद्दाख और किश्तवाड़ में घूमने गया। अब तो हर तरफ सड़कें बन गयी हैं और बसें दौड़ती हैं। मगर उन दिनों पगडंडियों पर कई दिन पैदल चलकर सफर होता था। खाना और तंबू साथ ले जाने ज़रूरी थे। रास्ते में खाना नहीं मिलता था। लद्दाख की यात्रा के अनुभव इन सब यात्राओं के अनुभवों से बढ़-चढ़ कर थे। ज़ोजीला के उस पार १३००० फुट की ऊंचाई पर पेड़ तो क्या घास तक का नाम न था। थीं गहरे नीले आकाश तले वर्फानी चोटियां और चट्टान और एक न खत्म होने वाला भूरा-पीला रेगिस्तान जहां दिन गर्म होते, दोपहर को धूल भरी आंधियां चलतीं और सूर्य छिपते ही कड़ाके की ठंड में पानी जमकर वर्फ बन जाता।

हम लद्दाखियों के एक काफिले के साथ दिन में लगभग २० मील चलते और किसी गांव या गोम्पे के निकट तंबू लगाकर एक अत्यंत ठंडी, काली कष्टदायक रात विता देते। लद्दाखियों के गोम्पे और उनमें बनी महात्मा बुद्ध की मूर्तियां, चित्र और पूजा की चीज़ें कला की दृष्टि से सराहनीय हैं। वहां के धार्मिक विचारों वाले सादे, ईमानदार और अत्यंत सभ्य लोगों से मिलकर जी खुश होता और अपने विचारों के दायरों को विशालता मिलती।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुनिया से अलग-थलग, बंजर भूमि से थोड़ा-बहुत अनाज उपजाकर आबादी और दूसरी आवश्यकताओं को काबू में रखकर उन लोगों ने संतोष के सहारे हंसकर चिंतारहित जीवन बिताना सीख लिया है। अब तो लेह पहुंचने के लिए हवाई जहाज़ दिल्ली से १।। या दो घंटे लेता है और बस श्रीनगर से दो दिन। मगर तब हम पहलगांव से लेह २० दिन पैदल चलकर पहुंचे थे। तब घर लौटकर प्रतिज्ञा की थी कि दोबारा पहाड़ों का रुख नहीं करेंगे। मगर कब तक?

जब इन यात्राओं के चित्र प्रदर्शित किये तो पत्र-पत्रिकाओं ने उन्हें सराहा। हिमालय की यात्राओं के साथ-साथ कला-जगत की यात्रा में भी मेरे अनुभव बढ़ रहे थे। समय बीतने पर काम में Abstraction आया, Fantasy आयी, रंगों का तालमेल सुधरा, रंगों में निखार आया। हिमालय मेरे जीवन और कला को नयी दिशाएं दे रहा था, और हिमालय ने दी हिम्मत, हौसला और सिखाया जीवन से जूझना, मुश्किलों में सिर को ऊंचा उठाकर चलना। प्रकृति और हिमालय की प्रेरणा से आज कला-जगत में नाम है, स्थान बन पाया है।

लगभग ३६ बार गढ़वाल, कुमाऊं, किन्नौर, कुल्लू, अरुणाचल, सिक्किम, स्पिती, लाहौल और लद्दाख की दूर-दराज वादियों में जाकर चित्र बनाये हैं और २४ बार चित्रों की प्रदर्शनियां लगायी हैं। १९७७, १९७९ और १९८१ की

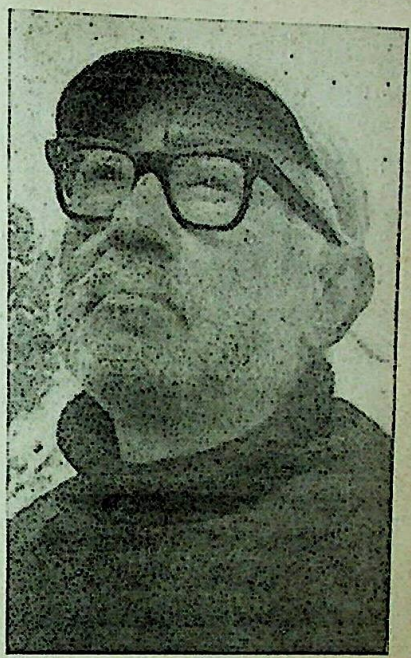

प्रस्तुत लेख के लेखक और सभी चित्रों के चित्रकार: श्री रामनाथ पसरीचा

प्रदर्शनियों ने मुझे कला-जगत की पहली पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया है।

१९७७ की प्रदर्शनी में प्रकृति को अमूर्त ढंग से देखकर, रंगों के तालमेल से, Fantasies बनायी थीं। जब रंग-बिरंगे पारदर्शी शीशे एक-दूसरे पर रखे जाते हैं और उनके पीछे से रोशनी को आने दिया जाता है तो रंगों का एक अनोखा तालमेल होता है। कुछ चित्रों में मैंने जल-रंगों के washes को पारदर्शी शीशों के समान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस्तेमाल किया था। फटे-पुराने कागज़ों और रद्दी से कुछ कोलाज भी बनाये थे।

१९७९ में 'आर्ट हैरीटेज' गैलरी के निमंत्रण पर लद्दाख के लैंडस्केप, गोम्पाओं और लोगों के चित्र दिखाये।

१९८१ में बंबई की ताज आर्ट गैलरी में भागीरथी, शिवलिंग, केदारनाथ, नीलकंठ, हरदेवल, नंदादेवी, दूनागिरी, मुल्कीला नाम की बर्फ से ढकी चोटियों के

'शे गोरपा' : रेखाचित्र

चित्र प्रदर्शित किये। इन चोटियों को देखने और उनके स्केच बनाने के लिए १६००० फुट की ऊंचाई पर जाकर बर्फानी ठंड झेली है। कई बार उन दूर-दराज़ ऊंचे पहाड़ों पर जाकर अग्रिम मोर्चों पर तैनात अपने देश की फौजों के रहन-सहन और काम-काज के चित्र भी बनाये हैं।

कुआरी खाल नाम का दर्रा १४००० फुट की ऊंचाई पर है। वहां से गढ़वाल की लगभग सभी चोटियां दिखाई देती हैं। जहां मैंने कैंप लगाया था वहां से नंदादेवी और दूनागिरी पर्वत एकदम सामने दिखाई दे रहे थे। कुछ देर बाद आसमान पर बादल छा गये थे। दोपहर और शाम ठंड से ठिठुरते बीती थी।

रात के तीन बजे का समय होगा। कड़ाके की ठंड से नींद खुल गयी। बाहर चांद निकला हुआ था और तंबू की चादर से छनकर हलकी चांदनी अंदर आ रही थी। झटपट कपड़े पहने और बाहर निकल आया। बादल का अब कहीं नाम भी न था। एक अजीब समां था। सन्नाटा था। रात के अंधेरे में चांद की चांदनी में नंदादेवी और दूनागिरी दो चांदी की चोटियां खामोश खड़ी आसमान को छू रही थीं। काफी देर यह दृश्य देखता रहा था।

सुबह आंख खुली तो सूर्य उस जमे हुए माहौल में नंदादेवी के पीछे से निकलने के लिए छटपटा रहा था। तंबू के पर्दों पर और ज़मीन पर चारों ओर ओस की बड़ी-बड़ी बूंदें जमकर हीरों के समान झिलमिला रही थीं।

फिर सूर्य की रोशनी ने बर्फानी चोटियों को गुलाबी रंग से रंग दिया था। इसी गुलाबी रंग को कागज़ पर दर्शाने के लिए; उस क्षण को हमेशा के लिए समेट लेने के लिए हर साल पहाड़ों की ओर भागता हूं—जाता रहूंगा। हिमालय की मिक्नातीसी कशिश मुझे छोड़ नहीं रही है। मैं उससे निकलना भी नहीं चाहता।

—ई २, नानकपुर, नयी दिल्ली-२१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज़िन्दगी जीने का एक अंदाज़ यह भी

[सर्कस कन्याओं की अनोखी ज़िंदगी]

मनीषा वियाला का एक रिपोर्ताज़

□

सुबह-सुबह टेलिफोन की घंटी ने मेरी नींद को तोड़ा और झुंझलाहट उस वक्त दोगुनी हो गयी जब मेरी सहेली के द्वारा मैंने सर्कस जाने का प्रस्ताव सुना।

'हम भी कोई बच्चे हैं जो सर्कस देखने जायेंगे ? तुम्हारी उम्र ६ नहीं ३६ है। भला तुम्हें भी क्या सुबह-सुबह यह मज़ाक सूझा।'

मेरे इस जवाब पर उसकी ज़ोरदार खिलखिलाहट ने मुझे एक बार फिर झुंझलाहट से भर दिया। परंतु आखिरकार जीत उसी की हुई और उस शाम मैं उसके साथ लाइटों की सजावटों से जगमगा रहे उन तंबुओं के पास थी जहां बाहर लगे बोर्ड पर कुछ तस्वीरों के साथ बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हुआ था 'सर्कस'। लाउड-स्पीकर पर बज रही किसी फिल्मी धुन में डूबा हुआ सारा माहौल संगीतमय लग रहा था। चारों तरफ से उठ रहा शोर उस संगीतमय वातावरण को भी कोलाहल का रूप दे रहा था। इस कोलाहल से मैं कुछ बेचैन-सी हो रही थी परंतु आज तो सब कुछ बर्दाश्त करना था। जब देखा कि आने वाली भीड़ में मेरी उम्र के लोगों की संख्या भी काफी है तो सर्कस के प्रति मेरी पूर्व भावना कुछ बदल गयी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शो शुरू होने पर हम अंदर जाकर बैठ गये। लड़कियों के द्वारा किये गये हैरतअंगेज़ कारनामों में यकायक मुझे भी दिलचस्पी आने लगी और यह दिलचस्पी इतनी बढ़ गयी कि मेरी इच्छा उन सभी से व्यक्तिगत परिचय करने की हो आयी।

अंततः मुझे सफलता मिल ही गयी और मैनेजर से हुई बातों के अनुसार दूसरे दिन सुबह मैं उनसे मुलाकात करने पहुंच गयी। जैसे ही मैंने बाहर से उस जगह को देखा तो माहौल को बहुत ही बदला हुआ पाया। खामोश लाउड-स्पीकर, बुझी हुई लाइटें, आराम कर रहे जानवर, यहां-वहां सादी पोशाकों में घूम रहे कलाकार—सब कुछ बहुत ही साधारण-सा लग रहा था। चारों तरफ नज़र दौड़ाने पर भी मुझे कहीं कोई लड़की नज़र नहीं आयी। खैर! तभी मेरा सामना मैनेजर से हो गया और उसने मुझे एक व्यक्ति के साथ उस ओर भेज दिया जहां कुछ लड़कियां अपनी कला का अभ्यास कर रही थीं व कुछ थककर आराम कर रही थीं।

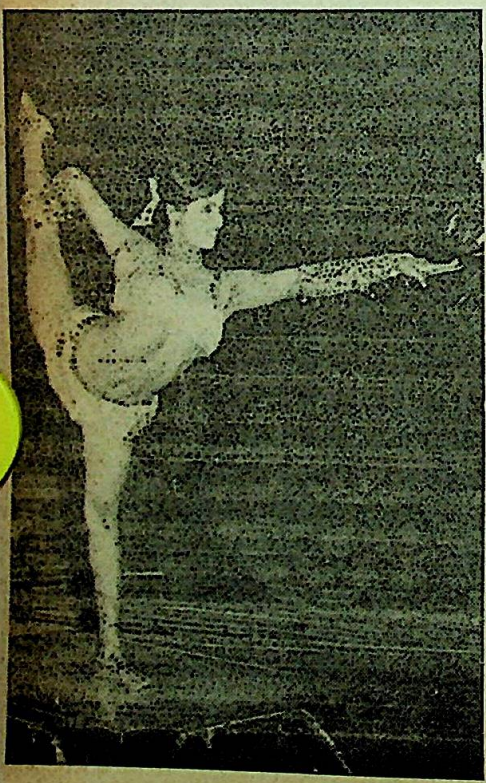

मैं उन्हीं लड़कियों के पास बैठ गयी और बातचीत का दौर शुरू हो गया। एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी इस प्रकार उन सभी लड़कियों से मेरी बातचीत हो गयी।

उन सभी लड़कियों में खासकर केरला से आई हुई लड़कियों की तादाद ज्यादा ही थी। कुछ लड़कियां आसाम की भी थीं उनमें। उनकी सभी की आयु ९ से लेकर ३० तक के बीच की थी। बचपन से ही इसी काम को करते-करते वे इस ज़िंदगी की काफी अभ्यस्त हो चुकी थीं।

सभी से उनकी आय के बारे में पूछने से अंदाज़ा लगाया कि दो सौ से पांच सौ रुपये माहवार के बीच इन्हें वेतन मिलता है। छोटी उम्र की बच्चियों को, जिन्हें प्रशिक्षण के दौर से गुज़ारा जाता है, वेतन नहीं दिया जाता। इसके अलावा आश्चर्य की बात तो यह है कि काम करने की अवधि उनके खुद के द्वारा नहीं बल्कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माता-पिता के द्वारा तय की जाती है। उनका तो केवल यही काम है कि करारनामे पर, जहां कहा जाय वहां, दस्तखत कर देना। ज्यादातर करारनामे की अवधि तीन साल से लेकर पांच साल तक की होती है।

यह तो हुआ सालों का हिसाब। दिन के हिसाब में उनकी दिनचर्या कुछ ऐसी पायी जाती है—सुबह ६ बजे से लेकर दस-साढ़े दस बजे तक कला का अभ्यास करना तथा उसके बाद एक बजे के समय तक में नहाना, खाना वगैरह। एक बजे के बाद शो की तैयारी में लग जाना तथा रात बारह बजे तक उसी तरह लोगों का दिल बहलाना। कितने नाटकीय रूप से जुड़ी हुई हैं ये ज़िंदगियां। जिनके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं है।

ज्यादातर लड़कियां छोटी उम्र में ही इसी काम को अपना लेने की वजह से इस तरह जीने की कुछ अभ्यस्त-सी हो जाती हैं। छोटी उम्र यानी सात या आठ की। ऐसे में पढ़ाई से दूर यदि कोई केवल खेल-कूद करने के लिए कहेगा तो कितने मज़े की बात हो जाती है। सुबह से शाम और रात तक केवल खेलना ही खेलना। वाह! कितना अच्छा, इसे लेकर छोटी उम्र बहक जाती है। पढ़ाई के नाम पर सिर्फ चंद मिनटों के लिए किताब लेकर बैठना। वही नहीं परीक्षा के नाम पर कुछ भी नहीं। केवल उत्तीर्णता। अनुत्तीर्णता का नाम ही नहीं। फिर भला कैसा सरदर्द ?

वहां बच्चियों के किसी के चेहरे पर विषाद की कोई रेखा नज़र नहीं आ रही थी। सभी हंसते चेहरे लिये हुए अपना काम कर रही थीं। उनसे जब पूछा गया कि क्या तुम्हारा दिल पढ़ने को नहीं करता? तो जवाब मिला—'नहीं, फिर थोड़ा देर तो हम लोग पढ़ता है। हमारा टीचर आकर हमको पढ़ाता है।' भला यह भी कैसी पढ़ाई जिसका कोई सर्टिफिकेट ही नहीं और जिससे कोई डिग्री ही नहीं मिलती। खैर! अभी इन्हें डिग्रियों की कोई चिंता नहीं है परंतु आगे चलकर यदि इन्हें इस

(शेषांश पृष्ठ १२८ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

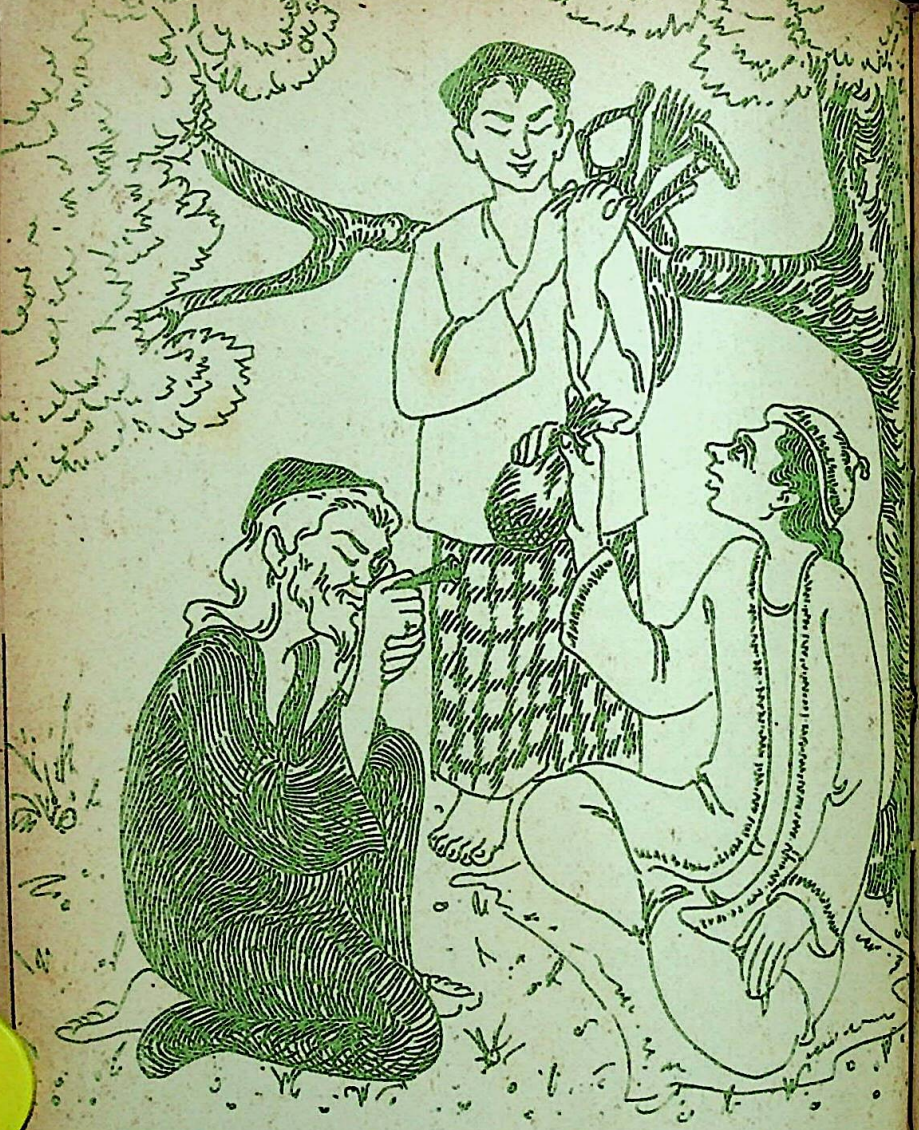

पंडित आनन्दकुमार के बहुचर्चित उपन्यास

बेगम का तकिया

का हरिमोहन शर्मा द्वारा प्रस्तुत सार-संक्षेप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समापन किस्त

□

जिसे बच्चा सुपुर्द किया गया था, वह इस निर्मम हत्याकांड से बिलकुल बेखबर, अपनी ही धुन में मीराशाह को पकड़े बैठा था, और एक ही रट लगाये जा रहा था, दरियाशाह के तकिये पर तेरी चिनाई नहीं लगेगी।

रोटियां बांट-बूंट कर अमीना जब उस पेड़ के नीचे आयी, तो उसे वहां न बच्चा मिला, न बच्चे का बाप। पीरा की गोद में बच्चा न देखकर बोली, 'मियां, मेरा बच्चा कां है?'

'व्हईं पे होगा पेड़ तले।'

'वहां नईं है।'

'तो किसी ने उठा लिया होगा। भावी आयी है उससे पूछ।'

बेचारी ने रौनक़ को जा पकड़ा, 'बी, मेरा बच्चा लिया है तुमने!'

ऐशबेगम की जाई भोली बनकर बोली, 'बच्चा ... कहां था?' और सौदागर से बोली, 'ऐ पूछो, पूछो—किसी ने खिलाने को लिया होगा।'

मीरा चिल्लाया, 'भई, पीरा का बच्चा लिया है किसी ने?'

अमीना छाती में दुहत्तड़ मारकर चीख उठी, 'अल्लाह, मेरा बच्चा ... मेरा बच्चा!' और फिर पीरा से मुखातिब हुई, 'मैंने तुजे दिया था अपना लाल। तुजी से लेके छोड़ूंगी, अपना बच्चा! लेके नईं आया तो जीत जिनगानी मूं नहीं देखूंगी तेरा।'

यों किसी का पेट भरने के लिए आयी हुई अमीना अपने पेट का गोला गंवाकर स्यापा करती हुई वापस लौट गयी।

हाथ झाड़कर, एक पेड़ के सहारे टिकते हुए दाढ़ीवाले ने अपने साथी से पूछा, 'औरत देखी, मियां?'

'देखी, बड़े मियां,' एक लंबी सांस भरके साथी ने कहा।

'यह मक़ाम इबरत (शिक्षा) का है। जिसने औरत को यहां नहीं समझा, उसने कुछ भी नहीं समझा।'

साथी ने सर यों झुका लिया जैसे सिजदे में झुका लेते हैं।

एक-एक करके, हाय-हाय करते हुए सब बगदारी चले गये। अकेला पीरा संज्ञाहीन होकर, अघदबे रौनक महल की ओर अंधा-सा ताकता रह गया। दाढ़ीवाले ने उसके पास जाकर कहा, 'भैया, घर जाओ न।' पीरअली दाढ़ीवाले की बात सुनकर बोला, 'मैं चौकीदार ऊं ह्यां का।'

तमाम साथियों के मुंह से एक साथ निकला—'सुब्हान अल्लाह।'

ooo

रौनक ने एक ढेले में दो शिकार मार लिये। बच्चे की बलि देकर रौनक़महल की बुनियाद पुख्ता कर ली, और अमीना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से बदला लेकर उसके बच्चे को गोद लेने का सवाल ही जड़ से उखाड़कर फेंक दिया। बस, रह गया कमबख्त मियां का भाई, जो बार-बार उसके रास्ते में रोड़े अटकाने के लिए सामने आकर खड़ा हो जाता है। इस शैतान के सींग तोड़ने के लिए वह कोई कारगर हर्वा तलाश करने लगी।

जब भाई के बच्चे के गुम हो जाने की वजह से दुखी होकर मीरा बार-बार हाय भर रहा था, तो रौनक ने उसे घिस्सा दिया, 'यह बच्चा तुम्हारे भाई का था ही नहीं। वह कब से अपनी बदनामी के डर से उसे खत्म करने का दांव लगा रहा था। बच्चा ज़रूर तुम्हारे लाडले भाई ने खपाया है।'

'हो सकता है सच हो,' मीरा के दिल में शक की चिनगारी चमकी। 'हो सकता है बच्चा पीरा का न हो, और उसने अपनी औरत से बदला लिया हो।'

और फिर दरवाज़ा बंद करके रौनक़, अल्लाबंदे और सबरंग ने जो साजिश की, उसका नतीजा अगले दिन ही चौराहे पर आ गया। सबरंग ने सबके सामने जो बात मुंह से निकाली, उसे सुनकर बगदारियों में एकदम खलबली मच गयी। और जब सरफू ने भी सबरंग की बात का समर्थन किया, तो लोग उसे लाठियों से मारने दौड़े।

अलीजान ने मसले का हल निकाला, 'सब झगड़े का फैसला यह है कि सौदागड़ अपनी बेगम को लेके दड़ियाबाबा के तकिये पर चले, और बुनियाद खोद के देख ली जाये ... क्योंजी, सबड़ंग साब?'

'है तो यह नुक़सान की बात, पर सचाई मालूम करनी हो तो ईमान से हम तैयार हैं यह गच्चा खाने के लिए,' सबरंग ने यह इंसाफ मंजूर करते हुए कहा। और ताल ठोककर बंदू मियां ने भी ललकार मंजूर कर ली। बोला, 'मंजूर है। हम बिना मजूरी खोदेंगे। जो बच्चा वां पा गया तो हम उसी बुनियाद में वां की वर्द अपने हात से पीरा की कबर चिन देंगे।'

तकिये पर भीड़ उमड़ पड़ी।

पीरा को क्या मालूम कि यह सारा गांव का गांव उसकी मौत का परवाना लिये टीले पर इकट्ठा हुआ है। इसलिए जब अलीजान ने उसे धमकाकर पूछा, 'पीड़ा, अपने आप ही बता दे बच्चा कहां गया?' तो धमकी से हैरान होकर वह सीधे स्वभाव बोला, 'मुझे खबर होती तो मैं बता न देता।'

रौनक़ चीख पड़ी, 'देखो रे लोगों, गज़ब देखो। कमबख्त अपने ही हाथों अपना ज़िंदा बच्चा दफ़नाकर उसकी कब्र पर फ़ातिहा पढ़ रहा है।'

अब कुंदज़हन की समझ में मामला आया। हक्का-बक्का होकर, हमदर्दों के मुंह ताक रहा था कि बेगम ने दांव मारा, 'यहीं खोदकर देखो जी।'

फ़ौरन बुंदू मियां के फ़ौलादी हाथों की चोटों से तकिया हिलने लगा। आलम खुदाई पर झुक पड़ा। चालाक रौनक़

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खुदाई में कूदने को दौड़ी, 'छोड़ दो, दफ़ना दो, मुझे मेरे बच्चे के साथ।'

सबके रोकने से रौनक़ तो रुक गयी, पर फावड़ा नहीं रुका।

खंदक गहरी होती जा रही थी, और भीड़ उस पर झुकी पड़ रही थी कि यकायक भूकंप आ गया। एक बवंडर-सा आया, और उसने अपने तमाम फैलाव और ताक़त से उठा हुआ फावड़ा ऊपर ही ऊपर झेल लिया। अमीना की चीर डालने वाली चीख सबको सुनायी दी, 'मुझे बच्चा नईं चैये!'

भीड़ के पीछे से दाढ़ीवाले के साथी ने उचककर देखा तो दाढ़ीवाले ने पूछा, 'दीख रहा है न!'

'जी हां, दीख रहा है,' साथी ने कहा।

बुंदू ने अमीना से कहा, 'हट जा, बीबी। खुल जाने दे सच-झूठ।' पर अमीना चिल्लायी, 'मुजे नईं चैये सच-झूठ। मुझे नईं चैये बच्चा!'

रौनक़ चिल्लायी, 'खोदो, खोदो, मेरे दिल में शोले उठ रहे हैं।'

अमीना ने बुंदू का फावड़ा और कस के पकड़ लिया, और गला फाड़कर रंभा उठी, 'मुजे मार डालो, मुजे काट डालो, मैं नईं हटूंगी, मैं नईं खोदने दूंगी, मुजे नईं चैये बच्चा।'

अमीना की इस डकराहट ने लोगों की समझबूझ छीन ली।

गुत्थी का सुलझाव किया करीमन ने यह कहकर, 'जब मां-बाप को ई अपनी औलाद का अता-पता नईं चैये, तो दुनिया मुहताज नहीं है किसी की।'

जमे हुए मोर्चे में दरार पड़ गयी, विचार की दिशा पलट गयी।

ooo

भीड़ छंट जाने के बाद, अमीना ने आपा संभाला। मियां की मौत को टाला देकर वह आहिस्ता-आहिस्ता गमसुम बैठे पीरा के पास गयी, और उसके घुटने में उंगली छुआकर धीरे से बोली, 'चल।'

लेकिन पीरा में जुंबिश नहीं आयी, हरकत नहीं हुई।

अमीना बच्चे की तरह उसे बहलाती हुई बोली, 'पीरा, जो हो गया, सो हो गया, तू घर चल। तू डर मत, मैं किसी को तुस्से आंख भी नईं मिलाने दूंगी। मैं तुजे अपना रोना बी कबी नईं सुनाऊंगी—चल उठ।'

पीरा की सीपियां छलक पड़ीं। गोया आसमान रो पड़ा। गोया फरिश्ता रो पड़ा, गोया ईमान रो पड़ा। बहुत हंसता था वह—ज्यादा हंसना अच्छा नहीं। उसने भर्राये हुए गले से कहा, 'अमीना, मैंने बच्चे को नईं दबाया।'

अमीना उसके घुटनों में मुंह देकर फूट पड़ी, और सुबकियों से हिलते हुए बोली, 'तू घर चल।' आह-सी सांस लेकर पीरा ने कहा—'घर कैसे चलू, अमीना। मेरी चौकीदारी में चोरी हो रई है।'

'पीरा, तू कैसे पकड़ेगा चोर को, वो सैजोर अै, तू कमज़ोर अै। और कौन चोर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अै, कौन साह अै, इस बात का फ़ैसला कौन करेगा ?'

पागल के मुंह से निष्ठा बोल पड़ी, 'बोई करेगा जिन्ने हमको जुम्मेवारी दी है। उसी को ढूंढ़ कै लाऊं तो फैसल्ला हो। घर की बात यह है कि दरियाबाबा को ढूंढ़ लूंगा, तभी आऊंगा। बस जा तू।'

इतना कहकर, भूखा-प्यासा पीरा पागल अपनी जान से प्यारी बीवी को रोती-कलपती छोड़कर, तकिये के पीछेवाली पगडंडी पर चल दिया, और पीछे फिर कर नहीं देखा।

कर्त्तव्यनिष्ठ के लिए तो प्रेम ही प्रेम है, उसके सिवा कुछ नहीं।

दाढ़ीवाले के साथी ने तभी सामने आकर पीरा से पूछा, 'उधर कहां चले ?'

'एक आदमी को ढूंढ़ के लाना है।'

'अजी, जिसको आना होगा, यहीं आ जायेगा, तुम इस हालत में औरत को छोड़कर क्यों परदेसों में हैरान होते हो ?'

'अजी, परदेस की हिरियानी तो झेल लूंगा, पर हिरियानी तो ससुरी ह्यां की जबरजस्त है। उसे ढूंढ़े बिना काम चलने वाला नईं है।'

दाढ़ीवाले ने बाद में साथी से कहा, 'मियां, यह दुनिया के नहीं, ज़मीर के इशारों पर चलने वाले लोगों में से हैं। इनको रोकथाम काम नहीं देती। तुम काम पर लगो।'

०००

आज सौदागर के मुंह से यह सुनकर कि 'इत्ते सारे सब खरच हो गये', अल्लाबंदे को झरने की धार पतली पड़ती हुई नज़र आयी। लालची चेलों का वह लोभी गुरु सोचने लगा, 'ऐशबेगम और उसकी बेटी गयी जहन्नुम में। उन्होंने तो बहुत बटोर लिया है, सबरंग हरामी माल-मजदूरी में जेबें भर ही रहा है, यहां तो जो कुछ आया है, वह लुभाव ही लुभाव में आया है। तौबा मेरी, दीन से वास्ता तब पड़ेगा, जब पड़ेगा, पहले दुनिया का बंदोबस्त करना होगा।'

सबरंग ऊपर सोया है, सौदागर अलीजान के यहां से देर से आयेगा। अल्लाबंदे उठा। अफ़ीम का गोला चढ़ाया, फिर एक तगड़ी-सी गांजे की चिलम जमायी, और पत्थर की पटिया सरकाकर तहख़ाने में सरक गया।

तहखाने में दो काठ के बड़े-बड़े संदूक रखे थे, मगर दोनों खाली थे। तभी उसकी नज़र एक कोने में रखी लोहे की संदूकची पर पड़ी। संदूकची खोली। मोहरें जितनी भी बच-खुच गयी थीं, जो कि काफ़ी थीं, उनमें से जितनी भी तुर्की टोपी में समा सकीं, संदूकची बंदकर ज्यों ही बंदे ने पल्टा लिया, त्यों ही किसी के आने की आहट हुई।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'या अली खैर !' पेट से तुर्की टोपी सटाकर वह कलामुल्लाह पढ़ने लगा। . . . खुद खज़ाने का मालिक अमीरअली सौदागर संदूकची खोल रहा था। दीवार से रगड़ खाते हुए अल्लावंदा सीढ़ियों की तरफ़ सरका, और आखिर बख़ैर सरज़मीन पर पहुंच गया।

अमीरअली ने संदूकची खोली, और अपने छीजते हुए खजाने पर नज़र डाली। गाजे के नशे में वह यह महसूस तक न कर सका कि गठरी में चोर लग गया है, सिर्फ़ एक उफ़-उफ़-सी करके रह गया कि 'यह कितना था, और कितना रह गया है ? कहीं ऐसा न हो कि रौनक़महल का काम पूरा न हो, और मेरा माशूक़ इल्लत में पड़ जाये—या अल्ला।'

अगले दिन मीरा ने सबरंग से कहा, 'सबरंग साब, इमारत में तो रकम भौत ई उठ गई।'

'ईमान से, भाईजान, हमने कौड़ी-कौड़ी दांत से पकड़कर छोड़ी है, अब इससे ज्यादा क्या करें।'

'कारीगरों से कओ कि मालताल ज़रा कमती खपावें।'

'इससे उनका क्या जायेगा, हमारी ही इमारत कच्ची रहेगी। ... ईमान से यह क्या सलाह दी आपने।'

इस सच्ची राय से क़ायल होकर, मीरा ने जेब में हाथ डालकर एक छोटी-सी मुट्ठी भर मोहरें बाहर निकालीं, और सबरंग को देते हुए कहा, 'लो, फिर यह तो लो— बदलवा लेना अलींजान से, बदलाई वी काटेगा, बक्काल का !' थोड़ी-सी मोहरें देखकर सबरंग ने आंखें फाड़ीं, 'बस, यह इत्ती ही ? माल-मजदूरी सब इसमें ?'

'मियां, ज़रा हात खेंचकर चलो, कह तो दिया।'

'ऐसी कित्ती रक़म लग गयी इमारत में ?' ताज्जुब में सबरंग बोला।

०००

रौनक़महल का थोड़ा-सा ही काम बाकी रह गया था, पर सबरंग ने अगले दिन मीरा को यही बताया, 'महीनों का काम बाकी है।'

तो काम के लिए पैसा कहां से आयेगा, इस सोच में मीरा की खोपड़ी खोखली हो गयी। भड़ककर पूछने लगा, 'रौनक बी कैसी हैं यह बताओ।'

'अब उनकी तो यह है कि इमारत पूरी हो तो जान छूटे। लाइये रक़म दिलवाइये। चलूं मैं।'

फिर रक़म की बात सुनकर मीरा पूरी तरह भड़क उठा। बोला, 'मियां, बीसियों दफ़े कह दिया कि हात खेंच के खरच करो। तुम समजते ई नईं।'

'कमाल करते हैं आप। कोई और होता तो इत्ती तो मनीजरी वसूल कर लेता। और आप हैं कि...ख़ैर लाइये, इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वक्त तो निकालिये।'

'मियां, हमारी जमा उधार में फंसी हुई है।'

'आप जानें। ईमान से, महल का मकबरा न बन जाये कहीं,' कहकर सबरंग वापिस रौनक़ के पास लौट गया, और दरवाज़ा बंद कर लिया।

'अब यह चुग़लख़ोर न जाने क्या-क्या जड़ेगा बेगम से। किसी सदमे से यह पूरा का पूरा हमल जाया न हो जाये।' मीरा ने पट्टी बंधा सर दोनों हाथों से पकड़कर झंझोड़ डाला।

तभी, लंबा-सा घूंघट निकाले, अमीना बैठक के दरवाज़े में दाखिल हुई। खड़े ही खड़े ओढ़नी के अंदर से एक पोटली निकालकर उसने सामने रख दी और घूंघट में से ही बोली, 'ये ले लो अपने। ये वो हैं जो तुम्हारा करजा था तुमारे भाई के उप्पर। ये वो हैं जिसके वास्ते गलियों में खड़ी करके कहने वालों ने हमें ज़र-खरीद कहा, और बड़े-बुजरग टुकुर-टुकुर हमारा तमाशा देखते रहे। इसमें सूद के रुपये मिला दिये हैं। गिन लो।'

मीरा के दर्द करते हुए सर पर भरे हुए घड़े फूट गये। पर घड़ों पानी पड़ने पर भी मीरा शर्म से उसमें डूब नहीं मरा, बल्कि पोटली की तरफ देखकर जीभ लपलपाने लगा। उसे चुप देखकर, अमीना ने कहा, 'मूं से कह दो कि चुकता हुआ।'

आखिर मीरा किसी तरह हैं-हैं-हैं-हैं करता हुआ बोला, 'रुपिया तो, अमीना मुल तैने भौत मौके पर चुकाया है, पर ... पर।'

'पर क्या?' अमीना ने पूछा।

बेशर्मी से ताज्जुब में मुस्कराहट घोल-कर बोला, 'तेरे यां तो कोई मजूरी करने वाला बी नहीं अै, ये इत्ती सारी रक़म कां से आ गयी?'

मजूरी करने वाला न होते हुए भी औरत के पास रक़म का जो ज़रिया हुआ करता है, उसका काला ठप्पा तो अमीना के नाम पर लग ही चुका था। सवाल की चुभन से तिलमिलाकर बोली, 'आ गयी कईं से, तुमें इससे क्या अै? अब कै देना अपने कुनबेवालों से कि अब हमसे किसी ने टेढ़ी बात करी तो हम बी सूधे नईं ऐं।'

'हमको बच्चे की भौत रंजिस है। पीरा नईं आया अभी तक?'

'मियां, बच्चा मेरा, खसम मेरा, मैं इकली भौत ऊं, उसका मातम करने को। तुम क्यों हलकान होते हो।' अमीना ने पलटकर पथराव किया।

ooo

पथराव करके अमीना तो चली गयी, मगर मीरा का सर फूटना अभी बाकी था। अंदर से पथराव शुरू हो गया। सबरंग कह रहे थे, 'ईमान से यह तो रौनक़महल के बदले रौनक़ बीवी का रोज़ा ही बनता नज़र आता है। ईमान से हमने ऐसा संग-दिल आदमी नहीं देखा कि इधर तो बीवी तड़फड़ा रही है, उधर काम ठंडा पड़ा है और सौदागर हैं कि चुटकी ढीली नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करता।'

रौनक़ की आहोज़ारी सुनायी दी, 'ऐ मुआ मकान पूरा न हुआ तो मैं क्या करूंगी। अल्ला, मेरी जान अजाब में पड़ गयी।'

'यह बात नहीं अै, जो बात अै वह हमने तुमसे कह दी,' सौदागर ने घिघियाकर कहा। 'तुम घबड़ाओ मत बेग़मजी, सब काम हो जायगा। जब तलक कुछ अपनी रक़म में से निकाल के लगा दो, फिर हम तुमें दे देंगे।'

'ऐ, जैसे जमा कर दी हो मेरे पास रक़म! जैसे-तैसे चुपचाप अम्मीजान से मंगवाकर मियां का घरुआ चला रही हूं। मेरे पास रक़म कहां।' फिर धब-धब छाती कूटने के बाद आख़री पुकार मीरा के कानों पर आयी, 'चचाजान, अपनी में से एक अफ़ीम की गोली खिला दो हमें, झंझट छूटे।'

दरवाज़े में दुहत्तड़ मारकर मीरा चिल्ला उठा, 'चचा, ऐसा मत कन्ना। सबरंग, तुम बाहर आओ, हम रक़म देते हैं तुमें।'

सर झुकाये सबरंग पर्दे से बाहर आया, तो अमीना की दी हुई पोटली टेंट में से निकालकर उसे पकड़ाते हुए मीरा बोला, 'लो, अब तो काम चलाओ, फिर देखी जायेगी। जाओ, जल्दी जाओ, चचा से अफ़ीम लेकर गटक ना लें बेगम।'

मीरा के बिलकुल बाहर चले जाने की ख़ातिर-जमा करके, रौनक मुस्कराकर बोली, 'ऐ कहीं सचमुच इनके बिपार में से रक़म न निकली तो बड़ी दिलचस्पी पैदा होगी।'

सबरंग और अल्लाबंदे के होश ख़ता होने लगे कि ये लौंडिया उन्हीं के सिखाये हुए गुरों से कहीं अपने साथ उन्हें भी न ले डूबे! बंदेमियां संजीदा होकर बोले, 'बी, दिलचस्पी से यह भी सोच लो कि हम कुल तीन हैं, और बगदारी बहुत हैं। कहीं ऐसा न हो कि मियां की नज़र किसी दिन तुम्हारी जाती जमा-पूंजी पर पड़ जाये!' सबरंग पोटली से सीना सेंककर बोला, 'ईमान से, चचा, ये तो बड़ी दूर-देशी की बात कह दी।'

चौकन्नी लोमड़ी की तरह चौकस होकर रौनक़ बोली, 'तो, जो हम कहते हैं वो करो। आधा हो या सालिम, यह नया मकान तो अब हमारा ही है। आज, रातों-रात सारी जमा-जथा को ले जाकर उस नये मकान में कहीं दबा आओ।' फिर क्या था, सिरहाने से, पायताने से, तकिये के गिलाफ़ से, निवार की तहों में से, चटाइयों और दरियों के नीचे से, पायदान से, उगालदान से, गर्ज़ कि जहां-जहां भी रक्खी थी, ऐश-मंजिल की 'तब तक की वसूलयाबी' समेत मोहरें ही मोहरें निकालकर रौनक़ ने बीचोबीच ढेर लगा दिया। बंदा और सबरंग इस हर्राफ़ा के छुपाये हुए सोने के ढेर को देखकर सन्नाटे में आ गये। सारी मोहरें दो संदूकचियों में भर दी गयीं और कान-नाक की दो-चार चीज़ें छोड़कर सारा ज़ेवर-गहना ऊपर से भरकर रौनक़ ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाहर से ताले जड़ दिये, और दो-बार खड़खड़ाकर चाबियां चोली में सरका लीं।

क्या कुदरत है कि बूंद-बूंद का रुख समंदर की ओर है।

ooo

बिलकुल वहां, जहां कभी दरियाशाह के बैठने का चौतरा था, दोनों ने मिलकर कुदालों से दबादब गढ़ा खोदना शुरू कर दिया। तगड़ी-तगड़ी गड्ढा खुद गया तो थकान से चूर होकर शराबियों की तरह लटपटाते हुए अपनी-अपनी चादर के नीचे से दोनों अपना-अपना संदूक उठा लाये, और गड्ढे में सरका दिया। सबरंग तो तेज़ी से गढ़ा पाटने लगा, और अल्लाबंदे बिना कुछ कहे-सुने बोले-चाले सदर दरवाज़े के बाहर एक दूसरा गढ़ा खोदने लगे। और जब वे उसमें अपनी सारंगी रखने लगे तो सबरंग ने पूछा, 'ईमान से, चचा, यह क्या ?'

'ज़रा आड़े वक्तों का मुंह फूंका है, यार। इस लौंडिया का क्या भरोसा, न जाने कब कह दे, उस्तादजी, रस्ता लो अपना।'

चोर के साथी गिरहकट ने भी दिल खोलकर दिखा दिया, 'ईमान से यही बात एक अर्से से हम महसूस कर रहे हैं। बहन है हमारी यह रौनक़ बेगम, मगर इन वक्तों में बहन-बहन किसी की नहीं होती। तो लो, फिर हम भी अपनी जमा-पूंजी तुम्हारे ही बंक में टिकाये देते हैं।' और तबला-ढोलक भी गढ़े में सारंगी के सिरहाने रख दिये गये। तीनों साज़ मोहरों और रुपयों से भरे थे।

तभी किसी के ठठाकर हंसने की आवाज़ आयी। दोनों ने वहां से सरपट दौड़ लगायी, तो घर के दरवाज़े पर पहुंचकर ही दम लिया।

दाढ़ीवाले ने अपने साथी से कहा, 'तुम्हें ऐसे वक्त में हंसना नहीं चाहिये था। इनमें से डरके मारे किसी का दम निकल जाता तो।'

'क्या अर्ज़ करूं ... यह रोज़ी का ज़रिया ही दफना गये।'

'दौलत का दरिया इस वक्त रवानी में है। इसे लौटकर समंदर से मिलने से रोकना नामुमकिन है। यह निज़ामे-इलाही है।'

'वजा है।'

ooo

चित्र : हेडाऊ

अमीना के लौटाये हुए कर्ज़ की पोटली सबरंग को देकर कल का रईस, आज का कंगाल मीरा मेमार अलीजान पंसारी की दुकान पर जा बैठा। इमारत और बेगम की गुत्थी सुलझाने के लिए उसे और रक़म चाहिये। पर जब उसने अलीजान से कुछ रक़म उधार मांगी तो लेनदार की तरह अलीजान ने कहा, 'सौदे-सुलुफ़ के भी हजाड़ों चढ़ा लिये हैं, साले साब ने। मकान का किड़ाया-भाड़ा भी डुका पड़ा है तुमाड़ी तड़फ। अलीजान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो आप ही तुमाड़े पास उघाई के वास्ते बाने वाला था।'

'कई ऐसा मत कर बैठना खुदा के वास्ते! उनसे कह रक्खा अै कि दुमंजला हमारे घर का ई अै, फिर उनका जी ...'

'बस यही सोच के डुक गया अलीजान।'

'हमें कोई रास्ता बताओ, अलीजान भाई।' मीरा गिड़गिड़ाया।

'तुम्हें क्या फिकड़ है, सौदागड़! तुम्हाड़ा तो दादेलाई घड़ मौजूद है, उसे बेच डालो।'

तिनके का सहारा पाकर डूबते ने छलांग मारी। उठकर खड़ा हो गया और फौरन चल पड़ा। अलीजान ने पुकारा,

'भाई अमीड़अली ...'

'क्या है, मियां!'

'वो-वो साढ़े बाड़े डुपिये औड़ एक चिलम माल बड़सों से तुम्हारे नाम उचंती में टंका हुआ है।'

'पांच रुपिये नग के हिसाब से ढेरों का लेन-देन हो गया, वो उचंती ससुरी अधर ई लटक रई अै अबी।'

'हिसाब कौड़ी-कौड़ी का औड़ बकसीस हजाड़ों की।'

०००

बेलिहाज़ों का कर्ज़ चुकाकर, जब उस दिन अमीना घर में आयी तो उसे अपने शौहर की याद आ गयी, जो अपने बेईमान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाई की वजह से दुनिया में धक्के खाता फिर रहा था। खुदा करे इनका—पर मैं क्यों किसी का बुरा चेतूं ? जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। फ़कीर के मिलते ही झूठे-सच्चे का इंसाफ़ हो जायेगा। मैं खुशनसीब हूं मेरा मियां ईमान पर क़ायम है। ईमान-वाले का मुंह उजला !

. . . तभी, दहलीज में किसी के खांसने की आवाज़ आयी। पलटकर देखा तो सौदागर ! सौदागर ? यहां ? इतने अर्से के बाद ? यकायक ? फटी-सी आवाज़ में अमीना बोली, 'नसीब मेरे कि कोई तो है मेरी खबरगीरी रखने वाला।'

मीरा दिल ही दिल में कट गया। अब अपने मतलब का मेल इस बात से कैसे बैठाये ? पूछ बैठा, 'तो पीरा की खबर नईं लगी कुछ।'

'है भी कौन खबर लगाने वाला ? अपने आप ई आ जायेगा। अजी उसे छोड़ो तुम। यह बताओ अब दुमंजले के आगे नौबत कब बजेगी ?'

'अरी, कब बजेगी, हम तो फिकिर में मरे जा रये अैं। एक ससुरा पेच ई दूसरा पड़ रा अै !'

'एल्लो इसमें वी क्या दाव-पेंच पड़ रया अै ?'

'किसी फकीर-फुकरे की आन लगी है कि जिद्दिन म्हैल चिन के पूरा हो, उसी दिन औलाद पैदा हो।'

'बस तो म्हैल चिनवाओ जल्दी-जल्दी।'

'चिनवायें कैसे ? इधर तो हमारी रक़म टूट गयी, और उधर वो हाय-वैला मचा रई अै। सो, सो, सो, हमने अब ये सोचा है कि हम यह मक्कान बेच डालें।'

अमीना होली की तरह धधक उठी। बेटा छीन लिया, मर्द छीन लिया, अब यह छप्पर भी छीनने आये हैं। मुट्ठियां बंध गयीं। बोली—'जबी तो मैं कऊं कि, अल्ला, सौदागर मुज कंगली, के दरवज्जे पे कैसे ? अल्ला म्हैरबान है, मैं बेवा नहीं हो गयी हूं, और मकान में तुम्हारे भाई का बराबर का हिस्सा है। मकान दादेलाई है, तुम इकेले कैसे खरीद-बेच कल्लोगे इस मकान की ? ये कोई फकीर का तकिया समजा है तुमने ? हिस्सेदार लौट आये, तो बेच दे या फूंक दे, जब तलक किसी ने इस पे तिरछी नजर डाली तो पुतलियां निकाल के लीतड़ों से कुचल दूंगी, ये ध्यान रै !'

इस फटकार से मीरा सुन्न हो गया। सुर्त जब थोड़ी देर बाद लौटकर आयी, तो वह छोटे बच्चे की तरह फूट-फूटकर रो पड़ा। रोते-रोते, आप ही आप जो बोला, उसका मतलब यह था, 'बेगम के पूरे दिन चढ़े हैं—पीर-फकीरों की आन लगी है—कौल पूरा करे बिना संतान होगी नईं—कुछ उल्टा-सीधा हो गया, तो मैं ज़हर की पुड़िया खा के सो जाऊंगा।' मीरा की रोआ-राट ने रौनक़ की नहीं, अपनी ही जैसी एक औरत की—मछली की तरह तड़फड़ाती—तसवीर अमीना की आंखों के सामने लाकर खड़ी कर दी।.. एक औरत . . . एक मां !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न जाने कैसी सुदुर्लभ घड़ी थी—फ़रिश्तों का गुज़र पीरा के आंगन से हो रहा था शायद ! अमीना को न मीरा की नीचता याद रही, न शत्रुता। आदमी की अधमता याद न रही, और अपनी सज्जनता भी याद न रही। अनुभूति का क्षण ब्रह्म की तरह शून्य होता है।

शून्य होकर मीरा को हाथ के इशारे से बुलाकर अमीना अपने कोठे में ले गयी, और उसे दिखाये रुपयों से लबालब भरे दो घड़े—वे रुपये जो दाढ़ीवाले ने अमानत के तौर पर उसे रखने को दिये थे—मीरा के अरमानों का ढेर, औलाद का मुंह—सौदागर की आबरू—रुपया ही रुपया।

मीरा अमीना के कदमों में झुका। यह अलौकिक व्यंग्य देखने को दुनिया वहां नहीं थी !

'कित्ते अैं ?' के जवाब में अमीना ने एक बात में सब बातें ख़त्म कर दीं : 'मुजे खबर नईं कित्ते अैं। इमारत के वास्ते तुम्हारी अटकी पड़ी है, उसका तरस खाके दे रई ऊं। मेरे-तुम्हारे बीच में अल्ला हाजर-नाजर है। जहां तलक हंडे भरे हैं व्हईं तलक भरके लौटा देना—जल्दी से जल्दी। मेरे नईं अैं, ये दूसरे के अैं।'

'किकरौलीवाली, हम तुजे दूना नफ़ा देंगे इसका।'

'मियां, नफ़ा देना ई हो तो मेरे आदमी के लिए अदावट निकाल देना दिल से, वो तुमारी करनी से घर छोड़ के गया है,' किकरौलीवाली ने जूता-सा मारा। रुलाई छूटने को हुई तो दोनों हाथों से मुंह दाबकर तीर की तरह कोठे से निकल गयी।

विलक्षण घटना है—जिस धरती के कारण औरत अपना मर्द खो बैठी, औलाद से हाथ धो बैठी, चरित्र जैसी उजली चादर पर कलंक के धब्बे लगवा बैठी, उसी धरती पर खड़े हुए अधूरे दुर्भाग्य-महल को पूरा करवाने के लिए बेईमान लोगों को किसी की अमानत के ढेर से रुपये पकड़ा बैठी। बक़ौल दरियाबाबा ऐसी ही अक्लवाले का दम ग़नीमत है क्या ?

ooo

सौदागर की ड्योढ़ी पर नौबत बजी तो आवाज़ अमीना के घर पहुंच गयी। बेचारी कोने में मुंह देकर आठ-आठ आंसू रो पड़ी। अभी उस रोज़ उसने खुद मियां के भाई से यह जानना चाहा था कि 'दरवज्जे पर नौबत कब बजेगी ?' वह आज उसी नौबत की आवाज़ सुनकर ज़ारोकतार रो रही है।

औरत क़तराशाह की समझ में न आयी, तो कोई अजब नहीं। औरत के दिल और पेट के बीच दो ध्रुवों का फ़ासला है।

आते ही, दाढ़ीवाले ने पूछा, 'क्यों रो रही हो, बीबी, क्या बात है ?'

'तुमें खबर नईं अै क्यों रो रई हूं ? पेट का बच्चा चिड़िया लेके उड़ गयी, खसम बैरी फकीरे को ढूंढ़ने घरबार छोड़कर चला गया। ना रोने की क्या बात ऐ।'

बहुत बेमौके दाढ़ीवाला कह उठा, 'यह पीरअली के भाई के बच्चे की पैदाइश के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोग में रो रही है।'

अमीना का कलेजा इस चुभनी बात से छिदकर छलनी हो गया। चिढ़कर बोली, 'जिसके तन से लगती है वोई जानता है, मियां, तुमें क्या है, तुम अपना काम देखो।'

'हमारा काम तो ख़त्म हो गया। लो, ये तुम्हारे मर्द के औज़ार, संभाल लो, और हमारी अमानत की रकम लौटा दो, हम जाते हैं।' रूखे से दाढ़ीवाले ने कहा।

अमीना को काटो तो खून नहीं। पुतलियां पथरा गयीं। जैसे-तैसे बोली, 'बड़े मियां, मैंने ये बात नहीं सोची थी कि तुम इतनी जल्दी मांग बैठोगे। मैंने वो रक़म सौदागर को उधार दे दी। उसे चुनाई में कम पड़ गये थे।'

गुस्से के मारे बड़े मियां की दाढ़ी फड़फड़ा उठी—'जिस चुनाई को रोकने के लिए जिसका आदमी भूखा-प्यासा दर-दर भटकता फिर रहा है, उसके लिए उसकी औरत ने घर में से बड़ी-सी रकम निकालकर पकड़ा दी।'

अमीना फफककर रो पड़ी, 'चुनाई के मारे उसकी बेगम का जाया अटका हुआ था। मैंने हमलवाली औरत के दुख के मारे दे दी।'

बड़े मियां पूरे के पूरे अपने साथी की तरफ़ घूम गये। 'देखा जी, देखा तुमने इस औरत को, यह क्या कह रही है?' और फिर अमीना को ताना—'हमारी इतनें आदमियों की साल भर की कमाई है, हज़ारों की रक़म है। कौन देगा?'

'मैं ई दूंगी, मियांजी...' हाथ जोड़कर अमीना ने कहा।

'तुम कहां से दोगी? जाओ मांग के लाओ इसी वख्त।'

'बड़ेजी, इस घड़ी उनके सगे उतरे हैं दुमंजले में। उनकी खुसी का बख़त है, मैं कैसे तगादा लगाऊं उन पे?'

'तो अपना जेवर-गहना गिरवी रखकर लाओ कहीं से।'

'मियांजी; जेवर-गैना मुझ गरीबनी के पास कां से आया।'

'हम न सौदागर के लिए ठहरेंगे, न बिना लिये जायेंगे। सौदागर के बच्चे की छठी के दिन जुमे को, रकम लेकर तुम उस इमारत पर आ जाना, जो हमने बनायी है। तब तक तुम्हारे मियां के हाथ-पांव हमारे पास रहेंगे, बतौर जमानत।'

चित्र : हेडाऊ

यह कहकर दाढ़ीवाला पांव पीटता हुआ वहां से चल दिया। मजबूर, परेशान, दुखी और चिढ़ा हुआ-सा उसका साथी थैला लेकर, आहिस्ता-आहिस्ता सर झुकाये उसके पीछे-पीछे चला आया।

सब दुख पड़ चुके थे। सब इलज़ाम लग चुके थे—बदचलनी का, बदकारी का, हत्या का, अपनी ही औलाद को खा जाने का, एक यह अमानत में खयानत का बाक़ी था, सो वह भी लग गया। मालूम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं, और क्या-क्या इम्तिहान बाकी हैं !

०००

मुहाने से मुड़ते ही साथी तकरार-सी करता हुआ बोला, 'इतना सख्त तक़ाज़ा बिलकुल ही गैर-मुनासिब था।'

'तकाज़ा किये बिना तो वह औलाद की फ़िक्र में ही ढेर हो जाती। मियां, यह दुनिया है। यहां इसी तरह एक फ़िक्र दूसरे को दबाये रहती है, और आदमी उसे मिटाने के लिए खुद को ज़िम्मेवार समझकर जूझता रहता है। इस वक्त उसे न अपने शौहर का ग़म है, न बच्चे का रंज है, न सौदागरनी से हसद, सिर्फ़ अमानत की फ़िक्र है। इस तकाज़े की बरकत से जुमे के दिन तक तो उसे हसद सता नहीं सकता।'

बहुत खामोश जंगल था, पांवों की आहट भी नहीं थी।

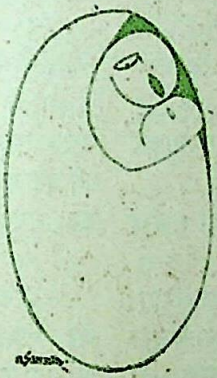

चित्र : भाऊ समर्थ

०००

कहते हैं कि क़यामत आयेगी तो जुमे के दिन आयेगी।

जुमे के रोज़ पौ फटने से पहले ही ऐशबेगम (जो रौनक़ के न्यौते पर उसकी, ११ आपाओं के साथ बगदार तशरीफ़ लायी थीं) अपने सवाबों का बहीख़ाता बग़ल में दबाकर, गवाहों और हिमायतियों की पलटन सजाकर दरगाह में जाने के लिए तैयार हो गयीं। आज रौनक़बेगम रौनक़महल में बैठेंगी।

हरावल में एक बैलों का ठेला, जिसमें नफ़ीरी-नक्कारे वालों के साथ विजेता फ़ौज के जंडेल की तरह उस्ताद अल्लाबंदे तोप-तमंचे की जगह अपना पानदान और अफ़ीम की डिबिया लेकर सवार हुए। उनके पीछे ग्यारह की ग्यारह आयाएं गोरे-गोरे पांवों में घुंघरू बांधकर, दो-दो, तीन-तीन की जुगलबंदी में थोड़े-थोड़े फ़ासले से नाच के पैंतरे साधकर खड़ी हुईं। पेट से सारंगी-तबले बांधकर साजिंदों ने इनकी पीठ पर मोर्चा बांधा।

ज़र्क-बर्क़ ज़ेवरों से लदकर सूरती और बनारसी कला-बत्तू के सुर्ख जोड़े में सजी, फूलों से भरी गोद में फूल-सा बच्चा लिये, रौनक़बेगम खुशी में फूली, डोले में रौनक़ अफ़रोज़ थीं।

ख्वाजासराओं ने दाईं बाजू संभाली, अपन कमांडर ऐशबेगम की कमान में। बाईं बाजू था, सौदागर, जिसके पास हाय ! अब कपड़ों का एक ही मुसा-कुसा जोड़ा रह गया था। उसके पीछे रसद की कुमुक की तरह पानी से भरी मश्कें, कटोरे-बदने लिये हुए पांच-सात सक्के।

इन तमाम के ऊपर हेलीकॉप्टर की तरह निगरानी करते हुए, मीर मुंशी दरोगा सबरंग बेग। और इस सबकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पिछाड़ी में ...रैयत, रैयत, रैयत। बगदार की भी, और आनगांव की भी। झड़-झड़ के जन-जन बच्चा। यहां तक कि अल्लामियां की बेइंसाफ़ी के फ़रियादी, कुदरत के तमाशाई, नौ कम सौ के बुंदू मियां भी।

धूल, धूल, धूल! इतनी धूल उठी कि बगदारियों की आंखें फूट गयीं, और पेट धूल से भर गये।

अन्याय करने वाले धूल चटाते ही हैं। अन्याय सहन करनेवाले धूल चाटते ही हैं।

पर, परदेशी मीमारों के दाढ़ीवाले मुखिया के उस जवान साथी से यह धूल नहीं चाटी गयी। बड़े मियां के पास जाकर बोला, 'बैठे हैं आप!?'

'तुम्हारे इंतिज़ार में बैठा था। देख लिया तमाशा। क्या देखा?'

साथी का क्रोध फूटकर उबल पड़ा, 'बदी का उजला और नेकी का मैला चेहरा देखा। नाइंसाफ़ी का बोलबाला हो रहा है। सही सोचने और सही काम करने वाले लाचारी से जाबिरों का मुंह ताक रहे हैं। यहां तक कि बड़े-बड़े पहुंचे हुए औलिया भी।'

'औलियाओं की भी तो लाचारियां हो सकती हैं। मगर यह मानता हूं कि नाइंसाफ़ी का मुकाबला ज़रूर करना चाहिय। तुम दाना आदमी हो, बताओ, ऐसे में क्या करें?'

'करें क्या, थाने में रपट लिखवा दें।'

'मियां, थाना-चौकी यहां कहां है? फिर असर-रसूख वालों के मुकाबले में भूखे-नंगों की रपट सुनेगा कौन?'

'तो क्या इंसानियत का मुंह पिटते हुए देखते रहें चुपचाप? हक़ हासिल करने का कोई चारा ही नहीं इस दुनिया में?'

'है! ज़ालिमों के खिलाफ़ मज़लूमों को खम ठोक देने चाहिये।'

दांत पीसकर साथी ने कहा, 'कमज़ोर, बेबस, लाचार लोग ख़म ठोकने की जुरअत कर सकते, तो कर न देते अब तक?'

उस व्यंग्य की चुभन से मुस्काराकर बड़े मियां ने कहा—'लाचारों की ताक़त हालात के थपेड़ों से बेहोश तो हो जाती है, पर मर थोड़े ही जाती है। ईमानदार के खून की एक बूंद में तूफान छिपा होता है, मियां, बूंद गिरने तो दो।'

ooo

अमीना की उधार दी गयी रक़म का जो कुछ बाकी था, अमीरअली सौदागर ने भाई के बच्चे की कब्र पर खड़े होकर अपने बच्चे की ख़ैर के लिए खैरात में फेंकना शुरू किया। एक फूटी कौड़ी भी उसकी जेब में नहीं बची। जिस तरह खाली जेब, खाली हाथ, बारह कोस का फेरा मारकर यह मेमार पहले दिन पीरा के साथ इस दरियाशाह के तकिये पर आया था, उसी तरह आज आखिरी दिन भी यहीं आकर खाली खुल्खल हो गया। संयोग!

बेगम रौनक़ाबाद उर्फ़ बगदार का बरकती क़दम महल में रखवाने के लिए उन्हें डोले से उतारकर, ऐशबेगम ने चारों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरफ नज़र घुमायी।

तभी उनका माथा ठनका।

भभ्भड़ में किसी को खयाल ही नहीं गया था कि महल के सदर दरवाज़े पर मनहूस शकल-सूरत का एक हैवान-सा इंसान, मरमरी सीढ़ियों के ठीक बीचो-बीच बैठा है। घबराकर ऐशबेगम ने कहा, 'ऐ कोई देखो यह कौन है, मुआ भूत? मुआ जादू-टोना कर देगा, मेरी बिटिया पर। पहली औलाद का मुंह देखा है, मेरी मुनिया ने। टालो इस मरदूद को। कुछ दे दिलाकर भगाओ इसे, सौदागर बच्चे।'

देने को तो अब था ही क्या, पर हुक्म के साथ सौदागर बच्चा आगे बढ़ा। लेकिन मरदूद के पास पहुंचते ही झटका-सा खाकर यकलख्त पीछे को हटा, और सारी भीड़ की नज़रें दरवाज़े की तरफ़ उठ गयीं।

सबरंग ने उसके पास जाकर पूछा, 'कौन हो मियां तुम?'

'पैछाना नईं? हम चौकीदार हैं यां के।'

'ऐ लो ईमान से वाह! किसने दी है तुमें यह चौकीदारी?'

'जिसकी जगै है, उसने दी है।' उसकी आवाज़ सुनकर, भीड़ में एक हिलोर-सी उठी, 'पीरा, पीरा, पीरा, पीरा!'

'भाईजान, यह तुम्हारा भाई है। राजी-खुशी उठा दो इसे यहां से,' सबरंग ने झल्लाकर सौदागर से कहा।

'खबर नईं कहां से आया है इत्ते दिन में?' मीरा पुटपुटाया, 'चल हट जा इस बखत यहां से।'

लेकिन आज वह पीरा नहीं है जो था। जाने कहां-कहां से भटकता हुआ, भूखा-प्यासा, हाल-बेहाल फ़कीर को ढूंढ़ने में नाकाम होकर लौटा है। या, कौन जाने सौदागर का महल पूरा होने की खबर सुनकर कर्मभूमि में लौटा है। सचाई सगे भाई से ही न हार जाये, इसीसे लौटा है। गढ़ों में धंसी आंखें भाई की आंखों में सुए की तरह कोंचकर पीरा ने कहा, 'मैं तेरा भाई हूं, सौदागर, इसलिए यां से हरगिज्ज उठनेवाला नईं ऊं।' बड़बड़ाकर जब मीरा ने मुंह फेर लिया तो सबरंग को ताव आ गया। वह पीरा के सामने खम ठोककर बोला, 'हट जाओ रास्ते से, वर्ना ईमान से हम हाथ छोड़ बैठेंगे, यह मौक़ा और है।'

'तू हात छोड़ या टांग छोड़, हम आज यां से हटने वाले नईं हैं। हम यहां के सच्चमच्च के चौकीदार हैं, यह मौक़ा और है।'

ऐशबेगम के लिए पल-पल भारी हो रहा था। चिल्लाई—'अरे, हटा क्यों नहीं देते गरदनियां दे के?' सुनते ही, अल्लाबंदा, सरफू, सबरंग, अलीजान चारों ने पीरा को पकड़कर अधर उठा लिया। बुंदू ने उसे चारों से छुड़ाकर कहा, 'पीरा, अब रैन दे!'

'रैन कैसे दें? ये हैं कौन जगै अपनी बताने वाले? हम चौकीदार हैं जगै वाले के। हम कैसे किसी को भीतर घुस जाने देंगे! चोर का म्हैल साह की धरती पै!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जान भी जाये तो भी हम यां से डिगेंगे नहीं !'

'हट जा, पीरा, झगड़ा हो जायगा। किसी की ल्हास हो जायगी,' कई आदमी एक साथ बोल पड़े।

'अरे, जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा, अल्ला सब देखता है,' बुंदू ने समझाया। मगर इतनी अनजानी हस्ती पर पीरा अपनी जिम्मेदारियां छोड़ने को तैयार नहीं है। 'अल्ला? अल्ला होता क्या है? कहां रहता है? क्या देखता है?' चीख़कर बोला, 'अरे, अल्ला की बात अल्ला जाने, मैं सिरफ़ अपनी जानता ऊं।' तभी ऐशबेगम चिल्लायीं, 'ऐ, मारो न मुए नामुराद को लठिया से।'

पागल कुत्ते को घेरकर जैसें चारों तरफ़ से लाठियां पटकाई जाती हैं, वैसे ही चारों तरफ़ से पीरा पर लाठियां पटकने लगीं। कौन-कौन था? अल्लाबंदा, सबरंग और सरफू, कमअसल की औलाद सरफू मेमार।

पीरा का सर फट गया। खून की पिचकारी छूट कर मीरा के मुंह पर जा पड़ी। भाई के खून के छींटों से कोढ़ी-सा मुंह हाथों में छिपाकर मीरा धरती पर ढह पड़ा।

ईमान ठंडा सही, पर जब इसमें आग लगती है, तब धरती और आसमान तक को जलाकर राख कर देती है। बगदारियों की भवों में बल पड़ गये। लहू-लुहान, बेहोश पीरा को बुंदू मियां एक पेड़ तले खींचकर ले गये।

०००

डर से थर-थर कांपती हुई, रौनक़ का हाथ मीरा के हाथ में थमाकर, ऐशबेगम उन्हें धकेलती हुई, महल के दरवाज़े की तरफ़ बढ़ी। चौखट के अंदर कदम रखवाया जाने वाला ही था कि क़यामत आ गयी।

काल-सफ़ेद, मैले-कुचैले, बुर्के ओढ़ी हुई चारों बीवियों और कई ज़नखों के आगे नौ ऊपर सौ बरस के हकीम लुकमान हांफते हुए वहां बला की तरह नाज़िल हुए, और तलवार की नोक की तरह सबरंग की तरफ़ छड़ी तानकर चिल्लाये, 'यह रहा वह शख्स जो हमारी बच्ची की खुशी में नाचा था। यह सब ज़नखे गवाह हैं।'

बुर्के में से तीन बीवियों के सुबकने और चौथी के चिल्लाने की आवाज़ आयी, 'यही है, लोगो, यही है। मैं जरी-सी उठके गयी थी कि ये मुआ ले उड़ा मेरी प्यारी बच्ची को।'

कमाल हो गया! यह बेगम की गोद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की बच्ची हकीमजी की है? जनमुरीद पीरा ने टूटी-सी गर्दन घुमाकर रौनक़ की तरफ़ देखा। तेवर ताने खड़ी हुई बगदारियों की भीड़ आगे को अर्राई। तोबा, तोबा, अल्ला, अल्ला। इस तोबा-तिल्ला के बीच में ज़नखों ने रौनक की गोद से बच्ची झपटकर, हक़ीमजी को पकड़ा दी।

चूने के पानी से पीरा का खून धोते हुए बुंदू ने पेड़ तले से पुकारा, 'अब पूछ तो इस चुड़ैल से पीरा का लौंडा कहां है?'

ताक़त का तूफान! ईमान का बड़-वानल! अन्याय की प्रतिक्रिया! चार हाथ ऊंचा जीवित प्राणियों का बौखलाया हुआ बवंडर भृकुटि तानकर आगे बढ़ा, तो रौनक़ के रोएं-रोएं से पसीना चुच्चा पड़ा। औसान छोड़कर पीछे को हटती हुई बोली, 'बुनियाद में गिरा दिया। मिट्टी सवरंग भाई ने डाली थी।'

इस क़यामाती जुमे के दिन दाढ़ीवाले से किये वायदे की वजह से अमीना इसी वक्त तकिये पर आयी थी। सुना तो बच्चे के मकबरे पर पछाड़ खाकर बेहोश हो गयी।

बुंदू छाती फाड़कर बोला, 'बेईमानों को जीता छोड़े सो हरामी।'

बस, फिर क्या था? बच्चे-बच्चे ने पत्थर उठा लिये। लाठियां तन गयीं, कुदाल-फावड़े उठ गये, और बगदारियों ने बेईमानों पर विज़न बोल दिया। भगदड़ पड़ गयी। रौनक और ऐशबेगम समेत महज़बीनों का रेवड़ घुंघरू बजाता हुआ भागा। साजिदे भी अल्लाबंदा, सवरंग और सरफू के पीछे सर पर पांव रखकर बगदार से उल्टी दिशा को दौड़ पड़े। जान बड़ी प्यारी चीज़ है।

जंगली सूअरों ने हांके के घेरे में घिरकर ऐसी सरपट दौड़ लगायी कि धूल का

झक्कड़ उठ खड़ा हुआ। पर, झक्कड़-बवंडर ईमान की आंखें नहीं फोड़ सकते। ईमानदार बगदारियों के भूखे कुत्ते तक धूल का झक्कड़ तोड़कर जानवरों के शिकार पर अर्रा पड़े। कौवे-कबूतरों के साथ-साथ गद्दर गोश्त का नमकीन स्वाद चखने के लिए आसमान से चील और गिद्ध तक ज़ुल्फों की नीचाई तक उतर आये.....

ooo

जीर्णोद्धार किये हुए देवालय के गर्भ-गृह से शंखघोष की तरह बहुत ज़ोर से दरियाशाह ने पुकारा, 'अलख अल्लाह!'

पीरा ने आंखें खोल दीं। अमीना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुलबुलायी।

फिर पुकार आयी, 'अलख अल्लाह !'

जिस आक़ा की तलाश में गुलाम पीरा ज़माने की धूल फांकता फिर रहा था, उसकी आवाज़ सुनकर वह हड़बड़ाकर उठा, और लड़खड़ाता हुआ, दरवाज़े के पास खड़े दरियाशाह की ओर मुंह करके पुकार उठा, 'अरे, तू कहां चला गया था, बाबा, हमें छोड़के ? तेरा भला हो जाये।'

'मैं तो कहीं भी नहीं गया था, पीरशाह ! मैं तो तुम्हारे पास, तुम्हारे घर में ही टिका हुआ था।'

पीरा हंसा, उस फ़कीराना हंसी से, जो अमीरों को दस्तयाब नहीं। फिर रोते-हंसते बोला, 'अरे तो बेरूपिये, डाढ़ी-कन्नी-वसूली में हम तुजे पैछानते भी कैसे ? हम जाने कां-कां ढूंढते फिरे तुजे?'

'तुमसे तो चलते वक्त ही कहा था कि कहीं न जाओ, यहीं मिल जायेगा, जिसे मिलना होगा।'

'ख़ैर, तू आई गया, तो देख ले आपी। अब तू जाने, तेरा काम जाने, अब मैं जिम्मेदार नईं ऊं। मैं ज़रा ठैर के बात करूंगा तुस्से, अमीना का जी राजी नईं अै। चला मत जईओ कईं, मैं देख रया ऊं वां से।'

इस तरह उत्तरदायित्व से मुक्त होकर, लक्ष्य को दृष्टि के बंधन में बांधकर वह कर्त्तव्यनिष्ठ संसारी अपनी प्रिय पत्नी पर प्यार का हाथ फेरने के लिए पेड़ के नीचे जा बैठा।

दरियाशाह ने कतराशाह से पूछा-'बस, शहज़ादे ! सब देख लिया ? समझ लिया ? या और कुछ बाक़ी है ?'

गुरु-कृपा से जब कुतर्क नष्ट हो जाते हैं, तो प्रज्ञा निर्मल हो जाती है। प्रज्ञा निर्मल होते ही ज्ञान शेष रह जाता है, और ज्ञानी तो विनम्र होता ही है।' सर झुकाकर, क़तराशाह ने कहा, 'बस, पीरो-मुर्शिद, देख चुका, समझ चुका, अब सिर्फ़ शुक्र करना बाक़ी है।'

दरियाशाह ने कहा, 'इंसान के लिए यह काम हमेशा बाकी ही रहेगा, शहज़ादे! इसका अखीर मैं तुम्हें न दिखा सकूंगा। चलें अंदर।'

पीछे से आवाज़ आयी, 'मैं देख रया ऊं फिर जा रियो है तू। ले, यह लेता जा अपनी पोटली, इन्ने बड़ा खून पिया है हमारा।'

'भई यह तो उस काम की मजूरी है जो तुमने रातों की नींद खराब करके किया था। बड़ा महीन काम था। उसकी यह मजूरी भी कम है।'

'अच्छा तो तेरी मर्जी, मुजे क्या है। दिये देता ऊं अमीना को। अच्छा औघड़, जाते-जाते हमें यह तो बताता जा कि जब ये बेगम का तकिया तुजे आपी बनाना था तो हमें हलकान करने की क्या पड़ रई थी तुजे ?'

अट्टहास करके दरियाशाह बोले, 'सुब-हान अल्लाह, पीरशाह, तुमने बहुत अच्छा नाम रख दिया इस जगह का। पर हमने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहां बनाया है ये तो अमीरअली सौदागर ने बनाया है।'

धूल में औंधा पड़ा मीरा हड़बड़ाकर उठा, और जूती से अपने मुंह को पीटकर धाड़े मारकर रोता हुआ बोला, 'सब दरियाबाबा का है, सब दरियाबाबा का है, सब दरियाबाबा का है, सब दरियाबाबा का है।'

इस जाप से तंग होकर पीरा बोला, 'ये उल्लू न जाने क्या कै रया है, तू जने क्या कै रया है, हम तो कुछ और ई कै रये हैं।'

'हुजूर, पीरशाह शायद काम मांग रहे हैं,' क़तराशाह ने दरियाशाह को समझाया।

'मांग रहे हैं तो फिर देना पड़ेगा। जा जाओ तो कलंदर, इस मकान के सारे दरवाज़े तोड़ डालो, ताकि यह कभी किसी पनाहगीर को किसी वक्त बंद न मिले। सौगुनी मज़दूरी मिलेगी, यह बड़ा काम है।'

'अरे, यह इत्ता-सा काम तो मैं बिना ई मजूरी कर लूंगा।' पीरा बोल उठा। न जाने क्यों, आंखें मूंदकर, दरियाशाह आप ही आप 'वाह वा' कह उठे।

'अरे सब तो ठीक है, पर औज़ार तो हैं ई नईं मेरे पास।'

घूंघट में छुपाया हुआ सर नीचे को झुकाकर अमीना बोली, 'बड़ेजी, औज़ार मत दो ज़ामिन के। सौदागर के जंजाल में फंस गये रुपिये नईं लौटा सकी ऊं। तुम्हारी अमानत के बदले, जिनगानी भर अपने सिर के बालों से तुम्हारा तकिया बुहार-बुहार के देनदारी चुका दूंगी।'

ईमान के हिंडोले में बेगम का तकिया झोटे खाने लगा। रौनक़ की तरह बेईमान पेंग बढ़कर अपने साथ अपनों को भी दोज़ख की आग में फेंक देती है। अमीना की तरह ईमानदार की पेंग अपनों को जन्नत के जलवे करा देती है।

दरियाशाह ने कहा, 'बीबी, हमारी अमानत तो तुम्हारे देने से पहले ही लौटकर तकिये में आ लगी। बची-खुची सौदागर की खैरात के ज़रिये वसूल पायी। तुम्हारा-हमारा हिसाब चुकता हो गया।'

'कुछ रक़म छीज गयी, तवंगर।' क़तराशाह ने दबी ज़बान से कहा।

मुस्कराकर तवंगर ने कहा, 'बड़े हिसाबी आदमी हो, कतराशाह! मगर बेहतर है हिसाब रखना। यक़ीन रक्खो कि अपने-अपने वक्त पर हक़ की कौड़ी-कौड़ी लौटकर आयेगी, ज़रूर आयेगी। हक़ की न होगी, तो हरगिज़ नहीं आयेगी। आ गयी तो सूद-दर-सूद में जान तक निकाल लेगी।'

औज़ारों का थैला क़तराशाह ने पीरा को लौटा दिया। पीरा ने फटा हुआ सर कस के बांधा, और बिना मजूरी के ही सौगुनी मजूरी के महत्त्वपूर्ण काम में जुट गया।

दरियाशाह ने 'अलख अल्लाह' की पुकार लगायी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरंग में आकर, नौ कम सौ के बुंदू मियां एक फूटा हुआ कनस्तर बजाकर, खटाखट-भदाभद की, बेताल-सी ताल पर, बेतुके-से बोल गा-गाकर, प्रगतिशील दुनिया की टंगड़ी घसीटने लगे :

'सुबर तोसक (तोशक) तकिया तक़दीरी
सुकर दौलत ईमान अमीरी,
जो सुने उसे अक्सीरी,
प्यारे, मेरी बात अखीरी, प्यारे, मेरी बात अखीरी।'

['बेगम का तकिया'; पंडित आनंद-कुमार; प्रकाशक : पांडुलिपि प्रकाशन, ई११।५, कृष्णनगर, दिल्ली; ४० रुपये]

चित्र : चंदुलाल सांकला

प्रज्ञाचक्षु का प्रखर ज्ञान

पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी जैनधर्म के विश्रुत विद्वान प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलालजी से मिलने नियम से जाया करते थे। पं. सुखलालजी काशी हिंदू विश्वविद्यालय के परकोटे से लगे हुए पंचक्रोशी मार्ग के एक छोटे से बंगले में रहते थे। उस समय उनकी अवस्था ६५ के ऊपर ही रही होगी। एक बार जब लोग पहुंचे तो कोई नया ग्रंथ आया था, सुखलालजी ने द्विवेदीजी से उसका कुछ अंश सुनाने का आग्रह किया। नवीनतम ज्ञान से जीवंत संपर्क बनाये रखने का उनका यह तरीका भी था कि जो भी मिलने आता क्षेम-कुशल के बाद या तो उससे किसी नये ग्रंथ की चर्चा छेड़ देते अथवा नये ग्रंथ के पारायण का प्रसंग निकाल लेते। पंडितजी जब बड़े मनोयोग से उक्त ग्रंथ सुना रहे थे तो सुखलालजी ने बीच ही में टोका कि यहां तो यह शब्द होना चाहिये था, गलत कैसे छप गया? द्विवेदीजी ने उनके निर्देशानुसार उक्त अशुद्धि ठीक तो कर दी पर यह सोच-कर विस्मयविमुग्ध रह गये कि सुखलालजी को इतने बड़े ग्रंथ के प्रत्येक शब्द का पूर्ण संधान है। जान-बूझकर एक स्थान उन्होंने फिर गलत पढ़ दिया, सुखलालजी ने फिर टोका और शुद्ध प्रयोग बताया। अब तो द्विवेदीजी के आश्चर्य की सीमा न रही। निदान दो-तीन पृष्ठ पढ़ने के बाद उन्होंने फिर गलत पढ़ दिया। इस पर सुख-लालजी कुछ झल्ला से उठे और बोले, 'हजारीप्रसाद! क्या परीक्षा ले रहे हो?' पंडितजी ने उनके चरण पकड़ लिये।

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

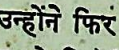

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खान अहमद हुसेन खां की उर्दू कहानी

□

गुड़िया

कमर सुल्ताना की उम्र ६ साल की थी। वह नवाब शहरयार की इकलौती बेटी थी। इसलिये मां-बाप उसे आंख का तारा समझते। वह बड़ी प्यारी, भोली-भाली थी। लड़की क्या गुलाब का फूल थी। ईद के दिन नवाब साहब उसके लिए एक बहुत खूबसूरत गुड़िया लाये थे। उस गुड़िया का कद कमर सुल्ताना के कद के बराबर था। सुंदर वस्त्र, सुनहरे बाल और अखरोटी आंखें थीं। लेटे तो आंखें बंद और खड़ी हो तो खुल जातीं, दबाओ तो 'अब्बा' कहती।

कई दिन बाद कमर सुल्ताना महल के एक भीतरी कमरे की सीढ़ियों से उतर रही थी। गोद में वही 'अब्बा' कहने वाली गुड़िया थी कि पांव फिसला और

अनुवादक : कुलदीप कपूर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नीचे आ पड़ी। कमरे में मखमली गद्दों का फर्श था इसलिये वह तो बच गयी लेकिन गुड़िया का नाजुक चेहरा टूट गया। एक तरफ के गाल में लकीर पड़ गयी। कमर सुल्ताना को गिरते देखकर मुगलानी घबड़ाकर नंगे पांव दौड़ी। महरी ने चिल्लाकर कहा, 'बिस्मिल्लाह'। अन्ना ने सिर पीट लिया और कहा कि 'हाय। मैं मर गयी!' मामा ने चटपट, बलायें लेते हुए हाथ उठाकर कहा, 'अल्लामियां, तेरा शुक्र है।' कमर सुल्ताना गुड़िया को उदास देखकर रोने लगी, फिर थोड़ी देर बाद महल के बाग के एक कोने में जाकर ज़मीन खोदने लगी। महरी ने कहा, 'यह क्या कर रही हो, बीबी, कपड़े खराब हो जायेंगे।' उसने भोलेपन से जवाब दिया, 'मेरी गुड़िया मर गयी है, उसकी कब्र तैयार कर रही हूं।' महरी ने हंसकर कहा, 'नहीं, बीबी, वह मरी नहीं, सिर्फ चोट लग गयी है, हकीमजी इलाज करेंगे अच्छी हो जायेगी।'

अगियाराम की दुकान पुरानी अनारकली में थी। खिलौने की दुकान थी। वह पहली मंजिल में रहता और नीचे दुकान करता था। वह खिलौने ही नहीं बेचता बल्कि टूटे हुए खिलौनों की मरम्मत भी करता। इसलिये लोग उसे 'खिलौनों का डाक्टर' भी कहते थे और उसकी दुकान को 'खिलौनों का अस्पताल' नाम से पुकारते। बीमार गुड़ियां, उदास गुड्डे, चाबी के घोड़े, ऊंट, हाथी, शेर-चीते, बंदर, कुत्ते-बिल्लियां और चूहे आदि आते और स्वस्थ एवं तगड़े होकर चले जाते थे।

अगियाराम की बीवी बच्चे के जन्म के बाद ही संसार छोड़ गयी। बीवी की निशानी सिर्फ एक बेटी राधिका मौजूद थी जिसे देखकर वह जीवित था। राधिका की उम्र नौ वर्ष की थी, मगर खिलौने मरम्मत करने में बड़ी होशियार। वह हर काम में अपने पिता का हाथ बटाती थी।

अगियाराम को बीवी से बेहद प्रेम था, उसकी मौत ने अगियाराम के सपनों को चकनाचूर कर दिया। अगर राधिका न होती तो ज़रूर वह आत्महत्या कर लेता। कोई कहता था कि सिड़ी है, कोई उसे शक्की मिज़ाज बताता, मगर वह ऐसा कुछ नहीं था। हां, तबियत अनोखी ज़रूर थी। खिलौनों में वह जीवन फूंक देता था। मरम्मत करते समय उन्हें पुकारता, उनके टूटे हुए अंगों को जोड़ने में उन्हें पहले क्लोरोफार्म सुंघाता और जब कोई निर्जीव मरीज़ उसके अस्पताल से स्वस्थ होकर निकलता था तो उस पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ता था।

कमर सुल्ताना की गुड़िया भी अगियाराम के अस्पताल में इलाज के लिए आयी। अगियाराम ने उसे मेज़ पर लिटाया और कहा, 'ओ हो, तुम्हें बहुत तकलीफ है, गाल दर्द करता है, बेटी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घबराओ नहीं, . . . अच्छी हो जाओगी। देखूं, कहां चोट आयी है। अरे चेहरे पर ज़ख्म है, ज़ख्म क्या है घाव है! निचली हड्डी टूट गयी है। राधिका, इधर तो आ और बहन के लिए मरहम लेती आ, देख तो सही वह बेहोश है।'

राधिका औज़ारों का बक्स लेकर तुरंत आ गयी, एक डिब्बे में पाउडर भी लिये थी। अगियाराम ने उसे मेज़ पर लिटाया। मरहम-पट्टी की। अंडे में पाउडर मिलाया और उससे टूटी हुई जगह जोड़ी। फिर उसे सुखाकर कोई अर्क मला, जिससे चेहरा अपने असली रूप में आ गया। इस बीच उस डाक्टर का हाथ गुड़िया के पेट में अचानक दब गया। 'अब्बा' की आवाज़ सुनकर वह चौंका, पर खुश हुआ! उसने गुड़िया को इस तरह प्यार किया जैसे लोग जीवित बच्चों को करते हैं। वह बोल रहा था—बेटी, अभी तुम कमज़ोर हो, तुम्हें कुछ दिन यहां आराम करना होगा, राधिका नर्स का काम करेगी।'

अगियाराम के दवाखाने में गुड़िया तीन दिन रही, इस बीच उसे गुड़िया से ऐसा प्रेम हो गया कि उसकी जुदाई खलने लगी। विशेषकर जब वह 'अब्बा' कहती थी तो डाक्टर बेताब हो जाता था। उसके दिल पर चोट लगती थी। आखिर कब तक उसे रखता। चौथे दिन उसने अपने सीने पर पत्थर रखकर अपनी बेटी से कहा कि इस गुड़िया को नवाब साहब के यहां पहुंचा दे। जब राधिका गुड़िया का बक्स लेकर घर से निकली तो अगियाराम के आंसू का प्रवाह फूट पड़ा। वह काम छोड़ सर पर हाथ रख बड़ी देर तक चौकी पर बैठा रहा।

०००

जाड़े का दिन था, राधिका चार बजे गुड़िया लेकर घर से निकली थी। शाम हो गयी और वह वापस न आयी। जब चिराग जल गये और राधिका न लौटी तो अगियाराम बहुत परेशान हुआ। वह नवाब साहब के महल पहुंचा मगर जैसा कि अमीरों के दरबानों का कायदा है कि अजनबियों से सीधे मुंह बात नहीं करते। नवाब साहब के दरबान ने भी, जो बड़ा घमंडी मिज़ाज का था, उसके साथ दुर्व्यवहार किया। उसने बड़ी रुखाई से कहा कि जाओ, यहां कोई लड़की गुड़िया लेकर नहीं आयी। नवाब साहब के कुत्ते जो दरबान के मिज़ाज से परिचित थे, उसे देखकर गुर्राने लगे। बेचारा अगियाराम निराश होकर लौट आया!

अगियाराम की व्याकुलता कही नहीं जा सकती। अब उसकी हालत नाजुक थी। उसकी इकलौती बेटी जिस पर उसका जीवन निर्भर था, तीसरे पहर से गायब थी। उसका दिल टूट चुका था। नवाब साहब के महल से वापस होकर उसने सारा बाज़ार, गली-कूचे छान डाले। थाने पर गया, कोतवाली पहुंचा, मगर राधिका कहीं नहीं दिखाई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दी। हारकर इस उम्मीद से घर पहुंचा कि शायद इस बीच वह वापस आ गयी हो ? पर यहां भी राधिका नहीं थी। वह हताश होकर चारपाई पर गिर पड़ा। औलाद का गम खुदा दुश्मन को भी न दे ! अगियाराम अब बच्चों की तरह रो रहा था कि उसे हल्के कदमों की आहट मिली, लगा जैसे कोई बच्चा उसकी तरफ आ रहा है। फिर उसके कानों में आवाज़ आयी, 'अब्बा।' अगियाराम दीवाने की हालत में अपने जगह से उठकर लपका। उसके मुख से चीख निकली, 'मेरी बेटी तुम इतनी देर कहां रहीं ?' मगर उसे तुरंत मालूम हुआ कि वह गलती पर है। यह आवाज़ राधिका के कदमों की आवाज़ न थी, बल्कि उसके कुछ फासले पर कमर सुल्ताना की गुड़िया खड़ी थी। वह अपनी अखरोटी रंग की आंखों से उसे साथ चलने का इशारा कर रही थी।

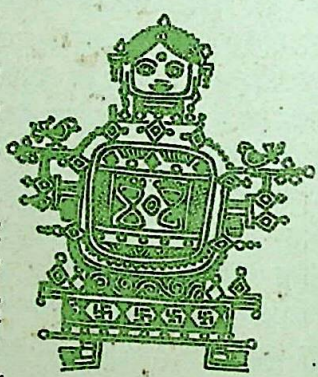

अगियाराम ने आश्चर्यचकित होकर उसे स्पर्श करना चाहा लेकिन गुड़िया हवा में गायब हो गयी। गरीब अगियाराम बुत बना हुआ पलंग पर लेट गया। मगर वही आवाज़ आयी 'अब्बा।' वह चारपाई से उठा तो कमर सुल्ताना की गुड़िया दिखाई दी।

अगियाराम गुड़िया के साथ हो लिया। आगे-आगे गुड़िया नन्हें-नन्हें कदमों से धीमी चाल चल रही थी और पीछे-पीछे अगियाराम था। अनारकली में लड़कों की भीड़ किसी हंगामा की तरह लग रही थी। 'इन्किलाब ज़िंदाबाद' के नारे लगाये जा रहे थे। यह वह लड़के थे जिन्होंने देश के हित में दुश्मनों से बदला लेने के लिए स्कूल छोड़ दिये हैं, परंतु जो स्वयं अमर्यादित होकर राहगीरों की पगड़ी उछालते, सबकी आंखों में धूल झोंकते, अपनी राह में कांटे बिछाते हैं और उस पर इतना घमंड कि जैसे यह उन्हीं का राज्य है। आह ! खुदा ही उन लोगों से समझे, जिन्होंने धरती पर झगड़े करके शांति भंग कर दी है। हां, विधवा औरतों और लावारिस बच्चों तथा बेकार मज़दूरों के धैर्य की आह ज़रूर लगेगी। अगियाराम की पोशाक अंग्रेज़ी थी। इसलिये वे शैतान और आज़ाद लड़के इस पर भी आवाज़ाकसी करने लगे। बल्कि एक ने उसके सिर पर से टोपी उतारकर ज़मीन पर फेंक दी और प्याज़ के छिलके रख दिये। अगियाराम तो स्वयं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुसीबत से परेशान था, अगर न भी होता तो क्या मजाल थी इन बदमाश लड़कों का मुकाबला न करता।

गुड़िया बराबर रास्ता बता रही थी, वह उसे हाउस अस्पताल ले गयी और 'अब्बा' कहकर गायब हो गयी। हाउस सर्जन से मालूम हुआ कि एक नौ साल की खबसूरत लड़की अस्पताल में दाखिल हुई है। मोटर के धक्के से वह बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ी थी। कुछ लड़के जो चौराहों पर एकटिंग कर रहे थे उसकी अंग्रेजी पोशाक देखकर उधर लपके थे। लड़की के हाथ में एक गुड़िया का बक्स था। लड़कों ने चाहा कि विदेशी गुड़िया का बक्स छीन लें कि लड़की दौड़ी और लड़कों ने पीछा किया। आगे-आगे लड़की थी और पीछे-पीछे लड़कों का गिरोह। आखिर उन्होंने उसे घेर लिया। मगर लड़की ने बक्स न छोड़ा। इसी बीच एक मोटर कार आ गयी जिसका धक्का लगा और वह गिरकर बेहोश हो गयी। मगर बक्स फिर भी हाथ से न छूटा। लड़की बेहोश ज़रूर थी, लेकिन उसे तनिक भी चोट नहीं लगी थी।

अगियाराम चरमराई हुई आवाज़ में बोल रहा था कि यह मेरी इकलौती बेटी है और मेरी स्व. पत्नी की निशानी है। अगियाराम के मुख से यह शब्द

चित्र : हेडाऊ

निकले लेकिन उसे मालूम न था कि वह क्या कह रहा है! सर्जन उसे बच्चों के वार्ड में ले गया। राधिका एक पलंग पर लेटी थी, बिजली की रोशनी में बाप ने बेटी की सूरत देखी और आंसू जारी हो गये। राधिका का सुर्ख रंग उस समय पीला पड़ गया था, आंखें बंद थीं। बाप की खुशबू उसके दिमाग में पहुंची और वह चैतन्य हो गयी। उसने आंख खोल दी और कमज़ोर आवाज़ में बोली, 'अब्बा, तुम आ गये; यह मुझे मालूम था कि तुम ज़रूर आओगे।'

यह कहकर राधिका रोने लगी। नर्स ने उठकर आंसू पोंछे और गुड़िया का बक्स अगियाराम के सामने रख दिया। और बोली कि आपकी बेटी बेहोशी में भी यह बक्स लिये रही। ऐसा मालूम होता था कि यह बक्स उसके शरीर से चिपक गया है। मगर शुक्र करो कि तुम्हारी बेटी बच गयी, जान बची लाखों पाये!

अगियाराम ने देखा तो वास्तव में कमर सुल्ताना की खूबसूरत गुड़िया चकनाचूर हो चुकी थी, मगर उसकी आंखें बिजली की तरह चमक रही थीं और जैसे वह अगियाराम को राधिका के सही सलामत बच जाने की मुबारकबाद दे रही थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ९१ का शेषांश)

तिरस्कार, नफरत की आग को, आक्रोश को पैदा नहीं करते ? मेहनत और प्रतिभा के हकदार बड़े कुनबों के पैरों तले कब तक कुचले जायेंगे ? तब तक इस आग को रोका जा सकेगा ?—देवीजी, रोका नहीं जा सकता। समता की बातें केवल नारों में होती हैं। असमानता और पक्षपात ही ने तो इस स्थिति को पैदा किया है। सारी जवानी नेताओं के दड़बे में कुड़क कर दी गयी है। दुतरफा दबाव है, फिर जागने के क्षण हिंस्र बनते ही हैं, उसमें सुधीर या उसके साथियों का क्या दोष ?'

'आपने जो कुछ भी कहा,' पत्नी ने तेजी से सलाइयां चलाते हुए ही अपने को जारी किया, रोशनी के वलय अब सहम-सहम कर गिर रहे थे, दरवाजे के पास। 'उससे यही लगता है कि आप सुधीर में जो कुछ भी परिवर्तन देख रहे हैं, उसे गलत नहीं मानते। उससे कहीं न कहीं सहमत हैं। उसका एम. एस-सी, में दो बार लगातार फेल होना, उसकी असफलता नहीं वरन् उसके आसपास के दबाव, जरूरतों को ही आप मानते हैं। वह पास हो जायेगा तो बाहर आ जायेगा, नौकरी मांगेगा, सामाजिक प्रतिष्ठा मांगेगा इसलिए उसका वहीं बना रहना जरूरी है। उसका लगातार फेल होना, हशिश लेना, शराब, भांग, अफीम, कंपोज आदि लेना, नाचना-कूदना, मुंहजोरी करना, तोड़-फोड़ करना, नारे लगाना, दबदबा दिखाना, जूलूस निकालना, इंजीनियरिंग के लिए नहीं है ? सिर्फ चिल्लाना, बाल बढ़ाना, ऊलजलूल बकना अपने को मनवाने का तरीका नहीं है ? वह इन्हीं हरकतों से मां-बाप को भी तौलना चाहता है, वह इज्जत कराना भूल गया था। उसकी आंखों में हर क्षण नशा, उद्दंडता, लाली भरी नहीं होती ? वह हर बात आवेश में सोचता है और यह आवेश आज सीखने और समझने के तटबंध तोड़ चुका है, इसकी चेतना में सिवा विध्वंस के कुछ नहीं है।'

दूर लगा कुत्ते ज़ोर-ज़ोर से भूकने लगे हैं। रात के दो बजने के गजर सुनाई पड़ रहे थे, हवा में ठंडक भरती जा रही थी, रोशनी के वर्तुल बहुत धीरे-धीरे जैसे उतर रहे थे, जैसे खतरे को पहचानकर उतर रहे हों, सलाइयां भी आमने-सामने आ ठिठक जातीं।

श्यामजी इस बीच कई बार खिड़की से दूर-दूर तक सड़क पर देख चुके थे। उन्हें लगता सुधीर तो जल्दी आ जाता था, आज क्या हो गया है ? कहीं किसी की हत्या-वत्या के चक्कर में तो नहीं रह गया, कहीं किसी होटल के कमरे में ही मारकर न डाल दिया गया हो ! इनका डिस्को, पिकनिक, अड्डेबाजी कम खतरे के नहीं रहे हैं। सोचते-सोचते वे उठकर टहलने लगे। कहां-कहां की लड़कियां हशिश पीकर बंद कमरों में नाचती हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसे भी अपने साथ नचवाती नहीं होगीं ? ...ऐसी हालत में उसे इतना होश होगा कि उसे घर जाना है, अपना भी घर है ? लौटने की मंजिल बना पाता होगा ? वहां के अंधेरे में उसे दिखता होगा, मां-बाप और उसकी प्रतीक्षा। लड़कियों का नशा, हशिश का नशा, थिरकते माहौल का नशा, जवानी का नशा किसी मंजिल तक जाने देता होगा ? वह सोच पाता होगा कि उसके पिता कितने निरीह हुए जा रहे हैं, प्रतीक्षा के क्षण टूटने जा रहे हैं। वह किस रूप में आ रहा होगा, आयेगा, किस रूप में ?

राधाजी ने भी सलाइयां रख दीं और बिखरे ऊन को लपेटने लगीं। पति का इधर से उधर घूमना, वे भी अब बेचैनी महसूस करने लगी थी। सोने के लिए कह पाने की हिम्मत नहीं हो पा रही थी, फिर कहीं कोई बात न उभर आये ? उनके माथे पर कितनी सारी लकीरें ठहर-सी गयी थीं, ओंठ बुदबुदाये जा रहे थे, अंगुलियां जैसे समस्या को सुलझाने के लिए खुल रही थीं, बंद हो रही थीं।

दरवाज़े पर ठक-ठक-ठक से दोनों चौंके, ठक-ठक बराबर उभरती जा रही थी। पति ने पत्नी की ओर, पत्नी ने पति की ओर इस ढंग से देखा मानो एक दूसरे से कह रहे हों, जाओ, जाओ, दरवाज़ा खोल आओ ! खोल आओ...

आखिर पत्नी ने स्पष्टतः कह ही दिया, 'जाओ दरवाज़ा खोल आओ, सुधीर आया होगा, बेटा आया होगा... बेटा...।'

ठक-ठक-ठक अब ज़ोर-ज़ोर से उछाली जाने लगी थी।

'मैं नहीं जाऊंगा, तुम खोल आओ,' श्यामजी ने कोच पर बैठते हुए कहा।

'दरवाज़ा खोलने अब क्यों नहीं जा रहे ? अपनी ही औलाद से डर लग रहा है ? उसने इन दिनों जो सीखा है, पाया है, वह इतना भयानक है ? बाप को बाप नहीं समझेगा, मां को मां नहीं समझेगा, घर को घर नहीं समझेगा ? तुम्हारी समझ और सहमति का वहां उत्तर नहीं है ? उसकी चढ़ी आंखों में बैठा दरिंदा, इतना भयानक है कि तुम्हें दबोच लेगा... वहां सुधीर नहीं है... सुधीर... वहां नहीं मिलेगा... यही न... यही न... ?'

ठक-ठक-ठक की आवाज़ें तेज़ी से उछलती चली जा रही थीं।

—सीताबर्डी, नागपुर—४४००१२

सौगंध का लाभ

गंगा पवित्रता की प्रतीक है
इसीलिए आदमी सरलता से
उसकी सौगंध खाता है
और फिर
पापी बन जाता है !

—नंदकिशोर 'नंदन'
निसौनीकलां, सिवनी-मालवा,
होशंगाबाद म. प्र.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ९९ का शेषांश)

बात का अफसोस होगा तो ? क्या उस समय ये अपनी ज़िंदगी के उन खोये हुए वर्षों को लौटा पायेंगी ?

इसका पूर्ण उत्तर मुझे वहीं काम कर रहीं उन लड़कियों से मिल गया जो अब इस बचपने की उम्र से निकल समझदारी को पा चुकी हैं। एक हल्के विषाद की रेखा उनके चेहरे पर झिलमिला रही थी। कहीं टूटी हुई व खोयी हुई सी उन लड़कियों ने मेरे प्रश्न के उत्तर में कहा—'पढ़ाई न करके अब काफी पिछड़ापन लगता है। शायद हो सकता कि इस उम्र में बी. ए., एम. ए. करके किसी अच्छे दफ्तर में अच्छी तनखा पर काम करते। मगर अब क्या हो सकता है।' 'अब सोचकर फायदा भी क्या है ?' 'जाने दो, जो कुछ भी मिल रहा है उसी में संतोष करना है अब तो।' 'हम क्या करेगा जब हमारा मां-बाप ने हमको बचपन में ही यहां भेज दिया।'

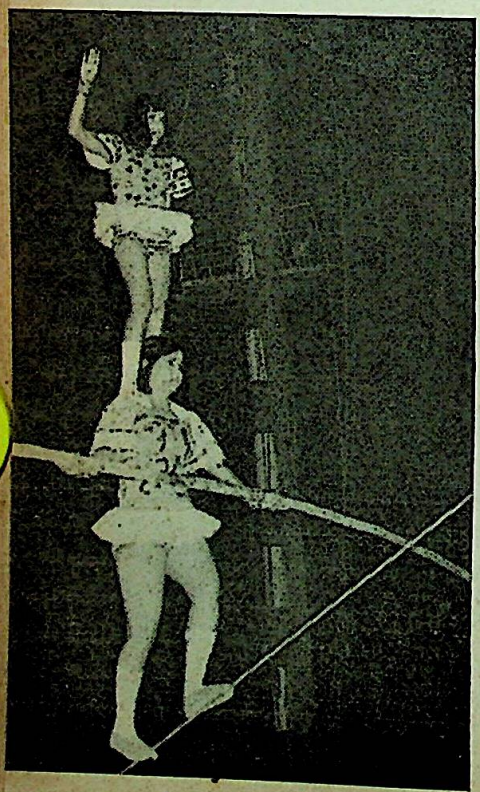

इसके अलावा दूसरी वजह, उनके विषाद की यह भी रही है कि पुरखों की परंपरा को चलाने में अपने आप के द्वारा संजोये गये रास्तों पर न चल पाने की असमर्थता। पिता किसी सर्कस में काम कर रहे हैं तो बेटी किसी और सर्कस में, इसके अलावा भाई-बहन सभी इसी व्यवसाय में व्यस्त हैं। केवल मां और भाभी घरों में उनका इंतज़ार करती हुई पायी जाती हैं।

इन सबसे परे लड़कियों की यहां काम करने की मुख्य वजह गरीबी भी रही है। यहां काम कर रही सभी लड़कियां ज्यादातर इसी वर्ग से आयी हुई होती हैं, जहां बचपन से ही अपनी जीविका खुद कमाना आवश्यक होता है। बतौर शौक काम करने वाली लड़कियों की संख्या काफी कम में पायी जाती है। पिता आकर करारनामे पर सही करवा जाते हैं। और तनख्वाह के पैसे हर महीने उन्हीं के पास पहुंच जाते हैं। सच बात है कि गरीबी जो न कराये वही कम है।

अपनी असमर्थता से टूटी हुई एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लड़की कहती है, 'क्या करेगा। हमारा तो इच्छा बहोत पढ़ने का था लेकिन हमारा बाप ने हमको यहा भेज दिया।'

ठीक है जो कुछ भी है उसे सहज रूप में अब इन्होंने स्वीकार कर लिया है। अब तो यही सर्कस उनकी ज़िंदगी बन गया है। एक काफिला, जिसमें कुल ढाई सौ से लेकर तीन सौ आदमी तक काम करते हैं। कहा जाता है कि उम्मीद पर दुनिया कायम है, पर इन लोगों के बीच तो वह भी शेष नहीं रह गयी हो ऐसा महसूस होता है। 'सोचने से अब क्या फायदा?' एक परेशान-सी लग रही लड़की कहती है, 'अब तो जो कुछ भी है वही हमको अच्छा लगने लग गया है।'

बिलकुल सीधी-सादी या यूं कहा जाये भोलीभाली लड़कियां दुनिया से दूर एक काफिले या तंबू अथवा स्टेज से बंध गयी हैं यह कहना गलत नहीं होगा। यहां काम कर रहे पुरुष वर्ग से भी इन्हें ज्यादा बोलने की इजाज़त नहीं दी जाती है। केवल प्रशिक्षण के समय एक ध्यान होकर काम करना और शो के समय तैयार होकर अपना पार्ट पूरा कर फिर से अपनी जगह लौट जाना इनका काम होता है। जिस तरह से शेर, चीते को पिंजड़े में और हाथी और घोड़ों को जंज़ीरों व रस्सियों से बांधकर रखा जाता है उसी तरह इन लड़कियों की सीमा भी कुछ तंबुओं तक सीमित रखी जाती है। कितनी बार हज़ारों लोगों की निगाहों से गुज़र जाने वाली इन लड़कियों के चेहरे पर नयी नवेली दुल्हन की सी शर्म, मुस्कुराहट व घबराहट अब भी शेष है। यह कितने आश्चर्य की बात है! स्टेज पर कुछ गिने-चुने कपड़ों में आने वाली ये लड़कियां जो इमेज हम पर छोड़ जाती हैं उससे कहीं काफी हटकर ये व्यक्तिगत रूप में पायी गयी हैं। हैरत-अंगेज़ कारनामे करने वाली इन लड़कियों के मुंह में ज़बान नहीं है। किसी अपरिचित से बात करने का साहस भी नहीं है।

उनकी ज़िंदगी उस मिल की एक मशीन की तरह हो गयी है जिसका बटन दबाये जाने पर उसका कार्य तुरंत शुरू हो जाता है और समय समाप्त होने पर फिर से बटन दबाये जाने पर काम करना बंद हो जाता है। एक समान ज़िंदगी जीते हुए उनके लिए अब परिवर्तन तब ही संभव हो सकता है जब शादी कर ली जाये। वैसे शादी के लिए ज़्यादातर लड़कियां खुद प्रयत्न नहीं करतीं, यह भी उनके माता-पिता पर ही निर्भर रहता है।

वैसे इन लोगों की ज़िंदगी में सुख-दुख, मानसिक अस्तव्यस्तता, इच्छा या मिज़ाज कोई अर्थ नहीं रखता। रोज़ सब कुछ उतना ही सहज होता है जितना कि कल था। फिर इस तरह के कोई भाव से प्रभावित हो विचलित होना उनके स्वयं के लिए ही हानिकारक साबित होता है। क्योंकि इतना जोखिम भरा काम करते हुए ध्यानस्थ रहना भी तो ज़रूरी है वर्ना हाथ-पांव तुड़वाना भला कहां तक उचित है? दर्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होगा तो खुद के शरीर को ही तकलीफ होगी न ?

वैसे सर्कस में एक काम के लिए तीन या चार व्यक्ति को तैयार किया जाता है ताकि किसी की अस्वस्थता दर्शक के लिए निराशा न बन जाये। अपनी निराशा को प्रसाधन सामग्री से ढंके हुए एक बनावटी मुसकान के साथ हमारा स्वागत करने वाली इन लड़कियों के मन को हममें से कभी किसी ने जानने का प्रयत्न नहीं किया, यह कितने आश्चर्य की बात है !

क्या व्यक्ति के केवल बाहरी आवरण से ही उसके मानसिक स्तर को जान लेना और उस पर किसी तरह की अपनी व्यक्तिगत राय या सम्मति देना अनुचित नहीं ? क्या यह संभव नहीं कि हम किसी को अपना समझ उसे अपनी ही तरह समझने का प्रयास करे ?

—३८, जनसुख निवास, कस्तूरबा रोड,
कान्दीवली (पश्चिम), बम्बई-६७

कुशल कलाकार और अरसिक श्रोता

थी तो राजस्थान के छोटे-मोटे इलाके की छोटी-मोटी गढ़ी ही। पर गढ़ी के भी कहलाने को छोटे-मोटे जागीरदार और ठाकुर साहब थे ही वे। कुछ मरजीवान और खुशामदखोर इकट्ठे हो जाते थे और छोटा-मोटा दरबार लग ही जाया करता था। भाग्य की चपेट का मारा एक गायक कलाकार एक बार उस गढ़ी की ओर आ निकला। चर्चा हुई, और वह बेचारा उस छोटे-मोटे दरबार में सम्मान पाने बुला लिया गया। कहावत है कि उल्लुओं की महफिल में भी एकाध बुलबुल फंस ही जाता है। ऐसा ही एक बुलबुल—कला पारखी कवि इस दरबार में भी था। उसने इस गायक को देखा, परखा, पहचाना और बोल उठा—

रे गायक, ये गाय-सुत, तूं चातुर-परबीन
ये गाहक 'कड़बीन' के, तें लीनी 'करबीन'।

अर्थात्—हे गायक, तू तो गुणी कलाकार है किंतु जिन (ठाकुर साहब और उनके चाटुकारों) के समक्ष तू अपनी कला का प्रदर्शन कर रहा है ये गाय-सुत (बैल) के समान अरसिक हैं। ये तो कड़बी (जुआर के डंठल जो पशुओं के चारे के काम में आते हैं) के प्रेमी हैं, और तू ऐसे बुद्धुओं को बीन पर गीत सुना रहा है !

ठाकुर साहब, भला इस व्यंग्य को क्यों समझ पाते ! वे तो 'वाह-वाह, वाह-वाह, क्या बात है ! ये हमारे राजकवि हैं,' कहकर जोश में खड़े हो गये और लिपट गये उस व्यंग्य करने वाले कवि से !

परंतु गायक के वाद्य का तार ठाकुर साहब के पैर से दबकर टूट चुका था। उस कलावंत ने ठाकुर साहब से क्षमा मांगी और विदा ली।

—महीपाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ३५ का शेषांश)

दिखायी दे रही है मुझे ।'

'लेकिन, नाथ, आपने ही तो वापस लौटने पर एक संशोधन किया था, यह कहते हुए कि वह संशोधन आपको तभी सूझा था ।'

'क्या कह रही हो, प्रिये ? क्या तुम कोई सपना देख रही हो ? न ऐसा कोई संशोधन मुझे सूझा था, और न मैंने कोई संशोधन किया,' चकित जयदेव ने अपनी पत्नी से कहा ।

पद्मा ने अपने पति को स्मरण दिलाया कि उसके सामने जब उसने वह संशोधन किया था, तो उनके हाथ पर लगे तेल के निशान पांडुलिपि पर भी लग गये थे और तब भी अंतिम पृष्ठ पर मौजूद थे ।

जयदेव ने जब अंतिम पृष्ठ पर दुबारा नजर डाली, तो उनकी आंखों से प्रेमाश्रु बहने लगे । उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, मेरा रूप धारण करके स्वयं भगवान् यह संशोधन करने आये थे, प्रिये ! अहो मैं कितना भाग्यशाली हूं कि मेरी भूल को ठीक करने के लिए स्वयं भक्तवत्सल भगवान मेरे घर पधारे । और मुझसे अधिक भाग्यशाली तुम हो पद्मा कि तुमने उनके दर्शन किये ।' कहकर, आनंद और भगवत्-प्रेम से विभोर हुए जयदेव नृत्य करने लगे ।

यह पंक्ति 'गीत गोविंद' में 'वदसि यदि किंचिदपि' इन शब्दों से आरंभ होती है ।

०००

पुरी का तत्कालीन राजा स्वयं एक कवि होने के अलावा कृष्ण का परम भक्त भी था । जब उसने देखा कि उसकी प्रजा के लोग 'गीत गोविंद' का ही पाठ करते हैं, और उसकी कविताओं की ओर ध्यान नहीं देते, तो वह अप्रसन्न हो गया । जब उसने लोगों से पूछा कि वे उसकी कविताओं की उपेक्षा क्यों करते हैं, तो लोगों ने कहा, दोनों रचनाओं में से कौन-सी श्रेष्ठ है, इसका निर्णय स्वयं भगवान् पर ही छोड़ दिया जाये तो बेहतर होगा ।'

दोनों रचनाएं उस रात को भगवान् की मूर्ति के आगे रख दी गयीं । अगले दिन सुबह, लोगों ने देखा, जयदेव की रचना पर लिखा है, 'हम इस रचना से प्रसन्न हैं ।' राजा की रचना पर लिखा था, 'तुम्हारी पहली तेरह कविताएं हमें पसंद हैं, किंतु शेष इसलिए मन को नहीं छूतीं कि तुमने अहं के वशीभूत होकर उन्हें लिखा था ।'

एक बार डाकुओं ने जयदेव के शरीर के कुछ अंग काट डाले थे, पर भगवान् ने अपने प्रिय भक्त के इन कटे अंगों को फिर जोड़ दिया । उनकी प्रिय पत्नी के देहावसान के बाद, उन पर कृपा करके, भगवान् ने पद्मावती को पुनर्जीवित भी कर दिया था ।

काशी में 'गीत गोविंद' को गाते-गाते जयदेव ने अपना पार्थिव शरीर त्यागा ।

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ४७ का शेषांश)

घड़ियों में वह एक साक्षात् और एक क्रूर सत्य बनकर हमारे सामने खड़ी हो गयी है। आज के उपन्यास को इस 'मृत्यु' का सामना करना है और वह यह किसी सरलीकृत 'शार्ट कट' से नहीं कर सकता, न भारत की पुरानी कथ्यात्मक शैलियों में जाकर उसे चित्रित किया जा सकता है, जो आज मनुष्य का संकट है, न ही उसे उन्नीसवीं शती में रचित उपन्यास के चौखटों में ही बंद किया जा सकता है, व्यक्ति जहां सर्वोपरि था, 'उसका सामना केवल मनुष्य के आत्मन्-व्यक्तित्व, आत्यन्तिक सेल्फ को पुनर्भाषित करने की दुर्गम और बीहड़ प्रक्रिया में ही संभव हो सकेगा।' दूसरे शब्दों में हम जिस नये उपन्यास की परिकल्पना करते हैं, वह पश्चिम के यथार्थवादी विक्टोरियन उपन्यास से तो भिन्न होगा ही, किंतु वह परंपरागत अर्थों में 'भारतीय मन' का उपन्यास ही होगा, यह कहना असंभव है, जब कि हम इस मन को ही संस्कारगत संस्कृति के संकट के संदर्भ में पुनर्परीक्षित नहीं करते। ज़ाहिर है, उपन्यास की यह परिकल्पना व्यक्ति के खण्डित 'इगो' का अतिक्रमण करके, उसे वैसी 'संपूर्ण' स्थिति में देखने से शुरू होगी, जिसमें 'वह समानता और सहानुभूति' के संवेदात्मक स्तर पर पुनः अपना रिश्ता आसपास फैली सृष्टि से जोड़ सके—स्वयं उसके बीच जीवित रहने की भूली हुई मर्यादा को याद रख सके, इस याद को एक ऐसी 'कलात्मक स्पेस' में अभिव्यक्त कर सके, जो स्मृति भी है, इतिहास भी, जादू भी, माया और यथार्थ की लीला भी, पुरुष और प्रकृति के बीच एक नये पुराण की रचना जो हमें एक तरफ बार-बार अपनी पुरानी कथ्यात्मक विधाओं की याद दिलायेगी। महाकाव्य लोककथाएं, परी कथा, इंद्रजाल, तो दूसरी तरफ उसमें हमें पश्चिमी उपन्यास के वे सर्वोत्तम, दुर्लभ क्षण भी याद आते रहेंगे, जब व्यक्ति ने अपने अंतर्मन की अंधेरी गुहा से बाहर 'सपूर्ण' से साक्षात्कार किया था। वह स्वप्न जो 'ब्रदर्स कारामोजोव' में 'दिमित्री' ने मानसिक यंत्रणा के असहनीय क्षण में देखा था, 'दोस्तो, मैंने एक स्वप्न देखा है,' एक वाक्य जो एक कौंध में मनुष्य का समूचा, पीड़ित इतिहास आलोकित कर जाता है या फिर उस सीधे-सादे किसान की आत्मा में जिसके भीतर तोल्सतोय और प्रेमचंद के संपूर्ण सत्य से साक्षात् किया था या भीतर का वह अंधेरा सूरज, जिसकी रोशनी में लारेंस ने बीसवीं शती की मशीनी सभ्यता की समस्त छद्म बौद्धिक अवधारणाओं को भेद कर समूचे ब्रह्मांड से खून का रिश्ता जोड़ा था।

पश्चिमी उपन्यास में संपूर्णता की ये झलकें बहुत दुर्लभ हैं, किन्तु उनसे साक्षात् किये बिना न तो हम व्यक्ति की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीड़ा समझ पायेंगे, न उसका अतिक्रमण करके नये उपन्यास की राह खोज पायेंगे।

उपन्यास पश्चिम की विधा अवश्य हो, व्यक्ति की पीड़ा—एक व्यक्ति की हैसियत से—हर जगह एक-जैसी है। यूरोपीय उपन्यास के चौखटों से मुक्त होकर हम जिस उपन्यास के पुनर्जन्म की परिकल्पना करते हैं, उसमें मनुष्य की देह पर उन सब घावों के निशान होंगे, जिसे व्यक्ति ने अपने पूर्व जन्म में झेला है, किंतु अब उनकी पीड़ा किसी अन्य के द्वारा या विरुद्ध न हो सृष्टि के उस समूचे अस्तित्व से जुड़ी होगी, 'जिसके सुख में सुखी और जिसकी यातना में दुःखी' हुआ जाता है।

यहां देखना, होन, महसूस करना अलग-अलग खण्डों में विभाजित नहीं है, जो हमें फ्रांस के 'नये उपन्यास' में मिलता है, जिसकी व्याख्या राब्ब ग्रिये ने की है।

राब्ब ग्रिय के लिए नया उपन्यासकार वह है, जो चीजों को सिर्फ देखता भर है, एक तटस्थ दर्शक की तरह, जिसमें वह अपनी भावनाओं द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं करता।

उसके विपरीत जिस उपन्यास की परिकल्पना हम कर रहे हैं, वहां 'हस्तक्षेप' का प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि वहां लेखक देखने वाला 'सब्जेक्ट' नहीं है और दुनिया दिखायी देने वाली 'आब्जेक्ट' नहीं है, बल्कि दोनों एक दूसरे के बीच में हैं; मनुष्य दुनिया के बीच में है, प्राणियों में एक प्राणी, जीवों में एक जीव, वह दूसरों को देखता है, तो दूसरे भी उसे देखते हैं, कुछ उसी भाव में जैसे कभी पाल क्ले ने कहा था—

'जब कभी मैं जंगल में घूमता हूं तो मुझे लगता है कि जिस जगह मैं पेड़ों को देख रहा हूं, उस जगह पेड़ मुझे देख रहे हैं।'

यह बिल्कुल दूसरा संसार है, जहां कोई केंद्र नहीं है, क्योंकि सब केंद्र में हैं, एक चमत्कारी, जादुई दुनिया, जिसका 'जादू' सिर्फ इस छोटे से सत्य में है कि जीवन की प्राणवत्ता को 'सेक्यूलर' और धार्मिक में विभाजित नहीं किया जा सकता; जो है, वह पवित्र है।

दोस्तोएवस्की ने कहा था कि अगर ईश्वर नहीं है, तो मनुष्य सब कुछ कर सकता है; आज हम कह सकते हैं कि अगर व्यक्ति नहीं है, तो मनुष्य सब कुछ हो सकता है, पेड़ और पत्थर और धूप और जंतुओं के जैविक उज्ज्वल संसार में एक जीव—सार्वभौमिक पवित्रता के बीच पवित्रता का प्राणपुंज उपन्यास, 'ए ब्राइट बुक आव् लाइफ'!

हां, क्यों नहीं, किंतु भारतीय या यूरोपीय किताब नहीं—बल्कि जीवन की एक-संपूर्ण किताब।

(मध्य प्रदेश कला परिषद् द्वारा प्रकाशित 'पूर्वग्रह' के सौजन्य से)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आखिर क्यों लिखा जाये ?

□

पॉल रॉबिन्सन

स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में बौद्धिक इतिहास के प्राध्यापक तथा मनोविज्ञान संबंधी अनेक चर्चित पुस्तकों के रचयिता पॉल रॉबिन्सन का तर्क है कि 'पुस्तक लिखने की अंतःप्रेरणा पागलपन है।' यह जानते हुए भी कि पुस्तक लिखने से पैसा नहीं कमाया जाता, और उसे सावधानीपूर्वक पढ़ने वाले पाठक इने-गिने ही होते हैं, और अधिकांश पुस्तकें गोदामों में सड़ती नज़र आती हैं, फिर भी पुस्तकें, लिखी जा रही हैं, क्योंकि उनके लिखने वालों को पुस्तकें लिखने से एक आत्मिक संतोष मिलता है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आख़िर लिखा ही क्यों जाये ?

'क्यों लिखा जाये ?' इस विषय पर लिखना अपने आप में एक विरोधाभास है। मेरी प्रतीति है कि मुझे यह प्रश्न काफ़ी दिलचस्प लगता है। और मुझे आशा है कि मेरी तरह यह प्रश्न उन्हें भी दिलचस्प लगेगा, जो लिखने का विचार कर रहे हैं, और उन्हें भी जो स्वयं तो नहीं लिखते, मगर जिन्हें लिखने की प्रक्रिया बड़ी रहस्यमय लगती है। यहां यह कहना भी ज़रूरी है कि मैं गैर-कथा-साहित्य की ही बात कर रहा हूं, यद्यपि जो कुछ मैं कहना चाहता हूं, उसका थोड़ा बहुत संबंध कथा-साहित्य के लेखन से भी है।

अधिकांश लेखकों के लिए, लेखन एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। साधारणतया, एक पुस्तक को पूरा करने में वर्षों लग जाते हैं। प्रकाशक को अपनी पुस्तक की पांडुलिपि भेजने से पूर्व, पुस्तक लेखक के हज़ारों घंटे चाट जाती है। जब हम लेखन में व्यय हुए श्रम और समय की तुलना उस ज्ञान, नैतिक उन्नति और मनोरंजन से करते हैं, जो पाठक उस लेखन से प्राप्त करते हैं, तो स्वयं यह तुलना इस प्रश्न को जन्म देती है : 'क्यों लिखा जाये ?' मैं इस समय औसत लेखक के बारे में सोच रहा हूं, शेक्सपीयर और डिकेंस जैसे लेखकों के बारे में नहीं।

मूल प्रश्न, 'क्यों लिखा जाये ?' को हम दो उप-प्रश्नों में विभाजित कर सकते हैं : 'लिखने का उद्देश्य क्या है ?' और 'किसके लिए लिखा जाये ?' इन दोनों उप-प्रश्नों के जितने भी संभावित उत्तर हैं, वे सभी नाकाफ़ी लगते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहा जाता है कि लेखन धन कमाने का एक साधन है। कथा-साहित्य और पाठ्य-पुस्तकों के कुछ लेखक भले ही अपने लेखन से थोड़ा-बहुत कमा लेते हों, अधिकांश लेखकों की यह आशा तो आशा ही बनी रहती है। डाक्टर, वकील, व्यापारी, यहां तक कि स्कूल का शिक्षक भी अपने पेशे में जितना कमा लेता है, उतना पेशेवर लेखक कभी नहीं कमा पाता। लेखन में लेखक की जितनी बुद्धि लगती है, उसके अनुपात में उसे उतनी आय नहीं होती। सारांश में, केवल मूर्ख ही लेखन को धन कमाने का साधन मान सकते हैं।

यह भी कहा जाता है कि लेखन प्रतिष्ठा अर्जित करने का एक साधन है। लेखकीय प्रतिष्ठा का सीधा संबंध पाठकों से है, और पाठकों के संबंध में अधिकांश पाठक भ्रम में ही रहते हैं।

लेखक कौन है ?

कहा जाता है कि लेखन सच कहने के लिए किया जाता है। यह उद्देश्य वास्तव में आकर्षक और अलिप्त-सा दिखायी देता है, मगर बीसवीं सदी में इस उद्देश्य को भी काफी आघात लगा है। ध्यान से देखा जाये, तो इस सदी के लेखक सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए इतना नहीं लिखते जितना भूलों को दूर करने के लिए लिखते हैं। सत्य की खोज लेखन द्वारा संभव है या नहीं, मैं नहीं जानता, किंतु आज का लेखन वस्तुतः इस खोज में नहीं लगा है।

कहा जाता है कि लेखन पाठकों के लिए किया जाता है। किंतु लेखकीय प्रतिबद्धता की दृष्टि से देखें तो वास्तविक पाठकगण कल्पित पाठकगण से कम महत्त्वपूर्ण हैं। सिर्फ़ इतना ही जानना काफ़ी नहीं है कि कौन पढ़ता है ? यह जानना भी आवश्यक है कि पाठक कैसे और किस भावना से पढ़ते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर की ईमानदारी से तलाश की जाये, तो मालूम पड़ेगा कि बहुत से लेखकों के मन में अपने पाठकों के प्रति भ्रांत धारणा है। फिर कौन पढ़ता है उन्हें ?

मित्र और परिवार के सदस्य तो पढ़ते हैं, उत्तर में कहा जायेगा। लेकिन मेरा खयाल है कि अधिकांश लेखक मेरी इस मान्यता से सहमत होंगे कि जो कुछ मैं लिखता हूं, वह मेरे मित्रों और परिवार के सदस्यों के पल्ले नहीं पड़ता।

मैंने अपनी अंतिम पुस्तक अपनी मां को समर्पित की थी, जो एक पढ़ी-लिखी और बुद्धिमती महिला हैं। वे प्रति सप्ताह पत्र लिखकर मुझे बताती रहीं कि पुस्तक के बहुत से शब्द उनकी समझ में नहीं आते। जहां तक मुझे याद है, उन्होंने पृष्ठ ७० के आसपास पुस्तक को आगे पढ़ना बंद कर दिया था।

आलोचक तो, कम से कम, मेरी पुस्तक को पढ़ेंगे ही, प्रत्येक लेखक मन ही मन ऐसा मानता है। हां, आलोचक अवश्य पढ़ते हैं, मगर सिर्फ़ पुस्तक की आलोचना लिखने के उद्देश्य से। और आलोचकों का दृष्टिकोण पुस्तक से कुछ ग्रहण करने का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं होता, सिर्फ़ अपने दृष्टिकोण को बड़ी खूबी से प्रस्तुत करने का होता है। पुस्तक का अनुचित लाभ उठाने का होता है।

लेखक को एक संतोष यह रहता है कि उस विषय के शिक्षार्थी तो पुस्तक पढ़ेंगे ही। हां, पढ़ेंगे, यद्यपि ऐसे शिक्षार्थियों की संख्या बहुत कम होती है। और उनका दृष्टिकोण भी आलोचक जैसा ही होता है। असल में, आज एक ही विषय पर इतनी अधिक पुस्तकें लिखी जा रही हैं कि उन्हें पढ़ने वाले किसी भी पुस्तक को बारीकी से नहीं पढ़ते, सिर्फ़ उससे गुज़र भर जाते हैं। हम पाठक, अपने मित्रों की पुस्तकों को भी ऐसे पढ़ते हैं, मानो कोई 'बाधा-दौड़' दौड़ रहे हों। मुझे, एक लेखक के रूप में, यह सरासर पागलपन ही लगता है कि किसी पुस्तक को लिखने में इतनी मेहनत सिर्फ़ इसलिए की जाये कि उसके छप जाने पर थोड़ी-बहुत सीमित बौद्धिक हलचल होगी। इसलिए मेरी तो तर्कसंगत मान्यता यह है कि अधिकांश पुस्तकें लिखने के लिए लिखी जाती हैं, पढ़ने के लिए नहीं।

अपवाद भी मौजूद हैं

लेकिन कहने की आवश्यकता नहीं कि इसके अपवाद भी मौजूद हैं। अमर साहित्य की बात तो छोड़िये, कुछ 'साधारण' लेखकों की पुस्तकें भी इतने अच्छे ढंग से लिखी जाती हैं कि उन्हें पाठक उसी भावना से पढ़ने को बाध्य हो जाता है, जिसमें वे लिखी गयी थीं। पर, जैसा कि मैं दुबारा कहना चाहूंगा, ऐसी पुस्तकें अपवाद हैं।

मैं जो कुछ कह रहा हूं, उसे आपको अपने साथ किसी पुस्तकालय में ले जाकर प्रमाणित भी कर सकता हूं। पुस्तकालय की शेल्फ से एक पुस्तक निकालिये। अधिक संभावना इस बात की है कि आपके हाथ में एक ऐसी विद्वतापूर्ण पुस्तक होगी, जिसे वर्षों से किसी ने छुआ तक नहीं है। ऐसे क्षणों में ही मुझे लगता है कि 'पुस्तक लिखने की अंतः प्रेरणा पागलपन है।'

स्वांतः सुखाय

फिर भी हम लिखते रहते हैं और कोई हमें पागल नहीं कहता। इस रहस्य का एक ही कारण मेरी समझ में आता है, और वह यह कि हम मुख्यतः स्वांतः सुखाय ही लिखते हैं। कथा-साहित्य के बारे में तो यह बात और भी अधिक सच है, कारण ऐसी सामान्य धारणा है कि कवि, कथा-लेखक, उपन्यासकार और नाटककार अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रायः स्वयं को ही अभिव्यक्त करने और समझने-समझाने का प्रयास करते हैं। मगर, मेरा विश्वास है कि यह बात, कमोबेश गंभीर साहित्य पर भी लागू होती है। प्रायः ऐसा साहित्य बोझिल और दुर्बोध होता है, क्योंकि उसके लेखकों को खुद पता नहीं होता कि वे क्यों और किसके लिए लिख रहे हैं? उन्हें चेतना के स्तर पर यह बोध हो जाये, तो उनके लेखन में स्पष्टता और ओज आ जाये।

इस कथन का कि हम अपने लिए ही-स्वांतः सुखाय—ही लिखते हैं, सर्वश्रेष्ठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमाण यह है कि अपनी रचनाओं के हम ही सर्वश्रेष्ठ पाठक होते हैं। हमारी रचना को जितने प्रेम और ध्यान से हम पढ़ते हैं, कोई और नहीं पढ़ता।

यदि आज शेक्सपीयर पुनर्जीवित हो जाये, और अपनी रचनाओं की आलोचनाएं पढ़े, तो उसे बड़ा आश्चर्य होगा। आश्चर्य इसलिए होगा कि जो 'खूबियां' आलोचकों को उसके नाटकों में नज़र आयी थीं, वे उसके लेखे थी ही नहीं, और जो खूबियां सचमुच उसके नाटकों में थीं, वे आलोचकों को बिलकुल नज़र नहीं आयीं।

और लेखक चूंकि भली भांति यह जानता है कि उससे लेखन में कहां-कहां चूक हुई है, इसलिए वह अपनी रचना का सर्वोत्तम आलोचक भी हो जाता है। इस परिप्रेक्ष्य से देखें तो लेखन सिर्फ़ आत्म-स्पष्टीकरण का एक साधन है। लेखन के माध्यम से हम अपने उन विचारों और भावों को, जो अन्यथा, गड्डमड्ड और अव्यक्त ही रहते, सुव्यवस्थित अभिव्यक्ति प्रदान करने में सफल हो जाते हैं।

सबसे अधिक उल्लेखनीय बात तो यह है कि लेखक को अपनी रचना को पढ़ने में जितना आनंद आता है, उतना किसी पाठक को नहीं आ सकता। स्वर्गीय जॉन वेसरमॅन जब अपने विनोदी लेख पढ़ते थे, तो ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगते थे, और वहां मौजूद अपने साथियों को उन शरारत-पूर्ण मोड़ों के बारे में बताना नहीं भूलते थे, जो उन्होंने, जगह-जगह पर, अपने वाक्यों को प्रदान किये थे। संक्षेप में, उन्होंने बड़ी समझदारी के साथ उस आत्मासक्तिपूर्ण तर्क को अपना लिया था, जो लेखकों की पागलपन से रक्षा करता है।

सिर्फ यह स्वीकारोक्ति कि मैं अपने लिए ही लिखता हूं, एक लेखक के रूप में धन, प्रतिष्ठा और उन्नति के इच्छा-चक्र में कसे मुझको इस आत्मासक्ति से मुक्ति दिला सकती है। विडंबना यह है कि छोटे-छोटे मिथ्याभिमानों से रहित स्व लेखक के लिए निस्वार्थ संदर्भ-बिंदु सिद्ध हो सकता है। वह मानवीयता का एक उदाहरण बन जाता है।

मैं यह जानता हूं कि मैंने लेखन के बारे में ये विचार व्यक्त करके अपने को अंधेरी जलधारा में छोड़ दिया है, किंतु मेरी प्रतीति है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कहना एकदम सही होगा कि यह महसूस करने वाला लेखक कि वह अपने लिए लिख रहा है, यह भी महसूस करता है कि वह सारी मानवता के लिए लिख रहा है। यह सवाल उसके लिए दीगर है कि वह पढ़ा जायेगा या नहीं? जब कोई अपने चिंतन की शोध और उसका स्पष्टीकरण करता है, तो उसे यह अनुभूति भी रहती है कि इस प्रकार वह सारी मानव-जाति के मानस को भी स्पष्ट और निर्मल कर रहा है।

कृतज्ञता का एक रूप

हम क्यों लिखते हैं? इसका अंतिम कारण मेरी समझ से यह भी है कि स्वांतः सुखाय

(शेषांश पृष्ठ १४४ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरे देश का नाम जर्मनी है

घटना सन १९७१ की है। मैं सिरपुर काग़ज़ नगर से कलकत्ता जा रहा था। नागपुर से कलकत्ता तक के लिए बम्बई-हावड़ा मेल में आरक्षण की व्यवस्था पहले ही हो चुकी थी। चूंकि नागपुर में भी मुझे कुछ आवश्यक कार्य करना था मैं एक दिन पहले ही काग़ज़ नगर से चलकर नागपुर पहुंच गया।

काम निपटा लेने के बाद मेरे पास दूसरे दिन की गाड़ी की प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त दूसरा कुछ काम नहीं था। मैंने फिल्म देखकर मन बहलाने की योजना बनायी। फिल्म देखने के पश्चात् सिनेमा-घर से निकलकर पास ही के होटल में भोजन करने पहुंचा। जब बिल देने का मौका आया तो पाया कि मेरा मनीपर्स गायब था। मैं घबरा गया। पर्स में लगभग सात हज़ार रुपये थे। टिकट था। मुझे अपनी मूर्खता पर बहुत क्रोध आया, पर अब उपाय क्या था! इतने में होटल ही में चाय पी रहे एक विदेशी सज्जन ने मुझसे मेरी घबराहट का कारण पूछा। मैंने अपनी समस्या बतायी। विदेशी सज्जन ने स्वयं मेरा बिल चुकाने का प्रस्ताव रखा, किंतु तब तक काउंटर पर बैठे होटल के कैशियर ने भी मेरी बात सुन ली थी। उन्होंने बड़े ही आदरपूर्ण स्वर में कहा कि ऐसी स्थिति में वे मुझसे बिल का पैसा नहीं लेंगे। होटल-व्यवसायी की यह उदारता मुझे बहुत ही भली लगी, किंतु तब मेरे आश्चर्य और हर्ष का ठिकाना न रहा, जब मैंने देखा कि विदेशी सज्जन ने अपनी जेब से मेरा पर्स निकालकर मुझे देते हुए कहा—'नौजवान, अपनी चीज़ों का ध्यान रखा करो। यह तो तुम्हारा पर्स और भविष्य में सदा सावधान रहने का वादा करो।'

वास्तव में यह विदेशी सज्जन ठीक मेरे पीछे की पंक्ति में बैठकर फिल्म देख रहे थे। पर्स मेरी हिप-पॉकेट में था, जिसे गिरते हुए उन्होंने देख लिया था और उठाकर अपने पास रख लिया था। फिल्म छूटने के बाद वे मेरा पीछा करते हुए होटल तक आये, और तब तक प्रतीक्षा करते रहे जब तक कि मुझे अपनी असावधानी का खयाल नहीं आया।

मैं उक्त सज्जन की ईमानदारी से अभिभूत हो गया। मैं उन्हें बार-बार धन्यवाद देने लगा और जब मैंने उनका नाम पूछा, तो उन्होंने मात्र इतना ही कहा—'मेरे नाम से क्या करोगे? इतना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जान लेना काफी है कि मेरे देश का नाम जर्मनी है।'

अपनी ईमानदारी के साथ ही उन्होंने अपनी देशभक्ति का परिचय भी दे दिया था। मैं उन्हें कभी नहीं भूल सकता !

—आलोक भट्टाचार्य,
डोम्बिवली (पूर्व) ४२१२०४

ooo

सांप की लपेट में

उन दिनों मैं एक इंटरमीडिएट कालेज में अध्यापक था। मुझे एक छात्रावास का संरक्षक भी बना दिया गया था। मेरा छात्रावास भोजनालय से काफी दूर पड़ता था। बीच में नीबू और अमरूद के बगीचे मार्ग के दोनों ओर पड़ते थे। उनमें काफी झाड़-झंखाड़ भी थे। बरसात के दिनों में कभी-कभी सांप भी दिखाई पड़ जाते थे।

उस दिन रात अंधेरी थी। दुर्भाग्य से भोजनालय जाते समय मैं टार्च साथ ले जाना भूल गया था। मेरे छात्रावास के सभी छात्र जब भोजन करके छात्रावास चले गये तब मैंने भोजन किया और काफी देर बाद छात्रावास की ओर चला। रात अंधेरी थी फिर भी रास्ता जाना-बूझा होने के कारण मैं निर्भीक होकर छात्रावास के मार्ग पर जा रहा था।

कुछ दूर जाने पर ऐसा जान पड़ा कि कोई चीज मेरे पांव में लिपट गयी है। जब मैंने रुककर देखा तो पता चला कि मैं एक सांप की लपेट में आ गया हूं। पहले तो भय के मारे मेरा सारा शरीर कांप उठा। सोचा कि पांव झटक दूं परंतु तुरंत ध्यान आया कि पांव झटकारने से सांप की लपेट से छूटना कठिन है और सांप शायद क्रुद्ध होकर डस ले !

मैंने सुन रखा था कि सर्प अनायास किसी को काटते नहीं। जान पड़ता था कि उसकी दुम मेरे पांव तले आ गयी थी। अतः उसने मुझे लपेट लिया था। अब मैं किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वहां पर स्थिर खड़ा था।

सोचा कि सांप यदि डस भी लेगा तो अब कोई वश नहीं है। अतः मैं यह प्रतीक्षा करता हुआ सांस रोके खड़ा था। मैंने हिलने का प्रयास नहीं किया। घबराकर भागने या सांप को हटाने का प्रयास करने पर सांप अवश्य ही डस लेता, अतः निश्चल खड़े होकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने में ही कल्याण समझा।

थोड़ी ही देर में मुझे सांप की लपेट ढीली जान पड़ी। सांप ने जब अनुभव किया कि मैं उसे कोई हानि नहीं पहुंचाऊंगा तब उसने अपनी लपेट छोड़ दी और धीरे-धीरे झाड़ी की ओर सरसर करता हुआ चला गया।

आज भी उस घटना की स्मृति आने पर मुझे रोमांच हो आता है और अपने धैर्य पर आश्चर्य होता है।

—रमापति शुक्ल, वाराणसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक चौंका देने वाला और विचारोत्तेजक तथ्य :

बम्बई के आधे से अधिक विद्यार्थी नशा करते हैं

□ हरि

एक पत्रकार-दल द्वारा किये गये हाल के सर्वेक्षण से पता चला है कि बंबई नगर के हाई स्कूलों और कालेजों के आधे से अधिक विद्यार्थी कोई न कोई नशा करते हैं। और नशे की जकड़ में फंसे ये विद्यार्थी कठिनाई से ही उभर पाते हैं। नशा कैसा भी हो, उसकी लत उनकी गत बनाकर ही रहती है।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा कराये गये एक सर्वेक्षण में प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, देश के दस प्रतिशत छात्र गांजा पीते हैं।

गांजा, चिकित्सा शास्त्रियों की दृष्टि में एक विनाशकारा नशा है। इसके सेवन से बुद्धि का नाश होता है, औचित्य या अनौचित्य के ज्ञान को सर्वथा नष्ट कर देता है।

एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार पिछले ५ वर्षों के दौरान, राजस्थान, मध्य-प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, और उत्तर प्रदेश में अफ़ीम की खपत में ५ गुनी वृद्धि हुई है। अफ़ीम के नशे की शुरूआत पहले-पहले एक शौक़ के रूप में होती है, लेकिन फिर उसका अनुरक्त, धीरे-धीरे, उसका अभ्यस्त होता जाता है। आरंभ में शौक़ के तौर पर अफ़ीम का सेवन करने वाला अपने शरीर और मस्तिष्क में एक प्रकार की उत्तेजना का अनुभव करता है, और पहले की अपेक्षा अधिक उत्साह से काम करने लगता है। लेकिन, यह उत्तेजना धीरे-धीरे कम होती जाती है, और ऐसी स्थिति भी आ जाती है, जब अफ़ीम नशा देना ही बंद कर देती है।

बंबई में एक पत्रकार-दल ने पिछले दिनों जो एक सर्वेक्षण किया था, उसके अनुसार बंबई के आधे से अधिक विद्यार्थी नशीली दवाओं और मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं।

बंबई की शुक्लाजी स्ट्रीट वेश्याओं का मुहल्ला तो है ही, वहां नशीली दवाओं और मादक द्रव्यों के अनेक अड्डे भी हैं जहां से बंबई के विद्यार्थी मारिजुआना, अफ़ीम, गांजा, चरस, भांग और एल. एस. डी. खरीदते हैं। महालक्ष्मी मंदिर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माहिम के दरगाह के अलावा ताजमहल होटल के आसपास ऐसे अनेक अड्डे हैं, जो बंबई के विद्यार्थियों को नशीली दवाएं और मादक द्रव्य सप्लाई करते हैं।

इनके अतिरिक्त, शहर में अनेक भागों में दर्जनों अन्य अड्डे हैं, जहां से बंबई के स्कूलों और कॉलेज के छात्र आसानी से अपनी मनचाही नशीली दवाओं को खरीद सकते हैं।

कहानी: एक अंधेरी जिंदगी की

सर्वेक्षण से अनेक दिलचस्प तथ्यों का पता चला है। पहला—हर विद्यार्थी आरंभ में मादक द्रव्य और नशीली दवाओं का सेवन अपने साथियों की देखा देखी, या उत्तेजना-प्राप्ति के लिए करता है। कुछ ऐसे विद्यार्थी भी हैं, जो इनका सेवन पुंसत्व के लिए करते हैं।

दूसरा तथ्य—मादक द्रव्य सेवनकर्त्ता विद्यार्थी धीरे-धीरे मादक द्रव्यों और नशीली दवाओं का बंदी हो जाता है। वह आत्मकेंद्रित हो जाता है, और उसे दूसरों का कोई खयाल नहीं रहता। उसकी दृष्टि कमज़ोर होने लगती है, तथा खून की कमी की वजह से वह कमज़ोर होने लगता है।

तीसरा तथ्य—अधिकांश मादक द्रव्य सेवनकर्त्ता अपने पिताओं से घृणा करने लगते हैं, और अपनी माताओं को 'देवी' मानने लगते हैं। अपने भाई-बहनों और परिवार वालों से उन्हें कोई सरोकार नहीं रहता।

सर्वेक्षण करने वालों की भेंट एक ऐसे विद्यार्थी से हुई, जो नशीली दवाओं का सेवन आरंभ करने से पूर्व, एक मेधावी छात्र और होनहार फुटबाल-खिलाड़ी था। उसने बताया कि नशीली दवाओं के सेवन के बाद से उसे जिन परिस्थितियों में से गुज़रना पड़ा, उनकी याद उसे कंपा देती है।

अब जब कि वह इन दवाओं का सेवन समाप्त कर, सामान्य बन चुका है, उसे ये स्मृतियां बुरी तरह झकझोर कर रख देती हैं।

'मैं सारी आशाएं और आकांक्षाएं खो चुका था, और मुझे लगता था कि आत्म-हत्या करके ही मुझे अपने कष्टों से मुक्ति मिल सकती है। मगर, मेरे अंदर आत्म-हत्या करने का साहस न था, क्योंकि मैं कायर और पलायनवादी बन चुका था। मैं अंधकूप में पूरी गहराई तक डूब चुका था। नशीली दवाओं के कारण मुझे कई बार अस्पतालों, हवालातों में रहना पड़ा। लोग मुझे पागल समझने लगे थे, और कई बार लोगों ने ख्वामख्वाह मुझे अपमानित किया, पीटा, और मेरा सारा सामान चोरी कर लिया, लेकिन न मैं अपना बचाव कर सका, और न चोरों से अपने सामान की रक्षा कर सका।

'नशीली दवाओं को खरीदने के लिए मैंने न जाने कितनी बार घर में चोरी की, और न जाने कितनी बार घर की कीमती वस्तुओं को बेचा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा. रमाकान्त केनी

डा. केनी से अतींद्रिय-चिकित्सा के संबंध में पूछताछ करने के लिए बहुत से पत्र नवनीत के कार्यालय में आते रहते हैं। जिज्ञासु पाठकों से निवेदन है कि वे डा. केनी को सीधे पत्र लिखकर उत्तर प्राप्त करें। पत्रों को उत्तर के लिए चुनना उनकी इच्छा पर निर्भर है। पत्र यदि अंग्रेज़ी में होंगे, तो उन्हें उत्तर देने में विशेष सुविधा होगी। पता निम्न प्रकार है :

डा. रमाकान्त केनी

बम्बई अस्पताल, बम्बई–४०००२०

'मैंने कई बार नशीली दवाओं के अभिशाप के दुष्चक्र से मुक्त होने का प्रयास किया, मगर पाया कि इस दुष्चक्र से मुक्ति बड़ी दुष्कर है। मैंने इस संबंध में एक नामी मनश्चिकित्सक से भी भेंट की। उन्होंने मेरी कहानी सुनकर मुझे अस्पताल में भर्ती होने की सलाह दी।

दुष्चक्र से मुक्ति

'अस्पताल में भर्ती होने के लिए जब मैं प्रतीक्षा कर रहा था, तब मैंने अपने समान अन्य रोगियों को देखा, और दहल कर रह गया। उनमें से कई दवाओं के लिए पागलों की तरह चिल्ला रहे थे। कई को अस्पताल के कर्मचारियों ने बांध रखा था। विकृतियों की इन विभिन्न स्थितियों को देखकर मैंने निर्णय किया कि मैं अपने को नशाखोरी से मुक्त करके ही रहूंगा।

मुझे समझ आ गयी थी कि अपनी दुरवस्था के लिए मैं ही जवाबदार था, और यह मुझ पर ही निर्भर था कि मैं इससे बाहर निकलूं। मैंने अपने डॉक्टरों को पूरा सहयोग दिया, और जब मैं अस्पताल से निकला, तो पूरी तरह स्वस्थ था, और डॉक्टर मेरी, प्रगति से प्रसन्न और संतुष्ट थे।'

नशे की लत से हमारे छात्रों को छुटकारा दिलाने के लिए मादक द्रव्यों के सेवन के गंभीर परिणामों से उन्हें अवगत कराने के लिए व्यापक प्रचार तो आवश्यक है ही, साथ ही यह भी आवश्यक है कि मादक द्रव्यों के अवैध धंधे में लिप्त लोगों से, भले ही वे कितने भी समृद्ध और प्रभावशाली क्यों न हों, निपटने के लिए कठोरतम दंड की व्यवस्था की जाये। जब तक इन लोगों से अधिकतम कठोरता नहीं बरती जायेगी, तब तक वे उससे विरत नहीं हो सकेंगे, और हमारे आज के विद्यार्थी एक बड़ी आपदा से मुक्ति नहीं पा सकेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दो सच्ची घटनाएं :

परमात्मा की असीम अनुकम्पा

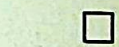

घटना १९५० की है। मेरे बड़े लड़के नरेन्द्रशंकर उन दिनों इलाहाबाद में हाकिम परगना थे। जमींदारी उन्मूलन के लिए लगान का दस गुना जमा कर रहे थे। देहात में वसूली करके शाम को मोटर से डाक बंगले लौट रहे थे। यकायक अंधेरा घिर आया। यह आंधी आने का पूर्व लक्षण था। परंतु जब तक वे कुछ सोचें-समझें, बड़े वेग की आंधी आ गयी। पेड़ जड़ से उखड़-उखड़कर गिरने लगे। बीच सड़क में ही मोटर रोकनी पड़ी। आंधी का वेग इतना था कि मोटर दो पहियों पर उठ गयी। कैनवस की छत थी। उसका हुड कट गया और हवा बाहर निकल गयी। और मोटर फिर से सीधी खड़ी हो गयी थी। बड़े-बड़े पेड़ चारों तरफ आ-आकर गिर रहे थे। किन्तु, भाग्यवश या प्रभु की कृपा से मोटर पर एक डाल भी नहीं गिरी। आंधी खतम होते ही ज़ोर की बारिश व ओले गिरने शुरू हो गये। ओले छंटाक-छंटाक भर के थे। हवा के साथ ओलों की बौछार थी। नरेन्द्रशंकर कार चला रहे थे। बौछार दूसरी ओर को थी, इससे उन्हें एक भी ओला नहीं लगा। बारिश खतम होते ही घनघोर अंधेरा छा चुका था। मोटर के चारों तरफ बड़े-बड़े पेड़ टूटे पड़े थे। रास्ता दीखना मुश्किल था। वसूली के रुपये भी पास में थे। बड़ी विषम स्थिति थी।

बीच जंगल में रात गुज़ारना खतरे से खाली नहीं था। साथ में चपरासी, मुंशीजी, ड्राइवर वगैरह भी थे। किसी तरह पास के गांव से एक लालटेन मंगायी गयी। तब मोटर वहीं छोड़कर सरकारी रुपयों की थैली लेकर काफी रात बीते सभी डाक बंगले पहुंचे और सरकारी रुपया खज़ाने में जमा करा दिया गया। यह सब भगवती की कृपा ही से संभव हुआ। यदि एक पेड़ भी मोटर पर गिर जाता तो जो परिणाम होता, उसकी कल्पना से आज भी हृदय कांप उठता है।

०००

परमात्मा की अनुकंपा का विराट रूप जीवन में कभी-कभी अचानक साकार हो उठता है। घटना सन १९५६ की है। मेरे दामाद डॉ. अर्जुन प्रसाद फतेहपुर के सिविल अस्पताल में डाक्टर थे। एक दिन वे मरीज़ देखने रिक्शे पर जा रहे थे। उन्होंने देखा कि सामने से जो ट्रक आ रही है, उसकी चाल बेढंगी-सी है। वह कभी सड़क पर दायें कभी बायें मुड़ती थी। शायद ड्राइवर नशे में था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय,
भदैनी, वाराणसी।

अर्जुन प्रसाद ने रिक्शेवाले को सावधान किया कि वह रिक्शा एक ओर कर ले। रिक्शा सड़क के किनारे लगा लिया गया, फिर भी ट्रक आकर रिक्शा पर चढ़ गयी। ज़ोर के धक्के से रिक्शावाला सड़क के एक ओर और अर्जुन प्रसाद सड़क के दूसरी ओर जा गिरे। रिक्शा ट्रक में फंस गया था। इससे ट्रक ड्राइवर भाग नहीं सका और पकड़ा गया। ज़ोर के झटके से छिटककर दूर जाकर गिरने पर भी अर्जुन प्रसाद को मामूली चोट आयी थी। रिक्शा-चालक को भी थोड़ी खरोंच लगी थी। अर्जुन प्रसाद ने रिक्शा-वाले को उठाया और अस्पताल ले जाकर उसको दवा दिलाकर घर भेजा। ज़ोर से गिरने के कारण उसके बदन में कई दिन तक दर्द रहा। यह दुर्घटना बहुत भयानक हो सकती थी। परन्तु परमात्मा की कृपा से वे दोनों ही बाल-बाल बच गये।

—सुंदररानी माथुर, चंडीगढ़

□

(पृष्ठ १३७ का शेषांश)

लिखने की विवक्षा सार्वभौमिक है। कभी-कभी हम किसी के प्रति आभार-प्रदर्शन के लिए भी लिखते हैं, और अपने लेखन के माध्यम से मानवता के उस अंश के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जिसने हमें आनंद दिया था, हमें प्रेरित किया था, हमारा उत्थान किया था, और हमें आत्मगौरव प्रदान किया था।

सोलहवीं सदी में फरनांड ब्रॉडेल ने उस समय के भूमध्यसागर के आसपास के प्रदेशों के बारे में जो पुस्तक लिखी थी, उसका पहला वाक्य इस प्रकार था, 'मैंने भूमध्यसागर को पूरी उमंग और पूरे उत्साह के साथ प्रेम किया है।' वर्दी के बारे में जो पुस्तक मैं लिख रहा हूं, उसके पीछे भी यही अंतःप्रेरणा काम कर रही है, यही हेतु है, क्योंकि मैंने भी वर्दी को पूरी उमंग और पूरे उत्साह के साथ प्रेम किया है। एक लेखक उनके प्रति, जिन्हें वह प्रेम करता है, अपनी कृतज्ञता की अभिव्यक्ति न लिखनेवालों की अपेक्षा अधिक संतोषजनक ढंग से कर सकता है।

लेखन लेखक के लिए उनके साथ जिन्हें वह प्यार करता है, या जिन्होंने उसे प्यार किया, एक निजी पत्राचार भी है, जिससे उसे वही सुख मिलता है, जो अपनी प्रेमिका को प्रेम-पत्र लिखकर मिला करता है।

जार्ज ऑरवेल ने अपने निबंध 'मैं क्यों लिखता हूं?' में लिखने का कारण यह बताया है कि उन्हें भाषा से प्यार है और वह उसका कलात्मक प्रयोग करना चाहते हैं। मगर, मेरे तईं, लेखन स्व. पर और मानवता के प्रति कृतज्ञता की सुखदायक अभिव्यक्ति का एक साधन है।

□

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००७ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४०० ००४ में मुद्रित।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

100 रु. लीजिए

केवल 37.20 रु. दीजिए

यदि आप अपनी रकम को तिगुना करने का रहस्य जानना चाहते हैं तो पी एन बी आइए। इसका सबसे आसान तरीका है पी एन बी की नकदी प्रमाण पत्र योजना। आप हमें सिर्फ 37.20 रु. दीजिए, हम आपको 100.00 रु. का नकदी प्रमाण पत्र देगें जिसे आप 10 वर्ष बाद भुना सकते हैं। 100.00 रु. के गुणितों मे 3 वर्ष से 10 वर्ष की अवधि के लिए ये नकदी प्रमाण पत्र पी एन बी की सभी शाखाओं में उपलब्ध हैं।

पंजाब नैशनल बैंक

(भारत सरकार का उपक्रम)

...भरोसे का प्रतीक!

आपके लिए उपयोगी निवेश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेन्चुरीके अनुपम वस्त्र

१००% सूती कपड़ों के लिये

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवन की पत्रिका 'आरती' से समन्वित

सितम्बर : १९८२

मूल्य : रु २.७५

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग विद्यालय,
अस्सी, वाराणसी

नवनीत

हिन्दी डाइजेस्ट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेन्चुरीके अनुपम वस्त्र

१००% सूती कपड़ों के लिये

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद

किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद.

सुपर रिन से नियमित धुलाई करने पर आपके कपड़ों में ऐसा फ़र्क़ आये कि दूर से दिखे. किसी दूसरी डिटर्जेंट टिकिया या बार के मुकाबले सुपर रिन कहीं अधिक सफ़ेदी लाता है, क्योंकि सुपर रिन में अधिक सफ़ेदी की शक्ति है.

आज़माइए और सबूत पाइए:

किसी अन्य डिटर्जेंट बार से धोया हुआ

सुपर रिन से धोया हुआ

हिंदुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

सुपर रिन

अधिक सफ़ेदी की शक्ति से भरपूर.

लिंटास-RIN. 39-1911 MR

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नवनीत

संस्थापक

कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया

भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक

वीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक

गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक

रामलाल शुक्ल

संयोजक

शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक

सु. रामकृष्णन

*

आवरण-चित्र

एक अमरीकी कलाकार द्वारा चित्रित

पोस्टर-पेंटिंग

['स्पान' (अमेरिकन सेंटर)

के सौजन्य से]

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३१; अंक : ९

दिनकर के पत्र
डा. वचनदेव कुमार ४

गढ़वाल के लोक नृत्य-गीत
डा. सत्येन्द्र ५

ग्रंथलोक भट्टाचार्य, वांदिवडेकर ८

लोक की परालौकिकता
डा. मदनमोहन तरुण २०

असली संकट कहां है ?
निरंकार सिंह २४

खड़खड़ाहट नये कागज की
पुष्पारानी गर्ग २८

प्रार्थना ३३

संत कबीर ३४

प्रेम-कथा महाकवि जोश
मलीहाबादी की ३६

महानगरी : तारा
राजेन्द्रप्रसाद सिंह ४३

हमारे सवाल : पश्चिम के परिप्रेक्ष्य में
गोविन्द मिश्र ४४

मत्स्येन्द्रनाथ (उपन्यास-अंश)
डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ४८

सामवेदी स्वर सावित्री परमार ५६

दो कविताएं रामदरश मिश्र ५७

अतीत, काशी-विश्वनाथ मन्दिर का
हरिशंकर ६०

दो लघुकथायें विष्णु प्रभाकर ६३

सुनहली छांह (उपन्यास-सार)
शिवकुमार जोशी ६५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

सितंबर १९८२

सोमरस-पान क्या है ?
पं. सुरेशचन्द्र चतुर्वेदी ७२
मृगमरीचिका (अंग्रेजी कहानी)
सॉमरसेट मॉम ७६
पाश्चात्य सभ्यता की अवसान संध्या : अमेरिका में टूटते परिवार
गीतेश शर्मा ८८
तीन गीत माहेश्वर तिवारी ९२
कमरे में कोई रहता है (हिंदी कहानी)
रतीलाल शाहीन ९७
बोधकथा इदरीस शाह १०७
कवि और साहित्यकार आत्महत्या क्यों करते हैं ? नरगिस दलाल १०८
नाम संकीर्तन संत तुलसीदास ११३
आखिर पैसा ही जीता
गणेश त्र्यंबक कुलकर्णी ११४
फूलतुली (हिंदी कहानी)
अमिता श्रीवास्तव ११६
बान के पीछे गणेशप्रसाद नागर १२०
राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की प्रतिमूर्ति राजर्षि टंडन किशोरीरमण टंडन १३२
महान वैज्ञानिक माइकेल फैराडे फिलिप केन और सैमुअल निसेनसन १३६
उपयोगिता अपनी-अपनी (बालकथा)
शिवनारायण सिंह १४३

चित्रसज्जा : वी. एन. ओके, के. एम. शेणै, भाऊ समर्थ, डा. विष्णु भटनागर, संतोष चड़िया, नीता वैद्य, चंदुलाल सांकला, टी. ए. राणा, आलोक जैन।

अमृतं तु विद्या

भारतीय विद्या भवन

१९३८ में संस्थापित पूर्णतया शिक्षा, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, जनसेवी सर्वांगी न्यास, संस्थापक : कुलपति क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री श्रद्धावती म. घटाऊ, उपाध्यक्ष : श्री विचारीलाल मेहता,

सहयोगी प्रतिष्ठान

१- मुम्बादेवी संस्कृत महाविद्यालय २-भारतीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३-नरल संस्कृत परीक्षा विभाग ४-गीता विद्यालय ५-मूलचन्द लोयनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६-मुन्शी श्रद्धावती मंदिर (पुस्तकालय) ७- बलवन्तराय रामजी दास पुस्तकालय ८-भारतीय संगीत विद्यापीठ ९- भारतीय नर्तन विद्यापीठ १०-भारतीय इतिहास विभाग ११-प्रकाशन मंदिर, पुस्तक पुनिर्मिति, मुन्शी साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या त्रैमासिक), भवन्स जर्नल (अंग्रेजी मासिक), संविद (संस्कृत त्रैमासिक), भवन्स हिन्दी डाइजेस्ट (हिन्दी मासिक), भवन्स सप्तपर्ण (गुजराती मासिक) १३-प्राचीन अंतर्राष्ट्रीय और आधुनिक आविष्कार योजना १४-औद्योगिक योजना १५-प्रवासी भारतवासियों समिति १६- म. म. कला कालेज और म. म. विज्ञान विज्ञान संस्थान (अंधेरी) १९-बलवन्तराय मेहता पब्लिक स्कूल (नयी दिल्ली) १७-हजारीमल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (चौपाटी, बम्बई) १८- सरदार पटेल अभियांत्रिकी कालेज (अंधेरी) १९- एलडोरुलाल अचरलाल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०-एलडोरुलाल अचरलाल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१-अहोराबेन वाणिज्य कालेज, (शाकोर) २२- कला एवं विज्ञान कालेज (शाकोर) २३- स्वामीनारायण पालिटेक्निक (शाकोर) २४- श्री अमृतलाल कालिदास जोशी महिला कालेज (जामनगर) २५- म. स. मेहता विज्ञान कालेज (बरवारी) २६- राजेन्द्र प्रसाद संग्रेषण एवं प्रबंध विद्या प्रतिष्ठान (मूर्तिटें : शाणमाल देवकरण मानसी संग्रेषण एवं प्रबंध-विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंग्रेषण कालेज, नयी दिल्ली; हरिलाल भगवती जनसंग्रेषण कालेज अहमदाबाद तथा बंगलौर; सोमानी जनसंग्रेषण कालेज, एरनाकुलम्; बड़ोदा, चंडीगढ़, गुंटूर, हैदराबाद, मंगलौर तथा सिकुर में स्थित जनसंग्रेषण कालेज) २७- जवाहरलाल मेहक भाषा अकादमी, नयी दिल्ली २८-म. इ. माविया स्कूल (अंधेरी) २९- बलवन्तराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याभवन) बड़ोदा तथा बरवारी ३०-भवन का विद्या मंदिर, एलामक्कर, एरनाकुलम ३१- कोचीनगढ़ पर भवन का स्कूल, कोचीन ३२- बलवन्तराय मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याभवन) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३- भवन का पब्लिक स्कूल, मेल, रामचन्द्रपुरम्, हैदराबाद ३४- संयुक्त संस्थाएँ : संस्कृत विश्व परिषद; भारतीय स्त्री सेवा संघ; ज्योतिष परिषद् (अंधेरी) ३५- संस्कृति पाठ्यक्रम पुस्तकें।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ोदा, भोपाल, भुवनेश्वर, कलकत्ता, चंडीगढ़, कोयम्बटूर, शाकोर, दिल्ली, एरनाकुलम, गुंटूर, हैदराबाद, जम्मू, जामनगर, काकीनाडा, कानपुर, मद्रास, मथुरा, मंगलौर, मुम्बाई, नागपुर, शिवोन, श्रीनगर, सिकुर, विशाखापट्टनम, लंदन (संयुक्त राज्य) ।

भारतीय विद्या भवन
के.एम.मुन्शी मार्ग, चौपाटी, बम्बई-४००००७

फोन : ३५१४६१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री कन्हैयालाल फूलफगर द्वारा सम्पादित

दिनकर के पत्र

नामक दस्तावेज़ी ग्रंथ पर प्रसिद्ध समीक्षक डाक्टर वचनदेव कुमार की समीक्षा

०००

कलकत्ता के प्रतिष्ठित सामाजिक-सांस्कृतिक नेता श्री कन्हैयालाल फूलफगर ने 'दिनकर शोध-संस्थान' स्थापित करके तथा उससे 'दिनकर के पत्र' प्रकाशित करके हिन्दी में एक पुरोगामी महत्व का कार्य किया है। इस संस्थान से फूलफगरजी यदि पिछली पीढ़ी के सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, महाकवि बच्चन, कविमनीषी वात्स्यायन जैसे लेखकों के पत्र-संग्रह प्रकाशित करेंगे, तो हिन्दी साहित्य के आगामी इतिहास लेखक के लिए वे महत्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रंथों की विरासत कायम कर देंगे। हमें पूरी आशा है, कि यह महद् अनुष्ठान उनके हाथों होकर ही रहेगा।

०००

दिनकर के पत्र : कन्हैयालाल फूलफगर (संपादक); दिनकर शोध-संस्थान, ८२/२ ई, विधान-सरणी, कलकत्ता–४; चालीस रुपये।

पत्रों में लेखक का हृदय अपने वास्तविक रूप में प्रतिबिंबित होता है। पत्र एक ऐसा दर्पण है जिसमें भावुकता का तूफान, स्मृतियों की शृंखला, परिवेश का प्रताड़न, अंतःसंघर्ष की प्रतिध्वनि सबकी बेलाग प्रतिच्छाएं पूरी आत्मीयता के साथ उजागर हो जाती हैं। राष्ट्रकवि डा० रामधारी सिंह दिनकर के द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को लिखे गये ४११ पत्रों का मनोहारी आकलन कन्हैयालाल फूलफगर ने 'दिनकर के पत्र' में किया है। अपनी बात में श्री फूलफगर ने स्वीकार किया है कि इन पत्रों की प्राप्ति में उन्होंने अनेकविध ज़मीन-आसमान सिर पर उठाया है। उनके परिश्रम की सार्थकता इस सत्य पर केंद्रित है कि इन ४११ पत्रों के बहाने दिनकर के मन के आंगन में झांकने का अवसर 'दिनकर के पत्र' के पाठकों को मिलता है। ये पत्र आत्मीयजनों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञों, उद्योगपतियों और मित्रों को लिखे गये हैं। कुछ ही पत्रों में लेखक ने औपचारिकता का निर्वहन किया है, अन्यथा अवशिष्ट पत्रों से दिनकर की पारिवारिक, सामाजिक, साहित्यिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा. शिवानन्द नौटियाल के महत्त्वपूर्ण लोक-सांस्कृतिक ग्रंथ

गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत

पर डा. सत्येन्द्र की समीक्षा

यह विशाल ग्रंथ 'गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत' गढ़वाल अंचल की साहित्य, संस्कृति तथा लोकधर्मी परंपरा के विशेषज्ञ डा. शिवानंद नौटियाल द्वारा पी. एच-डी. के लिए प्रस्तुत किया गया शोध प्रबंध है, जिसे हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने सन १९८१ में बहुत सुरुचि का परिचय देते हुए डबल डिमाई आठपेजी आकार में ५० चित्रों सहित अलंकृत पृष्ठों में बढ़िया टाइप में मुद्रित किया है। प्रथमतः इसकी सुंदर छपाई और गेटअप हमें आकर्षित ही नहीं करती, विमोहित भी करती है, किंतु इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि गढ़वाल

संघर्ष-गाथा और मानस-चिंता का व्यापक परिबोध होता है।

'दिनकर के पत्र' में एकत्र ४११ पत्रों की परिक्रमा पुष्ट करती है कि दिनकर के हृदय की सर्वाधिक विवृतावस्था साहित्यकारों के नाम लिखे गये पत्रों में स्पष्ट हुई है।

अपने पुत्र-पुत्री और पौत्री को जितनी वत्सल भाषा में दिनकर ने पत्र लिखे हैं, उतनी ही अंतरंगता के साथ समसामयिक रचनाकर्मियों को भी कवि ने अपने अंतर का द्वंद्वगीत सुनाया है। दिनकर हिंदी के सर्वाधिक मंचसिद्ध कवि होकर भी पारिवारिक संत्रासों से उलझे हुए थे और संसद-सदस्य बनकर भी राजनीतिज्ञ नहीं बन सके। उनका जीवन सहजता का समस्या-केंद्रित महाकाव्य था और उनकी आत्मा की आंखें चेतना की चिंताकुल शिखा को ही देखती हैं। ये सारे निष्कर्ष इन पत्रों से प्राप्त होते हैं।

कन्हैयालाल फूलफगर ने इन पत्रों के माध्यम से राष्ट्रकवि के बंद हृदय के द्वार दिनकर-प्रेमियों के सामने खोल दिये हैं। स्वाभाविकता और भावुकता का सहज उन्मेष इस संकलन में उमड़ा है।

एक बार स्वयं स्व. दिनकरजी ने मुझसे कहा था—'रचनाकार को अपना संपूर्ण कर्तृत्व जीवितावस्था में ही प्रकाशित करा लेना चाहिये।' वे हिंदी के उन थोड़े से भाग्यशाली सर्जकों में से थे, जिनकी प्रायः सारी सर्जना उनके सामने ही प्रकाशित हो गयी थी। तथापि, दिनकर के अवशिष्ट लेखन की बानगी इन पत्रों के माध्यम से सामने आयी है।

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के लोकनृत्यों पर इतना विशद और नृत्य-गीत के सभी पक्षों से युक्त सचित्र ग्रंथ जहां तक मैं समझता हूं अभी तक देखने में नहीं आया।

डा. शिवानंद नौटियाल गढ़वाल क्षेत्र के ही पृथ्वी-पुत्र हैं और गढ़वाल की लोक संस्कृति में इतने रमे हुए हैं कि लगता है जैसे उन्होंने गढ़वाल के समस्त लोक-नृत्य-गीतों का सांस्कृतिक दृष्टि से पूरी तरह मंथन करके इस ग्रंथ को प्रस्तुत किया है। फलतः इसमें शोध प्रबंध की दृष्टि से अपेक्षित शोध का वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण तो है ही, साथ ही उसमें प्रस्तुत की गयी लोकनृत्यों की सांस्कृतिक व्याख्या के साथ लोकनृत्यों का समावेश इसे अत्यंत रोचक भी बना देता है। यही नहीं, इस अध्ययन के साथ इन्होंने गढ़वाल की लोक संस्कृति के स्रोतों का विद्वत्तापूर्ण अनुसंधान करते हुए वैदिक संस्कृति के अवशेषों के भी दर्शन इन लोकनृत्य गीतों से युक्त गढ़वाल संस्कृति और उसकी भाषा में कराये हैं जिससे यह ग्रंथ और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

डा. नौटियाल की दृष्टि बहुत पैनी है और प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक कालावधियों को पार करते हुए उस दृष्टि ने गढ़वाल के हिमाचल गर्भित क्षेत्र, पर्वतों और वहां के देवी-देवताओं और जनोत्सवों में एक विचित्र सामंजस्य प्रतिष्ठित किया है जिससे गढ़वाल की संस्कृति ही अलौकिक नहीं हुई है, भारत की महान संस्कृति का भी एक अद्भुत पृष्ठ भी उजागर हुआ है। अपनी पैनी दृष्टि, विशद अध्ययन और अपनी सांस्कृतिक मनीषा के साथ अपनी भारतीयता को पिरोकर डा. नौटियाल ने यह ऐसा महान ग्रंथ हमें दिया है कि जिसके माध्यम से हम भारतीय तो अपने स्वरूप को समझ ही सकते हैं, अन्य विद्वानों को भी इसमें मननीय सामग्री प्राप्त होगी।

एक अध्याय में उन्होंने नृत्य-गीतों के संगीत का शास्त्रीय अध्ययन भी प्रस्तुत किया है और उसके साथ संगीत शास्त्र की दृष्टि से इन नृत्य-गीतों की सरगम भी दे दी है। इसके साथ ही काव्य शास्त्रीय अध्ययन में रस और अलंकारों के साथ शब्द-शक्तियों का निर्देश करते हुए बिंब-विधान एवं प्रतीक विधान का भी सोदाहरण निरूपण किया है और विषय को परिपूर्ण बनाने के लिए परिशिष्ट दो में गढ़वाली लोकवाद्य के चित्र भी दिये हैं। और अंत में विविध नृत्य-गीतों से संबंधित नृत्यों के चित्र भी हैं। निश्चय ही यह अत्यंत महत्वपूर्ण शोध-प्रबंध है।

इनके एक लोकनृत्य गीतों के निबंध के संबंध में जो अभिमत डा. वासुदेव शरण अग्रवाल ने व्यक्त किया था वह इस शोध-प्रबंध पर भी पूरी तरह लागू होता है। डा. अग्रवाल ने लिखा था : 'यह निस्संदेह नया कार्य है। पेशेवर नृत्य भरत नाट्यम् की पद्धति में है। वर्णनों को पढ़कर इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृपालु पाठकों से नम्र निवेदन

कागज़ की निरंतर बढ़ती महंगाई और छपाई के खर्चों में होती जा रही वृद्धि के कारण हमें जनवरी - १९८२ से नवनीत के चंदे की दरों में वृद्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है। आशा है कि नवनीत के कृपालु पाठक नवनीत को अपना पूर्ववत् स्नेह प्रदान करते रहेंगे और उसे अपने बहुमूल्य सुझावों से लाभान्वित करते रहेंगे।

जनवरी १९८२ से नवनीत के चंदे की नयी दरें :

भारत में : १ वर्ष : २८ रु; दो वर्ष : ५४ रु.; ३ वर्ष : ८० रु.।

विदेशों में (समुद्री डाक से) : १ वर्ष : ८० रु.; २ वर्ष : १५० रु.; ३ वर्ष : २२० रु.।

सीलोन, पाकिस्तान, बांग्लादेश :

१ वर्ष : ४० रु.; २ वर्ष : ७८ रु.; ३ वर्ष : ११५ रु.।

विदेशों में हवाई डाक से : (पाकिस्तान, श्रीलंका, अफगानिस्तान और वर्मा)

१ वर्ष : १२५ रुपये। अन्य सभी देशों के लिए २०० रुपये।

एक प्रति : २·७५ रुपये।

— व्यवस्थापक

विषय की गंभीरता का एक नया भाव मन में आता है और इस कल्पना का साक्षात् अनुभव होता है कि जनपदीय लोकवार्ता का गांभीर्य कितना अधिक है। इसमें निष्ठा से कार्य करने वाले साहित्यिक अपनी प्रतिभा एवं श्रम से कितनी अधिक सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। इसका सबसे अच्छा दृष्टांत श्री नौटियाल द्वारा प्रस्तुत यह निबंध है।

'मैं हृदय से चाहता हूं कि श्री शिवानन्द नौटियाल की इस कृति को मेरे देशवासी एक बार अवश्य पढ़ें और इसका अनुभव करें कि प्राचीन भारतीय लोकजीवन में कितनी स्फूर्ति भरी हुई थी। आज का भारतीय मानव यदि उसके साथ अपने मनःसूत्र को फिर से जोड़ सके तो यह अपूर्व सांस्कृतिक सेवा होगी।'

ऐसे विलक्षण शोध-ग्रंथ की लोक-संस्कृति के नृत्य-गीत पक्ष को लेकर सफल प्रस्तुति के लिए मैं डा. नौटियाल को हार्दिक बधाई देता हूं और आशा व्यक्त करता हूं कि उनके इस ग्रंथ का अभूतपूर्व स्वागत होगा। भारतीय लोकसाहित्य के साथ-साथ गढ़वाल के विशेष अध्ययन के लिए यह ग्रंथ आगे के अध्येताओं के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा।

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

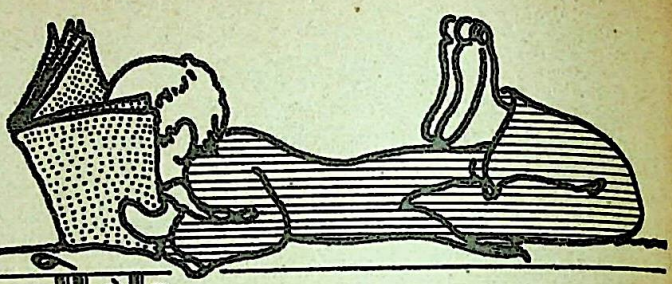

ग्रंथलोक

कई अंधेरों के पार (उपन्यास); से. रा. यात्री; राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली–६; पृष्ठ–१३७; सोलह रुपये।

आज़ादी के बाद क्रमशः कठिन होते गये दिनों और बिगड़ती गयी स्थितियों से धैर्यपूर्वक जूझते और साथ ही मान-सम्मान-प्रतिष्ठा-लोक-लाज के प्रश्न पर अपनी बेहद स्पर्शकातरता को बरकरार रखने की कोशिश में पिसते भारतीय मध्यवर्गीय चरित्र की जो सही परख से. रा. यात्री की रचनाओं में हुई है, वह प्रशंसनीय है। प्रस्तुत उपन्यास में मध्यवर्ग की नसों में बसे 'स्वाभिमान' और उच्च-मध्यवर्ग को अपने पंजे में कसी 'स्वार्थी-धूर्तता' के टकराव और इन दोनों 'गुण-विशेषों' से आरोपित रहने की दोनों वर्गों की विवशता का सार्थक चित्रण हुआ है। दोनों ही वर्गों में पनपे आर्थिक असुरक्षाजन्य भावों ने संयुक्त परिवारों के आदर्शों और मूल्यों को किस सीमा तक तोड़ा है और इस टूटन का प्रभाव वैवाहिक संबंधों और दांपत्य जीवन की आपसी समझ पर किस खतरनाक हद तक पड़ा है, यही इस उपन्यास का मूल कथ्य है। प्रेम की जटिल गलियों में एक सरल और उदात्त दृष्टिकोण को लिये सहज भाव से घूमते हुए उपन्यासकार ने प्रेम की उस महानता को छू लिया है, जो अपने स्पर्श से मृतप्राय को पुनरुज्जीवित करने में, गिरते हुए को संभाल लेने में और टूटते हुए को बचा लेने में पूर्णतः सक्षम है। उपन्यास में सुशीला (नायक की दूसरी पत्नी) का चरित्र अपनी उदारता, सौम्यता एवं निश्छल-निःस्वार्थ समर्पण के कारण भारतीय नारी की आदर्श छवि को न केवल गरिमामय बनाता है, बल्कि उसे विश्वसनीयता भी देता है। इसी प्रकार नायक (धीरेंद्र) की मां का चरित्र स्नेह एवं वात्सल्य का ऐसा स्रोत है, जो परि-स्थितियों की भीषण ज्वाला में भी नहीं सूखता। किसी भी भारतीय के लिए मां का यह धैर्यशाली, स्नेहमय, वत्सल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चरित्र अपरिचित नहीं। एक ओर लाड़-प्यार, स्नेह, आदर से ओत-प्रोत पारिवारिक सदस्यों एवं दूसरी ओर निरंतर स्वार्थसिद्धि के कुटिल प्रयासों में रत पिता-भाई आदि का चरित्र-चित्रण एक पूरे समाज को अपनी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ प्रस्तुत करता है—नितांत सहज और यथार्थ रूप में। प्रेम में जहां दैहिक आकर्षण एवं जैविक इच्छाओं की दुर्निवार उपस्थिति को आवश्यक बताया गया है, वहीं देह के अंधेरों से परे उस अमूर्त प्रेम की महिमा को भी रूपायित किया गया है, जो कि किसी भी प्रेम-व्यापार की चरम परिणति और अंतिम लक्ष्य है।

भाषा सरल और गतिमयी है। वातावरण आत्मीय है। कहीं भी असहज या असंभव या अपेक्षाकृत कम संभव हो सकने का बोध कथानक में नहीं है। एक अत्यंत ही सार्थक कृति है 'कई अंधेरों के पार'।

०००

तीर्थ दर्शन, खण्ड १ और २ (तीर्थ-यात्रा वृत्तांत); संपादक : पन्नालाल वैद; श्री महावीर जैन कल्याण संघ, ९६, वेंपेरी हाई रोड, मद्रास; पृष्ठ (दोनों खण्ड) ६००; मूल्य : बॉण्ड पेपर : दो सौ चौरासी रुपये, आर्ट पेपर : पांच सौ इकहत्तर रुपये।

मुख्यतः जैन धर्मावलंबियों के लिए प्रकाशित यह बहुमूल्य सूचनात्मक ग्रंथ हिंदू तीर्थयात्रियों और किसी भी धर्म के सैलानियों के लिए भी समान रूप से उपयोगी है। सारे भारत में फैले लगभग दो सौ चौबीस मुख्य जैन तीर्थों के विषय में इतनी प्रामाणिक, स्पष्ट और विस्तृत सूचनाएं इस पुस्तक में हैं कि प्रथम बार भ्रमण करने वाला पर्यटक भी इस पुस्तक के माध्यम से उक्त तीर्थों से आत्मीय परिचिति का अनुभव करने लगता है। तीर्थस्थानों का परिचय, विशेषता, उससे जुड़े पौराणिक आख्यान, उसकी ऐतिहासिकता, भौगोलिक परिवेश, संबद्ध धार्मिक विश्वास आदि के साथ ही वहां के भौगोलिक नक्शे और आकर्षक छायाचित्रों के कारण जहां पुस्तक अपनी प्रामाणिकता का अहसास देती है, वहीं निर्विवाद रूप से उसकी उपयोगिता भी बढ़ जाती है। तीर्थस्थान में पहुंचने के लिए सही मार्ग-दर्शन के साथ ही वहां पहुंचने पर आवास, भोजन एवं दर्शन-पूजन संबंधी आवश्यक व्यवस्थाओं का भी वर्णन है।

प्रथम खंड में बिहार, बंगाल, उड़ीसा, राजस्थान तथा हिमाचल प्रदेश में स्थित जैन तीर्थस्थानों का वर्णन है, तथा दूसरे खंड में गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्णाटक तथा तमिलनाडु में स्थित तीर्थस्थानों का वर्णन है।

'तीर्थ दर्शन' जहां सामग्री के स्तर पर विपुल तथा आवश्यक और मुद्रण के स्तर पर विशिष्ट है, वहीं तीर्थों से संबद्ध इतिहास में कुछ भूलें भी रह गयी हैं। इनमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताज़गी की एक लहर!

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं। जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की लहर। आप अपने आपको कुछ और ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।

क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी आस पास बिखरे सूनेपन में ताज़गी भर देते हैं।

जियाजी

सूटिंग-शर्टिंग

कॉटन प्रिण्ट्स

जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड,

बिर्ला नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमुख हैं आगरा के श्री चिंतामणि पारसनाथजी के मंदिर में स्थापित श्री शीतलनाथजी की प्रतिमा को किसी मस्जिद से प्राप्त बतलाना या आगरा में श्वेतांबर जैन मंदिरों की संख्या बारह बतलाना। आगामी संस्करण में ऐसी भूलों का उचित सुधार होना आवश्यक है। साधुभाषा में वर्णन किये जाने का आयोजन पुस्तक के विषय एवं उद्देश्य के साथ न्याय ही करता है। धार्मिक संस्थानों और संदर्भ पुस्तकालयों के लिए 'तीर्थ दर्शन' के दोनों खंड उपयोगी हैं।

०००

शब्दों के पींजरे में (उपन्यास); असीम राय; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, बी/४५–४७, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली–पृष्ठ १९५; बीस रुपये।

सरल किंतु धारदार शब्दों में विनम्र होकर किंतु दृढ़ता के साथ 'शब्दों के पींजरे में' का कथ्य स्वतंत्रता के बाद भारत में पनपी उस वायवीय संस्कृति के खोखलेपन की तीव्र भर्त्सना करता है, जिसके संरक्षण में भारत का हर क्षेत्र, हर वर्ग हरेक मामले में पूर्णतः भ्रष्ट होता चला गया है। सत्तासीन नेता, समाजसेवी, अध्यापक, क्रांति के नाम पर जीने वाली राजनीतिक पार्टियां, प्रशासन, पुलिस, ज्योतिषी-संत-महंत, आपसी रिश्ते, योजनाएं सभी मात्र सजे-संवरे, अधिक अर्थात् शोर मचाने की सीमा तक आवाज़ करने वाले शब्दों के आडंबरपूर्ण आवरण में अपनी वास्तविकता को छुपाकर निरे आत्मकेंद्रित होकर स्वार्थसिद्धि में लगे हुए हैं। एक दूसरे की वास्तविकता से पूर्णतः अपरिचित ये स्वार्थी एक-दूसरे की वास्तविकता को जानने की उत्सुकता भी महसूस नहीं करते और निर्विकार भाव से दूसरों को धोखा देकर अपना काम बनाने की कुटिल कोशिश में निरंतर जुटे रहते हैं। दर असल आज का हमारा राष्ट्रीय चरित्र ही यही है। गांवों में भी महानगरीय धूर्तता के दुर्भाग्यपूर्ण स्पर्श का चलन एक ओर, एवं दूसरी ओर सरकार के तमाम दावों के बावजूद बिजली, सड़कें, शिक्षा आदि से वंचित, 'बूट-जूते' और 'ट्रांज़िस्टर' के लिए ललकते गांवों के तरुण, ग्रामविकास सेवा के नाम पर अंग्रेजी शब्दों के टूटी टांगोंवाले टुकड़ों पर व्यक्तित्व की नींव रखने वाले दांभिक दफ्तरशाहों की उन्नासिकता–कुल मिलाकर गांवों, कस्बों, शहरों एवं महानगरों के रूप में पूरे भारत की विडंबनाओं, विसंगतियों एवं विरोधाभासों का स्पष्ट चित्रण इस उपन्यास की अपनी विशेषता है।

'शब्दों के पींजरे में' का लेखक देश की समस्याओं, स्थितियों और कमियों के प्रति संवेदनशील होकर अत्यंत आत्मीयतापूर्ण सहानुभूति के साथ उनके कारणों और मूल स्रोतों की जांच-पड़ताल करता है।

हंसकुमार तिवारी का अनुवाद इतना दोषपूर्ण है कि खीझ उत्पन्न कर देता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेंट्रल बैंक की परिवार कल्याण योजना

बूंद-बूंद से बनता सागर

आवर्ती जमा योजना

नौकरीशुदा लोगों के लिए एक आदर्श योजना प्रति माह रु. 5/- जितनी मामूली या उसके गुणकों में कोई भी रकम 12 से 120 माह की अवधि के लिए जमा कीजिए. 8% से 10% प्रति वर्ष की दर से तिमाही चक्रवृद्धि से आपकी रकम बढ़ती रहेगी.

आपके नन्हें-मुन्नों के लिए एक बढ़िया उपहार

धन-वृद्धि जमा योजना

रु. 100/- या उसके गुणकों में कोई भी रकम 12 से 120 माह तक जमा रखिए. आपकी जमाराशि 87 माह में दुगुनी या 120 माह में 2 $\frac{1}{2}$ गुनी बढ़ जाएगी. अपने परिवार की सुख-समृद्धि का ख्याल रखिए. 8% से 10% प्रति वर्ष की दर से तिमाही चक्रवृद्धि ब्याज मिलेगा.

सेंट्रल बैंक ऑफ़ इंडिया

(भारत सरकार का एक उपक्रम)

वही वह बैंक है जो हर जगह हर मनुष्य की सहायता देने में तत्पर है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इतने सपाट तरीके से मात्र शब्दानुवाद किया गया है कि अनुवादक कहीं भी 'कंसर्न' नहीं करता दीखता। बांग्ला भाषा में 'भद्र लोक' जिस अर्थ को ध्वनित करता है, क्या हिंदी का 'भले आदमी' हमेशा वही अर्थ दे सकता है? अनुवाद चूंकि साहित्य की सबसे अधिक कठिन और जिम्मेदार विधा है, इसे हमेशा ईमानदारी के साथ ही किया जाना चाहिये, वरना कृति, कृतिकार एवं उभय भाषाओं के साथ बहुत बड़ा अन्याय हो जाने की संभावना रहती है।

०००

सोनिया (कहानी-संग्रह); दुर्गा प्रसाद श्रेष्ठ; प्रचारक बुक क्लब, हिन्दी प्रचारक, संस्थान, पिशाच मोचन, वाराणसी; पृष्ठ १११; छह रुपये।

छोटी-बड़ी कुल पंद्रह कहानियों का संग्रह 'सोनिया' के कहानीकार दुर्गा प्रसाद श्रेष्ठ नेपाल की पृष्ठभूमि पर लिखी गयीं अपनी हिंदी कहानियों के लिए सुपरचित हैं। प्रस्तुत संग्रह की ग्यारह कहानियां १९६२ से १९८० के दौरान हिंदी की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। श्रेष्ठ की कहानियों पर पिछले दो दशकों में हिंदी कहानी के क्षेत्र में हुए आंदोलनों, बदलावों एवं प्रवृत्ति-दिशा में आवश्यकतानुसार किये गये सायास परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं दीखता। श्रेष्ठ के सृजन का परिवेश मुख्यतः गांव है। उनके पात्र निम्नमध्यमवर्ग की व्यथाओं-पीड़ाओं को चुपचाप झेलते चले जाने वाले 'ठंडे' पात्र हैं और मूलतः नियति पर विश्वास करने वाले यथास्थितिवादी 'ग़रीब' चरित्र के ही मालिक हैं। इसमें संदेह नहीं कि श्रेष्ठ की कहानियों का मूल कथ्य निम्नमध्यमवर्गीय आर्थिक विडंबनाओं एवं उनसे उपजी परिस्थितिगत विसंगतियों से पूरी संवेदना के साथ जुड़ा है, किंतु अधिकतर कहानियों की अति-भावुकता उसके तार्किक और वैचारिक पक्ष के प्रभाव को काफी सीमा तक नष्ट कर देती है। कहानियां कहीं-कहीं आदर्श लगती हैं और इसीलिए यथार्थ से थोड़ी दूर की महसूस होती हैं। मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित रहने को मजबूर अपने पात्रों से लेखक इतनी गहरी सहानुभूति रखते हैं (जैसा कि द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण') कि भावुकतावश अपने पात्रों को चौंकना होकर प्रस्तुत कर सकने की तटस्थता बरकरार नहीं रख पाते।

भाषा सजीव एवं प्रवाहमयी है। सरल भी। वर्णन अत्यंत ही लुभावना है। उसमें कसावट है और इसीलिए किसी भी कहानी को अवांछित विस्तार का शिकार नहीं होना पड़ा। 'खंडित' ही संग्रह की एकमात्र ऐसी कहानी है, जो महानगरीय संत्रास एवं कुंठा का चित्रण करती है। मुझे यही कहानी संग्रह की श्रेष्ठ कहानी लगी। 'नांग्ले', 'नीमा पेम्मा', 'केटी', 'संदर्भ', 'सोनिया' आदि कहानियां नेपाली पृष्ठभूमि के कारण हिंदी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हथकरघा

भारतीय जीवन एवं अर्थ-व्यवस्था में अधिक फैशन, कम कीमत

हथकरघा हमारे देश में आजकल सबसे बड़ा कुटीर शिल्प है। तीस लाख से भी ज्यादा हथकरघों पर १ करोड़ से भी अधिक बुनकरों द्वारा हमारे देश के सूती वस्त्रों का एक तिहाई हिस्सा तैयार किया जाता है।

हथकरघा क्षेत्र द्वारा छठी पंचवर्षीय योजना के अंत तक (१९८४-८५) ४१० करोड़ मीटर कपड़ा तैयार करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। निर्यात में इसने एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है जिससे इसकी निर्यात क्षमता १९६७-६८ में ११.६० करोड़ रु. से बढ़कर १९८०-८१ में ३३० करोड़ रु. हो गयी है।

नये बीस सूत्री कार्यक्रम में हथकरघा क्षेत्र के विकास को प्रमुख स्थान दिया गया है। २३ बुनकर सेवा केन्द्रों तथा दो हथकरघा टेक्नालोजी संस्थानों द्वारा इस क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास कार्य किया जा रहा है।

ये केन्द्र बुनकरों को परम्परागत तथा आधुनिक डिज़ाइनों में प्रशिक्षण देकर तथा आवश्यक टेक्नालाजिकल सहायता देकर उनकी मदद करते हैं।

समान कोटि एवं डिज़ाइनों की हथकरघा वस्तुओं के उत्पादन एवं बिक्री के लिए हथकरघा विकासायुक्त ने राष्ट्रीय साड़ी संग्रह योजना शुरू की है जो कि काफी पसंद की गयी है। बिक्री को बढ़ावा देने के लिए देश भर में हथकरघा प्रदर्शनियां आयोजित की जाती हैं। दिल्ली, मद्रास, बंगलौर, कलकत्ता और बम्बई के अलावा ये प्रदर्शनियां विदेशों में भी लगाई जाती हैं।

हथकरघा विकासायुक्त
वस्त्र विभाग,
वाणिज्य मंत्रालय,
भारत सरकार
नई दिल्ली द्वारा जारी

डीएवीपी ८२/९९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाठक को अपनी आंचलिकता के स्पर्श से अभिभूत कर सकती हैं।

०००

अंधेरों का हिसाब (काव्य संकलन); संपादक : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; कविता प्रकाशन, शिक्षा विभाग, राजस्थान, बीकानेर; पृष्ठ : ९६; सात रुपये साठ पैसे।

साहित्य के क्षेत्र में सर्वाधिक सक्रिय प्रांतीय सरकारों में यदि मध्य प्रदेश की सरकार है तो साहित्यकारों में राजस्थान के साहित्यकार हैं। कम-से-कम कविता के क्षेत्र में तो निश्चित रूप से ऐसा ही है। राजस्थान में बहुत से कवि बहुत सी कविताएं रच रहे हैं और स्तर के हिसाब से ये बहुत सी कविताएं बहुत खराब भी नहीं हैं, बल्कि कुछ तो बहुत ही अच्छी हैं। नितांत समसामयिक एवं प्रासंगिक। कथ्य, शैली, भाषा एवं रचना विधान की दृष्टि से भी अधुनातन।

यह काव्य-संकलन विशेषत: राजस्थान के अध्यापन रत हिंदी कवियों की कविताओं को प्रस्तुत करने के लिए प्रकाशित किया गया है। कविकर्म एवं अध्यापन—दोनों ही बहुत दायित्वपूर्ण किस्म के कार्य हैं अपने आप में, और फिर जब कोई व्यक्ति कविता भी रचे और अध्यापन भी करे तो निश्चितरूप से कुछ विशेष, कुछ बेहतर, कुछ अतिरिक्त की अपेक्षा उससे की जाती है। यह सुखद है कि 'अंधेरों का हिसाब' में संकलित शिक्षक-कवियों की कविताएं इस अपेक्षा को काफी हद तक पूर्ण करती हैं। प्राय: सभी संकलित कविताएं अपनी जागरूकता, आम आदमी के प्रति अपनी प्रतिबद्धता, सहानुभूतिशीलता, देश और समाज की विषम परिस्थितियों से संवेदनात्मक जुड़ाव के कारण अपने रचे जाने को सार्थक करती हैं। वैसे कुछ कविताएं ऐसी भी हैं जो मात्र अपने शब्द चमत्कार के कारण कृतित्त्व पाने की अपेक्षा रखती हैं।

संकलित कवियों में जहां पुष्पलता कश्यप, चतुर कोठारी, नंदकिशोर चतुर्वेदी, सांवर दइया, अरनी रॉबर्टस्, कमर मेवाड़ी, अखिलेश्वर जैसे परिचित, स्वीकृत, अच्छे और ज़रूरी नाम हैं, वहीं बहुत से अपेक्षाकृत नये नाम भी हैं, जो आश्वस्त करते हैं। नयी कविताओं के साथ कुछ गीत (आशा शर्मा, श्याम सुंदर भारती, कैलाश मनहर, अब्दुल मलिक खान आदि) एवं कुछ ग़ज़लें (अजीज़ आज़ाद, श्याम सुंदर भारती) हैं जो समान रूप से पठनीय एवं स्तरीय हैं। पुस्तक के अंत में तमाम संकलित रचनाओं के पतों का प्रकाशन निश्चित रूप से सराहनीय है।

०००

कल्पना के पंख पाकर (कविताएं); वेद प्रकाश 'वटुक'; भारतीय साहित्य प्रकाशन, २८६, चाणक्यपुरी, सदर, मेरठ–१; पृष्ठ : ६३; बारह रुपये।

अक्तूबर १९८० से फरवरी १९८१ के बीच रची गयीं कुल इक्यावन कविताओं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

MUCH-AWAITED BOOK NOW ON SALE!
To BE READ, RE-READ AND PRESERVED!

Srimad Bhagavatam

By

KAMALA SUBRAMANIAM

With A Foreword

By

GHANSHYAMDAS BIRLA

(Printed on Superior Map Litho Paper, Royal Octavo Size, pp. 672, Full cloth bound with an attractive jacket.)

Price Rs. 75.00

The *Bhagavatam* has been aptly described as the spiritual butter churned out of the ocean of the Veda Milk for the benefit of those "who are pure in heart, free from malice and envy, and are keen to hear it." Dry philosophy seldom appeals to the human mind. But in the *Bhagavatam* even the most abstruse philosophic truths are put across by means of stories and legends. This is the secret of its popularity among all classes of people.

Available from :

Bharatiya Vidya Bhavan

Kulapati K. M. Munshi Marg,
Bombay-400 007

And its Kendras.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का संकलन है। 'कल्पना के पंख पाकर', जिसकी सभी कविताओं को कवि ने 'अपनी भाग्य लक्ष्मी' को समर्पित करते हुए इन रोमानी कविताओं के 'रोमांटिसिज्म' को सार्थक करने का रोचक प्रयास किया है। संकलन की सभी ५१ कविताएं प्रेम कविताएं हैं एवं 'तुम' को संबोधित करते हुए, 'तुम' ही को केंद्र में रखकर रची गयी हैं। इन कविताओं के माध्यम से जिस प्रेम का दर्शन हम कर पाते हैं, वह निस्संदेह निष्ठा, पूर्ण समर्पण एवं आत्महीनता की सीमा तक विभोर करने वाले तत्त्वों से परिपूर्ण है एवं व्यक्तिगत रूप से किसी भी प्रेमी के लिए आदर्श बन सकता है और किसी भी प्रेमिका को पूर्णरूप से आश्वस्त कर सकता है। किंतु ५१ प्रेम कविताओं में किसी भी एक जगह यदि पाठक को प्रेम के इस विराट रूप के दर्शन न मिल पायें जो अपनी स्नेहिल छाया में मात्र प्रेमिका ही नहीं, समस्त चराचर को आश्रय देता है, तो बात खटकती जरूर है। 'वटुक' की ये प्रेम कविताएं यहां पर बच्चन एवं वीरेंद्रकुमार जैन की प्रेम कविताओं की तुलना में नितांत वैयक्तिक उपलब्धि का माध्यम जैसी ही लगती हैं। बच्चन का प्रेम प्रेयसी के साथ ही समस्त संसार के लिए भी है वीरेंद्रकुमार जैन का प्रेम तो परमात्मा, संसार और प्रेयसी के लिए एक साथ और एक समान है। किंतु 'वटुक' को संसार से कोई मतलब नहीं :

मैं कौर-कौर मानो तुम्हारी
प्रतीक्षा कर उठाता था
और यूं हजारों का सहभोजी होकर भी
मजा नहीं आया था। (पृष्ठ ११)

या

गंगा ने तेरे लिए
छुए मेरे पैर (पृष्ठ २४)

वैसे सिर्फ कविता की दृष्टि से देखा जाये, तो भाषा एवं शैली के स्तर पर ये कविताएं अत्यंत ही मधुर, स्पष्ट, सरल एवं भाव-समृद्ध हैं, शब्द-लालित्य से भरपूर हैं। शब्दों के प्रयोग में कमाल का संयम बरता गया है। पुनरुक्ति कहीं नहीं है और इसी लिए कोई भी कविता अनावश्यक विस्तार का शिकार नहीं बनी। कल्पना-विलास से भरी प्रगल्भा प्रेम-कविताओं का छोटी होना, या फिर उतनी ही बड़ी होना, जितनी कि अनिवार्यतः होनी चाहिये—अवश्य ही विशेषता कही जायेगी। शिल्प-सिद्ध ये कविताएं पाठकों के एक वर्ग-विशेष को अवश्य ही पसंद आयेंगी।

ooo

हालात (लघुकथा संग्रह); संपादक : कमल चोपड़ा; पंकज प्रकाशन, सी-८/१५८ ए, लॉरेंस रोड, दिल्ली; पृष्ठ : १६८; पचीस रुपये।

एक स्वतंत्र, स्वयं-संपूर्ण एवं प्रभावकारी तेज विधा के रूप में लघुकथा को साहित्य में अब स्थान ही नहीं, पूर्ण प्रतिष्ठा भी पाने का गौरव प्राप्त है। लघुकथाओं ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लघु पत्रिकाओं से बड़ी पत्रिकाओं और फिर स्वतंत्र संकलनों तक का एक लंबा सफर थोड़े ही अरसे में तय किया है, और पिछले चार वर्षों से हिंदी में लघुकथाओं की बाढ़-सी आयी है। अब निश्चित रूप से वह समय आ गया है कि जब इस विधा में हो रही रचनाओं को उद्देश्य, कथ्य, शिल्प एवं स्तर की कसौटी पर कसने के बाद छंटी हुई सार्थक रचनाओं को ही स्थान देने का निर्णय लिया जाये, क्योंकि किसी भी विधा को स्थापित करने के लिए उस विधा में की गयीं अच्छी-बुरी रचनाओं को अधिक-से-अधिक संख्या में छापने की प्रवृत्ति ही मूलरूप से काम करती है।

इस क्रम में कई अयोग्य घुस-पैठिये अवसर का लाभ उठाने से नहीं चूकते और अन्ततः विधा को स्तरीयता का खतरा मोल लेना पड़ सकता है। कहीं यही तो कारण नहीं है कि आज हिंदी में खलील जिब्रान, मंटो और बनफूल के स्तर का एक भी लघुकथाकार नहीं है ?

फिर भी पिछले वर्ष जिन लघुकथा संग्रहों का प्रकाशन हुआ, उनमें निश्चित रूप से श्रेष्ठ संग्रह 'हालात' ही है एवं इसमें संकलित सारी लघुकथाएं पाठक को उस लेखकीय सचेतनता से सीधा साक्षात्कार करवाती हैं जिसके अभाव में न तो लेखक ही अपने परिपार्श्व का सही प्रतिनिधित्व कर पाता है और न ही पाठक रचना में आत्मीयता ढूंढ़ पाता है। 'हालात' में संकलित एक भी लघुकथा 'व्यर्थ की रचना' नहीं है। प्रत्येक लघुकथा देश, समाज और आम आदमी की सही परिस्थितियों का जायज़ा बहुत ही आत्मीयता एवं संवेदनशीलता के साथ लेती है। मुख्य स्वर देश की भ्रष्ट और लोभी-स्वार्थी राजनीतिक मंच के प्रबल विरोध का है।

गरीबी की रेखा के नीचे की दुनिया में जी रहे लोगों से इन लघुकथाकारों की सहानुभूति तटस्थ नहीं, संवेदनात्मक और सक्रिय है। रमेश बतरा, मातादीन खरवार, जगदीश कश्यप, बलराम आदि लघुकथाकार अपनी उपस्थिति से संग्रह को ज़ोरदार और सार्थक बनाते हैं। शेष लेखक भी इस विधा के प्रतिष्ठित लेखक हैं और अपनी रचनाओं में पूरी ईमानदारी बरतते दिखाई देते हैं। किंतु अन्तिम वाक्य में चौंकाने का प्रयास जहां कहीं भी हुआ है, लघुकथा का शिल्प खंडित हुआ है।

प्रारंभ में इस विधा पर नरेंद्र कोहली, प्रेम जनमेजय तथा कमल चोपड़ा के लेख वैचारिक हैं तथा लघुकथा की विकास-यात्रा का परिचय देने के साथ ही इस विधा की कुछ वाजिब समस्याओं को सामने रखते हैं, जिन पर विचार होना आवश्यक है।

मूल्य पचीस रुपये होना आवश्यकता से कहीं अधिक और अनुचित प्रतीत होता है।

—आलोक भट्टाचार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्वासन की आंधी (कविता संग्रह); मालती शर्मा; सौरभ प्रकाशन, २५/२ पाखर, पुणे-बंबई मार्ग; पुणे-३; पृष्ठ १०८; बारह रुपये।

श्रीमती मालती शर्मा की कविता दुखमय जीवन के एहसास की खरी कविता है। नारों और छद्म मुद्राओं से अलग उनकी कविता एक सही कवि-व्यक्तित्व का परिचय देती है। मध्यमवर्गीय जीवन के मानसिक संघर्षों और तनावों से गुज़रते हुए रची गयी इस कविता से सांस्कृतिक उखड़ेपन का दर्द इस सीमा तक पहुंचा है कि कभी भविष्य के प्रति संपूर्ण संदेह, जीवन की निपट निरर्थकता का बोध कराता है, लेकिन मालतीजी का यह नज़रिया विशिष्ट क्षण का है, जीवन-दृष्टि वह नहीं है। अंधेरे से जूझकर दुर्निवार पर्तों को फोड़कर उजाले की ओर उन्मुखता तथा कल्पना या स्वप्न-जाल को सुरक्षित रखने का सृजनधर्मी आग्रह ही मालतीजी की कविता का बुनियादी स्वर है।

कवयित्री ने मध्यमवर्गीय नारी की संभावनाओं के चुकते जाने की त्रासद स्थितियों को पीड़ा को भोगा है और अपनी वर्गीय सीमाओं को लांघकर आदमीपन को पहचानने और दूसरों की व्यथा में साझीदारी करते समय तदाकार होने की व्याकुलता भी उनकी कविताओं में है। प्रकृति और नारी का शोषण करने वाले शोषक मनुष्य के प्रति कवयित्री का तीखा भाव कृतित्व में परिणत न होने की प्रत्यक्ष दिशा न देख व्यंगात्मक रूप अख्तियार करता है। स्त्री और पुरुषों के बीच स्नेहमय सम्बन्धों के तिरोहित होते जाने की टीस उनकी कविता में उठती है। एकान्त अकेलेपन में दम घुटते जाने की व्यथा कवयित्री की कविता में तीव्रता से अभिव्यक्त हुई है। श्रीमती शर्मा की ये कविताएं अभिजात सभ्यता की अमानवीय आचरण संहिता से ऊब और कहीं जुड़ न पा सकने की दुर्बलता के बीच भी मानसिकता को अत्यंत तीखेपन से उकेरती हैं।

ये कविताएं दर्द को पचाकर उससे ऊपर उठकर लिखी गयी हैं, इसलिये इनकी तटस्थता को ठंडेपन का पर्याय नही समझना चाहिये: यह बर्फ का कड़ापन है, जो जल के घनीभूत होने से पैदा हुआ है। सामान्यतः कवयित्री मितव्ययी है, परंतु बार-बार यह एहसास होता है कि संवेदना को बौद्धिकता का जामा पहनाकर व्यक्त करने की आदत हावी होती जा रही है। द्रष्टव्य है कि मालतीजी बिंबों से अधिक प्रतीकों से काम लेती हैं। कहीं-कहीं यह भी आभास होता है कि कवयित्री वेदना के भोग में रस ले रही हैं या वक्रता को अतिरिक्त महत्व दे रही हैं, लेकिन कुल मिलाकर ये कविताएं उज्ज्वल संभावनाओं का सुखद प्रतीक्षा-भाव जगाती हैं।

—चंद्रकांत बांदिवडेकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नवनीत के अप्रैल-मई १९८१ के अंकों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित वीरेन्द्र कुमार जैन के पत्रात्मक लेख 'कविता में लौकिक और परालौकिक का विभाजन नहीं' पर तेजस्वी युवा साहित्यकार डॉ. मदनमोहन तरुण की महत्त्वपूर्ण टिप्पणी

□

लोक की परालौकिकता

वीरेन्द्र हैं, इसीलिये वासुदेव हैं; मैटर है, इसीलिये माइंड है; लोक है, इसीलिये परालोक है; दृश्य है, इसीलिये अदृश्य है और इससे भी महत्त्वपूर्ण यह है कि यहां जो भी है वह अपने से महत्तर की उपलब्धि का माध्यम है, जिससे जड़ लौह-यंत्र शक्ति-संपन्न होकर पृथ्वी, जल और आकाश पर निर्बाध गति की स्थापना से ही संतुष्ट नहीं है, संभावनाओं के अनंत मार्ग की ओर भी गतिशील है।

भारतीयों ने कभी इति शब्द का प्रयोग नहीं किया, उनका दर्शन 'नेति' वादी है, काम चलाने के लिए वे 'इत्यलम' का प्रयोग करते हैं, जो साधारण प्रयोग नहीं और न हर कोई इसके प्रयोग का अधिकारी है। अंत मनुष्य की भाषागत अक्षमता का परिणाम है जैसे परालौकिक की अस्वीकृति लोक-भीत मन की देन। यदि शरीर की सत्ता है, तो सौंदर्य की भी सत्ता है, यदि संभोग सत्य है तो उसका आनंद भी उतना ही सत्य है, वल्कि वह सत्य के सार्थक होने की स्थिति है जिसके बिना सर्जन संभव नहीं। चाहे यह प्राणी का सर्जन हो या प्राणी के मनोमय आनंद की मधुमती कविता का। यही है वह अपने आदिम मूल की प्राप्ति का सौंदर्यमय उद्वेलन जिससे वशिष्ठ 'योग वाशिष्ठ' की रचना कर सके और वीरेन्द्र कुमार जैन ने स्वयम को 'अनुत्तर योगी' में पाया।

परालौकिक कुछ भी नहीं है, वह लोक के समग्रतः जाग्रत प्राणावेग की आत्यंतिक दशा है जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान की स्थितियां विभाजित नहीं रह जातीं। प्राणों का आवेग शब्दों, अर्थों, शारीरिक उपस्थितियों में भीगता हुआ एक ब्रह्मांड-व्यापी झंकार बनकर विभिन्न रंगावेगों में वर्षित-हर्षित होने लगता है, इसी उद्दाम में श्रेष्ठ कृतियां जन्म लेती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। जिसके प्राणों में ऐसा आवेग जागा ही नहीं वह लिपिक हो सकता है, लेखक हो सकता है, परंतु सर्जक नहीं हो सकता, क्योंकि सर्जन जाग्रत साक्षात्कार की शरीर-भूत उपलब्धि है।

सामान्य स्तरों पर यौवन का वह उन्मद आवेग जो 'डिस्को' की उत्ताल तालों पर थिरक रहा है; यह शरीरों का खिल-खिलाता आवेग जो दूसरे में समाहित हो जाने के लिए बेचैन है; वह ललक भरी मुस्कान से भीगी आंखें जो इधर देख रही हैं; शरीर तरंगित महासागर बन चुका है; सौंदर्य की सिंदूरी वर्षा हो रही है; हर चीज़ भीग रही है; भीतर-बाहर, हर कहीं। आंगन के पार आंगन खुलते जा रहे हैं; वक्षों के उभार खुरदरे स्पर्श से थिरककर उड़ान भरने लगे हैं; शब्द अर्थों की सीमा लांघकर झंकार बन चुके हैं; सृष्टि के इस उषा-चुंबित शरदोत्सव में हम कहां हैं, कौन जाने! सृष्टि की सत्ता आनंदमय रंगोत्सव का उन्माद बनकर प्राणों में बह रही है—यही है लोक की परालौकिकता—जिसने इस स्थिति का कभी साक्षात्कार नहीं किया, वह जड़ है और जो इस स्थिति की सत्ता को अस्वीकार करता है उसका अभी जन्म ही नहीं हुआ। यही है सीमा में असीम का साक्षात्कार! डिस्को के देहोत्सव का ब्रह्मानंद। मगर यह इति नहीं है। हम एक कदम आगे बढ़ाते हैं और दूसरा दरवाज़ा खुल जाता है, उससे भी मनोरम, उससे भी असाधारण। इसीलिए श्रेष्ठ सृष्टि अपने रसावेश में क्षण-क्षण नवीन होती जाती है।

किंतु, यह रचना-धर्म का महज़ एक पक्ष है, समग्र संपूर्ण प्रतिमान नहीं। अब तक ऐसा संभव नहीं हो सका क्योंकि लोक और परालोक के प्रति आलोचकों की दृष्टि विभाजित तथा वर्गीय रही है, इसीलिये खंडित भी। हमारे अधिकतर आलोचक एकाक्षजीवी रहे हैं। ऐसे आलोचकों के पास ऐंद्रिक चेतना के विशिष्टतम साहित्यकार वीरेन्द्र कुमार जैन के मूल्यांकन का कौन-सा प्रतिमान है? आधुनिक विश्व साहित्य की महत्तर कृति 'अनुत्तर योगी' का आकलन किस निकष पर होगा या 'राम की शक्तिपूजा' के निराला की फिर से अवहेलना होगी?

ऐसे आलोचकों के सामने मैं स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि सृजन के स्तर पर लोक-इष्टि महज़ रोटी, कपड़ा और मकान का आंदोलन नहीं है—उस आदिम चेतना का सक्रिय, सर्जनात्मक आवेगपूर्ण संप्रेषण है, जिससे टॉल्सटॉय का घोड़ा करुणा और पीड़ा का तथा बोस्का मानवीय क्रूरता का प्रतिमान बन जाता है; कुप्रिन की जेनी महज़ बॉडी नं. २१७ नहीं रह जाती, गोर्की की मां आंद्रेई, फोदोर, सोफिया और खोखोल में अपने बेटे पावेल का साक्षात्कार करती हुई रूसी जीवन की पीड़ा से विदग्ध समग्र संसार के हाहाकारों के विरुद्ध करुणापूर्ण विप्लव बन जाती है, यह सिर्फ नारेबाज़ी से संभव नहीं। इसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिए उसी चेतना की आवश्यकता है, जिस आवेग में वीरेन्द्र कुमार जैन ने 'अनुत्तर योगी' की रचना की, टॉल्सटॉय ने 'वार एंड पीस' की, यशपाल ने 'झूठा सच' की और वशिष्ठ ने 'योग वाशिष्ठ' की। इन समस्त रचनाओं में एक ही अग्नितत्त्व सक्रिय है, जो मानव जाति की सनातन सक्रिय निधि बनती है। इनके अलावा जीवन के यथार्थ या वास्तवता को परिलक्षित करने वाले सर्जक में यदि यह अग्नितत्त्व है, तो वह टिक सकेगा, अन्यथा विनष्ट हो जायेगा। और, ऐसे लोगों के नष्ट होने से या जीवित रहने से निस्संदेह कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

दरअसल सर्जनात्मक क्षेत्र में भारतीय जीवन-दृष्टि कभी भी एकांत रूप से परालौकिक नहीं रही। हिंदुओं के आर्ष ग्रंथ ऋग्वेद में यमी यम से निर्द्वंद्व काम-याचना करती है; उसके लिए यम कोई सहोदर संबंध नहीं है मात्र एक पुरुष है। हिंदुओं के अवतार-पुरुष राम वाल्मीकीय रामायण में अपनी पत्नी के लंका-निवास के दौरान उनके छीजते यौवन और शिथिलोन्मुख स्तनों के कारण चिंताग्रस्त हैं, जयदेव की राधा विपरीत रति में रत है, राधा सुधा निधि का रचनाकार राधा के कठोर स्तनों से अपने को सजा देने की सिफारिश करता है, स्वर्ग की उर्वशी पुरूरवा की संगति पाकर धन्य होती है, देवताओं का राजा इंद्र अहल्या के सामने याचक हो जाता, तेजस्वी अग्निदेव ऋषि-पत्नियों को देखकर काम विकल हो उठते हैं—यह परलोक की लोक में और लोक की परलोक यात्रा का निरवधि विन्यास है।

यह वह स्थिति है जब राम में रामायण का आयोजन होता है; 'कुमार संभव' में शिव जन्म लेता है और पार्वती में निर्वाण प्राप्त करता है; वीरेन्द्र का वासुदेव अनुत्तर योग के महाकाश का विभ्राट रस-पुरुष बन जाता है; काशीमोडो के विकृत बाह्य शरीर में सौंदर्य-पिपासा का निर्झर फूट पड़ता है, और हेरियत विच स्टो टाम में अपना जन्म लेता है, इनसे नीचे जो हैं उनमें भी कई महत्त्वपूर्ण हैं, परंतु वे दरवाज़े पर दस्तक की तरह हैं। वहां समग्र जीवन के गतिमय विभ्राट का साक्षात्कार नहीं, जहां ईसा सूली पर चढ़ा है मगर चेतना के वातायन से दूरवर्ती क्षितिज को देख रहा है, जहां नया मनुष्य जन्म ले रहा है। सुकरात के विष का प्याला जीवन-सौंदर्य का महासागर बन गया है। यह प्रलयंकर घननाद है; विद्युत वज्रपात है, जिसके बिना शरद अजन्मा है।

यह परालौकिक चेतना का लौकिक साक्षात्कार है अथवा यह लोक की परालौकिकता है, शक्ति, संघर्ष तथा आनंद का शारीरिक साक्षात्कार है, प्राणों का मूर्त्तिकरण है, किंतु, प्रस्तरीकरण नहीं, ये जल और आलोक की मूर्तियां हैं। यह परालौकिक की लौकिकता है, जिसके बिना कोई रचना सार्थकता प्राप्त नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करती अर्थात् मिट्टी के विना फूल पैदा नहीं हो सकता, अथवा मिट्टी और फूल एक हैं।

फूल मिट्टी के आनंद की अभिव्यक्ति है, ठीक वैसे ही जैसे परलोक लोक के स्वप्नों की अभिव्यक्ति है। स्वप्न सत्य से महत्तर है, क्योंकि सत्य स्वप्नों के विना व्यर्थ है जैसे भविष्य के विना वर्त्तमान, सौंदर्य के विना शरीर।

ऐसी स्थिति में श्री वीरेन्द्र कुमार जैन का 'अनुत्तर योगी' विश्व साहित्य की अतुलनीय रचना तो है ही, अब तक के मूल्यांकन के समस्त प्रतिमानों को चुनौती और निकष की खोज भी है। अंत में मैं कहना चाहूंगा कि 'अनुत्तर योगी' लोक का परालौकिक साक्षात्कार है। वह अप्रतिम है, असाधारण है और अपने क्षेत्र में संसार की पहली रचना है।

अन्याय के विरोध का साहस

अंग्रेजों का दमनचक्र आरम्भ हो चुका था। नेहरूजी भी उन दिनों बरेली जेल में बंद थे। अंग्रेजों के बढ़ते अत्याचारों को देखकर अब उनके अंदर यह बात घर करने लगी थी कि गोरों के विरुद्ध छेड़े गये स्वाधीनता-संग्राम में भारत की विजय किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है।

एक दिन वे एकांत में बैठकर देश और आज़ादी की बातें सोच रहे थे। तभी उन्हें एक तरफ से कुछ बंदरों की चीख-पुकार सुनाई दी। नेहरूजी भी जिज्ञासावश उधर ही बढ़ गये।

जेल के सिपाहियों ने कौतूहलवश बंदर के एक बच्चे को पकड़कर उसके गले में रस्सी बांध दी थी और उसे कैद कर लिया था। मगर ज्योंही बंदरों को इसकी सूचना मिली, वे जेल की दीवार फांदकर एक ही साथ अंदर कूद पड़े और 'खों-खों' करके सबको डराना-धमकाना शुरू कर दिया। उनकी चीख-पुकार से जेल के लोगों में भगदड़ मच गयी।

तभी दो हट्टे-कट्टे बंदर उस स्थान पर आ पहुंचे, जहां उनके नन्हे साथी को बंदी बनाकर रखा गया था। सिपाही समेत सभी लोग वहां से नौ दो ग्यारह हो गये। दोनों बंदरों ने अपने साथी के गले की रस्सी खोली और उसे अपने साथ लेकर वापस लौट पड़े।

नेहरूजी ने यह दृश्य देखा तो उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। उनके दिल-दिमाग से उदासी और निराशा के बादल छंट गये और आशा का संचार हुआ। उन्होंने देख लिया था कि अगर अन्याय का विरोध साहसपूर्वक किया जाये तो विजय जरूर हासिल होती है। पं. नेहरू भी दूनी हिम्मत के साथ स्वाधीनता-संग्राम में कूद पड़े।

—भगवती प्रसाद द्विवेदी, पटना-८००००१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निरंकार सिंह का सामयिक चिन्तन

असली संकट कहां है?

आज दुनिया का कोई भी देश विज्ञान और तकनीक के बिना आगे नहीं बढ़ सकता है। इसीलिये आज़ादी के बाद ही नेहरू और भाभा ने कहा था कि गरीबी और भुखमरी विज्ञान और तकनीक के द्वारा दूर की ज़ा सकती है। किंतु आज हम जनजीवन के संदर्भ में विज्ञान और तकनीक की उपलब्धियों पर विचार करते हैं तो निराशा होती है। आज हमारा देश भयानक रूप से ऊर्जा संकट की चपेट में है और देश की आर्थिक प्रगति भी रुक गयी है।

संसार में हम इतने दीन-हीन नहीं हैं। हमारे पास लोहा है, कोयला है, थोरियम है, अभ्रक है, मैगनीज़ है तथा अन्य प्राकृतिक संपदाओं का भी विपुल भंडार है, किंतु फिर भी हम गरीब हैं। हमारे देश के पास प्रतिभाओं की भी कमी नहीं रही है। रामानुजन, जगदीशचंद्र बोस, चंद्रशेखर वेंकटरमन, सत्येंद्र नाथ बोस, मेघनाथ साहा और डा. भाभा जैसे वैज्ञानिक उस समय पैदा हुए थे जब यह देश परतंत्रता के बंधनों में जकड़ा था। किंतु आज़ादी के बाद हम एक भी अंतरराष्ट्रीय स्तर का वैज्ञानिक अपने देश में पैदा नहीं कर सके हैं। इसका यह अर्थ है कि हम अपनी धरती पर ऐसा सामाजिक और वैज्ञानिक वातावरण नहीं पैदा कर सके हैं जिसमें इस प्रकार के बीज बोये जा सकते हों। हालांकि आज़ादी के बाद पंडित नेहरू ने डा० भाभा और शांतिस्वरूप भटनागर जैसे वैज्ञानिक की खोज करके उन्हें देश के निर्माण में लगाया था, किंतु वे इस प्रकार का बीज नहीं बो सके जो किसी भी देश की प्रगति का बुनियादी आधार होता है। यही कारण है कि सब कुछ होते हुए भी आज हमारा देश नितांत गरीब है।

हमारे पास प्रतिभाओं और साधनों की कमी नहीं है। हम अपने देश के लोगों की मूलभूत आवश्यकताएं विज्ञान और तकनीक के द्वारा अपनी प्राकृतिक एवं खनिज संपदा का सफलतम ढंग से अधिकतम उपयोग करके, राष्ट्रीय उत्पादन को बढ़ाकर तथा जनसंख्या को नियंत्रित कर पूरी भी कर सकते हैं। किंतु हम ऐसा कर नहीं रहे हैं।

आज भी हमारे देश के विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में ऐसे विषयों पर अनुसंधान होता है जिनका इस धरती की आवश्यकताओं से कोई तालमेल नहीं है। इससे बढ़कर और दूसरा आश्चर्य क्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होगा कि भारत में भी पश्चिमी देशों के ही अनुरूप ऐसे सैद्धांतिक विषयों पर शोध कराया जाता है जिसका हमारे लिए फिलहाल कहीं कोई उपयोग नहीं है। हमारे यहां के विज्ञान-नीति के निर्माता यह समझने तक का प्रयास नहीं करते हैं कि विकसित और विकासशील देशों की जरूरतें अलग-अलग होती हैं। आज़ादी के इतने साल के बाद भी देश का अरबों रुपया विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में होने वाले शोध पर पानी की तरह बहाया जाता है। देश के कर्णधारों, शिक्षाविदों के साथ-साथ यह हमारे विज्ञान-नीति निर्माताओं के दिवालियेपन का ही प्रतीक कहा जायेगा कि हम अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं के अनुरूप अभी अपनी दिशाओं की भी पहचान नहीं कर सके हैं। वस्तुतः असली संकट भी यही है।

देश की आवश्यकताओं और उपलब्ध साधनों के बीच वैज्ञानिक और टेक्नोलाजी क्षमता के अंतर की वजह से, आज नयी कल्पना और नयी दृष्टि की आवश्यकता है। किंतु यह लगता है कि निकट भविष्य में हमारे देश की वैज्ञानिक और टेक्नोलाजी क्षमता में कोई व्यापक विस्तार होने वाला नहीं है।

आधुनिक टेक्नोलाजी, नियमबद्ध वैज्ञानिक अनुसंधान से लाभ उठाना और विकास कार्य आज देश की प्रमुख आवश्यकता है जो उद्योगों और अन्य औद्योगिक प्रक्रियाओं को सुनिश्चित रूप देने के लिए जरूरी भी हैं। नियमित ढंग से नयी टेक्नोलाजी अपनाकर ही तेज़ी से आर्थिक विकास हो सकता है। व्यापार की होड़ में आगे बढ़ने की क्षमता हासिल हो सकती है। समय-समय पर टेक्नोलाजी में परिवर्तन लाने के लिए निरंतर जांच और शोध प्रक्रिया आवश्यक है। अतिरिक्त और उच्च जानकारी से ही उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। नयी टेक्नोलाजी अपनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाये कि देश की आवश्यकता के अनुरूप नयी टेक्नोलाजी हो। यह भी देख लिया जाये कि विदेशी टेक्नोलाजी पुरानी तो नहीं पड़ गयी है या अपनाने के कुछ वर्षों बाद कहीं बेकार तो नहीं हो जायेगी।

निर्भरता कम करने के लिए हमें अपनी अनुसंधान सुविधाएं विकसित करनी चाहिये। यह बात गैर सरकारी क्षेत्र, कृषि, स्वास्थ्य और वातावरण तथा ऐसे सभी क्षेत्रों पर लागू होती है जिनमें अनुसंधान करने से तत्काल लाभ पहुंचेगा। यहां तक कि छोटे पैमाने की टेक्नोलाजी के लिए भी जिसमें काफी लोगों की रुचि है, महत्वपूर्ण प्रारंभिक कार्य आवश्यक है जिससे कि व्यर्थ के कार्य पर खर्च से और बाद में निराशा से बचा जा सके। यह वैज्ञानिक प्रारंभिक कार्य संबद्ध विकासशील देश की आवश्यकता विशेष और परिस्थितियों के अनुरूप होना चाहिये।

तेज़ी से अनुसंधान और विकास कार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की आवश्यकता पिछले दशक से काफी महसूस की जा रही है।

देश के विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में होने वाले अनुसंधानों को तत्काल बंद करके सर्वप्रथम हमें अपनी आवश्यकताओं की प्राथमिकताएं तय करनी चाहिये और फिर अनुसंधान की दिशाएं तय करनी होंगी। इसके लिए क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर के ऐसे विशेषज्ञों की एक समिति बनायी जा सकती है जो हमारी आवश्यकताओं की प्राथमिकताएं तथा उपलब्ध साधनों के आधार पर समाधान का आधार तैयार कर सके।

हमारे देश ने कृषि, चिकित्सा, इलेक्ट्रोनिक्स, संचार, पारमाणविक, ऊर्जा, प्रतिरक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में महान् उपलब्धियां प्राप्त की गयी हैं। हरितक्रांति, पोखरन विस्फोट, आर्यभट कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो प्रमाणित करते हैं कि आवश्यक सहायता प्राप्त होने पर भारतीय वैज्ञानिक सफलतापूर्वक समयबद्ध कार्यक्रमों को लागू कर सकते हैं। किंतु हमारा प्रश्न यह है कि गत तीन दशकों के नियोजित विकास के बावजूद क्या भारतीय विज्ञान एवं टेक्नोलाजी हमारे देश की परिस्थितियों के लिए पूर्ण उपयोगी साबित हुई है? हमारे देश का अधिकांश वैज्ञानिक ढांचा ब्रिटिश ढांचे पर आधारित है। हमारे औद्योगीकरण का ढांचा मुख्यत: आयातित टेक्नोलाजी पर निर्भर है। यहां तक कि इस्पात के उत्पादन से लेकर टूथपेस्ट और जूते की पालिश के उत्पादन के लिए हमने विदेशी फर्मों से ५००० से अधिक समझौते किये हैं। पश्चिमी टेक्नोलाजी पूंजी एवं ऊर्जा केंद्रित है। उसका उद्देश्य श्रमिकों का कम उपयोग करते हुए अधिकाधिक उत्पादन तथा मुनाफाखोरी है।

भारत में पूंजी एवं ऊर्जा कम है जबकि जनशक्ति प्रचुर है। हमें ऐसी देशी तकनीक का विकास करना चाहिये, जिससे अधिकाधिक लोगों को काम मिले और जो आम जनता की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम हो।

जनता की आवश्यकताओं, राजनीतिज्ञों की घोषणाओं तथा सरकार की नीतियों में भारी अंतर है। एक ओर तो कहा जाता है कि हमारी पहली आवश्यकता खाद्यान्न, पानी, आवास, कपड़ा, स्वास्थ्य तथा सफाई की है तो दूसरी ओर हम ऐसी तकनीक का आयात करते हैं जिसका मुख्य उद्देश्य देश के ५ प्रतिशत अथवा १० प्रतिशत समृद्धशील व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। हम पश्चिमी देशों की प्रतियोगिता एवं नकल के लिए विज्ञान एवं तकनीक का उपयोग करते हैं और प्राय: ऐसे मद पर धन और जनशक्ति लगा देते हैं जिनसे लाभ संदिग्ध ही रहता है।

वर्तमान समय में प्राकृतिक साधनों की खोज, उपयोग तथा प्रबंध की जिम्मेदारी अलग-अलग विभिन्न मंत्रालयों, विभागों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा अभिकरणों पर है। उनमें ताल-मेल अथवा पारस्परिक निर्भरता के अभाव में प्राकृतिक साधनों का ठीक से उपयोग नहीं हो पाता। इस व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिये तथा समग्र रूप में प्राकृतिक साधनों की खोज तथा प्रबंध के लिए नियोजन आयोग के अंतर्गत समन्वय आयोग की स्थापना होनी चाहिये, जिनमें विभिन्न क्षेत्रों के अनुभवी एवं विशेषज्ञ पूर्णकालिक सदस्य हों। यह आयोग राष्ट्रीय नीतियों का निर्धारण, रोज़गारपरक शिक्षा आदि कार्य करेगी।

समन्वय आयोग का मुख्य कार्य निम्नलिखित होना चाहिये –

कार्यरत अभिकरणों के परामर्श से राष्ट्रीय नीतियों, प्राथमिकताओं एवं समाकलित लघुकालिक एवं दीर्घकालिक योजनाओं का निर्धारण प्राकृतिक साधनों की खोज, उपयोग तथा प्रबंध के लिए आवश्यक कोष का आंकलन, रोज़गारपरक शिक्षा तथा जनशक्ति के उपयोग के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की योजना तैयार करना, विभिन्न संगठनों, शोध संस्थानों, विश्वविद्यालयों आदि में शोध एवं विकास कार्यों का सर्जन तथा समन्वय, समय-समय पर कार्यों का मूल्यांकन, पुनरावलोकन तथा परिमार्जन आदि।

राज्य एवं ज़िला स्तर पर भी समन्वय समिति या संगठन की स्थापना की जाये, जो केंद्रीय आयोग की नीतियों एवं कार्यक्रमों के अनुसार कार्य करे।

जिला स्तर पर प्राकृतिक साधनों के विकास के कार्यक्रम तथा नियोजन के लिए प्रमुख सर्वेक्षण संगठन तथा शोध संस्थान योग्य तथा अनुभवी वैज्ञानिकों और प्राविधिकों की व्यवस्था करे।

इन संगठनों के गठन में देश के विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं और अनुसंधान केंद्रों से एक-एक वैज्ञानिक को लिया जा सकता है। संगठन के अध्यक्ष किसी अनुभवी वैज्ञानिक को बनाकर जिला स्तर पर अनुसंधान और विकास के कार्य करने की आज आवश्यकता है।

यदि हम अपने विगत वर्षों के अनुभवों का लाभ उठाकर क्रांतिकारी कदम नहीं उठाते तो भविष्य में हमारी हालत बद से बदतर हो जायेगी।

विश्व के प्राकृतिक साधन सीमित हैं। भूमि, मिट्टी, पानी और वनों जैसे साधनों का नवीनीकरण किया जा सकता है, किंतु खनिज पदार्थ, कोयला, पेट्रोलियम पदार्थों आदि का नवीनीकरण नहीं किया जा सकता यद्यपि उनके विकल्प ढूंढे जा सकते हैं।

समुद्र तल के साधनों की अभी तक तो पूरी खोज नहीं हुई। हमारे देश में जनशक्ति विशेषज्ञों और प्राकृतिक साधनों की कोई कमी नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी प्राथमिकताएं निर्धारित करें और उसके अनुसार शीघ्र कदम उठायें।

–सन्मार्ग दैनिक, वाराणसी, उ. प्र.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खड़खड़ाहट नये कागज़ की

पुष्पारानी गर्ग

कुछ दिनों पहले की बात है, हमारे शहर में आकाशवाणी ने एक कवि गोष्ठी आयोजित की थी। एक कवि महोदय एकदम नये ताज़ा हृष्ट-पुष्ट कागज़ पर अपनी कविताएं लिखकर लाये थे। वे कविता-पाठ करने बैठे। जब बीच-बीच में वे पृष्ठ पलटते तो कागज़ की बड़ी तीखी खड़खड़ाहट सुनायी देती। कानों को लगता कि काव्य की सुंदर स्वरलहरी में जैसे कोई अपनी अड़ियल ध्वनि से व्यवधान उत्पन्न कर रहा हो। हमें कागज़ की उस खड़खड़ पर गुस्सा आ रहा था। परंतु इसमें बेचारे कागज़ का क्या दोष ! कागज़ तो कागज़ है, चाहे नया हो या पुराना। फिर भी नये कागज़ का आकर्षण अलग ही चीज़ है। नया कागज़, उसकी खड़खड़ाती बर्फ़-सी श्वेत आभा, लगता है जैसे कोई नवयौवना सुंदरी बार-बार अपने यौवन का संदेश दे रही हो। आप ही बताइये कोई पुराना पीला कागज़ यदि आपको थमा दे और उसमें कितना भी सुंदर लेखन क्यों न हो, आपको लगेगा जैसे कोई पीलिया का मरीज़ आपके सामने खड़ा हो और अपनी रक्तहीनता के कारण स्वयं अपना ही बोझ सम्हालने में असमर्थ हो।

कागज़ नया होगा तो खड़खड़ायेगा ही। नये-नये नोट भी तो बहुत खड़खड़ाते हैं। कोई रात्रि के नीरव एकांत में अपने कमरे में बैठकर जब नये नोटों की गिनती करता है तो उनकी खड़खड़ाहट से पड़ोस के कमरे के लोग भी चौकन्ने हो उठते हैं। नये नोटों की तो बात ही क्या है! जो नया-नया नोटवाला होता है, वह भी बात-बे-बात, वक्त-बे-वक्त खड़खड़ाता ही रहता है। उसकी बातचीत, उसके रंग-ढंग, उसकी चाल-ढाल, उसकी हर अदा इस खड़खड़ाहट से युक्त होती है। नयेपन की खड़खड़ाहट है ही ऐसी चीज़ कि अच्छे-अच्छे उसके आगे नतमस्तक हो जाते हैं। नया नोट जिधर चलेगा सब उसकी खड़खड़ाहट के शिकार हो जायेंगे। किसी को पांच का पुराना नोट पाकर भी शायद उतनी खुशी न होती होगी जितनी कि नये करारे एक के नोट को देखकर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नया नोट देखकर अच्छे-अच्छे की तबियत ऐसे मचल उठती है जसे किसी भिखारी के मुंह में मिठाई देखकर पानी आ गया हो। पुराना नोट तो लोग ऐसी बेकद्री से वापस करते हैं जैसे वह नोट छपे मूल्य से कम कीमत का हो।

खैर! नोटों की खड़खड़ाहट की तो बात ही और है, परंतु ज़माने में खड़खड़ाहटें और भी हैं, नोटों की खड़खड़ाहट के सिवा! आज की नयी पीढ़ी को ही देखिये वह किस कदर खड़खड़ करने लगी है। उसे किसी भी पुराने से समझौता करना पसंद नहीं। भला वह भी कोई जवानी है जिसमें खड़खड़ाहट न हो, कोई उत्तेज़ना न हो, कोई आक्रोश न हो। नयी पीढ़ी को सीधी-सीधी राह चलना गवारा नहीं। अगर कोई सीधा-सा युवक अनुशासन में बंधा चलता दिख भी जाये तो मनचले नवयुवक कह उठते हैं—'देखा... साले को.....! जैसे सौ साल का पुराना चिथड़ा घिसट रहा हो!' सच है, नयी पीढ़ी की इस खड़खड़ में जो अपना स्वर नहीं मिलाता उसका स्वागत इन्ही खड़खड़ाते वाक्य-बाणों से होता है।

नयी वस्तुएं तो खड़खड़ाती ही हैं, परंतु आश्चर्य तो तब होता है जब पुरानी वस्तुएं भी खड़खड़ करने लगती हैं। आप देखेंगे कि पतझड़ के मौसम में खुश्क हवा के साथ-साथ पत्तों की बेतरतीब खड़खड़ कितना कर्णेंद्रियों को खड़खड़ाती है। हरे पत्ते तो हवा में झूलते रहते हैं, चूं तक नहीं करते, लेकिन सूखे पत्ते ज़ोरों से खड़खड़ करते ज़मीन पर गिरते हैं। और साहब इस पुरानी पीढ़ी की खड़खड़ की तो बात ही क्या! तंबाकू का बीड़ा नकली बत्तीसी में दबाये ये बूढ़े-बुढ़िया जब देखो तब खड़खड़ करते ही रहते हैं। कभी नये ज़माने को कोसेंगे, कभी नयी जवानी को। कभी बेटे-बहुओं को कोसेंगे, कभी पोते-पोतियों को। कभी नये फैशन को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोसेंगे, कभी बढ़ती हुई महंगाई को। इनके पास आपको रात-दिन, चौबीसो घंटे खड़खड़ करने का मसाला मिल जायेगा। एक बार जो इनकी रामायण शुरू हो गयी तो उसका अथ और इति खोजते-खोजते आप स्वयं भी खो जायेंगे।

महंगाई पर ज़माने को कोसते हुए दादाजी कहेंगे—'राम राम! कैसा ज़माना आ गया है। हमारे ज़माने में तो रुपये का दस सेर दूध मिलता था और रुपये का दो सेर असली घी। अब तो डालडा का ज़माना है और वक्त पर वह भी नसीब नहीं होता।' इधर बूढ़ी दादी जवान पोती की हरकतों पर खड़खड़ करती रहती हैं—'हे परमात्मा क्या ज़माना है! कैसा कलजुग है! आजकल की छोकरियों ने शरम-हया तो बिलकुल बेच खायी है। जवान छोकरों के साथ कालिज में पढ़ने जावें हैं, छोकरों जैसी ड्रैस पहनें हैं। हमें बतावें हैं कि दादी, यह हमारा बाय फ्रेंड है। हे राम। इस घोर कलजुग में क्या होने वाला है!' वो लाड़ली बिटिया दादी की इस खड़खड़ को यूं टाल देती है जैसे कान के पास से कोई हवा का झोंका लहराता गुज़र गया हो। सच तो यह है कि नये पुरानों से असंतुष्ट हैं और पुराने नयों से। दोनों की खड़खड़ बदस्तूर जारी है परंतु समझौते की कोई राह नहीं दीखती।

आजकल एक और नयी खड़खड़ सुनायी देने लगी है—वह है राजनीति की।

उसकी तो जैसे घड़ी भी फेल हो गयी है। पहले पांच साल में खड़खड़ाती थी परंतु अब तो चाहे जब खड़खड़ाने लगती है। जहां देखो इसकी खड़खड़ के सामने और सारे शोर फीके पड़ गये हैं। एक से एक बड़े योद्धा, एक से एक बड़े दूकानदार इसके मैदान में आ डटे हैं। सब अपनी-अपनी दूकान के माल को सर्वश्रेष्ठ बताने में व्यस्त हैं। कोई सुने न सुने, ये ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाये जा रहे हैं— 'हर माल ले लो चार आना। सफेद टोपी चार आना, लाल टोपी चार आना। काला कोट चार आना, सफेद अचकन चार आना। सफेद धोती चार आना। सफेद पाजामा चार आना।' एक कहता है 'ले लो लंगोटी चार आना।' ग्राहक उनकी कानफाड़ खड़खड़ में भौंचक्का-सा खड़ा सोचने लगता है कि मुझे आखिर कुछ लेना भी है या नहीं; और यदि कुछ लेना नहीं था तो फिर इस बाज़ार में आया क्यों? फिर भी दूकानदार क्या कोई मामूली आदमी है। वह सेल्समैन ही क्या जो ग्राहक को बैरंग लौटा दे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आपको राजी-बे-राजी, ज़रूरत-बे-ज़रूरत कुछ तो खरीदना ही पड़ेगा। इतने में आप देखेंगे कि युद्ध का उद्घोष करने वाले कई कृष्ण पैदा हो गये हैं। अर्जुन तो कहीं दिखायी नहीं पड़ता, परंतु वे पुकार-पुकार कर कह रहे हैं–'सर्व धर्मान् (पार्टीन्) परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजः। अहं त्वां सर्व पापेभ्यो (?) मोक्षयिश्यामि मा शुच।' नया अर्जुन परेशान है कि वह अकेला और इतने सारे कृष्ण ! वह किसकी शरण में जाये ? किसको अपने जीवन-रथ का सारथ्य सौंपे ?

अजीब आफत है। खड़खड़ न हुई नक्कारखाने की ठमकार हो गयी। सारा ज़माना ही नक्कारखाना बन गया है। बेचारी तूती का क्या बस ! वह अपनी सारी खड़खड़ भूलकर चुपचाप सोच रही है कि अब क्या करे, किधर जाये ?

लेकिन , साहब ! एक खड़खड़ाहट ऐसी भी है जो न शोर करती है, न तूती बजाती है, न चिल्लाती है। वह नीरव एकांत में अपनी निःशब्द मुखरता से आपकी सुप्त आत्मा को जगाती है। ज़माने की सब खड़खड़ाहटों से जैसे-तैसे पिंड छुड़ाकर जब आप एकांत में कुछ सुस्ताना चाहते हैं तो यह मौन खड़खड़ आपको कुरेदने लगती है। वह बड़ी शान से कहती है– 'ज़माने से चाहे जितना भाग लो पर मुझसे भाग कर कहां जाओगे ?' वह आपके आमने-सामने खड़े होकर दिन भर का लेखा-जोखा मांगती है और पूछती है– 'मित्र, तुम्हें जो सांसें उधार मिली हैं उनका क्या हिसाब है ? कितनी काम आयीं और कितनी बेकार गयीं ?'

है किसी में हिम्मत जो उसके प्रश्नों का सही-सही उत्तर दे !

–द्वारा श्री राधेश्याम गर्ग एडवोकेट,
भँवर कुआ चौराहा, इंदौर, म. प्र.

□

प्लेटो के ज़माने से बहुत-से दार्शनिकों ने ईश्वर के अस्तित्व और अमरता के प्रमाण देने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती दार्शनिकों के प्रमाणों में गलतियां निकालीं—संत टामस ने संत एनसेलम के प्रमाणों का खंडन किया, और कांट ने देकार्त के प्रमाणों का — और उन्होंने अपनी ओर से नये प्रमाण प्रस्तुत किये, जिन्हें सही साबित करने के लिए उन्हें तर्क-शास्त्र को झुठलाना पड़ा, गणित-शास्त्र को रहस्यमय बनाना पड़ा, और अपने मनों में गहरे धंसे हुए अंधविश्वासों को ईश्वरीय ज्ञान का नाम देना पड़ा।

–बर्ट्रेंड रसल

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

वंदे नवघनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
सानंदं सुंदरं युद्धं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ।।

प्रकृति से परे अत्यंत पवित्र आनंदस्वरूप रेशमी
पीतांबर धारण करनेवाले एवं नव जलद कांतिमय
भगवान श्रीकृष्ण की म वंदना करता हूं ।

— श्रीनारद पंचरात्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब भगवान मेरे जीवन में आये :

संत कबीर

कबीर जन्म से हिंदू थे या मुस्लिम, यह विवाद आज तक हल नहीं हो सका है। लेकिन, यह बात निर्विवाद है कि उनका लालन-पालन एक मुस्लिम जुलाहा-परिवार में हुआ था। बड़े होकर उन्होंने भी यही पेशा अपनाया। अनपढ़ और सीधे-सादे छोटे कबीर ने अपने पदों में लोभ-मोह, बुराई-भलाई, सुख-दुःख की उलझन को बड़ी सहजता और सरलता से हलकर, बड़ी बातें कही हैं।

एक दिन सौ के करीब फ़कीर कबीरदास के घर आये और कहने लगे, 'भाई साहब, हम सब एक दिन के भूखे हैं। किसी ने हमें भोजन नहीं दिया। सबने आपका ही नाम लिया, और कहा कि आप जैसे महात्मा ही हमारे भोजन की व्यवस्था कर सकते हैं। सुना है, जो आपके पास आता है भूखा नहीं लौटता।'

कबीरदास परेशान। घर में अन्न का एक दाना भी नहीं था। कोई और ऐसी वस्तु भी न थी, जिसे बेचकर सौ से अधिक फ़कीरों के भोजन की व्यवस्था की जा सके। उन्हें निराश वापस भेजने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। वे दुखी मन से अपनी बीवी लोई के पास गये। लोई ने उनसे कहा, 'स्वामी ! यदि आप मेरी बात मान लें, तो फ़कीरों के भोजन की व्यवस्था हो सकती है। मगर शर्त यह है कि मेरा सुझाव सुनकर आप मुझ पर अप्रसन्न नहीं होंगे।'

'मैं तुम्हारा सुझाव सुनकर अप्रसन्न क्यों होने लगा ?' कबीर ने कहा।

'बाज़ार में एक साहूकार है, जो काफ़ी दिनों से मेरे ऊपर लालायित है। उसने एक बार मुझसे कहा था कि यदि मैं एक बार उसकी मनोकामना पूरी कर दूं तो वह मुझे स्वर्णाभूषणों से लाद देगा। तब मैं उस पर थूककर चली आयी थी। यदि आप राज़ी हों, तो मैं उसकी मनोकामना पूरी करके उससे सोने के ज़ेवर और भोजन के लिए ज़रूरी रक़म ले आऊं।'

कबीर कुछ देर तक सोचते रहे। फिर बोले, 'मेरा तो सारा जीवन परमात्मा को ही समर्पित है। यदि उसकी यही इच्छा है, तो तुम यही करो। इतना ही नहीं, मैं खुद तुम्हारे साथ चलकर तुम्हें उस साहूकार के घर पहुंचा आऊंगा।'

फ़कीरों से कुछ समय तक प्रतीक्षा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करने के लिए कहकर कबीर अपनी बीवी को लेकर साहूकार के घर चले। साहूकार के पास पहुंचकर, उन्होंने साहूकार से कहा, 'मुझे मालूम पड़ा है कि आप मेरी बीवी के साथ कुछ समय बिताने के इच्छुक हैं। वह आज रात को आपके पास आ जायेगी। मगर, उसके पहले आपको हमें सौ फ़कीरों के भोजन के लायक सामग्री भेजनी होगी, ताकि हम अपने घर आये सौ फ़कीरों को खिला सकें। उनके भोजन के पश्चात्, मैं स्वयं अपनी बीवी को लेकर आपके पास आऊंगा।'

साहूकार कबीर की बात सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि कबीर स्वयं अपनी पत्नी को लेकर उसके पास आया है। उसने सौ फ़कीरों के भोजन की व्यवस्था करा दी।

घर आकर लोई ने सौ फ़कीरों के लिए खाना बनाया। फ़कीरों ने छककर उसके हाथ का बना स्वादिष्ट खाना खाया।

फ़कीरों के जाने के बाद, कबीर अपनी बीवी को लेकर साहूकार के घर चले। साहूकार बड़ी व्यग्रता से लोई की प्रतीक्षा कर रहा था। तेज़ वर्षा हो रही थी, और उसे अधिक आशा नहीं थी कि कबीर लोई को लेकर आयेंगे ही। मगर जब उसने दोनों को आते देखा तो उसे संतोष हुआ कि उसने कबीर की बात पर विश्वास करके, खाने का सामान देकर भूल नहीं की थी।

लोई को साहूकार के घर छोड़कर कबीर अपने घर लौट आये।

उधर, साहूकार ने लोई को पहनने के लिए नये-नये वस्त्र और मूल्यवान आभूषण दिये। जब तक लोई इन वस्त्रों और आभूषणों को धारण करती रही, तब तक वह कमरे के बाहर चक्कर लगाता रहा।

तभी, उसने सुना कोई बाहर का दरवाज़ा खटखटा रहा है। उसने जैसे ही दरवाज़ा खोला, वह यह देखकर डर गया कि बाहर नगर का कोतवाल खड़ा है। कोतवाल ने उसे देखकर डांटकर कहा, 'एक तरफ़ खड़े हो जाओ। मुझे तुम्हारे घर की तलाशी लेनी है। मेरे पास शिकायत आयी है कि तुमने अपने घर में चोरी का सामान छिपा रखा है।' कोतवाल के हाथ में घर की तलाशी का वारंट था।

कोतवाल जब अंदर पहुंचा, तो उसने लोई को वहां देखा। उसने आश्चर्य से कहा, 'अरे, तुम तो कबीर की बीवी हो। तुम यहां क्या कर रही हो? शायद इस बदमाश साहूकार ने तुम्हें ज़बरदस्ती यहां बंद कर रखा है। मैं अभी इस शैतान को ठीक करता हूं।'

कोतवाल की यह बात सुनकर साहूकार थर-थर कांपने लगा। कोतवाल ने उससे पूछा, 'तुमने एक पराई औरत को अपने यहां क्यों नज़रबंद कर रखा है? क्या तुम यह नहीं जानते कि यह भक्त कबीर की बीवी है?'

साहूकार कोतवाल को यह बताने में असमर्थ रहा कि लोई उसके घर में क्या

(शेषांश पृष्ठ ४२ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उर्दू के विख्यात साहित्य-चिन्तक और समीक्षाकार तथा संस्कृत, फारसी, अरबी, हिन्दी, अंग्रेजी, रूसी आदि अनेक भाषाओं के साहित्य-मर्मज्ञ डॉक्टर ज़ोए अन्सारी का जीवनी - परक लेख

□

प्रेमकथा महाकवि जोश मलीहाबादी की

हाथ-पांव, खान-पान, खानदान माहौल और तबियत की उठान—ये हैं वो

डॉ. ज़ोए अन्सारी

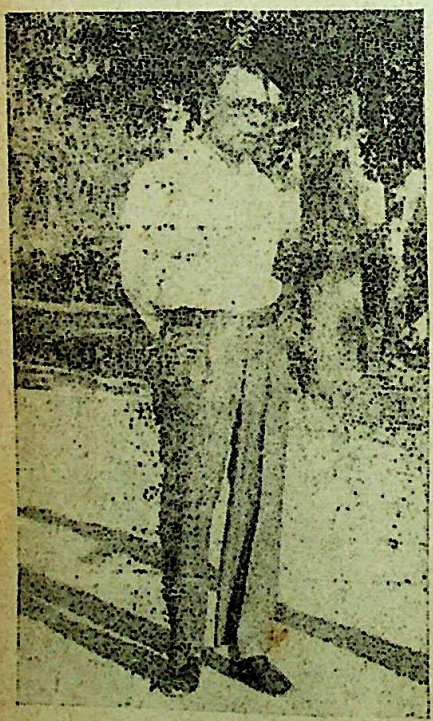

अनासिर जिन पर किसी की हयाते-माशका के उतार-चढ़ाव का दारोमदार होता है।

शबीर हसन खान जोश मलीहाबादी को कुदरत के उन तमाम अनासिर का भरपूर हिस्सा मिला और ऐसा मिला कि उनकी प्रेम-कथा खुशबाशी, ज़िंदादिली और रंगारंगी से भरी नज़र आती है।

जोश के मुआसिर जिगर मुरादाबादी एक ज़माने तक जोश को इस बिना पर सच्चा शायर नहीं मानते थे कि आशिकी का दर्द, या वो क़ैफ़ियत जिसे सोज़ोगुदाज़ कहते हैं, उनके यहां नापैद थी। खुद जोश का कहना है की उन्होंने अठारह बार इश्क किया और हर बार 'कामयाब' रहे। कामयाबी का मफहूम उनके नज़दीक ये है कि हर बार खुद जोश से इश्क किया गया, हर बार वो चाहे गये। वो आशिक नहीं, महबूब रहे और उनके करख्त पठनपन को ज़िंदगी की ये नर्मी रास आयी, शेर के बहुत सारे मौज़ू और सांचे दे गयी।

'मैंने कुए-बुतां में जिस क़दर भी अपनी दौलत, सेहत, जवानी और ज़िंदगी मुट्ठी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भर-भरकर लुटाई है उस से कहीं ज्यादा ज़हनी कमाई कर चुका हूं। और मुखड़ों के खदो-खाल चुन-चुनकर मैंने अपने गर्दों पेश इस क़दर अज़ीम सरमाया जमा कर लिया है जिसे आज तक घर बैठे खा रहा हूं और मरते दम तक खाता रहूंगा।'

शादम अज़ ज़िन्दगी-ए खेश के कारे करदम,
(यादों की बारात)

यानी हर एक जिस्मानी दिली बंधन को उन्होंने 'ज़हनी कमाई' का ज़रिया बना डाला। फनकार की यही ज़हनी कमाई होती है, जिससे बाद वालों को कुछ विरसा पहुंचता है। ये हमेशा से होता आया है और ये भी होता आया है कि मुआसरिन और बाद वाले इस टोह में लग जाते हैं के मुस्सनिफ का या फनकार का बर्ताव उन खुले या ढके मामलात में कैसा रहा। आज के राज़ कल के अफ़सानें बनते हैं और इन अफ़सानों के रंग महफिलें सजाने के काम आते हैं।

जोश ने अपनी जीवनी में अठारह मज़ाशके गिनाये हैं। नामों के शुरू के हर्फ़ और कुछ धुंधला-सा अता-पता देकर गोया १८ धुआंधार आशिकाना मामलात के सच्चे होने की मोहर (मोहरे तसदीक) भी लगा दी है। कमो-बेश ३५ साल पर फैले हुए उन अठारह रंगीन वाक़यात के अलावा आये दिन के रवां-दवां रूमान या मशग़ले भी हमारे इल्म में हैं और जोश को उनसे भी इंकार नहीं। हमारी दिल-

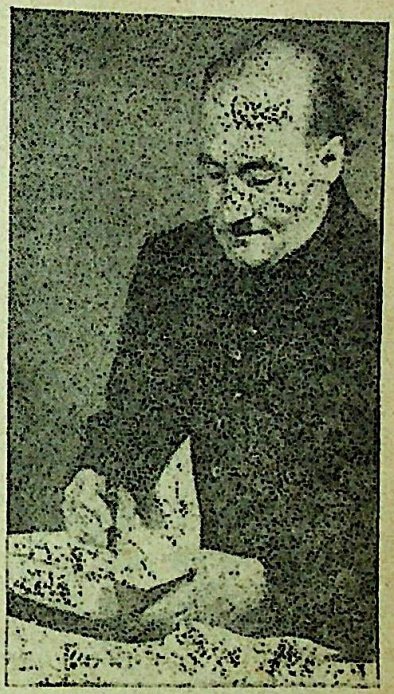

महाकवि जोश मलीहाबादी ने अपनी यह तस्वीर ख़ास तौर पर अन्सारी साहब के लिये खिचवाकर उन्हें दी थी

चस्पी उनके बर्ताव से है तो खुद उस बर्ताव का पस मंज़र पहले ज़हन में रखें। वो अपने चहीते खानदानी वतन कस्बा मलीहाबाद के बारे में लिखते है :

'हमारे खून में दर्रे-ए-खैबर की शोला-बार दोपहर मचलती रही और हमारे सरों पर अवध की सलोनी शाम गुलबा-रियां करने लगी और यूं मलीहाबाद, लखनऊ की शायस्तगी व तहज़ीब और कबायली इलाक़ों की बरबरीयत व वहशत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का एक अजीब नुक्ता-ए-इत्तसाल (संगम) बन गया।' (यादों की बारात)

चौड़े-चकले हाड़, मज़बूत बदन, दराजी मायल क़द, तीखे नाक-नक्शे, चंपई रंग, तीन चार नसलों की खुशहाली से घने हुए लहू की गर्मी और शादाबी और तबीयत की तेज़ी और हुस्न-पसंदी से मिलकर जो शख़सियत बनी थी, उसके जिस्मानी ताल्लुकात में भी हमें एक तरफ दर्रे खैबर की शोलाबार दोपहर मचलती नज़र आती है और दूसरी तरफ अवध की सलोनी शाम की गुलबारियां। इनमें वहशियाना गर्मी और जौलानी भी है और मोहज्जब नर्मी और दिलावेज़ी भी और इन्हीं दोनों का इम्तज़ाज हमें जोश मलीहाबादी की 'ज़हनी कमाई' में नज़र आता है, जो हमारे लिए जोश का विरसा है।

०००

जोश की शादी दूर के चचा की बेटी से बड़ी मुकद्दमाबाजियों के बाद हुई थी। और अभी वो नौ-उम्र ही थे, मसें भींग चुकी थीं, दुल्हन घर में न आयी थी कि शबीर हसन जोश के लहू में हुस्न परस्ती की चिंगारियां उड़ने लगीं। पहली तरगीब उन्हें हमजिन्सों की तरफ हुई। इस किस्म के दो बेनाम वाक़यात के बाद मुखालिफ जिन्सों की तरफ झुके, बल्कि सच पूछिये तो झुका लिये गये। पहली दफ़ा उनकी एक हमसायी मिस मेरी रोमाल्ड उन्हें अपनी ख्वाबगाह तक ले गयीं और ढाई-तीन साल की शदीद मुहब्बत के बाद तपेदिक के मोहलिक मर्ज़ में दुनिया से सिधार गयीं। फिर एक डाक्टरनी मिस ग्लेन्सी का नाम आता है, जो दिलोजान से उस लड़के पर फिदा हो गयी थीं, बिलाखिर दिल के मर्ज़ में अपनी जान से गयीं। जोश सुनते ही बेहोश हो गये और उन्हें बुखार ठहर गया। इन दो ज़नाना नामों के बाद जिनकी यादों के ज़ख्म उनके सीने के दाग बन गये थे वो एक के बाद दीगरे मुखतलिफ मकामात पर मुखतलिफ कबीलों के कतील हुए। हर बार पहल उधर से हुई। और हर बार किसी न किसी कारण जुदाई का, ऐसी अजीयतनाक जुदाई का हमला सहना पड़ा जो उन्हें बिस्तरे-मर्ज़ पर लिटा देता था। कई एक वाक़यात हैं, जिनमें जोश की चाहनेवालियों ने शहनाई के नग़मे सुनते-सुनते मौत को गले लगा लिया। जोश खूंचका नज़्मों के तरन्नुम में आंसू टपकाते रह गये। 'हम रहे जीते सज़ा जानी से'।

उन १८ में से पंद्रह आशिकाना वाक़यात उनकी शादी-शुदा ज़िंदगी में पेश आये। और आये दिन की शबाना महफिलें, रंगरलियां, इनके अलावा, जो शहर भर में पर लगाये उड़ती फिरती थीं। उसे देखिये तो उनकी घरेलू ज़िंदगी की तल्खियों का राज़ ही समझ में नहीं आता, बल्कि उस पर ताज्जुब होता है कि ६५ बरस उन्होंने एक बीवी के साथ कैसे गुज़ार दिये। कोई फैसला या फतवा देने के बजाय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहतर है कि हम खुद जोश की ज़बानी उनकी तौजीह सुनें :

'अगर कैस व फरहाद का कोई जानशीन ये इरशाद फरमाये कि जोश साहब माफ फरमायें इस सूरते-हाल को इश्क नहीं अय्याशी कहते हैं, तो मैं जवाब दूंगा कि भाई तुझको मेरे इस अहतमाम की मुतलक खबर नहीं कि मैंने इश्क और अय्याशी को हमेशा एक बड़े एहतराम-आमेज़ फ़ासले पर रखा है और इन कलबी व जिस्मानी धारों के मतैन मैंने एक ऐसा पर्दा हमेशा हायल रखा कि वो कभी किसी और आलम में भी एक दूसरे से हमआगोश नहीं होने पाये।

'...मैंने कभी अपने दिल की अय्याशी को वतन बनने नहीं दिया, बल्कि उसे एक रात का मुसाफिरखाना बनाये रखा और ऐसा मुसाफिरखाना जिस पर सुख की पहली किरन कभी नहीं फूटती। ...अलबत्ता इश्क को मैंने कलेजे से लगाया, सर आंखों पर बिठाया, रातें जलाईं, पछाड़ों पर पछाड़ें खाईं, हिचकियों से दिल को डसाया, तड़पा, तिलमिलाया, तकिये भिगोये, पलकों में आंसू पिरोये—जानलेवा खतरों को ठोकर लगाई। मौत के सामने आंखें नहीं झपकाईं। और एक दिन तो यहां तक हुआ के ऐन मानसून के हैजानी मौसम में इस अमर के बावजूद कि मैं तैरना नहीं जानता था इल्ल ललाह कहके हौकते समंदर में झम से कूद पड़ा।'

(यादों की बारात)

समंदर में कूदनेवाली अपनी एक मरीज़े-इश्क को जान पर खेलकर बचा लाने का ये वाक़या अगरचे जोश ने आपबीती में मद्रास के ताल्लुक से लिखा है, लेकिन है ये बंबई का वाक़या और वो भी अपोलो के इंडिया गेट का। इस पर उनकी एक यादगार नज़्म है।

'तू अगर वापस न आती बहरे-हैबतनाक से
हश्र के दिन तक धुआं उठता दिले सद्चाक से'

ये नज़्म नहीं एक राहत-आमेज़ आह है कि वो उन दिनों (जब उनकी उम्र ४०-४५ के दरमियान थी) वयक वक्त दो-दो सहेलियों के इश्क का जवाब दे रहे थे। वो भी एक-दूसरी से आड़ रखकर। दूसरी सहेली जिसका इशारती नाम उन्होंने ऐन ... खे लिखा है, जोश की बेरुखी से तंग आकर समंदर में छलांग लगा देती है।

'...मुझे तैरना नहीं आता और गहरे टब में डूब सकता हूं, लेकिन मैंने परवाह नहीं की और झम से समन्दर में कूद पड़ा।'

(यादों की बारात)

उसे वो निकाल लाये। यूरोपियन अस्पताल में दाखिल किया, नीम बेहोशी की हालत में। बाहर बरामदे की एक कुर्सी पर ढेर हो गये। वहां एक नौजवान नर्स ने उन्हें दवा पिलाई और सहारा देकर अपने कमरे में ले गयी। कमरे में उसने जोश की जी भर के ख़ातिरदारी की ... 'और फिर ... और फिर सुबह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जागते ही हम दोनों ने तबस्सुम का तबादला किया। थोड़ी देर के बाद मैंने कहा—बिल बता दीजिये। (यानी मरीज़ा की अस्पताल में तीमारदारी का बिल) ताकि मैं अपनी कयामगाह पर जाकर रुपया ले आऊं। उसने आंखें झुकाकर कहा—बिल मैं अदा कर दूंगी, लेकिन इस शर्त के साथ कि आप मेरे पास आते-जाते रहेंगे। मैंने उसका शुक्रिया अदा किया, वो मुझसे बग़ल गीर हो गयी . . '

(यादों की बारात)

इस बयाने-वाक़या में तीन जवान औरतों का एक साथ ज़िक्र आता है। एक है जिसके बुलावे पर वो आये हुए हैं, और खुलेआम उससे मिलते हैं। दूसरी उसकी सहेली जिसे जोश अपनी जान के बराबर अज़ीज़ हैं और जोश भी उसे कुछ कम नहीं चाहते। उसकी जान बचाने को अपनी जान पर खेल जाते हैं। तीसरी है जिसने 'आते-जाते रहने' और शब-बसरी करने के एवज़ अस्पताल का बिल अदा करना मंजूर किया है। उसकी कोई जगह जोश के दिल में नहीं। यहां गोया इश्क और अय्याशी या इश्क और एहतियाज के दरमियान हल्की-सी दीवार उन्होंने खड़ी कर ली है।

अब ज़रा अदरूने खाना मुलाहज़ा हो। वो लिखते हैं:

'हर चंद मैंने अपने मामलाते-इश्क इमकानी हद तक उनसे मख़फी रखे थे लेकिन वो जो कहते हैं इश्क और मुश्क छुप नहीं सकते, मेरे दो एक और ख़ुसूसियत के साथ मेरे आखरी इश्क के मामलात उड़ते-उड़ते उन तक पहुंच गये थे और उन्होंने मुझे एक कमरे में कैद करके जो-जो सितम मुझ पर ढाये, उनकी शरह अब बेकार है।'

जोश ने वो सितम बताये नहीं, मगर हमें अंदाज़ा हो जाता है उनके इस बेबाक बयान से कि—

'जवानी में जब मैं बाहर से रात के वक्त घर आता था, तो इस अमर का पता चलाने की नियत से कि मैं किसी औरत से हम आग़ोश होकर तो नहीं आ रहा हूं, वो मुझे रोशनी में ले जाकर ग़ौर से मेरा चेहरा देखती, लालटेन उठाकर मेरी शेरवानी पर निगाह करती कि कहीं किसी की जुल्फ का बाल तो उसमें चिमटा हुआ नहीं। उसके साथ-साथ वो मेरे कपड़े लंबी-लंबी सांसें लेकर सूंघा करती थी कि मेरे जिस्म से किसी औरत के बदन या बालों की खूशबू तो नहीं आ रही है और 'इश्क अस्त व हज़ार बदगुमानी' के तहत यहां तक होता था कि जाड़ों में पिछले पहर मेरे लिहाफ़ में हाथ डालकर ये पता चलाने

चित्र : संतोष जड़िया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के लिए कि मैं उसके सो जाने के बाद किसी औरत के पास चला तो नहीं गया था, वो मेरे तलवे टटोलकर ये देखा करती थी के वो ठंडे हैं या गर्म . . .'

(यादों की बारात)

इस बयान से उनकी इखतलाज की भारी धान-पान बीवी और जोश के दरमियान मुसलसल कशमकश का और जोश की घरेलू ज़िंदगी की ना-आसूदगी का अंदाज़ा किया जा सकता है। तभी उन्होंने ५४ साल की उम्र में अपनी थकी-थकायी रफ़ीके-एहयातं को खिताब करके ये नज़्म कही थी :

देखकर तुझको टपकता है मेरे दिल से लहू
ए मेरे बाप की ग़मदीदा व नाशाद बहू
तेरा हर लम्हा बजुज़ हसरतो-वसवास न था
मेरी कस्साब जवानी को ये अहसास न था।
जब मुझे छाओं में ज़ुल्फों की वो सुलवाती थी
चांदनी, धूप तेरे वास्ते बन जाती थी
हाय एक शब भी न होती थी सुहानी तेरी
करवटें आंच पे लेती थी जवानी तेरी
जब भी उठती थी मेरी सिम्त निगाहें तेरी
उन निगाहों से बरसती थी कराहें तेरी
अब के बालों की सफेदी ने जगाया है मुझे
जख्मे करब तेरे सामने लाया है मुझे
अपनी आंखों के, तेरे दर पे गोहर रखता हूं
बख्श दे मुझको तेरे पांव पे सर रखता हूं।

उम्र का सरगर्म, सरकश और सरबुलंद हिस्सा गुज़ार चुकने के बाद आशिकी और अय्याशी की लगातार वारदातों से गुज़र चुकने के बाद, थककर सर बजानू

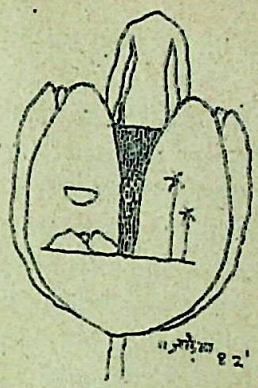

चित्र : संतोष जड़िया

बैठ रहने के बाद आखिर जोश इस नतीजे पर पहुंचते हैं :

'मैं एक लखलुट इंसान हूं। अगर मेरी शादी उनसे न हुई होती तो मैं फ़ाक़े करके मर जाता। मैं दस करोड़ घोड़ों की ताकत का इंजन हूं। वो (यानी बीवी) उससे चौगुनी ताकत का ब्रेक है। अगर इस कदर मज़बूत ब्रेक न होता तो मैं अपना इंजन हिमालय से टकराकर अब तक कब का पाश-पाश कर चुका होता।'

अब वो इंजन ८६ बरस चलकर सर्द हो चुका, हमें उसके माशूकों और बदनामियों के बजाय ना-आसूदा खानगी ज़िंदगी की जगह एक मुतमईन रूह मिलती है, जिसने सीने की अंगीठी पर सेंक-सेंक कर हमें रूहानी गिज़ा मुहैया की और उम्र भर की कमाई सुपुर्द कर दी।

– ३२ सीरी, कोलाबा पोस्ट ऑफिस के पास, बंबई - ४००००५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ३५ का शेषांश)

कर रही है, और वहां कब और कैसे आयी ?

कोतवाल लोई को लेकर बाहर आया, और उसे उसके घर छोड़कर कोतवाली में चला गया। कबीर को अपनी बीवी को इतनी जल्दी आते देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। जब उन्हें मालूम पड़ा कि कोतवाल की वजह से साहूकार अपनी मनोकामना पूरी नहीं कर पाया, तो वे सीधे कोतवाल के पास पहुंचे, और उससे कहने लगे, 'मैंने अपनी इच्छा से अपनी बीवी को साहूकार के पास भेजा था। आप बीच में आकर दख़लंदाज़ी करने वाले कौन होते हैं ?'

कोतवाल बड़ी हैरानी से पूछने लगा, 'कौन साहूकार ? कैसी दख़लंदाज़ी ? मैं कुछ भी तो नहीं जानता कि तुम क्या कह रहे हो ?'

कबीर को लगा कि कोतवाल अपनी जिम्मेवारी से बचना चाह रहा है, और इसलिए झूठ बोल रहा है। वे उससे बहस करने लगे। बहस जब गर्म हो गयी तो कबीर तैश में आ गये।

. . . तभी, वहां भगवान प्रकट हुए, और कबीर को सांत्वना देते हुए कहने लगे, 'इतने आवेश में आने की आवश्यकता नहीं है, कबीर ! कोतवाल का इसमें कोई दोष नहीं है। वास्तव में स्वयं मैं ही कोतवाल के रूप में साहूकार के घर गया था, साध्वी लोई की रक्षा करने। मैंने यह सारा नाटक तुम्हारी भक्ति की परीक्षा करने के लिए किया था। तुम चाहो तो इसके लिए मुझे दंड दे सकते हो।'

कबीर भगवान के चरणों में गिरकर अपने किये की क्षमा मांगने लगे। यह पहला अवसर था, जब उन्होंने भगवान के साक्षात् दर्शन किये थे। इसके बाद तो कई अवसरों पर उन्हें भगवान के दर्शन हुए।

मुफ्त का पैसा

इंग्लैंड के महान उपन्यासकार रोनाल्ड फेयर बैंक के पितामह इंग्लैंड के प्रसिद्ध व्यापारियों में गिने जाते थे। एक बार उन्हें व्यापार में काफी घाटा उठाना पड़ा। उनके कई मित्रों ने उन्हें बिना किसी ब्याज और शर्त रुपया देना चाहा। पर रोनाल्ड साहब के पितामह इसके लिए बिल्कुल तैयार न थे। उनका कहना था कि मैं बिना ब्याज के एक पैसा लेना भी भयंकर पाप समझता हूं।

एक मित्र ने जब इसका कारण पूछा तो वे बोले, 'मित्र, मैं तुमसे जो रुपये लूंगा उसकी मदद से मैं फिर व्यापार में लाभ कमाऊंगा, और तब उस लाभ में तुम्हारा भी भाग होगा। इसलिए मैं बिना ब्याज में मिले पैसे को मुफ्त का पैसा समझता हूं, और मुफ्त में मिले पैसे को मैं कदापि नहीं लेता।'

—असीम चक्रवर्ती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

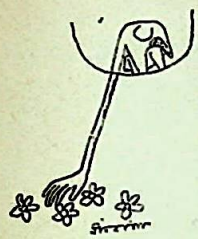

चित्र : टी. ए. राणा

राजेन्द्र प्रसाद सिंह
की कविता

□

महानगरी : तारा

महानगरी के गगन का एक तारा !
धूमिल गगन में वास,
धूसर हवा में सांस,
चुपचाप जलता फूल;
बिंबित दहकती प्यास !
—घुटन के तम में जला है
दीप धीरज का;
यातनाओं में पला वह
शौर्य हारा !
... एक तारा !

वह आस की क्षत किरण,
वह चाल-भूला हिरण,
वह ओस-फुहियों बीच
बस एक आंसू विमन !
—लुढ़क फूटे पात्र में है
बूंद-भर मदिरा;
रेत के कण में झलकता
सिंधु सारा !
... एक तारा !

खोया रहस उपहार,
चुंबित मुकुर साभार,
दिनमान का लघु दूत,
बूढ़ा धुआंता प्यार !
—बुझे निजी अतीत की है
राख-तल चिनगी;
दंड पा अपराध सीखे,
—जंतु न्यारा !
... एक तारा !

ooo

—'आधुनिका' खबड़ा रोड, मुजफ्फरपुर,
बिहार—८४२००१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जून १९८२ के 'नवनीत' में प्रकाशित निर्मल वर्मा के उत्तेजक लेख पर यशस्वी कथाकार गोविन्द मिश्र की मौलिक और महत्त्वपूर्ण टिप्पणी

□

हमारे सवाल : पश्चिम के परिप्रेक्ष्य में

निर्मल वर्मा के लेख मुझे हमेशा ईमानदार चिंतन के पास होने का सुख देते हैं। दुर्भाग्यवश यह सुख सिर्फ़ उतनी देर का होता है, जब हम पढ़ रहे होते हैं, बाद में टटोलने लगो कि क्या हाथ आया तो जैसे कुछ नहीं। कुछ हाथ आना बेशक ज़रूरी भी नहीं है, ज़रूरी है कि कोई आपका साक्षात्कार सवालों से करा दे... और यह काम निर्मल का चिंतन काफी हद तक करता भी है... न केवल सवालों से साक्षात्कार, बल्कि उन सवालों की तकलीफ़ भी। लेकिन यहां भी वे सवाल जिन तक निर्मल वर्मा पहुंचते हैं, वे अक्सर अपने नहीं लगते। जिन निष्कर्षों को निर्मल वर्मा छूते दिखते हैं, वे भारतीय मनीषा की किसी-न-किसी चिंतन-धारा के इर्द-गिर्द बैठते हैं। लेकिन उन तक वे जिस रास्ते से पहुंचते हैं, वह पाश्चात्य है। यही वजह है कि दर्म्यान में जो सवाल परिभाषित किये जाते हैं, वे अजनबी हो जाते हैं।

'नवनीत' के जून-८२ के अंक में प्रकाशित उनके ताजा निबंध 'उपन्यास की मृत्यु और उसका पुनर्जन्म' की भी यही दिक्कत है। पश्चिम के पुनरुत्थान के समय के मनुष्य की सर्वशक्तिमान छवि से शुरू करके आज की व्यक्तित्वहीनता के हल्केपन तक... सामानांतर चलते हुए पाश्चात्य उपन्यास के उदय, उत्कर्ष से हरजॉग की छटपटाहट और उपन्यास के के आसन्न अवसान तक जो भी विश्लेषण इस निबंध में है, वह पश्चिम के मनुष्य और पश्चिम के उपन्यास का है। निर्मल की दिक्कत यह है कि आज के समय को वे सिर्फ पाश्चात्य इतिहास की मदद से विश्लेषित करते हैं। भारतीय सवालों को पश्चिम के परिप्रेक्ष्य में रखकर कैसे समझा जा सकता है? आज का व्यक्ति एक है... और यह पश्चिम का व्यक्तित्वहीन व्यक्ति ही है—यह मान्यता मुझे सही नहीं मालूम होती। यह सभी मानते हैं कि व्यक्तित्वहीनता एक खास स्तर के औद्योगीकरण की ही देन है। हमारे देश में जहां औद्योगीकरण की प्रक्रिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही स्वतंत्रता के बाद से शुरू हुई वहां क्या आज भी हम उस स्तर तक आ पाये हैं कि भारतीय व्यक्ति की पहचान रूबरू पश्चिम के व्यक्तित्वहीन व्यक्ति की तरह की जा सके ?

दरअसल व्यक्तित्वहीनता सीधे-सीधे औद्योगीकरण की भी देन नहीं मानी जानी चाहिये, बल्कि उस औद्योगिक संस्कृति की जो औद्योगीकरण के विशुद्ध भौतिक घटनाक्रम के फलस्वरूप उसके बहुत बाद एक समाज में आती है। हमारे समाज में आज कलकत्ता और बंबई जैसे महानगरों में ही 'भीड़ का मनुष्य' दिखाई पड़ता है... और यहां भी क्या वह उन अर्थों में 'चरम हल्केपन' या 'व्यक्तित्वहीनता' की अवस्था को पहुंच गया है जहां पश्चिम में काफ्का के समय पहुंच गया था ? क्या इन शहरों में 'भीड़ का यह मनुष्य' उसी तरह कटा हुआ, अकेला है जैसे पश्चिम का ? क्या अब भी वह अपनी परिभाषा ढूंढने के लिए अपने परिवार, गांव-कस्बों से अपने जुड़ाव और ऐसी ही दूसरी चीज़ों को नहीं पकड़ता-छोड़ता ? इनके बिना क्या उस व्यक्ति की परिभाषा अधूरी नहीं होती ? उन असंख्य छोटे शहरों, कस्बों और गांवों की बात तो छोड़ ही दें, जहां औद्योगीकरण का ही प्रभाव करीब-करीब नगण्य है है भी तो सिर्फ आर्थिक दबाव के रूप में ही।

धर्म, नैतिकता, मूल्यों, संबंधों से

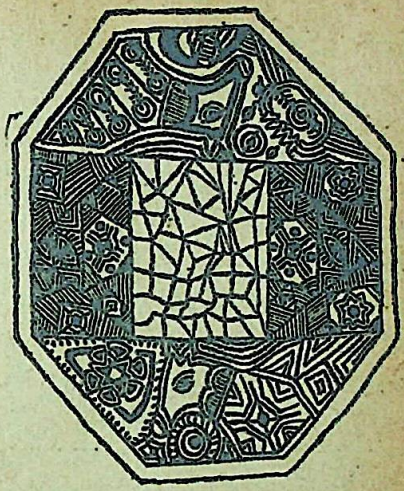

चित्र : आलोक जैन

जुड़ा हुआ भारतीय समाज, विश्वास यहां तक कि अंधविश्वास के रास्ते उन चीज़ों से करीब-करीब जकड़ा हुआ समाज ... उसके संदर्भ में तो आज भी यह सोच कि ईश्वर नहीं है, इसलिए मनुष्य ही सब कुछ है... यही सिर्फ कुछ अत्याधुनिक द्वीपों पर ही लागू हो सकता है। पश्चिम में भी कैथोलिक परंपरा थी, पर वह निरक्षरता, अज्ञानता नहीं थी कि उससे यूं चिपके रहा जाता जैसे भारतीय समाज अपनी धार्मिकता ... यहां तक कि कट्टरता से चिपका रहा आया है।

और सच कहूं तो मुझे लगता है कि यह निरक्षरता और अज्ञानता हमारे लिए अपरोक्ष रूप से वरदान साबित हुई है। जिस परंपरा को आधुनिक शिक्षा (मैकाले के समय से ही) ने कब का धो दिया होता,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी भारत के गांवों और कस्बों में अब भी प्रवहमान है, कुछ बिगड़ती हुई, कुछ संशोधित होती हुई। लेख के अंत में निर्मल वर्मा मन की जिस नई दुनिया की बात करते हैं, व्यक्ति स्वायत्त इकाई नहीं, बल्कि सृष्टि के दूसरे तत्वों की तरह एक और तत्व, संपूर्ण के बिना व्यक्ति की परिकल्पना असंभव, विवेकानंद आदि ... यह सब आम भारतीय के व्यक्तित्व में पहले तो थे ही, आज भी हैं। व्यक्तित्वहीनता कुछ तबकों की समस्या हो सकती है, यह आम भारतीय की समस्या नहीं है। इसलिए यह भारतीय व्यक्ति की परिभाषा भी नहीं है।

पश्चिम का व्यक्ति और पश्चिम का उपन्यास जैसे काफ्का के बाद उस विचारधारा की तरफ ललक रहा है कि मनुष्य और सृष्टि के बीच एक संवेदनात्मक रिश्ता हो . . . वैसे ही निर्मल भी ललकते हैं। वैसे निर्मल के चिंतन में जो ईमानदारी है, मैं उसका हमेशा से कायल हूं। इसी लेख का एक नमूना पेश है :

'कैसी है यह दुनिया जो यूरोपीय उपन्यास के अहं केंद्रित संसार से मुड़कर हमें एक ऐसे मन से साक्षात कराती है, जहां अहं के भयभीत आक्रामक साम्राज्य की सीमाएं खत्म हो जाती हैं, एक ऐसे सेल्फ का दरवाज़ा खोलती हैं जिसके भीतर व्यक्ति का मन, इगो, सुपर इगो जैसे अंधेरे तहखानों में बंटा नहीं है, बल्कि जहां मन, आत्मा और देह एक सम्पूर्ण सृष्टि के मिनिएचर में स्वयं मनुष्य के भीतर अखंडित रूप से मौजूद है, क्या हम इसे भारतीय मन की दुनिया कह सकते हैं ? मुझे नहीं मालूम, किंतु अवश्य ही यह वह दुनिया नहीं है जिसका चित्र हमें आज तक यूरोपीय उपन्यासों में उपलब्ध होता रहा है . . .'

निर्मल को न मालूम हो, पर मैंने इस भारतीय मन को लोगों के दैनंदिन जीवन में गुंथा हुआ देखा है। मनुष्य सृष्टि के ऊपर की कोई चीज़ नहीं बल्कि 'दुनिया के बीच में है, प्राणियों में एक प्राणी, जीवों में एक जीव . . .' नये उपन्यास के संदर्भ में निर्मल वर्मा की वह परिकल्पना भी आम भारतीय अपने रोज़-ब-रोज़ जीवन में आज भी जीता है।

निर्मल वर्मा कहते हैं—'यूरोपीय उपन्यास की यह आक्रांत दुनिया से निकल कर यदि हमें इस अनोखे मन, मनुष्य के आत्मन संस्कार में प्रवेश करने का अवसर मिल सके तो हमें सहसा लगेगा मानो हम इकाइयों की दुनिया से निकलकर संबंधों की दुनिया में चले आये हैं . . .'

भारतीय समाज की मेरी पहचान यही है कि यह संबंधों की दुनिया है—सृष्टि के व्यापक संदर्भों से संबंध, परिवार के माध्यम से व्यक्ति का दूसरे व्यक्तियों से संबंध। बेशक बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण से उत्पन्न आर्थिक दबाव संबंधों की इस दुनिया को तोड़-मरोड़ रहे हैं, संबंध वे तनाव झेल रहे हैं जो पहले नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे, संबंधों पर प्रश्नचिन्ह भी लगने लगे हैं...लेकिन अभी भी यह दुनिया यूरोपीय व्यक्ति की अकेलेपन और सतत असुरक्षा की दुनिया से कोसों दूर है। (पीछे कहें या कि आगे!) समकालीन भारतीय उपन्यास में भी संबंधों की यही दुनिया देखने को मिलती है। प्रेमचंद से लेकर आज के हिंदी उपन्यास में संबंधों की यही दुनिया आर-पार फैली दिखती है।

ज्यों-ज्यों तनावों के रंग गहराते गये हैं, पुराने टूटे, नये बने हैं, उनमें नयी पेचीदगियां आती गयी हैं ... त्यों-त्यों—हम कह सकते हैं—हिंदी उपन्यास प्रौढ़ होता चला गया है।

व्यक्ति के अकेलेपन का रंग लेकर अज्ञेय हिंदी उपन्यास में पहले पहल आये, आगे निर्मल वर्मा के उपन्यास इसी अकेलेपन को लेकर चले . . . लेकिन यहां भी संबंधों की छाया है, कि इनके उपन्यास भी संबंधों की हमारी जानी-पहचानी दुनिया का एक और आयाम मात्र लगते हैं।

जब तक संबंध कायम हैं, आम भारतीय की उनमें नये मूल्यों की तलाश जारी है, उपन्यास भारत में मर ही नहीं सकता, भले ही उसे हमारे यहां आयातित विधा माना जाय।

(मैं तो यह भी सोचता हूं कि सिर्फ इस बिना पर कि एक विधा एक देश में पहले विकसित हुई, उसे वहीं का मान लेना ठीक नहीं है। उपन्यास के विधागत अवकरण हमारे पुराने साहित्य में भी मिलते हैं और वैसे भी हर विधा एक समाज की मूल मनीषा के रास्ते ही अपना स्वरूप धारण करती है। क्रमशः उसमें बाह्य प्रभाव पड़ सकते हैं, जज्ब भी हो सकते हैं . . . लेकिन उसका बुनियादी स्वरूप एक विशेष समाज की संरचना और मूल्यों के इर्द-गिर्द ही पनपता है।) पश्चिम में उपन्यास मरणासन्न है तो ठीक उसी समय भारत में भी क्यों हो और अगर उसका पुनर्जन्म एक विशेष दिशा में ही होना है तो वैसा ही भारत के उपन्यास में होना होगा . . . यह मानना कुछ-कुछ वैसा ही है जैसे हम यह कहें कि 'यूलीसीज़' वहां लिखा गया तो वैसा ही यहां भी क्यों नहीं लिखा गया, काफ्का और कामू की तकलीफें हमारे यहां लेखकों की तकलीफें क्यों नहीं बनीं . . . ?

निर्मल का सोच शायद सार्वभौमिक है, पर मुझे लगता है कि साहित्य अगर संवेदना की उपज है तो संवेदना हर ज़मीन की अलग-अलग है। विचारों की आंधियां आती-जाती रहती हैं, थोड़ा-बहुत संवेदना को मोड़ती भी हैं, लेकिन मूलतः उसका विकास उस ज़मीन के साथ जो हो रहा है उसी के साथ-साथ चलता है, छलांग लगाकर कहीं का कहीं नहीं पहुंच सकता . . . जैसा कि वैचारिक स्तर पर अक्सर संभव होता है।

३, बैल्वेडियर, वार्डन रोड, बम्बई-३६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय का सिद्धयोग पर आधारित एक अप्रतिम उपन्यास

□

मत्स्येन्द्रनाथ

[गतांक से आगे : २]

मत्स्येन्द्र और नर्मदा वायुमार्ग से उड़ते हुए, दृश्य देखते और मौन रहकर भी अपने-अपने परिस्फुरणों को एक दूसरे में संप्रेषित करते हुए जब, विहार प्रदेश के गयातीर्थ में फल्गु नदी के किनारे पहुंचे तो उन्होंने वहां के महाश्मशान में एक प्रतिशोधी दुष्ट योगी को साधनारत पाया। मत्स्येन्द्र को कुछ व्यग्रता-सी हुई, उन्हें किसी अनिष्ट की आशंका थी अतएव वह नर्मदा के साथ, शरीर को शिथिल करके उतर पड़े।

उन्होंने श्मशान में निर्भय होकर प्रवेश किया किंतु संकेत से नर्मदा को चुप रखा। वे दोनों धीरे-धीरे, अपने को अलक्ष्य रखकर दुष्ट साधक की ओर सरकते गये और जब निकट पहुंच गये तो पीपल के पेड़ की ओट लेकर स्थित हो गये। उन्होंने देखा कि वह कालघंट कापालिक है, जो अभिचार में निपुण था और योगशक्ति का दुरुपयोग करता था। वह उत्तान स्वर में बोल रहा था—

'ज्वाला कराल वदने कल्पान्तदहनप्रिये,
प्राणिप्राणालयोद्भूते, चिते मेऽनुग्रहं कुरु!'

कालघंट चिता से किसी अल्पदग्ध शव को खींचकर, उसकी छाती पर बैठा था और मंत्रपाठ में बेसुध था। वह 'ज्वाला कराल वदने.....' कहता-कहता बीच में थमकर, पास रखे मदिरा के कपाल-पात्र को उठाकर गटागट पीता और फिर मंत्र जपने लगता। उसकी जटाएं उसके मुख पर बिखरी हुई थीं, चिता की अग्नि की ऊष्मा से उसका मुख और मदिरा से नेत्र रक्तवर्ण के हो रहे थे और उसकी मुद्रा करालवदना कालिका के अनुकरण में भयंकर थी। वह श्लोक के अंत में, मुर्दे के मुंह में भी मदिरा ढालता जाता था। फिर वह श्मशानपान की स्तुति में श्लोक बोलने लगा—

'श्मशानेषु चरेत पानं, निशीथे च महेश्वरि
विना पानं न सिद्धिः स्यात्, साधकानां कलौ ध्रुवम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी
सः वैष्णवः स शाक्तश्च, स शैवो यः
शमशानगः ।
पानं पानं शिवे पानं सप्तवारं समुच्चरेत्
तेन देवो शिवाङ्गोपविष्टा प्रादुर्भविष्यति
द्रव्यं मधु तथा मत्स्यं, मांसं मुद्रां च मैथुनम्
मकारपंचसंयुक्तं, पूजयेद्, भैरवेश्वरीम् ।'

कालघंट अनेक प्रकार के शुद्धि-विधान करता और फिर शव पर चढ़कर श्लोक

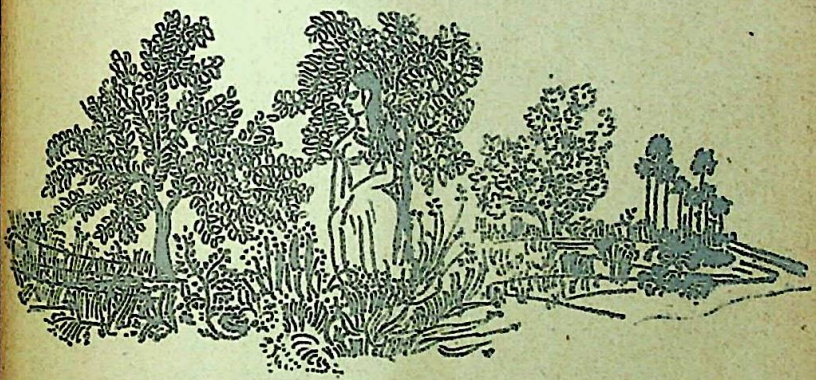

पढ़ता । तत्पश्चात् वह मांस काट-काटकर चिता में यज्ञ करने लगा । शव के कटे मांस में, चिता में से चिरांध उठती और नर्मदा का माथा भन्नाता किंतु वह देखती रही । फिर कालघंट, मदिरा से उन्मत्त होकर नाचने लगा और आसपास भूत-प्रेतों को नृत्य में सम्मिलित करने का आवाहन करने लगा ।

मत्स्येन्द्र और नर्मदा को लगा कि कालघंट के आसपास विकटाकृति भूत-प्रेत नाचने लगे हैं और वे नरबलि मांग रहे हैं । कापालिक उन्हें सांत्वना देता और उग्र नृत्य करता । भूत-प्रेत संकेतों से उससे मानव-रक्त पीने के आग्रह करते । एक-दो वार उनमें से कुछ पिशाच, कालघंट के ही रक्तपान के लिए ही उद्यत हो गये किंतु उसने कालिका के मंत्र के बल पर अपने को बचा लिया ।

इस लोमहर्षक लहाछेह के समय, फल्गु नदी, सचमुच प्रेत-सरिता-सी प्रतीत हो रही थी । हवा स्थिर थी और श्मशान में चारों तरफ जली-अधजली चिताओं से चिट-चिटाहट सुनाई पड़ रही थी । पीपल के खोखल से सहसा उलूक ने घू-घू किया तो नर्मदा का शरीर भय से कांपा किंतु उसको, कंधे पर मत्स्येन्द्र ने अपने कर के दबाव से आश्वस्त किया ।

कालघंट द्वारा मांस की बलि चारों तरफ फेंकी जाने लगी तो सियार-सियारियों के दर्शन हुए । कालघंट ने, 'शिवा । शिवा ! स्वागत है', का कर्कश स्वर किया और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोत्साह वह अपने साथ लाये बकरे का मांस काट-काटकर फेंकता और फिर नृत्य करने लगता।

फल्गु के किनारे जहां पिंडदान होता है, वहां जहां पीपल का वृक्ष है, उसी स्थान पर तब प्रेतात्माएं आतिशबाज़ी-सी छूटतीं और कालघंट की कपाल-साधना के क्षेत्र पर ही ऊपर मंडरातीं और फिर जलती लकीरों-सी उड़कर लौट जातीं। श्मशान में भैरव के वाहन कुत्ते भौंकते और कालघंट जब मांस का लोथड़ा फेंकता तो आपस में लड़कर अंधकार को कट्टरता और डरावनापन देते।

कालघंट ने सहसा, चिता से कुछ दूर, रस्सियों से बंधे एक आकार को देखा। मत्स्येन्द्र अब व्याकुल हुए, किंतु शांत रहे। नर्मदा ने योगी के श्वास में त्वरा महसूस की। उसने उसे कोंचा और नरबलि रोकने का आग्रह किया। मत्स्येन्द्र ने ध्यान न दिया। वह एकटक कालघंट की चेष्टा को अवलोक रहे थे।

रज्जुबंधन से मुक्त कर, अर्धमूर्च्छित एक तरुण बाला के मुख पर कालघंट छींटे देने लगा। नर्मदा ने देखा, उसके चारों ओर प्रेत-पिशाच प्रकट हो गये। वे मुंह फाड़-फाड़कर, जीभ से लार बहाते हुए, कालघंट को शीघ्रता करने के लिए जैसे प्रेरित करने लगे। व्यग्रता में वे एक दूसरे पर चोट-चपेट भी कर देते और आसपास की भूमि को खूंदते, अधर में उछाल भरते, गिरते। एक दो ने तो कालघंट को धक्के भी दे दिये। वे रक्त के प्यासे थे।

'रानी! चेत जा और सहर्ष अपना बलिदान कर, आवागमन से मुक्त हो जा। तू भाग्यशालिनी है, कालघंट के पवित्र कर से कंठ कटाएगी। तेरी बलि से, मैं भैरवता प्राप्त कर लूंगा। अथर्ववेद इसका प्रमाण है :

'या शशाप शपनेन याद्यं मूरमादधे
या रसस्य हरणाय जातमारेभे लोकमत्तुमा'

'प्रियंवदे! बोल, क्या तू स्वेच्छा से बलि के हेतु प्रस्तुत है?'

रानी प्रियंवदा, गया के राजा की पुत्रवधू थी, जो अपने रूप और यौवन के लिए विख्यात थी। वह कामरूप-कामाख्या क्षेत्र की थी और गयाधिपति के राजकुमार वरुणसिंह को विवाहित थी। उसका विवाह हुए अभी बहुत कम समय हुआ था और वह अपने पति के नेत्रों की पुतली थी। उसके शील-स्वभाव के कारण, राजभवन ही नहीं गया तीर्थनगर के संभ्रांत और साधारणजनों में भी उसका आदर था। वह दानवती और दया-करुणा से ओतप्रोत थी। कला-कौशल और शिक्षा-संस्कारों में श्रेष्ठ थी। वह विचारशील और भावनाओं की धनी रानी प्रियंवदा नारी के सभी लक्षणों से युक्त थी।

कालघंट का चुनाव बुरा नहीं था। किसी कापालिक के लिए, एक सौभाग्यवती और सुघर सुलक्षणा रानी के समकक्ष और कौन बलि योग्य पात्र मिलता?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय,
अस्सी, वाराणसी

रानी, जो कठिनाई से बीस-बाईस वर्ष की लड़की-सी ही थी, आंख खोलकर उठी और आसपास का घिनौना और भयद वातावरण देखकर फिर अचेत होने को हुई। उसका जी मिचलाया और वह वमनोत्सुक हो गयी पर किसी तरह उसने अपने को वश में कर लिया। मत्स्येन्द्र को लगा, प्रियंवदा नेत्र बंदकर, अपने इष्ट देवता का स्मरण कर रही है। रानी ने अंततः नेत्र खोले, एक बार कांपी और अत्यधिक करुण स्वर में रुदन करने लगी।

कालघंट की अर्धरात्रि का शुभ-क्षण व्यतीत हो रहा था। रुदन से उसका क्रोध बढ़ा। उसने अपने बड़े-बड़े कुदंतों को क्रोध से पीसा और रक्त-मांस से सना खांडा लेकर रानी के कंठ-कर्त्तन के लिए प्रस्तुत हो गया।

'कुलक्षणी! बलि की पावन-बेला में तू रुदन करती है। तुझे ज्ञान नहीं कि तेरा नरबलि के लिए चयन कर कालघंट ने तुझ पर, तेरी सात पीढ़ियों पर कृपा की है। अरे! मूढ़ा नारी! तू तर जायेगी। प्रसन्न होकर बलि दे अन्यथा मेरी साधना तो भंग होगी किंतु मैं तेरे पति को मारण-योग से नष्ट कर दूंगा। मैं आज ही, कृत्या भेजूंगा और तब तू विधवा होकर, अभागी, वदर्शनीय बनी फिरेगी। प्रियंवदा! क्या तू अपने पति के प्राण बचाना चाहती है या अपने?'

कठिन चुनाव था! रानी पुनः अचेत होते-होते बची। सिर पर खांडा लिये कालघंट सन्नद्ध था, भूत-प्रेत-पिशाच, नकियाए स्वरों में मिनमिनाते विकृत आकारों को धारण करते, उछलते-फांदते 'रक्त-रक्त' की पुकार लगा रहे थे। चिता के धुएं, शिवा-घोष और कुक्कुर कोलाहल से रानी प्रियंवदा भय के चरम बिंदु पर जैसे एक सन्निपात में पहुंच गयी थी, जैसे भय से भीत हृदय भी स्थिर होकर, अपने को बचाने के लिए वज्र बन गया हो।

रानी ने अश्रु और रोदनविगलित मुख को इधर-उधर घुमाकर, सहायता के लिए झांका। उसकी दृष्टि में निष्फलता की भावना थी किंतु मरता क्या न करता, वाली बात थी। शायद, रानी की इष्ट देवता कामरूप-कामख्या देवी, सिंह पर चढ़कर प्रकट हो जाये! 'तब यह कालघंट क्या कर लेगा? क्या कालिका का उपासक, कामख्या के उपासक से बड़ा होता है? क्या काली, कामेश्वरी से अधिक प्रतापी शक्ति है? क्या दोनों, माताएं मिलकर, मुझ पर अनुग्रह नहीं कर सकती?'

रानी ने कहीं से, कुछ भी सहायता की आशा छोड़कर, कालघंट के आगे गरदन झुका दी और भय की अधिकता से, भय से अतीत हो जाने के कारण, किसी आविष्ट-सी दशा में बोली—'मैं बलि के हेतु प्रस्तुत हूं। आप मेरे पति के प्राण न लें।'

'पति' शब्द कहते-कहते प्रियंवदा का स्वर कांपा था पर वह अब सन्न में थी, और प्राणोत्सर्ग का संकल्प दृढ़ करते ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्त्रियोचित अतिसाहस, उसमें उत्पन्न हो गया था।

'तो उठ। अनावृत होकर पुरश्चारण के लिए प्रस्तुत हो जा। शीघ्रता कर।'

'मैं प्राण दे सकती हूं, लज्जा नहीं।'

कालघंट को रानी का वाक्य बहुत अज्ञानजन्य लगा। वह शास्त्रोक्त धर्म-कार्य जो कर रहा था। उसने खपच्चों से अपने दांत किटकिटाए और बलि-वेला गुज़रती पाकर, वह अतिवेग से अपनी ऐड़ियों पर घूमा, एक कराल कोलाहल किया और भैरवी-भैरव का महामंत्र पढ़ता हुआ, रानी की साड़ी खींचने लगा। रानी ने, कसकर साड़ी को समेटा और उसमें गुड़मुड़ी होकर रह गयी।

कालघंट ने पुनः दांत पर दांत भिंचे और खांडे से साड़ी चीरने लगा। प्रियंवदा में अब कोई उपाय न देखकर पत्थरों को भी पिघला देने वाली रिरियाहट उत्पन्न हुई और वह 'त्राहि! माता, त्राहि देवी कामख्या', कहती हुई अपने अर्धनग्न शरीर को, कछुए की तरह सिकोड़कर, लज्जा बचाने लगी।

कालघंट बलि-क्षण बीत जाने की झुंझलाहट में पैर पटक रहा था और होंठ चबा रहा था। उसने सुगंधित मदिरा का एक प्याला भरा और खांडा धरती पर रखकर, वह रानी को बलात् पिलाने लगा। रानी दांती बांध गयी और उसने पूरी शक्ति लगाकर, कालघंट की आंखों में नाखून घुसेड़ दिये। कालघंट पीड़ा में वन्यपशु की तरह चीखा और पीछे की ओर गिरकर दर्द को काबू में लाने के लिए उसने दांत भींच लिये।

रानी के लिए इतना अवसर बहुत था। उसने खांडा उठाया और अब तक अवरुद्ध पूरी नारी-शक्ति से उसने कालघंट के सिर पर चोट की। चोट उछलती लगी क्योंकि रक्त और चर्बी-सी चिकनी मूठ पर रानी का हाथ ठीक तरह जमा नहीं रह सका। फिर भी कालघंट की खोपड़ी में गहरा घाव लगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गच्च की आवाज़ होते ही कालघंट के सिर से रक्त बहने लगा, जिसे चाटने-पीने प्रेत-पिशाच झपटे। रानी ने यह देखकर भय से चीत्कार किया और खांडा वहीं फेंककर वह जो भागी, तो भागती ही गयी। वह अपनी साड़ी में लिपटकर कई बार गिरी किंतु उठकर, बिना पीछे देखे, वह फिर हिरन हो जाती। गिरते-उठते प्रियंवदा ने श्मशान पार कर लिया और वह जैसे ही खतरे से बाहर हुई, उसने साड़ी पैरों से उचकाकर दोनों हाथों में पकड़ ली, उसने ऊपरी अधकटे भाग को, कमर पर लपेट लिया था और अब वह फल्गु के किनारे तक हांफती, भागती हुई आ गयी थी।

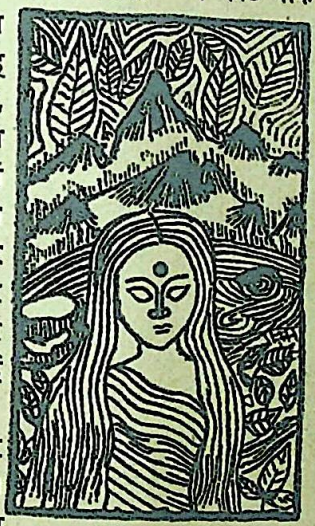

पिंडदान वाले मंदिर का रुख फल्गु की ओर है। रानी, उसके सामने फल्गु के उस पार खड़ी थी। फल्गु की धारा तेज थी और सन्नाती हुई लहरें रानी की जिजीविषा को घायल करती जा रही थीं। रानी, तट पर खड़ी, फल्गु की तीव्र धारा को घूरती रही। वह 'बचाओ, बचाओ!' —बड़े ज़ोर से चिल्लाई और पानी में कूद पड़ी। पानी में जाते ही, एक डुबकी खाते ही, श्मशानी भय से तो रानी का ध्यान हट गया किंतु अब फल्गु का पानी, कालघट से भी अधिक खतरनाक लग रहा था।

रानी आसाम की बेटी थी। वह मछली की तरह तैरने लगी किंतु फल्गु की तेज धारा काटना भी कठिन था। रानी 'बचाओ', 'बचाओ', 'त्राहि-त्राहि' चिल्लाती और फिर पानी की धारा को न काट पाकर बहने लगती।

०००

मत्स्येन्द्र के हस्तक्षेप न करने पर नर्मदा को विस्मय नहीं था, क्योंकि उसमें भी कोई रहस्य रहा होगा। घटना इसी तरह घटे, रानी की शक्ति और धैर्य का अनुमान हो जाये, यही सब सोचकर योगी तटस्थ रहा होगा, अन्यथा कालघंट को चमत्कारों में छकाना, उसके लिए सरल था। वह उसके खांडे को कीलित कर सकता था, भूत-प्रेतादि को भगा सकता और रानी को अदृश्य कर सकता था। कुछ भी कर सकता था। पर, आश्चर्य है कि मत्स्येन्द्र केवल दर्शक रहा। नर्मदा ने कई बार स्वयं हस्तक्षेप करना चाहा पर बार-बार उसे रोक दिया गया। नर्मदा समझ गयी, कोई भेद है, जिसे योगी अभी खोलना नहीं चाहता और यह तो स्पष्ट ही है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कि वह रानी की रक्षा करना चाहता है, पर अदृश्य रहकर।

मत्स्येन्द्र और नर्मदा, प्रवाह के साथ प्रियंवदा के प्राणांतक संघर्ष को, तटस्थ हो, ताक रहे थे। रानी का शब्द अब तक, शायद फल्गु के उस पार पिंडदान मंदिर में पहुंच चुका था, क्योंकि उस किनारे से कई युवक पंडो और सेवक एक साथ कूदे और साथ ही, एक-दो नावों को जल्दी-जल्दी खोलकर कुछ व्यक्तियों ने उन्हें डूबती तैरती रानी की ओर खेना शुरू कर दिया।

रात के अंधकार में कोई कमी न थी, यों अब रात का उतार था। नदी के पानी और प्रकृति के प्रत्येक रूप के अभ्यस्त पंडों और सेवकों ने, रानी की छपाक्-छपाक् के शब्द से अनुमान लगाकर तैरना, खेना चालू रखा और वे अंततोगत्वा रानी के पास जा पहुंचे। एक तैराक ने रानी के बालों को पकड़ा और उसके मुख को पानी के ऊपर कर दिया। रानी ने सहारा पाकर, उस त्राता की बांह को जकड़ लिया और जी भर कर सांस ली।

नातिकाल में, रानी को नाव में डाल लिया गया और चतुर प्राणरक्षकों ने रानी को उलटा लटकाकर, उसके पेट से पानी निकाल दिया। फिर निश्चिंत होकर लगभग अचेत रानी को, कंबल में लपेट दिया और उसकी श्वास-प्रश्वास ठीक समझकर, नावों में सबको चढ़ाकर अपने तट की ओर प्रस्थान कर दिया।

'अब हमें चलना चाहिये।' अंधेरे में घूरते योगी ने नर्मदा से कहा।

'कहां? कामरूप कामख्या या कामरूप की इस कन्या के पास?'

'कालघंट के निकट।' योगी इस तरह बोला, मानो यह नितांत स्वाभाविक संदेश हो।

'का...ल...घंट के पास? हा हंत! क्यों?'

'क्योंकि यदि वह शांत न हुआ तो वह प्रियंवदा के पति पर अभिचार करेगा। वह प्रतिशोधी और दुष्ट कापालिक है।'

'वह रक्तस्राव से इस धरती को अपने निधन से पवित्र कर गया हो तो कितना कल्याण हो!'

'उसकी साधना तामसी है और वह निम्नवृत्ति का लोभी पशु है। वह कुछ भी कर सकता है। वह पराजय को सह नहीं सकता।'

श्मशान की ओर मत्स्येन्द्र और नर्मदा, सरपटे और सीधे व्रण से रक्त बहाते कालघंट को खोजने लगे। किंतु कहीं कुछ न मिला। श्मशान में अब रात के चतुर्थ प्रहर में शांति थी और भूतप्रेतादि का उत्पात भी बंद हो गया था।

'वह तो चला गया, मच्छन्द प्रभु! अब क्या होगा? कहां ढूंढेंगे उसे? उसने अब तक राजा को मार न दिया हो?' नर्मदा चिंतित हुई।

मत्स्येन्द्र के मुख पर एक दुःख की अनुभूति की छाया तैर गयी। उन्हें कोई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भीतर, जैसे भारी घात लगा हो। वह चिता की ज्योति में कहीं खोये-खोये से, बड़ी देर बाद, स्वगत-वचन कहने लगे—

'नर्मदा! काल को, केवल आदिनाथ महाकाल ही पूर्णतः वश में कर सकते हैं। मैं चूक गया। देवाधिदेव गुरु आदिनाथ ने मुझे शाप और वरदान एक साथ दिया था कि मेरी चित्तवृत्ति मछली-सी चंचल है। शुभ होता, यदि मैं रानी की प्राणरक्षा के लिए, कालघंट को छोड़कर यहां से न जाता। कालघंट भी कोई साधारण कापालिक नहीं है। उसका चित्त अशुद्ध है पर वह अभिचार मंत्रों के जाप में दृढ़ है। उसके वश में कुछ प्रेत-पिशाच हैं।'

'तो?'

'तो, अब...काल से क्या बचेगा, फिर भी प्रयत्न करता हूं। आओ।'

०००

मत्स्येन्द्र और नर्मदा ने उड़ते हुए गया के राजा के अंतःपुर में देखा कि राजकुमार वरुण का शव, धरती पर रखा है और पंडित-पुरोहित अंतिम संस्कार के मंत्र पढ़ रहे हैं।

अंतःपुर में अवर्णनीय शोक का वातावरण था। राजमाता एक ओर मूर्च्छित पड़ी थीं और प्रौढ़ वयस राजा सिर पृथ्वी पर पटक रहा था। राजसेवक दुःखार्त्त संत्रस्त थे और स्त्रियों-बच्चों के आर्तनाद से राजभवन की भित्तियां विदीर्ण हो रही थीं। फिर योगी-युगल ने, एक द्वार से रानी प्रियंवदा को सम्हाल कर लाते हुए देखा। उसकी चूड़ियां फोड़ दी गयी थीं। वह रात के हादसे से अभी अभी हाल-बेहाल थी। उसकी आंखें कौड़ियों की तरह भावहीन थीं और वह ओलों से मारी लता की तरह थर-थर कांप रही थी।

'हाय! अब क्या होगा? मेरे राज्य को शत्रु घेरे हुए हैं। वरुणसिंह के बिना अब रक्षा कैसे होगी? सेना किसके पराक्रम पर लड़ेगी? मैं भी अब जीवन रखकर क्या करूंगा?'

राजा को, कटार निकालते और आत्मवध के लिए उद्यत देखकर राजपुरुषों ने उसे निरस्त्र किया और शत्रुओं का सामना करने के लिए राजा को आश्वस्त करने लगे।

प्रियंवदा, वरुण के शव पर इस तरह गिरी, जैसे कोई हराभरा पौधा सहसा निर्मूल होकर गिरता है। उसकी चीख से सबके अंतःकरण भग्न होने लगे और रुदन का उत्तान स्वर भवन को धराशायी-सा करने लगा। योगी-युगल, अपनी निर्द्वंद्वता भूल गये और आंसू पोंछने लगे।

'नर्मदा! क्या तुम मेरे शव की रक्षा कर सकती हो?'

'आपका शव! आप क्या कह रहे हैं?'

'मैं वरुण की काया में प्रवेश करने जा रहा हूं। अन्य कोई उपाय नहीं है। तुम यह गुटिका मुंह में रखो और मेरे शव को लेकर पिंडदान वाले रुद्र-भैरव के मंदिर

(शेषांश पृष्ठ ५८ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सामवेदी स्वर

□

सावित्री परमार

चित्र : नीता वैद्य

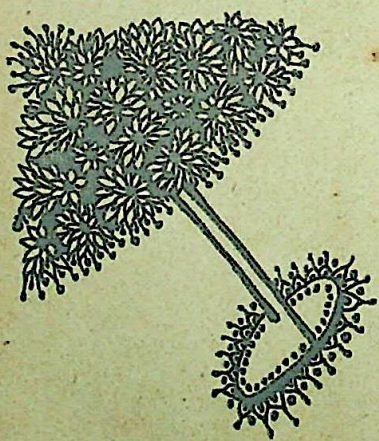

बांह भर
आकाश पाने के लिए
एक सपना
उमर भर बुनते रहे।
कई सूरज
छान डाले दृष्टियों के
मगर नीले बिंब संज्ञायित मिले
आईनों की
बस्तियों की भीड़ में
सभी चेहरे गलत रूपायित मिले
जब चले
सीमांत साहिल पर उतरने
हर सफर के
मोड़ तब ठगते रहे।
बहुत चाहा
एक उजली सुबह लेकर
धूप की एक ऋचा लिख दें देहरी पर
हवाओं के
सामवेदी स्वर रचा दें
स्वास्तिक से दर्द की मैली दरी पर
शंख-ध्वनि पर
जब पुकारा मंदिरों ने
स्वार्थ-ठग
हर आस्था छलते रहे।

ooo

—म. दि. जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय,
सी. स्कीम, जयपुर, राजस्थान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

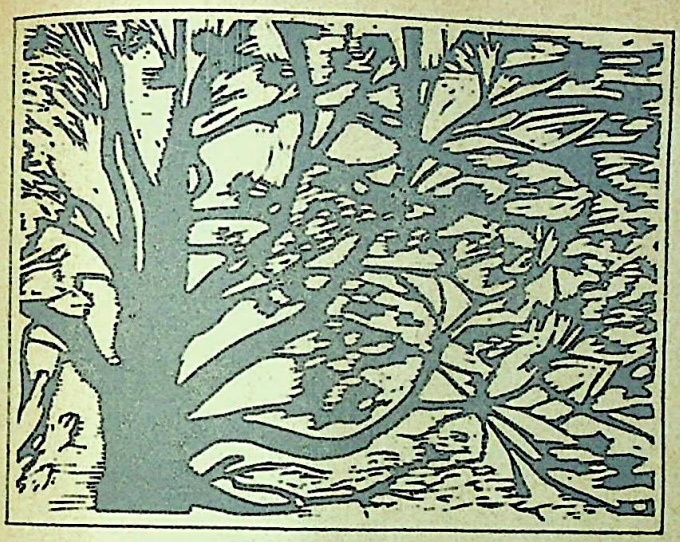

डॉ. रामदरश मिश्र की दो कविताएं

□

रात

रात जितनी घनी होती है
उतनी ही तेज़ होती है
मन में रोशनी की चाह
और रोशनी चाहे जहां भी रहे
रुकती नहीं
चली आती है खुली आंखों के पास
रात रोशनी की चाह है
आओ उसे कोसें नहीं
केवल अपनी आंख खुली रखें

धूल

जितनी तेज़ी से
कोई कुचलता है
वह उतना ही ऊंचे उठती है
और पीछा करती है
काफी दूर तक
मधुमक्खियों की तरह
हमसे अच्छी तो यह धूल ही है न
जो हर दमन का
प्रतिरोध करती है।

—आर ३८ वाणी विहार, उत्तर नगर, नयी दिल्ली-५९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ५५ का शेषांश)

के गर्भगृह में मेरी रक्षा करो। वहीं सिद्ध-योगिनी बनकर रहो। पुजारी मेरा परिचित है। उसे यह रहस्य बता देना। वह विश्वसनीय है। वह प्रबंध कर देगा और रहस्य को गुप्त रखेगा।'

नर्मदा को इतनी प्रसन्नता हुई कि वह उत्साह में योगी के चरण पकड़कर बैठ गयी और आनंद के आंसुओं से पैर पखारती रही। फिर अपने को शांत कर, उसने योगी की गुटिका मुंह में रखी और पर-काया प्रवेश-योग के चमत्कार के लिए उत्सुक हो गयी।

मत्स्येन्द्र नर्मदा को अदृश्य रूप में राजभवन के बाहर लाये और रुद्रभैरव के मंदिर में प्रकट हो गये। अभी भी कुछ झुटपुटा था। सूर्योदय में कुछ विलंब था। योगी ने पद्मासन लगाकर प्राणायाम साधा और शरीर को ऐंठ-ऐंठकर अपने प्राण निकालने लगा। नर्मदा से यह दृश्य देखा नहीं जा रहा था पर विवशता थी, योगी की शक्ति पर अखंड निष्ठा थी। अंततः मत्स्येन्द्र का शरीर निस्पंद होकर लुढ़क पड़ा। मुख से प्राणपखेरू उड़े। एक तेज का अंगुष्ठ-शरीर, जगमगाता हुआ, मुंह से निकलकर, आकाश में उड़ने लगा। मत्स्येन्द्र का शव चेतनाहीन होकर नर्मदा के अंक में गिर गया। वह रो भी नहीं सकती थी। उसने मोरछल हाथ में लेकर योगी की लाश पर पंखा करना शुरू कर दिया और मत्स्येन्द्र की गुटिका को अपने में सुरक्षित किया।

अचानक, वरुण के शरीर में प्राणशक्ति का संचार हो गया। उसके वक्ष पर सिर धुनती, रानी प्रियंवदा ने पति के मुख पर जीवनप्रभा को चकित होकर देखा और वह रुदन छोड़कर, हाथ जोड़कर अपनी इष्ट कामख्या देवी की स्तुति करने लगी। वरुण का शरीर एक बार कंपित हुआ और उसने पलकें खोल दीं। सब लोग आश्चर्य में अभिभूत एक दूसरे की ओर भौंचक होकर ताकते रह गये। रानी प्रियंवदा पर जैसे सती का आवेश आ गया था।

वह कामख्या माता के स्तवन में तन्मय, सिर हिला-हिलाकर झूम रही थी और वरुण का हाथ पकड़े आनंद से रो रही थी।

वरुण को अचरज हुआ कि यह क्या हो रहा है?

वह जैसे सोते से उठा और उठकर बैठ गया। रानी प्रियंवदा उसके अंक में अचेत होकर फैल गयी।

तुरत-फुरत गया नगर में हल्ला हुआ कि राजकुमार वरुण मरते से जी उठा है। दुःख के अंतिम सीमांत छूकर, सहसा सुख में लौटने पर जनमानस की कल्पना के पंख लग गये। नाना प्रकार के रोमांचक प्रसंग चल पड़े—

'वरुण तो धरती पर उतार लिये गये थे। अजी! गोदान तक हो चुका था।

सितंबर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सब कुछ समाप्त हो चुका था। पर वाह री रानी प्रियवंदा! उसने कामरूप-कामाख्या देवी को सुमिरा। सुनते हैं, वह तो रात में ही कहीं पति के प्राणों के लिए देवी के मंदिर में पूजा कर रही थी। फिर प्राणप्रस्थान वेला में उसने अपने योगबल से पति को यमराज से वापस कर लिया। अरे! वह सत्यवान-सावित्री की कथा सामने सिद्ध हो गयी।'

'अरे! तूने सुना नहीं! कामाख्या देवी ने यमराज के भैंसे को कील दिया, उसकी गति अवरुद्ध कर दी। यमराज ने जिस पाश में वरुण के प्राण बांधे थे, उस रस्सी के टुकड़े कर दिये कामाख्या ने। अंत में यमराज देवी से हार मानकर अपना भैंसा भगा ले गये।'

'तू कहां था उस समय? तुझे तो वह भग्न यमपाश भी तो मिला होगा?'

'अच्छा, तू मिथ्या समझता है मेरी बात को। चल मैं तुझे वह रस्सी का टुकड़ा ही दिखा देता हूं।'

कौतुक प्रेमियों का दल भैरव-मंदिर की ओर लपका। वहां पाया कि बाग में एक क्यारी में एक रेशमी रस्से का टुकड़ा पड़ा हुआ था।

'ले। यह रहा। अब तो विश्वास हो गया?'

लोग, उस टुकड़े को लेकर राजभवन की ओर दौड़े।

नर्मदा ने चैन की सांस ली। वह पुजारी से बतियाकर, मत्स्येन्द्र के शव को, गर्भगृह में व्यवस्थित कर चुकी थी और योगी की हीली पड़ी हुई किंतु अविकृत काया पर मयूरपंखों का गुच्छ हिला रही थी। मक्खियों-मच्छरों से रक्षा मुख्य कर्त्तव्य था और नर्मदा इसके लिए तत्पर थी।

राजभवन में आनन्दवाद्य बजने लगे थे और पंडितों, पुरोहितों के पूजा-कार्य प्रारंभ हो गये थे। राजा, दोनों हाथों से दान कर रहे थे और प्रसन्नता के आंसू पीते जा रहे थे। नगर में मुनादी कर दी गयी थी कि कोई याचक, कोई विप्र और वटुक, कोई भूखा-नंगा, आज अभावग्रस्त न रहे।

राजा ने खजाने खोल दिये हैं। रानियों, राजकुमारियों और अन्य राज्य-पुरुष शरीर से उतार-उतारकर, घर के भीतर से डिब्बे लाल-कर आभूषण, वरुण पर निछावर कर करके फेंक रहे हैं।

गया नगर आनंद में उन्मत्त हो रहा था। सेना ने सोत्साह सैनिक अभ्यास किया। नटों ने करतब दिखाये। कला-कविता-कीर्त्तन-दान-पुण्य और मनोरंजन की आज कोई सीमा नहीं थी। एक ही व्यक्ति आज पराजय की उसांसें ले रहा था। कालघंट सिर पर पटटी बांधे. अपने नगर के बाहर वाली अपनी कंदरा में हुड़क रहा था और विस्मित था कि उसकी कृत्या से वरुण बच कैसे गया!

(तीसरी किस्त आगामी अंक में)

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरिशंकर का ऐतिहासिक लेख

□

अतीत, काशी-विश्वनाथ मंदिर का

अत्यंत प्राचीन काल से वाराणसी में शैवमत की ही प्रधानता रही है, यही कारण है कि यहां के 'विश्वनाथ मंदिर' का विशेष महत्व है। ऐसी मान्यता है कि यहां का आदि ज्योतिर्मय शिवलिंग स्वयंभू है। काशीखंड में 'विश्वेश्वर' को ही वाराणसी का प्रधान देवता माना गया है।

विश्वनाथ मंदिर

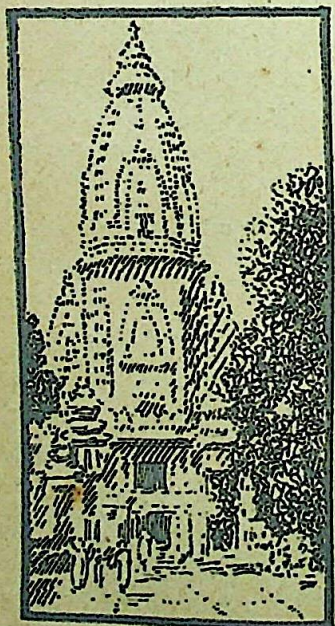

लिंग पुराण के अनुसार 'अविमुक्त' होने से ही इस नगर का नाम 'अविमुक्त क्षेत्र' पड़ा, इसलिए प्रारंभ में यहां 'अविमुक्तेश्वर' के रूप में शिव को प्रधानता दी गयी और सबसे पहले 'अविमुक्तेश्वर' के नाम से ही शिव के आदि लिंग की स्थापना हुई। यह आदि शिवलिंग किस स्थान पर था और कब स्थापित हुआ, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। परंतु लोगों का विश्वास है कि अनादिकाल से काशी में ज्योतिर्मय शिवलिंग सतत ज्योतित रहा है। एक पौराणिक कथा के अनुसार विष्णु ने सर्व प्रथम देवाधिदेव 'महादेव' के दर्शन इसी ज्योतिर्मय लिंग स्वरूप में किया था। महाभारत के वनपर्व के एक श्लोक में भी काशी का उल्लेख आया है, जिसके अनुसार उस समय तीर्थयात्री 'कोटितीर्थ' से 'वाराणसी' पहुंचते थे और वहां शिव-पूजा करके और स्नान-कर, अश्वमेध का पुण्य प्राप्त करते थे।

'अविमुक्तेश्वर' के नाम से स्थापित यह स्वयंभू आदि शिवलिंग बाद में वाराणसी के लोकजीवन में 'विश्वेश्वर' और 'विश्वनाथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यद्यपि 'पद्मपुराण' और 'काशीखंडे' में दोनों लिंग पृथक माने गये हैं। परंतु वहां भी अविमुक्तेश्वर को आदि लिंग माना गया है। जो भी हो, किंतु इतना निश्चित है कि आज जहां 'विश्वनाथ' का मंदिर है, वहां कभी भी अविमुक्तेश्वर या विश्वेश्वर का मंदिर नहीं था। अनुमान है कि 'अविमुक्तेश्वर' का स्वयंभू लिंग नगर के उत्तरी पूर्व भाग में रहा होगा।

जैसा कि पहले कहा गया है कि 'आदिमुक्तेश्वर' या 'विश्वेश्वर' का आदि मंदिर वाराणसी में कब और कहां बना, इस विषयमें निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है। परंतु गहरवार राजा 'जयचंद' के समय वाराणसी में विशाल मंदिर अवश्य था, जो सन ११४९ में पहली बार ध्वस्त हुआ। कुतुबुद्दीन ऐबक और शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने ११९४ में वाराणसी को फतह किया। उस समय इनकी फौजों ने शहर में काफी तबाही मचायी। पूरे नगर को लूटने के बाद यहां के लगभग सभी मंदिर ध्वस्त कर डाले।

कुतुबुद्दीन के बाद शम्सुद्दीन इल्तूतमिश (१२११–१२२६) दिल्ली के तख्त पर बैठा। उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिसमें से अवध और वाराणसी के सूबों का विद्रोह भी एक था। उसने बड़ी दृढ़ता से विद्रोह को दबा तो लिया। परंतु वाराणसी की धार्मिक जनता

नंदी और घंटा

को प्रसन्न रखने के लिए अपने शासन काल में उसने पुनः विश्वेश्वर के मंदिर का निर्माण कराया। अनुमान है कि आज ज्ञानवापी के उत्तर जो कारमाइकल लायब्रेरी है, उसके सामने की सड़क के पार वाली मसजिद तथा उसके आस-पास के विस्तृत स्थान पर विश्वेश्वर का यह विशाल मंदिर था, जो एक वर्णन के अनुसार सन १२९६ में निश्चित रूप में अस्तित्व में था।

इसके बाद शम्सुद्दीन इब्राहीम शाह (१४०२-१४३६) के समय वाराणसी में मंदिरों के तोड़-फोड़ का सिलसिला फिर से शुरू हुआ और सन १४४७ में विश्वेश्वर का मंदिर फिर तोड़ा गया। इसके बाद बीच में कुछ मरम्मत की गयी, परंतु सिकंदर लोदी (१४८९–१५१७)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के समय उसे पूरी तरह नष्ट कर दिया गया। इसके बाद वर्षों तक वाराणसी के शिव-भक्त गिरे हुए मंदिर की खाली जगह की ही पूजा करते रहे।

सन १५८५ के करीब अकबर के शासनकाल में राजा टोडरमल की सहायता से महाराष्ट्रीय विद्वान ब्राह्मण नारायण भट्ट ने ज्ञानवापी पर विश्वनाथ का मंदिर बनवाया। उसे बनवाने में पांच साल लगे थे और लगभग पैंतालीस हज़ार दीनार व्यय हुए थे, जिसकी व्यवस्था बादशाह अकबर ने अपने ख़ज़ाने से की थी।

यह मंदिर भी सन १६९६ में औरंगज़ेब द्वारा तोड़ा गया और उसी स्थान पर मसजिद का निर्माण हुआ। मसजिद की पिछली दीवारें अब भी मंदिर के अवशेष की साक्ष्य हैं। कहते हैं कि उस समय मंदिर का शिवलिंग हटाकर ज्ञानवापी के कुएं में छिपा दिया गया था। इसके बाद सवा सौ वर्षों तक फिर विश्वनाथ का मंदिर नहीं बना। परंतु औरंगज़ेब के चले जाने पर हिंदुओं ने कुएं से विश्वनाथ का लिंग निकालकर वर्तमान मंदिर के गर्भगृह के आकार के चबूतरे पर स्थापित कर दिया।

सन १७८० के आसपास अहिल्या बाई ने चबूतरे पर स्थित विश्वनाथ लिंग के ऊपर 'विश्वनाथ' का वर्तमान मंदिर बनवाया। इसके बाद सन १७८१ में महाराजा चेतसिंह की हार के बाद वाराणसी पर अंग्रेजों की पकड़ मज़बूत हो गयी। उस समय अंग्रेजों से असंतुष्ट जनता को प्रसन्न करने के लिए, वारेन हेस्टिंग्स की आज्ञा से उस पर नौबतख़ाना बनवाया गया। महाराजा रणजीत सिंह ने उसके शिखर पर सोना चढ़वाया। ज्ञानवापी का मंडप सन १८२८ में बैजाबाई सिंधिया ने बनवाया और उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में ही नेपाल के तत्कालीन राजा ने नंदी की स्थापना करायी।

स्थापत्य कला की दृष्टि से यह मंदिर बहुत ही साधारण है, तथापि भारत भर में इसकी जो ख्याति है, उसके कारण प्रतिदिन हज़ारों की संख्या में यहां दर्शनार्थी आते हैं। दक्षिण के कलापूर्ण मंदिरों को देखने के बाद विश्वनाथ के इस मंदिर को देखकर यात्रियों को निराशा अवश्य होती है। परंतु विश्वनाथ की यह प्रतिमा 'ज्योतिर्लिंग' के नाम से विख्यात होने से इसका जो धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्व है, उसके लिए हिंदू तीर्थ यात्री ही नहीं, बल्कि सुदूर विदेशों के पर्यटक भी इस मंदिर को देखने अवश्य आते हैं।

—महाराजा बिल्डिंग, १२५ गिरगांव रोड, बंबई-४००००४

□

संसार के मंदिर यह तो बताते हैं कि अमीरों के लिए स्वर्ग जाना कितना कठिन है, लेकिन यह नहीं बताते कि गरीबों के लिए संसार में जीना कितना कठिन है। —विल्सन

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विष्णु प्रभाकर की दो लघुकथाएं

□

मेरा यक्ष

सुना था वह पहुंचे हुए महात्मा हैं। उन्हें गंगोत्री में रहते एक युग बीत गया था। वहीं उनके आश्रम में मैंने उनसे प्रश्न किया, 'महात्माजी! इस शाश्वत हिमप्रदेश में देवयोनि यक्ष को देखा है कभी आपने?'

बोले महात्माजी – देखा है, वत्स! कई बार सौभाग्य पाया उनके दर्शन करने का। एक बार हम और ऊपर तपोवन गये थे। बहुत पवित्र स्थान है। वहां पहुंचकर मन गद्‌गद् हो आया। क्षण भर में थकावट दूर हो गयी। भोजन साथ में था लेकिन जब खाने बैठे तो पाया कि साग में नमक नहीं है। क्या करें? कि तभी देखा एक चरवाहा चला आ रहा है। गड्डी लोग इधर भटक जाते हैं। विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। पास आकर वह बोला, 'महात्माजी! यदि आपके पास साग हो तो मुझे भी देने की कृपा करें।'

हमने कहा, 'साग तो बहुत है, पर उसमें नमक नहीं है।'

चरवाहा तुरंत बोला, 'नमक मेरे पास बहुत है, यह लीजिये।'

उसने हमें नमक दिया, हमने उसे साग दिया लेकिन साग लेते ही वह उस निर्जन हिमप्रदेश में ऐसा गायब हुआ कि दूर-दूर तक उसकी छाया भी नहीं देख सके हम। भेड़-बकरी के होने का तो प्रश्न ही नहीं था। अब बताइये वह यक्ष नहीं तो और कौन था।

इस वैज्ञानिक युग में मेरा मन इस कथा पर विश्वास नहीं कर पा रहा था, लेकिन विवाद करने का भी कोई अर्थ नहीं था। प्रणाम करके लौट आया। दूसरे दिन नीचे उतरना था। चलने से पहले हमारे पूर्व परिचित महेंद्र योगी ने बड़े प्यार से पूरी और आलू का साग हमारे लिए तैयार कर दिया।

हम लोग नौ मील के दुर्गम पथ को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पार करके धराली के पास गंगा तट पर रुके और रेत के अनंत विस्तार पर डेरा डाल दिया। भोजन साथ में था। लेकिन जब खाने बैठे तो पाया उसमें नमक नहीं है। इधर-उधर दृष्टि घुमाई। बहुत लोग थे आस-पास पर यक्ष उनमें कोई नहीं था। महेंद्र ने हमें कैसा धोखा दिया...

यह सोच भी नहीं पाये थे कि तेज़ी से एक व्यक्ति हमारी ओर आता हुआ दिखाई दिया। पास आने पर बोला, 'क्या आप लोग गंगोत्री से वापस लौट रहे हैं? क्या आप लोगों के लिए ही पंडित महेंद्र ने पूरियां तैयार की थीं?'

मैंने कहा, 'हां-हां, क्या बात है?'

विनम्र स्वर में वह पहाड़ी बंधु बोला, 'साब, सवेरे महेंद्र साग में नमक डालना भूल गया। उसे बहुत अफसोस है। माफी मांगी है और यह नमक भेजा है।'

स्तब्ध विमुग्ध मैं उस मानव यक्ष की ओर देखता ही रह गया।

ooo

खोना और पाना

उस दिन उनके घर में हर्षोल्लास बहा पड़ता था। उन्होंने गत वर्ष जो मकान खरीदा था, उसको तोड़ने पर दीवारों में से अपार अनर्जित संपदा उन्हें प्राप्त हुई थी।

और उस मकान का पूर्वकालिक स्वामी,

सरकारी अस्पताल के एक छोटे-से कमरे में पड़ा था। सभी मित्र, परिजन यहां तक कि उसके पुत्र भी उसे छोड़ गये थे। केवल उसकी पत्नी किसी स्कूल में पढ़ाकर किसी तरह उसकी देखभाल कर रही थी। घर लौटते समय उसने अपार संपद। पाये जाने का यह समाचार सुना और पति से कहा, 'काश! दीवारों में संपदा छिपी है, यह बात हम जान पाते।'

पति ने धीरे से कहा, 'अच्छा हुआ जो मैं न जान पाया। मैं अब जान पाया हूं कि मैंने मकान बेचकर सुख पाया है। उसने मकान खरीदकर सुख खोया है। पसीना बहाकर जो तुम कमाकर लाती हो उसी ने मुझे जीवन दिया है। इससे बड़ा ऐश्वर्य कुछ हो सकता है, मैं नहीं जानता।'

मंद-मंद मुस्कराते हुए पत्नी ने पति की आंखों में झांका और उनका माथा सहलाते हुए प्यार भरे स्वर में कहा, 'मैं यही सुनना चाहती थी।'

—८१८, कुण्डेवालान, अजमेरी गेट,
दिल्ली—११०००६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुजराती के विख्यात
उपन्यासकार
शिवकुमार जोशी
के एक विशिष्ट
उपन्यास का सार-संक्षेप

□

सुनहली छाँह

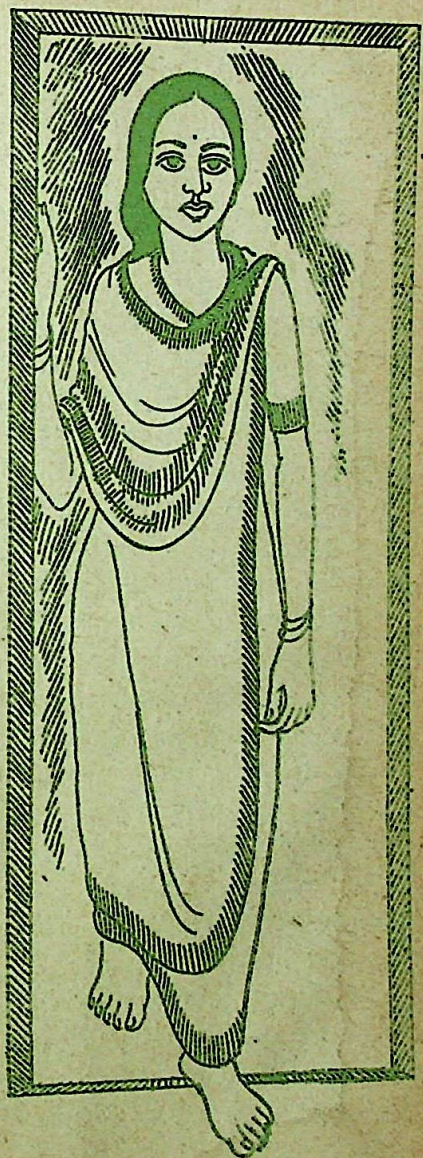

श्री शरद चंद्र पारेख, अपने ढंग का निराला आदमी था। अहमदाबाद से तबादला होकर वह कलकत्ता आया था। काफ़ी तलाश करने पर तीन महीने बाद कहीं अपनी पसंद के अनुरूप एक ढंग का मकान किराये पर मिला—सेकण्ड फ्लोर, लेक कालोनी, रवीन्द्र सरोवर, कलकत्ता। ग्राउण्ड फ्लोर पर मकान-मालिक नंदबाबू रहते थे। शरद जिस फ्लैट में रहने आया, उसमें उसके पहले वाला किरायेदार अपना बहुत सारा कीमती फर्नीचर एवं ढेर सारी किताबें छोड़ गया था। अतः नंदबाबू के अनुरोध से न चाहते हुए भी—या कुछ समझें—शरद को बहुत ही कम दाम में यह सारा फर्नीचर एवं किताबें मिल गयीं। शरद अकेला था, साथ में केवल एक नौकर था सिद्धेश्वर, जो उसकी पूरी देखभाल करता था। नंदबाबू अपन सेवाकाल में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहमदावाद तथा बड़ौदा में नौकरी कर चुके थे। अतः गुजराती अच्छी तरह समझ और बोल लेते थे। उनका गुजराती-भाषियों के प्रति बड़ा सद्भाव एवं प्रेम भी था। वे यहां अकेले ही रहते थे। उनके दोनों बेटे बम्बई में नौकरी करते थे। कुछ ही वर्ष पूर्व उनकी पत्नी का स्वर्गवास हुआ था।

आलमारी में किताबें करीने से रखी गयी थीं। शरद को किताबों का कोई विशेष शौक न होते हुए भी वह उत्सुकता-वश उन किताबों के पन्ने पलटने लगा। प्रत्येक किताब के प्रथम पृष्ठ पर नाम और खरीदने की तारीख समान ढंग से अंकित थी। नाम था—अमूल्य मेहता, अर्थात् गुजराती। कैसा संयोग था वह। प्रत्येक पुस्तक का पन्ना-पन्ना पलटने का अब शरद का नियम बन गया, और यह सिलसिला कई दिनों तक चलता रहा। किताबों में अमूल्य द्वारा लिखे गये 'नोट्स' की पर्चियां भी मिलतीं, जिसमें तद्विषयक उनकी मान्यताएं, प्रतिक्रियाएं आदि हुआ करतीं। कई पृष्ठों पर रोमन अक्षर 'पी' लिखा मिलता। किंतु केवल 'पी' से उनके बारे में कोई बात पकड़ में आनी असंभव थी। इस प्रकार बार-बार नोट्स-पर्ची अध्ययन के बाद, अमूल्य मेहता अब उसके सामने एक पहेली के से चरित्र के रूप में उभरने लगा। इन किताबों के सहारे इस पहेली को सुलझाने का उसका क्रम नियमित रूप से जारी रहा। एक पर्ची मिली, जिसमें लिखा था—'कबूल करेगा तू कि जब तूने' 'पी' को देखा तब तेरा अचल कहलाने वाला दिल बिखर गया था, चंचल हो उठा था?' बाद में शरद को यह मालूम हुआ कि अमूल्य मेहता उदार दिल के फक्कड़ आदमी थे। साथ ही साथ अच्छे पड़ोसी तथा विद्वान लेखक एवं चिंतक भी। अब धीरे-धीरे शरद को अमूल्य बाबू के व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व-विकास की कुछ कड़ियां भी मिलने लगीं।

एक दिन शरद ने अपने घर एक छोटी-सी पार्टी का आयोजन किया। पार्टी में विशेष करके शरद के परिचित गुजराती लोग ही आये थे। इस निमित्त उसने नंद-बाबू तथा फर्स्ट फ्लोर वाले बद्रीप्रसाद तथा उनकी पत्नी सुषमादेवी को भी निमंत्रित किया था। उपस्थित सभी लोगों के बीच केवल शरद ही अविवाहित था। नंदबाबू ने कहा—'क्यों शरद बाबू, ऐसा नहीं लगता क्या कि इन सबसे आप कुछ अलग हैं?' पार्टी खत्म होने के पश्चात बड़ौदावाले श्री ऋषिकेश उपाध्याय तथा उनकी पत्नी तारिणी रुके थे। नीचे जाते समय नंदबाबू ने ऋषिकेश को लक्ष्य करके कहा—'उपाध्यायजी, आपके इस मित्र को समझाइये, अब भी देर नहीं हुई है विवाह करने में। अभी भी समय है। बाद में बात उनके बस में नहीं रह जायेगी, तब या तो किसी की सुखी गृहस्थी उजाड़ेंगे, या फिर कहीं पर भी जात-कुजात देखे बिना...' सुनकर शरद को लगा था कि तारिणी के खुले व्यक्तित्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के प्रति ही शायद नंदबाबू का संकेत था। उसके मन में भी यह लगा कि अगर चाहे तो तारिणी को वह गिरा सकता है, फंसा सकता है। लेकिन नहीं, जाने भी दो। खैर.....

उस रात सबके चले जाने के बाद नंदबाबू ने शरद को अपने पास बुलाया और उसके प्रति बड़ी आत्मीयता एवं स्नेहभाव दर्शाया। शरद को लगा कि आज पहली बार नंदबाबू उसके सामने इस प्रकार खुल रहे थे। तथापि कुछ सकुचाते-अटकते वे बता रहे थे, 'देखो शरद, मैं तुम्हें अपना ही बेटा समझता हूं, आत्मीय समझता हूं। तुममें और उस अमूल्य मेहता में काफ़ी समानता नज़र आती है मुझे। तुम्हारी तरह वह भी परोपकारी, मिलनसार एवं भद्र था। हमारे परिवार का अंतरंग सदस्य बन गया था वह। मेरी गिन्नी (गृहिणी : स्वर्गीया पत्नी) उसे मातृवत स्नेह करती थी। फर्स्ट फ्लोर वाले उस बद्रीप्रसाद के फ्लैट में उन दिनों डा. सुधीन चक्रवर्ती नाम के एक पूर्वी-बंगाली सज्जन रहते थे। उनकी पत्नी का नाम था श्यामादेवी। उनके दो बच्चे थे। और सुनो, उनके परिवार की एक और सदस्य भी थी– रेवा। रेवा, श्यामादेवी की भांजी थी, जो निराधार थी और उनके साथ ही रहती थी। बिलकुल ही भोली-भाली ग्रामीण कन्या। नगर की हर प्रकार की चालाकी, संस्कार तथा कुटिलताओं से बिलकुल अनभिज्ञ। डा. चक्रवर्ती के यहां एक नौकरानी की तरह पल रही थी बेचारी। बिलकुल ढीली-ढाली। श्याम वर्ण था उसका। किंतु डील-डौल ठीक था। चौदह-पंद्रह साल की रही होगी उन दिनों।' उस दिन नंदबाबू ने केवल यहीं तक बताया। और बात को समेटते हुए शेष 'फिर कभी' कहकर शरद की उत्सुकता को मानो सीझने को छोड़ दिया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि नंदबाबू ने ऐसा क्यों किया। खैर...शरद अपने फ्लैट में लौट गया। वह सो नहीं पा रहा था। नंदबाबू की बातों के आधार पर, अब वह अमूल्य बाबू के रहस्यमय व्यक्तित्व के बारे में कुछ तालमेल बिठा रहा था। उसने आलमारी से एक किताब निकाली, उसमें से छोटे-छोटे काग़ज़ों का एक पुलिंदा मिला। उसपर लिखा था–'ट्रायल और एरर की थियरी, जिंदगी भर आज़माता रहा।... पी पी पी, इस प्रकार सुलझाया न जा सके, वैसी उलझन बनकर क्यों आयीं तुम? क्या, मेरी अनेक असफलताओं में वृद्धि करने? या फिर मैं किस मिट्टी से बना हूं, इसकी कसौटी बनने?' शरद के दिमाग में इस 'पी' के अस्तित्व की उलझन तो थी ही और नंदबाबू ने एक रेवा भी बता दी थी फिर वह 'पी' कौन थी?

दूसरे दिन नंदबाबू ने आगे बताते हुए शरद से कहा–'सुनो, तुम्हारी ही तरह, उन दिनों अमूल्य भी भ्रम में जी रहा था। उसकी नज़र चुगली खा रही थी। उस

कथासार : ऊजम पटेल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भोली किशोरी को शायद उस नज़र की गहराई समझ में नहीं आयी थी, लेकिन मैं तो पुरुष था न, सो सभी कुछ ताड़ गया था। मौसा-मौसी को क्या चिंता थी? चीनी-चाय, मिर्च-मसाला आदि कुछ न कुछ लेने का क्रम नियमित-सा हो गया था।' इसके उपरांत नंदवाबू की और ढेर सारी बातों के अनुसार बाद में रेवा और अमूल्य बाबू का संपर्क बढ़ने लगा था। बचपन से ही लाड़-प्यार से वंचित तथा मौसा-मौसी से प्रताड़ित रेवा को अमूल्य बाबू से स्नेह मिला और वह पोड़शी उस ३५ वर्षीय अमूल्य बाबू के प्रति खिंचती चली गयी। वे उसको बहुत स्नेह देते थे और उसके लिए सौंदर्य-प्रसाधन आदि की भी ढेर सारी चीज़ें लाकर देते और उसको प्रसन्न रखते थे। दोनों में अब कुछ अंकुरित हो रहा था, पनप रहा था। किंतु शब्दों के रूप में यह भाव दोनों में अंत तक भी अव्यक्त ही रहा।

बाद में नंदबाबू ने शरद को एक पुरानी डायरी दी। उसके हाथ में डायरी रखते हुए उन्होंने कहा—'लो, यह अमानत। मुझे किसी ने विश्वासपूर्वक सौंपी थी। किंतु इसे तुम्हें देने की इच्छा को मैं रोक नहीं सकता। शायद, इसी के माध्यम से किसी का अनुभव, तुम्हें अपनी राय बदलने में सहायता दे।'

डायरी लेकर शरद अपने फ्लैट में आ गया। बैठकर वह डायरी के पन्ने पलटने लगा। कुछ प्रारंभिक पृष्ठों के पढ़ने पर, उसकी 'पी' की पहेली का उत्तर मिल गया। 'पी' अर्थात् पियु, वही रेवा। पियु उसका प्यार का नाम था। उस रात काफ़ी देर तक शरद डायरी के पन्ने पलटता रहा। डायरी के इन पृष्ठों को पढ़ने का क्रम कई दिनों तक चला। अब धीरे-धीरे शरद बाबू के सामने अमूल्य मेहता के व्यक्तित्व के रहस्य खुलते जा रहे थे। बिना देखे भी उसके सम्मुख अमूल्य मेहता नाम का एक अस्तित्व उभरता जा रहा था। और यह व्यक्ति-परिचय यहां तक बढ़ा कि अमूल्य बाबू जैसे शरद के घनिष्ठ मित्र हों। शरद अब तो, अपने और अमूल्य बाबू में साम्य एवं एकाकार का भाव भी अनुभव करने लगा। डायरी के पन्ने पलटते-पढ़ते, उसको कई बार लगता कि वही अमूल्य है, या अमूल्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खुद शरद था। इसी डायरी से शरद को यह जानकारी भी प्राप्त हुई कि अमूल्य बाबू ने बनमाला से विवाह किया था।

बनमाला बंबई के एक संपन्न परिवार की बेटी थी, स्वभाव से स्वतंत्र, अहंकारी, एवं तेज़ मिज़ाज। अमूल्य बाबू को बंबई में बनमाला के पिता की ही फैक्टरी में नौकरी मिली थी। बनमाला की दृष्टि से, अमूल्य बाबू उसके पिता के उपकृत थे, किंतु यह उन्हें क़तई मंजूर नहीं था। वह अपने ढंग के आदमी थे। इस प्रकार उन दोनों का दाम्पत्य स्वस्थ और प्रसन्न नहीं था। उनकी गृहस्थी बहुत ही कम दिनों तक चली। दोनों ने विवाह विच्छेद कर लिया। बाद में अमूल्य बाबू कलकत्ता आ गये थे। उन्हें अच्छी नौकरी भी मिल गयी थी, और वे यहां इसी फ्लैट में रहने लगे थे। शरद को पढ़ते-पढ़ते यह लग रहा था कि जैसे डायरी के ये पृष्ठ उसकी असंप्रज्ञातीत अवस्था में लिखे गये हों। डायरी के इन पृष्ठों पर अंकित अमूल्य बाबू का 'पियु प्रकरण' शरद पढ़ रहा था।

०००

'रविवार की सुबह थी, देर से जगा था। हल्के-फुल्के मूड में अख़बार पढ़ते-पढ़ते चाय पी रहा था और वहां दरवाज़े पर कोई दस्तक दे रहा था। आश्चर्य हो रहा था कि कालबेल के होते हुए भी क्यों कोई इस तरह दस्तक दे रहा है? खड़े होकर मैंने दरवाज़ा खोला। देखा कि हाथ में कप लिये एक किशोरी सामने खड़ी थी। श्याम वर्ण, सुडौल देह, और कपड़े तथा सिर के बाल अस्त-व्यस्त। इन सबके बीच, चेहरे पर चमकती उसकी बड़ी-बड़ी आंखें, उसके प्रति टकटकी लगाये रहने का एक समर्थ कारण थीं। वह शायद चीनी लने आयी थी, और मेरी अनुमति से रसोई में से थोड़ी-सी चीनी लेकर चली गयी थी। जाते समय आंखें फैलाकर, होंठों से थोड़ा-सा स्मित

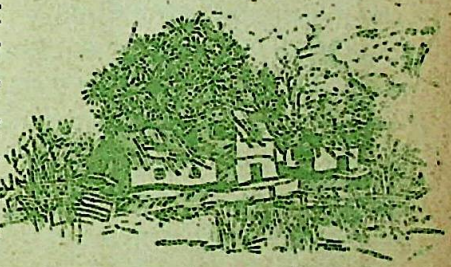

बिखेरते हुए उसने आभार प्रदर्शन भी किया था। उसकी दुबली देह में चंचलता थी, मस्ती थी। वह जब सीढ़ियां उतरती तब कोई निराली, आकर्षक अदा आप ही आप प्रकट हो जाती थी।'

०००

शरद उस डायरी के पृष्ठ पढ़ता रहा, और उसको मालूम हुआ कि बाद में अमूल्य बाबू और पियु का संपर्क बढ़ता चला। अब तो वह किसी न किसी बहाने प्रतिदिन नियमित रूप से अमूल्य बाबू के पास आया करती। समय बीतता चला गया और चिथड़े में लिपटे उस हीरे का प्रकाश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धीरे-धीरे आलोकित होता गया। पियु अब अमूल्य बाबू को कभी अमूलदा तो कभी 'ओ गो हे !' अजी ओ ! कहकर भी पुकारने लगी थी। दुर्गापूजा के उत्सव के निमित्त अमूल्य बाबू उसके लिए लहंगा, चोली और ओढ़नी लाये थे। देखकर वह बहुत ही खुश हुई थी। उसने उनसे कहा था—'देखिए, शाम को कहीं बाहर मत चले जाइयेगा, नहीं तो मुझे मज़ा नहीं आयेगा। हां, अगर आप नहीं होंगे तो ये नये कपड़े पहनकर मैं किसको दिखाऊंगी ?' यह सुनकर अमूल्य बाबू सहसा अभिभूत से हो गये थे। उस दिन पहली बार अमूल्य बाबू को उसका शरीर कुछ अलग-सा लगा। अब तो उसका रंग खुल गया था, सिर के बाल भी व्यवस्थित थे और शरीर भी काफ़ी भरने लगा था। वे काफ़ी देर तक टकटकी लगाये उस मूर्ति को देखते रह गये थे। बाद में अमूल्य बाबू ने उसको पढ़ाना शुरू किया। अब वह समझदार होने लगी थी। उस हीरे के ऊपर से चिथड़ों का वह आवरण हट चुका था। अब तो उस पर पासे पड़ रहे थे। एक प्रतिमा का निर्माण हो रहा था, जिसके शिल्पी थे अमूल्य बाबू। वह शिल्पी, जो अपनी कल्पना की मूर्ति में प्राण भरने में मस्त हो, दत्तचित्त हो। और पियु के इतने सारे परिवर्तनों की घटना से उसके मौसा-मौसी बिलकुल ही अनभिज्ञ थे। पता नहीं, क्यों ? धीरे-धीरे अब पियु की वाणी एवं व्यवहार में काफ़ी संस्कारिता आ चली थी। वह आकर्षण एवं आत्म-विश्वास से भरी-भरी लगती। पियु की सुप्त प्रतिभा, अब अमूल्य बाबू की नज़र के समक्ष बराबर साकार हो चुकी थी। विस्तृत केश-कलाप, अगाध एवं निर्मल शांत सरोवर की सी आंखें, सुडौल मुख और उसकी कृशता किन्तु उन्माद जगा देने वाला देह-सौष्ठव। और सबसे अधिक तो—जंगल के किसी पोखरे में सुशोभित पाटल के समान उसका व्यक्तित्व। धीरे-धीरे मुहल्ले में सबको, उनके तथा पियु के इस अनुराग-संबंध का पता चल गया था। खुद नंदबाबू ने तथा और भी कई लोगों ने उन्हें टैक्सी-रिक्शों आदि में एक साथ घूमते-फिरते देखा था। अब अमूल्य बाबू के सामने परेशानियां भी खड़ी होने लगीं। मुहल्ले वाले डा. सुधीर चक्रवर्ती तथा अमूल्य दोनों को मकान खाली कर देने की धमकियां देते रहते। और अमूल्य बाबू को तो मुहल्ले में जवान लड़कों के बीच से गुज़रते भद्दी से भद्दी गालियां और धमकियां भी सुननी पड़ती थीं। पियु स्वयं बड़ी चिंतित और आतंकित रहती थी।

एक दिन मुहल्ले के सारे जवान लड़कों ने अमूल्य बाबू को आफिस से लौटते समय कालोनी के बाहर ही घेर लिया। सब लड़के उनकी पिटाई करने पर उतारू थे। इतने में वही पियु दौड़ती हुई आयी थी, और उन्हें अपने बड़े भाई के समान एवं निष्पापी पुरुष कहकर, उन लड़कों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के चंगुल से छुड़ाया था। किंतु इस घटना से अमूल्य बाबू को बड़ा आघात लगा। उन्होंने सपने में भी ऐसा नहीं सोचा था। वर्षों से टुकड़ा-टुकड़ा संजोकर खड़ी की गयी इमारत, पियु के उन कुछ शब्दों के आघात से ही धराशायी हो गयी। दूसरे दिन उनकी प्रतीक्षा रही कि दरवाज़े पर दस्तक होगी किंतु ऐसा नहीं हुआ। बाद में डा. सुवीन न केवल उस फ्लैट को ही बल्कि कलकत्ता छोड़कर जमशेदपुर चले गये और इसके बाद तो अमूल्य बाबू मन से एक प्रकार से टूट ही गये। करीब छह महीनों के बाद वे भी यह सब नंदबाबू को सौंपकर कहीं चले गये।

०००

अब शरद अपने आप को, अमूल्य मेहता का आत्मीय अनुभव करने लगा। वह कहीं से भी जानकारी प्राप्त करके अमूल्य बाबू तथा पियु से मिलना चाहता था। लेकिन कहीं से भी कोई जानकारी नहीं मिल पा रही थी।

इसी शोध में दो-ढाई साल बीत गये और शरद तो जैसे उसी अनजानी युवती के अनजाने प्रेम में अनजाने ही जी रहा था। इसी बीच नंदबाबू का देहावसान हो गया। उन्होंने मरते समय, अमूल्य बाबू को दिये गये वचन को भंग करके, उनके बारे में जो जानकारी दी थी, वह भी अंतिम नहीं थी। अतः ग़लत निकली। तथापि शरद का प्रयत्न तो चालू रहा।

उसी प्रतीक्षामय अरसे में एक दिन सुबह शरद नाश्ता ले रहा था। सिद्धेश्वर छत पर था और दरवाज़े पर दस्तक हुई तो वह भी चौंका। दस्तक पुनः हुई। मन में हुआ, कहीं पियु तो नहीं है। उसने दरवाज़ा खोला तो सामने एक युवती खड़ी थी। उससे आंखें मिलीं। उसकी नज़र में प्रश्न उभर रहा था। लेकिन वह कुछ पूछे इसके पूर्व ही शरद ने पूछा—'कौन? आप कौन हैं? पियु, पियु? अर्थात् रेवा न?' सुनकर पियु को आश्चर्य हुआ था। बाद में शरद के आग्रह करने पर वह अंदर आयी थी। निश्चित स्थान पर चप्पल उतारकर चारों ओर परिचित दृष्टि से देखते हुए वह कुर्सी पर बैठी तो शरद ने सारी बातें बतायीं कि वह कैसे उसके बारे में जानता है। बातचीत के दरमियान शरद उस 'डायरी' के वर्णन के अनुसार पियु के साक्षात् अस्तित्व की, नख-शिख की तुलना करने लगा था और उसके आकर्षण में बंधा जा रहा था। शरद ने देखा कि उसकी मांग में सिंदूर नहीं था, कलाई में कांच की चूड़ियां नहीं थीं। अतः वह अविवाहित थी। शरद ने जैसे राहत अनुभव की और कल्पना की कई सारी सीढ़ियां वह एक साथ लांघ गया।

पियु ने बताया कि वह अब उसके मौसा-मौसी से अलग होकर कलकत्ता में नर्सिंग का कोर्स कर रही थी, और वहीं पर नर्सेज़ हास्टेल में रहती थी। मन को कितना भी

(शेषांश पृष्ठ ८६ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

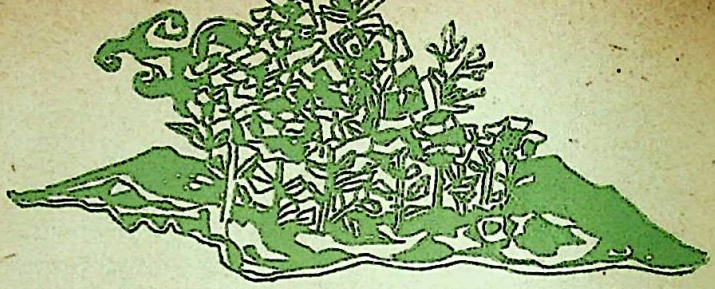

आयुर्वेदाचार्य पंडित सुरेशचन्द्र चतुर्वेदी
का एक दिव्य औषधि-वैज्ञानिक लेख

□

सोमरस-पान क्या है?

आज बुद्धिजीवियों के मन में 'सोमरस' के संबंध में अनेकानेक प्रकार के विचार ऊहापोह कर रहे हैं। आज धारणा यह है कि यह देवताओं के द्वारा और ऋषि-मुनियों के द्वारा ग्रहण किया जाने वाला पेय द्रव्य होता था। सुराओं में श्रेष्ठ माना जाता है। लेकिन यदि हम आयुर्वेद के सैद्धांतिक पहलू से विचार करें तो यह रहस्य स्पष्ट हो सकता है।

आयुर्वेद के आठ अंगों में 'रसायन' अंग बड़ा ही महत्वपूर्ण है। औषधि तथा आहार-विहार का सेवन विभिन्न प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक बीमारियों से व्यक्ति की रक्षा करे एवं वृद्धावस्था को दूर करे उसे 'रसायन' कहते हैं। संक्षेप में 'यत जरा व्याधी विनाशनम् तद् रसायनम्।'

अजर और अमरत्व की कामना के हेतु तथा जीवन को सुखमय बनाने की कामना से सोमपान भी रसायन माना जाता है।

सोम : 'सोम' शब्द चंद्रमा का पर्यायवाची है। किंतु आयुर्वेद में सोम (चंद्रमा) नाम की एक दिव्य औषधि भी होती है। इसका एक छोटा पौधा होता है, जिसमें शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को एक पत्ता, दूज को दूसरा पत्ता, तीज को तीसरा पत्ता, इस तरह क्रमशः पूर्णिमा तक १५ पत्ते पैदा होते हैं और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से एक-एक पत्ता झड़ने लगता है तथा अमावस्या तक यह पौधा केवल कंकाल ही रह जाता है।

पूर्वकाल में ब्रह्मा आदि देवताओं ने बुढ़ापा तथा मृत्यु का नाश करने के लिए 'सोम' नामक अमृत का सृजन किया था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकटएवखलु चगवान सोमः स्नाथ नाम आकृति वीर्यं विशेषैश्च तु विशतिघम मिद्यते ।

अर्थात् सोम एक ही होते हुए स्थान, आकृति, नाम और वीर्य भेद से इसके २४ भेद माने गये हैं । अतः चंद्रमा, अंशुमान, मंजुवान, रजतप्रभ, दूर्वासोम, कनीयान, श्वेतान, कनकप्रभ, प्रतानवान, लालवृत्त, करवीर, अंशवान, स्वयंप्रभ, महासौम, गरुडाक्ष, गायत्र, येष्टम, पांक्त, जागत, शाकर, अग्निष्टोम, रैवत, त्रिपदागायत्री, उडपति इन वेदोक्त शुभ नामों से सोम को जाना जाता है।

स्थान : हिमालय जो अनेक नदियों का उद्गम स्थान एवं जहां नाना प्रकार की जड़ी-बूटियां पायी जाती हैं, यह दिव्य औषधि वहीं उपलब्ध है । कश्मीर में पदुक मानसरोवर के क्षेत्र में पाया जानेवाला सोम श्रेष्ठ माना जाता है, किंतु यह सिंधु नदी के उद्गम स्थान में भी प्राप्त होता है । इसके अलावा मल्लिकार्जुन पर्वत, सह्याद्रि. महेंद्र, मलय, श्रीपर्वत, देवगिरि, पारिजात, विंध्याचल आदि पर्वतों में भी यह औषधि पायी जाती है।

पहचान : इसकी पहचान अनुभवी व्यक्तियों को ही होती है एवं इसकी प्राप्ति संत महापुरुषों को ही हो सकती है । यह औषधि पर्वतों के दुर्गम एवं निर्जन स्थानों तथा नदी के किनारों पर प्राप्त होती है । यह रात्रि के समय अंधकार में प्रकाश देती है और इसकी मधुर-मधुर सुगंध उस क्षत्र में व्याप्त रहती है । अंशमान फली सुगंधवाला कंद होता है । मंजुवान केले के समान कंद और लहसुन के समान पत्ते होते हैं । चंद्रमा, कनकप्रभ जल के निकट पैदा होते हैं । गरुणाहत और श्वेताक्ष सांप के समान धूसरवर्ण के होते हैं और अन्य सोम गोल आकार के सचित्र प्रतीत होते हैं । ये पंद्रह पत्ते होते हैं और इनके कंद में दूध (रस) होता है । इनमें कुछ लता के रूप में नाना प्रकार के पत्रों से युक्त होते हैं और श्रेष्ठ चंद्रमा सोम तालाबों में जल-कुंभी की भांति तैरते रहते हैं ।

अजमरी-चित्रित कपिल वर्ण के धब्बोंवाली, सांप के आकार की, पांच पत्तों की पांच अरलि प्रमाण होती है। श्वेत काकोली पत्र रहित आकार की, दो पत्ती वाली अरुण वर्ण की होती है। करेणु बहुत दूधयुक्त होती है, यह महौषधि सूर्य की ओर अपना मुख रखती है ।

ब्रह्म सुवर्चला तालाबों में श्रेष्ठ देवसुंद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में और महानदी सिंधु के किनारे ब्रह्म सुवर्चला मिलती है जो कि परम बुद्धिवर्धक होती है। सज्जयनी नदी के पूर्व की ओर श्वेत काकोली मिलती है। महाश्रावणी स्वर्ण के समान कांति की और दूध वाली होती है। गोलोनी और अजलोनी रोंगटे वाली होती है एवं कंद से उत्पन्न होती है, वेगवती या सांप की केंचुली के समान होती है और वर्षा बीतने पर यह उत्पन्न होती है।

नदियों में, पर्वतों में, तालावों में, जंगलों में, यह दिव्यौषधियां श्रमपूर्वक ढूंढ़ने से प्राप्त होती हैं।

सेवन विधि

कुटी प्रावेशिक : सोम को पीने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य सब साधन एवं परिचारकों से युक्त उगमस्थान में तीन खंडवाली कोठरी में, वमनादि विधि पूर्ण करना, पेया आदि क्रम पूरा करना चाहिये। प्रशस्त तिथि-करण मुहूर्त नक्षत्रों में विधि-पूर्वक सोम को घर के अंदर मंगल पाठ कर सोने या चांदी के पात्र में एक अंजलि परिमाण रस को ले लें। इस रस को एकदम से ही पी जायें। फिर सोम व्रत धारण कर स्वस्थ चित्त से उक्त कुटी में विहार करें।

द्रोणीप्रावेशिक : यह विधारा नामक वृक्ष की लकड़ी से बनायी गयी विशिष्ट प्रकार की नाव की आकृति की दोनी बनायी जाती है। उसी के समान ऊपर का ढक्कन बनाया जाता है। इस रसायन प्रयोग में ब्रह्म सुवर्चला नामक वृक्ष का रस विधि-विधान से कई दिनों तक पिलाया जाता है।

वातातपिक : इस विधि में हवा एवं प्रकाश में रहकर अपनी दिनचर्या के अनुसार कार्य करते हुए रसायन प्रयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत दिव्य औषधियों के रसायन का सेवन विधि-विधान से किया जाता है।

परिणाम : कृमियुक्त वमन या मल आने पर मनुष्य शुद्ध शरीर वाला होता है। चौथे दिन शरीर से कृमि बाहर आते हैं, फिर शैया पर धूल बिछाकर सोना चाहिये, छह दिन तक गरम करके ठंडा किया हुआ दूध ही पीना चाहिये। सातवें दिन मुल्हठी एवं चंदनयुक्त दूध पिलायें। आठवें दिन दूध से स्नान कराकर चंदन का शरीर पर लेप करायें। नवें व दसवें दिन अणु तेल का अभ्यंग करके रेशम की शैया पर सुलायें। इसके बाद शरीर का मांस बढ़ने लगता है। बाद में नित्य खैर, कषाय का स्नान करायें। पच्चीस दिन पश्चात् तरुण सूर्य के समान लाल नाखून निकल आते है। त्वचा नील वर्ण होती है। बाल उग आते हैं, आदि परिवर्तन शरीर में होने लगते हैं।

लेकिन प्राचीन काल में ऋषि-मुनि तथा महात्मा एवं देवता विधि-विधान से इसका नियमित सेवन करते थे जिससे उनके शरीर पर दिव्य परिणाम होते थे।

शरीर पर प्रभाव : इन औषधियों के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेवन से व्यक्ति का शरीर शुद्ध होता है। मांसपेशियां सुदृढ़ बनती हैं तथा व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। सभी इंद्रियों की शक्ति बढ़ जाती है, विशेषतः नेत्रों की शक्ति, सुनने की शक्ति, कार्य करने की शक्ति एवं पुंसवन शक्ति प्राप्त होती है। व्यक्ति को नवयौवन प्राप्त होता है, व्यक्ति तेजस्वी एवं प्रतिभावान हो जाता है। इन औषधियों के प्रभाव से व्यक्ति सदैव आनंद में रहता है। तप, जप, ध्यान, चिंतन, मनन, आराधना, अध्ययन, अध्यापन, आनंद-शक्ति प्राप्त होती है। इन दिव्यौषधि के प्रभाव से व्यक्ति अजर, अमर भी हो सकता है। ज़मीन से ऊपर अधर में चलना, आकाश में चलना एवं उड़ने की शक्ति प्राप्त हो सकती है।

सोमपान एवं रसायन प्रयोग सात्विक, सामर्थ्यशाली एवं संयमी व्यक्तियों को करना चाहिये।

आज भी पर्वतीय प्रदेशों में ऋषि, मुनि, महात्मागण इन्हीं औषधियों का पान करके कंदराओं में बिना खाये-पिये वर्षों तक ध्यान, धारणा एवं समाधि की स्थिति में रहते हैं।

निषेध : यह सोमरस एवं रसायन का सेवन दुर्बल हृदय के व्यक्तियों को, और जो अत्यन्त निर्बल तथा जो वासना में अधिक लिप्त रहते हैं एवं असंयमी राजस एवं तामस प्रकृति के व्यक्तियों को नहीं करना चाहिये।

ऊंचा स्थान

प्रसंग स्वराज्य आंदोलन के समय का है। उन दिनों काठियावाड़ राज्य परिषद का अधिवेशन राजकोट में चल रहा था।

एक विशाल मंच पर देश के प्रसिद्ध नेताओं के साथ बापू उपस्थित थे। सहसा सामने देखते हुए उनकी नज़र, एक वृद्ध पर जाकर टिक गयी। बापू को वे परिचित तो लग रहे थे, ध्यान नहीं आ रहा था कि वे कौन हैं?

अचानक ही बापू को ध्यान आ गया कि वे उनके बाल्यकाल के गुरुजी हैं। मंच से उतरकर तुरंत बापू गुरुजी के चरणों के पास जाकर बैठ गये। जब उन वृद्ध सज्जन को बापू से वास्तविकता ज्ञात हुई तो वे हर्षातिरेक से मगन हो उठे।

फिर उन्होंने बापू से कहा– 'अब तुम मंच पर जाओ। तुम्हारे वहां न होने से नेताओं को परेशानी होगी।'

'नहीं-नहीं, मैं यहीं ठीक हूं।' बापू बोल उठे, 'मैं यहीं से सारी व्यवस्था करता रहूंगा।' गुरुजी के ज़ोर डालने पर भी बापू मंच पर नहीं गये क्योंकि उनका मन बार-बार कह रहा था कि—'गुरुजी के उपस्थित रहते, मैं उनसे ऊंचे स्थान पर बैठने का साहस कैसे कर सकता हूं?'

– शिशिर विक्रांत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्व विख्यात अंग्रेजी कथाकार
सॉमरसेट मॉम की कहानी

मृगमरीचिका

कई महीनों तक पूर्वीय देशों के भ्रमण करने के पश्चात मैं अंत में हाइफांग पहुंचा था। वैसे यह एक मामूली व्यापारिक और नीरस नगर था फिर भी मन में संतोष था कि हांगकांग के लिए यहां से एक जहाज़ जाता है। खाड़ी वाले इस प्रदेश में नहरों का जाल बिछा हुआ था और इनमें से एक नहर तो काफी लंबी थी जिसके दोनों तट पर चीनी-स्थापत्य कला के नमूने पर अनेक घर बने हुए थे जिनका प्रतिबिंब नहर के पानी पर बड़ा भला प्रतीत होता था।

मैं कभी खाड़ी के किनारे खड़े होकर सुदूर तक फैले समुद्र को निहारता तो कभी चांदनी में नहर के किनारे झूमते वृक्षों के साये में घूमते हुए अनेक दृश्यों के अवलोकन का सुख लेता। यह मेरे लिए पूर्णतया अपरिचित स्थान था इसलिये मेरा अधिकांश समय यों ही घूमने में या फिर किसी कैफे या कैंटीन में काफी या काली चाय पीने में गुज़रता।

हां, इस उजाड़ खाड़ी प्रदेश में एक अजीबोगरीब दैनिक पत्र का प्रकाशन होता था जिसके पृष्ठों को हाथ में लेते ही प्रायः हाथ में स्याही लग जाने का डर रहता था। सामग्री के नाम पर इसमें कुछ मामूली राजनीतिक लेख, विज्ञापन और आकाशवाणी से प्रसारित हुए समाचार रहते थे। कभी-कभी संपादक महोदय प्रकाशन योग्य सामग्री के अभाव में हाइफांग आने वाले देशी-विदेशी सभी आगंतुकों का नाम ही छाप देते थे। मेरे पहुंचने के दूसरे ही दिन मुझे उस पत्र में अपना नाम दिखाई पड़ा।

कैंटीन में बैठा मैं चाय पी रहा था कि एक लड़का सामने हाज़िर हो गया—'आपसे एक सज्जन मिलना चाहते हैं।' आश्चर्य से मैंने उसे देखा। मुझे भला यहां कौन जानता होगा? मैंने लड़के से उन सज्जन का नाम पूछा तो वह थोड़ा सकपका गया—'नाम! . . . जी नाम तो नहीं बता सकता, हां इतना ज़रूर पता है कि वे एक अंग्रेज हैं और अब यहीं के नागरिक हो गये हैं।' मेरे संकेत पर लड़का उन्हें सादर मेरे सामने लाया। छह फुट से भी अधिक ऊंचाई, मोटी थुलथुल देह, सुर्ख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

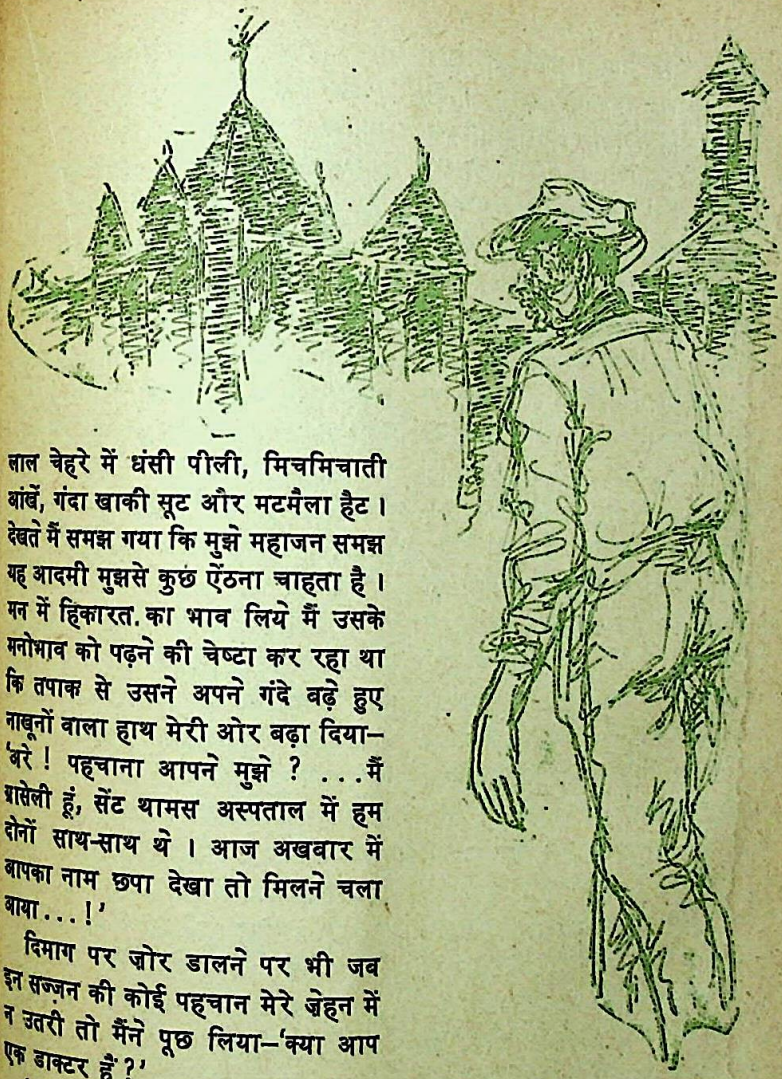

लाल चेहरे में धंसी पीली, मिचमिचाती आंखें, गंदा खाकी सूट और मटमैला हैट। देखते मैं समझ गया कि मुझे महाजन समझ यह आदमी मुझसे कुछ ऐंठना चाहता है। मन में हिकारत का भाव लिये मैं उसके मनोभाव को पढ़ने की चेष्टा कर रहा था कि तपाक से उसने अपने गंदे बढ़े हुए नाखूनों वाला हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया—'अरे! पहचाना आपने मुझे? ...मैं ग्रासेली हूं, सेंट थामस अस्पताल में हम दोनों साथ-साथ थे। आज अखबार में आपका नाम छपा देखा तो मिलने चला आया...!'

दिमाग पर जोर डालने पर भी जब इन सज्जन की कोई पहचान मेरे ज़ेहन में न उतरी तो मैंने पूछ लिया—'क्या आप एक डाक्टर हैं?'

'नहीं भाई, मैं तो उस खूसट जगह में महज़ एक साल रहा...।' बैरे को ब्रांडी लाने का आदेश दे वह फिर चालू हो गया—'मुझे अब तक याद है, आप उन जुड़वों के साथ अक्सर घूमते रहते थे। पिछले पांच साल से मैं यहीं हूं, लेकिन मेरी आधी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज़िंदगी तो चीन में ही खत्म हुई है। दरअसल इस बीच आपसे कहीं ज्यादा मेरा चेहरा बदल गया है, वजह यह कि जवानी का अधिकांश भाग चीन में ही बीता, जहां की आबोहवा, मत पूछिये, आदमी की तंदुरुस्ती को बिलकुल चौपट कर देती है।' अब भी उसकी ठीक-ठीक पहचान मेरे कुंद ज़ेहन में नहीं बन पा रही थी। अपनी इस कमज़ोरी पर पर्दा डालने की कोशिश में मैंने पूछा था—'जिस साल मैं वहां था उसी समय आप भी थे न वहीं ?'

'हां, हां, मुझे तो सन भी याद है, १८९२ में ही हम दोनों वहां साथ थे।'

सहसा सेंट थामस के भव्य प्रांगण का चित्र आंखों में घूम गया। उस समय केवल साठ लड़कों की कक्षा चलती थी। होस्टल में एक साथ पढ़ना-लिखना, खेलना-कूदना, खाना-पीना और सोना। फिर भी अपने इस सहपाठी को न पहचान पाने की वजह से मैं अंदर ही अंदर बहुत शर्मिंदगी महसूस कर रहा था। अब वह दो गिलास में पेग बना रहा था। अपना गलास एक ही घूंट में खालीकर वह सहसा कुछ गंभीर हो गया, गहरे अवसाद में डूबा स्वर उभरा—'मैं डाक्टरी नहीं पढ़ पाया क्योंकि मुझसे ऊब कर लोग पिंड छुड़ाना चाहते थे और एक दिन उन्हें इस काम में सफलता मिल गयी। मुझे सौ पौंड टिकाकर उन्होंने मुझसे मेरा वतन छीन लिया और मैं खानाबदोश की तरह भटकते हुए चीन पहुंच गया। तब से आज तक मैंने उन्हें कभी परेशान नहीं किया।'

तभी मेरे मस्तिष्क में गहन अतीत की एक क्षीण स्मृति उभरी। उन दिनों समाचार-पत्रों में एक सनसनीखेज समाचार पढ़ने को मिला था अपने ही साथ के एक लड़के के संबंध में। अतीत के वातायन का एक कपाट सहसा खुलता-सा लगा। हां, याद आया वह लड़का भी ऐसे ही लंबे डील-डौल वाला था। चेहरा भी खूब भरा-भरा-सा था। घुंघराले बाल और चेहरे का रंग लड़कियों जैसा बिलकुल गुलाबी। आह! कितना अंतर आ गया है अब और तब के ग्रासेली में। अब उसकी देह में पहले जैसा कोई आकर्षण नहीं।

पढ़ाई-लिखाई में तो ग्रासेली माशा-अल्ला था। न उसे कभी क्लास में बैठ लेक्चर सुनने की फुरसत होती और न तो किसी ने कभी उसे चीर-फाड़ घर में काम करते ही देखा था। अनुशासनप्रिय छात्र तो उसके उठने-बैठने, घूमने-फिरने के ढंग की आलोचना करते और उसके परीक्षा में पास होने में भी संदेह करते। किंतु ग्रासेली अपने बेहद खर्चीले स्वभाव एवं आकर्षक परिधान से लड़कों के बीच हीरो बना यहां-वहां घूमता रहता था। शराब और लड़कियों के पीछे वह दीवाना बना घूमता रहता था। पड़ोस की आवारा और बदचलन लड़कियों में शायद ही ऐसी कोई हो जो उसकी परिचित न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रही हो।

कभी-कभी हमें बड़ी हैरत होती थी कि आखिर इतना पैसा शराब और लड़कियों पर ग्रासेली कहां से फूंक रहा है। क्या कोई सामान्य संरक्षक इतना पैसा अपने अध्ययनरत बेटे को दे सकता है? उसका बाप भी कोई ऐसा मालदार नहीं, फिर इतना पैसा वह कहां से पाता है? यही हम सबको आश्चर्य में डाले हुए था कि एक दिन उसके बहुत करीब के साथी ने भेद खोला था—आजकल ग्रासेली स्ट्रैंड और आक्सफोर्ड में होने वाली नीलामियों में सस्ते दामों में चीजें खरीद लेता है और फिर किसी दुकानदार के यहां ऊंचे दामों में गिरवी रखकर अच्छा पैसा बना लेता है।

उस कमाऊ लड़के के व्यक्तित्व से हम सब बहुत प्रभावित थे क्योंकि हममें से किसी को उस वक्त तक दमड़ी भी कमाने की तमीज़ नहीं थी। फिर एक दिन उसकी स्वेच्छाचारिता की रिपोर्ट से बौखला करके कालेज के डीन ने उसे डांटा था, तो वह बिगड़ खड़ा हुआ था—'भाड़ में जाये पढ़ाई ... मुझे किसी घोड़-मुंहे प्रोफेसर से नहीं पढ़ना, समझे?' इसके बाद वह कई हफ्ते तक कालेज से गायब रहा। हमने सोचा था कि शराब या लड़कियों के अड्डे से वह अपने-आप दो-एक दिन में लौट आयेगा। तभी उस दिन का अखबार हाथ में लिये एक लड़का क्लास में आया था और फिर शुरू हो गयी थी आपस में ज़ोरों की कानाफूसी। दुकानदारों से उधार सामान खरीदकर फिर वही सामान दूसरे के यहां गिरवी रखने के जुर्म में गिरफ्तार हो ग्रासेली जेल चला गया था और एक हफ्ते तक उसकी जमानत भी न हो पायी थी। इसके बाद जो कुछ हुआ उससे मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूं।

भूरे बालों और गुलाबी चेहरे वाला वही आकर्षक युवक, जो सहज ही राह चलते युवतियों पर डोरे डालता फिरता था, आज अपनी उम्र से कहीं अधिक का बूढ़ा लग रहा है। चेहरा श्रीहीन, यह भी नहीं लगता कि बीते समय में अच्छा खाकर खूब कमाया होगा। कौतूहलवश मैंने पूछा—'चीन में आप क्या करते थे?'

'चुंगी अधिकारी था।'

'अच्छा तो आप चुंगी विभाग में थे'—कहकर मैं चुप लगा गया क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता था कि चीन में यह पद कोई खास अहमियत नहीं रखता। नेवी से अवकाशप्राप्त कर्मचारी ही इस पद पर अक्सर नियुक्त होते हैं और अफीम की तस्करी को रोकना ही इनका मुख्य काम होता है। जब कोई जहाज़ बंदरगाह से लगता है तो ये जहाज़ पर चढ़ जाते हैं तस्करों के चक्कर में। कप्तान तो इन्हें कुछ समझता ही नहीं। मुझे चुप देखकर बात उसी ने आगे बढ़ायी।

'इंग्लैंड छोड़ते समय मैंने संकल्प कर लिया था कि खूब धन कमाकर मैं स्वदेश लौट जाऊंगा लेकिन वह सपना अधूरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही रह गया। चीन में मुझे चुंगी का यह काम बड़ी सरलता से मिल गया। किसी ने मुझसे नहीं पूछा कि मैं कौन हूं और कहां से आ रहा हूं। सोचा था कि कोई अच्छी-सी नौकरी मिलते ही इसे छोड़ दूंगा। लेकिन आदमी के सोचने से क्या होता है, सो इसी नौकरी में पूरे पचीस साल निकल गये। धन कमाना ही मेरे जीवन का चरम लक्ष्य था इसलिये मैंने अपने पेशे में निहित आय के स्रोतों पर खूब ग़ौर किया। मुझे अंत में नाजायज़ आदमी का ज़रिया मिल ही गया और पचीस साल की नौकरी में मैंने उतना धन बटोर लिया जितना धन जमा देखकर एक बार चुंगी-कमिश्नर भी खुशी से पागल हो जाता।'

सहसा चुप होकर वह मुझे घूरने लगा था। शायद मेरी आंखों में झांककर यह पता लगाना चाह रहा था कि मैं उसके कथन से आश्वस्त हूं कि नहीं अथवा शायद मेरे मनोभावों को पढ़कर यह निश्चित करने में लगा था कि अभी कुछ मांगने पर मैं उसे कुछ दे सकता हूं या नहीं। मैं तुरंत सतर्क हो गया, उसे मांगने का अवसर दिये बिना, मैंने पूछ लिया—'तब भला आपके पास पैसों की क्या कमी होगी?'

'शायद आप समझते हैं कि वह पैसा मेरे पास अब तक जमा है, ... नहीं, मैंने अपना कुछ पैसा शंघाई में लगा दिया और चीन छोड़ते समय चोर-उचक्कों के डर से मैंने बांड खरीद लिया था।'

उसके आखिरी वाक्य पर मुझे हंसी आ गयी। मैंने उसे खाने के लिए पूछा तो उसने सिर हिलाया—'नहीं, मेरी बीवी मेरी राह देखती होगी, एक हाइफांग लड़की से मैंने शादी कर ली है और अब उसकी गोद में एक बच्चा भी है। आज शाम मेरे यहां आइये न, लंदन के बारे में हम ढेर सारी बातें करेंगे। हां, खाने के समय मत आइयेगा क्योंकि हम लोग यहां का भोजन करते हैं जो आपको पसंद नहीं आयेगा, नौ बजे के करीब आ जाइये, ज़रूर आयेंगे न?'

चित्र : नीता वैद्य

उसी शाम भोजन के पश्चात् उसके दिये पते के सहारे मैं रिक्शे से उसके घर पहुंच गया। घंटी दिखाई न पड़ने पर मैंने दरवाजे पर दस्तक दी तो हाथ में मोमबत्ती लिये एक महिला ने दरवाजा खोला। अत्यंत साधारण वस्त्रों में दिखने वाली उस महिला के ओंठ पान से लाल थे और दांत बिलकुल काले थे। सिर पर एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

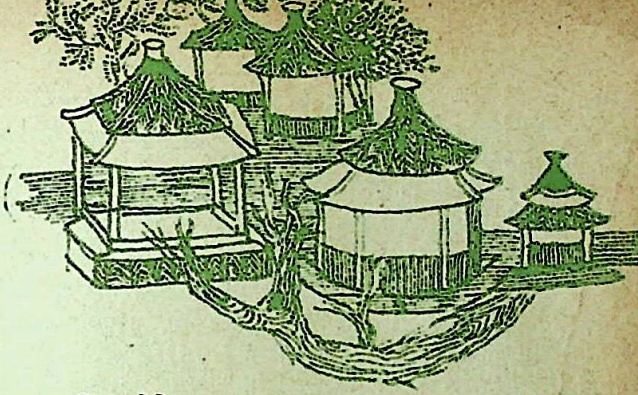

छोटी-सी पगड़ी थी। उसने अपनी भाषा में कुछ कहा जो मेरी समझ में नहीं आयी। तभी ग्रासेली की आवाज़ कानों में गूंजी थी–'अरे वाह! आप आ गये ? मैं सोच रहा था अब शायद आप नहीं आयेंगे।' फिर उसने उस औरत की ओर अंगूठे से इशारा करते हुए बताया था–'यह मेरी बीवी है–और उस कोने में ज़मीन पर जो लड़का सो रहा है, वही इसका बच्चा है–देखने पर सचमुच का भिखारी लगता है। काश ! आप उसे देख पाते। मज़ा यह कि अब इसे दूसरा बच्चा जल्दी होने ही वाला है।'

मैंने अब उसकी पत्नी की ओर देखा। नाटा कद, छोटे-छोटे हाथ-पांव, चपटा मुंह और मटमैला जिस्म। थोड़ी ही देर बाद अंदर से वह एक हाथ में ब्रांडी की बोतल और दूसरे हाथ में दो खाली गिलास ले आयी। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद चेहरे पर आश्चर्य का भाव लाकर ग्रासेली बोल पड़ा–'यह बड़ी विचित्र बात है कि मेरे बारे में अभी तक आपको कुछ याद नहीं आया। ज़रूर आपकी स्मरण शक्ति या तो बिगड़ चुकी है या फिर बहुत कमज़ोर है . . .।'

'छोड़िये भी इसे। कोई भला तीस साल पुरानी बात याद रख सकता है ? और फिर इस बीच हज़ारों लोगों से मेरी मुलाकात हुई, फिर यह भी ज़रूरी नहीं कि आप मुझे पहचानते हैं तो मैं भी आपको पहचानूं . . .।'

'ठीक कहते हैं,'–ग्रासेली शायद मेरे तर्क से संतुष्ट हो गया था क्योंकि इसके बाद वह चुप लगा गया था। कुछ देर बाद वहां एक काली-कलूटी बूढ़ी हुक्की पर अफीम चढ़ाकर लायी तो ग्रासेली मुझ आग्रहपूर्वक धूम्रपान के लिए ज़िद करने लगा, तो मैंने बताया कि एक बार पहले मैं इसे पी चुका हूं और अब इसे पीना नहीं चाहता। इसके बाद ग्रासेली हर दस मिनट के बाद हुक्की गुड़गुड़ाता और शायद उसकी मादकता में गोते लगाते हुए विगत की अपनी अनेक मधुर-तिक्त अनुभूतियों को अतीत से निकाल मेरे सामने बेतरतीब रखता गया। जो कुछ उसने मुझे बताया वह इस प्रकार था।

वैसे तो उसने मुझे कुछ नहीं बताया था क्योंकि अपनी धूर्तता की कहानी अपनी ज़बानी कहना एक हिमाकत होती। फिर भी मैंने निष्कर्ष निकाला था कि पचीस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्षों में उसने धड़ल्ले से अफीम की तस्करी कर काफी पैसा बटोर लिया था। अपने पद का दुरुपयोग कर चोरी-छिपे अफीम पेकिंग भेजता रहा। अधिकारियों की दृष्टि में उसका आचरण संदिग्ध हो गया तो वे उसे एक बंदरगाह से दूसरे बंदरगाह स्थानांतरित करते रहे। फिर भी ग्रासेली के काले-धंधे में कोई फर्क न आया। चीन में वह परले सिरे की कंजूसी से रहा—मोटा खाना और मामूली कपड़ा। वह पाई-पाई जोड़ता, वेतन का आधे से अधिक बचाता रहा और इस तरह पचीस वर्षों में उसके पास काफी मोटी रकम जमा हो गयी।

इन वर्षों में केवल एक महत्वाकांक्षा उसके हृदयाकाश में हिलोरें मारती रही—उस वस्तु को पा लेने की ललक जिससे वह किशोरावस्था में वंचित कर दिया गया था, मन को सालती रही—पर्याप्त धन कमा अपनी धरती पर लौट खूब मौज-मस्ती और स्वच्छंद जीवन-यापन। अपने प्रवास-काल में चीन की धरती पर रहते हुए भी मन इंग्लैंड में ही था—तभी तो अपने इर्द-गिर्द के जीवन की रंगीनियों से उसे कोई मतलब ही नहीं था। बिस्तर पर पड़ते ही लंदन का दृश्य मृगमरीचिका की भांति मन में उतर जाता—क्रिटेरियां में धड़ल्ले से चल रहे जाम का दौर, शाही महल के सौंदर्य और वैभव का नज़ारा, सैलानियों से भरी लंदन की लंबी-चौड़ी सड़कें और गेटी नाट्यशाला में खेले जाने वाले जीवंत नाटक, सड़कों पर घूमती सजी-संवरी वारांगनाएं—सब कुछ उसकी आंख में जीवंत हो उठता और मन आनंद से थिरकने लगता। यही तो उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था, यही उसकी आंखों का वह सपना था जिसे पाने के लिए उसने चीन-प्रवास की सारी सुख-सुविधाओं को तिलांजलि दे दी थी।

कभी-कभी काम से खाली होकर जब वह कमरे में अकेला होता, आंखों में एक दिवा-स्वप्न उतर आता। शाम के वक्त वह कोट में सफेद गुलाब लगा, सिर पर फेल्ट कैप लगाये डर्बी की ओर निकल पड़ा है। पास से गुज़रती, चुहल करती लड़कियों पर एक नजर डाल वह अपने लिए लड़की चुन लेता है। लड़की के कंधे पर हाथ रखे वह एक बार में घुस गया है। कई घंटे यूं ही उस नीली आंखों वाली लड़की के साथ गुफ्तगू में निकल गये हैं। उसकी आंखों में शराब की लाली उतर आयी है और वह उससे और सटकर बैठ गया है। लड़की के बदन की गर्मी उसे एक अजीब तंद्रा और मादकता में डुबोती जा रही है।

तभी बगल के कमरे के खुलने की आहट से उसकी तंद्रा भंग होती है। यथार्थ में लौटते ही प्रवासी-जीवन के एकाकी क्षण उसके मन को बुरी तरह कचोटने लगते हैं। इस मनहूस जगह में उसे याद नहीं आता कि उसने कभी शराब भी पी हो। मन ही मन निश्चय करता है कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस दिन वह स्वदेश के लिए रवाना होगा, अब उसी शुभ दिन वह जाम ओंठों से लगायेगा, खूब छककर पियेगा। उस दिन रास्ते भर पीता जायेगा, पीते हुए ही वह अपने मुल्क की ज़मीन पर पांव रखेगा—जहां पहुंचते ही वह ज़िंदगी की तमाम खुशियों से सराबोर हो जायेगा।

और ऐसे ही सोचते-सोचते एक दिन वह सचमुच इंग्लैंड पहुंच गया। उसने जहाज़ का दूसरे दर्जे का ही टिकट लिया था क्योंकि वह अपने देश पहुंचने के पहले मुद्दत से पाई-पाई जोड़ इकट्ठा कि गयी मोटी रकम में छदाम भी खोट नहीं करना चाहता था। जर्मन-स्ट्रीट, जहां बसने की ख्वाहिश मुद्दत से मन में थी, वहीं उसने रहने के लिए दूसरी मंज़िल का एक कमरा बुक कराया। पास के दर्ज़ी के यहां जाकर उसने अपने लिए एक जोड़ा नया सूट सिलवा लिया।

दूसरे दिन नये सूट में सज-धजकर वह एक सैलानी की तरह लंदन की रौनक से अभिभूत होने चल पड़ा। अब वह क्राईटेरियां की ओर बढ़ रहा था—आंखों में उस चिर परिचित क्लब का नक्शा घूम गया और नथुनों में सोडा-व्हिस्की, तेज़ शैंपेन की काल्पनिक सुगंध से मन फड़कने लगा। लेकिन यह क्या? क्लब की जगह एक पचमंजिली इमारत खड़ी थी। उसने बगल-बगल के भवनों को देखा तो लगा कि पास-पड़ोस की सारी इमारतें उसे अजनबी की तरह घूर रही हैं। ऐसा तो नहीं कि वह गलत जगह पहुंच गया है? नहीं, उस जगह को भला कैसे वह भूल सकता है जहां उसने हज़ारों बार जाम टकराया है, जहां के बैरे से लेकर मालिक तक विशिष्ट मुस्कान के साथ उसका स्वागत करते रहे हैं और जहां की इंच-इंच ज़मीन से वह एक अनाम रिश्ते से जुड़ा था। ग्रासेली कुछ क्षण वैसे ही हक्का-बक्का सड़क पर खड़ा रहा, फिर उदास और भारी मन से लिसेस्टर स्क्वायर के उस नामी होटल के लिए चल पड़ा जहां पहले भी जब जेब विशेष गर्म रहती तो वह एकाध बार जा चुका था।

ठीक जगह पहुंचकर उसके कदम एकाएक रुक गये। उसने सामने दूसरी पटरी पर नज़र दौड़ायी। दूरदराज़ तक किसी होटल का कोई निशान न था। छिटपुट जनरल स्टोर्स, रेडीमेड कपड़ों की दुकानें और दो-एक बार के अलावा जब कुछ न दिखाई पड़ा तो उसे बड़ी कोफ़्त हुई। जेब में पड़ी करेंसी की गड्डी को टटोल उस जगह को हिकारत की नज़र से देखते हुए पैवेलियन की ओर बढ़ गया। औरतों की भीड़ वहां थी लेकिन उसकी कल्पना की एक भी औरत न दिखी। वैसे ही बेमन से औरतों के इर्द-गिर्द घंटों बिताता, हंसता-बोलता रहा लेकिन ग्रासेली का अंतर्मन निराशा और कुंठा से घिरता गया, अतीव श्रम से बनायी गयी कल्पना-सृष्टि बालू के भवन की तरह ढह जायेगी, ऐसा उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देर रात वह भारी मन से लौटकर कमरे में सो गया। इस कदर उसका अपना शहर बदल जायेगा उसने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा। वह प्रतिदिन ऐसे ही घूमने निकल जाता लेकिन निराशा ही हाथ लगती। स्थान, लोग, उनका स्वभाव, तौर-तरीका सब कुछ बदल गया था। पहले से शहर काफी बड़ा हो गया है लेकिन आदमी का दिल बहुत छोटा हो गया है। न किसी लड़के में दोस्त बनने-बनाने की ललक है और न लड़कियों में वह अदा है जिस पर दिलदार लड़का मर-मिटता है।

उसे अक्सर लगता कि इतने बड़े शहर में वह बिलकुल अकेला है—उसका अपना कोई दोस्त नहीं, कोई हमदम नहीं जिसके साथ बैठकर गम गलत कर सके। और तो और अब वैसी व्हिस्की भी नहीं थोड़ी-सी ज्यादा हुई तो तबियत ही बिगड़ गयी। उसे अब भी खयाल है कि पहले रात में पूरी बोतल खाली करके सुबह उठता तो बदन में पूरी ताजगी रहती। अब तो बोतल पचाने का माद्दा ही कितने लोगों में है।

अब उसे लंदन की जलवायु भी चीन की तरह मनहूस लगती और हर तरफ एक वीरानगी। जो लंदन खून बन कभी उसकी रगों में दौड़ता था वही खुद निष्प्राण हो उसे भी निष्पंद बनाये जा रहा था। यहां आकर चिरकाल से संजोया सपना टूटकर बिखर गया था। होटल, बार, औरत कुछ भी तो उसके मन को नहीं बांध पाया था। कभी-कभार तो यहां की मनहूसी उसे इस तरह सालने लगती कि महसूस होता कि स्वदेश लौटकर उसने बहुत बड़ी गलती की है।

ऐसे क्षणों में लगता कि लंदन से बेहतर तो चीन ही है क्योंकि थोड़ी कोशिश से वहां अब भी ग्रासेली की तरफ दोस्ती का हाथ कोई भी बढ़ा सकता है। दरअसल गलती उसकी है, चीन में इतने लंबे समय तक रहकर पता नहीं क्यों वहां के लोगों से कटकर उसने मूर्खतावश स्वयं के जीवन को नीरस बना लिया था। चीनी लड़कियां क्या किसी से कम सुंदर हैं? फिर उनमें से किसी एक को जीवन-संगिनी बनाकर आदमी मजे से क्लबों में जाकर खा-पी सकता है, ब्रिज खेलने के लिए आसानी से दोस्त बना सकता है।

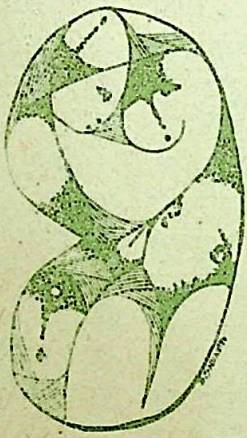

चित्र : भंगू समर्थ

एकाएक चीन की गलियों और दुकानों का चित्र उसके मानस-पटल पर अंकित होने लगा! उसे हंसी आयी कि इतने दिन चीन-प्रवास के दौरान वहां के इन आकर्षणों का ध्यान क्यों नहीं आया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केवल डेढ़ साल इंग्लैंड रहकर वह इतना ऊब गया कि एक दिन सचमुच ग्रासेली स्वदेश छोड़ चीन के लिए रवाना हो गया। उसी के बाद आकर वह हाइफांग बस गया था। यह जरूर है कि जब भी कोई जहाज किसी अंग्रेज को इस बंदरगाह पर लाता है तो ग्रासेली वहां जाकर उससे लंदन के बारे में खूब बातें करता है और इससे उसे अपूर्व तुष्टि मिलती है।

(अनु० बालचन्द्र लाल)

यदि १० दिन का सुरक्षा व्यय ही बचाया जा सके.....

दुनिया भर में सुरक्षा पर होने वाले केवल १० दिन के व्यय की राशि अगर अन्नोत्पादन में लगा दी जाय तो अन्न की कमी का समूचे विश्व का ही संकट मिटाया जा सकता है।

यह राय कृषि विकास अन्तर्राष्ट्रीय कोष की है, जिसके अनुसार दुनिया का वर्ष भर में सुरक्षा व्यय करीब ४०० अरब डालर है। श्री मार्विन रियां ने अपने एक लेख में बताया है कि कृषि में यदि प्रतिवर्ष १२ अरब डालर राशि लगायी जाय तो अभी तक की २.७ प्रतिशत उत्पादन वृद्धि की बजाय अन्न-उत्पादन में ४ प्रतिशत वृद्धि प्रति वर्ष हो सकेगी।

केवल एक प्रक्षेपास्त्र

एक नवीनतम अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र पर जितना व्यय आता है, उससे—

२० करोड़ हेक्टेयर में पौधे लगाये जा सकते हैं।

१० लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई व्यवस्था की जा सकती है।

५ करोड़ बच्चों को उचित आहार दिया जा सकता है।

१० लाख टन उर्वरकों को खरीदा जा सकता है।

१५००० स्वास्थ्य चिकित्सा केन्द्र स्थापित किये जा सकते हैं।

३४०००० प्राथमिक विद्यालय खोले जा सकते हैं।

धनकुबेर फोर्ड संन्यासी बनेंगे

अमेरिका के धनकुबेर फोर्ड परिवार के श्री अलफ्रेड फोर्ड ने यहां घोषित किया है कि वे सांसारिक जीवन का परित्याग कर संन्यासी होकर भारत में रहेंगे और 'हरे कृष्ण आंदोलन' में स्वयं को समर्पित करेंगे।

गेरुआ वस्त्र वाले श्री फोर्ड ने अपना नया नाम अम्बरीषदास ग्रहण कर लिया है—उनकी विराग प्रक्रिया जारी है। उन्होंने भगवान गौरांग चैतन्य महाप्रभु के जन्मस्थल श्रीमायापुर की भी यात्रा की।

['जनधर्म' से साभार]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ७१ का शेषांश)

रोकने पर वह अमूल्य बाबू से मिले बिना नहीं रह सकी थी, अतः आखिर में वह नदी की बाढ़ की तरह मन से विवश हो उनसे मिलने यहां चली ही आयी। किन्तु . . . ! अब पियु को, तीन साल पूर्व की अमूल्य बाबू को बचाने की घटना पर पछतावा हो रहा था। उस समय, उनके दिल को कितना आघात पहुंचा होगा, इसका अनुभव उसको अब हो रहा था। अब तो शरद और पियु दोनों ही अमूल्य बाबू से मिलना चाहते थे अतः वे दोनों अक्सर मिलते रहते। धीरे-धीरे पियु ने अनजाने में ही उसको 'शरद दा' कहकर उसके ऊपर अपना हक़ स्थापित कर लिया था, जो शरद को अच्छा लग रहा था, और उसे मंजूर भी था। पियु शरद को, उसके तथा अमूल्य बाबू के अनुराग-सम्बन्ध की कई घटनाएं तथा कुछ कल्पना रंजित बातें भी सुनाती। सुनते-सुनते शरद भी उसके प्रति खिंचा जा रहा था।

कुछ दिनों बाद शरद को, साधुवेश में अमूल्य बाबू के हरद्वार में होने की जानकारी मिली। हालांकि वह हकीकत से अधिक सम्भावना ही थी, लेकिन फिर भी उसने यह बात पियु को बतायी। उसको आफिस के काम से लखनऊ भी जाना था। अतः उसने सोचा कि इसके साथ ही साथ वह हरद्वार भी हो आयेगा। शरद जिस दिन लखनऊ और हरद्वार के लिए गाड़ी से रवाना हुआ, तब पियु ने बड़े भावावेश में आकर कहा था—'कहीं भी किसी रूप में अमूल्य बाबू से आपकी भेंट हो, तो तुरंत ही मुझे तार दीजिएगा। मैं फ़ौरन वहां चली आऊंगी। शरद दा, मैं आपको किस प्रकार समझाऊं कि अब मिलन मुझे नज़दीक दिखाई पड़ रहा है और हम दोनों को मिलाने के यश और पुण्य के भागी आप ही होंगे।'

शरद लखनऊ पहुंचा। वहां स्वामी निर्मल प्रतिभानंदजी तथा चम्पा बेगम सुलतानपुरी आदि से मिला। उन लोगों ने बताया कि अमूल्य बाबू उनके पास आये थे। चम्पा बेगम सुलतानपुरी ने शरद को बताया कि अमूल्य बाबू उसके पास कुछ दिनों तक रुके भी थे। उसने यह भी बताया कि वे हमेशा खोये-खोये से रहते तथा कबीर के एक भजन को सुनाने की फ़रमाइश करते रहते थे जिसके बोल हैं—'मलि-मलि धोई दाग़ न छूटे, जाने को साबुन लाये पिया . . .' दूसरे दिन शरद हरद्वार पहुंचा, और हर की पेड़ी के पास गीता-मंदिर की धर्मशाला में रुका। वहां हज़ारों के मानव-समुद्र में वह अमूल्य बाबू को ढूंढ़ रहा था। लेकिन पहचान पाना मुश्किल काम था। क्योंकि पहले कभी उसने उन्हें देखा नहीं था। दो-तीन दिन ऐसे व्यर्थ प्रयत्न में ही बीत गये। एक दिन वह थककर धर्मशाला में लौट रहा था, तभी उसके कानों में कबीर के उसी भजन के बोल सुनाई पड़े। तुरंत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही वह उस आवाज़ की ओर बढ़ा, उसने देखा किनारे पर दूर गेरुआ वस्त्रधारी एक प्रौढ़ आदमी भजन गा रहा था। लोग उसके चरणस्पर्श करके धन्यता अनुभव कर रहे थे। शरद ने देखा कि चम्पा के द्वारा बतायी गयी शारीरिक पहचान के अनुरूप ही वह पुरुष था। सब लोगों के चले जाने के बाद शरद उनके पास गया और प्रणाम करके खड़ा हो गया। बाद में उनके अनुरोध से बैठा। शरद की आंखों में देखते ही वे समझ गये कि शरद कुछ और मतलब के लिए उनके पास पहुंचा था। शरद ने उसके, पियु के तथा नंदबाबू आदि के बारे में सारी बातें बतायीं और कहा कि वह किसी (पियु) के कहने पर उन्हें लेने आया है और वह खुद भी उनसे मिलना चाहता था।

उसी दिन शरद ने पियु को इस बारे में तार दिया। पियु के आने तक दोनों साथ ही रहे और दोनों के बीच मोह, जीवन आदि के बारे में कितनी सारी बातें हुईं। शरद ने पाया कि अमूल्य बाबू अब निर्मोही हो चुके थे। इन सारे मानवीय भावों से वे अलिप्त थे। इतने में पियु भी आ गयी। पियु तो उन्हें काफ़ी अरसे के बाद इस स्थिति में देखकर दूर से ही मिलने को विह्वल हो उठी थी किन्तु अमूल्य बाबू ने अति ही सहज एवं निर्मल भाव से पूछा था—'कैसी हो, रेवा?' और रेवा के मन का ज्वार शांत हो गया था। अमूल्य बाबू चाहते थे कि पियु और शरद का परिणय हो। और उन्होंने पियु और शरद दोनों को इस बारे में न केवल अपना परामर्श, किन्तु आशीर्वाद भी दिया।

उसके तुरंत बाद, शरद और पियु, दोनों कलकत्ता के लिए रवाना हो गये। गाड़ी में काफ़ी भीड़ थी। दोनों के बीच उठने-बैठने और सोने के लिए एक ही बर्थ थी। बीच-बीच में बातें करते तथा सोने-बैठने के दरम्यान, उन दोनों का परस्पर स्पर्श भी हो जाता था। किन्तु इसमें दोनों में से किसी को भी कुछ आपत्ति नहीं थी। शरद ने उससे पूछा कि 'पियु, अमूल्य दा ने तुमसे क्या कहा?' उसने उत्तर दिया—'कहा कि सुखी रहो, पियु! तुम्हारे लिए अमूल्य दा के आशीर्वाद!' बाद में शरद ने पियु के सामने, उसके प्रति, अपने आकर्षण तथा प्यार का इकरार किया। उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा। किन्तु पता नहीं क्यों, पियु ने इस संबंध में कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। कलकत्ता पहुंचने पर अलग होते समय पियु ने कहा—'अवश्य आऊंगी, दौड़ती हुई आऊंगी, शरद दा। वह तूफान जब फिर उठेगा तब दौड़कर तुम्हारे पास आ जाऊंगी। पर आज तो . . .'

ooo

दिन बीते जा रहे थे, और रोज़ बची हुई आशा लेकर, पियु की उसी दस्तक की प्रतीक्षा में शरद बैठा रहता था।

(भारतीय भाषा परिषद्,
कलकत्ता के सौजन्य से)

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गीतेश शर्मा का यह प्रामाणिक लेख अमरीकी भौतिकवाद के इंद्रजाल में फंसी भारतीय युवा पीढ़ी की आंखें खोल देने के लिए पर्याप्त होना चाहिये

पाश्चात्य सभ्यता की अवसान सन्ध्या : अमेरिका में टूटते परिवार

मानव जाति की सबसे बड़ी उपलब्धि परिवार मानी जा सकती है। सभ्यता के प्रवेश के साथ-साथ परिवार का उदय माना जाता है। सभ्यता का इतिहास हज़ारों साल पुराना है। इस अवधि में न जाने कितने परिवर्तन हुए। पर परिवार का महत्व, आज भी हज़ारों साल पहले की तरह विद्यमान है।

भारत में परिवार की जड़ें बहुत गहरी हैं। पारिवारिक बन्धन हमारे देश में एक पवित्र बन्धन माना जाता है। यहां आम तौर पर, विशेष रूप से तीन पीढ़ियां तक एक साथ रहती हैं और उनमें आपस में प्रेम व आदर की भावना की कमी नहीं होती। ऐसे परिवार भी मिलेंगे जहां चार-पांच पीढ़ियां एक साथ रहती हैं। संयुक्त परिवार हमारे देश की प्राचीन संस्कृति रही है।

परिवार के सदस्य एक-दूसरे के सुख-दुःख में भागीदार होते हैं। समय-असमय एक दूसरे के काम आते हैं। एक सदस्य दूसरे सदस्य पर अपना अधिकार समझता है। ये आपस में भावनात्मक रूप से ही नहीं जुड़े होते, बल्कि उनमें कर्तव्य-बोध भी होता है।

लेकिन जहां तक अमरीका का प्रश्न है, वहां यह सब सोचा भी नहीं जा सकता। वहां न तो परिवार है, न पारिवारिक भावना। सन्तान १२-१३ वर्ष की उम्र से अपने आप को स्वतन्त्र अनुभव करने लगती है। माता-पिता के प्रति आदर भाव नहीं होता।

पति-पत्नी के संबंध भी विशुद्ध व्यापारिक आधार पर होते हैं। परस्पर प्रेम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्वास की कमी होती है। वहां विवाह हमारे देश की तरह पवित्र बंधन नहीं माना जाता। जन्म-जन्मान्तर की बात तो सोची भी नहीं जा सकती।

विवाह होता है, टूटता है, फिर होता है। अब तो बिना विवाह किये पति-पत्नी की तरह रहने का फैशन-सा चल पड़ा है। जब तक मन मिला या यूं कहें तो ज़्यादा सही होगा कि जब तक एक दूसरे की आवश्यकता अनुभव होती है, सम्बन्ध रहता है। वरना तू अपने रास्ते, मैं अपने रास्ते। तलाक़ की दर इतनी ज़्यादा है कि पांच में चार व्यक्ति आपको तलाकशुदा मिलेंगे। इसका सीधा असर सन्तान पर पड़ना स्वाभाविक है। खास तौर से यह चीज़ गोरों में ज़्यादा पायी जाती है। संयुक्त परिवार नाम की तो कोई चीज़ ही वहां नहीं। जब पति-पत्नी ही एक साथ नहीं रह पाते तो संयुक्त परिवार की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती है। यूं भी परिवार में एक दूसरे के प्रति जो स्वाभाविक और प्राकृतिक लगाव होना चाहिये, वह नहीं होता। दिन पर दिन स्थिति और खराब ही होती जा रही है।

परिवार-सुख से वंचित अमरीकी समाज एक ऐसी खीझ और कुंठा से ग्रस्त है, जिसे वह नशीले पदार्थ के सेवन से दूर करने का असफल प्रयास करता रहता है। कहीं-कहीं यह खीझ और कुंठा क्रूरता की सीमा तक पहुंच जाती है।

वहां अक्सर यह कहा जाता है कि ज़िन्दगी की रफ्तार इतनी तेज़ है कि लोगों को फुर्सत ही कहां है कि वे परिवार पर ध्यान दें। यह बताने की ज़रूरत नहीं कि यह तेज़ रफ्तार केवल अर्थोपार्जन के लिए है, जहां मानवीय मूल्यों का कोई स्थान नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेज़ रफ्तार ज़िन्दगी पर 'स्पान' पत्रिका में प्रकाशित एक घटना याद आती है, जो अपने आप में भयानक और रोंगटे खड़ी कर देने वाली है। आदमी इस तेज़ रफ्तार के चक्कर में क्रूरता की हर सीमा लांघ गया है, यह इस घटना से प्रमाणित होता है।

'स्पान' के अप्रैल १९८१ के अंक में लेखक श्री मनीष नन्दी लिखते हैं कि उन्होंने देखा एक तेज़ चलती गाड़ी से एक बच्चा कुचला गया। पर उससे सड़क से गुज़र रही गाड़ियों की रफ्तार में कोई कमी नहीं आयी। गाड़ियां कुचले हुए बच्चे के शरीर पर से गुज़रती गयीं और इस प्रक्रिया में बच्चे का शरीर कुचल कर सड़क पर कोलतार की तरह बिछ गया।

इस तरह की घटना यह प्रमाणित करती है कि अमरीकी समाज कितना संवेदनहीन हो गया है। यह भी कहें तो अनुचित नहीं होगा कि वह राक्षसी समाज में परिवर्तित हो गया है। भारत में तो जानवर के प्रति भी ऐसे व्यवहार की कल्पना नहीं की जा सकती।

यह तेज़ रफ्तार ज़िंदगी नहीं है। यह तो भावनाहीन, दयाहीन, मूल्यहीन ज़िंदगी है, जो मानव जाति के लिए एक कलंक है।

'स्पान' के उक्त अंक में मनीष नंदी लिखते हैं कि 'गाड़ियों से कुचलकर मरने की घटना यहां बहुत सामान्य है। कुछ खास त्यौहारों के मौकों पर तो इस तरह की दुर्घटनाओं से मरने वालों की संख्या वियतनाम युद्ध में मरने वाले अमरीकियों से कहीं ज़्यादा होती हैं।' इतना होने के बावजूद लोगों के चेहरों पर शिकन तक नहीं आती। यहां गाड़ियों से लोग ऐसे कुचले जाते हैं, जैसे कोई पेड़ का पत्ता कुचला गया हो।

क्या मानवीय क्रूरता का ऐसा अनुपम उदाहरण अन्यत्र कहीं भी मिलेगा? क्या ऐसे समाज में सौहार्दपूर्ण, संवेदना और भावना से युक्त पारिवारिक सम्बन्ध हो सकते हैं?

संवेदनशून्य और मूल्यहीन अमरीकी समाज को सभ्यता की किसी कोटि में नहीं रखा जा सकता। इसे तो पागलों के समाज की संज्ञा ही दी जा सकती है। यह सब मैं किसी तरह के पूर्वाग्रह से प्रभावित होकर नहीं कह रहा हूं। मेरी यह धारणा तथ्यों पर आधारित है। ये तथ्य अपने-आप में बहुत ही चौंकाने वाले एवं रोमांचक हैं। मेरे मन में अमरीकी जनमानस के प्रति रत्तीभर भी विद्वेष नहीं। मेरी दृष्टि में तो वह दया और सहानुभूति का पात्र है।

आज जिस भयावह स्थिति में अमरीकी समाज पहुंच गया है, उसमें साधारण आदमी का कहीं कोई दोष नहीं। यह अमरीकी जनमानस का दुर्भाग्य रहा है कि उसे सटीक राजनीतिक और सामाजिक नेतृत्व नहीं मिला। सम्पन्नता की चकाचौंध में अमरीकी जनमानस ठगा गया। सम्प-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्नता के चक्कर में उसे सम्पन्नता तो मिली ही नहीं, वह मानवीय मूल्यों से भी हाथ धो बैठा।

आज अमरीकी अपने आप से ही त्रस्त हैं। वे इतने स्वार्थी हो उठे हैं कि उन्हें अपने स्वार्थ से परे कुछ दिखायी ही नहीं देता। माता-पिता इसलिये बच्चे पैदा नहीं करना चाहते, क्योंकि उनके हिसाब के मुताबिक १५ से १७ प्रतिशत उनकी आय बच्चों के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा पर खर्च हो जाती है। इसमें कालेज स्तर की शिक्षा जोड़ दीजिये, तो यह खर्च और बढ़ जाता है। यह सब करने के लिए उन्हें अपने आवश्यक खर्च में कटौती करनी पड़ती है।

यह कितनी अजीब बात है कि माता-पिता का हृदय वात्सल्यहीन हो गया है। वात्सल्य मानव जाति की एक स्वाभाविक और प्राकृतिक प्रक्रिया मानी जाती है। लेकिन अमरीका में इसका भी सर्वथा अभाव है। वहां माता-पिता की मान्यता यह होती जा रही है कि उन्हें सन्तान की अपेक्षा अपनी सुख-सुविधाओं को प्राथमिकता देनी चाहिये। सन्तान के लिए माता-पिता पहले की अपेक्षा कम त्याग करने लगे हैं। फलस्वरूप वे सन्तान से भविष्य में अपेक्षा भी कम करते हैं।

एक तरफ तो स्थिति यह है। दूसरी तरफ ग्यारह लाख बच्चे यानी प्रत्येक छः में एक अठारह वर्ष से कम उम्र की सन्तान केवल मां या पिता के पास रहने को बाध्य है। इस तरह वह मां-बाप में से किसी एक के प्यार से तो पूरी तरह वंचित होती है। मां या बाप जिसके भी पास रहती है, उसका भी पूरा स्नेह उसे नहीं मिल पाता है। १९७५ में तलाक की दर ४० प्रतिशत तक पहुंच गयी थी, जो निश्चित रूप से आज कहीं ज्यादा है। १९७३ से १९७५ के बीच विवाह दर भी ७ प्रतिशत घट गयी। १९७५ में तेरह लाख लोग बिना विवाह के पति-पत्नी की तरह रह रहे थे। वर्तमान में यह शौक १९७५ की अपेक्षा बढ़ा ही है और तेजी से बढ़ा है।

शहर के लगभग एक चौथाई निग्रो के विवाह-सम्बन्ध टूट जाते हैं। आज लगभग एक चौथाई अवैध निग्रो बच्चे जन्म लेते हैं। परिणामस्वरूप एक चौथाई निग्रो परिवारों की मुखिया औरतें हैं। यही कारण है कि निग्रो परिवार बहुत कुछ कल्याण संस्थाओं पर निर्भर हैं।

अविवाहित माताओं से पैदा होने वाले बच्चों की संख्या लाखों में पहुंच गयी है। प्रतिवर्ष दस से चौदह वर्ष की किशोर वय की तीस हजार लड़कियां गर्भवती होती हैं। उस पर गरीबी की मार। १९७५ में संग्रहीत आंकड़ों के मुताबिक सौ में से सोलह बच्चे गरीबी में पल रहे थे। गोरों की अपेक्षा कालों में गरीबी में पल रहे बच्चों की संख्या चार गुना अधिक थी।

(शेषांश पृष्ठ ९४ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

□

माहेश्वर तिवारी के तीन गीत

[१]

यह शरीरों से
परे क्या है
हमें जो बांधता है।
बिन छुए रह जाय
उंगली
फूल को
क्षमा मिलती जाय
सारी -
भूल को
एक उजली-सी हंसी-सा
व्याप्त चारो ओर,
छटपटाहट, टीस, पीरों से
परे क्या है
हमें जो बांधता है !
एक सहलाहट भरा
भीतर
उजाला है
प्रार्थना की गूंज में
हर शब्द
ढाला है
थरथराहट-सा गुज़रता
हुआ नस-नस में
योगियों, अनहद, फ़क़ीरों से
परे क्या है
हमें जो बांधता है !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

[२]

अनलिखे ही
छोड़ दें मत
आज के दिन का खुला
यह पेज सादा।
धूप का रूमाल
हम बादल-घरों में
छोड़ आये
क्या हुआ पर
आस्ती में आंख से
अपनी सटाये
क्या करेगा
आंख में झरता
अंधेरे का बुरादा।
भर रहा है खुश्बुएं
जलता हुआ
मद्धिम उजाला
जुगनुओं-सी देह की
गूंथी कभी जो
एक माला
गुनगुनाहट बुन रहा है
एक रिश्ता—
एक वादा।

[३]

हम तुम्हारी बांसुरी हैं
जब हमें चाहो बजा लो।

देह पर अंकित
तुम्हारी उंगलियों के पोर
उत्सवों की गंज से
हैं भरे चारो ओर

अगरु-सी जलती हुई
यह सांस
अपने से मिला लो।

नये पल्लव सी
सहज मुस्कान हुई होंठों पर
बन गयी है
मीर का दीवान होंठों पर

हम तुम्हारे ही रचे
मधुमास
पलकों में बसा लो।

—प्रकाश भवन, गोकुलदास रोड,
मुरादाबाद (उ. प्र.)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ९१ का शेषांश)

लाड़-प्यार, स्नेह, ममता और सुख-सुविधा से वंचित बच्चे अगर अपराधी नहीं होंगे तो क्या होंगे।

१९७४ में अड़तालिस लाख में से चौवालिस लाख बच्चे केवल माताओं के पास अर्थात बिना पिता के रह रहे थे। यहां भी गोरों की अपेक्षा कालों में यह संख्या अधिक थी।

सामान्यतया एक अकेली माता की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक समस्या है। माताओं द्वारा संचालित टूटे हुए परिवार की आय पिता द्वारा संचालित परिवार की आय से बहुत कम होती है। १९७४ में माताओं द्वारा चलाये जा रहे परिवारों के आधे से अधिक बच्चे घोषित गरीबी की सीमा-रेखा से नीचे के स्तर पर रह रहे थे। ऐसे अश्वेत परिवारों के दो तिहाई बच्चे गरीबी की सीमा रेखा से नीचे के स्तर पर जी रहे थे।

युवा माताओं और उनके बच्चों के लिए वर्तमान में और भविष्य में भी गर्भ-धारण एक गम्भीर समस्या बन चुका है। १५ से १९ वर्ष की लगभग १० लाख युवतियां प्रतिवर्ष गर्भ धारण करती हैं। फलस्वरूप ५,९४,८०० या लगभग ६ लाख जीवित शिशु जन्म ग्रहण करते हैं। देश में पैदा होने वाले हर ५ में १ शिशु को अल्पवयस्का माता जन्म देती है और कालों में हर ३ में १ शिशु कम-उम्र मां का होता है।

१५ वर्ष से कम उम्र की किशोरियों में हर १० में से ७ युवतियों को प्रथम प्रसव-काल में मां-बाप की देख-भाल नहीं मिलती और एक-चौथाई को तो प्रसव होने तक मां-बाप की देख-भाल नसीब नहीं होती। डॉक्टरी अध्ययनों से पता चला है कि जिन कम-उम्र माताओं की प्रसव-काल में मां-बाप देख-भाल कम करते हैं या नहीं करते, तीन-गुनी सम्भावनाएं हैं कि उनके नवजात शिशु बहुत कम वज़न के होंगे। ५० प्रतिशत नवजात मृत्यु इस कम वज़न के कारण होती है तथा बहुत अधिक सम्भावनाएं होती हैं कि कोई-न-कोई जन्म-दोष रह जाय। प्रसव-काल में कम-उम्र माताओं की मृत्यु की सम्भावना वयस्क माताओं से ६० प्रतिशत अधिक होती है तथा १५ से कम आयु की माताओं के नवजात शिशुओं की मृत्यु भी २० वर्षीय माताओं के नवजात शिशुओं की तुलना में दुगुनी होती है। तरुण माताओं के नवजात शिशुओं की जीवन के प्रथम वर्ष में मृत्यु की सम्भावना युवा माताओं के शिशुओं की तुलना में दुगुनी या तिगुनी होती है।

१९६१ के बाद से १४-१७ वर्षीय लड़कियों द्वारा गर्भाधान में ७५ प्रतिशत वृद्धि हुई है। अगर यही रवैया रहा तो १९६४ में जन्मी लड़कियों में लगभग २१ प्रतिशत ने एक बार प्रसव कर लिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होगा, १५ प्रतिशत ने कम-से-कम एक गर्भपात और ३४-३९ प्रतिशत १९ या २० वर्ष की आयु होने तक एक बार प्रसव कर चुकी होंगी।

एक कम उम्र अविवाहित मां पर बच्चे की देख-भाल करने, अपनी शिक्षा पूरी करने तथा नौकरी हासिल करने का दुरूह बोझा होता है। १० में से ९ वे माताएं जिन्होंने १५ या कम उम्र में पहला प्रसव किया होता है, हाईस्कूल की पढ़ाई भी पूरी नहीं कर पातीं और हर १० में ४ से भी अधिक ऐसी लड़कियां ८ वीं कक्षा से आगे नहीं बढ़ पातीं। १५ से १७ वर्ष की आयु की ७२ प्रतिशत माताओं को तथा १८-१९ वर्षीया ४१ प्रतिशत माताओं को दान-सहयोग लेना पड़ता है।

हालांकि यह तथ्य है कि अल्पसंख्यकों और गरीब बच्चों में से ही एक बड़ी संख्या में ये तरुण माताएं आती हैं, किन्तु यह भी सच है कि अब गोरों और मध्यवित्त में भी ऐसी तरुण माताओं की संख्या बढ़ती जा रही है। अभी हाल ही में एक सम्पन्न विद्यालय—मेरीलैंड हाईस्कूल में हुए सर्वेक्षण के मुताबिक ३० अल्पायु लड़कियां स्कूल-शिक्षा के अंतिम वर्ष में गर्भवती हो गयीं। २१ लड़कियां, जिन्होंने प्रसव किया उनमें से एक भी स्कूल शिक्षा पूरी करने नहीं लौटी।

देश भर के विद्यालयों में यही हो रहा है। संघीय सरकार ने १० लाख डालर अनुदान के लिए देकर किशोर गर्भाधान के लिए एक कार्यालय खोला। कार्यालय खुलते ही देश भर की विभिन्न संस्थाओं और समुदायों से ४००० प्रार्थना पत्र पहुंच गये।

वह दिन लद गये जब ये 'समस्या शिशु' अमरीका में किसी एक परिवार के व्यक्तिगत मामलात हुआ करते थे। आज बढ़ता हुआ शहरीकरण देश के बच्चों को ऐसी स्थिति में ले आया है, जहां ऐसी गतिविधियां जो कभी वर्जित समझी जाती थीं, आज स्वीकृत हैं।

यह तय बात है कि किशोरों में मादक द्रव्यों और अल्कोहल के अत्यधिक सेवन और गर्भधारण की महामारी तथा इससे युवा-सम्प्रदाय में अर्थ व शिक्षा सम्बन्धी जो गिरावट आयी है, उसे रोकने का दायित्व एक हद तक संघीय, राज्यकीय व कानूनी तंत्र का है।

यूरी ब्रोनफेनब्रेनर के अनुसार आज युवकों की जो अवस्था है, उसके लिए टूटते हुए अमरीकी परिवार मुख्य रूप से जिम्मेदार है। किशोरों द्वारा मद्यपान एवं नशीले पदार्थों का सेवन एक गंभीर समस्या है। पिछले दो दशकों में पन्द्रह से उन्नीस वर्ष के बीच आत्महत्या की दर तिगुने रफ्तार से बढ़ी है। १९५६ में एक लाख में जहां २.३ लोग आत्महत्या करते थे वहीं १९७४ में एक लाख में ७.१ लोगों ने आत्महत्या की। हाल ही में छोटे बच्चों में आत्महत्या की वारदातों में भी बढ़ोतरी हुई है। इनमें से कुछ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

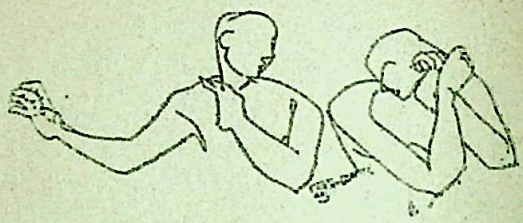

चित्र : विष्णु भटनागर

की उम्र तो मात्र दस वर्ष थी। बच्चों की अपेक्षा अठारह वर्ष से कम उम्र के किशोरों में अपराध की दर ज्यादा बढ़ी है। ब्रोन-फेनब्रेनर का अनुमान है कि एक साल में लगभग दस लाख बच्चे घर से भागते हैं। वह तथा अन्य समाजशास्त्री इस बात से चिन्तित हैं कि बच्चों पर माता-पिता का प्रभाव दिन-ब-दिन कम होता जा रहा है।

हम यहां क्या लक्ष्य कर रहे हैं? अलगाव की जड़ें!

रोचेस्टर विश्वविद्यालय के इतिहास के प्रोफेसर श्री क्रिस्टोफर लैच का मत है कि आज बच्चों के प्रति माता-पिता की अति भौतिकवादी प्रकृति की वजह से बड़ी संख्या में किशोर-किशोरियां रेवरेन्ट सन म्युंग मूनस, युनिफिकेशन चर्च, हरे कृष्ण और अन्य धार्मिक समुदायों की ओर उन्मुख हो रहे हैं। बच्चे स्वतन्त्र होने की इच्छा से नहीं, वरन् अपने अन्तर में खालीपन के एहसास की वजह से पुरानी पीढ़ी से भावनात्मक सम्बन्ध तोड़ते हैं, क्योंकि उन्हें उनसे अपेक्षित प्यार व स्नेह नहीं मिलता।

लैच ने हाल ही में लिखा है-'आज युवा पीढ़ी अपने माता-पिता पर उपेक्षा तथा अलगाव का आरोप लगाती है। यही कारण है कि इनमें से कई दार्शनिकों, गुरुओं, ज्योतिषियों, राजनीतिज्ञों की शरण में आकर अपने-आप को 'सुरक्षित' महसूस करते हैं।'

टूटता परिवार संभवतः अमरीका की सबसे गंभीर समस्या है। पर दुःख तो यह है कि इस गंभीर समस्या को सुलझाने के प्रयास नगण्य से हैं। तो क्या यह समझा जाये कि अमरीकी जनमानस इस सब का अभ्यस्त हो गया है? क्या उसने इस भयावह स्थिति को स्वीकार कर लिया है? संभवतः नहीं। वह असन्तुष्ट है, दुःखी है। पर अपने आप को असहाय अनुभव करता है। परिवार के टूटने की प्रक्रिया का न चाहते हुए भी वह मूक दर्शक मात्र बनकर रह गया है। क्योंकि इस टूटन को रोकने में वह अपने आप को सर्वथा असमर्थ पाता है।

('विकृत समाज' पुस्तक से साभार)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रतीलाल शाहीन की हिंदी कहानी

□

कमरे में कोई रहता है

उसकी नींद टूट जाती है। वह कुछ सोचने लग जाता है। हां, अभी-अभी कोई सपना था, नींद टूटी और सपना भी टूट गया। उसने याद करना चाहा, कई बार यही एक सपना उसे आता रहा है। वह काशी एक्सप्रेस में सफर कर रहा है। भरी दुपहरी। सूरज ऐन सिर पर है। गाड़ी भी उसके ताप के सामने राम-नाम जपने लगी है। एक तो ठसाठस भरी हुई है, दूसरे गाड़ी का पूरा शरीर गर्मी से तप उठा है। ऊपरी बर्थ पर, जिस पर सामान रखे जाते हैं, कमर झुकाये, उकड़ूं हुआ वह बैठा है। टेढ़ी कमर अब दुखने लगी है। वह चाहता है कि बदन के ज़ोर को बायीं जांघ से दायीं जांघ पर कर ले, लेकिन भीड़ ज़रा भी हिलने नहीं दे रही है। दोनों टांगें तिकोन की शक्ल में किये-किये निर्जीव-सी हो चुकी हैं। अचानक कोई स्टेशन आता है। खंडवा है शायद। वह गाड़ी के फर्श पर उतरना चाहता है। लेकिन मुसाफिर वहां भी बैठे हुए हैं। उसकी समझ में नहीं आ रहा, अपने पैरों को कहां टिकाये। स्टेशन आया हुआ है। गाड़ी मुश्किल से बीस-पच्चीस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिनट रुकेगी। सूख गये गले को वह तर कर लेना चाहता है। आखिर कैसे उतरा जाय? अभी वह इसी सोच-विचार में डूबा है कि सहसा उसकी नींद उचट जाती है।

सफर ही तो करता रहा है वह। कभी क्या, अक्सर वह घर में भी बैठा रहा है तो यही महसूस होता रहा है कि वह सत्ताइस डाउन में बैठा हुआ है, पैर सिकोड़े। पैरों में झुनझुनी छा गयी है। उतरना चाहता है लेकिन भीड़ इतनी है कि कहीं पैर नहीं टिकाये जा सकते। और जब आप डिब्बे से उतर नहीं सकते तो यही तो विकल्प रह जाता है कि सफर करते रहिये जब तक कि गंतव्य नहीं आता और अगले स्टेशन पर उतरने की बाट जोहते रहिये। वह आज तक सिर्फ बाट ही जोहता रह गया है। उसके हिस्से में सिर्फ बाट जोहना ही है। और आज तक वह केवल बटोही बना रह गया। सिर्फ सफर, थकान और फिर सफर, जिसमें यह पता नहीं चला कि यह 'सफर' हिंदी का है या अंग्रेजी का। उसे यह तो अंग्रेजी का ही 'सफर' (Suffer) लगता रहा।

कभी-कभी वह सोचता है तो सोचता ही रह जाता है। उसे यह समझ में नहीं आता कि आखिर इस शरीर में कितने मकान हैं। कितनी सीढ़ियां उतरने के बाद भी वह तल मंजले पर नहीं पहुंच पाया है। हर बार लगा है, एक माला उतरना बाकी है। और वह थककर वहीं सीढ़ियों पर बैठ गया है।

उसे याद है, जब वह कोई दस साल का था, उसे बार-बार एक स्वप्न आया करता। वह लड़ाई के मैदान में दुश्मनों से घिर गया है। किसी ने उसके पेट में बल्लम घुसेड़ दिया है। दर्द से वह तिल-मिला उठता है। अचानक उसे लगता है, बल्लम के साथ ही उसके पेट में कोई सांप घुस गया है। सांप पेट में मरोड़ें ले रहा है। और उसकी नींद खुल जाती है।

नींद खुलते ही वह देखता है, अपनी दोनों टांगों को उसने पेट में घुसेड़ रखा है। पतली-पतली टांगें। सिर्फ हड्डियां भरीं। वही तो उसे चुभ रही थीं। तो यही बल्लम था। लेकिन उस रोज उसके पेट से ढेर सारे कीड़े गिरे थे, तो सांप का पता भी चल गया। लेकिन वह सपना कई बार आता ही रहा था। फिर, जब वह मैट्रिक में आया तो सपने आना ही बंद हो गये। लेकिन कुछ सालों बाद इस दूसरे सपने ने उसे परेशान-सा कर दिया। दिवा-सपनों में भी उसे यही लगता, वह ट्रेन में बैठा हुआ है। ट्रेन चल रही है। डिब्बा ठसाठस भरा हुआ है। वह टांगें सिकोड़े हुए है। दर्द उठना शुरू हो गया है।

कहां से क्या टूटते चला गया। कहां से क्या छूटते चला गया, उसे कुछ पता ही नहीं चला। खिले हुए फूल की पत्तियां एक-एक करके कब झड़ती चली गयीं, उसे कुछ भी भान नहीं। पीछे मुड़कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देखता है तो एक खरोंच लगे आईने में संवलाया-सा, कुम्हलाया-सा एक चेहरा उसे घूरने लग जाता है। दुबला-पतला। गहरे गेहुंआ रंग का। ध्यान से देखने पर वह चौंक उठता है—यह तो उसका अपना चेहरा है। उससे ही पूछता हुआ, 'क्यों जनाब, कैसे हो? हमेशा से भागते ही नज़र आते हो। किससे भागते रहे हो? अपने से या दूसरों से।'

जवाब देने की उसने कभी ज़रूरत ही महसूस नहीं की। कुछ सवाल सिर्फ सवाल होते हैं। उनके जवाब नहीं होते। तो आप क्या करेंगे?

उसे याद है, जब वह छोटा था। यही कोई दस-बारह की आयु का। अक्सर उसके माता-पिता में झड़प हो जाती। यह झड़प फिर उग्र रूप धारण कर लेती और उसके पिता लाठी उठा लेते। रेलवे पुलिस में थे। बेंत वाली यह लाठी जितनी वज़न में हलकी थी, चोट देने में उतनी ही जानदार। और बाबूजी को पकड़ते-पकड़ते वह ऐन मां के सामने आ जाता। तभी पिताजी वार करना बंद करते। घर में वही बड़ा था। बड़ी बहन थी जिसकी शादी हो चुकी थी। वह अपने घर थी। वह तो यही सोचता, अच्छा हुआ इस कभी न टूटने वाले चक्रव्यूह से उसकी बहन तो छूट गयी। सोच के कितने कमरों को लांघ कर दीदी गयी थीं।

बरसों बाद आयीं तो सिर्फ चमड़ा-चमड़ा बदन पर रह गया था। और साथ में उनका आठ वर्षीय पुत्र था। वह भी सूखे के रोग से ग्रसित था। अम्मा ने म्युनीसिपाल्टी अस्पताल के डाक्टरों को ढेर-सा आशीर्वाद दिया था। 'भगवान भला करें बेचारों का। मेरी उमर भी उनको लग जाय।' वे तो बस हमेशा यही मनाती रही हैं। जब भी बाबूजी की मार से खून बहने लगता, रात तो वे कैसे भी बिता लेतीं, बाबूजी को कोसते हुए। बच्चों के जल्दी बड़े हो जाने की कामना करते हुए। रोते हुए। लेकिन सुबह होते ही वे भाभा अस्पताल जा पहुंचतीं। दुपहर तक मरहम लेकर लौटतीं। तब फिर उनके खाना बनाने का कार्यक्रम शुरू होता। पनियायी आंखों से वे दीपू की तरफ देखतीं और आंखों ही आंखों में न जाने कितने कमरों से उतरती हुई खामोशी अख्तियार कर लेतीं।

वे जानती थीं, उनका दीपू छोटा है। बड़ा होगा, तो बाप से ज़रूर बदला लेगा। फिलहाल तो जब कभी मां-बाप में झगड़ा होता, वह घर की सभी छुरियां और चाकू अपने सिरहाने छिपाकर रख लेता है। बाबूजी ढूंढते रह जाते। उन्हें बड़ा ताज्जुब होता कि इतनी सारी छुरियां कारखाने से बनवा-बनवाकर लाये थे, एक का भी पता नहीं।

ooo

दिन पंख पर सवार होकर उड़ जाते हैं। रह जाती है सिर्फ धूल, गर्द और कुछ धुंधली-धुंधली यादें। जो यादें केवल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीड़ा दें, उनको सहेजकर मिलना भी क्या है। उसने यादों को भी भूलना ही चाहा है। लेकिन उसके भीतर इतने कमरे हैं कि यादें क़रीने से एक के ऊपर एक तह बनाकर रखी रह गयी हैं। जब भी उन कमरों से वह गुज़रने लगा है, उसने बड़े लंबे-लंबे डग भरने शुरू कर दिये हैं। मिट्टी में चलते हुए भी पैर जलने लगे हैं। यादों की गर्म मिट्टी बंद कमरे में भी गर्म ही रह जाती है। हर बार उसने सोचा है, और हर बार की तरह चुप रह गया है। न जाने क्यों उसे हर बार लगा है कि चुप्पी वह स्याहीसोख है जो हर दुःख की सीलन को जज़्ब कर लेता है। तब से चुप रह जाना उसने अपना धर्म ही बना लिया है। उस दिन भी तो उसने यही किया था।

चित्र : संतोष जड़िया

०००

वह घटना उसे आज भी नहीं भूलती। बाबूजी ने खूब पीना शुरू कर दिया था। रेलवे की नौकरी उनके बस का रोग नहीं था। किसी की बात को सहना उनके बस की बात नहीं थी। किसी आर. पी. एफ. से उनकी झड़प हो गयी थी, 'मैं तुम्हें देख लूंगा, मिस्टर जागीरदार!' बाबूजी का पारा सातवें आसमान पर था, 'अबे, तू क्या देखेगा मुझे!' और वे इस्तीफा देकर चले आये थे।

उस दिन पिताजी घर लौटे तो पहली बार बिन पिये आये थे। वरना तो वे जब भी घर आते, खूब 'टाइट' होकर आते, यह भी होश नहीं रहता कि उनके पैर कहां पड़ रहे हैं। लेकिन वे घर जरूर पहुंच जाते। आज आते ही उन्होंने अम्मा को आत्मीयता से बुलाया था। साड़ी का बंडल थमाया और वे पिक्चर के लिए चले गये थे। उसे भी एक का नोट थमाया था संभवतः बाबूजी ने पहली बार अम्मा को इतना प्यार किया था। और वह अकेले में घंटों रोता रहा था। जब भी किसी आफिस की अधेड़ महिला को वह देखता, हाथों में वेनिटी बैग लटकाये, फोल्डिंग छाता लिये, कुछेक किताबें दबाये, तो वह यही सोचता, काश अम्मा और दीदी आज ज्यादा पढ़ी-लिखी होतीं तो इसी तरह वे दफ्तर जातीं। बाबूजी के आतंक में तो न रहतीं। और जिज्जी ने सातवीं में कक्षाध्यापक से झगड़ा करके स्कूल न छोड़ा होता, तो उनकी हरी-भरी ज़िंदगी असमय में ही सूखे का शिकार न होती। जीजाजी की ढेर सारी जमीन और नौकर-चाकर को लेकर चाटना तो था नहीं। दीदी के ससुराल वालों की आंखें तब खुल जातीं। लेकिन दीदी भी तो एक नंबरी ज़िद्दी हैं। कितना समझाया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या अम्मा ने, बाबूजी ने, सहेलियों ने। लेकिन उनकी तो बस, एक ही ज़िद थी, 'अब नहीं पढ़ूंगी! किसी भी स्कूल में नहीं जाऊंगी!'

न जाने क्यों उन्हें स्कूल के नाम से चिढ़ हो आयी थी। गुरुजी ने भगवान जाने क्या कहा था, उन्हें टीचर नाम की पूरी जाति से उबकायी हो आयी थी। वही गुरुजी, जिन्हें वह ईश्वर का रूप मानती रही थीं, एकाएक रस्ते के ठीकरों से ज्यादा उनकी नज़र में निकृष्ट बन गये थे। उसे याद है, दीदी ने उसे गोद में भर लिया था। सिर्फ रोती रही थीं। निःशब्द। कुछ कहने की जैसे उन्होंने कसम खा ली थी। वह दीदी से पंद्रह साल छोटा था, लेकिन बुजुर्ग की मुद्रा में उन्हें चुप कराता रहा। लेकिन होना वही था, कई आलीशान इमारतों की संभावनाओं वाला मकान सहसा चूर हो गया था। दीदी कई कमरों का खंडहर और अवशेष बनकर रह गयी थीं। अपनी छोटी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल उसने बहुत हाथ-पैर मारे थे, लेकिन यही सोचकर चुप रह गया था कि जिनकी नियति सिर्फ टूटना है, उनके लिए कोई भी कुछ नहीं कर सकता। अपनी-अपनी करनी नहीं, लोग अपने माता-पिता के ही पाप-पुण्य भोगते हैं। जीवन महज़ एक अवसर होता है। जो चूक गया, सो चूक गया। दीदी भी चूक गयीं।

और वह खुद! वह तो सिर्फ चूकता ही

चित्र : संतोष जड़िया

रहा है। गलत प्लेटफार्म पर आने का यही तो नतीजा होता है। गलत गाड़ी और गलत गंतव्य। अगर गंतव्य मिल भी जाता तो भी तसल्ली की बात होती। लेकिन जिनके लिए कोई मंज़िल नहीं होती, उन्हें सिर्फ सफर करना होता है। हमेशा चलता ही रहा है वह। डगर कौन-सी थी, कौन से ठिकाने थे, उसे कुछ भी याद नहीं।

पिछले दिनों उसने उतरने की कोशिश की थी, लेकिन अभी वह दो ही मंज़िलें उतर पाया था कि पता चला कि गलत कमरे में उतर आया है। सोचता है तो एक फीकी मुस्कराहट ओंठों पर तिर आती है। उसी का उपहास उड़ाती हुई। दुस्साहस का परिणाम यों भी हो सकता है, यह उसकी कल्पना से परे था।

कारण यह नहीं है कि शादीशुदा होते हुए दूसरे की विवाहिता को वह चाहने लगा। कारण यह था कि वह अपना खुद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का कमरा भूल गया। अपनी औकात भूल गया। पैसे का ज़हर जिंदगी लेता ही नहीं है, ज़िंदगियों को जोड़ने का माध्यम भी होता है। जबकि वह पैसे की हमेशा उपेक्षा ही करता रहा। दिल के कमरे में तो कई लोग रह जाते हैं। मुसाफिरखाने में आने-जाने वालों के प्रति अपनाव पैदा करने से क्या हासिल ? वह इसी भटकाव में भटक गया था। लौटा, तो देखा खुद का कमरा भी कितना गंदा हो उठा है। पैसों से तो जंगल के जंगल साफ करवाये जा सकते हैं। और सुमि तो उसकी जाति की भी नहीं है कि अपनत्व के संबंध को झील में तैरते हंसों की तरह तैरने देती। खुद का फ्लैट हो। घर में नौकर-चाकर हों। फ़्रिज, टी.वी. हों, तो दिल जैसी वाहियात चीज़ों के बारे में सोचना तो मूर्खता ही है! वह बड़ी देर में समझ पाया था।

०००

उसे याद है, सुमि को एक बार बड़ी लंबी छुट्टी पर जाना था और वह बकाया काम के निपटाने में कई दिनों से मशगूल थी। शायद ही सिर उठाने की फ़ुरसत निकालने की गुंजाइश थी। पड़ोसी सहकर्मी के नाते नहीं, एक अपनाव के नाते उसने कहा था, 'चाय पी लो, तो काम करने में स्फूर्ति महसूस होगी।'

सुमि ने वेनिटी बैग खोला था। पर्स निकाला, और उसके साथ चल पड़ी थी। वहीं उसने बताया था, छुट्टी पर जाना है। फिर शायद ही कोई बात हुई थी। जाते समय उसने कहा था, 'तो! मैं निकल रही हूं! हां...आं।' और उसने 'टा टा' करते हुए दायीं हथेली को हिलाया था और झटके से दरवाज़े के बाहर हो चली थी। सुमित्रा, उसकी घनिष्ठ सहेली ने सुमि की ओर देखा था। उसे उम्मीद थी सुमि, जो कि स्टेशन से रोज़ाना दफ्तर उसके साथ आती है, साथ-साथ लंच लेती है, चाय भी रोज़ साथ ही पीती है, बरसों से साथ काम कर रही है, कम से कम जाते समय 'विश' तो करेगी। लेकिन सुमि ने सुमित्रा को बिलकुल ही अनदेखा कर दिया था। 'कुछ भी नहीं कहा, ज़रा-सा संकेत भी नहीं दिया, और चली गयी।'

सुमित्रा ने एक ठेस-सी महसूस की थी। कभी-कभी औपचारिक बातें भी न पूरी होने पर कितने अनौपचारिक ठेस का कारण बन जाती हैं। दीपक सोचता ही रह गया था। और वही सुमि, अब उसकी तरफ नज़र मिलते ही कतराने लगती है। भावना भी शायद गहराने पर ज़्यादा पक गये फल के ही समान फेंक देने की ही चीज़ हो जाती है। दीपक ने तो सिर्फ पहला ही पैर रखा था इस अनजाने कमरे में। दूसरा कदम रखने से ही पूर्व 'सावधान!' की अनदेखी प्लेट ने उसका स्वागत किया था। वह वहीं से लौट पड़ा था। सफर में राह चलते मुसाफिरों को स्नेह के धागे में बांधना किस बुद्धिमानी की निशानी है। यह वह आज समझ पाया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

था। उसे तो सिर्फ सफर करना है ! ऐं। वह तो जैसे भूल ही गया था। वह फिर अपने ही कमरे में लौट आया।

कछुए की शायद यही नियति होती है। जब मौसम अनुकूल न हो, अपने सिर को भीतर कर लेना पड़ता है। उसे भी एक कछुआ बन जाना पड़ा था। सुमि, प्यार, होटल, पार्टियां—ये सब उसके लिए महज़ स्वप्न की बातें बन गयी थीं। 'छि:!' उसने सिर को एक झटका दिया, वह भी क्या सोचने लगा। रात को वह बड़ी देर तक जागता रहा था। करीबन एक बजे वह चौंका था। तब वह भीतर के कमरे में सो रहा था। उसके पिताजी को ज़ोर का खांसी का दौरा हो आया था। पिताजी पहले वाले कमरे में सोते हैं। वह सोये-सोये खांसने की आवाज़ सुन रहा था। फिर पिताजी बलग़म निगलने लगे थे। थूक गटकने की आवाज़ से पता चला था। 'कहीं टी. बी. न हो गयी हो!' एक दुश्चिंता ने उसे दबोच लिया। इसके साथ ही उसने बत्ती जलायी थी और बाबूजी के कमरे की ओर लपका था। उसने देखा, बाबूजी अपने ही हाथों, पैरों और छाती में 'अमृतांजन' बाम मसल रहे हैं। घर में कितने लोग भरे हुए हैं। वह है। उसकी पत्नी है। उसका छोटा भाई है। छोटे भाई की पत्नी है। उसकी छोटी बहन है। लेकिन सब बेसुध से सोये हैं, मेरे बाबूजी के खांसने से उन सबको कोई लेना-देना नहीं है। अम्मा गांव गयी हैं। वे होतीं, तो उठकर बाबूजी की पीठ और छाती सहलाने लगतीं। पानी का गिलास देतीं। इस्त्री गरम करतीं। सेंक करने बैठ जातीं। पंद्रह दिन हुए, जब से अम्मा गांव गयी हैं, बाबूजी खोये-खोये से रहते हैं। काम करते-करते शून्य में ताकने लग जाते हैं। और वह बाबूजी की ओर देखने लग जाता है। उसे लगता है, बाबूजी अंधियारे-भरे गलियारे को पार करना चाह रहे हैं लेकिन कहीं अटककर रह गये हैं। उनके कदम अटक गये हैं या भटक गये हैं, बाबूजी सोच नहीं पाते। सोचते-सोचते कपड़े काटने लग जाते हैं।

और वह सोचने लगता है, शांति होतीं, पिताजी की 'वो', तो शायद अपना वेतन बाबूजी के हाथ में रखा करतीं। इस बुढ़ौती में वे सिलाई मशीन से अपनी किस्मत न सी रहे होते। बाबूजी शांति से चिढ़ गये थे। वे किसी और के साथ घूमने लगी थीं। पिताजी ने उड़ती-सी खबर सुनी थी। यहीं से वे नफरत करने लगे थे। और अम्मा को लगा था, वे अपने कमरे में आ गयी हैं। उन्होंने कितनी खुशी मनायी, यह वही जानता है। ढेर सारी बलैयां ली थीं उसकी। मातृत्व की गहन स्मित रेखाएं फूट-फूट पड़ती थीं। उसे पहली बार इस बेचारी मां का बेटा होने की सार्थकता महसूस हुई थी और वह घंटों रात में रोता रहा था। एक एक छोटी-सी खुशी के लिए आदमी को कितना-कितना मर जाना होता है। ढेर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

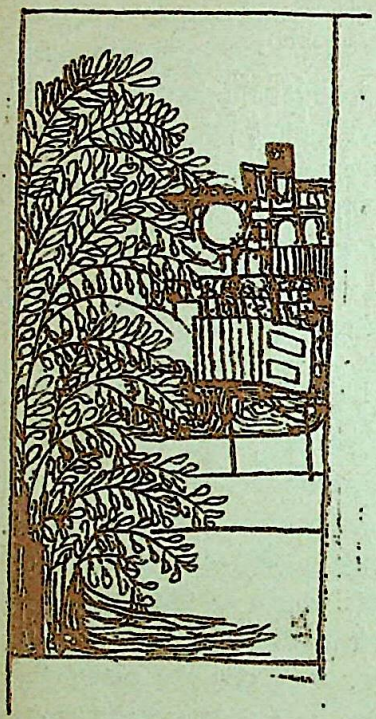

सारी मौत के बाद उपलब्धि का पुनर्जीवन किस काम का ? वह कितनी बार यहीं हांफने लगा है, जब दांत न हों तो कोई बादाम-पिस्ता ही क्यों न खिलाये, किस काम का है वह ? जो होना हो, वह तुरंत ही हो जाय ! प्रतीक्षा के कमरों की भूलभुलैया में यह अदृश्य शक्ति, जिसे भगवान के नाम से जाना जाता है, क्यों भटकाती है ! किसलिए आखिर ये तड़पन के अभिशाप होते हैं। अपने किस अहं की संतुष्टि कर लेता है वह ? वह यह आज तक नहीं समझ पाया। इस कमरे में आकर वह निढाल रह गया है। उसके पास बाबूजी का एक पुराना चित्र है। टाई, कोट, पैंट पहने। चुरुट पीते हुए। कुछ बीस साल पुरानी छवि है यह। अम्मा बताती हैं, तब बाबूजी कोट और टाई के बिना बाहर नहीं निकलते थे। कोई भी कमीज़ ज़रा-सी फटी नहीं कि ज़मीन पोंछने के लिए फेंक देते थे। आज वही बाबूजी पेबंदों से भरी ढिगली भी पहने रहते हैं। छोटे-से उसके अपने वेतन में वह कोई भी सुख नहीं दे पाया था। बाबूजी पर उसे ढेर सारा प्यार हो आया था।

'बाबूजी ! ज्यादा खांसी हो तो भाभा अस्पताल चलें।'

'नहीं !' बाबूजी हांफते हुए बोले थे, 'तू एक गिलास पानी पिला दे। खांसी ठीक हो जायेगी।'

उसने पानी पिलाते हुए बाबूजी के चेहरे को ग़ौर से देखा था। बाबूजी के चेहरे पर छाती के दर्द की असह्य पीड़ा में भी तृप्ति की एक मुस्कान फूल-पांखुरी पर ओस-बूंद की तरह लिप्त पड़ी हुई थी। 'कम से कम बड़े बेटे ने तो नींद से उठकर मेरा हाल पूछा है। यही क्या कम है।'

लेकिन उसे इतनी ही बात से तोष नहीं हुआ था। छाती सेंककर जब तक बाबूजी गहन निद्रा में लिप्त नहीं हो गये वह खुद नहीं सोया था।

बिस्तर पर आते ही सुमि की याद ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसे घेर लिया था। बड़ी-बड़ी बाहर को निकली हुई खरगोशी आंखें। दूर से देखने पर किसी लबरेज़ झील की तरह लगती है। उसने अंगड़ाई लेना चाहा तो पत्नी के दायें स्तन से हाथ जा टकराया। वह फिर अपने कमरे में लौट आया था। उसने सारा का सारा प्यार एक ही क्षण में निचोड़ देना चाहा। लेकिन फिर लगा, बड़ी भीड़ है। पैर टिकाने के लिए भी तो जगह नहीं है। यह सत्ताइस डाउन सचमुच बड़ी वाहियात ट्रेन है। जब भी छुट्टी का मौसम आता है, इसमें बेवजह भीड़ बढ़ जाती है। पैर रखने के लिए भी इसका फर्श कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता।

ooo

फिर वह सारी रात सो नहीं पाया। ढेर सारे ऊलजलूल खयाल! सोचते-सोचते उसका सिर भारी हो आया। वह अतिरिक्त उत्साह जो किसी भी व्यक्ति से दुनिया भर के चैलेंज को स्वीकार करने का जीवट प्रदान करता है, घर से बिन-थकान दफ्तर ले जाता है, ताज़गी के फुहारों का बिखराव करवाता है, न जाने वह जीवट कैसे लुंज-सा हो गया। सच तो है! फव्वारे के ठीक होने से क्या होता है? उसमें पानी फेंकने की शक्ति लाने वाले बटन का तो ठीक होना लाज़िमी है। जब बटन ही खराब है, तो फिर बिजली का लट्टू हो या झाड़-फानूश, रोशनी तो आने से रही! उस रोज़ वह घर पर ही रह गया था।

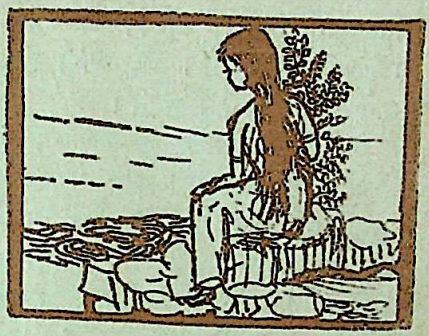

घर पर न रहता तो आंसू निकल-निकल आने को हो रहे थे। कल भी तो यही हुआ था। बांद्रा लोकल थी। खिड़की के किनारे की सीट पर बैठा हुआ था। लेकिन सोच रहा था, अम्मा के बारे में। इलाहाबाद के एक पिछड़े हुए गांव में उसका बड़ा-सा घर है। वहां जाने पर यही लगता है, जैसे कालापानी मिला हो! अम्मा तो बहुओं की तकरार से ऊबकर चली गयी थीं, 'दीपू! भैया तू मेरे भाड़े का इंतज़ाम कर दे। नहीं तो मैं बिना मौत यहीं जर-बुता जाऊंगी!'

रोज की चख-चख से वह खुद भी ऊब गया था। अलग कमरे लेकर रहने की बिसात तो थी नहीं! एक घर में तीन-तीन चूल्हे जल रहे थे। लेकिन चूल्हों की कालिख पूरे घर को काला कर रही थी। यह कौन-सा और कैसा घर है। वह सोचता है और खामोश रह जाता है। पत्नी सूखी आंखों से उसकी ओर ताककर रह जाती है। इस कमरे में रोशनी की कोई किरन जिंदा नहीं रह सकती। वह पत्नी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को देखता है और मायूसी की 'टावेल' को लपेट लेता है। ईमानदारी ज़िंदा रहने के लिए नहीं होती।

ट्रेन में बैठे-बैठे वह अम्मा के बारे में सोचता रह गया था। अम्मा ने घर के सामने खटिया बिछा ली होगी। धूप हो या रात, वे बाहर ही सोती होंगी। दो कोठे वाली बड़ी-सी हवेली। उसमें एक अकेली अम्मा और बूढ़े दादाजी। काट खाने को दौड़ता है यह मकान। दिन में बदहवासी का आलम। रात में डकैतों का डर। कौन रहेगा इस भूतखाने में! अम्मा के निरीहपन को लेकर उसकी आंखें डबडबा आयीं। सामने वाली सीट पर कोई बुढ़िया मुसाफिर बैठी हुई थी। वह उसके चेहरे को देखते ही रह गयी थी। उसने चलती गाड़ी की खिड़की से बाहर झांकना शुरू कर दिया था। आंसू तब भी नहीं रुके। बांद्रा स्टेशन आ चुका था। पूरा डिब्बा खाली हो चुका, एक अकेला वह बैठा रह गया। सच्चाई रुकना नहीं है, रुक कर चल पड़ना है। इस खयाल के आते ही वह उतर पड़ा था।

घर में लेटे-लेटे एक-एक बातें उसकी आंखों के सामने डाक्युमेंटरी फिल्म की तरह घूमने लगीं। उसे लगा, सुमि मिस्टर मूसा की सीट के पास जाकर बैठी होगी। सीट से उठने के पहले उसने कनखियों से चोर-नज़र फेंकी होगी कि मिस्टर दीपक अपनी सीट पर हैं या नहीं।' सीट खाली पाकर उसने बड़ी-बड़ी आंखों को पूरे विस्तार में फैला दिया होगा। आंचल को कमर के इर्द-गिर्द लपेटा होगा। निःशंक चकोरी की-सी चमक आंखों में उतर आयी होगी। फिर वह मूसा के सामने जा खड़ी हुई होगी। मूसा काम की बात के साथ-साथ ढेर सारी चुहुलबाजी करेगा। उर्दू के पांच-छह फहश शेर सुनायेगा। उनको व्याख्यायित करेगा। प्रेमिका की उपमा सुमि से करेगा और....और.....। उसे मूसा के भाग्य पर ईर्ष्या हो आयी।

इसके बाद सुमि ढेर सारी हंसी बिखेरती हुई पुरोहित की टेबल के पास आ गयी होगी। आ ही नहीं गयी होगी, अपने शरीर को पूरा-पूरा उसके टेबल पर गिरा दिया होगा। दोनों हाथों के त्रिकोण बनाकर अंजुरी में चेहरा टिकाया होगा। पुरोहित की सांस से उसकी सांस टकरायी होगी। पुरोहित कहता है, दोनों भाई-बहन हैं... भगवान जाने! और एक दर्द उसके सीने में ज्वार-सा मारने लगा। उसने सिर को ज़ोर का झटका दिया।

अब वह अपने कमरे में था। यहां सिर्फ अंधेरा ही अंधेरा है। और उसने ज्वर से तपती हुई अपनी आंखों को मूंद लिया। आंसू की एक कतर बह आयी। सहसा उसने किसी लड़की की तरह अपने चेहरे को तकिये में भींच लिया। इन कमरों में अब वह कभी नहीं जायेगा। कभी नहीं जायेगा। हां, कभी नहीं जायेगा। —३७, नवपाड़ा, बांद्रा (पूर्व), बम्बई—४०००५१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इदरीस शाह की सूफी बोधकथा

हत्यारा

जां फिशां खां से पूछा गया कि सूफियों के प्रति विरोध को कैसे मिटाया जा सकता है; इस विरोध का कोई कारण नजर नहीं आता था। उन्होंने कहा :

'एक बार की बात है, एक राजा था। उसने एक आदमी को पकड़ लिया, जो उसकी हत्या की कोशिश में था। चूंकि राजा ने कसम खा रखी थी कि वह खून बहाने का आदेश कभी नहीं देगा, इसलिए उसने हमला करने वाले व्यक्ति को नहीं मारा। बदले में उसने एक तरीका सोचा।

'उसने उस आदमी को इस संदेश के साथ उसके सम्राट के पास वापस भेज दिया : 'हमने इस आदमी को राजा की जान लेने की कोशिश करते हुए गिरफ्तार किया है। हम इसे आपके पास वापस भेज रहे हैं और आपको साधुवाद देते हैं कि आपको इतना स्वामिभक्त सेवक मिला है।'

'जब वह आदमी अपने राजा के दरबार में वापस पहुंचा तो उसे तुरंत मार डाला गया। उसे अपने काम में नाकामयाब होने के कारण मृत्युदंड नहीं मिला; बल्कि इसलिए मिला, क्योंकि उसका मालिक यह सोच भी नहीं सकता था, कि जिस आदमी ने हत्या की कोशिश की हो, उसे बिना कोई सजा दिये आजाद किया जा सकता है। निष्कर्ष यह निकाला गया कि उसने कोई वादा करके अपनी आजादी हासिल की होगी—मुमकिन है, वह वादा अपने ही राजा की हत्या का रहा हो।'

जां फिशां ने आगे कहा :

'जब हम आदमी को संतुलित रहने की शिक्षा देने की कोशिश करते हैं, तो हम उस पर असंतुलित होने का आरोप नहीं लगा सकते। उसका व्यवहार हमारे काम की जरूरत पर बल देता है। वरना हमारा कोई काम ही न होता। इसलिए मानवीय क्रूरता और जो उसके लिए जरूरी है, उसका विनाश रोजमर्रा की बात हो गयी है। वह सूफियों को बुरा ही मान सकता है, क्योंकि वह करीब-करीब हमेशा अपने सच्चे हितों के खिलाफ काम करता है।

'क्या बुजुर्गों ने नहीं कहा है कि जब आदमी सूफी को समझने लगेगा, तो 'सूफी' और 'अन्य लोग' का भेद मिट जायेगा ?'

(रूपांतर : सुदीप)

□

सीढ़ी तो इसलिये बनी थी कि ऊपर चढ़ने वाला अपना पहला पांव उतनी देर तक रख सके जितनी देर में दूसरा पांव आगे उठ जायें। सीढ़ी का कोई डंडा आराम करने के लिए नहीं बनाया गया था।

—थॉमस हक्सले

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

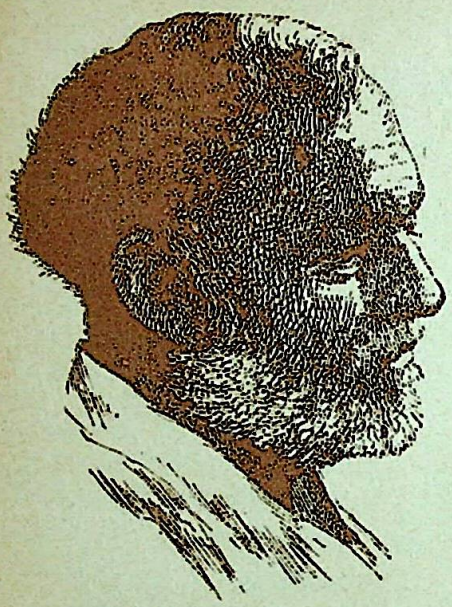

अर्नेस्ट हेमिंग्वे
'जीना किसलिए ?'

एक लंबी सूची है ऐसे प्रख्यात कवियों और साहित्यकारों की, जिनके लिए मौत एक मनोग्रहित बन गयी थी, और इस ग्रस्तता के कारण, अंत में उन्हें भूखे रहकर, जहर खाकर, पानी में डूबकर, गले में फाँसी लगाकर और गैस सूंघकर आत्महत्या करने को मजबूर होना पड़ा।

इस अबूझ ग्रस्तता और निराशांध मजबूरी पर एक पैनी नजर डाल रही हैं—प्रख्यात लेखिका नरगिस दलाल। ०००

नरगिस दलाल का मनोवैज्ञानिक लेख

कवि और साहित्यकार आत्महत्या क्यों करते हैं

अपने स्कूल के दिनों में मैं अंग्रेजी साहित्य की छात्रा थी। तब मेरा परिचय किशोर-कवि थॉमस चैटरटन की, जिसने सिर्फ़ १७ वर्ष की आयु में संखिया खाकर अत्महत्या कर ली थी, प्रकाशित काव्य-कृतियों से हुआ था। आत्महत्या का कारण था—निपट निर्धनता और भुखमरी। लंदन की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टेट गैलरी में उसके अंतिम क्षणों को साकार करने वाली जो कलाकृति टंगी है, उसमें सुनहरे बालों वाले इस किशोर-कवि को बिस्तर पर पड़े हुए दिखाया गया है। सर एक ओर झूल रहा है, चेहरे पर रोमांटिक पीली छाया है, और एक हाथ उसकी कमीज़ को पकड़े हुए है। लंबी उंगलियों ने एक फटी हुई कविता को जकड़ रखा है। वैसे संखिया-सेवन से हुई मौत इतनी प्रशांत और रोमांटिक नहीं होती, जितनी इस कलाकृति को देखकर लगता है।

एक लंबी सूची है ऐसे कवियों और साहित्यकारों की, जिन्होंने आत्महत्या करके अपने जीवन का अंत करना ठीक समझा। अर्नेस्ट हेमिंग्वे, सिल्विया प्लथ, वर्जीनिया बूल्फ, जॉन बैरीमन, सीज़र पेवसे, रेन्डल जॉरेल, रोमेन गैरी, यूकियो मिशिमा, सिमों वील, हार्ट क्रेन, येसेनिन, मायाकोवस्की, मेरिना स्वेतायेवा, तादेऊस बोरोवस्की, पाब्लो याशविली, शशा फेदयेव आदि। इन्होंने पानी में डूबकर, गले में फांसी लगाकर, ज़हर खाकर और भूखे रहकर आत्महत्या की। कुछ ने अपने को गोली मारी, जान बूझकर या रूसी रूलेट खेलते समय। मिशिमा ने आत्महत्या करने के लिए जापान की परंपरागत विधि 'हरा-किरी' को अपनाया था। इनमें से प्रायः सभी नामी और सफल थे, तथा अनेक साहित्यिक पुरस्कार जीत चुके थे। इनमें से कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने अंतिम आत्मघाती क़दम उठाने से पहले भी, अपना नाश करने में कोई क़सर नहीं उठा रखी थी। एडगर एलेन पो, ब्रेन्डेन बेहन, स्कॉट फिज़राल्ड आदि अत्यधिक मदिरापान के कारण जीवन भर निराशा और उन्माद के बीच झूलते रहे। उन्होंने भी आत्महत्या ही की थी, मगर धीमे-धीमे।

सिल्विया प्लथ : 'मरना एक कला है!'

०००

कॉनरेड, हरमॅन हैस और ग्राहम ग्रीन के जीवन में अत्यधिक विषाद और नैराश्य के ऐसे क्षण कई बार आये। जब उन्हें लगा कि आत्महत्या द्वारा ही उन्हें इन क्षणों से छुटकारा मिल सकता है। ग्राहम ग्रीन ने इस संबंध में लिखा है : 'कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है कि वे लोग जो न तो साहित्यकार हैं, न संगीतज्ञ और न कलाकार, वे पागल होने से कैसे बच जाते हैं और विषाद-रोग और संत्रास से भी क्यों नहीं पीड़ित होते?'

फ्रायड का आत्महत्या का सिद्धांत यह है कि आदमी में स्वयं को नष्ट करने की वृत्ति आरंभ से ही मौजूद रहती है, और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह सदा जैव अवस्था से अजैव अवस्था में जाने को तत्पर रहता है। फिलिप लार्किन्स ने इसी बात को इन पंक्तियों में बड़े सुंदर ढंग से व्यक्त किया है :

'इस सब से परे, विस्मृति की आकांक्षा जीवित है, कैलेण्डर, जीवन-बीमा, उर्वरता विषयक अनुष्ठानों, और मृत्यु से महंगी विमुखता के नीचे—विस्मृति की आकांक्षा जीवित है।'

वस्तुतः मौत की मूल प्रवृत्ति अधिकांश मानवों में सदा विद्यमान रहती है, और कोई भी छोटी से छोटी घटना उनके अंदर ऐसी विस्फोटक स्थिति का निर्माण कर सकती है, जो उन्हें हमेशा के लिए जीवन से विमुख कर दे। उनके आंतरिक जीवन को खंडित कर दे, उजाड़ दे।

और कवि, साहित्यकार और कलाकार अपने इसी जीवन में झांककर ही सृजन की प्रेरणा प्राप्त करता है। मानवीयता की नयी परिभाषा हो सकती है—स्व का जगत के साथ सर्जनात्मक समाकलन।

लेकिन, तब क्या होता है, जब यह समाकलन समाप्त हो जाता है, जब स्व की सीमाएं और अवबोधन का परिक्षेत्र संकुचित होते-होते अंदर एक भयावह शून्य व्याप्त होने लगता है। यदि सृजन और ओजस्विता दोनों के स्रोत ग़ायब होने लगें, जगत अंधेरा, अशांत और निष्ठुर दिखायी देने लगे, और आशा-वाद तथा आदर्शवाद ढहते नज़र आयें तो इस दुष्चक्र से बचने का एक ही उपाय अति संवेदनशील कवि या साहित्यकार को सूझता है, और वह है—आत्महत्या।

इस संबंध में एक मानस-रोग-विशेषज्ञ का कहना है : 'आत्महत्या करने वाले लोग भले ही आत्महत्या करते समय खिन्न न रहे हों, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि उनके जीवन में न कोई आशा रह गयी थी, न कोई चाह। जीवन के सारे अर्थ और ध्येय ही नष्ट हो गये थे। किसी अन्य मानव से कोई भी संबंध कायम रखना उनके लिए नामुमकिन-सा हो चला था।'

हेमिंग्वे ने, जिनके पिता ने भी उनके समान आत्महत्या की थी, आत्महत्या करने से पूर्व यह देख लिया था कि बुढ़ापा, जिसने लिखने की उनकी क्षमता की धार को कुंद करने के अलावा, उनकी जीवनी-शक्ति का भी ह्रास कर दिया था, उनके लिए असहनीय है। अपने जीवनी-लेखक हॉचनर से उन्होंने अपने अंत से कुछ दिन पहले कहा था : 'आदमी की क्या ख्वाहिश होती है? स्वस्थ जीवन बिताना। डटकर काम करना। दोस्तों के साथ खाना, पीना और मौज करना। भोग-विलास। मेरी ये सब ख्वाहिशें मर गयी हैं। समझे! मेरे अंदर अब कोई ख्वाहिश नहीं है।'

असल में हेमिंग्वे उन दिनों 'डिप्रेसिव-पर्सीक्यूटरी' नामक गंभीर मानस-रोग से पीड़ित थे, और मेयो क्लिनिक में उनका इसी रोग का इलाज हो रहा था। वे सदा आत्महत्या की ही बात करते रहते थे, और दो बार उन्होंने आत्महत्या करने का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असफल प्रयास भी किया था। तीसरी बार, उन्होंने चतुराई से काम लिया। मेयो क्लिनिक के डॉक्टरों पर यह ज़ाहिर करके कि वे पूर्णतया स्वस्थ हैं, वे वहां से निकल आये। घर आकर उन्होंने खाना खाया, और परिवार के सदस्यों के साथ अपने प्रिय गाने गाये। अब किसी के मन में कोई संदेह नहीं था कि वे स्वस्थ नहीं हैं। अगली सुबह को, जब सब सो रहे थे, उन्होंने अपने ऊपर गोली चलाकर, आत्म-हत्या कर ली।

ooo

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि दुनिया में ऐसे लोग कम ही मिलेंगे, जिनके मन में आत्महत्या करने का विचार कभी न आया हो। कामू ने कहा है : 'एक महान कलाकृति के सृजन के समान आत्महत्या के विचार का सृजन मन की मूक गहराइयों में होता है।'

जब १९६३ में ३०-वर्षीया कवयित्री सिल्विया प्लथ ने एक गैस ओवन में सर रखकर अपनी इहलीला समाप्त की थी, तो यह कोई आकस्मिक दुर्घटना न थी, वह आत्महत्या की उस सृजन-प्रक्रिया की परिणति-मात्र थी, जिसकी शुरुआत उनके जीवन में वर्षों पूर्व हो गयी थी। आज वे पश्चिम में आत्महत्या के एक नये पंथ की जन्मदात्री के रूप में जानी जाती हैं।

उनके अवसान से पूर्व लंदन में उनकी कविताओं का एक संग्रह 'दल बैल जार' प्रकाशित हुआ था पर तब उसकी उपेक्षा की गयी थी। उनके अवसान के पश्चात् उसकी एक लाख से अधिक प्रतियां बिकीं। उनके पति टेड ह्यूजेस ने, जो स्वयं एक जानेमाने कवि हैं, इन शब्दों में अपनी पत्नी के व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन किया है : 'स्वयं अपनी यथार्थता से अपने को बचाने के लिए उसके पास कोई सुरक्षा-साधन नहीं थे।'

अजीब थी सिल्विया की ज़िंदगी ! जब वह सिर्फ़ ८ वर्ष की ही थी तभी उसके पिता की मृत्यु हो गयी थी। उसकी बाकी ज़िंदगी अपने पिता की 'खोज' में ही बीती। अपनी मां के साथ उसके संबंध इतने मधुर न थे। कवि अल्वारेज़ के शब्दों में 'एकाकीपन की धुन्ध में ही बीता उसका शेष जीवन।' इस एकाकीपन के दुख को इस मेधावी महिला ने काफ़ी दिनों तक सहा, मगर जब वह असहनीय हो गया, तो उसने 'किनारा' नाम की यह सुंदर कविता लिखकर अपने प्राण स्वयं ले लिये।

'अनिन्द्य है वह महिला,
उसका मृत शरीर उपलब्धि की मुस्कराहट से जगमग है, उसके नंगे पांव कहते से लग रहे हैं—
इतनी दूर तो आ गये ! बस, अब सफ़र ख़त्म !'

ooo

जब जॉन बैरीमॅन सीज़र पेवसे और यूकियो मिशिमा ने स्वयं अपने प्राण लिये जब वे लोकप्रियता की चोटी पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थ ५७-वर्षीय बैरीमॅन को पुलित्ज़र पुरस्कार के अलावा 'नेशनल बुक एवार्ड' भी मिल चुका था। उन्होंने पुल से मिसीसिपी नदी के जल में कूदकर अपने प्राण लिये।

जापान के मिशिमा एक प्रतिभाशाली लेखक होने के अलावा, जापान की प्राचीन युद्ध-कला में प्रवीण योद्धा भी थे। 'हरा-किरी' विधि से प्राण-त्याग करने से पूर्व, उन्होंने एक लेख में लिखा था : 'जब मैं अपने पिछले २५ वर्षों पर दृष्टिपात करता हूं, तो ख़ालीपन के अलावा कुछ और नहीं पाता। मुझे लगता ही नहीं कि मैं कभी जिया भी था।' एक मनोवैज्ञानिक के अनुसार, 'हरा-किरी विधि से प्राणत्याग करने की मिशिमा की विधि इस बात की परिचायक है कि उसके मन में अमरत्व की शोध की प्यास अतिशय तीव्र थी।'

मानव-इतिहास में एक काल ऐसा भी आया था, जब आत्महत्या को एक सम्मानीय कृत्य माना जाता था।

सुकरात ने ज़हर पीने से पूर्व, मृत्यु को इतना वांछनीय बना दिया था कि उसकी नकल काफ़ी दिनों तक पश्चिम के देशों में होती रही।

आत्महत्या को घृणित और अवांछनीय बनाया ईसाई धर्म ने, जिसने उसे 'सर्वाधिक घातक महापाप' माना और उससे लोगों को विमुख होने को कहा।

१९२६ में येसेनिन ने गले में फांसी लगाने से पूर्व, अपने खून से एक कविता लिखी थी।

उससे भी पूर्व, मायाकोवस्की (जिसने दांतेदार चक्र वाले रूलेट खेल में अपने प्राण लिये थे) ने लिखा था :

'इस जीवन में मरना कठिन नहीं है, कठिन है जीना।'

रूसी कवयित्री मारिया स्वेतायेवा ने १९४१ में आत्महत्या करने से पहले लिखा था :

'मैंने आदमियों की आंखों में बहुत-बहुत झांका है, और अब चाहती हूं कि कोई काला सूरज मुझे राख-पुंज बना दे।'

अपनी प्रिय पत्नी की आत्महत्या से दुखी लेखक रोमेन गेरी ने जब खुद आत्महत्या की, तो कहा :

'अपने लेखन में हम दूसरों का दुख ढोते हैं।

और चूंकि लेखक अति संवेदनशील होता है, इसलिए वह खुद एक सीमा से अधिक अपने दुख नहीं सह और ढो पाता, और उससे मुक्त होने के लिए मौत की शरण में चला जाता है, यह कहते हुए, 'स्व की सीमाएं केवल देह तक सीमित नहीं हैं।'

('टाइम्स ऑफ इंडिया' से साभार)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काहे न रसना रामहिं गावहि
निसि दिन पर अपवाद वृथा कृत
रटि रटि राग बढ़ावहि।

नर मुख सुन्दर मन्दिर पावन
बसि जनि ताहि लजावहि
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत,
रविकर-जल कहँ धावहि।

काम कथा कलि कैरव चन्दिनि
सुनत स्रवन दै भावहि
तिन्हहि हटकि भजिं हरि कल कीरति,
करन कलंक नसावहि।

जातरूप मति, युक्ति रुचिर मनि
रचि रचि हार बनावहि
सरन सुखद रविकुल-सरोज रवि,
राम नृपहिं पहिरावहि।

वाद-विवाद स्वाद तजि, भजि हरि,
सरस चरित चित लावहि।
तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर,
तू पुनीत जस पावहि।

—संत तुलसीदास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आखिर पैसा ही जीता

□

गणेश त्र्यंबक कुलकर्णी

एक बार मानव, ईश्वर तथा पैसा तीनों में विवाद शुरू हुआ कि उनमें से सर्वश्रेष्ठ कौन है ?

पैसे ने कहा—'मैं सर्वश्रेष्ठ हूं !'

ईश्वर ने कहा—'तुम दोनों की अपेक्षा मैं श्रेष्ठ हूं ।'

मानव ने भी अपने श्रेष्ठत्व की डटकर दलील दी ।

फिर यह तय हुआ कि प्रत्येक अपनी-अपनी श्रेष्ठता के बारे में कुछ प्रमाण दे ।

सर्वप्रथम ईश्वर ने अपना बयान शुरू किया । ईश्वर ने कहा—'देखिये, मैं स्वयं इस सृष्टि का निर्माता हूं । अतः पैसे का व मानव का अस्तित्व मेरे कारण ही है। मैं तो विविध धर्मों में अनेकों नाम-रूप धारण-कर वास करता हूं; फिर भी मैं एक ही हूं । सुख-दुःखों के क्षणों में मानव मेरी ही याद करता है । मानव की करतूतों पर मेरा ही नियंत्रण है। मानव मेरे कारण ही निश्चित होता है । और पैसा ? पैसा भी मेरी ही पैदाइश है । सारांश यह कि मैं ही दोनों से श्रेष्ठ हूं ।'

फिर मानव ने अपना कथन शुरू किया—'परमात्मन् ! आज तक हम आपको श्रेष्ठ माने हुए हैं; पर हमारी वह भूल थी, अंधश्रद्धा थी । हे परमात्मन्, आप तो यदाकदा 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' के नारे लगाते हो ! पर इसी पृथ्वीतल पर इतना हिंसाचार, अत्याचार जो बढ़ता जा रहा है क्या आपको वह दिखाई नहीं देता ? शरीर से, अधिकार से, धन-संपदा से जो दुर्बल होते हैं उन्हीं की रक्षा क्यों नहीं करते ? दुष्ट, पाशवी-वृत्तियों के जनों में सद्बुद्धि का निर्माण क्यों नहीं करते ? दुर्बल—जो आपका ही नाम स्मरण करते, आपके ही भरोसे अपना जीवन यापन करते—वे ही क्यों मार खाते जा रहे हैं ? और आप ! चुप्पी साधे यह तमाशा देखते ही बैठे हुए हैं। फिर आप श्रेष्ठ कैसे ?'

आदमी ने अपना बयान जारी रखते हुए कहा—'अतः ईश्वर की महिमा केवल दिखावा ही है। आप केवल स्तुति-प्रिय हैं। पर, मनुष्य की महिमा का वर्णन तो सुनिये। आप जिस चंद्रमा पर अपना एकाधिकार मानते हैं उसी चंद्र की भूमि पर हम जा चुके हैं। नदियां, जल, वायु आदि पर भी हम मानवों का नियंत्रण अब पूर्णरूपेण होता जा रहा । हम अपनी बुद्धि के चातुर्य से धरती पर हज़ारों कोस दूर रहने वाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानवों से भी संपर्क स्थापित करने में सफल होते जा रहे हैं। वैज्ञानिक अनुसंधानों से हम अब अपना प्रभुत्व जमाते जा रहे हैं। वस्तुतः, हे परमात्मन् ! आपका अस्तित्व जो भी टिका हुआ है वह हम मानवों के कारण है। अतः हम ही श्रेष्ठ हैं। और पैसा तो हमारे हाथों का ही खेल है! पैसा तो पूरा हमारे नियंत्रण में है।'

इतनी देर तक खामोश बैठा पैसा अब बोलने लगा : 'हे मानव और हे परमात्मन् ! आप दोनों ही मेरे गुलाम हो। शायद आपने मेरा निर्माण किया हो, फिर भी आप अब मेरे ही गुलाम बने हुए हैं। मेरे बगैर आप दोनों का भी मूल्य शून्यवत है। केवल ईश्वर के नामस्मरण से तो उदर-निर्वाह नहीं होता। आदमी के भरण-पोषण के लिए मैं ज़रूरी हूं और मानव कहता है कि मैंने यह काम किया और वह काम किया। पर, हे मानव ! तूने जो भी कुछ कमाल दिखाया वह मेरी मदद से ही। अगर मैं न होता तो मनुष्य कुछ भी प्रगति न करता। ईश्वर के मंदिर भी नहीं बनते। अन्न, वस्त्र आदि मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी मानव नहीं कर पाता। अतः हे मानव ! तूने जो भी सुख-सुविधा के साधन बनाये हैं वे सब पैसों के कारण ही ! जब पैसा होता है तभी मानव की प्रतिष्ठा में चार चांद लग जाते हैं। अन्यथा मनुष्य की शून्य ! तो बोलिये कि क्या मैं यानी पैसा श्रेष्ठ हूं या नहीं ?'

फिर आदमी ने राय दी कि हम इस मामले में जनसाधारण का मत लेकर फैसला कर लें।

मतदान संपन्न हुआ। मतगणना हुई। पैसे के पक्ष में मत बहुत ज्यादा प्राप्त हुए, जबकि मानव व ईश्वर दोनों ही अल्पमत में रहे।

लोगों ने मतदान के समय 'पैसा ही सर्वश्रेष्ठ क्यों ?' इसके जो कारण दिये वे थे :

१—दुनिया में पैसे के बिना मान-प्रतिष्ठा प्राप्त होती ही नहीं।

२—आदमी, आदमी को धोखा दे सकता है, पर पैसा ईमानदार है। पैसा ही आदमी को संकट से बचा सकता है।

३—आदमी को वश करने में पैसा ही महत्वपूर्ण साधन है।

४—पैसा ही आदमी को कभी मूक बना सकता है, कभी वाचा-वीर बना सकता है, और कभी अंधा भी बना सकता है।

५—जिसके पास पैसा है वह सत्य को असत्य सिद्ध कर सकता है, असत्य सत्य सिद्ध कर सकता है।

६—पैसा जिनके पास होता है वे ही समाज के लिए आदरणीय बन सकते हैं व जिनके पास पैसा नहीं वे समाज की निगाह में तुच्छ तिरस्करणीय बन जाते हैं।

७—आदमी ही पैसे का पिछलग्गू होता है न कि पैसा आदमी का।

८—पैसों के मायाजाल का खेल ईश्वर भी चुप्पी साधे देखने के लिए मजबूर है।

(शेषांश पृष्ठ १३१ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अमिता श्रीवास्तव की हिन्दी कहानी

फूलतुली

जब फूलतुली काम करने आयी तो मुझे वह एकदम अनाड़ी-सी लगी। औद्योगिक नगर की सजी-धजी नौकरानियों से एकदम अलग। उसे मैं कई बार गीले लंबे बालों को लपेटते दौड़-दौड़कर काम करते जाते देख चुकी थी। मोटी संबलपुरी साड़ी, गुना-झलका (नाक-कान के उड़िया गहने) पहने वह मुझे एकदम फूहड़-सी लगती। इससे पहले मेरा पाला बड़े-बड़े बंगलों में काम कर चुकी ऊंचे दर्जे की आयाओं से पड़ा था, जिनके नखरे न सहकर कई महीने बिना आया के मुझे रह जाना पड़ता था। धीरे-धीरे उसकी सहज हंसी, सरल स्वभाव, ईमानदारी से काम करने की प्रवृत्ति ने मुझे मोह लिया। वह गांव की किसान परिवार की लड़की थी। शहर में जैसे उसका दम घुटता। सदा गांव, खेत, नदी, जंगल की याद उसे आती। दूसरी मेमसाब उसकी बातों से बोर हो जाती होंगी, इसलिये अपनी सरल उड़िया में वह अपनी स्मृति मुझे प्रदान करती। मेरा बचपन भी गांव में ही गुज़रा है, इसलिये उसका दर्द अपनी स्मृति की कचोट में समेट, मैं नित्य ही उसकी अंतरंग होती गयी।

कई बार दीर्घ निःश्वास लेकर वह पूछती—'मां, क्या मैं गांव लौट पाऊंगी या जूठा बर्तन मांजना ही मेरी किस्मत में लिखा है?'

उसकी गहरी पीड़ा को मैं पहचानती थी। शहरी, आलसी, आवारा पति को वह कभी भी सुधार नहीं पायेगी। रामेसर था उसके पति का नाम। घर में पैसा न देना, शराब पीना, पिक्चर देखना, इत्मीनान से बच्चे पैदा करना, जीवन को गंभीरता से न लेना ही उसकी प्रवृत्ति थी। पैसा रहने पर वह हल्ला करके मुर्गी-भात खाता। घर में पैसा और खाना न होने पर पोखाल भात (पानी भात) पर गुज़ारा करना। उसकी सभी आदतें निम्न वर्ग के आम आदमी-सी थीं। यह वर्ग रिक्शा चलाता हो, मज़दूरी करता हो या माली का काम, यही दिनचर्या जीता है, रामेसर उससे परे कुछ अनोखा तो नहीं हो सकता था। गांव से उसका कोई संबंध न था। तीन एकड़ की ज़मीन थी जो वर्षों पहले उसका बाप गिरवी रखकर खा चुका था। उसकी मां शहरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection: Digitized by eGangotri

आया थी। बड़ा होकर वह सात-आठ घर माली का काम करने लगा था। देखने में सुंदर था। फूलतुली का भाई किसी बारात में उसे देखकर प्रभावित

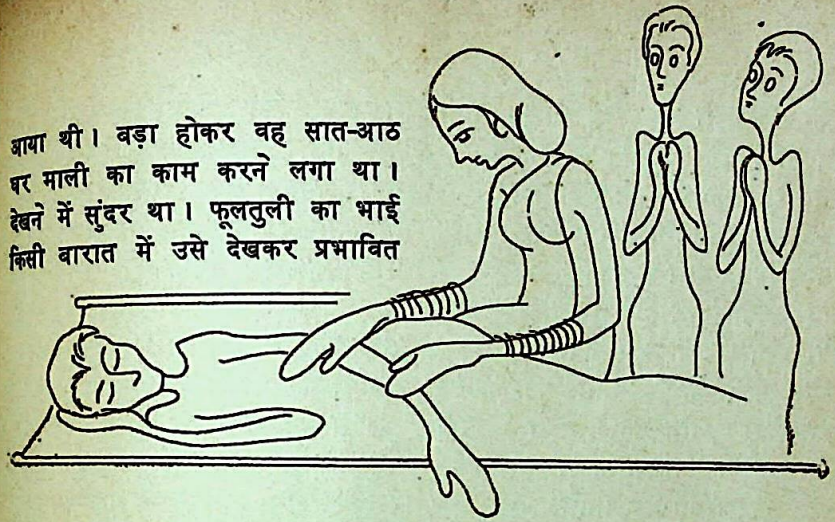

हो अपनी बहन शहर में ब्याहने का मोह कर बैठा। चिड़िया-सी बहन शहर में सुख से रहेगी।

'इंदिरा गांधी माझी (स्त्री), आय न, मां, इसलिये तो वह स्त्री का दुख खूब जानती है।'

पता नहीं इस भोली युवती को किस क्षण इस बात का पूरा विश्वास हो गया था कि इंदिरा गांधी उसका दुख जानती हैं। या यह मूर्खा समझती है कि इंदिरा गांधी भी उसकी तरह देश के किसी पिछड़े एकदम असभ्य कोने के लिए तड़पा करती हैं। उसकी बातों पर मैं मन ही मन हंसती। वह फिर कहती—'अगर वह स्त्री न होती तो ऐसा कानून पास करती कि गिरवी रक्खे खेत मिल जायेंगे।'

उसका चेहरा अपूर्व आशा से उद्भासित हो उठता। खेत मिल जाने पर वह तुरंत गांव चली जायेगी। शहर में जूठे बर्तन मांजकर अपवित्र खाना खाने से तो अच्छा है थोड़ी ज़मीन में मेहनत करके शुद्ध जीवन जीना। उसकी ऐसी गूढ़ बातें सुनकर मैं चकित हो जाती। उसमें विश्व प्रसिद्ध संबलपुरी सिल्क साड़ी बुनने वाले परिवार की कन्या होने के कारण ही शायद सिल्क-सी सनातन शुचिता थी।

परिवार का घोर विरोध सहकर वह दो बच्चों के बाद ऑपरेशन करवाने गयी थी। उसका माली उसके लिए अस्पताल में एक कप चाय लेकर भी नहीं गया था। वरन् घर छोड़कर भाग गया। पूछने पर कहता—

'सबु त कटइ देला, ऐंता माझी मू नहीं रक्खें।' अधिक समझाने पर कहता—

'जेन माझी छोआ (संतान) नहीं जनम करि पारबा सेकण माझी आय? बांझिन साली।'

दूसरी धांगड़ी (जवान) औरतों पर पैसा लुटाकर वह घर वापस आ जाता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोकर फूलतुली सब सह लेती। पत्नी सुख की कामना वह कम उम्र में ही छोड़ बैठी थी। अपने दो लड़कों को पढ़ा-लिखाकर आदमी बनाने की उसकी अदम्य चाह थी। इसी आशा की पूर्ति के लिए अपढ़ गंवार होते हुए भी वह कम संतान का महत्व समझ गयी थी। इसमें इंदिरा गांधी की भी सम्मति है जानकर वह खुश होती। लोग बढ़ जाने से बिचारी अकेली स्त्री इंदिरा गांधी चावल-गेहूं कैसे पूरा करेंगी—वह मुझसे कहती।

पांच घरों का काम करने के बाद उसके पास इतना पैसा नहीं था कि वह अपने बच्चों को किसी अच्छे स्कूल में डाल सकती। पब्लिक स्कूल की टीचर मिसेज़ मिश्रा के घर वह काम करती थी। उनके प्रयत्न से उसके बच्चों का नाम 'बापू विद्यालय' में लिख गया। बापू विद्यालय शहर के नामी सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा खोला गया स्कूल था। उसका उद्देश्य बच्चों के कल्याण से अधिक, सरकार से पैसा प्राप्त करने का माध्यम बनाये रखने का था। कहने को तो फीस माफ थी पर हर बच्चे से चार रुपया प्रति माह फीस ली जाती। नहीं लाने पर फेल कर देने की धमकी दी जाती। मिसेज़ मिश्रा हर माह फूलतुली को उसके बच्चों के लिए दस रुपये अधिक देती थीं। जब उन्हें पता लगा कि हर माह उसको अपने बच्चों की फीस देनी पड़ती है तो नाराज़ होकर वे स्कूल में पूछने गयीं। वहां फीस लेने से साफ इंकार किया गया और एक नौकरानी पर विश्वास करने से उनकी हंसी उड़ाई गयी। स्कूल वालों से वे झगड़ा तो नहीं कर सकती थीं, पर आगे से फीस न देने के लिए उन्होंने फूलतुली को कह दिया। पर ऐसा हो न सका। हर माह उनसे छिपाकर वह फीस दे दिया करती। मेरे डांटने पर उसने कहा—

'आखिर मास्टर के भी बाल-बच्चे हैं, पैसा नहीं लेगा तो कैसे पढ़ायेगा, मांजी?' उसको मैं यह बात बिल्कुल नहीं समझा सकी कि सरकार उनको पूरी तनखा देती है। अधिक समझाने पर कहती—'महंगाई भी तो है। सरकार के पैसे से पूरा नहीं पड़ता होगा तभी तो छुपाकर सबसे पैसे लेता है।'

मैं इस बात का क्या जवाब देती। जिस स्कूल में उसके बच्चे पढ़ रहे हैं उसकी स्थिति मैं खूब जानती थी। अहिंसा के पुजारी गांधीजी के नाम पर खड़ी दीवारों के बीच हिंसा का आरक्षण था। वहां हर मास्टर दादा किस्म के लोग थे। वोट इत्यादि के समय नेताजी को इनके बलवे और मारपीट का पूरा भरोसा था। नेताजी किराये पर मिलने वाले शामियाने की तरह थे। पैसा दीजिये और एलेक्शन के समय आंधी, तूफान से परे इस शामियाने के नीचे बैठकर आराम से वोट मांगते रहिये। वोट समारोह में जिन चीज़ों की ज़रूरत होती है वह सब इसी शामियाने के नीचे उपलब्ध हो जाती।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बड़े-बड़े मिनिस्टर पांच साल बाद इस शामियाने की बोली लगाने दौड़ पड़ते। यही कारण था कि इस टेंट हाउस के पीछे मूल पूंजी सरकार की थी। बापू विद्यालय के मास्टर सरकारी तनखा पर पाले गये गुंडे थे।

सरकार द्वारा एक रुपये में मिलने वाली गरीब बच्चों के लिए छपी कापियों का व्यापार एक मास्टरजी खुले आम डेढ़ रुपये प्रति कापी बेचकर करते। दूसरे मास्टरजी स्कूल के पीछे पान-बीड़ी, चाय-पकौड़ी की दुकान करते थे। एक बार हाजरी लेकर फिर उनका समय पकौड़ी छानने में बीत जाता। बच्चों को पान-बीड़ी-सिगरेट सब कुछ स्कूल के पीछे से उपलब्ध कराने की इतनी अच्छी सुविधा और कहीं नहीं थी।

बच्चों की पढ़ाई होती है या नहीं यह देखने की फुरसत हेडमास्टर साहब को नहीं थी। पर ठीक मौसम में ज़मीन खुदवाकर सब्ज़ी लगाने की उन्हें सदा चिंता रहती। गरीब रिक्शा-चालक मज़दूर बच्चों को मेहनत की इतनी ही शिक्षा काफी समझी जाती।

यह स्कूल अपने किस्म का शान्ति निकेतन था। मन करे क्लास में रहिये या बाहर हाते में खेलिये। मास्टरजी अपने घर का आटा पिसाने को गायब रहते। ऐसे स्कूल में पढ़कर फूलतुली के बच्चे क्या बनेंगे इस गंभीरता को मैं समझ सकती थी। शिक्षक और शिक्षा पर विश्वास करने वाली वह नितांत अनभिज्ञ युवती भला क्या समझती!

०००

गांव की ज़मीन मिल जाने पर सुसराल के परिवार को बहुत समझाकर वह गांव भेज सकी। बहुत सवेरे चार बजे से शाम छह बजे तक काम करके वह हल-बैल के लिए पैसा जोड़ना चाहती थी। माली भी कुछ पैसे देता, इस तरह वर्ष भर बाद अपने नाक-कान के गहने बेच, और जमा किये पैसों से वह गांव जाकर हल-बैल खरीद आयी। खेती के लिए बीज चाहिये, खाद चाहिये, परिवार बड़ा है थोड़ी और ज़मीन हो जाय तो वह गांव जायेगी ऐसा उसने कहा था। पहले की तरह बातचीत में समय नष्ट करना उसके बस का न रहा। कड़ी मेहनत और कम भोजन से वह बहुत दुबली हो गयी थी। पाउडर-क्रीम पर कभी वह पैसा नहीं खर्च करती। उसकी जाति में कांच की चूड़ियां ही स्त्री का सुहाग होती हैं इसलिये जब चूड़ी टूट जाती वह हम लोगों से दो-चार पुरानी चूड़ी मांगकर पहन लेती। हमारे दिये पुराने कपड़े में उसका वर्ष कट जाता। दुर्गापूजा के अवसर पर मिलने वाली नयी साड़ी के बदले वह पैसे लेकर जमा कर लेती। इस तरह कुछ पैसे हो जाने पर धान कटने के बाद किसी खेत के बिकाऊ होने की सूचना पाकर वह गांव जाना चाहती थी। उसी समय उसके छोटे लड़के

(शेषांश पृष्ठ १३२ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महाराणा संग्रामसिंह

सांगा को चंदेरी के लिए प्रस्थान किये हुए पंद्रह दिन से अधिक हो गये थे। अभी तक उनका कोई समाचार नहीं आया था। महाराणी सोच रही थीं कि जब महाराणा एक लाख सेना तथा अनेक पराक्रमी राजाओं के होते हुए भी खानुवा के युद्ध में बाबर को पराजित नहीं कर पाये, तब बीस हज़ार सैनिकों से चंदेरी में शत्रु का क्या मुकाबला कर सकेंगे। महाराणी ने उनको रोकने का असफल प्रयास किया था। सेनानायक भी कुछ समय बाद ही बाबर से लोहा लेना चाहते थे किंतु ज़ख्मी महाराणा बाबर को शीघ्र से शीघ्र पराजित कर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना चाहते थे।

गणेश मंदिर की आरती का समय हो रहा था। महाराणी आरती में जाने को तैयार हो रही थीं। पन्ना धाय उनका शृंगार कर रही थी। महाराणी का मन

मेवाड़ के इतिहास की एक रोमांचक कहानी :
गणेश प्रसाद नागर की ज़ुबानी

□

आन के पीछे

जनवरी, सन १५२८ की एक शाम। पूर्वी राजस्थान में स्थित रणथंभौर के विशाल दुर्ग के एक कक्ष में महाराणी कर्मवती विचार-मग्न बैठी थीं। महाराणा उद्विग्न था। वे खोई-खोई दृष्टि से बार-बार दरवाज़े की ओर देख रही थीं। पन्ना बोली –

'हाड़ी रानी, आज आपका जी शांत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं है ?

महाराणी ने स्वयं को संभालने की चेष्टा करते हुए कहा, 'तू तो कारण जानती है। महाराणा युद्धों में एक हाथ, एक पैर तथा एक आंख पहले ही गंवा चुके हैं। अब उनके भग्न शरीर में एक प्राण ही तो रह गये हैं, किंतु बाबर को पराजित करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कदाचित उनके प्राण लेकर ही रहेगी।'

पन्ना बोली, 'हाड़ी रानी, ऐसी बातें सोचकर दिल को दुखी मत करो। एक पराजय क्या होती है ?'

महाराणी ने कोई उत्तर नहीं दिया। एक दासी भागती हुई आयी। वह उनके निकट पहुंचने से पूर्व ही भूमि पर गिर पड़ी। पन्ना ने महाराणी की ओर तथा उन्होंने उसकी ओर देखा। पन्ना बोली :

'धन्नो, क्या बात है ?'

धन्नो रोते हुए बोली, 'अनर्थ हो गया, महाराणा नहीं रहे !'

महाराणी कर्मवती ने अपने घुटनों पर दोनों कलाइयां मारीं। उनकी सारी चूड़ियां खनखनाती हुई टूट गयीं। वे चौकी से लुढ़ककर पन्ना की गोद में गिर गयीं। दोनों दासियों ने उनको होश में लाने की चेष्टाएं कीं। महल में चारों ओर विलाप होने लगा। अनेक महिलाएं अब तक कर्मवती के कक्ष में आ चुकी थीं। होश में आने पर कर्मवती ने पूछा, 'क्या महाराणा रणक्षेत्र में खेत रहे ?'

एक दासी बोली, 'यही तो खेद की बात है। वे चंदेरी पहुंचे ही नहीं। कर्मचंद पंवार द्वारा दिये गये विष से उनकी काल्पी के पास ही मृत्यु हो गयी।'

कर्मवती विचार-मग्न हो गयीं। कर्मचंद पंवार उनकी सौत परमारी रानी का पिता था। वह अनेक युद्धों में महाराणा का साथ दे चुका था किंतु कुछ समय से

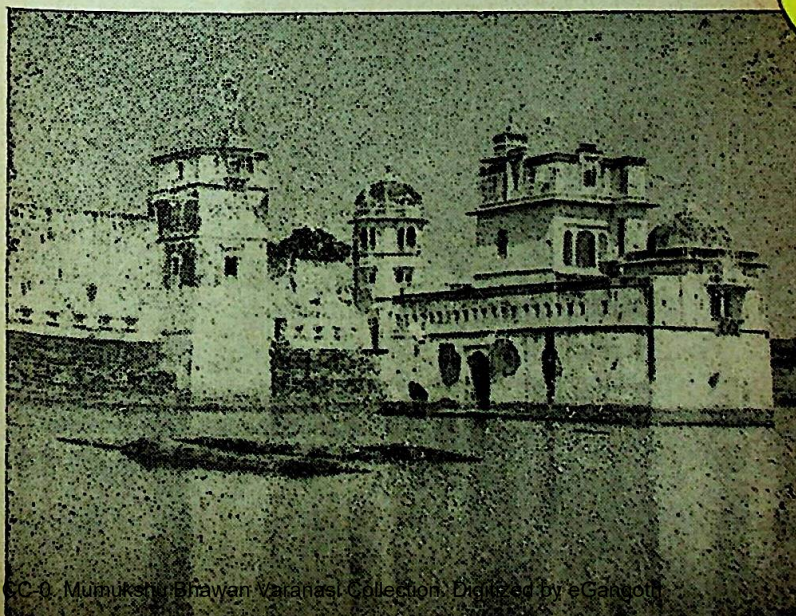

चित्तौड़ के किले में स्थित पद्मिनी का महल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह उनसे युद्ध का विचार त्यागने का अनुरोध कर रहा था ।

कर्मवती के अतिरिक्त महाराणा की अन्य पत्नियां चित्तौड़ में थीं । उनके दोनों पुत्र विक्रमादित्य तथा उदयसिंह उनके पास थे । रणथंभौर से प्रस्थान करने से पूर्व महाराणा ने वहां का किला तथा आस-पास के गांव विक्रमादित्य तथा उदयसिंह के नाम कर दिये थे तथा ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह को चित्तौड़ रवाना कर दिया था ।

मंदिर के घंटों की ध्वनि से सबका ध्यान टूटा । एक दासी ने कहा, 'राजमाता की आज्ञा हो तो तैयारी की जाये ।'

स्वयं के लिए राजमाता शब्द के प्रयोग किये जाने पर कर्मवती चौंकीं । उन्होंने पूछा, 'किसकी तैयारी ?'

'आपके सती होने की ।'

'करो' कहकर कर्मवती चुप हो गयीं । वे सिसक-सिसककर रो रही थीं । इतने में मीरा थाल में प्रसाद लेकर आयी । कमरे में घुसने पर उसको ज्ञात हुआ कि महाराणा नहीं रहे। वह दौड़कर कर्मवती से लिपट गयी और बोली, 'रानी मां, रानी मां, यह क्या हो गया ?'

कर्मवती ने मीरा के सिर पर हाथ फेरा तथा बोलीं, 'बेटी, मैंने जीवन भोग लिया । अब विधवा हो गयी । तू तो युवा होने से पूर्व ही विधवा हो गयी थी ? चल मेरा शृंगार कर । मैं सती होने जा रही हूं ।'

मीरा बोली, 'आपने उदयसिंह के सिर पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा की थी कि आप सती नहीं होंगी। क्या आप महाराणा को दिये गये अंतिम वचन को निभाना नहीं चाहतीं ?'

कर्मवती चौंक पड़ीं । पन्ना धाय तथा अन्य स्त्रियां भी चौंक पड़ीं । कर्मवती ने पूछा, 'मीरा, तुझे कैसे पता कि मैंने प्रतिज्ञा की थी ?'

मीरा बोली—'बापू के चंदेरी प्रस्थान से पूर्व जब आप उनकी आरती उतार रही थीं, मैं दरवाज़े की ओट में छिपी खड़ी थी । मैंने सब कुछ सुना था । मैं विधवा हूं न, रानी मां, इसलिए मैं उस समय सामने नहीं आयी ।'

कर्मवती को महाराणा के साथ व्यतीत किये अपने अंतिम क्षण याद आ रहे थे । वे सदैव घोड़े पर सवार होकर युद्ध के लिए जाते थे । इस बार वे ज़ख्मी थे, अतः पालकी में गये थे । उसने उनकी आरती उतारी थी । उन्होंने नन्हे उदयसिंह के सिर पर हाथ रखवाकर उससे प्रतिज्ञा करवायी थी कि वह उनकी मृत्यु के बाद सती नहीं होगी, वरन् अपने बालकों तथा मेवाड़ की रक्षा करेगी । कर्मवती दुविधा में थी । सती नहीं होना संस्कारों तथा परंपरा के विरुद्ध था । सती होने का परिणाम प्रतिज्ञा से विचलित होना तथा मेवाड़ को अरक्षित छोड़ना था । महाराणा का उत्तराधिकारी रतनसिंह पूर्णतया अयोग्य था । वह वीर तो था,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किंतु अत्यधिक जिद्दी तथा उतावला था। कर्मवती ने सती होने की घोषणा तो कर दी थी किंतु उसको अपने पुत्रों की चिंता थी।

कर्मवती चुप बैठी थी। इतने में एक स्त्री भागती हुई आयी और कर्मवती से लिपट गयी।

'परमारी रानी, आप!'

'हां, करमेती। मैं तेरी वह कलमुंही सौत हूं जिसके बाप ने मेरा तथा तेरा सुहाग छीन लिया। जब मुझे मालूम पड़ा कि मेरे बापू महाराणा के विरुद्ध हैं, मैं तेज़ ऊंटनी पर काल्पी की ओर भागी, किंतु मैं कुछ भी नहीं कर सकी। मेरे पहुंचने से पूर्व ही बापू विष दे चुके थे। मृत्यु के समय महाराणा का सिर मेरी गोद में था। उन्होंने मुझको माफ कर दिया, किंतु इस शर्त पर कि तुझे सती होने से रोकूं। उनको संदेह था कि कहीं परंपरा तुझको प्रतिज्ञा से विचलित नहीं कर दे। महाराणा की मृत्यु होते ही मैं तेज़ ऊंटनी भगाती हुई यहां आयी हूं।'

दोनों सौतों ने एक-दूसरी की ओर आंसू भरी निगाहों से देखा तथा एक दूसरे से लिपट गयीं। इतने में राजपुरोहित ने आकर कहा, 'राजमाता, चिता तैयार है।'

कर्मवती की तंद्रा टूटी। वह खड़ी हो गयी। परमारी बोली, 'करमेती सती नहीं होगी।'

राजपुरोहित बोला—'क्या महाराणा की सबसे प्रिय महाराणी को जीवन का मोह सता रहा है? क्या सजी हुई चिता बिना जले रह जायेगी?'

परमारी बोली—'करमेती ने महाराणा के समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि वह सती नहीं होगी। क्या आप उसको परंपराओं की अग्नि में झोंकोगे? मैं पश्चाताप की अग्नि में जल रही हूं। मेरे पिता ने करमेती तथा मुझे विधवा बनाया है। आपकी चिता की अग्नि में मैं जलने को तत्पर हूं।'

समस्त स्त्रियां स्तब्ध रह गयीं। परमारी ने कर्मवती के लिए लाये गये समस्त कपड़े उठाये, बगल के कमरे में गयी तथा कुछ ही क्षणों बाद सुहागिन स्त्री के वस्त्रों को पहिनकर बाहर आ गयी। वह स्नेह से अपनी सौत कर्मवती से गले मिली तथा अपने एक पांच वर्षीय बालक को कर्मवती की गोद में बैठाकर सती हो गयी। सौतिया डाह की तो हज़ारों कहानियां हैं। एक सौत के जीवन को बचाने का यह अनूठा प्रयास था।

०००

कर्मवती चिता से बच गयी, किंतु चिंताओं से नहीं। उसके सम्मुख नित्य नयी समस्याएं उत्पन्न हो रही थीं। कभी-कभी वह दुखी होकर सोचती कि वह सती हो जाती तो उनसे बच जाती। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद उनका सबसे बड़ा पुत्र रतनसिंह चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा। कर्मवती चित्तौड़ नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

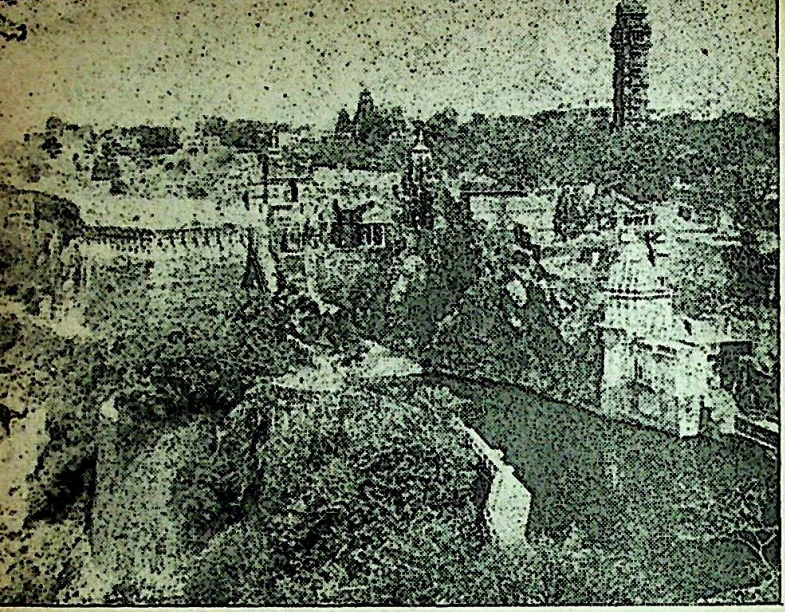

चित्तौड़ का किला

गयी । वह अपने पुत्र विक्रमादित्य तथा उदयसिंह के साथ रणथंभौर में ही रहने लगी । वहां का किला अजेय माना जाता था । रतनसिंह किले पर स्वयं अधिकार करना चाहता था । उसने अपनी विमाता कर्मवती से किला मांगा । उसने किला सौंपने से इंकार कर दिया, क्योंकि उसको भय था कि किले के निकल जाने पर उसके पुत्रों का जीवन संकट में पड़ जायेगा। रतनसिंह उद्दंड तथा अत्याचारी था । वह कुछ भी कर सकता था । कर्मवती के पिता तथा चाचा मर चुके थे । अब उसके चाचा का पुत्र सूरजमल बूंदी का शासक था । वह अपने पिता की भांति वीर था । कर्मवती उसकी सहायता से रणथंभौर पर अपने पुत्रों का शासन कायम रखना चाहती थी, किंतु सूरजमल की सगी बहिन रतनसिंह को व्याही थी । अतः सूरजमल ने विवाद में पड़ना उचित नहीं समझा । एक दिन बूंदी के निकट जंगल में रतनसिंह तथा सूरजमल सूअर का शिकार खेल रहे थे । रतनसिंह को भ्रम हो गया कि सूरजमल उसको मारना चाहता है । उसने उसी समय सूरजमल पर प्राणघातक आक्रमण किया किंतु मरने से पूर्व सूरजमल ने रतनसिंह को मार डाला ।

रतनसिंह की मृत्यु के बाद कर्मवती का पुत्र विक्रमादित्य चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा । वह नितांत अयोग्य निकला । वह सदैव नीच व्यक्तियों से घिरा रहता था। उसके आचरण से दुखी होकर मेवाड़ के अनेक सामंत चित्तौड़ छोड़कर अपनी जागीरों में जाकर रहने लगे। यह विक्रमादित्य वही नीच महाराणा था जिसने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी विधवा भाभी मीरा बाई को ज़हर का प्याला पीने के लिए बाध्य किया था।

विक्रमादित्य के आचरण से कर्मवती अत्यधिक दुखी थी। वह रतनसिंह के अनुचित कार्यों की कटु आलोचना करती रहती थी, क्योंकि वह उसकी सौत का पुत्र था। उसने अपने पुत्रों को रतनसिंह से सदैव श्रेष्ठ समझा था। अब उसका ही पुत्र महाराणा था किंतु मेवाड़ की जनता उससे अत्यधिक घृणा करती थी। असंतुष्ट व्यक्तियों में राजपरिवार के भी अनेक सदस्य थे। महाराणा सांगा के एक भतीजे नरसिंह देव ने गुजरात के शासक बहादुर शाह को चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए भड़काया।

बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। कर्मवती जानती थी कि मेवाड़ की सेना में गुजरात के आक्रमण को विफल करने की शक्ति नहीं है। खानुवा के युद्ध में हुई पराजय के बाद मेवाड़ राज्य का क्षेत्रफल अत्यधिक कम हो गया। बयाना, चंदेरी, रायसीन, गुजरात तथा मालवा के भाग जो कि सांगा ने अपने बाहुबल से जीते थे, दूसरों के अधिकार में थे। आमेर, सिरोही, जोधपुर, बीकानेर के राजा सांगा की मृत्य के बाद पूर्णतया स्वाधीन हो चुके थे। उनकी सहायता मिलने की संभावना नहीं थी। मेवाड़ के अनेक पराक्रमी योद्धा खानुवा के युद्ध में वीरगति को प्राप्त कर चुके थे। जो बचे थे वे साधनहीन हो गये थे।

कर्मवती ने मुगल बादशाह हुमायूं से सहायता मांगी। उसने हुमायूं को राखी भेजी। बादशाह हुमायूं ने उसके दूत का भव्य स्वागत किया। राजमाता के लिए उपहार भेजे तथा सेना को चित्तौड़ की

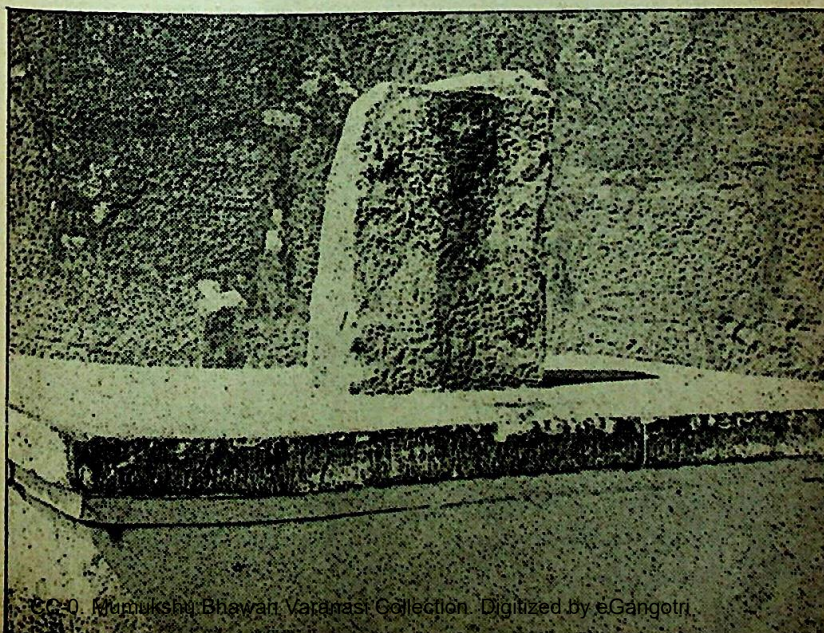

चित्तौड़ के किले का वह स्थान जहां बाघसिंह ने वीर गति प्राप्त की थी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओर कूच करने का आदेश दिया। ग्वालियर के निकट पहुंचकर उसका निश्चय बदल गया। चित्तौड़ की ओर बढ़ने के स्थान पर वह आगरा जाकर रुक गया।

कर्मवती को हुमायूं के व्यवहार पर अत्यधिक दुख हुआ। उसको मुगलों से सहायता मिलने का पूरा विश्वास था। हुमायूं ने राजनैतिक अपरिपक्वता का ही परिचय नहीं दिया बल्कि उसकी राखी का भी अपमान कर दिया। मेवाड़ के सामंतों को कर्मवती का उपहास करने का अवसर मिल गया।

गुजराती सेना चित्तौड़ के चारों ओर पड़ी थी। उसके पास पुर्तगालियों से खरीदी हुई अनेक तोपें थी जिनकी गोलाबारी से किले की दीवारें अनेक स्थानों पर टूटने लगीं। चित्तौड़ के किले में तोपें नहीं थीं। उस समय भारत में तोपें मुगल बादशाह तथा गुजरात के सुल्तान के अतिरिक्त किसी के पास नहीं थीं। कर्मवती जानती थी कि तीर तथा तलवारों से तोपों का मुकाबला नहीं किया जा सकता। अतः उसने गुजरात के सुल्तान को भेंट में धन, हाथी, घोड़े दिये। महाराणा सांगा ने मालवा के सुल्तान को पराजित कर उसका बहुमूल्य रत्न-जड़ित मुकुट तथा कमरपेटी रख ली थी। उन बहुमूल्य वस्तुओं को भी गुजरात के सुल्तान के मांगने पर उसको मजबूर होकर देना पड़ा।

गुजराती सेनाओं के पलायन के बाद कर्मवती ने चैन की सांस ली। किंतु यह चैन क्षणिक ही सिद्ध हुआ।

गुजरात का सुल्तान बहादुर शाह साम्राज्यवादी तथा आला दर्जे का कृतघ्न व्यक्ति था। अपने भाई सिकंदर के अत्याचारों से दुखी होकर उसने चित्तौड़ में शरण ली थी। किंतु वह महाराणा सांगा के उपकार को विमुख कर चुका था। मेवाड़ के साथ संधि हुए दो वर्ष भी नहीं व्यतीत हुए थे कि उसने पुनः आक्रमण कर दिया।

कर्मवती ने अपने पुत्र महाराणा विक्रमादित्य तथा उदयसिंह को युद्ध के प्रारंभ होने से पूर्व ही बूंदी भेज दिया तथा मेवाड़ के सामंतों से चित्तौड़ की रक्षा करने का अनुरोध किया।

राजमाता के अनुरोध का वांछित प्रभाव हुआ। महाराणा सांगा की युद्धप्रियता के कारण मेवाड़ के अनेक योद्धा पहले ही वीरगति प्राप्त कर चुके थे किंतु परम्पराएं जीवित थीं। जब सामंतों तथा सैनिकों ने सुना कि मातृभूमि को उनकी आवश्यकता है, तब वे अपने नन्हे बालकों, तरुण पत्नियों से विदा लेकर चित्तौड़ की ओर भागे।

देलवाड़ा का राजा राणा सज्जा, सलूंबर का रावत दूदा, सादड़ी का रावत सिंघा तथा देवलिया का बाघ सिंह अपनी-अपनी सेनाओं के साथ चित्तौड़ पहुंच गये। कर्मवती का छोटा भाई अर्जुनसिंह हाड़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थी एक हज़ार सैनिकों के साथ चित्तौड़ आ गया।

देवलिया का वाघ सिंह महाराणा सांगा के चाचा का पुत्र था। विक्रमादित्य के अपमानजनक व्यवहार से खिन्न होकर उसने मालवा के सुल्तान की नौकरी कर ली थी। मेवाड़ पर आक्रमण की सूचना मिलते ही वह मालवा से चित्तौड़ आ गया था। वह एक अनुभवी सेनापति तथा महाराणा सांगा की अधीनता में अनेक युद्ध लड़ चुका था। महाराणा का निकटतम संबंधी होने के कारण सर्वसम्मति से उसको चित्तौड़ की रक्षा का भार सौंपा गया तथा युद्ध की अवधि के लिए उसको महाराणा बनाया गया।

उसी समय मुगल बादशाह हुमायूं के चचाजात भाई मुहम्मद जामन मिर्जा ने विद्रोह कर गुजरात के सुल्तान के पास शरण ली। विद्रोही मिर्जा तथा उसके आश्रयदाता को दंडित करने हेतु हुमायूं एक बड़ी सेना लेकर गुजरात की ओर बढ़ा। गुजरात का सुल्तान चित्तौड़गढ़ को घेरे हुए पड़ा था। हुमायूं की स्थिति बहुत अच्छी थी। यदि वह गुजरात पहुंच जाता तो समस्त प्रदेश पर उसका सुगमता से अधिकार हो जाता। यदि वह चित्तौड़ पहुंच जाता तो गुजरात के सुल्तान को मजबूर होकर चित्तौड़ का घेरा उठाना पड़ता तथा मेवाड़ सदैव के लिए मुगलों का कृतज्ञ हो जाता। किंतु हुमायूं न तो योग्य नायक था न दूरदर्शी शासक। उसकी बुद्धिहीनता का बहादुर शाह ने पूरा फायदा उठाया। उसने बादशाह को सन्देश भेजा :

'मैं हिंदुओं के ख़िलाफ जेहाद (धर्म-युद्ध) कर रहा हूं। आप मुझको जेहाद के शबाब को हासिल करने का मौका दें।'

आलसी बादशाह को क्या चाहिये था। इस संदेश के मिलने पर वह सारंगपुर में ही रुक गया।

हुमायूं के सारंगपुर में रुक जाने की सूचना मिलते ही गुजरात के सुल्तान ने चित्तौड़ पर दुगने जोश से गोलाबारी प्रारंभ कर दी।

कर्मवती को विश्वास था कि इस बार हुमायूं अवश्य ही चित्तौड़ आयेगा। गुजरात के सुल्तान को पराजित करने का यह स्वर्ण अवसर था। किंतु हुमायूं में अवसरों का लाभ उठाने की शक्ति नहीं थी। उसकी निष्क्रियता से रानी अत्यधिक दुखी हो गयी।

०००

७ मार्च सन १५३५ की शाम। कर्मवती अपने कमरे में एकांत में बैठी थी। गुजराती सेना ने दो माह से किला घेर रखा था। शत्रु का तोपखाना किले की दक्षिण-पश्चिमी दीवार के सामने की पहाड़ी पर था। दीवार के उस भाग पर पंद्रह दिनों से निरंतर गोलाबारी हो रही थी। कर्मवती को आज अपने पति की अत्यधिक याद आ रही थी। उनके जीवन काल में वह निर्भय रही। उन्होंने दिल्ली,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मालवा तथा गुजरात के सुल्तानों को अठारह युद्धों में पराजित किया था। उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि महाराणा की मृत्यु के बाद मेवाड़ की राजधानी को भी शत्रु से बचाना कठिन हो जायेगा। यदि महाराणा ने भी मुगलों तथा गुजरातियों का अनुसरण कर कुछ तोपें खरीद ली होतीं तो चित्तौड़ की रक्षा कितनी आसानी से हो जाती। शत्रु की तोपों की आवाज़ से वह आतंकित हो रही थी। उसको किले की दीवारों के किसी भी समय टूटने का भय था।

इतने में एक बहुत ज़ोर का धमाका तथा दीवार के गिरने की आवाज़ हुई। बाहर आने पर कर्मवती को ज्ञात हुआ कि किले की दक्षिण-पश्चिमी दीवार टूट गयी है। वह उस ओर गयी। टूटी हुई दीवार के मार्ग से गुजराती सैनिक अंदर घुसने का प्रयास कर रहे थे। कर्मवती का भाई अर्जुन तथा उसके सैनिक उनको रोक रहे थे? उसको देखकर अर्जुन पास आया तथा बोला :

'बहिन, मुझे आशीर्वाद दो, मैं जीवन का अंतिम युद्ध लड़ने जा रहा हूं।'

कर्मवती ने कहा, 'तुम इस स्थान से हट क्यों नहीं जाते। व्यर्थ में जान गंवाने से क्या लाभ?'

तरुण हाड़ा युवक को जान से अधिक आन प्रिय थी।

'हटकर हाड़ाओं का नाम कलंकित नहीं करूंगा।' अर्जुन बोला। कर्मवती के

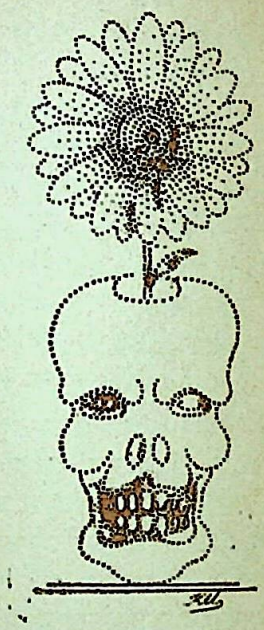

कुछ कहने से पूर्व वह घोड़ा दौड़ाता हुआ अपने सैनिकों में घुस गया।

तोपों ने पुनः आग उगलना प्रारंभ कर दिया। सैनिक गिरते जा रहे थे किंतु गिरते हुए सैनिकों के स्थान पर उनके साथी तत्काल आ जाते। इतने में एक ज़ोर का धमाका हुआ तथा सैकड़ों सैनिक हवा में उछल गये। चारों ओर धुआं छा गयी। धुआं साफ होते ही एक सैनिक भागता हुआ आया तथा बोला,

'राजमाता, अर्जुन ने वीरगति प्राप्त कर ली।'

कर्मवती की आंखों में आंसू आ गये। ओढ़नी के छोर से आंसू पोंछते हुए वह बोली, 'अर्जुन ने हाड़ाओं का नाम लज्जित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं किया।'

रात्रि को महल के दरीखाने में प्रमुख सामंतों की बैठक हुई। बाघसिंह महाराणा के सिंहासन पर विराजमान था। अधिकांश सामंतों का मत था कि किला किसी भी समय टूट सकता है। राजमाता कर्मवती भी उपस्थित थी। उसने कहा :

'इतनी जानें व्यर्थ गंवाने से क्या फायदा! हमको संधि कर लेनी चाहिये।'

कर्मवती के कुछ और भी कहने से पूर्व बाघसिंह बोल पड़ा—'हम आन के लिए जान देने आये हैं। हम मरने आये हैं, गर्दन झुकाने नहीं। संधि कायर करते हैं, जिनको मृत्यु का भय होता है। हमको मृत्यु का भय नहीं है।'

राज राणा सज्जा ने कहा :

'महाराणा का कथन सही है। हमने दो वर्ष पूर्व ही बहादुरशाह से संधि की थी। हमने उसको मुंहमांगा धन तथा अपने राज्य का भाग दिया। किंतु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। पता नहीं इस बार वह क्या मांगे? शायद मेवाड़ की किसी राजकन्या को मांग बैठे।'

दरीखाने में सन्नाटा छा गया। दो माह के निरंतर युद्ध से थके हुए योद्धाओं के चेहरों पर तनाव था। राज राणा सज्जा की बात सुनकर अनेक योद्धाओं की भृकुटियां तन गयीं। कर्मवती युद्धविराम चाहती थी। किंतु उनमें से कोई भी उसकी बात मानने को तैयार नहीं था। उसने अंतिम प्रयास करते हुए कहा—

'क्या कुछ समय के लिए भी युद्ध को टाला नहीं जा सकता। संभव है कुछ दिनों में बादशाह हुमायूं गुजरात पर आक्रमण कर दें।'

'राजमाता को अब भी उस बुद्धिहीन बादशाह के निकट भविष्य में बुद्धिमान बन जाने की आशा है।'

कर्मवती के पास कोई उत्तर नहीं था। वह चुप हो गयी। दरीखाने में बैठे पचास युद्ध-पिपासु तथा आन पर मरने को तत्पर योद्धा किले के पास हज़ार व्यक्तियों के भाग्य-विधाता थे। उनमें से अधिकांश किले से बाहर निकलकर शत्रु से निर्णायक युद्ध करने को उत्सुक थे। इस प्रकार के युद्ध का परिणाम मेवाड़ का सर्वनाश था!

बाघसिंह ने नीरवता भंग करते हुए कहा—'कल हम केसरिया पहनकर किले के बाहर निकलकर लड़ेंगे। आन के लिए प्राण देने ही होंगे।'

कर्मवती महल की ओर चल दी। उसको चारों ओर अंधकार दिखाई दे रहा था। वह सोच रही थी कि क्या उसके सात वर्षों के समस्त प्रयासों का यही परिणाम निकलना था। उसको जीवन से मोह नहीं था। किंतु वह निरर्थक रक्तपात से मेवाड़ को बचाना चाहती थी। किंतु युद्ध-लोलुप सामंतों ने उसकी बात नहीं मानी। वे शत्रु से संधि करना अपमान समझते थे।

उनको जान से कहीं अधिक आन प्यारी थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्मवती की समझ में नहीं आ रहा था कि किले की स्त्रियों को कैसे बताये कि उनको कल जौहर की ज्वाला में भस्म होना है। किंतु उसके पहुंचने से पूर्व ही उनको पता चल गया था कि यह उनके जीवन की अंतिम रात्रि है। वह अपने कमरे में जाकर चौकी पर बैठ गयी। वह अपनी असफलता को छिपाने में असफल रही। वह बोली—

'मैं हार गयी, मैं हार गयी।'

उसकी एक पुत्रवधू ने कहा—

'राजमाता, आपकी हार नारी जाति की जीत है। यदि आप इतना संघर्ष नहीं करतीं तब हम न जाने कब की मर गयी होतीं। अब हमारी मृत्यु हमको सदैव के लिए अमर कर देगी।'

किले में रात्रि भर हलचल रही। विवाहित स्त्रियों ने अपने विवाह के अवसर पर पहने गये कपड़ों को निकाला। माताओं ने अबोध शिशुओं को स्नेह से स्तन पान कराया। बड़े बालकों तथा बालिकाओं को प्यार किया। पुरुषों ने अपनी पत्नियों से भाव भीनी विदा ली और अपने अस्त्रों-शस्त्रों को संभालने में लग गये। किले का प्रत्येक प्राणी जानता था कि यह उसके जीवन की अंतिम रात्रि है। कुछ घंटे पहले प्रत्येक व्यक्ति जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहा था। अब प्रत्येक मृत्यु को आलिंगन करने को आतुर था। शाका तथा जौहर का निर्णय पचास योद्धाओं ने लिया था किंतु अब प्रत्येक व्यक्ति उस निर्णय को क्रियान्वित करने को उत्सुक था। पचास योद्धाओं के निर्देश पर पचास हज़ार नर-नारी अपने जीवन की आहुति देने को तैयार हो गये थे। अनुशासन का इससे अच्छा उदाहरण कहां मिलेगा! सवा दो सौ वर्ष पूर्व अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय का इतिहास दुहराया जा रहा था। उस समय भी स्त्रियों ने जौहर तथा पुरुषों ने शाका किया था।

ooo

प्रातः सूर्य की प्रथम किरणों के निकलने से पूर्व किले के मंदिर से सामूहिक चिता की ओर जाने वाली मेवाड़ की ललनाओं की कतार लग गयी। कुछ की गोदों में अबोध शिशु थे। कुछ अपने अल्प वयस्क पुत्र तथा पुत्रियों की उंगलियां पकड़े थीं। घंटे-घड़ियालों की ध्वनियां तथा मंत्रोचार होने लगे। उस सामूहिक चिता पर सबसे पहले राजमाता कर्मवती चढ़ी। जिस नारी ने जीवन भर परंपराओं की उपेक्षा की आज वही परंपरा की चिता पर जीवन की आहुति दे रही थी।

उसी समय किले के दूसरे भाग में मेवाड़ के सामंत तथा सैनिक एकत्रित हो रहे थे। उनकी आंखों में अफीम की लाली तथा हृदय में शत्रु को मारकर मर जाने का दृढ़ संकल्प था। किसी के चेहरे पर भय नहीं था। प्रत्येक ने सिर पर तुलसीदल रखकर पगड़ी बांधी तथा अपने इष्ट देवता की पूजा की। इन तीस हज़ार सैनिकों का नेता बाघसिंह था। रणभेरियां बजने लगीं। योद्धाओं ने एक बार सामू-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिक चिता की ओर देखा जिसकी ज्वाला में उनकी माताएं, पत्नियां, पुत्रियां तथा शिशु गिरते जा रहे थे और सिंहनाद करने के बाद किले का मुख्य द्वार खोलकर शत्रु का संहार करने चल दिये ।

सात घंटों तक भयंकर नर-संहार चलता रहा। मेवाड़ के योद्धाओं ने हज़ारों शत्रुओं को समाप्त कर दिया किंतु वे तीरों तथा तलवारों से तोपों का अधिक समय तक मुकाबला नहीं कर सके । मेवाड़ के प्रमुख योद्धा एक के बाद एक वीरगति को प्राप्त कर रहे थे । बाघसिंह अंतिम समय तक लड़ता हुआ मारा गया ।

जिस समय गुजराती सेना २५००० राजपूतों को मारकर किले के अंदर घुसी उस समय तक मेवाड़ की १३००० स्त्रियां जौहर की ज्वाला में भस्म हो चुकी थीं । किले में घुसने के बाद गुजराती सेना ने किसी को अभयदान नहीं दिया । सबको कत्ल कर दिया ।

बहादुरशाह चित्तौड़ में एक सप्ताह भी नहीं रह पाया था कि बादशाह हुमायूं उस पर आक्रमण करने हेतु मंदसौर पहुंच गया । बहादुरशाह ने भागकर मांडू के किले में शरण ली । जब हुमायूं ने मांडू को घेरा, वह चंपानेर भाग गया । हुमायूं के चंपानेर पहुंचने पर बहादुरशाह पुर्तगालियों के टापू दीव पहुंच गया जहां उसको पुर्तगालियों ने धोखे से सागर में डुबो दिया ।

बहादुरशाह के चित्तौड़ से भागते ही कर्मवती के पुत्र विक्रमादित्य ने बूंदी से आकर चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया । वह दो वर्षों में ही अपने स्वजनों द्वारा मारा गया । उसकी मृत्यु के कुछ समय बाद कर्मवती का दूसरा पुत्र उदयसिंह गद्दी पर बैठा जो कि महाराणा प्रताप का पिता था । यदि कर्मवती अपने पुत्रों को बूंदी नहीं भेजती तो शायद महाराणा प्रताप की गौरव गाथाएं नहीं लिखी जातीं । कर्मवती का अनुमान कि गुजरातियों का अंत मुगलों द्वारा होगा, सही निकला, किंतु तब तक आन पर मरने को उत्सुक योद्धा पचास हज़ार व्यक्तियों की आहुति दे चुके थे । —ए ८८, जनता कालोनी,

घाट गेट, जयपुर-४ (राजस्थान)

(पृष्ठ ११५ का शेषांश)

इसीलिए आज दुनिया भले ही आदमी से दुश्मनी मोल ले, ईश्वर से दुश्मनी मोल ले; पर उसमें यह हिम्मत कभी भी नहीं होगी कि वह पैसे से बैर मोल ले सके । क्योंकि उसे यह भरोसा हो गया है कि पैसे की पूजा से ही सब कुछ हम पा सकते हैं । आज सर्वत्र पैसे की जय-जयकार है ।

यह सब देखकर पैसे ने पुनः ठहाका मारते हुए कहा—'आखिर मैं ही जीता !'

मानव व ईश्वर ने भी शर्मिंदा होकर कहा—'ठीक है, भई ! आखिर पैसा ही जीता !' —५६५ दक्षिण कस्बा, सोलापुर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ११९ का शेषांश)

को चेचक निकल आयी। खेत का दाम तय करना ज़रूरी था इसलिये अपने पति को ही सब रुपये सौंपकर वह मजबूरन रुक गयी।

पंद्रह दिन बीत गये। फूलतुली बहुत बेचैन हो गयी। माली नहीं लौटा, न ही उसकी कोई खबर मिली। हारकर वह स्वयं गांव चली गयी। काम के भीषण बोझ और फूलतुली के जल्दी नहीं लौटने पर मैं उसे रोज़ गाली देती। दस दिन बाद जिनके सर्वेंट क्वार्टर में वह रह रही थी उनसे पता चला, चार दिन हुए वह लौट आयी है, पर तेज़ बुखार के कारण काम पर नहीं निकल सकी। उनसे ही पता चला उसके माली ने बाप और छोटे भाई के साथ मिलकर ज़मीन-हल-बैल सब बेच दिये हैं। उन्हीं पैसों से भाई के लिए बहू खरीदकर शादी की धूमधाम में पैसे उड़ाता रहा। यही नहीं उसके जमा किये पैसे भी उन्होंने आपस में बांट लिये हैं। फूलतुली के झगड़ा करने पर उसकी सारी चूड़ी माली ने मार-मारकर तोड़ दी थीं और कहा था—

'जा भाग रांडी हे ई करि बुलू था, हांड़ी कुकुर बागिर तोर देहे टिके शिकार नहीं, मू हेन्ता माइझी नहीं रक्खें, दूसरा बियाह करभी' (जा भाग विधवा होकर घूम, तू हड्डी भरे कुत्ते-सी बिना मांस की स्त्री है, मैं तुझे नहीं रक्खूंगा। दूसरी शादी करूंगा) गांव से लौटकर ज्वर में पड़ी फूलतुली को देखने मैं दस दिन बाद गयी। देखकर सहम गयी। भयावह चेहरे, ठूंठ से हाथ-पांव, भावना विहीन किसी और लोक को देखती आंखें जैसे मुझे पहचान न सकीं। मेरे पुकारने पर स्मृति अवचेतन से धीरे-धीरे उठ आयी। पूछने पर पता चला डाक्टर उसे अस्पताल में भरती होने को कह रहे हैं। शायद पैरा-टाइफाइड हो . . . दो सौ रुपये लगेंगे. . .

मेरा मन अनिश्चय से भर उठा। दया से हृदय छटपटाने लगा, पर दो सौ रुपयों की अधिकता का विचार असमर्थता को धक्का देकर हृदय के खुलते द्वारों को मूंद सांसों को भीतर ही घोंटने लगा। अंत में जहां-जहां वह काम करती थी उन सबसे पैसा एकत्र करके उसे अस्पताल ले जाने का प्रयत्न मैं करने लगी। रुपये बहुत कम मिले। मैं पचास रुपये तक दे सकती थी पर बाकी के लिए क्या करूं, परेशान होकर अपने पति से मैंने पूछा—सदा की तरह घर फूंक कबीर वाली प्रवृत्ति से उन्होंने कह दिया—'क्यों मेरे कोट की सिलाई के लिए दो सौ रुपये रक्खे हैं उसे देकर भर्ती करवा दो, किसी की ज़िंदगी से बढ़कर मेरा कोट थोड़े ही है!'

एक तो अपनी असमर्थता पर मैं चिढ़ी थी। दूसरे उनके इस निर्लिप्त उपदेश से मुझे आग लग गयी। जी भरकर उनसे लड़कर हमेशा की तरह मैं रोने लगी। पांच साल सोचने के बाद कोट का कपड़ा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खरीदा जा सका था। दो साल से सिलाई टालती हुई इस साल दो सौ रुपये अलग निकाल सकी थी। उसको इस तरह खर्च करना मुझे बिल्कुल असंभव लगा।

एक हफ्ते बाद फूलतुली की हालत देखकर मैं सौ रुपये देने को तैयार हुई। पचास अब भी कम पड़ रहे थे। उस दिन मिसेज़ मिश्रा स्वयं आकर सौ रुपये दे गयीं। संकोचवश, पुत्र की टीचर होने के कारण मैं उनके घर रुपये मांगने नहीं जा सकी थी। शाम को डाक्टर दास उसको भरती करवाने को तैयार हुए। मैं उसके घर गयी।

माली लौट आया था। उसके पास लोगों की भीड़ ऐसी थी जैसे बीमार मरते जानवर को घेरकर दूसरे मूक पशु खड़े हो जाते हैं। मुझे देखकर वह श्रीहीन मुख से पुकारती, अपने दोनों लड़कों को, पढ़ा-लिखाकर मनुष्य बना देने की रुदन भरी प्रार्थना से सौंपने लगी। मैं चौंककर दो कदम पीछे हट गयी। मृत्यु शैया पर पड़ी नारी को जिम्मेदारी का इतना बड़ा वचन मैं कैसे दे सकती थी। मैं उसके लड़कों का बोझ नहीं उठा सकती थी, फिर झूठा वचन देकर, यदि वह मर गयी तो उसकी भटकती आत्मा को मैं क्या उत्तर दूंगी?

भय से मैं जड़वत् हो गयी। तभी भीड़ को चीरती शिक्षक की गरिमा से साहसभरी मिसेज़ मिश्रा ने उसके बच्चों का हाथ थाम लिया। लज्जित-सी मैं इतना ही कह सकी, 'तुम अच्छी हो जाओगी, फूलतुली।'

एंबुलेंस में चढ़ने के पूर्व विपन्न दृष्टि से उसने अपने घर की ओर देखा। अपने प्रिय घर को सदा के लिए छोड़ने के पूर्व मानों हृदय के ताले में प्राणों की चाभी लगाकर कोई धीरे-धीरे द्वार बंद कर रहा हो।

एंबुलेंस में लेटने के बाद अचानक वह माली का सहारा लेकर उठ बैठी। उसके प्रकंपित हाथ माथे तक जाकर जुहार (प्रणाम) की मुद्रा में हम लोगों की ओर जुड़ गये।

पग-पग पर छली गयी टूटे शरीर और टूटे मन वाली इस नारी के मन में संपूर्ण स्त्री जाति की करुणा के प्रति जो आस्था थी उसको मेरे बनिये के बही खाते जैसे कठोर मन ने छला था। उसकी स्थिति जानते हुए भी पैसों के लोभ के कारण मैं उसे शीघ्र अस्पताल भरती नहीं करवा सकी थी।

उसकी प्रणाम भरी दृष्टि की ओर मैं देख नहीं सकी। पीड़ा से छटपटाता रोता शिशु अवश हाथ उठाकर जिस तरह मां को पुकारने लगता है, उसी तरह मेरी संपूर्ण आत्मा, पश्चाताप से हाहाकार करती ऊर्ध्वगामी होकर करुणामय अनंत प्रभु को पुकार उठी—'मेरी भूल की सज़ा इसे न देना, हे दयामय . . .'

—बी—३४, सेक्टर—१९,
राउरकेला—७६९००५

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजर्षि टंडन शताब्दी-वर्ष के अवसर पर :

राष्ट्र और राष्ट्रभाषा की प्रतिमूर्ति : राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन

किशोरीरमण टंडन

'कुछ समय हुआ आपने मेरा फोटो मांगा था। मुझे खेद है कि मैं नहीं भेज सका। मैं अपनी फोटो अपने पास नहीं रखा करता। घर में तो सभी मेरे शरीर को देखते ही हैं, फोटो की क्या आवश्यकता है, और स्नेही मित्रों को भी फोटो की क्या आवश्यकता पड़नी चाहिये। मुझे तो संतोष इसी में होगा कि उनके हृदय में बसूं, जिससे वे कह सकें—

दिल के आईने में है तस्वीरे-यार,
जब ज़रा गर्दन झुकायी देख ली।

इसलिए बाह्य तस्वीर की तो फिर कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती।'

यह पत्र था स्वर्गीय राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन का, जिसे उन्होंने आषाढ़ ५, संवत १९८६ को लाहौर से पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा था। इस पत्र से पत्र-लेखक की जीवन निष्ठा की झांकी की प्रतीति मिलती है, और इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रद्धय टंडनजी-बाह्य और आंतरिक—हर रूप में, इस पत्र की भावना के अनुरूप थे। भारतीय संस्कृति ने जिन उच्चादर्शों को आत्मसात् करके अनादिकाल से जगत का उद्बोधन किया, वे सब उनमें मूर्तिमान थे।

इसी प्रसंग में उन्होंने एक बार कहा था, 'मैं चाहता हूं कि मेरे पास एक पैसा भी न बचे और मेरे क़फ़न का प्रबंध जनता के चंदे से हो, तो मेरी आत्मा को विशेष शांति मिलेगी।' ऐसे निस्पृह, त्यागी और वीतराग थे वे।

सत्य, अहिंसा, प्रेम, नैतिकता और ईमानदारी पर बल देने वाले नेता तो बहुत हो गये हैं और आज भी हैं, किंतु राजर्षि टंडन की तरह बिरले ही नेता हुए हैं, जिन्होंने अपने जीवन में उन सिद्धांतों का कठोरता के साथ पालन किया हो।

टंडनजी का जीवन एक तपस्वी का जीवन था। राजर्षि की अपेक्षा उन्हें संत कहा जाये, तो ज़्यादा उपयुक्त होगा। भोजन वे ऐसा करते थे जो हमारे निर्धन देश के किसी भी किसान या मज़दूर को मिल सकता था। दूध, दही, घी, मिष्टान्न, चीनी, नमक आदि उन्होंने छोड़ रखे थे। युवावस्था से ही खादी अपना ली थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने कपड़े खुद धो लेते थे। चमड़े का बना जूता तो तभी छोड़ दिया था, जब वे हाईकोर्ट में वकालत करते थे। साबुन का उपयोग कभी किया ही नहीं। फिर भी परसेवा-परायणता ऐसी कि अस्सी-अस्सी मेहमान आ गये हैं और उनके लिए खाने-पीने का प्रबंध हो रहा है।

देशभक्त ऐसे कि वकालत छोड़ दी, नाभा राज्य का दीवान पद त्याग दिया, पंजाब नेशनल बैंक की मैनेजरी से अवकाश ले लिया और आजीवन सेवाव्रत अपना लिया। जेल गये। आर्थिक परिस्थिति असह्य हो उठी। बच्चों की फीस देने की सामर्थ्य नहीं रही, तो उन्हें स्कूल से उठा लिया। एक मित्र ने उन्हें आर्थिक सहायता देनी चाही, इस पर टंडनजी का उत्तर था कि 'मदद देने की इच्छा करना मेरा अपमान है। मैं देशसेवा का व्रत मलिन करना नहीं चाहता। समस्त परिवार का नाश भले हो जाये, फिर भी मैं लोकसेवा के विक्रय के लिए तैयार नहीं हूं।'

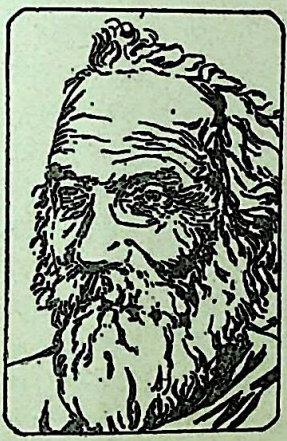

राजर्षि टंडनजी

१९२६ में वे लाला लाजपतराय के आग्रह से सर्वेंट्स आफ पीपुल्स सोसायटी में शामिल हो गये। १९३७ में सात प्रांतों में कांग्रेस ने मंत्रिमंडल बनाया। टंडनजी उत्तरप्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष चुने गये। उस समय उन्होंने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा था कि 'कांग्रेस का सदस्य होते हुए भी अध्यक्षपद पर निष्पक्ष होकर काम करूंगा और यदि अल्पमत के एक भी सदस्य ने मेरे प्रति अविश्वास जाहिर किया तो मैं अपनी कुर्सी छोड़ दूंगा।' उनकी निष्पक्षता, उनका निर्णय और उनके द्वारा स्थापित परंपराएं हमारी आनेवाली पीढ़ियों के लिए आदर्श रहेंगी। उनके सर्वोच्च त्याग तथा उच्च सिद्धांतों के कारण ही उनके प्रियजनों ने उन्हें 'राजर्षि' की उपाधि से विभूषित किया। देश के प्रति उनकी सेवाओं को मान्यता देने के लिए १९६१ में सर्वोच्च अलंकरण 'भारतरत्न' उन्हें भारत सरकार की ओर से प्रदान किया गया, लेकिन टंडनजी जैसे थे वैसे ही रहे—निरहंकार, निर्लिप्त।

टंडनजी दो बार उत्तरप्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की कार्यसमिति के कई वर्षों तक सदस्य रहे। उनका राजनीतिक जीवन उस समय पराकाष्ठा को पहुंचा जब १९५० में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के अध्यक्ष चुने गये। यह कार्यकाल नेहरूजी से उनके तीव्र मतभेदों का समय रहा। बहुत से संगठनात्मक एवं नीति संबंधी मामलों—जैसे कार्यसमिति का गठन, पाकिस्तान के प्रति भारत सरकार का रुख और समूचे देश में सरकारी भाषा के रूप में हिंदी को अविलंब मान्यता देने आदि ऐसे विषय थे जिन पर नेहरूजी से उनकी पटी नहीं और उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। फिर भी उन्होंने अपने मन में किसी के प्रति ज़रा भी कटुता अंकुरित नहीं होने दी।

जिस किसी भी बात को टंडनजी ने देश के हित के लिए उचित और नैतिक समझा और माना, उसके साथ कभी उन्होने बड़े से बड़े आदमी के साथ किसी भी कीमत पर समझौता नहीं किया। देश के विभाजन को उन्होंने एक बहुत बड़ी राजनीतिक ग़लती माना। कांग्रेस द्वारा भारत के विभाजन का प्रस्ताव पारित होने से चार-पांच दिन पहले उन्होंने गांधीजी के सामने विभाजन के विरुद्ध अपना विरोध ज़ोरदार शब्दों में प्रकट किया था। गांधीजी ने उनसे अपनी सहमति प्रकट करते हुए भी अपनी असमर्थता ज़ाहिर की थी। इस विभाजन को टंडनजी कांग्रेस की उच्च सत्ता का दब्बूपन मानते थे। उनकी मान्यता थी कि कांग्रेस की तुष्टीकरण की नीति ही सांप्रदायिकता के विषवृक्ष के पनपने का कारण है।

हिंदी भाषा और आदर्शवादी राजनीति के संबंध में टंडनजी का जो महत्वपूर्ण योग रहा, वह चिरस्मरणीय रहेगा। वे सही अर्थों में दूरद्रष्टा थे। देश के अधिकांश नेताओं को जहां सिर्फ मुल्क की आज़ादी की चिंता थी, वहां टंडनजी उससे आगे राष्ट्रभाषा और संस्कृति के उद्धार की चिंता में डूबे रहे। उनका सदैव कहना था कि जो देश अपने स्वतंत्र स्वरूप को विकसित करने में असमर्थ रहता है उसकी राजनीतिक आज़ादी प्रायः अधूरी रहती है। राष्ट्र के स्वतंत्र व्यक्तित्व से उनका तात्पर्य राष्ट्र की अपनी भाषा और संस्कृति के विकास से था।

हिंदी के लिए गांधीजी से भी टक्कर

हिंदी और टंडनजी तो एक प्रकार से समानार्थक थे। हिंदी और हिंदुस्तानी के प्रश्न पर उन्होंने अपने राजनीतिक गुरु गांधीजी से भी टक्कर लेने में ज़रा भी संकोच नहीं किया। यह टंडनजी के प्रयत्नों का परिणाम था कि हिंदी राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हुई। वैसे हिंदी का प्रश्न किसी के लिए सरकारी भाषा का प्रश्न था, तो किसी के लिए लोकतंत्र का प्रश्न, पर टंडनजी के लिए वह राष्ट्र के जीवन और मरण का प्रश्न था। आधुनिक भारत में दो सबसे बड़ी संस्थाएं स्थापित हुईं—एक कांग्रेस, तो दूसरी हिंदी साहित्य सम्मेलन। और टंडनजी हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्राण थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिंदी के प्रति टंडनजी की निष्ठा का प्रायः गलत अर्थ लगाया गया। उन्हें संप्रदायवादी तक कहा गया। उनकी इस ज्वलंत घोषणा पर विश्वास नहीं किया गया कि 'यदि मैं यह देखूंगा कि हिंदी साहित्य सम्मेलन राष्ट्र के ऐक्य में बाधक बन रहा है, तो मैं ही सम्मेलन की ईंट से ईंट बजवा दूंगा।' वे खुद उर्दू और फारसी साहित्य के ऊंचे प्रेमी थे। यही नहीं, उन्होंने बार-बार कहा था कि उर्दू को वे हिंदी की एक शैली मानते हैं। हां, अंग्रेजी राज्य की गुलामी से भी बढ़कर अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजियत की गुलामी उन्हें कांटे की तरह चुभती थी। संविधान परिषद में जब नागरी अंकों के स्थान पर रोमन अंक रखने का प्रस्ताव आया, तब उन्हें गहरी चोट लगी थी। उनका विश्वास था कि सन १९६५ तक देश का सारा कार्य अंग्रेजी के बजाय हिंदी में किया जायेगा, लेकिन उनके जीते जी स्थिति यह बन गयी कि जब तक अहिंदी भाषा-भाषी चाहेंगे, तब तक अंग्रेजी का उपयोग बना रहेगा। इस बात का मलाल उन्हें अंत तक बना रहा। उनकी अडिग आस्था थी कि सारे देश में बिना एक भाषा की मान्यता के राष्ट्र में एकता नहीं आ सकती और हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जो राष्ट्र-भाषा होने की सामर्थ्य रखती है। लेकिन हिंदी का आंदोलन इस रूप में करना चाहिये, जिससे किसी को भी कोई शिकायत न हो और यह अनुभव न हो कि हम किसी पर हिंदी थोपना चाहते हैं।

एक स्वागत समारोह में टंडनजी के प्रति अपने विचार व्यक्त करते हुए नेहरू जी ने कहा था, 'जो भी व्यक्ति टंडनजी के संपर्क में आये, सबने कुछ न कुछ सीखा। यह महापुरुषों की निशानी है। हमने भी उनसे सीखा, जिससे दिल और दिमाग की दौलत बढ़ी। ... बहुत सारी तस्वीरें मेरे सामने आती हैं, उनमें टंडनजी की तस्वीर बहुत बड़ी होकर आती है। आप इत्तफाक करें या न करें, वह एक अटल खंभे की तस्वीर है . . . दुनिया कितनी लड़खड़ायी, पर उनकी ओर निगाह दौड़ायी, तो देखा उनके पैर मजबूती से जमे रहे।'

अंतिम दिनों में टंडनजी को काफी समय तक रोग-ग्रस्त अवस्था में शैया पर पड़े रहना पड़ा, लेकिन उनकी ओजस्विता और तेजस्विता में जरा भी अंतर नहीं आया। जुलाई, १९६२ को उनका स्वर्गवास हुआ। इससे दो दिन पूर्व तक डॉक्टरों के मना करने पर भी, मिलने-जुलने वालों से वे बराबर राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के बारे में चिंता प्रकट करते रहे।

त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति टंडनजी सही अर्थों में ऋषियों और संतों की परंपरा के महामानव थे, जो जीवन भर नैतिकता और आदर्श सिद्धांतों की मान्यता के लिए संघर्षरत रहे। टूट भले ही गये लेकिन झुके कभी नहीं।

—४, पत्रकार कालोनी, बांद्रा पूर्व, बंबई-५१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महान वैज्ञानिक माइकेल फैराडे

□

फिलिप केन और सेमुअल निसेनसन

ooo

चुंबकत्व को बिजली में बदलने का चमत्कार कर दिखाने वाले माइकेल फैराडे का स्थान विश्व के प्रायोगिक वैज्ञानिकों में अग्रणी है। अपने अन्य महत्त्वपूर्ण आविष्कारों के कारण भी उनका नाम विज्ञान के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

ooo

१८२२ में एक तरुण वैज्ञानिक ने अपनी नोटबुक में लिखा : 'चुंबकत्व को बिजली में बदलो।' यह आदेश उसने किसी और को नहीं, खुद अपने आप को दिया था। ठीक उसी समय, विश्व के अनेक वैज्ञानिक चुंबकत्व को बिजली में बदलने की समस्या से जूझ रहे थे, लेकिन सफलता अंततः मिली माइकेल फैराडे को, जिन्होंने वह करिश्मा १८३१ में कुल दस दिनों तक लगातार प्रयास करने के बाद कर दिखाया।

फैराडे का जन्म २२ सितंबर, १७९१ को लंदन के एक उपनगर में हुआ था। उनके पिता लुहार थे, और बहुत निर्धन थे। इस निर्धनता के कारण उनकी पढ़ाई अधिक नहीं हो सकी। वे मामूली पढ़ने-लिखने के अलावा, थोड़ा-सा प्रारंभिक गणित का ज्ञान ही प्राप्त कर सके। १३ वर्ष की आयु में उन्हें अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर, अखबार बेचने को बाध्य होना पड़ा। जिस मालिक के लिए वे अखबार बेचते थे, उसी से प्रशिक्षण पाकर वे जिल्द-साज़ी का काम भी करने लगे। इससे फैराडे को बहुत लाभ हुआ, कारण वे जिल्द बंधने के लिए आने वाली ज्ञानवर्धक पुस्तकों को पढ़कर अपना सामान्य ज्ञान बढ़ाने लगे। इस काम में उन्हें अपने सहृदय मालिक का प्रोत्साहन भी प्राप्त हुआ।

'एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका' के खंडों के अलावा श्रीमती जेन मार्सेट कृत 'कनवरसेशंस ऑन कैमिस्ट्री' नामक पुस्तक से फैराडे को विज्ञान, और विशेष रूप से रसायन-विज्ञान के मूलभूत सिद्धांतों की जानकारी मिली। आगे चलकर उन्होंने रसायन-विज्ञान और विद्युत् के क्षेत्रों में जो शोधकार्य किया, उसमें यह मूलभूत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जानकारी अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई।

१८१० में उन्होंने 'प्राकृतिक दर्शन' विषय पर आयोजित एक व्याख्यान-माला में दिये गये व्याख्यानों के संकलन की जिल्द अपने हाथ से बांधी, और उनमें वर्णित तथ्यों और सिद्धांतों से पूरा लाभ उठाया। फैराडे की कुशाग्र-बुद्धि जो पढ़ या सुन लेती थी, उसे कभी नहीं भूलती थी।

०००

२१ वर्ष की आयु में फैराडे ने जिल्द-साजी का धंधा छोड़ दिया, और एक कारीगर बन गये। लेकिन, उनका मन तो विज्ञान में रमा था। उन्होंने रॉयल संस्था से संबद्ध सर हम्फ्री डेवी को एक पत्र लिखकर प्रार्थना की कि वे किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला में उसे काम दिलवाने की कृपा करें। प्रार्थना-पत्र के साथ उन्होंने सर हम्फ्री डेवी के भाषणों के संकलन की एक बढ़िया जिल्द बांधकर भी भेजी। इस प्रार्थना-पत्र का प्रभाव हुआ, और सर डेवी ने उन्हें बुला भेजा।

फैराडे ने सर डेवी को अपने उन वैज्ञानिक प्रयोगों के बारे में बताया, जो उन्होंने स्वतःस्फूर्त अवकाश के क्षणों में किये थे। फैराडे के विज्ञान-प्रेम और प्रतिभा से प्रभावित होकर, सर डेवी ने उन्हें प्रयोगशाला-सहायक की नौकरी दिलवा दी। वर्षों बाद जब सर हम्फ्री डेवी से किसी ने पूछा, 'आपका महानतम आविष्कार कौन-सा है?' तो उन्होंने उत्तर दिया था: 'माइकेल फैराडे।'

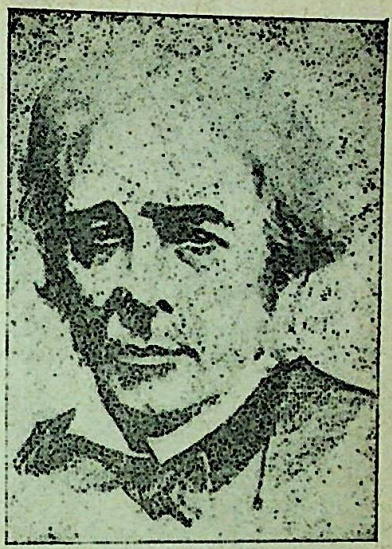

माइकेल फैराडे

नौकरी के आरंभ के दो वर्षों में फैराडे को सर डेवी के साथ घूमने के अनेक अवसर मिले। इन यात्राओं के दौरान वे सर डेवी की टक्कर के अनेक शीर्षस्थ वैज्ञानिकों के संपर्क में आये। इन वैज्ञानिकों से उनकी जो बातचीत हुई, उससे जीवन तथा विज्ञान के प्रति उनका सारा दृष्टिकोण ही बदल गया।

१८१५ से फैराडे ने एक प्रायोगिक सहायक वैज्ञानिक के रूप में अपना जीवन रॉयल संस्था की वैज्ञानिक प्रयोगशाला में आरंभ किया, और मृत्युपर्यंत इस वैज्ञानिक प्रयोगशाला से संबद्ध रहे। सर डेवी के निधन के पश्चात् उन्होंने सर डेवी का स्थान ग्रहण किया, प्रयोगशाला के निदेशक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब गर्मी आपकी शक्ति चूस ले...

आपके भरोसेमंद ग्लेक्सोज-डी का नया नाम.

तो लीजिए ग्लूकॉन-डी®

अतिरिक्त शक्ति—
जैसे ही आपको ज़रूरत हो.

गर्मी के मारे आप जल्द थक कर चूर हो जाते हैं. ऐसे में चाहिए ताज़गी और ठंडक देनेवाला ग्लूकॉन-डी. आपको और आपके पूरे परिवार को. फलों का रस, दूध, चाय, कॉफ़ी, सादा पानी— किसी भी पेय में मिलाइए या ऐसे ही पीजिए. फिर ख़ुद महसूस कीजिए— वही पहले जैसी चुस्ती-फुर्ती।

उसी जाने-पहचाने हरे पैक में मिलता है.

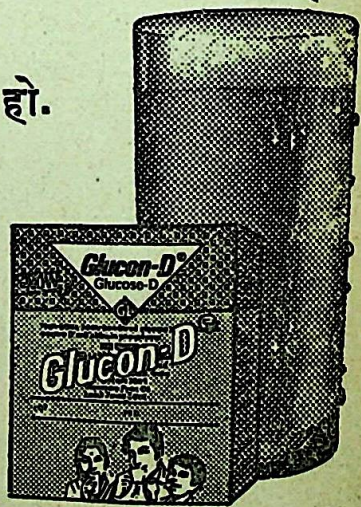

ग्लैक्सो का असली ग्लूकोज़ पाउडर
-विटामिन-डी और कैल्शियम फ़ॉस्फ़ेट से भरपूर.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के रूप में।

कई वर्षों तक फैराडे सर डेवी द्वारा आरंभ किये गये वैज्ञानिक प्रयोगों को पूरा करने में व्यस्त रहे। उन्होंने सुविख्यात डेवी सेफ्टी लैंपों के विकास में सहायता प्रदान करने के अलावा, विद्युत्-रसायन और धातु-विज्ञान के क्षेत्रों में भी अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये। विद्युत्-अपघटन के नियमों के आविष्कार का श्रेय उन्हें मिला था, इसलिए ये नियम फैराडे के विद्युत्-अपघटन के नियमों के नाम से जाने जाते हैं। इन नियमों के कारण ही बिजली के मीटरों का व्यावसायिक निर्माण संभव हो सका। घर में गुज़रने वाली बिजली चांदी के एलेक्ट्रॉड्स वाले छोटे जार में से गुज़रती है। महीने के अंत में इन एलेक्ट्रॉड्स का वज़न कर लिया जाता था, जिससे पता चल जाता था कि बिजली की कितनी मात्रा की खपत हुई है।

विद्युत्-अपघटन प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाले सभी तकनीकी शब्दों को, जैसे एलेक्ट्रॉड, एनोड, काथोड, इयंस, एलेक्ट्रोलायट, फैराडे ने ही गढ़ा था।

०००

१८२१ की क्रिस्मस को फैराडे ने अपनी पत्नी को एक अनुपम क्रिस्मस भेंट दी। वास्तव में यह अनुपम भेंट उन्होंने सारी मानवता को प्रदान की थी। विज्ञान के इतिहास में पहली बार विद्युत् धारा के प्रवाह के कारण एक सतत यांत्रिक गति-क्षमता उत्पन्न की गयी थी। आज छोटे से छोटे यंत्र से लेकर बड़े से बड़े विद्युत् इंजन तक इस आविष्कार के सिद्धांत से चलते हैं।

विद्युत् मोटर के इस आविष्कार ने यह तो सिद्ध कर दिया कि विद्युत् चुंबकत्व को जन्म देता है, लेकिन फैराडे के सामने वही समस्या अभी तक मौजूद थी, जिसका हल ढूंढ़ने का संकल्प उन्होंने अपनी नोट बुक में इस समस्या को लिखकर किया था।

१७ अक्तूबर, १८३१ को उन्हें इस समस्या का हल अंततः प्राप्त हो ही गया। और यह हल इतना सरल और सीधा-सादा कि सब वैज्ञानिक आश्चर्य करने लगे कि आखिर उन्हें तब तक यह क्यों नहीं सूझा था? विद्युत्-प्रेरण के सिद्धांत के आविष्कार के लिए उन्हें एक प्रयोग करना पड़ा, जिसमें २२० फुट लंबे तांबे के एक तार को एक कार्डबोर्ड सिलंडर पर लगाया गया। मोड़ों को कुंडलित किया गया, और परतों के बीच में कैलिको कपड़ा रखा। तारों के सिरों को एक गैलवनोमीटर से, जो विद्युत की खोज कर सकता था, जोड़ा गया। तदनंतर, फैराडे ने सिलंडर में एक चुंबक रखा, और तुरंत गैलवनोमीटर विद्युत की उपस्थिति दर्शाने लगा। और जब उन्होंने चुंबक को बाहर निकाल लिया, तो मीटर विपरीत दिशा में घूमा। जब चुंबक शांत था, तब बिजली बिल्कुल नहीं बनी।

समस्या का हल मिल गया था—कंडक्टर और चुंबक के बीच की आनुपातिक गति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चुंबकत्व को विद्युत में परिवर्तित करने में सक्षम थी।

नवंबर, १८३१ में फ़राडे ने अपने इस आविष्कार को रॉयल सोसायटी के समक्ष प्रस्तुत किया। विद्युत् प्रेरण का उनका नियम इस प्रकार था : प्रेरित विद्युत् बल तार द्वारा प्रति सेकंड कटने वाली चुंबकत्व-बल की रेखाओं की संख्या पर निर्भर करता है।

फैराडे के मन में अपने इस महत्त्वपूर्ण आविष्कार से पैसा कमाने का विचार कभी नहीं आया। उनकी रुचि केवल वैज्ञानिक शोध में थी।

इस समस्या का हल ढूंढ़ने के बाद उन्होंने फिर कभी इस समस्या के बारे में सोचा भी नहीं, तथा अन्य समस्याओं में उलझ गये।

उनका निधन २६ अगस्त, १८६७ को सीसे के विषाक्तन के कारण हुआ। यह विषाक्तन वैज्ञानिक प्रयोगों को करते समय हुआ था। १८३१ से लेकर १८६७ तक उन्होंने जो नाना वैज्ञानिक प्रयोग किये वे भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे, और उनकी वैज्ञानिक सूझबूझ तथा प्रचंड प्रतिभा के परिचायक थे। उनके ऐसे ही एक प्रयोग ने यह सिद्ध किया कि प्रकाश विद्युत्-चुंबकीय है।

विज्ञान की दुनिया में माइकेल फैराडे को विद्युत् मोटर और विद्युत् जेनरेटर का पिता माना जाता है।

वे एक समर्पणशील और निःस्वार्थ भाव से वैज्ञानिक शोध करने वाले प्रतिभा संपन्न वैज्ञानिक थे। सारा बिजली उद्योग इस महान वैज्ञानिक के कंधों पर टिका है।

विद्युत्-विज्ञान में माप की इकाई-फराड—के कारण ही उनका नाम विज्ञान के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

आवश्यकता

गोधूलि वेला में एक गरीब बालक अपनी भेड़-बकरियां घर की ओर हांके लिये जा रहा था। समीप ही एक मस्त साधु बैठे हुए थे। उनके पास एक कमंडल के सिवा और कोई वस्तु नहीं थी।

नदी किनारे आकर भेड़-बकरियां पानी पीने लगीं। उन्हें इस प्रकार प्रसन्नता से पानी पीता देख इस मनमौजी साधु के मन में विचार आने लगे—'अरे, इन प्राणियों के पास जलपात्र नहीं है, तो भी कितने आनंद से पानी पी रहे हैं। यदि ये मुख लगाकर पानी पी सकते हैं, तो मैं भी अंजलि भरकर पानी क्यों नहीं पी सकता? और यदि अंजलि मात्र से काम हो सकता हो तो यह कमंडल रखने की क्या आवश्यकता?'

यह महान अपरिग्रही थे यूनान के प्रसिद्ध संत डायोज़िनीयस।

—वीरेंद्र कुमार कुंद्रा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपयोगिता अपनी-अपनी

□

शिवनारायण सिंह

सुरम्य उद्यान में आम का छायादार वृक्ष था। उसके समीप ही बबूल का पेड़ भी सीना ताने खड़ा था। समय आने पर आम के पेड़ में फल लगे। बगिया आमों की महक से महमहा उठी। कोयल कूकने लगी। एक लोभी व्यक्ति उस ओर से गुज़रा तो रसीले आम देखकर उसका जी ललचा उठा। उसने एक आम तोड़कर खाया तो बोला—'अहा, कितना रसीला आम है। इतना मीठा और स्वादिष्ट आम तो आज तक कभी नहीं चखा था। धन्य है यह पेड़ जिसमें इतने लुभावने आम लग रहे हैं।' दूसरे दिन वह थैला लेकर बगिया में पहुंचा और कई आम तोड़कर थैला भरते हुए खुशी-खुशी घर लौट आया।

उस व्यक्ति के द्वारा रोज़-रोज़ अपनी प्रशंसा सुनकर आम के वृक्ष को गर्व हो आया। वह हवा में झूम-झूमकर अपनी प्रसन्नता ज़ाहिर करने लगा। वह पास खड़े बबूल वृक्ष को नीचा दिखाने के उद्देश्य से कहता—'देखो, मुझमें कैसे रसीले-अनोखे फल लग रहे हैं। सब तरफ मेरी चर्चा हो रही है। मेरे स्वादिष्ट आम के लोभ में ही तो वह आदमी नित्य ही थैला लेकर मेरी छांव तले आने लगा है। सच में मेरा जीवन कितना सफल है। तुम्हारा भी भला कोई जीवन है! तुम्हारी ओर तो कोई आंख उठाकर देखना तक नहीं चाहता है।'

बबूल का पेड़ अपमान के कड़ुवे घूंट पीकर कहता—'मेरा मन मत दुखाओ, प्यारे मित्र! हर किसी की अपनी-अपनी उपयोगिता होती है।'

आम का वृक्ष बीच में ही उसकी बात काटते हुए कहता—'अरे, रहने भी दे, बबूल के वृक्ष! तू कितना कंटीला है यह कौन नहीं जानता? तेरी भी भला कोई उपयोगिता हो सकती है? तू किसी के भला क्या काम आ सकता है!'

बबूल का पेड़ शांत होकर जवाब देता—'यह तो आने वाला समय ही बतलायेगा कि मेरी क्या उपयोगिता हो सकती है। मगर हां, इतना ज़रूर कहूंगा कि गर्व कभी न करना चाहिये।' आम का पेड़ उसकी बात पर ज़ोरदार ठहाका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुस्तकालय,
काशी, वाराणसी।

लगाता और अपनी शाखाओं समेत हवा में झूम-झूम जाता।

कुछ दिनों बाद आम का लोभी वह व्यक्ति रोता हुआ बबूल के वृक्ष के पास आया। बबूल के पेड़ ने विनम्रतापूर्वक उससे कहा, 'तुम तो आम के वृक्ष के मेहमान हो। मुझ गरीब के पास कैसे आना हुआ?'

उस व्यक्ति ने रोते हुए कहा, 'लोभ-वश मैंने इतने अधिक आम अब तक खा डाले हैं कि मेरे सारे दांत खराब हो गये हैं। दर्द के मारे बेहाल हो उठा हूं। वैद्यजी ने बतलाया है कि सिर्फ तुम्हारी दातून ही अब मेरे दुख का निवारण कर सकती है। आम के लोभ में मैंने तुम्हारी ओर देखा तक न था। मगर हर वस्तु की अपनी उपयोगिता होती है। तुम इतने उपयोगी हो, यह मुझे अब तक ज्ञात ही न था।' इतना कहते हुए उसने बबूल की दातून तोड़कर दांत साफ किये। अब वह रोज़ सुबह-शाम बबूल के वृक्ष के पास दातून लेने आने लगा। आम के पेड़ की ओर वह व्यक्ति अब देखता तक न था।

आम के पेड़ ने बबूल के वृक्ष से संयत स्वरों में कहा—'मित्र! गर्ववश मैंने तुम्हारा अपमान किया था। पर आज

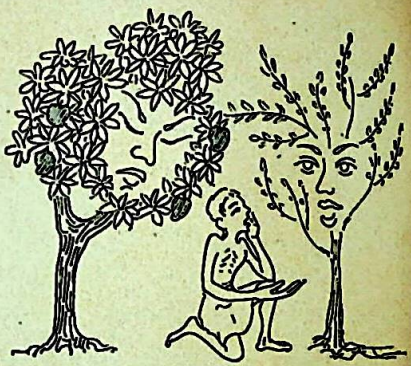

मेरा सिर शर्म से झुक गया है। कंटीले होते हुए भी तुम इतने उपयोगी हो सकते हो, यह मैंने न जाना था। मैं तो किसी के दांतों को दर्द दे सकता हूं। मगर दर्द की दवा तो तुम्हारे ही पास है। अब से मैं कभी तुम्हारे मन को चोट पहुंचाने वाली बात न कहूंगा।'

बबूल का पेड़ बोला—'कोई बात नहीं, मित्र! मुझे खुशी है कि तुमने समय रहते अपनी भूल कबूल कर ली है। अब से हम आपस में मित्र की तरह रहा करेंगे।' हवा मंद-मंद बहने लगी। दोनों पेड़ लहरा उठे।

—४८ डी, बॉयस बिल्डिंग,
दूसरा माला, ग्वालिया टैंक, बंबई-३६

□

अनाड़ी संगीतज्ञ ने अपने मेज़बान के यहां जमकर खाया और फिर जमकर गाने के लिए तैयार होकर पूछने लगा, 'कौन-सा राग चलेगा, साहब?'

'कुछ भी सुनाओ, भाई! मैं तो सिर्फ अपने नालायक पड़ोसियों को परेशान करने के लिए आपसे गाने की फ़रमाइश कर रहा हूं।' मेज़बान ने शाही अंदाज़ में फरमाया।

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४०००० ७
के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
बंबई—४०० ००४ में मुद्रित।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपयोग करें

ग्रेलिम स्टेपल फाइबर

और

साथ में

GRASIM

मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय

पूरक धागे

Grasilene

हि ग्वालियर रेयान सिल्क (मन्यू.) विविंग कं. लिमिटेड

(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM

टे. नं : ३८८२८८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

everest/81/PP/291-hn

Regd. No. BYW 203

पारले

नन्हे मुन्नों की मुस्कान से आबाद है जहान

उन्हें दीजिये प्यार भरी देखभाल

पारले ग्लुको—

स्वाद में निराले, शक्ति से भरपूर

दूध, गेहूं, शक्कर, और ग्लूकोज़ के
स्वाद और पौष्टिक गुणों से भरपूर

पारले ग्लूको भारत के सबसे ज्यादा बिकनेवाले बिस्किट

इसे सिलेक्शन पारितोषिक मिला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

हिन्दी डाइजेस्ट

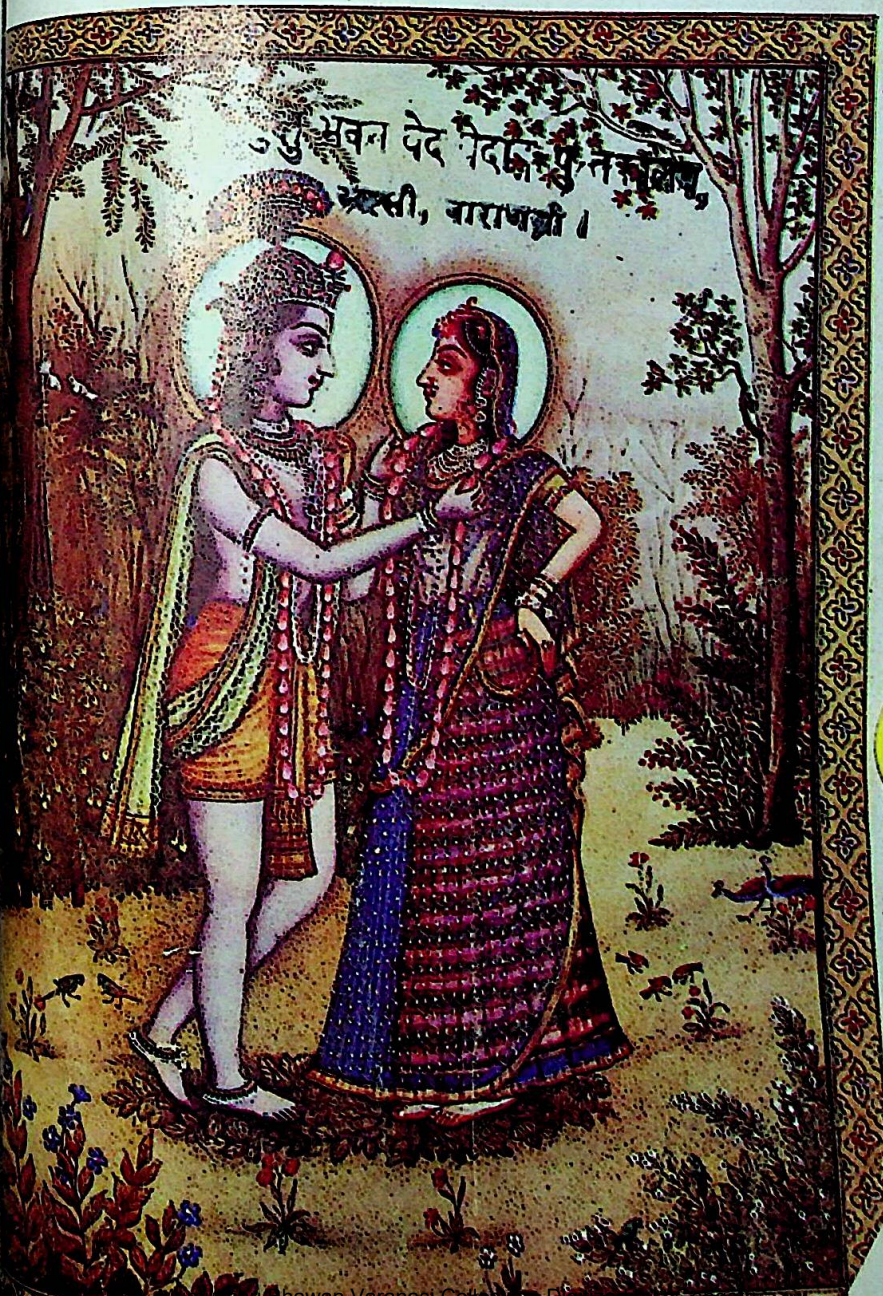

CC-0. Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेन्चुरीके अनुपम वस्त्र

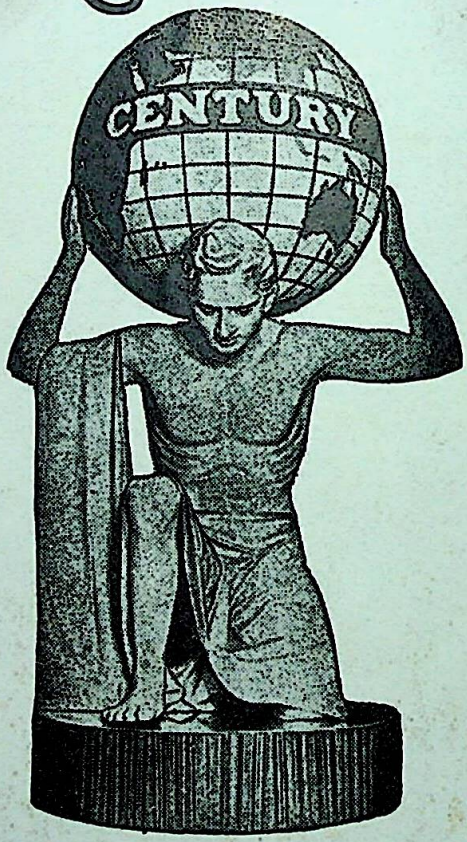

१००% सूती कपड़ों के लिये

दि सेन्चुरी स्पिनिंग एण्ड मैन्युफेक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, बम्बई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय,
अस्सी, वाराणसी।

उपयोग करें
ग्रेलिम स्टेपल फाइबर
और
साथ में

GRASIM

मजबूत, टिकाऊ, विश्वसनीय
पूरक धाग

Grasilene

दि ग्वालियर रेयान सिल्क (मैन्यू.) वीविंग कं. लिमिटेड
(स्टेपल फाइबर विभाग)

तार : GRASIM टे. नं. : ३८८२८८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नवनीत

संस्थापक
कन्हैयालाल मुंशी श्रीगोपाल नेवटिया
भारती : स्था. १९५६ नवनीत : स्था. १९५२

*

संपादक
वीरेन्द्रकुमार जैन

सह-संपादक
गिरिजाशंकर त्रिवेदी

उप-संपादक
रामलाल शुक्ल

*

संयोजक
शान्तिलाल तोलाट

*

प्रकाशक
सु. रामकृष्णन

*

आवरण-चित्र :
मदनजयी युगल-किशोर की युगल-लीला
[नाथद्वारा शैली : बजाज
ऑटो के सौजन्य से]

कार्यालय : भारतीय विद्या भवन

वर्ष : ३१; अंक : ८

नवनीत : पाठकों की निगाह में ५
प्रेम की प्रतीति
उमाकान्त मालवीय १३
क्या मुक्तिबोध पूजा-पाठ करते थे ?
राजेन्द्र मिश्र २१
कृष्ण कार्तिकेय
श्यामकुमारी अग्रवाल २६
अनुभूति के क्षण
डा. प्रभाकर श्रोत्रिय २९
प्रार्थना ३३
मान्कोजी बोठाले
सावित्रीवाई खानोलकर ३४
राष्ट्र भी स्वयं में एक व्यक्ति है
श्रीअरविन्द ३६
व्रज की महाभाव चेतना
डा. विद्यानिवास मिश्र ४०
भवानीप्रसाद मिश्र की आठ कविताएं ४४
मत्स्येन्द्रनाथ
डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ४८
श्रीकृष्ण मेरी दृष्टि में
डा. श्यामसुन्दर घोष ६०
प्यार के फूल (हिन्दी कहानी)
निर्मल कुमार ६५
क्या खोया, क्या पाया ? (कविता)
हुल्लड़ मुरादाबादी ७९
विशुद्ध भारतीय उपन्यास
निर्मला चौहान ८०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई-४०० ००७

अगस्त १९८२

रिक्त अधूरा आला (मराठी कहानी)
विद्याधर पुंडलीक ९२
दो कविताएं माधुरी शाह ९६
दो ग़ज़लें श्यामप्रकाश अग्रवाल १०७
दवाखाने हकीमजी
रीता कपूर, अम्बा सान्याल १०८
यह कैसा जन्मोत्सव (गुजराती कहानी)
सुरेश जोशी ११२
पंडित बाबा हजारीप्रसाद द्विवेदी
कमलेश कृष्ण ११७
उम्मीद से आगे (हिन्दी कहानी)
मनीषा वियाला १२४
आशीर्वाद के लिए (कविता)
रामावतार चेतन १२८
गीत बद्रीप्रसाद गुप्त 'आर्य' १३२
उपचार : आंख के तिरछेपन का
डा. आर. के. कपूर १३४
जोसेफ क्रिस्टले
फिलिप केन और सेमुअल निसेनसन १४०

चित्र-सज्जा : ओके, शेणै, भाऊ समर्थ, आर. डी. पुरोहित, चरन शर्मा, चंदुलाल सांकला, श्रवण शर्मा और आलोक जैन।

□

नवनीत के जुलाई-१९८२ के अंक में पृष्ठ ३२ पर प्रकाशित चित्र शरच्चंद्र चटर्जी का है, शरच्चंद्र बोस का नहीं। कृपया पाठक सुधार कर पढ़ें। —संपादक

अमृतं तु विद्या
भारतीय विद्या भवन

१९१८ में संस्थापित पूर्णतया शिक्षा, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित, पंजीकृत प्रन्यास, संस्थापक : कुलपति क. मा. मुन्शी, अध्यक्ष : श्री हरजी म. सटाऊ, उपाध्यक्ष : श्री गिरधारीलाल मेहता, श्री जयसुखलाल हाथी।

सहयोगी प्रतिष्ठान

१– मुम्बादेवी संस्कृत महाविद्यालय २–भारतीय संस्कृत परीक्षा विभाग ३–सरल संस्कृत परीक्षा विभाग ४–गीता विद्यालय ५–मूंधानाला योगनका स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध प्रतिष्ठान ६–पूनी सरस्वती मंदिर (पुस्तकालय) ७– बलवन्ती रामजी दान पुस्तकालय ८–भारतीय संगीत शिक्षापीठ ९– भारतीय नर्तन शिक्षापीठ १०–भारतीय इतिहास विभाग ११–कलाभवन मंदिर, पुस्तक यूनिवर्सिटी, पूनी साहित्य, भारतीय विद्या (भारतीय विद्या त्रैमासिक), भवन्स जर्नल (अंग्रेजी मासिक), संदिश (संस्कृत त्रैमासिक), भवनीत हिन्दी डाइजेस्ट (हिन्दी मासिक), भवनीत नवनीत (गुजराती मासिक) १३–ग्रामीण अंतर्दृष्टियां और आधुनिक आविष्कार योजना १३–ग्रीनिर्देशक योजना १४–राजाजी मातृपीठी समिति १५– म. म. कला कालेज और म. म. विज्ञान भवन संस्थान (अंग्रेजी) १६–सेठपराम मेहता पब्लिक स्कूल (नयी दिल्ली) १७–हजारीमल सोमानी कालेज, कला एवं विज्ञान (चौपाटी, बम्बई) १८– सरदार पटेल व्यवसायिकी कालेज (अंधेरी) १९– रणछोड़लाल अचरतलाल विज्ञान कालेज (अहमदाबाद) २०– रणछोड़लाल अचरतलाल कला एवं वाणिज्य कालेज (अहमदाबाद) २१–वल्लभदास वाणिज्य कालेज, (डाकोर) २२– कला एवं विज्ञान कालेज (डाकोर) २३– स्वामीनारायण पॉलिटेक्निक (डाकोर) २४– श्री अमृतलाल कालिदास जोशी महिला कालेज (वामनवर) २५– म. म. मेहता विज्ञान कालेज (परवारी) २६– राजेन्द्र प्रसाद संग्रेषण एवं प्रशंसा विद्या प्रतिष्ठान (मूर्तियां : प्राचार्यालय देवकरन नानजी संग्रेषण एवं प्रशंसा-विद्या, कालेज, बम्बई, सरदार पटेल जनसंग्रेषण कालेज, नयी दिल्ली; हरिलाल भगवती जनसंग्रेषण कालेज अहमदाबाद तथा मंगलौर; सोमानी जनसंग्रेषण कालेज, एलाफुलनु; बड़ौदा, पंडोपक, मुंबई, हैदराबाद, मंगलौर तथा भिवूर में स्थित जनसंग्रेषण कालेज) २७– जवाहरलाल नेहरू भाषा अकादमी, नयी दिल्ली २८– म. ह. वाडिया स्कूल (अंधेरी) २९– बल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याभवन) बड़ौदा तथा भरवारी ३०–भवन का विद्या मंदिर, एलामक्कर, एलाफुलनु ३१– कोचीनवासी पर भवन का स्कूल, कोचीन ३२– बल्लभराम मेहता पब्लिक स्कूल (विद्याभवन) भरवारी, इलाहाबाद के पास ३३– भवन का पब्लिक स्कूल, भेल, रामचन्द्रपुरम्, हैदराबाद ३४– संपूर्ण संस्थाएं : संस्कृत विश्व परिषद; भारतीय स्त्री सेवा संघ; ज्योतिष परिषद (बंबई) ३५– संस्कृति पाठ्यक्रम पुस्तकें।

केन्द्र और कार्यालय

अहमदाबाद, बंगलौर, बड़ौदा, बोरावल, भुवनेश्वर, कलकत्ता, पंडोपक, कोयम्बतूर, डाकोर, दिल्ली, एलाफुलनु, मुंबई, हैदराबाद, बम्बू, वामनवर, काशीनाथ, कानपुर, मद्रास, मदुरई, मंगलौर, मुकुन्दपुर, नागपुर, सिलोन, श्रीनगर, तिरुपुर, विशाखापट्टनम्, वेलन (संयुक्त राज्य) ।

भारतीय विद्या भवन
के.एम.मुन्शी मार्ग, चौपाटी, बम्बई-४००००७

फोन : ३५१४६१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेंट्रल बैंक की परिवार कल्याण योजना

बूंद-बूंद से बनता सागर
आवर्ती जमा योजना

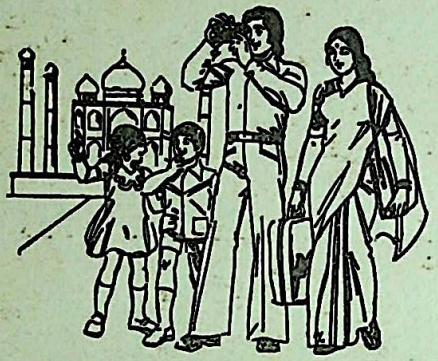

नौकरीशुदा लोगों के लिए एक आदर्श योजना प्रति माह रु. 5/- जितनी मामूली या उसके गुणकों में कोई भी रकम 12 से 120 माह की अवधि के लिए जमा कीजिए. 8% से 10% प्रति वर्ष की दर से तिमाही चक्रवृद्धि से आपकी रकम बढ़ती रहेगी.

आपके नन्हें-मुन्नों के लिए एक बढ़िया उपहार
धन-वृद्धि जमा योजना

रु. 100/- या उसके गुणकों में कोई भी रकम 12 से 120 माह तक जमा रखिए. आपकी जमाराशि 87 माह में दुगुनी या 120 माह में $2\frac{1}{2}$ गुनी बढ़ जाएगी. अपने परिवार की सुख-समृद्धि का ख्याल रखिए. 8% से 10% प्रति वर्ष की दर से तिमाही चक्रवृद्धि ब्याज मिलेगा.

सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया
(भारत सरकार का एक उपक्रम).
यही वह बैंक है जो हर जगह हर मनुष्य की सहायता देने में तत्पर है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नवनीत : पाठकों की निगाह में

□

नवनीत को जिस दिन से आपने अपने हाथ में लेकर श्रीगणेश किया है, उस दिन से पाठक वर्ग अपने को भाग्यशाली समझता है। यह अनुभूति नवनीत में प्रकाशित किये जा रहे पत्रों से भलीभांति होती है। आपने इस मासिक पत्र के नाम को सार्थक बनाया है। प्रत्येक अंक अभूतपूर्व निकलता है। यह आपकी साहित्य-जगत में की गयी दीर्घकालीन सेवाओं का परिचायक है। आपकी संपादन-कला में चुंबकीय शक्ति है। यही उद्‌गम आपके स्वभाव में भी परखा जाता है। मैं समझता हूं कि आप जिस साहित्य-सामग्री को पाठकों के समक्ष दे रहे हैं, वह आज के भौतिकवादियों के लिए एक सीख है। आप नये-नये आयाम नवनीत में स्थापित कर रहे हैं, उसमें आपका जीवन सफल दिखायी दे रहा है।

आपने संपादकीय कभी-कभी लिखा है, परंतु उसका प्रभाव अब तक साहित्य-प्रेमियों को हिलोरें देता रहता है। यदि आपकी 'पुकार' से परिस्थितियों में कभी बदलाव आया तो आप सच्चे अर्थों में विधाता कहलाने के अधिकारी होंगे। वस्तुतः आपकी लेखनी में करिश्मा है। मुझे आशा है, आप इस मासिक पत्र को इसी दिशा की ओर क़ायम रखेंगे। ईश्वर की आप पर अनुकंपा रहे कि आप को दीर्घकालीन जीवन प्राप्त हो।

—अश्विनीकुमार जोशी, बम्बई

ooo

नवनीत अप्रैल '८२ का अंक बहुत ही इंतज़ारी के बाद मिला और उसे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमें एक पाठक के नाते आपसे यह शिकायत है कि हिंदी डाइजेस्ट का बहुमूल्य ज्ञानरत्न नवनीत समय से बहुत लेट यहां मिलता है। अप्रैल अंक की महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि सारी सामग्री गहन चिंतन-मनन के लिए थी जो पाठक को सहज ही मानवता का बोध कराने में आगे आयी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका मानव में विचार क्रांति लाने हेतु इस भू पर स्वर्ग का अवतरण करने में एक अहम् भूमिका अदा करेगी। 'अध्यात्म को भूल चुके'; 'तीर्थंकर महावीर ने कहा था'; 'क्रांति बुझने न पाये', 'घूस' (कहानी) और 'विरोधाभास' आदि रचनाएं तथ्यपूर्ण लगीं। साथ ही कोई कथा या रचना छांटने लायक नहीं थी।

—राजनकुमार सिंह, भागलपुर

ooo

नवनीत अप्रैल '८२ का अंक पढ़ने को मिला। ऐसा महसूस हुआ, जैसे किसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूखे को काफी अरसे बाद सुरुचिपूर्ण स्वादिष्ट भोजन मिला हो। श्री जे. टी. देसाई के संस्मरण आज के युवा वकीलों का मार्गदर्शन करने में सक्षम हैं। कहानी 'घूस' में लेखक ने दीनानाथ का जो चरित्र-चित्रण किया, वह तारीफ के काबिल है। जैसा पत्रिका का नाम है, वैसी ही सामग्री हर अंक में पढ़ने को मिलेगी, ऐसी संपादक मंडल से आशा है।

—डॉ. ओ. पी. भट्ट, चित्तौड़गढ़

ooo

नवनीत का अप्रैल अंक पढ़ा। अत्यधिक पसंद आया। 'श्रम की सुगंध', 'तीर्थंकर महावीर ने कहा था : अपरिग्रही बनो, निर्ग्रंथ बनो' बेहद पसंद आया। भगवान महावीर के उपदेशों, आदर्शों से ही विश्व-शांति संभव है, फिर इसकी विश्वव्यापकता हेतु प्रयास क्यों न किया जाये? महावीर विषयक साहित्य का विश्व के कोने-कोने में प्रसार कराया जाना उचित होता जिससे अणु-भय से आकुल और भौतिकता में भटकी पीढ़ी को सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, और ब्रह्मचर्य की शिक्षा से स्वयं व समाज को संवारने का संबल मिल सके। आज सामाजिक विकृति के लिए महावीर के उपदेश वरदानस्वरूप सिद्ध हो सकते हैं।

नित्य निखरती नवनीत पत्रिका सामाजिक संवार के लिए अनुपम थाती है। श्री वीरेन्द्रकुमार जैन के संपादन में नवनीत शतधा होकर उफना है। समष्टिमयी साहित्यिक, सांस्कृतिक, पुरातात्त्विक, ऐतिहासिक, सामाजिक आदि सामग्री से सराबोर नये नवनीत की जितनी भी सराहना की जाये थोड़ी है। सर्वाङ्गीण सुघर सलोनी पत्रिका के लिए कृपया हार्दिक साधुवाद स्वीकार करें।

—शोभनाथ पाठक, भोपाल

ooo

सच बात तो यह है कि 'भारती' पत्रिका देखने-पढ़ने का सुयोग कभी नहीं मिला, किंतु नवनीत का विगत दस वर्षों से नियमित पाठक हूं और जब से 'भारती' को नवनीत में समन्वित किया गया है, यह दुःख और घनीभूत होने लगा है कि विशुद्ध 'भारती' भी कैसी अच्छी पत्रिका रही होगी, जिसके मनन का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। आपके संपादन कौशल की इतनी तारीफ नित होती है कि मेरी प्रशंसा कोई खास मानी नहीं रखेगी। किंतु आपके लेखन-कौशल और विषयगत वैविध्य के कमाल की बात जरूर कहना चाहूंगा। एक तरफ आप 'आज संजय की मां से क्या कहूं' जैसा आलेख प्रस्तुत कर कलम से जुड़े रचनात्मक दायित्व के साथ लेखनी की स्वतंत्रता की निस्सीमता के संवाहक बनते हैं तो दूसरी ओर 'आत्माओं के अनोखे शिल्पी श्रीगुरु मुक्तानंद परमहंस' जैसा अनुभव लेख लिखकर अनास्था और विक्षोभ प्रक्षेपण को लेखन का पर्याय समझने वालों के लिए एक नजीर भी पेश करते हैं। कोटिशः

अगस्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साधुवाद !

—परदेशी राम वर्मा, भिलाईनगर

ooo

नवनीत का मई अंक पढ़ा। मुझे इधर कई अंकों के पढ़ने से ऐसा लग रहा है कि नवनीत साहित्य और खासकर सर्जनात्मक साहित्य की दृष्टि से नया मोड़ ले रहा है। यह विश्व मानवता के उन्नयन की दृष्टि से परम प्रशंसनीय प्रयास है। इस अंक में डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल का 'मेरे रचनाकार का संघर्ष' और श्री वीरेन्द्र कुमार जैन का 'आत्माओं के अनोखे शिल्पी ....' लेख व्यक्तिगत और व्यक्तिपरक होते हुए भी शोध और सर्जना के लिए महत्वपूर्ण लगे। खास तौर से 'आत्माओं के अनोखे शिल्पी ...' के विषय में मुझे यह कहना है कि आज संपूर्ण विश्व को वैज्ञानिक अध्यात्म विद्या की आवश्यकता है, जिससे वस्तुवादी जड़ता से मानव मनीषा को परम चेतन तत्त्व की ओर ले जाया जा सके। भारतवर्ष में ऐसे महापुरुष आज हैं, जो विश्व में नव्य मानवतावाद के लिए अपने अनेक शिष्यों सहित सामान्यरूप में अलक्ष्य रहकर उन सारे अनुभवों को प्रकट कर रहे हैं, जो श्री जैन को हुए हैं। यह एक सुखद आश्चर्य है कि वैशाखी पूर्णिमा न केवल श्रीमुक्तानंदजी का बल्कि बुद्ध का भी जन्म-दिवस है। ऐसे जीवंत व्यक्तियों को जन-सामान्य के सामने प्रस्तुत करने की प्रेरणा आपकी बनी रहे और महापुरुषों की विचारधाराओं के भी आप वाहक बनें, यह आकांक्षा, एक विश्वास के साथ, हममें पनप रही है। आशा है आप अपने इस दायित्व का निर्वाह करेंगे।

—प्रतापादित्य राम त्रिपाठी, गोरखपुर

ooo

नवनीत की उत्तरोत्तर प्रगति देखकर अत्यंत आनंद हो रहा है। अप्रैल अंक के सभी लेखक बहुत प्रेरक और शिक्षाप्रद लगे। अज्ञेयजी के 'चेहरे का मंदिर' में नवीनतम विधा का दर्शन हुआ। 'गुहा : दृश्य जगत का रहस्यमय उद्गम' में अपने स्व. मित्र श्री वासुदेवशरणजी का गहन चिंतन बहुत दिनों बाद पढ़ने को मिला। 'साहित्य के संदर्भ और भारतीय साहित्य' में ओझाजी ने विश्व साहित्य पर व्यापक दृष्टिपात किया है। श्री ब्रजराज किशोर का 'विरोधाभास...' लेख मार्मिक साहित्य-चिंतन से ओतप्रोत है। इसके लिए अनेक धन्यवाद। भारतीय विद्या भवन देश की संस्कृति और साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है।

—व्योहार राजेंद्र सिंह, जबलपुर

ooo

नवनीत का अप्रैल १९८२ का अंक मिला। आदि से अंत तक समस्त सामग्री बहुत सार्थक एवं सारगर्भित लगी। राजू विश्वनाथन्, वल्लभेश दिवाकर की कविताएं हृदयस्पर्शी लगीं। अज्ञेय, मिहिर सिन्हा और राजेन्द्र कुमार शर्मा की रचनाओं ने अछूती संवेदनाओं को बहुत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताज़गी की एक लहर!

जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स आजकल मिलने वाले आम कपड़ों से बिल्कुल भिन्न हैं। जियाजी यानी सही सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स की तलाश में देर तक भटकने के बाद एक ताज़गी की लहर। आप अपने आपको कुछ और ज़्यादा पसंद करने लगेंगे।

क्योंकि जियाजी सूटिंग, शर्टिंग और कॉटन प्रिंट्स विशेष आपके लिए ही तो बनाए गये हैं। जियाजी आस पास बिखरे सूनेपन में ताज़गी भर देते हैं।

जियाजी

सूटिंग-शर्टिंग

कॉटन प्रिण्ट्स

जियाजीराव कॉटन मिल्स लिमिटेड,

बिर्ला नगर, ग्वालियर (म.प्र.)

MAPP

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सार्थक अभिव्यक्ति दी है। 'भारत माता: एक शक्ति, एक देवत्व', 'साहित्य के संदर्भ और भारतीय साहित्य', 'विरोधाभास : कला की संध्या भाषा' आदि लेख भी बहुत पसंद आये। 'भारती' से समन्वित होकर नवनीत में जो परिष्कार व गरिमा आयी है मैं उसके लिए आपको धन्यवाद बधाई देता हूं। मेरे विचार में नयापन इस अर्थ में है कि यह पत्रिका अब जीवन व जगत के अधिक व्यापक पक्ष को स्पर्शती है—उसे विश्लेषित करती है-उसके बारे में एक तटस्थ व मौलिक सोच पाठक को देती है। आपके प्रयास वंदनीय हैं। मैं आपके प्रयासों के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं अर्पित करता हूं।

—बालासुंदरम् गिरि, नयी दिल्ली

०००

मई १९८२ का अंक मेरे हाथ में है। मैं सालों से नवनीत का पाठक हूं। दिन-प्रति दिन यह सुंदर होता जा रहा है, जिसके लिए आप व आपके सहयोगी बधाई के पात्र हैं। सभी रचनाएं अच्छी लगीं। माचवेजी का 'भारतीय साहित्य में कृष्ण तत्त्व', माधुरी शाह का लेख 'नेवासा', भक्त सांताजी पवार, श्रीगुरु मुक्तानंद परमहंस पर आपका अनुभव लेख, शशिकर का विमल मित्र पर संवाद, दोनों कहानियां, रामावतार चेतन की हास्य-कथा, पृथ्वीनाथ शास्त्री का खोजपूर्ण लेख, वैज्ञानिक चरितमाला में गैलीलियो पर लेख—सभी अच्छे लगे। विशेष अच्छा लगा मधुसूदनजी का 'गौरवपूर्ण पुश्तैनी गरीबी' एवं योगाचार्य सैनिक का 'मानसिक तनाव और निस्पंद-भाव'। उत्तम सामग्री देखकर आपको लिखने का मोह नहीं छोड़ पाया। 'बेगम का तकिया' बहुत अच्छा लगा।

—मानसिंह भटनागर, उदयपुर

०००

नवनीत का नियमित पाठक तो नहीं, तथापि मई १९८२ का अंक मैंने पढ़ा। 'बऊजी किवाड़ा खोलो' तथा 'प' से 'पापा' जैसी मार्मिक कहानियां कभी-कभी ही पढ़ने को मिलती हैं। 'विमल मित्र के साथ दस दिन' के अंतर्गत श्री शशिकर ने श्री विमल मित्र के साथ की गयी बातचीत को अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है। 'सौंदर्य-बोध की ऊंचाइयां' महज एक हास्य-कथा ही नहीं, अपितु यह लेखक श्री रामावतार चेतन के गहन अध्ययनशील होने का परिचय भी देती है। साधुवाद!

—शंभुनाथ पाड़िया 'पुष्कर', भरतपुर

०००

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित नवनीत हिंदी डाइजेस्ट का मैं नियमित पाठक हूं। हर अंक में मैं गहन गंभीर पारदर्शी तथा मौलिक चिंतन-मनन के आलोक का पारस परस पाता हूं। इसमें निखिल सुलेख स्वानुभूति एवं सद्ग्रंथ सूक्तियों के अनमोल मौक्तिक होते हैं। इसका आद्यांत पारायण करते हुए पावन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विमल सहर्ष पेश करते हैं
फेशनेबल वस्त्रों का एक सुखी परिवार.
असंख्य डिजाइनों एवं रंगों में
सूटिंग्स • शर्टिंग्स • साड़ीयाँ • ड्रेस मटीरियल

अद्वितीय VIMAL® विमल
A RELIANCE PRODUCT
अंतर्राष्ट्रीय श्रेणी की गुणवत्ता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाङ्मय के निर्मल ज्ञान-विज्ञान, अध्यात्म, जीवन, साहित्य और संस्कृति से आप्लावित होकर मेरा मन मानस विभोर हो उठता है।

ऐसी नैसर्गिक नवनीत के संबंध में इदमित्थं नहीं कहा जा सकता। इसका हर अंक अत्यंत प्यारा है, आकर्षक और मनमोहक है। यह एक वह गुलदस्ता है, जिसमें विविध फूलों की सतरंगिनी छटा ही छटा है।

फरवरी' ८२ के अंक में प्रकाशित आयुर्वेदाचार्य पंडित सुरेश चंद्र चतुर्वेदी का 'राम और कृष्ण के काल में संजीवनी' निबंध की एक सामान्य असंगति की ओर आपका ध्यान आकर्षित कर रहा हूं। वह कि महाप्रज्ञ भिषगाचार्य सुषेण ने संजीवनी बूटी का रस निकालकर लक्ष्मण को पिलाया नहीं था।

इस संबंध में आदि महाकाव्य श्रीमद्-वाल्मीकीय रामायण का निम्न लिखित प्रमाण ध्यातव्य है 'एवमुक्तस्तु रामेण महात्मा हरि यूथपः ददौनस्तः सुषेणः परमौषधिम्।'

जब श्रीराम ने वानरयूथपति महात्मा सुषेण से कहा, तब सुषेण ने लक्ष्मणजी को एक उत्तम औषधि का नस्य दिया।

'स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत।
तथा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च॥'

यु. का. ५०/१५

उस नस्य को सूंघते ही लक्ष्मणजी के घावों में बाणों की जो नोकें उनके गड़ी थीं वे अपने आप बाहर निकल पड़ीं। उनके घाव भर गये और उनकी पीड़ा दूर हो गयी।

'लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणःसुमहादचुतेः
सशल्यस्तां सामाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा।
विशल्यो विरुजः शीघ्र मुदतिष्ठत्
महितलात्। यु. का. ५६/१४

महाभिषगाचार्य सुषेण ने उन जड़ी-बूटियों को पीसकर कांतिमान लक्ष्मण को सुंघाया।

शस्त्र पीड़ा से युक्त शत्रुघाती लक्ष्मण उन औषधियों को सूंघते ही शस्त्र-पीड़ा से रहित होकर बिल्कुल नीरोग हो गये और तुरंत पृथ्वी पर से उठ खड़े हुए।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि औषधि का चूर्ण बनाकर लक्ष्मणजी की नासिका में सुंघाया, लगाया, औषधि सूंघते ही वे नीरोग हो उठ खड़े हुए।

यह कहना असंगत है कि संजीवनी बूटी का रस निकालकर पिलाया, जिसके प्रभाव से लक्ष्मण होश में आये। राम-कथा के आद्याचार्य महर्षि वाल्मीकि भगवान राम के समकालीन थे, अतः उनके द्वारा रामायण में वर्णित तथ्य ही सत्य एवं प्रामाणिक हैं।

जो भी हो, नवनीत एकमात्र पाठनीय, मननीय अथवा संग्रहणीय पत्र है, मेरी हार्दिक अनंत शुभ कामनाएं हैं।

—परीक्षित प्रेमी विद्यावाचस्पति, अमरपुर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उमाकान्त मालवीय का ललित निबन्ध

□

प्रेम की प्रतीति

मेरे भीतर यदा-कदा बराबर एक प्रश्न, एक जिज्ञासा, एक कुतूहल अनुगुंजित होते रहते हैं। आखिर यह प्रेम है क्या? मुझे बराबर यह लगा है कि प्रेम भाव के तल पर एक यात्रा है, जो अनुभव से अनुभूति के मध्य संपन्न होता है। काश! मुझे प्रेम की पूर्ण तो क्या, न्यूनतम आंशिक प्रतीति भी होती। तिस पर तुर्रा यह कि मैं प्रेम की प्रतीति के संदर्भ में कुछ लिखने बैठा हूं। 'We look before and after and pine for what is not' प्रेम के आसपास का आभास, एक अनुमान कभी-कभी मेरे अंदर से होकर गुज़रता है। मैं मात्र इतने से निहाल हो जाता हूं। इससे अधिक की पात्रता ही नहीं रही, फिर पाता कहां से? पाने की वांछा के लिए प्रेम में कोई गुंजाइश नहीं है। प्रेम में मात्र देना होता है, देना भी ऐसा, जिसमें दाता के अहं का निषेध होता है। अहं तो क्या, देने के गौरव और तोष की भी मुमानियत होती है। देना भी ऐसा कि जिसमें रीझना-सीझना और छीजना, रीतना और बीतना, चुकना और व्यतीत होना, तिल-तिल-कर रेशा-रेशा स्वयं के संपूर्ण को दे देना होता है। देना भी ऐसा जिसमें दाता को देने की एक कृतज्ञता, एक आभार की विनम्र प्रतीति होती है। प्रेमास्पद ने मेरा देना स्वीकार कर मुझ पर कृपा की है। उसने करुणावश मेरे अकिंचन देने को स्वीकार किया है, यह उसकी असीम अनुकंपा है, यह उसका अपार अनुग्रह है। प्रेमी ठेरता है, पुकारता है, वह चिनगी चुगता है, याचना नहीं करता। प्रेम एक तल्लीनता है। प्रेम एक तन्मयता है। मुझे नहीं मालूम कब मनुष्य ने इस भाव को प्रेम के नाम से अभिषिक्त किया? मुझे नहीं मालूम कब यह भाव मनुष्य के अंतःकरण में शब्द बनकर उतरा? प्रेम भले एक शब्द हो तथापि नितांत लौकिक धरातल पर भी वह एक अलौकिक निःशब्द छंद है। एक शब्दातीत लय, भाव, स्वर, नाद, ध्वनि और अनुगूंज है। यह एक शब्द है, निरा शब्द नहीं, छूंछा शब्द नहीं, वह अर्थ, बोध और मर्म से संपन्न है। यह एक क्वारी, अनाघ्राता सुगंध है।

प्रेम जब पाने की वांछा करता है तो वह अत्यंत घिनौना हो जाता है। उसका आग्रह होता है 'Love me and love

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

my dog' परंतु वह, जो प्रेमी है वह अपने प्रियतम से कहता है, 'तुझे चाहूं, तेरे चाहने वालों को भी चाहूं।' इंद्र-धनुष में सात रंग होते हैं, प्रेम के रंगों की गणना संभव है क्या? प्रेम पूर्ण विसर्जन की मांग करता है, या यूं कहें कि प्रेम में एक पूर्ण विसर्जन अथवा समर्पण घटित होता है? इस संपूर्ण विसर्जन अथवा समर्पण के अभाव में प्रेम की अवतारणा संभव ही नहीं है। कबीर कहते हैं—

प्रेम गली अति सांकरी यामें दुइ न समाय
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाय।

प्रेम पूर्ण उत्सर्ग की अपेक्षा करता है। जेठ की तपती धूप, कुंए की जगत से लगे पत्थर पर गागर रस्सियों के आने-जाने से, उसकी रगड़ से एक हलका-सा गड्ढा बन गया है, जिसमें बमुश्किल तमाम चुल्लाभर चम्मच पानी है और वहीं एक पक्षी जोड़ा मरा पड़ा है। कोई राहगीर, जो संयोगात् सहृदय है, वह पूछता है, 'जल के रहते यह पक्षी प्यासे ही क्यों मर गये?' उत्तर मिलता है—

जल थोड़ा नेहा घना, लगो प्रीति को बान,
दुपी तुपी कहि मरे एहि विधि त्यागे प्रान!

संस्कृत कवयित्री विकटनितंबा अथवा निर्लज्जिका कहती है। प्रणय परिणय प्रीति संभोग का वास्तविक मूल्य तो ऊर्णनाभ अर्थात् मकड़ा देता है, क्योंकि मादा ऊर्णनाभ सुख की चरमस्थिति में होती है, तो वह मकड़े का सिर काट-

कर खा जाती है, वस्तुतः यही है प्रेम का मूल्य, जिसे प्रेमी हौसले से देता है—

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं
सीस उतारे भुंई धरै तब पैठे घर माहिं।

ऊर्णनाभ जानबूझकर चेतना के धरातल पर यह मूल्य नहीं देता, ऐसा हम कह सकते हैं, परंतु सीस उतारकर भुंइ धरने की बात जब कबीर कहते हैं, तो उनका तात्पर्य है, सीस अहंकार का प्रतीक है, उसके पूर्ण त्याग के उपरांत ही प्रेम-सदन में प्रवेश संभव है।

प्रेम नितांत वैयक्तिक निजी अनुभूति है, इसमें किसी का साझा नहीं है। प्रेम उत्सर्ग मांगता है, प्रेमी प्रतिदान की अपेक्षा ही नहीं करता। प्रेम की प्रतीति परमात्मा की प्रतीति है। यह विश्वात्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से निखिल ब्रह्मांड से एकात्म होने का पर्याय है। यह सीमित है, यह निस्सीम है। मैंने कहा न इसके अनेक रंग हैं –

घटके मैं इक मुख्तसर सा लमहा हूं,
बढ़के मैं एक नातमाम अरसा हूं।

यह ढाई आखर का एक बीजमंत्र है, जिसकी सिद्धि में ही सब कुछ है। यह शिव-पार्वती है, जिनकी परिक्रमा में ही प्रथम पूज्य गणेश अखिल की परिक्रमा का श्रेय प्राप्त करते हैं। इसकी सिद्धि में ही जीने की, जीने की क्या, मरने की भी सार्थकता है। कबीर यहां फिर हमारी सहायता करते हैं।

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पण्डित भया न कोय,
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै, सो पंडित होय।

प्रेम एक पिराता हुआ एहसास है, एक सहता-सहता, एक अनसहता-अनसहता-सा दर्द है –

जो मैं ऐसा जानती प्रीति किये दुख होय
नगर ढिंढोरा पीटती प्रीति न करियो कोय।

जिनके पांव बिवाई न गयी हो, वह इस 'पीर' को क्या बूझेगा ? घायल की गति घायल ही जानता है –

एक किरकिरी के पड़त नैन होंय बेचैन,
वे नैना कैसे जियें जिन नैनन में नैन !

प्रेम गूंगे का गुड़ है, यह वह लड्डू जिसे खाय तो पछताय, न खाय तो पछताय। मुगल शहज़ादी की रुसवाई न हो, मात्र इतने के लिए प्रेमी दरोगा देग में आलू की तरह उबल जाता है, उफ़ नहीं करता।

प्रेम रस पीकर जिया जाता नहीं
प्यार भी जीकर किया जाता नहीं
बिन बिंधे कलियां हुईं हिय हार क्या
कर सका कोई सुखी हो प्यार क्या ?

अलग-अलग रहने की तकलीफ जब बर्दाश्त से बाहर हो गयी तब महान प्रेमी भगवान शंकर ने पार्वती से कहा आओ हम दैहिक धरातल पर भी नित्य अभिन्न हो जायं। फलतः वे अर्धनारीश्वर हो गये। कुछ समय पश्चात् शिव ने सोचा, यह कैसी अभिन्नता ? न चुंबन का सुख, न आलिंगन का सुख, न परिरंभण का सुख, न प्रतीक्षा का सुख और तब एक शाश्वत अद्वैत ने द्वैत मांग लिया। शिव और उनकी नित्य-प्रिया पार्वती अलग-अलग हो गये। जीव और परमात्मा का द्वैत जब ब्रह्म को खलने लगा तो उसने कहा, 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' परंतु यह क्या ! यह अकेलापन, यह एकांत, एक सुनसान वीरान सन्नाटा, यह तो उसका काम्य नहीं था, उसने फिर इच्छा की 'एकोऽहं बहु-स्याम' और सृष्टि पैदा हुई, उसे उसका अभीप्सित मिला। यह प्रेम है, जो जीवन को, जगत को धारण करता है, यह प्रेम है जो उपनिषद् का रसमय ब्रह्म है, यह प्रेम है जो रसप्रधान सृष्टि करता है।

प्रेम के अनेक रंग हैं। उसकी अनेक मुद्राएं हैं, उसकी अनेक भंगिमाएं हैं, उसके अनेक तेवर हैं, कभी शालीन, कभी सौम्य, कभी शोख तो कभी चुलबुली, कभी उदास तो कभी प्रफुल्ल। प्रिय अपनी अनु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पस्थिति में जब विशिष्ट रूप से उपस्थित रहता है तो वही विरह कहा जाता है। उस अवधि का विशिष्ट योग ही वियोग है। प्रिय का मिलन केवल एक अवसर अथवा मौका नहीं है। उस अवधि में संपूर्ण योग घटता है, इसलिए वह संयोग है। वह जब भीतर की ऊष्मा में रसता-बसता है, शनैः शनैः मद्धिम आंच में पकता है तो गोपियों का वह तर्क प्रस्तुत होता है, जिसके सामने निर्गुणवादी उद्धव स्वयं को निरुत्तर पाते हैं और 'नेकु कही बैनन अनेक कही नैननि सों रही सही सोऊ कहि दीन हिचकीन सों' की उस आकंठ गद्‌गद् स्थिति में स्वयं को पाते हैं, जिस स्थिति का चित्र गोस्वामीजी पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं 'अतिसय पुलक प्रीति अति बाढ़ी, सजल नयन रोमावलि ठाढ़ी।'

स्वकीया पद्‌मावती के अनुराग रंग में रंगे डूबे गीतगोविन्दकार महाकवि जयदेव, पद्‌मावती चरण चारण चक्रवर्ती हो गये। परकीया रामी ने चंडीदास को प्रेम की अन्यतम अंतरंग झांकी दिखलायी। जब एडवर्ड अष्टम के भीतर महान प्रेम का आविर्भाव होता है तो वे मैडम सिंपसन के लिए ब्रिटिश सिंहासन का तृणवत् त्याग कर देते हैं। प्रेम सीमाएं स्वीकारता है, प्रेम सभी सीमाएं, लौकिक मर्यादाएं अस्वीकारता है। उसके अधीन धर्म एवं मृत्यु का देवता यम सहोदरा यमी की कामना करता है। वर्ड्‌सवर्थ बहन डोरोथी की कामना करता है। यह सब एडिपस ग्रन्थि किंवा ब्रह्मा और सरस्वती प्रकरण के उन्माद अपराध अथवा पातक बोध के तहत नहीं होता।

राम और भरत के चरणों के बीच अयोध्या का राज्य फुटबाल बन जाता है। प्रेम है, जो बरसात की बढ़ी यमुना को पार करने के लिए शव का सहारा देता है, सर्प को रज्जु बनाता है और इन सोपानों से होता हुआ राम तक की यात्रा संपन्न कराता है।

प्रेम कभी ममता है तो कभी दुलार, कभी वात्सल्य है तो कभी स्नेह, कभी राग है तो कभी विशेष राग अर्थात् विराग है, कभी रूप है तो कभी शृंगार, कभी रस है तो कभी मान, कभी रूठना तो कभी मनाना। कभी प्रेम के वशीभूत परात्पर प्रभु 'छछिया भर छाछ' पर नाचता है तो कभी 'साटी लिये उगलावत माटी' की प्रताड़ना झेलता है। कभी—'जब धनुष बाण लेव हाथ' अथवा 'आज जो हरिहिं न शस्त्र गहाऊं' की आन के आगे अपनी आन तिनके की तरह तोड़ देता है और पराजय में सुख महसूस करता है। कभी शबरी के जूठे बेर खाता है, कभी दुर्योधन के मेवा छोड़कर साग विदुर घर खाता है। कभी गज तो कभी पांचाली की टेर पर दौड़ता है, तो कभी 'नैनन के जल सों पग' धोता है। कभी पिता बाबर के शत्रु राणा सांगा की विधवा रानी कर्मवती की टेर पर हुमायूं, कभी बेलु नाचियार की टेर पर टीपू सुलतान की तरह राखी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद

किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद.

सुपर रिन से नियमित धुलाई करने पर आपके कपड़ों में ऐसा फ़र्क आये कि दूर से दिखे. किसी दूसरी डिटर्जेंट टिकिया या बार के मुकाबले सुपर रिन कहीं अधिक सफ़ेदी लाता है, क्योंकि सुपर रिन में अधिक सफ़ेदी की शक्ति है.

आज़माइए और सबूत पाइए:

किसी अन्य डिटर्जेंट बार से धोया हुआ

सुपर रिन से धोया हुआ

सुपर रिन

अधिक सफ़ेदी की शक्ति से भरपूर

लिंटास-RIN. 35-1511 HM

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बंद भाई बनकर अपनी सल्तनत खतरे में डालता है।

वह पति परायणा है, सुंदर भी है। इसमें उसका क्या दोष है? मनिहार उसे चूड़ी पहनाने के लिए उसका हाथ अपने हाथ में लेता है, इतना सुंदर हाथ जितनी देर हाथ में रहे अच्छा है, वह जानबूझकर एक-एक चूड़ी कलाई तक पहुंचने के पहले चटका देता है। उसे यह अपेक्षा है कि जब तक अंतिम चूड़ी तक उसके पास बाकी है, कम से कम तब तक तो सुंदरी का हाथ उसके हाथ में रहेगा। साध्वी ने मनिहार का अभिप्राय भांप लिया। चूड़ी चटकने पर, हाथ पर किसी खरोंच के लगने पर वह शायद 'सी' करे, पर ऐसा नहीं होगा, वह कहती है—

सगरी चूरी फोर दे रे मनिहार गंवार
सीतोपी की सेज पर निकस गयी इक बार।

डाक्टर, वैद्य, हकीम शरीर के धरातल पर मात्र कुछ संवेगों को ही प्रेम का भ्रम कहता है। दार्शनिक देह को मात्र रक्त, मज्जा, मवाद, पीव, कफ़, पित्त, मल-मूत्र ही मानता है। मनोचिकित्सक उसे केवल कुछ विकार मानता है। वैरागी नारी को नरक की खान कहता है। कुत्ते की दीठि चिथड़े पर। वह, जो काम, रति, क्यूपिड, साइको वीनस, अफ़ोदिते के माध्यम से गुज़रता हुआ, उसका अतिक्रमण कर प्राणों का अंतरंग सखा बन जाता है, वह जो आत्मा का नित्य केलि सखा है, वहां तक पहुंचने की डाक्टर, वैद्य, हकीम, मनोचिकित्सक, दार्शनिक, वैरागी की भला क्या विसात हो सकती है?

कागा सब तन खाइयो चुन चुन खइयो मास
दो नैना मत खाइयो पिया दरस की आस।

के आग्रह को यदि यह नहीं समझ पाते तो इसमें इनका क्या दोष? यह तो इन बेचारों की सीमा है। यह हमारे आक्रोश के नहीं, दया और सहानुभूति के पात्र हैं।

जैसे नन्हा शिशु बरसाती पानी पर कागज़ की नाव विसर्जित कर देता है वैसे ही लैला-मजनू, शीरी-फरहाद, सोहनी-महीवाल, हीर-रांझा, रोमियो-जूलियट ने अपने प्रेमास्पद के लिए प्राणों का विसर्जन कर दिया। वैसे ही अपने प्रेमास्पद देश के लिए, स्वर्गादपि गरीयसी मातृभूमि, जननी जन्मभूमि के लिए, भगत सिंह जैसे लोग प्राणों की बलि चढ़ा देते हैं, फांसी का झूला झूलते हैं, गोली खाते हैं, लाठियां झेलते हैं, कृष्ण-मंदिर जेल की यात्रा करते हैं।

प्रेम निजता वैयक्तिकता का अतिक्रमण करता हुआ जब निर्वैयक्तिक होता है तो मनुष्य स्वयं को एक अभय में स्थित पाता है। जिस हौसले से हम चाय का प्याला उठाते हैं, उसी हौसले से उतनी ही सहजता से, गिरिधर प्रेम माती मीरा विष का प्याला उठा लेती है। मीरा, जिस 'पिया की सेज' सूली पर होने का संकेत देती है उसे मंसूर और ईसा सूली पर प्राप्त करते हैं। हव्वा खातून चिनार वनों में अपने प्रिय की तलाश में अलख जगाती है। भटकती फिरती है कस्तूरी मृग-सी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

There's something very different about this machine distributed by Batliboi

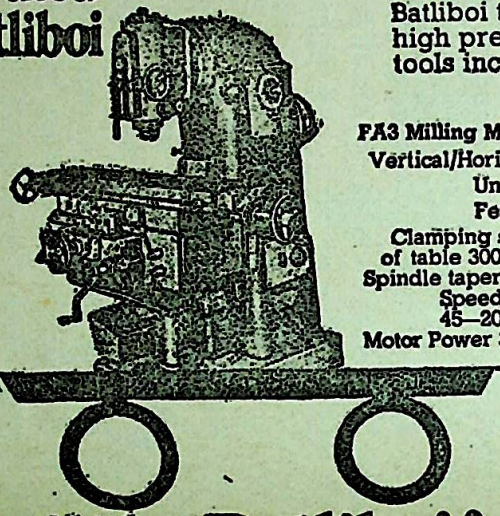

Batliboi have emerged as manufacturers of fine machine tools in their own right—not just the people known for distribution, service and export.

At Udhna in Gujarat, Batliboi turn out superb high precision machine tools including

Drilling machines, Shaping machines, Tapping machines and Milling machines... Shown here are three from the range.

Call on Batliboi for your needs. Our total engineering capabilities are at your service.

FA3 Milling Machine
Vertical/Horizontal/
Universal
Features:
Clamping surface
of table 300 x 1250
Spindle taper ISO 40
Speed range
45—2000 rpm
Motor Power 3.7 kw.

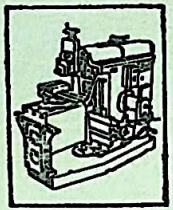

It's built by Batliboi!

BATLIBOI

BATLIBOI A COMPANY Ltd.

Regd. Office: P.B. No. 190A,
V. B. Gandhi Marg,
Fort, Bombay 400 023.
Branches and Dealer network
ALL OVER INDIA.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृपालु पाठकों से नम्र निवेदन

कागज़ की निरंतर बढ़ती महंगाई और छपाई के खर्चों में होती जा रही वृद्धि के कारण हमें जनवरी - १९८२ से नवनीत के चंदे की दरों में वृद्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है। आशा है कि नवनीत के कृपालु पाठक नवनीत को अपना पूर्ववत् स्नेह प्रदान करते रहेंगे और उसे अपने बहुमूल्य सुझावों से लाभान्वित करते रहेंगे।

जनवरी १९८२ से नवनीत के चंदे की नयी दरें :

भारत में : १ वर्ष : २८ रु; दो वर्ष : ५४ रु.; ३ वर्ष : ८० रु.।

विदेशों में (समुद्री डाक से) : १ वर्ष : ८० रु.; २ वर्ष : १५० रु.; ३ वर्ष : २२० रु.।

सीलोन, पाकिस्तान, बांग्लादेश :

१ वर्ष : ४० रु.; २ वर्ष : ७८ रु.; ३ वर्ष : ११५ रु.।

विदेशों में हवाई डाक से : (पाकिस्तान, श्रीलंका, अफगानिस्तान और वर्मा)

१ वर्ष : १२५ रुपये। अन्य सभी देशों के लिए २०० रुपये।

एक प्रति : २·७५ रुपये।

—व्यवस्थापक

यद्यपि उसका प्रिय बारंबार बराबर टेरता है 'मोको कहां ढूंढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।' ऊर्ध्वबाहु संकीर्तन रत चैतन्य प्रेम-भाव में मूर्च्छित हो जाते हैं। कबीर असंग होकर 'ना काहू से दोस्ती ना काहू से वैर' घोषित करते हुए सबकी ख़ैर मांगते हैं। तुलसी अपने राम को सर्वत्र देखते हैं और उद्घोष करते हैं 'सियाराम मय सब जग जानी, करहुं प्रणाम जोरि जुग पानी'। ज्ञानेश्वर भैंस की पीठ पर पड़ती डंडे की मार को अपनी पीठ पर महसूस करते हैं। रामेश्वराभिषेक के लिए सुरक्षित गंगाजल संत एकनाथ प्यासे गधे को पिला देते हैं। नामदेव कुत्ते के पीछे घी चुपड़ी रोटी लिये दौड़ते हैं। मंसूर सूली पर भी अनलहक घोषित करते हैं। सरमद अपने बध के लिए नंगी तलवार लिये आते जल्लाद में भी अपने प्रिय का दर्शन करते हैं। ईसा सूली पर भी हत्यारों को क्षमा किये जाने की प्रार्थना करता है। युग को बुद्ध, वर्धमान और गांधी मिलते हैं। 'सर्वे भवंतु सुखिनः' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे उदात्त भाव केवल अलंकरण नहीं वरन् आचरण से समर्थित एक सहज मानसिक स्थिति होत हैं।

प्रेम की यह प्रशस्ति, यह स्तोत्र, यह स्तवन अथवा प्रार्थना मात्र इसलिये ताकि प्रेम के उदात्त स्वरूप का प्रसाद हममें उपलब्ध हो। प्रसाद ही क्या, हम प्रेम के प्रसाद स्वरूप, संपन्न स्वरूप को प्राप्त हों।

—रामेश्वरम्, ए-१११, मेंहदौरी गृहस्थान योजना, इलाहाबाद-४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय विद्या भवन

पुस्तक बिक्री विभाग

भवन के चुने हुए हिन्दी प्रकाशन

शीर्षक	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१–कृष्णं वन्दे जगद् गुरुम् (कलात्मक सज्जा, सचित्र : प्लास्टिक आवरण के साथ : रियायती मूल्य)	घनश्यामदास विरला	१२३	रु. १०-००
२–बापू की प्रेम प्रसादी (चार खंडों में : कड़े कपड़े की जिल्द : रियायती मूल्य)	,,	१-५१५ २-४१८ ३-४०८ ४-४९२	रु. १०-०० प्रत्येक खंड
(प्रथम खंड अप्राप्य)			
३–भगवान स्वामिनारायण के वचनामृत	अनुवाद : राम-वल्लभ शास्त्री	६४२	६०-००
४–श्रीवेणुगीतम्	आर. कलाधर भट्ट	२८७	३५-००
५–योग और विद्यार्थी	योगाचार्य हंसराज यादव	२०४	१२-५०
६–राष्ट्रनिर्माता सरदार पटेल	आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री	२६०	१०-००
७–विश्वनागरी	रामेश्वर कन्हैयालाल लोहिया	८२	१५-००
८–भारतीय विद्या	डा. श्रीधर भास्कर वर्णेकर	१२६	६-००
९–विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर	इलाचन्द्र जोशी	२८२	४-००
१०–प्राचीन भारतीय मनोरंजन	मन्मथ राय	३३९	५-२५
११–भारतीय संस्कृत और इतिहास	डा. बैजनाथ पुरी	२५२	५-००
१२–भारतीय संविधान के सिद्धान्त	चन्द्रभान अग्रवाल	३५७	१०-००
१३–रवीन्द्र रत्नाकर	रघुवंशलाल गुप्त	१८४	५-००
१४–बद्रीनाथ की ओर	क. मा. मुन्शी	६६	१-००
१५–गीता का प्रेरक तत्व जीवन योग	काका साहेब कालेलकर	३८	१-००
१६–महानता के दृष्टान्त	योगाचार्य हंसराज यादव	१३२	३-००

प्राप्ति स्थान :

भारतीय विद्या भवन, कुलपति मुन्शी मार्ग, बम्बई–४०० ००७

तथा उसके सभी केन्द्रों पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्या मार्क्सवादी मुक्ति-बोध पूजा-पाठ करते थे?

□

समीक्षाकार राजेन्द्र मिश्र से श्रीमती शान्ता मुक्तिबोध की बातचीत

राजेन्द्र मिश्र – आप मुक्तिबोधजी के समूचे जीवन-संघर्ष की साक्षी और सहयोगी रही हैं। उनसे परिचय की शुरुआत किस तरह हुई? आरंभ में उनकी किन विशेषताओं ने आपको प्रभावित किया?

शान्ता मुक्तिबोध–हम लोग एक दूसरे के परिवार से पहले से ही परिचित थे। मुक्तिबोधजी से भी मिलना-जुलना होता था। मैं उनकी सहजता और पढ़ने-लिखने के प्रति अभिरुचि से काफी प्रभावित हुई। नेमीचंद्र जैन, प्रभाकर माचवे, वीरेन्द्र कुमार जैन जैसे मित्रों से वे घंटों बहस और बातचीत करते, हमेशा कुछ सोचते-उलझते से दीखते। उनका ऐसा व्यक्तित्व ही मेरे आकर्षक का आधार बना।

रा. मि. – उस समय की और कोई स्मृति?

शां. मु. – स्मृतियां तो बहुत हैं, लेकिन यहां सिर्फ एक ही बात बताना चाहूंगी। हम दोनों ने विवाह का निश्चय कर लिया था। मेरे परिवार की ओर से कोई विरोध नहीं था, पर उनके माता-पिता तैयार नहीं थे। मुक्तिबोधजी चाहते थे कि वे विवाह माता-पिता की उपस्थिति में ही करें। उन्होंने पिताजी को समझाने की बहुत कोशिश की। अंत में वे सब राजी हो गये।

रा. मि. – गृहस्थ के रूप में वे कैसे थे?

शां. मु. – सबका बहुत अधिक खयाल रखते थे, मेरा और बच्चों का भी। समय आने पर घर का सब काम बिना संकोच करते थे। मैं अक्सर बीमार रहती थी। वे घर की व्यवस्था की पूरी देख-रेख करते थे। आप जानते हैं कि आर्थिक दृष्टि से हम लोग सदैव परेशान रहते थे। वे बच्चों के लिए बहुत कुछ करना चाहते थे। जब कभी नहीं कर पाते थे, दुखी हो जाते और हट जाते थे। मित्रों का साहचर्य उन्हें बेहद पसंद था। वे सब हमारे परिवार के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

11,25,51,101* श्रेष्ठ उपहार!

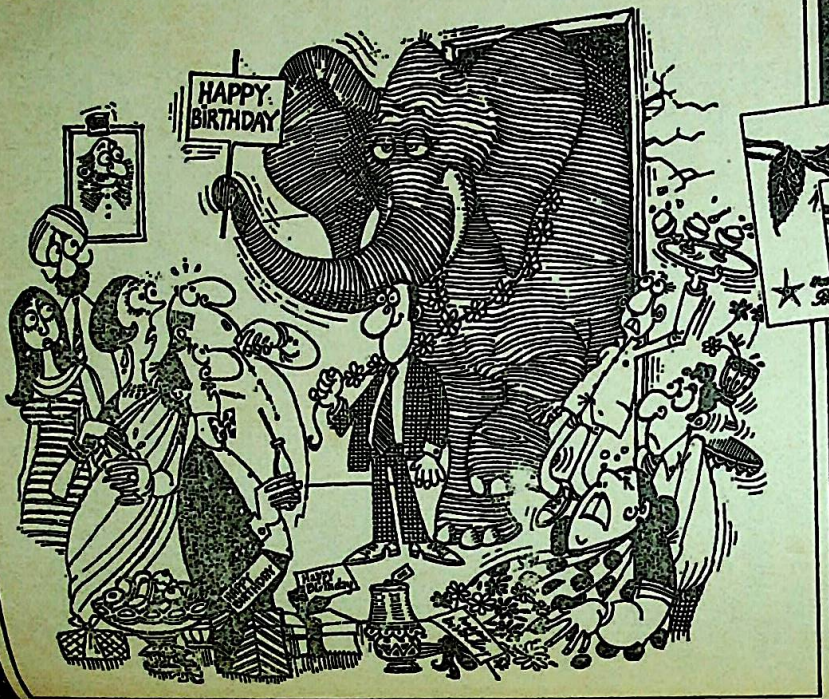

हर मौके का तोहफा एक बैंक ऑफ इंडिया का उपहार-चेक पाने वाले के मन भाए, मनचाही खरीद कर पाए.

दिखने में लुभावने और साथ ही साथ रु. 11, रु. 25, रु. 51, और रु. 101 की राशियों में उपलब्ध.

बैंक ऑफ इंडिया के उपहार चेक बैंक की सभी शहरी और कस्बाई शाखाओं में उपलब्ध हैं और भारतभर की किसी भी शाखा में भुनाए जा सकते हैं.

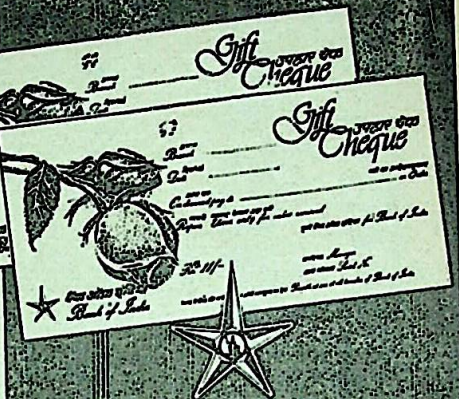

बैंक ऑफ इंडिया
(भारत सरकार का उपक्रम)

उपहार चेक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही अंग थे। बाहर से आये मित्र जब कहीं और ठहर जाते तो नाराज़ होते थे।

रा. मि. – उनकी आदतों को लेकर क्या कभी आप परेशान रहती थीं ?

शां. मु.–नहीं। हां मैं यह ज़रूर चाहती थी कि वे समय पर सब काम कर लें। जो देती हूं खा लें–बच्चों को न दें। स्वस्थ रहें। मेरे टोकने से नाराज़ हो जाते और कुछ देर बाद मुझे समझाते थे। जो पैसे मिलते मुझे दे देते थे। मैं प्रयत्न करती थी कि उतने में ही व्यवस्था करूं। फिर भी आर्थिक चिंता तो बनी ही रहती थी।

रा. मि. – मुक्तिबोध प्राय: एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थान में जाते रहे। उन स्थानों से जुड़ी स्मृतियों का क्या आप उल्लेख करेंगी ?

शां. मु. – श्रीपत और अमृतजी तथा विशेषरूप से गोविंद प्रसाद अग्रवाल के आग्रह से मुक्तिबोधजी बनारस गये। त्रिलोचनजी से अक्सर मिलना-जुलना होता था। कभी-कभी इलाहाबाद जाते थे और वहां पंतजी और प्रकाशचंद्र गुप्त से मिलते थे। गोविंद प्रसाद अग्रवाल के आग्रह से फिर जबलपुर आये। यूं तो आर्थिक तंगी हमेशा रही, पर नागपुर में हम लोग अधिक परेशान थे। सरकारी नौकरी थी। सी. आई. डी. वाले भी उन्हें घेरते थे। वेतन बहुत कम मिलता था। फिर भी मित्रों के बीच प्रसन्न रहने का प्रयत्न करते थे। रामकृष्ण श्रीवास्तव, शैलेन्द्रकुमार, भीष्म आर्य, भाऊ समर्थ, प्रमोद भैया आदि उनके ऐसे मित्र थे, जिन्हें वे घर का ही सदस्य मानते थे। श्रीकांत भैया भी बिलासपुर से कभी-कभी आते थे। इन सबके आने से वे चिंताओं के बीच भी राहत महसूस करते थे। शरद कोठारी के प्रति उनके मन में स्नेह था और उनके आग्रह से ही वे राजनांदगांव आये। राजनांदगांव में मन की नौकरी मिल गयी थी। जमकर लिखना चाहते थे। प्रसन्न थे। किशोरीलाल शुक्ल का सम्मान करते थे और शुक्लजी भी उनका खयाल करते थे। हर कष्ट में वे पूरा साथ देते थे।

रा. मि. – उनकी साहित्यिक अभिरुचियों के बारे में क्या आप कुछ बतायेंगी ?

शां. मु. – एक बात कह सकती हूं कि व काफी तकलीफ से रचते थे। रचनाओं को लेकर खूब श्रम करते थे। एक ही कविता को बार-बार लिखते थे। हर समय ऐसा लगता था कि वे कुछ भीतर-ही-भीतर सोच रहे हैं। रच रहे हैं। पढ़ने का उन्हें नशा था। संसार में कहां क्या हो रहा है, उसे जानना चाहते थे। जब कोई इस सिलसिले में उनसे कुछ पूछता तो विस्तार से वे उसे समझाते थे। कई कवियों की कविताएं उन्हें याद थीं। मीरा, तुलसी, ज्ञानदेव, रवीन्द्रनाथ, तुकाराम, माखनलाल चतुर्वेदी, निराला आदि की कविताओं की कभी-कभी आवृत्ति करते थे।

रा. मि. – और भी कोई अभिरुचि ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

MUCH-AWAITED BOOK NOW ON SALE!
To BE READ, RE-READ AND PRESERVED!

Srimad Bhagavatam

By

KAMALA SUBRAMANIAM

With A Foreword

By

GHANSHYAMDAS BIRLA

(Printed on Superior Map Litho Paper, Royal Octavo Size, pp. 672, Full cloth bound with an attractive jacket.)

Price Rs. 75.00

The *Bhagavatam* has been aptly described as the spiritual butter churned out of the ocean of the Veda Milk for the benefit of those "who are pure in heart, free from malice and envy, and are keen to hear it." Dry philosophy seldom appeals to the human mind. But in the *Bhagavatam* even the most abstruse philosophic truths are put across by means of stories and legends. This is the secret of its popularity among all classes of people.

Available from :

Bharatiya Vidya Bhavan

Kulapati K. M. Munshi Marg,
Bombay-400 007

And its Kendras.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शां. मु. – वे शास्त्रीय संगीत ही नहीं, सुगम संगीत भी पसंद करते । घर में रेडियो नहीं था, इसलिए पड़ोस में जाकर या और कहीं सुनते । फिल्म देखने का भी शौक था । सुबह-शाम घूमने जाते । न केवल उगते, बल्कि डूबते सूरज को देखना वे पसंद करते थे । पक्षियों को खुले में देखकर प्रसन्न होते । पिंजड़े के भीतर बंद पक्षियों को देखकर दुःखी होते। वे ऐसे किसी भी शौक के खिलाफ थे, जो औरों को पराधीन बनाता है । वे मनुष्य को ही नहीं, पशु-पक्षियों को भी आज़ाद देखना पसंद करते थे। मानते थे कि आज़ादी का अपना सुख ही नहीं, सौंदर्य भी होता है । बंद कमरे में उनका दम घुटता था । आते ही वे सभी खिड़कियां खोल देते थे ताकि हवा और प्रकाश आ सके, आता रहे ।

रा. मि. –गरीब और अपढ़ लोगों से वे किस तरह व्यवहार करते थे ?

शां. मु. – उनसे खूब सहजता से मिलते, बातें करते। संभव हुआ तो अपनी सीमा में मदद भी करते थे । उनका विश्वास था कि कभी-न-कभी उनकी स्थितियों में अंतर जरूर आयेगा । किसी पर भी अविश्वास करना नहीं चाहते थे । अपढ़ और गरीब लोग भी उनके आत्मीय थे । लोहिया और राजेन्द्र प्रसाद जैसे नेताओं के प्रति उनके मन में श्रद्धा थी, क्योंकि वे गरीब का अर्थ जानते थे ।

रा. मि. –क्या ईश्वर पर भी उनका विश्वास था ?

शां. मु. – था । सुबह के समय लघुरुद्र की पोथी पढ़ते । महादेव की एकाग्र चित्त से उपासना करते । शिवरात्रि के दिन उपवास करते । एक बार शमशेरजी भी शिवरात्रि के दिन ही राजनांदगांव आये थे । यह जानकर कि मुक्तिबोधजी का उपवास है, उन्होंने भी उपवास रखना चाहा । शादी के बाद माता-पिता के साथ हम लोग महाकाल के मंदिर में गये थे । जब कभी उज्जैन जाते महाकाल के दर्शन के लिए जरूर जाते थे ।

रा. मि. – अपनी कविताओं का संग्रह प्रकाशित करने के लिए क्या उन्होंने पहले कोई यत्न किया ?

शां. मु. – किया था । अमरावती के रामरतनजी को एक संग्रह दिया था । वह कभी प्रकाशित नहीं हुआ । उसमें कुछ ऐसी भी कविताएं थीं, जो अभी भी अप्रकाशित हैं ।

रा. मि. – वात्स्यायनजी से उनके संबंध कैसे थे ?

शां. मु. – उनका वे सम्मान करते थे । उनकी नई कविताएं सुनना और अपनी कविताएं उन्हें सुनाना चाहते थे । उन्हें पत्र भी कभी-कभी लिखते थे और उनके पत्र की प्रतीक्षा भी करते थे ।

रा. मि. – 'मुक्तिबोध' प्रसंग कैसा लगा ?

शां. मु. – अच्छा लगा । मणि कौल ने

(शेषांश पृष्ठ ३२ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीअरविन्द आश्रम की एकान्त साधिका
सुश्री श्यामकुमारी अग्रवाल की कहानी

□

कृष्ण कार्तिकेय

यमुना का नीला जल वह रहा था। नीली लहरों में नीले कमल खिले थे। गोकुल के नीले आसमान में नील लोहित रंग के बादल छाये थे। बादलों का रंग बिलकुल कनु जैसा था। उस दिन यशोदा मैया के मन में आया,

'आज अपने कनु को नीले रंग के कपड़े पहनाऊंगी, नीले फूलों से सजाऊंगी।'

'कनु! आ मेरे लाल। तुझे वन जाने के लिए तैयार कर दूं।' मैया ने पुकारा। मैया के पास बहुत-सी नीली-नीली चीजें देखकर दौड़ा आया कनु। यशोदा रानी ने लाड़ले कनु को उबटन मलकर नहलाया, सुंदर-सा रेशमी कुर्ता पहनाया, नन्ही-सी धोती बांध दी। गले में नीलम की माला पहनायी, हाथों में नीले फूलों के गजरे लपेटे, माथे पर नीली बिंदी लगायी। कनु का मुख बादलों के बीच चमकती बिजली-सा दमक रहा था। अब मैया ने चमकीले मोरपंखों का मुकुट घुंघराली अलकों पर लगा दिया।

नीला रंग, नीली आंखें, नीला मुकुट, नीली बिंदी, नीलम की माला, और नील कमलों का हार—कनु तो 'नील-कनु' बन गया था। इतने में किसी ने मैया को पुकारा। मैया अंदर चली गयी। कनु कभी अपने नीले रेशमी कपड़ों को देखता था, कभी अपने नील कमल को। सिर ऊपर-नीचे करने पर उसके मकुट में लगे मोर-पंख हिलते जाते थे। कनु मोर जैसा लग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा था।

वृंदावन में अनेक मोर रहते थे। वे कनु को देखने के लिए केऊं-केऊं करते, बार-बार नंद भवन के ऊपर से उड़ा करते थे। आकाश में छाये बादलों को देखकर मोर खुशी से अपने पंख फैलाकर नाचने थिरकने लगे, कभी कनु के घर की छत पर, कभी दीवार पर, कभी आस-पास के पेड़ों पर। ऊपर मोर उड़ रहे थे, नीचे मोर - मुकुटी कनु, उनके साथ-साथ भागता था।

अचानक मोर के एक बच्चे ने कनु की ओर देखा। उसने कनु के मुकुट में लगे मोर-पंखों को देखा तो समझा—यह भी कोई मोर का बच्चा है वह उड़ आया और केऊं-केऊं करता कनु के पास बैठ गया। कनु अपने इस नये मित्र से मिलकर बहुत खुश हुआ। वह मोर के बच्चे को देखकर ताली बजा-बजाकर हंसने लगा। अपने बच्चे को कनु के पास बैठे देखकर मोर-मोरनियां भी आंगन में आ गये और खुशी से पंख फैलाकर नाचने लगे। सारा आंगन नीला-नीला लग रहा था। लगता था नीले पंखों की लहरें उठ रही हैं।

चित्र : डा. विष्णु भटनागर

कनु का मन मोर की सवारी करने को हुआ। वह उछलकर एक मोर पर जा बैठा। कनु के छूने से, उसके स्पर्श से, मोर को बड़ा आनंद आया। कनु, प्यारा कनु बैठा था न उसके ऊपर। उसने पंख फैला कर उनका छत्र-सा लगा दिया कनु के पीछे और आंगन के एक किनारे से दूसरे किनारे तक फुदकने लगा।

घर का काम करके आंगन में आयी यशोदा रानी। अरे! कहां गया मेरा कनु? ये इतने मोर कहां से आये? मैया ने व्याकुल होकर इधर - उधर देखा, कहीं किसी मोर ने चोंच तो नहीं मारी मेरे कनु को? मैया ने सोचा। अचानक मैया को मोर के ऊपर कोई देवता दिखाई दिये। उन दिनों कृष्ण-दर्शन करने रोज कोई न कोई देवता गोकुल आया करते थे। मैया ने समझा आज कार्तिकेय आये हैं। उन्होंने झट प्रणाम किया। कनु अपने मोर को मैया की ओर बढ़ा रहा था। वह सोचने लगा, 'मैया किसे प्रणाम कर रही है?'

कनु ने कहा, 'मैया! देख मैं कार्तिकेय बन गया हूं। मैं मोर पर सवारी कर रहा हूं। अब मैं मोर पर बैठकर गाय चराने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सखी की पुकार

श्यामकुमारी अग्रवाल

हे वासुदेव !
एक दिन, अपनी सखी की पुकार से
विचलित हो, पात्र में चिपके
शाक का कणमात्र, खाकर
कर दिया था तुमने तृप्त समस्त भतों को।
आज होती यदि कोई ऐसी सखी तुम्हारी
पुकार सकती जो तुम्हें
तुम्हारे द्युलोक से, यहां
कुंठा, वेदना, छलना, असत्य, मृत्यु के अनेक
दुर्वासा, जहां चिर शापित मानवता
को ग्रसते निरंतर नये शापों से
अपवित्रता के, पशुता के।
और तुम बस एक बार
जीवन-पात्र के गरल की एक बूंद
पीकर, कह देते यदि–
'पवित्र हो जगत के समस्त भूत'–
तो शुचिता के कितने स्वर्णिम आयाम
बिखर जाते पृथ्वी पर !

वन जाया करूंगा।'

मैया चकित रह गयी, 'अरे कनु, उतर, नीचे उतर। मोर के ऊपर भी कहीं कोई बैठता है ?' वह बोली।

'क्यों नहीं ? तू ही तो बताती थी कि कुमार कार्तिकेय मोर पर सवार होकर राक्षसों को मारने जाते हैं। मैं भी मोर पर सवार होकर गाय चराने वन जाया करूंगा।' कनु ने उत्तर दिया।

मां घबरायी। यह तो एक नयी मुश्किल हो गयी। फिर कुछ सोचकर वह अंदर गयी और एक टोकरी फल ले आयी। उसने कनु से कहा, 'कनु ! तेरा मोर थक गया होगा। ले इसे कुछ फल खिला।'

'अरे ! यह मेरा मोर भूखा है। यह थक गया होगा। ला मैया, अच्छे-अच्छे, मीठे-मीठे फल दे मुझे मैं इसे खिला दूं।' जल्दी-जल्दी, दोनों हाथों में फल भर-भरकर कनु मोरों को खिलाने लगा। मोर-मोरनियां और उनके बच्चे उस दिन से रोज नंद भवन आते थे। कनु के हाथ से कुछ खाने को, कुछ पाने को।

एक दिन कनु अकेला बैठा था कदंब के तले। उसके हाथ में एक नील कमल था। वह कुछ सोच रहा था, कुछ गा रहा था। इतने में कंस का एक राक्षस उधर आ निकला। कनु को अकेला देखकर वह बहुत खुश हुआ। उसने सोचा, 'आज अच्छा मौका मिला है। इस बालक को मारकर महाराज कंस से खूब इनाम पाऊंगा। किंतु यह बालक देखने में तो छोटा है किंतु है बड़ा बली। इसने तो पूतना जैसी राक्षसी को मार दिया था। मुझे सोच-समझकर काम करना पड़ेगा।'

कुछ सोचने के बाद राक्षस एक हरा सांप बन गया। वह हरी घास में से रेंगकर कनु को डसने के लिए उसकी ओर बढ़ा।

(शेषांश पृष्ठ १४४ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आचार्य डा. विजयेन्द्र स्नातक के आत्मीय और गहन चिन्तनशील पत्र-संग्रह

अनुभूति के क्षण

पर डा. प्रभाकर श्रोत्रिय की समीक्षा

डा. विजयेंद्र स्नातक हिंदी के उन प्रमुख वरिष्ठ आलोचकों में हैं, जिनकी संवेदनशील विद्वत्ता और अनवरत रचनाशीलता से लेखकों की अनेक पीढ़ियों ने प्रेरणा पायी है। संस्कृत की लंबी परंपरा में अधीत डा. स्नातक नवीनतम साहित्य के भी इतने ही मर्मज्ञ हैं, जितने प्राचीन साहित्य के। ऐसी जीवंतता और प्रवाह के लिए जिस तरह की सहृदयता और सहजता आवश्यक होती है, वह उनके व्यक्तित्व में रची-बसी है, ओढ़ी हुई नहीं। जीवन के सातवें दशक में भी उनकी सरस्वती उतनी ही ग्राहक, सचेत और उत्फुल्ल है। ज्ञान गंभीर व्यक्तित्व में ऐसी दुर्लभ सहजता सचमुच एक विशिष्ट उपलब्धि है। कोई दो दर्जन महत्वपूर्ण ग्रंथों के लेखक डा. स्नातक की नवीनतम पुस्तक में आज भी लोग बड़ी उत्सुकता और ताजगी अनुभव करते हैं।

डा. स्नातक की नयी पुस्तक 'अनुभूति के क्षण' उनके १५ पत्रों का एक महत्वपूर्ण संग्रह है। इन पत्रों में से कुछ तो सर्वथा व्यक्तिगत हैं, लेकिन इनमें भी जीवन के ऐसे सामान्य और सर्वास्वादी तत्त्व हैं, जिनकी वजह से ये पत्र व्यक्तिगत शैली में लिखे ललित निबंधों का स्तर प्राप्त कर सके हैं; कुछ निबंध सामयिक समस्याओं को लेकर उनका बेबाक चिंतन प्रस्तुत करते हैं। इनमें भी किसी तरह का उलझाव और बनावट नहीं है। कुछ पत्र इनके बीच के हैं जो व्यक्तिगत प्रसंग और सार्वजनिक प्रश्नों को एक साथ झेलते हैं। पत्रों में संबोधित करने का भाव अक्सर नहीं है। हर जगह बातचीत का लहजा और अपने को प्रेषित करने की निरभिमानी इच्छा ही प्रकट हुई है। भाषा—डा. स्नातक की चिरपरिचित ही है क्योंकि उनकी आलोचनाएं भी भारी भरकम शब्दों में पांडित्य प्रदर्शित नहीं करतीं, संवाद की सहजता और समझाने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की रागात्मकता उसमें हर कहीं झलकती है। उनका अध्यापक अन्य गुरुओं की तरह अपने को ऊपर रखते हुए गंभीरता के प्रदर्शन से हमेशा बचा है, बल्कि अध्यापक का आश्वासन और आत्मीयता ही उनके हिस्से में आयी है, जो गहरी से गहरी बात कहते हुए भी एक समावेशी तरलता से भरा होता है। कम से कम आलोचक का यह स्वरूप मुझे बहुत आकर्षित करता है। यह स्पष्ट कर दूं कि सहजता, कोमलता, आत्मीयता आदि का अर्थ लिजलिजापन नहीं है। व्यक्तित्व की निष्कपट दृढ़ता डा० स्नातक की विशेषता है।

पत्र-साहित्य संबंधी पुस्तकों में 'अनूभूति के क्षण' मुझे इसलिए भी महत्वपूर्ण लगी है कि उसमें ऐसे चुने हुए पत्र प्रकाशित किये गये हैं, जिनमें पाठक की दिलचस्पी होती है। हर एक पत्र सोद्देश्य है। सामान्य औपचारिक पत्रों की ऐसी भीड़ यहां नहीं है जो पिछले दिनों प्रकाशित कुछ साहित्यकारों के पत्रों की पुस्तकों में है। समझ में नहीं आता कि महंगाई के इस ज़माने में निरर्थक पत्रों को मोटी-मोटी जिल्दों में क्यों प्रकाशित किया जाता है। यह पुस्तक पत्रों की खदान नहीं, संशोधित स्वर्ण-राशि है। और जैसा मैंने कहा है कि व्यक्तिगत पत्र भी इसमें सार्वजनिक रुचि के हैं। इसलिए न केवल पत्र-पत्रिका के संपादकों को लिखे, वरन मित्रों, विद्वानों, शिष्यों, स्वजनों को लिखे पत्र भी पठनीय और मननीय हैं। यहां तक कि उत्तर-पुस्तिकाएं जांचने की ऊब से संबंधित पत्र भी हमारी परीक्षा प्रणाली, मूल्यांकन की समस्याओं के साथ ही अपने समय की अनेक विसंगतियों को रेखांकित करता है।

धर्मयुग, नवनीत जैसी पत्रिकाओं के संपादकों को लिखे पत्र यद्यपि लेखनुमा हैं, लेकिन उनमें भी पत्र-शैली, व्यक्तिगत स्पर्श से, औपचारिकता का दवाव कम करती है। एक विद्वान, मननशील व्यक्ति की निजी राय कई बार वैसी निजी होती भी नहीं, उसके साथ बहुत-सी अनुभव, ज्ञान और चिंतन-संपदा अपने आप चली आती है। कई पत्रों में ऐसे अनेकानेक संदर्भ हैं, जिनसे यह बात ऊपरी तौर पर भी प्रमाणित होती है। इसीलिए कहा जा सकता है कि विद्वान विचारक का कोई भी शब्द, कोई भी पुर्ज़ा अकेला और निस्सहाय नहीं होता, अधीत ज्ञान और चिंतन-राशि का उस पर दबाव होता है। पत्रों के शीर्षक जिस तरह दिये गये हैं, उनसे भी प्रकट होता है कि विषय और उद्देश्य को लेकर लिखे गये पत्र मात्र आत्माभिव्यक्ति और सीमित संबोधन नहीं हैं।

व्यक्तिगत पत्रों में बनाव-रचाव नहीं होता, लेकिन जो पत्र प्रकाशन के उद्देश्य से लिखे जाते हैं उनके पीछे एक चौकन्नापन और सर्वांगीणता आवश्यक होती है, बल्कि ऐसा होना स्वाभाविक है। यह अंतर नितांत व्यक्तिगत स्तर पर लिखे गये और सार्वजनिक स्तर पर लिखे पत्रों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में यहां भी दिखाई देता है। लेकिन क्योंकि डा. स्नातक की शैली आलोचना और गद्य-लेखन में भी बनाव पसंद नहीं करती, इसलिए, इन पत्रों में भी यह अंतर बहुत स्पष्ट नहीं है। हां, वे स्वयं इन पत्रों को कोरे पत्र नहीं, अंतरंगता में व्यक्त विचार मानते हैं :

'मैं मानता हूं कि अभिव्यक्ति की शैलियों में पत्र से अधिक आत्मीय और अंतरंग कोई और शैली नहीं है। बिना किसी दुराव-छिपाव के, बिना किसी कृत्रिमता या आडंबर के दो दूरस्थ व्यक्तियों को जिस संवाद-सेतु से पत्र जोड़ता है वैसा सहज-संयोजन का माध्यम मेरी दृष्टि में दूसरा नहीं है। पत्र से अधिक प्रिय माध्यम दूसरा नहीं... यह तो आप भी मानेंगे कि पत्र में अभिव्यंजना के सौष्ठव की पत्र-लेखक चिंता नहीं करता...'

कहना तो डा. स्नातक का ठीक है, लेकिन अगर यह अभिव्यंजना-सौष्ठव लेखक के व्यक्तित्व का हिस्सा ही हो तो पत्र में बिन बुलाये ही चला आता है। यही डा. स्नातक के इन पत्रों में भी हुआ है।

एक उदाहरण पर्याप्त होगा : 'दफ्तरों में दो तरह के बाबू हैं। सफेदपोश बाबू हर काम को करने का वायदा करेगा—लेकिन काम करेगा इसमें संदेह है। काले कोट वाला बाबू मुस्तैद है किंतु उसकी मुस्तैदी में काला पैसा ही स्पंदन करता है। रेलवे स्टेशन पर आपको काला कोट ना-ना करता भी हां-हां का संकेत देता है। वह संकेत काले कोट की जेब का है जिनमें सफेद पोश का काला पैसा बड़ी सहजता से सरक जाता है...।'

स्पष्ट ही यह शैली पत्र होते हुए भी ललित निबंध की है। इसमें भाषा का जो चुस्त और प्रतीकात्मक प्रयोग है उसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं। कहना सिर्फ इतना है कि लेखक ने अपने पत्रों के बारे में अभिव्यंजना सौष्ठव को लेकर नम्रतापूर्वक जो कहा है, उनके आकर्षक और मार्मिक पत्र उसे प्रमाणित नहीं करते। जिस पीढ़ी के डा. स्नातक हैं, यह भाषा उससे आगे की है, नितांत प्रवहमान। हां, कहीं-कहीं, पत्र जमे हुए से, एक धीमी गति में भी चलते हैं लेकिन आमतौर पर ऐसा नहीं हुआ है।

डा. स्नातक का संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर समान अधिकार है। इसलिए भाषा के अनेक विध प्रयोग हैं। उनके ज्ञान और अन्वेषण की झलक भी पत्रों में है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को लिखा गया पत्र इस दृष्टि से अधिक उल्लेखनीय है।

मार्मिकता और नितांत संवेदनशीलता को प्रकट करने वाले तीन पत्रों को मैं इस पुस्तक में सबसे ऊपर रखना चाहूंगा, वे हैं : डा. ओमप्रकाश को संबोधित पत्र, श्री भवानी प्रसाद मिश्र और अपनी पुत्री स्नेह सुधा को लिखा गया पत्र। अपने क्षेत्र की समस्याओं से संबंधित पत्रों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संपादकों को लिखे पत्रों के अलावा श्री भारद्वाज को लिखा पत्र भी महत्वपूर्ण है। साहित्य-समीक्षा से संबंधित दो पत्र हैं, दोनों ही श्रेष्ठ और उत्तरदायी पत्र हैं—डा. शिवप्रसाद सिंह और रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' को उनकी कृतियों पर लिखे पत्र। दो पत्र बड़े रोचक हैं, घटना और शैली दोनों दृष्टियों से, वे हैं—डा. प्रभात और डा. विश्वंभरनाथ उपाध्याय को लिखे गये पत्र।

एक बात मुझे विस्मित करती है और कुछ अस्वाभाविक भी लगती है कि कोई व्यक्ति इतने बड़े-बड़े पत्र कैसे लिख सकता है? कुछ पत्र तो पुस्तक के १५-१६ पृष्ठों में छपे हैं यानी लिखित रूप में वे २०-२२ पृष्ठों से छोटे नहीं रहे होंगे। क्या कोई ऐसा अवाध अंतःस्रोत होता है जो पत्रों में थम ही नहीं पाता? चलिये अंतःस्रोत हो तब भी ठीक है—ऐसे पत्र गठे हुए और विश्लेषणपरक भी हैं। लगातार ५-६ घंटे बैठकर एक पत्र लिखने की कल्पना भी मैं नहीं कर सकता। पत्र इतनी लंबी कालावधि में बिखरे हुए हैं कि वे प्रकाशन के इरादे से लिखे गये हों, यह सोचा ही नहीं जा सकता। पुस्तक पढ़ते हुए मुझे बराबर यह कठिन परिश्रम और नितांत गहरे उद्देश्य के प्रति आत्मीय संलग्नता प्रभावित किये रही। मुझे स्मरण नहीं है कि ऐसे लंबे पत्र इतनी संख्या में मैंने कहीं अन्यत्र पढ़े हों।

यह पुस्तक डा. विजयेंद्र स्नातक की ईमानदारी, सहिष्णुता, सजगता, विद्वत्ता और मार्मिक सहजता से प्रभावित करती है। कथ्य के स्तर पर विविधता, व्यापकता और सोद्देश्यता ही इन पत्रों की विशेषताएं हैं। वस्तुतः यह पत्र-शैली में लिखी एक उल्लेखनीय और संग्रहणीय पुस्तक बन गयी है। ऐसी कृति का निश्चय ही स्वागत होना चाहिये।

ऐसी विशिष्ट पुस्तक निस्संदेह संग्रह करने योग्य और मनन करने योग्य है।

अनुभूति के क्षण; लेखक : डा. विजयेंद्र स्नातक; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; २२ रुपये।

□

(पृष्ठ २५ का शेषांश)

काफी श्रम किया है। यदि नई शुक्रवारी और वसंतपुर के कुछ दृश्य फिल्म में आ जाते तो और अधिक अच्छा होता। मेरी इच्छा थी कि उनकी सभी पुस्तकें और लेख ठीक से प्रकाशित हों, यह पूरी हुई।

रा. मि. —क्या आप और कुछ कहना चाहेंगी?

शा. मु. — (इस सवाल के उत्तर में उनकी आंखें गीली हो गयीं। रुकते हुए धीरे-धीरे बोलीं) 'आज वे नहीं हैं, लेकिन लगता है कि हैं और भविष्य में भी बराबर होंगे।'

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

भवन की पत्रिका 'भारती' से समन्वित

नवनीत

मनुष्य के नवोत्थान का सूचक;
जीवन, साहित्य और संस्कृति का मासिक

प्रार्थना

मा प्रगाम पथो वयं
मा यज्ञात न्द्र सोमिनः।
माऽन्तः स्तु नों अरातयः।।

हे परमात्मन्! हम सन्मार्ग को त्यागकर न चलें।
ऐश्वर्ययुक्त होते हुए भी हम यज्ञ को छोड़कर न चलें।
अदान भाव हमारे अन्दर न ठहरें।

ऋक् १०.५७.१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मान्कोजी बोठाले

सावित्रीबाई खानोलकर

मान्कोजी बोठाले का जन्म जिस काल में हुआ था, वह काल महाराष्ट्र के लए विपदा का काल था। अकाल के साथ-साथ विधर्मियों ने महाराष्ट्र को त्रस्त कर रखा था। ये विधर्मी घरों और खलिहानों को तो लूटते ही मंदिरों को भी ध्वस्त कर देते थे। अपने धार्मिक स्थानों और गरीब प्रजा की यह दुर्दशा युवक मान्कोजी से नहीं देखी जाती थी। वह अपने साथियों के साथ मिलकर विधर्मियों की योजनाओं को निष्फल बनाने में लगा रहता था।

पठान शासक ने मान्कोजी को सबक सिखाने के उद्देश्य से ५०० सशस्त्र पठानों को उसके गांव की ओर रवाना किया। भाले के प्रयोग में चतुर वीर मान्कोजी ने अकेले १३० पठानों के आक्रमण को व्यर्थ बना दिया, और शेष को उनके साथियों ने पराजित किया। पठान शासक ने जब अपनी सेना की इस हार के बारे में सुना तो उसे दुख तो हुआ, मगर इस बात का हर्ष भी हुआ कि शत्रु के रूप में ही मान्कोजी के रूप में एक ऐसा व्यक्ति तो मौजूद है, जो वास्तव में शूरवीर है। उसने मान्कोजी का सम्मान करने का निश्चय किया।

०००

मान्कोजी का जन्म सोलहवीं सदी में हुआ था, और वे संत एकनाथ के समकालीन थे। उनका पैतृक घर सासवड नामक गांव में था, लेकिन अकाल के कारण उनके माता-पिता पहले तुल्जापुर आये, और बाद में बोल घाट स्थित धामण नामक स्थान में आकर रहने लगे। मान्कोजी का जन्म धामण में ही हुआ। वह बचपन से ही बड़ा स्वस्थ और बलशाली था। भाला चलाकर शिकार करने में उसने बचपन से ही महारत हासिल कर ली थी। उसका विवाह, कम आयु में हो गया था, लेकिन विवाह के कुछ समय बाद ही उसके माता-पिता का देहांत हो गया, और वह अनाथ होकर रह गया।

एक दिन वह अपने चाचा से मिलने पंढरपुर आया, तो वहां उसे पांडुरंग के प्रख्यात मंदिर में विट्ठल की मूर्ति के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके मन में भक्ति के भाव उमड़ पड़े। भक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की इस धारा में वह ऐसा बहा कि कई दिनों तक लगातार मूर्ति के सामने बैठा रहा और विट्ठल का ध्यान करता रहा। विट्ठल मान्कोजी की इस निश्छल भक्ति से बड़े प्रसन्न हुए, और वे प्रतिदिन एक बालक का रूप धारण कर उसके लिए खाने की थाली लाते रहे। खाना देने के बाद, पांडुरंग अपना असली रूप धारण कर लेत, और उसे प्रशिक्षण देते। इस प्रकार, मान्कोजी के नाम के आगे 'बोठाले' (जिसे सिखाया गया हो) शब्द जुड़ा।

जब धामण लौटने का समय आया, तो मान्कोजी को विट्ठल से बिछुड़ते हुए बड़ा कष्ट हुआ। विट्ठल की मूर्ति के दर्शन उसे निरंतर होते रहें, इस उद्देश्य से उसने विट्ठल की मूर्ति की एक प्रतिकृति तैयार करवायी, और उसे अपने साथ धामण ले गया।

धामण पहुंच कर, वह सदा इस मूर्ति के सान्निध्य में रहने लगा। इतना ही नहीं, पांडुरंग की एकांत भक्ति के कारण उसे सर्वत्र पांडुरंग ही दिखायी देने लगे; हर वस्तु में पांडुरंग और हर व्यक्ति में पांडुरंग। पांडुरंग के मार्ग-दर्शन द्वारा उसे मांडक गुफ़ा में स्थित विरुपक्ष मठ में जाने की प्रेरणा मिली, जहां उसे आध्यात्मिक संतोष तो मिला ही, भगवान दत्तात्रेय के दर्शन भी हुए।

उन दिनों महाराष्ट्र अकाल से पीड़ित था। मान्कोजी एक किसान थे, मगर जब अकाल पड़ा, तो प्रत्येक व्यक्ति में पांडुरंग के दर्शन करने वाले मान्कोजी ने अपना सारा अनाज अकाल-पीड़ितों में वितरित कर दिया। बीज के रूप में इतना अनाज भी न बचा कि वे अगले वर्ष के लिए अनाज बो सकते। गांववालों ने उन पर कृपा करके उन्हें बीज दिये, लेकिन जब दुबारा अनाज उत्पन्न हुआ, तो मान्कोजी ने सारा अनाज पंढरपुर जाने वाले वारकरियों में वितरित कर दिया।

जब फ़सल का समय आया, तो उन्होंने बीज के स्थान पर नदी के किनारे से रेत लाकर अपने खेत में बिछा दिया। लेकिन, पांडुरंग की कृपा से रेत के कण ही बीज में बदल गये, और अच्छी फ़सल पैदा हुई।

ooo

मुसलमान शासकों ने तभी किसानों पर एक नया कर लगाया। मान्कोजी उस कर को देने में असमर्थ थे, इसलिए उन्होंने अपनी मकान मालकिन से कुछ ऋण देने को कहा, जो उसने नामंजूर कर दिया। लेकिन, पांडुरंग एक महार का रूप धारण कर आये, और वह कर अधिकारियों को दे आये।

अगली फ़सल पर भी मान्कोजी के पास बोने के लिए बीज न थे, इसलिए उन्होंने कद्दू के बीज बो दिये। सब गांववालों ने उनकी हंसी उड़ाते हुए कहा, 'इतने सारे कद्दू आखिर तुम रखोगे कहां?'

(शेषांश पृष्ठ १२३ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीअरविन्द जयन्ती : १५ अगस्त प्रसंगे

राष्ट्र भी स्वयं में एक व्यक्ति है

श्रीअरविन्द

'राष्ट्र की आत्मा नहीं होती, अपितु राष्ट्र भी व्यक्ति के समान, मूलतः एक आत्मा ही है। और राष्ट्र-आत्मा सामुदायिक होने के कारण, व्यक्ति-आत्मा की अपेक्षा अत्यंत जटिल होती है!' प्रस्तुत है, श्रीअरविन्द की राष्ट्र-कल्पना, स्वयं उन्हीं के शब्दों में।

भूमि तो देश का एक बाह्य आवरण मात्र है। उसकी सच्ची देह तो वे पुरुष और स्त्रियां हैं, जो राष्ट्र-ईकाई के निर्माता हैं। और यह देह एक निरंतर परिवर्तनशील व्यक्ति की देह के समान सदा वहीं रहने वाली है।

पश्चिम में राष्ट्र को वस्तुनिष्ठ दृष्टि से ही देखा गया है, और वहां पर शासक, प्रजा, और विचारक समान रूप से अपने-अपने राष्ट्रीय अस्तित्व को ही सही मानते रहे हैं। राजनीतिक स्थिति, अपनी सीमाओं के विस्तार, अपनी आर्थिक समृद्धि की उत्तरोत्तर वृद्धि, अपने नियम, अपनी संस्थाएं, तथा उनके कार्य—इस भ्रांत दृष्टिकोण के कारण ही प्रत्येक राष्ट्र अपने आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों एवं गतिविधियों को ही प्रधानता देता आया है, तथा अन्य उद्देश्यों पर तरजीह देता आया है। वास्तव में, प्रत्येक राष्ट्र की आत्मा इन प्रवृत्तियों की परिधि और पृष्ठभूमि में ही काम करती रही है।

राष्ट्र भी, व्यक्ति के समान, मूलतः एक आत्मा ही है। राष्ट्र की आत्मा नहीं होती, अपितु राष्ट्र भी व्यक्ति के समान एक आत्मा है। और, राष्ट्र-आत्मा सामुदायिक होने के कारण, व्यक्ति-आत्मा की अपेक्षा अत्यंत जटिल होती है। राष्ट्र-आत्मा की अनुभूति बाद में आती है, पहले तो वस्तु-निष्ठ राष्ट्र-चेतना ही सामने आती है।

यह वस्तु-निष्ठता राष्ट्र के उस सामान्य भावुकतापूर्ण विचार में बड़ी उत्कटता से प्रकट होती है, जो इसके भौगोलिक अर्थात् अत्यंत बाह्य और स्थूल रूप में ही केंद्रित रहता है। दूसरे शब्दों में, यह वस्तु-निष्ठता जिस देश में हम रहते हैं, जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारी पितृभूमि और जन्मभूमि है, उसके प्रति उत्कट प्रेम के रूप में सामने आती है। किंतु वस्तु-निष्ठ राष्ट्र-चेतना से उच्चतर है, अनुभव-निष्ठ राष्ट्र-चेतना, जो राष्ट्र की भूमि को उसकी सच्ची देह नहीं मानती।

राष्ट्रीयता

राष्ट्र की आत्मपरक सत्ता का एक अस्पष्ट-सा भाव सामुदायिक मानसिकता के बाह्य तल पर भी सदा काम करता है।

राष्ट्र की आध्यात्मिक सत्ता है। राष्ट्र-प्रेम का स्वाभाविक रूप वैसा ही है, जैसा पुत्र का माता के प्रति प्रेम। और यही कारण है कि राष्ट्रीयता को 'देश' नाम से जाने जाने वाले किसी भौगोलिक क्षेत्र के प्रति कोई मोह या लगाव नहीं होता।

राष्ट्रीयता न बुद्धि का गणित है, न सांख्यिकी का कोई निष्कर्ष, और न किसी अर्थशास्त्री द्वारा प्रस्तुत नीरस आंकड़े। वास्तव में, वह एक साधना है, एक धर्म है।

राष्ट्रीयता केवल राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है। वह भगवान-प्रदत्त एक धर्म है। वह एक ऐसा सिद्धांत है, जिसके अनुसार हमें जीना है। जिसे राष्ट्रवादी बनना है, उसे इस धर्म और सिद्धांत को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना होगा। उसे धार्मिक भाव से राष्ट्रीयता के धर्म को स्वीकार करना होगा, यह स्मरण रखते हुए कि वह परमात्मा का एक साधन है।

राष्ट्र में भागवत एकता के साक्षात्कार की भावनापूर्ण आकांक्षा ही राष्ट्रीयता है। इस एकता में अवयवभूत सब व्यक्ति, चाहे उनके कार्य राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक तत्त्वों के कारण ऊपर से कितने ही विभिन्न और असमान प्रतीत होते हों, वास्तव में वे मूलतः एक और समान ही होते हैं।

भारत जिस राष्ट्रीयता के आदर्श को विश्व के सामने रखेगा, उसमें मानव-मानव, जाति-जाति और वर्ग-वर्ग के बीच समानता अनिवार्य होगी।

जो लोग भारत के उद्धार के लिए वचनबद्ध हो चुके हैं, और इस उद्देश्य से अपने प्राण समर्पित करने को भी तैयार हों, उनमें कठोर उद्यम, प्रबल राष्ट्रप्रेम, लोहे के समान दृढ़ता और प्रज्वलित अग्नि के समान तेज का संचार होना ज़रूरी है।

अखंडस्वरूपा भारतमाता

राष्ट्रीयता का स्वरूप भावात्मक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वदेश की मातृभक्ति से प्रेरित होकर ही सच्ची देशभक्ति संभव है। देशभक्ति की इसी भावना से हर प्रकार की सामाजिक विभिन्नताओं और मत-विभिन्नताओं के रहते हुए भी अखंड देश या राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। स्वदेश-प्रेम ही सात्विक भाव है। हम भारतीयों के मन में देश-प्रेम का सात्विक भाव उदित होने के अर्थ हैं, विविध वेशरूपिणी, विशाल भारतमाता का साक्षात्कार।

जिस दिन हम भारतीय अखंडस्वरूपा माता की मूर्ति का दर्शन कर लेंगे, उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर उसके लिए जीवन का उत्सर्ग करने के लिए उन्मत्त हो जायेंगे, उस दिन सारी बाधाएं स्वयमेव दूर हो जायेंगी, और भारत की एकता, स्वाधीनता और उन्नति अत्यंत सहज और सुगम हो जायेगी।

मैं भारत को पृथ्वी का खंडमात्र नहीं मानता। भारतमाता पृथ्वी का एक टुकड़ा नहीं है, वह शक्ति है, देवी है। भारत जननी परमात्मा की एक शक्ति, माता, देवी, जगज्जननी काली ही है, मात्र रूप-विशेष का अंतर है। जन्म देने वाली मानवी माता, भारतमाता और जगज्जनी शक्ति—तीनों की उपासना ही व्यक्ति-कल्याण का सही मार्ग है। जिस प्रकार भारतजननी की उपासना में मानवी माता का अतिक्रम करते हुए भी उसे भुलाया नहीं जाता, उसी प्रकार जगज्जननी की उपासना में भी भारत जननी का अतिक्रम करते हुए, उसे भी विस्मृत नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह भी काली है, मां है।

हमारा देश भगवती माता है। जब तक कोई प्रेम और निंदा के साथ वैसा न कर सके, तब तक किसी को उसकी निंदा नहीं करनी चाहिए।

राष्ट्रधर्म और राष्ट्रप्रेम

राजनीति राष्ट्र-निर्माण का एक अंग मात्र है। राष्ट्रधर्म के अंतर्गत राजनीति, राष्ट्र के लिए वैसी ही उपयोगी हो सकती है, जैसे शिक्षा, विज्ञान, साहित्य या दर्शन। आध्यात्मिक राष्ट्रीयता का प्राणतत्त्व यह राष्ट्रधर्म ही है।

राष्ट्र-निर्माण के काम में लगे कर्मयोगी का आदर्श क्या हो, राष्ट्रधर्म क्या है इसकी स्पष्ट कल्पना मेरे मस्तिष्क में है। हमने अपने सामने जो काम रखा है, वह यांत्रिक नहीं है, अपितु नैतिक और आध्यात्मिक है। हमारा लक्ष्य किसी सरकार को बदलना मात्र नहीं है, बल्कि एक नये राष्ट्र का निर्माण करना है। हमें अपनी सारी शक्ति राजनीति के काम में व्यय नहीं करनी है, और न उसे केवल ब्रह्मविद्या, दर्शन, विज्ञान, साहित्य या सामाजिक प्रश्नों में ही लगाना है। वस्तुतः, ये सब विषय एक ही परम विषय के—जिसे हम धर्म या राष्ट्रीय धर्म के रूप में जानते हैं, और जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होने के अतिरिक्त, सार्वभौम भी है—अंतर्गत मानते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राष्ट्र मातृशक्ति है, जगज्जननी का एक छोटा-सा रूप। इसी कारण, राष्ट्र-प्रेम प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वाभाविक कर्तव्य है, उतना ही स्वाभाविक, जितना माता के प्रति पुत्र का प्रेम होता है। राजनीति में प्रेम का स्थान तो है, परंतु केवल उस प्रेम का, जो स्वदेश, स्वदेश-बंधुओं, जाति के गौरव, उत्कर्ष व सुख, अपने देशवासियों के हितार्थ आत्माहुति के दिव्य आनंद, उनके कष्टों के निवारण से प्राप्त हर्ष, अपने देश व स्वतंत्रता के लिए बहते रक्त को देखने के आनंद तथा मरणोपरांत पूर्वजों से मिलने की क्षमता के लिए हो।

मातृभूमि की मिट्टी और भारत के सागरों से बहते पवन के झकोरों के स्पर्श से भारत के पर्वतों से प्रवाहित होने वाली नदियों, भारतीय जीवन के दृश्यों, वेश-भूषाओं, त्योहारों और रीति-रिवाजों को देखने से, भारतीय भाषाओं, संगीत और काव्यों को सुनने से प्राप्त होने वाले सुख की अनुभूति ही राष्ट्रप्रेम-वृक्ष का मूल है। अपने अतीत का अभिमान, अपने वर्तमान की वेदना, तथा भविष्य के लिए तीव्र आकांक्षा इस राष्ट्रप्रेम-वृक्ष के स्कंध तथा शाखाएं हैं। देश के लिए आत्माहुति, उसके लिए अपनी सुध-बुध भूल जाना, उसकी सेवा तथा उसके लिए अपार कष्ट-सहिष्णुता इस वृक्ष के फल हैं, और उसे जीवित बनाये रखने वाला जीवन-रस है-देश में परमात्मा के मातृत्व का साक्षात्कार, माता का दर्शन और अनवरत ध्यान, उसकी आराधना और सेवा।

राष्ट्रप्रेम की वेदी पर

प्रत्येक राष्ट्र के इतिहास में ऐसे क्षण भी आते हैं, जब भाग्य उसके सामने एक ही कार्य, एक ही उद्देश्य प्रस्तुत कर देता है। ऐसा कार्य और उद्देश्य, जिसके लिए प्रत्येक वस्तु का, चाहे वह स्वयं कितनी भी आवश्यक क्यों न हो, बलिदान करना ही पड़ता है। हमारी मातृभूमि के इतिहास में भी ऐसे क्षण आ गये है, जब उसकी सेवा करने से बढ़कर और कोई प्रीतिकर कार्य मुझे नहीं लगता। (श्री अरविन्द ने कुछ दिन पहले ही बंगाल नेशनल कॉलेज के प्राचार्य-पद से त्यागपत्र दिया था)। अब हमें अपना हर कार्य इसी उद्देश्य को सामने रखकर करना है। छात्रों से मैं कहता हूं कि यदि तुम अध्ययन करना चाहते हो, तो उसी के लिए अध्ययन करो। यदि अपने तन, मन और आत्मा को प्रशिक्षित करना चाहते हो, तो इस प्रशिक्षण का उद्देश्य देश-सेवा ही होना चाहिये। जीविका कमाओ तो उसी के हेतु जीवन बिताने के लिए। सुदूर विदेशों में जाओ तो इसी-लिए कि वहां से जो ज्ञान संपदा लेकर लौटो, उससे मातृभूमि की सेवा कर सको। जो भी कार्य करो, अपने राष्ट्र को समृद्ध करने के उद्देश्य से करो। कष्ट सहन करो इसलिए कि तुम्हारे राष्ट्र को अंत में आनंद प्राप्त हो सके।

(श्रीअरविन्द के विभिन्न लेखों तथा भाषणों से संकलित)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डा. विद्यानिवास मिश्र का सांस्कृतिक लेख

व्रज की महाभाव चेतना

मैं व्रजवासी नहीं हूं, मैं व्रज के बाहर का आदमी हूं, बाहर वाले की नज़र में व्रज केवल भूगोल और इतिहास नहीं है, केवल देशकाल में बंधी हुई कोई सिद्ध वस्तु या वस्तुराशि नहीं है, वह सब भी है, परंतु उस सबसे अधिक वह भूगोल और इतिहास के बाहर जाने की बेचैनी है, देश और काल की बेचैनी से भरकर देश-काल में व्याप्त चैतन्य-राशि को बेचैन करने वाली रस-प्रक्रिया है, दूसरे शब्दों में बेचैनी को बेचैन करने वाली प्रक्रिया है। व्रज के नायक व्रजबिहारी की पूरी जीवन-यात्रा व्रज है। वे कभी भी थिर नहीं रहे, जनमते ही जेल से बाहर निकले, घुटनों चलना शुरू नहीं किया कि घर से बाहर निकलना शुरू किया, पैरों से चलने-फिरने लगे तो गोकुल छोटा पड़ने लगा, वृंदावन में गऊ चराने के बहाने मुक्त वितान में बांसुरी की तान लहराने गोकुल से निकल पड़े और फिर ऐसा नाटक रचा कि समस्त व्रजवासियों से गांव छुड़ा दिया, सबको वृंदावन में आने के लिए विवश कर दिया। वृंदावन से मथुरा आये, मथुरा से भी निकले द्वारका आये और लीला समेटते समय द्वारका भी छोड़ दी, एक पेड़ का आश्रय लिया। श्रीकृष्ण का वह व्रजन यह परिव्रजन, यह प्रव्रजन, यह वनव्रजन, यही सब तो व्रज है। ऐसे श्रीकृष्ण को यह व्रजभूमि सिर्फ एक बार जन्म नहीं देती, बार-बार देती है, इसीलिए भागवतकार ने कहा—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वद त्रहि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकाः
त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

तुम्हें जन्म देकर यह व्रज धन्य है। यहां इंदिरा सदा बिराजती रहती है। प्रिय, देखो न, प्रत्येक दिशा में तुम्हारी तलाश कर रही हैं अनंत-अनंत गोपियां, तुम्हें नहीं तलाश रही हैं, तलाश रही हैं अपने प्राण-निधि को, उसे, जिसे प्राण सौंप रखे हैं, तुम्हारी तलाश प्राणों की तलाश है, प्राणों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में उच्छ्वसित जीवन की तलाश है।

व्रज का सबसे पुराना संदर्भ शुक्ल यजुर्वेद में मिलता है, यहां अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि हमें गउओं वाले व्रज (गोमंत व्रज) में प्रवेश कराओ। टीकाकारों ने अर्थ किया है, यही गोलोक है, गउएं सूर्य की ऊर्ध्वगामी किरणें हैं, वे उरुशृंग हैं, क्षिप्र गतिशील हैं, वहीं विष्णु का परमधाम है, वहां मधु का झरना बहता है। गउएं किरणें भी हैं, इंद्रियां भी हैं, गीतमय आकुल पुकार भी हैं। इन सबको पहुंचने की चिंता रहती है, वहां तक पहुंचने की, जहां कभी पहुंचना नहीं होता, जहां पहुंचने की साध हमेशा बनी रहती है। व्रज इंद्रियगोचर जगत् है, मनुष्य की भाषा से गोचर जगत् है, मनोगोचर जगत् है और आत्मगोचर जगत् है, एक साथ ही सब कुछ है, जो चर है। सामान्य जीवन, पूरा जीवन, वैसे जीवन का रागरंग, मोह-छोह, मान-मनौवल, विरह-मिलन, तृप्ति-प्यास, सब कुछ व्रज है, क्योंकि इन सब में ही तो व्रजेश्वर श्रीकृष्ण विग्रहवान् होते हैं। जैसे प्रकाश सबको छूता है, सबको बेधता है और सबको रंग-रूप, आकार-गंध और अभितप्त करके रस भी देता है उसी प्रकार व्रजभाव साधारण जीवनचर्या को रसचर्या में रूपांतरित कर देता है। यह रासायनिक प्रक्रिया केवल व्रज की प्रकृति को, इसके करील और कीकर को, इसके कदंब, तमाल को, इसकी धूलि को और इसके अपने आकाश को (जिसमें नारायण राधे-राधे की टेर

असंख्य कण्ठों से लगा रहा है और आकाश उनका धाम न रहकर श्रीराधा का धाम बनता जा रहा है) ही व्रजेश्वर की लीला के संपर्क से प्राप्त है।

इस व्रजभाव में श्रीकृष्ण के ही गुण हैं, इसने देश-देशांतर से नर-नारी को अपनी ओर खींचा है, जाने कितने लोगों को मोहित किया है और यह भाव स्वयं कितनी दूर-दूर तक अपने भावित करने वालों तक गया है, उन लोगों के जीवन-छंद से मोहित होकर उसमें बंधा है। असम, मणिपुर, बंगाल, उत्कल, मिथिला, आंध्र, तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हिमाचल प्रदेश कहां नहीं यह भाव व्रजभाषा के माध्यम से पहुंचा और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहां नहीं यह भाव उन्हीं-उन्हीं स्थलों का हो गया। व्रजभाषा के कवियों की सूची उठाते हैं तो लगता है कि यह सूची पूरे भारत का चित्रपट है। इसमें राव-रंक, हिंदू-मुसलमान, संत-रसिक सब डूबे हैं, सब तिरे हैं। व्रजभाषा इस देश की कोरी साहित्यिक भाषा ही चार-पांच शताब्दियों तक ही नहीं रही, वह प्राणों की झनकार थी, जिसमें शरीर और शरीर के जाति-कुल-प्रतिष्ठा के बंधन उसी तरह टूटकर अलग हो जाते रहे हैं, जैसे श्रीकृष्ण के आविर्भाव के साथ-साथ देवकी-वसुदेव की जंजीरें टूटकर अलग हुई थीं। व्रजभाषा साहित्य को जो लोग भ्रमवश सामंत साहित्य या दरबारी साहित्य कहते हैं, वे भूल जाते हैं कि यह केवल व्रजभाषा साहित्य का प्रभाव था कि बड़े-बड़े सामंत, यहां तक कि अनेक मुगल बादशाह भी इसे सीखने के लिए कवियों और गायकों के आगे सिर झुकाते थे। व्रजभाषा का कवि राज-दरबार में ऊंचा आसन पाता था, शिवाजी और छत्रसाल उस कवि की पालकी अपने कंधों पर उठाते थे और संत कवियों के चरणों में तो मुकुट बिछे रहते थे। इसका कारण यह था कि व्रजभाषा जन-साधारण के कंठ में समग्र भारतवर्ष में चढ़ी हुई थी। अनपढ़ से अनपढ़ व्यक्ति भी व्रजभाषा के पद, दोहे, सवैये और कवित्त सैकड़ों की संख्या में कंठस्थ करता था और इन्हें 'जीवन-मूरि' (जीवनमूल्य) के रूप में संजोकर रखता था। इन्हीं के माध्यम से वह अपने मन को ऊंचा रख पाता था, अपने को मुक्त अनुभव कर पाता था। आज हम जब देश की बात, देश की एकता की भावात्मक स्तर पर करते हैं तो हमें पर्यालोचन करना चाहिये कि कौन-सी वस्तु हमने खोयी कि आज उसका अभाव साल रहा है, वह वस्तु कहां मिलेगी? जयदेव ने, चैतन्य महाप्रभु ने, और श्री वल्लभाचार्य ने यह वस्तु ढूंढ़ी थी, उन्होंने इस देश के प्राणों का स्पंदन व्रजभूमि में पाया था। भक्ति भी यद्यपि कावेरी के तट पर उपजी पर वह बूढ़ी हो गयी, वह जड़ हो गयी, व्रज में यमुना के जल में अवगाहन करके वह फिर नयी हो सकी। इस जनश्रुति का यही तो अभिप्राय है कि व्रजभूमि में एक ज़बर्दस्त भाव-प्रवाह है, जो जड़ता को तोड़ डालता है, चैतन्य को अनावृत कर देता है, राग की शुद्धि करता है। यहां आने पर आदमी अनुभव करता है कि उसके आगे सच्चिदानंद हैं, उसके पीछे सच्चिदानंद हैं, कभी वे उसके कंधे पर हैं और कभी वे बाजी हार गये तो आदमी अपने को उनके कंधे पर चढ़ा हुआ पाता है। व्रज में व्रजन करते हुए आदमी ब्रह्मा की सृष्टि को विस्थापित करने वाली सृष्टि बन जाता है। उसमें सारे संबंध एक संबंध बन जाते हैं या एक संबंध अनंत संबंध बन जाते हैं।

संबंध विशेष होकर कृष्ण के प्रति और सामान्य होकर समस्त भूतों के प्रति उद्दिष्ट हो जाता है। भारतवर्ष ने व्रजभूमि में जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुनर्जीवन पाया, उसका यही रहस्य था कि व्रजभूमि ने स्तर-भेदों की जकड़न ढीली की, इसी ने पहचान करायी कि सच्चिदानंद का गौरव तो गो-रज है, उनका मुकुट तो वन में नाचने वाले पक्षी का पंख है, इसलिए जीवन का चरम लक्ष्य सामान्य में पाने का प्रयत्न करो, सामान्य को सम्मान दो। वहीं परम ऐश्वर्य है, वहीं परम सौंदर्य है, जहां प्यार निर्बाध हो जाय। श्रीमद्-भोजन करना, पर दूसरा अर्थ यह भी है कि वन को भोज्य बनाना, और तीसरा वन का भोज्य बनना, बांसुरी के रिक्त अवकाश को पीना और बांसुरी के द्वारा अमर सुधा का पिया जाना वनाश ही तो है, बांसुरी आखिर वन का ही तो एक अंश है। इस वनाश की ललक से उन्होंने सवेरे ही तुरही बजाकर साथियों को जगाया और बछड़ों को आगे-आगे करके गोष्ठ से निकल पड़े।

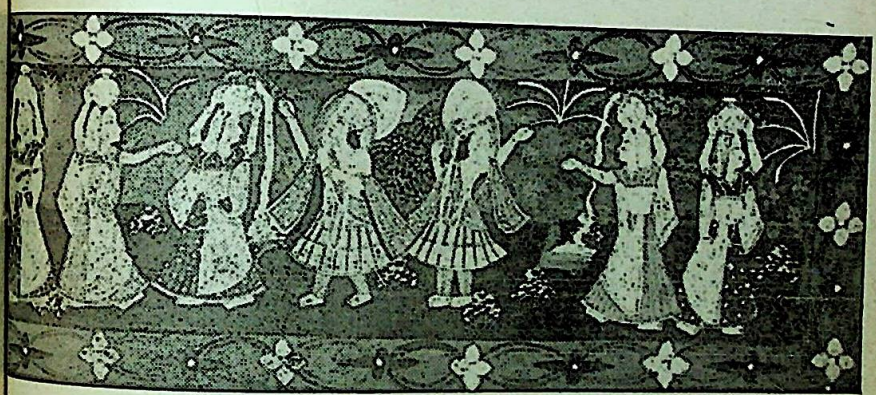

भागवत में वृंदावन विहार का एक वर्णन है, जिसे मैं पूरा उद्धृत करना चाहता हूं, क्योंकि यह वर्णन इस निर्विशेष प्यार की पूरी तसवीर सामने रख देता है।

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात्
प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान्।
प्रबोधयन् शृंगरवेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरस्सरो हरिः॥

एक दिन श्रीकृष्ण की इच्छा हुई वनाश की, वनाश का एक अर्थ तो यह कि वन में

कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान्।
चारयन्तोऽर्भलालाभिर्विजिहरुस्तत्र तत्र ह॥
फलप्रवालस्तबकैः सुमनःपिच्छधातुभिः॥
काचगुंजामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन्॥
मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातां नारा-
च्चचिक्षिपुः।
तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्य पुनर्ददुः॥
यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम्।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे॥

(शेषांश पृष्ठ ४६ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पं. भवानीप्रसाद मिश्र की आठ कविताएं

फूल और छंद

फूल मेरी कमज़ोरी हैं
मगर
तोड़ लेने पर
वे मुरझा जाते हैं
क्या जाने
इतनी जल्दी
मुरझा जाने वाले
मुझे हरचंद
इतना क्यों भाते हैं
मेरे लिखे
भंगुर छंदों की तरह !

समझ नहीं पाया

साफ़ नीला आसमान
और चमकता हुआ सूरज
सिर के ऊपर
नीचे भूपर
एक छाया और
फिर दूसरी और
फिर तीसरी
समझ नहीं पाया
माया आसमान है
या धरती !

एक दृश्य

दिया बुझ रहा है मेरा
और सूरज
देख रहा है सांस रोककर
बुझना मेरे दिये का !

सपने सदाबहार

मैं सपने से बचने निकला था
जो मुझे
इसीलिए दिये गये थे
किसी ने नहीं लिया उन्हें
खोंस लिया मैंने उन्हें
कान में
लगभग एक स्वाभिमान में
फूलों के गुच्छे की तरह
एक अरसा हो गया मुझे
इस तरह घूमते हुए
और अब अनमने हैं
वे सब जिन्होंने
खरीदे नहीं सपने
जिन्हें मैंने एक मुसकुराहट पर
देना तय किया था !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुझे भटका दो

मुझे भटका दो
कि सीधे पंथ
सूने लग रहे हैं
उठा दो आंधी
कि अपने पंख
मुझे दूने लग रहे हैं।

जब कभी

कई बार ख्याल
ऐसे आता है
जैसे उथल-पुथल आती है
बवाल आता है
और मैं बिखर जाता हूं
इतना ही नहीं
बखेर देता हूं
सबको
जब कभी ऐसे में
बखेरता नहीं हूं कुछ
टेरता हूं सबको
तो ख्याल में
घुल जाता है सौंदर्य
खुल जाता है सृष्टि का मतलब
सब प्यारा हो जाता है
प्राण सिमटकर सबके साथ
धारा हो जाता है!

क्या :

इतनी राहत देती होगी क्या
सर्द हवा
जलती लौ को
मुझको तो
देती है वह
कितनी राहत

अब

अब अंतिम
कोई धारा
काटनी है
अंतिम कोई खाईं
अपने अस्तित्व से
पाटनी है उसमें गिरकर
चढ़ना है कोई अंतिम शिखर
गुंजाना है स्वर कोई अंतिम
जानता हूं
यह सब पहले से भी अधिक
तुम्हारे बिना नहीं होगा
इस बार
हर बार से भी ज़्यादा ज़ोर से
पकड़ना मेरा हाथ
जब सब कुछ संभव हुआ है
अब तक नाथ
तुम्हारे साथ के बल पर!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ४३ का शेषांश)

केचिद् वेणून् वादयन्तो ध्मान्तःशृंगाणि केचन।
केचिद् भृंगैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे॥
विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधु-हंसकैः।
वकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलाणिभिः॥
विकुर्वन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान्॥
विकुर्वन्तश्च तैः सार्कं प्लवन्तश्य पलाशिषु॥
साकं त्रेकैर्विलघन्तः सरित्प्रस्रवसम्प्लुताः।
विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रति-स्वनान्॥

असंख्य-असंख्य काले बछड़ों (कृष्णमय बछड़ों) के साथ असंख्य गोप-बालक उन्हें वन में चराने चले, जो आभूषण मां ने पहनाये थे, उनसे मन नहीं भरा, फल-फूल, नये पल्लवों से अपने को सजाने लगे, फिर एक-दूसरे का छींका चुराया, पकड़े गये तो दूर आये, वहां दूसरे थे, उन्होंने फिर हंसते-हंसते वापस लौटा दिया। कहीं कृष्ण दूर चले गये तो उन्हें दौड़कर छूने की होड़ मच गयी, मैं पहले छुऊंगा, मैं पहले छुऊंगा। कुछ ने बांसुरी बजायी, कुछ ने तुरही फूंकी। कुछ भौंरों के साथ गुन-गुनाने लगे, कुछ कोकिलों के संग गाने लगे, कुछ हंसों की छाया पकड़े-पकड़े दौड़ने लगे, कुछ बगुलों के साथ चुपचाप ध्यान लगा बैठ गये, कुछ मोरों के साथ नाचने लगे। कुछ वानरों के बच्चे पकड़ लाये, उन्हीं के साथ पेड़ पर चढ़े, उन्हीं की तरह दूसरों को उन्होंने चिढ़ाना शुरू किया, फिर एक डाल से दूसरी डाल पर छलांग मारी। कुछ मेढकों के साथ हो लिये। उन्होंने पानी में छलांग लगायी, अपनी परछाईं देखी तो हंसी आयी। अपनी आवाज़ की प्रतिध्वनि सुनी तो क्रोध आया और ज़ोर से आवाज़ लगायी और गाली दी, कौन मेरी आवाज़ दुहरा रहा है।

यह है व्रजभूमि का प्रभाव, सबमें रम जाना, सबके संग हो जाना, सबका हो जाना, पर यह होते हुए भी सर्वमयता के केंद्र से कभी नहीं बिछुड़ना, आखिर श्रीकृष्ण के संग आये तभी तो सबके हुए, उन्हें कैसे बिसारें। आज हम एक होने की चिंता तो कर रहे हैं पर जिससे एक हुआ जा सकता है, उस व्रजभाषा साहित्य के रस को भूल गये हैं। खोखले नारों से भावात्मक एकता नहीं आती है, वह आयेगी तन्मय लीला के सहज प्यार से। वही प्यार हमने एक दूसरे के लिए खो दिया है, वह छीना-झपटी, वह उन्मुक्त हंसी, वह छनभर में खीझ, छनभर में मनुहार, वह कोयलों के साथ गाना; हंसों के साथ चलना, मोरों के साथ नाचना हमने खो दिया है। हम विशिष्ट बनने के चक्कर में अपना सामान्य धर्म भूल बैठे हैं, उससे भी अधिक भूल बैठे हैं उस सामान्य धर्म के केंद्र में अधिष्ठित उस विशेष चिन्मय सत्ता को जिसने अपनी विशिष्टता सामान्य को अर्पित कर दी थी। हम बनते-बनते बनावटी बन गये हैं हमारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्माओं के अनोखे शिल्पी : श्रीगुरु मुक्तानन्द परमहंस

उक्त शीर्षक से नवनीत के मई तथा जून '८२ के अंकों में वीरेन्द्र कुमार जैन की एक संस्मरणात्मक अनुभव-कथा क्रमशः छपी है। उस पर देश के चारों कोनों से ढेरों पत्र आये हैं, जिनसे पता चलता है कि आज के मनुष्य में अध्यात्म की प्यास कितनी प्रबल हो उठी है। पाठकों ने स्वामी मुक्तानंद के गणेशपुरी आश्रम का पूरा पता चाहा है। वह नीचे अंकित है। इस पते पर पत्र-व्यवहार करके नवनीत के पाठक अपनी जिज्ञासाओं के उत्तर पा सकते हैं और स्वामी मुक्तानन्द के ग्रन्थ भी प्राप्त कर सकते हैं तथा मार्गनिर्देश भी पा सकते हैं।

पता : गुरुदेव सिद्धपीठ, गणेशपुरी, पोस्ट-वज्रेश्वरी, जिला-थाना (महाराष्ट्र)

एकता भी बनावटी हो गयी है।

मैं व्रजभाषा और व्रज-साहित्य के उद्धार की बात करके इन्हें संरक्षणीय और दयनीय नहीं बनाना चाहता। मैं केवल स्मरण दिलाना चाहता हूं कि इनका हम पुनः स्मरण करें, इनमें कहीं हमारे प्राण धरोहर रखे हुए हैं। उस प्राण की फूंक मिले तो हम अपने भाव रूप को वापिस पा जायें।

हम सबको मिलकर उस भाव की पुकार लगानी है, जो सामान्य का न होकर विशेष का हो गया है, इंशा अल्ला खां के शब्दों में –

जब छांड़ि करीर की कुंजन कों वहां द्वारका
में हरि जाय छये
कलधौत के धाम बनाये धने महराजन
के महराज भये
तज मोर के पंख औ कामरिया कछू औरहि
नाते हैं जोड़ लये
धरि रूप के ये किये नेह नये अब गइयां
चराइबो भूल गये।

यह पुकार लगायेंगे तभी देश में सांस्कृतिक क्रांति होगी, संस्कृति सौधों से उतरेगी, नंगे पांव रेतीले कुंज में प्रविष्ट होगी, उन्हीं कुंजों में रमेगी जहां इस देश के सामान्य विशेष बनकर रमे हैं। वह संस्कृति किसी जन की उपेक्षा नहीं करेगी, वह किसी राज्याश्रय की अपेक्षा नहीं करेगी। उस संस्कृति की आकुल प्रतीक्षा से पसीजकर इस युगसंध्या में उसके आराध्य फिर लौटेंगे। महबूब अली के शब्दों में वे लौट रहे हैं मधुबन से–

आगे धेनु धारीगे री खालम कतार तामें
फेरि-फेरि टेरि धौरी धूमरन गनते।
पोंछि पचकारन अंगौछन सों पोंछि पोंछि
चूमि चारु चरण चलावें सु बचन तें।
कहै महबूब जरा मुरली अधर धर
फूंकि दई खरज निखाद के सुरन तें।
अमित अनंद भरे कंद छवि वृंदावन
मंद गति आवत मुकुंद मधुवन तें।

–पी-१ गोपालकुंज,
बाग मुजफ्फर खां, आगरा–२

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

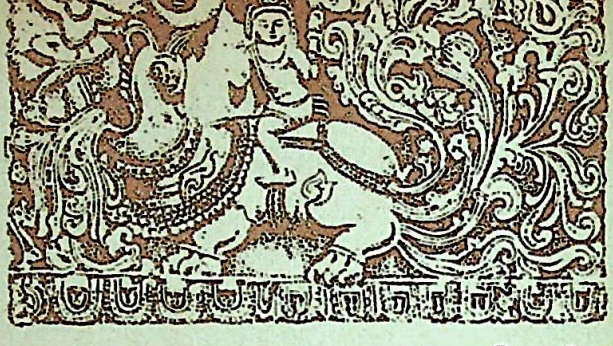

डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय का सिद्धयोग पर आधारित एक अप्रतिम उपन्यास

□

मत्स्येन्द्रनाथ

[१]

योगी मत्स्येंद्र के धातुशोधन से निर्मित स्वर्ण और धीवरों के श्रम से, नर्मदा की ज़िद पर परमा ने भेड़ाघाट के ऊपर जहां अब चौंसठ योगिनी का मंदिर है, वहां कई खंभों वाली एक बारहदरी बनवा दी है, जो चारों तरफ से खुली हुई है। इस बारहदरी के आसपास अनगढ़ पत्थरों की चारदीवारी है, जो काफी ऊंची है और जिसमें एक ही द्वार है, जिसमें मजबूत किवाड़ों की जोड़ी लगा दी गयी है। बारहदरी के निकट एक ओर योगी के निवास के लिए एक बड़ा-सा कमरा है, जिससे लगी हुई रसोई और भंडारगृह है। नर्मदा अब योगी के साथ इसी कक्ष में रहती है। रात में नर्मदा के विश्वस्त कुत्तों के सिवा यहां कोई नहीं आने पाता। धीवरों की झोपड़ियां यहां से कुछ दूर हैं, इसलिए यह साधना-स्थल सुनसान-सा है।

रात में सूर्यास्त के पश्चात् प्रथम प्रहर से योगी मत्स्येंद्र ध्यानमुद्रा में अवस्थित हो जाता है। नर्मदा की स्तुति के मंत्रों की एक स्वर-शृंखला चलती है, जिसका स्वर रात में, एक गूंज के रूप में दूर तक सुनाई पड़ता है किंतु क्या कहा जा रहा है, यह अस्पष्ट रहता है। नर्मदा जानने लगी है कि योगी को क्या चाहिए। वह जपापुष्प, सिंदूर, कनेर के फूल, मधूक की मदिरा, मांस, मत्स्य, चणक और अन्य सामग्री जुटाती रहती है। कभी तो योगी और नर्मदा बड़े सबेरे उठकर मछलियां पकड़ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने नवनाथों के सिद्धयोग से आकृष्ट होकर एक अद्भुत उपन्यास लिखा है : 'मत्स्येन्द्रनाथ'। उसके चार विशिष्ट अध्याय चार किस्तों में क्रमशः 'नवनीत' में प्रकाशित होंगे।

शायद समस्त भारतीय साहित्य में यह अपने ढंग का अपूर्व और अद्वितीय उपन्यास होगा। इसका उद्घाटन 'नवनीत' में हो रहा है, इसे हम अपना सौभाग्य मानते हैं। पहली किस्त यहां प्रस्तुत है।

आ जाते हैं या मौज में आकर योगी और नर्मदा नाव खेते हैं, अथवा वे नाव लेकर नर्मदा-विहार करते रहते हैं। जब से योगी आया है, धीवरों के घर समृद्ध हो गये हैं। वे प्रायः जाबालापुर (अब जबलपुर) के बाज़ार में स्वर्णकारों के यहां स्वर्ण-शकल बेचते दिखाई पड़ते हैं। योगी के आग्रह पर धीवरों के बच्चों के पढ़ाने के लिए एक पाठशाला भी खुल गयी है, जिसमें एक शिक्षक ज़ाबालापुर से पढ़ाने आता है। उसे विधिवत् वेतन और दक्षिणा मिलती है।

नर्मदा का रूप इतना निखर आया है कि वह देवी-सी लगती है। एक प्रकाश-वलय उसके मुख के आसपास रहता है और नेत्रों में सर्वदा एक मदिर आलस-सा छाया रहता है। कभी वह कई-कई दिनों योगी के साथ मंदिर में ही बंद रहती है और कभी योगी को अकेला छोड़ वह पिता परमा धीवर के गृहकार्य में दत्तचित्त हो जाती है।

नर्मदा का शरीर कार्य या अकार्य में, क्रीड़ा या कलह में, चिंता या निश्चितता में किसी तरंग में तैरता-सा रहता है, जैसे उसके अणु-परमाणु में कोई नृत्य कर रहा हो, कोई अलाप भर रहा हो। कभी वह नर्मदा नदी की तरह प्रचंड वेग से बहती हुई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महसूसती है जैसे उसका योगी, उसके आदिस्रोत में बैठकर उसका जल बढ़ा रहा हो और वह जलावर्त्तों में उफनती अपने में समा न पा रही हो।

नर्मदा ने देखा है कि योगी यों तो भीतर से अपने में कहीं रहता है किंतु प्रकृति के बदलते रंग-रूप का उस पर प्रभाव पड़ता है। वह प्रकृति को देखकर योगी की मनः-स्थिति बता सकती है। प्रातः शीतल समीर जैसा ही योगी का मन हो जाता है, स्वतः सरकता हुआ, कोई उग्रता या अवरोध उसके आड़े नहीं आता। दोपहर में धूप की प्रचंडता और खर-पवन के झोंकों से, जो अंधड़ बनता है तो योगी का मानस भी वैसा ही तप्त-सा लगने लगता है और संध्या तक, शनैः शनैः धूप के उतार की तरह योगी का ताप शांत-सा हो जाता है। वह अंधकार में सबको समेटता-सा और चांदनी में चांदनी लता-सा खिल-खिल जाता है।

नर्मदा ने एक रात, पूर्णमासी की अर्ध-रात्रि को योगी की अंगुलियों और आंखों से सचमुच अमृत टपकता पाया है क्योंकि इतनी शीत वेला में प्रस्वेद तो वह हो नहीं सकता। वह निश्चय ही अमृत होगा। उसने योगी को बिना बताये उन पीयूष बिंदुओं को अपनी डिबिया में एकत्र कर लिया है। 'आश्चर्य यह है कि जब योगी सचेत होता है, तब कुछ नहीं होता। पर, जब वह मुझे एकटक देखता हुआ, प्रकृति के साथ एकाकार हो जाता है तब रात्रि में ओस की तरह उसके पोर पसीजते हैं।

'मैं भी कैसी बावली हो गयी हूं। इतना सोचती हूं कि आज योगी की प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक व्यग्रता और तल्लीनता को नापूंगी किंतु उसमें न जाने क्या है, एक ही दृष्टि में, मैं सब कुछ भूल जाती हूं। कुछ भी तो स्मरण नहीं रहता। मैं स्वयं वही हो जाती हूं और वह मैं। कोई भेद ही नहीं रह जाता। मुझे क्या होता जा रहा है?

'मुझे एक बात विचित्र लगती है कि तन्मयता में, मुझे दूर-दूर तक के दृश्य दिखाई पड़ने लगते हैं। जैसे उस रात मैंने स्पष्ट देखा था, मानो परदे पर कोई दृश्य दिखा रहा हो कि जाबालापुर के राजभवन में जो राजकुमारी है, वह मुझे बुलाने के लिए अपने किसी सेवक से मेरा नाम ले रही है। मैंने अपना नाम सुना था, यहीं मंदिर में योगी की गोद में लेटे-लेटे। यह क्या है? दूसरे दिन वही सेवक मेरा नाम पुकारता आया था। मैंने जब उससे पूछा कि कितनी वेला में तुझे राजकुमारी ने आदेश दिया था तो उसने वही समय बताया, लगभग एक प्रहर रात बीते। क्या मैं दूर की सुनने लगी हूं? दूर का देखने लगी हूं?

'राजकुमारी कोई एक तो है नहीं, यहां आसपास कई राजकुमारियां हैं और सभी ने मुझे बुला-बुलाकर योगी से साक्षात्कार चाहा है। मैं अपने योगी को उन्हें सौंप दूं तो मेरा क्या होगा? मैं तो अब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने पुराने नीरस, जड़, एकरस जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकती । मुझमें कितना चैतन्य आ गया है, कितना तो पढ़-लिख गयी हूं और कितनी-कितनी तरंगें भर लेती हूं । कभी मन खाली नहीं होता, झरना-सा झरता रहता है । वर्षा-सी होती है, कभी ज्वार आता है, कभी भाटा, कभी मन कैसा शांत सरोवर-सा हो जाता है और उसमें योगी का जगमगाता मुख कैसा झलकता है !

'मेरी सूझ भी अद्भुत हो गयी है । अदृश्य वस्तुएं मुझे यहीं बैठे दिखाई पड़ जाती हैं । उस दिन मैंने काका की खोयी हुई डिबिया बता दी तो वे आश्चर्य में पड़ गये । वह डिबिया काका बाज़ार में मोती कहार के यहां भूल आये थे और मैं वहां कभी नहीं गयी थी । मैंने कहार का घर बता दिया कि वह किस गली में और किस सड़क पर है ।

'मैं जो खाती हूं तो भोजन का ग्रास मुझसे बोलता-सा जान पड़ता है, जो वस्त्र पहनती हूं, वह मुझे देखकर मानो हंसने लगता है ।

'मैं यहीं बैठे-बैठे बहुत दूर के फूल सूंघ लेती हूं । बिना खाये चखे, मैं वस्तुओं, जड़ी-बूटियों के स्वाद और उनके प्रभाव जान लेती हूं । किस कष्ट में क्या हो, यह बात मुझे स्वयं पेड़-पौधे बता देते हैं । कभी-कभी तो हंसी-विनोद की सामग्री मिल जाती है । योगी तो भेदभाव मानते नहीं । उनके लिए सब शिवमय है । वे सबमें उसी का आभास देखते रहते हैं । किंतु मैं तो अभी संसारी ठहरी । उस दिन शाम को नटों का खेल था । एक नटिनी बड़ी चंचल थी । उसे हाव-भाव और चटक-मटक में, नाव पर कैसे चढ़ा जाये, यही स्मरण नहीं रहा । मोच खा गयी पैर में । पास ही अपा या चिरचिटे का पौधा था । कहने लगा, मेरे पत्ते अंडी के पत्तों के साथ, घी में कुछ गरम कर लगा दो, मोच ठीक हो जायेगी । हाय ! अचरज हो गया ! मैंने उस चंचला को रोक लिया और प्रातः काल तक वह तगड़ी होकर चली गयी । अब वह बार-बार आती है और कहती है कि मैं उसे योगी से मिला दूं, उसकी एक साध है । किंतु मैं उसे जानती हूं वह मेरे गुरु को गड़प कर लेगी और डकार भी न लेगी ।

'कहां तक कहूं ? सीला चमारिन, मिसिरी नाइन, रंभा डोमिनी, मोतिया कहारिन, सिल्लो अहीरिन, बिजली बंजारिन, मानिक लोधिन, काजर धोबिन, गुठली गड़रिन, एक हो तो नाम लूं, अरी अनेक रांडें हैं । कैसा-कैसा मारू काजल लगा-लगाकर और कैसी मारू चाल चलती हैं, कैसे नैना झमकाती हैं । कोई देखे तो उनके पीछे लग जाये, पागल हो जाये । और ये मरीं, यहीं इस जोगिया के लिए अपने हिए हलकान कर रही हैं । हाय ! योगी, एक बार उन्हें देख ले, बस ! क्या साहस है इन निगोड़िनों का । वे बार-बार बहाना बना-बनाकर कभी नर्मदा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्र : चंदुलाल सांकला

के इस पार जाती हैं, कभी उस पार। जिस दिन योगी नाव खेता है, उस दिन तो जैसे जाबालापुर के आसपास की सभी छमक-छल्लो सजधजकर निकल पड़ती हैं और योगी भी यह कितना निर्लज्ज है, बिना पलक झपकाए उनमें मुझे ढूंढ़ता है या मुझमें उन्हें, कुछ ज्ञान नहीं मुझे, यह जोगी है या भोगी। यह कोई ठग तो नहीं है, किसी भुक्खड़ घर का भूखा नर है क्या यह ? कौन जाने, क्या चाहता है ? क्या यह सभी का छैला बनेगा ? मुझमें रमता है तो इसे अपनी सुधि नहीं रहती, पर जब यह कोई भी अनूठा रूप देखता है, ठगा-सा रह जाता है। इसे कुछ भी अता-पता नहीं कि ये नीच जाति की हों, या ऊंची जाति की हों, ये स्त्रियां महाठगनी होती हैं। ये इसे काजल बनाकर आंखों में लगा लेंगी, इसे धोती की तरह पहन डालेंगी, इसके कस-बल निकाल देंगी। इसके बाजे बज जायेंगे, इसका यह सूरज-सा चमकता और चंद्रमा-सा सितलाता मुखड़ा फीके सिंघाड़े-सा निकल आयेगा। किंतु यह माने तब न। अंत में तो यह पुरुष की जाति है, इसका वैय्यर-बानी के विषय में क्या विश्वास ?

'नर्मदा तू क्या-क्या सोच गयी ?' वह हंसने लगती है, हंसती जाती है। 'हाय ! नर्मदा तू भी तो स्त्री ही है न। यह तेरी ईर्ष्या बोलती है। योगी ने तो ऐसा कुछ नहीं किया। वह क्या स्त्री के बत्तीस लक्षण देखे बिना उन्हें साधना में बुलायेगा ? नहीं, कभी नहीं। वह क्या व्यभिचारी है, नारी का आखेट करने वाला है ? क्या वह भूखा-प्यासा है, रूप का ? यदि ऐसा होता तो वह कहां से कहां, यहां से वहां क्यों भटकता ? वह अवश्य किसी गहरे सत्य की खोज में है।

'यदि योगी सचमुच इन छबीली ठगनियों के साथ रास रचाए तो मैं क्या करूंगी ? ... फिर वही ईर्ष्या, अरी नर्मदा ! तू क्या इतनी गिर गयी है कि अपने पर किंचित् भी भरोसा नहीं रहा ? ये क्या योगिनी होने योग्य हैं ? इन्हें तो क्षण भर का साथ चाहिए और बार-बार चाहिए, तब तक जब तक ये स्वयं ही नष्ट न हो जायें या योगी को न चूस डालें, तब तक इन्हें संगति चाहिए। किंतु योगी क्या दुराचारी है ? नहीं, नहीं, नहीं, वह तो साधक है, सिद्ध है। धातु से सोना बनाता है, पानी पर चलता है, आकाश में उड़ता है। घर बैठे तीनों लोकों का सब देख लेता है। हाय ! उस दिन वह खेल-खेल में पहाड़

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से नदी के झरने वाले कुंड में कूद पड़ा और फिर नीचे प्राणायाम की मुद्रा में बैठकर जो ऊपर उड़ा तो मेरे पास आकर मुझे भी उड़ा ले चला। मैं चिल्लाई और घबराकर मेरे पिता, काका, भाई-भतीजे सब दौड़ पड़े और इस निगोड़े जोगिया ने मुझे उस दिन ऐसा छकाया, ऐसा छकाया, कि मैं रो-रो पड़ी। उसने मुझे एक खजूर पर टांग दिया और स्वयं उड़कर अदृश्य हो गया। मेरे कांटे चुभें, मैं गिर पड़ूं, हाथ पैर तोड़ लूं, उसे क्या चिंता! वह अपनी अमानुषी हंसी से हहराता हुआ अचानक प्रकट हुआ और भूत की तरह बांह लंबी कर मुझे खजूर से उतार लिया।

'हाय! कई बच्चे तो इसकी लंबी बांह देखकर, 'भूत-भूत' चिल्लाकर अचेत हो गये। पर, इसे क्या, निर्लज्ज हो-हो, हंसता रहा।

'जब लोगों ने इसको कहा कि वह साधारणजन नहीं, कोई देव या प्रेत है तो बड़े मक्कर के साथ कहने लगा कि उन्हें दृष्टिभ्रम हो जाता है। वह अपने को जादूगर कहता है, भूत-प्रेत या देवता नहीं मानता। वह दृष्टि बांध सकता है, यह तो उससे मानना पड़ा, पर दृष्टि तो कई नट-नागर बांध लेते हैं। नर्मदा! तू कभी अपने योगी को नहीं समझ सकती।

'फिर ये जो मुझमें शक्तियां उपज रही हैं, यह क्या है? यह जादू तो कदापि नहीं है। मैं कुछ करती तो हूं नहीं, न किसी की दृष्टि बांधती हूं फिर यह मुझे जो अतिरिक्त सुनाई पड़ता है, अतिरिक्त स्वाद आते हैं; अतिरिक्त दृश्य दिखाई पड़ते हैं, इतने कि जड़-जगत मुझसे बतियाने लगता है? यह क्या है, यह 'अतिरिक्त' क्या है? योगी कहता है कि जो तत्त्व को समझता है, उसे वे अतिरिक्त अनुभूति देने लगते हैं। मैं तो कुछ भी नहीं

चित्र : चंदुलाल सांकला

समझती, फिर मुझे यह सब पासंग में क्यों मिल रहा है?

'. . . ऐसा तो नहीं कि कहीं योगी ने मुझे अपना अड्डा बनाकर अपनी शक्तियां मुझमें चलायमान कर दी हों? या ये सब अतिरिक्त अनुभव मुझमें अब तक छिपे थे और अब चैतन्य हो गये? और फिर यह जोगीड़ा कभी मुझे सताता क्यों नहीं? सर्वदा मुझे अपनी आंखों, हृदय में भरे-भरे फिरता है। कभी क्रोध क्यों नहीं करता? कभी मुझे पीटता, डांटता क्यों नहीं? कितना मन होता है कि उससे कभी उलझ पड़ूं! उसके काले घुंघराले बाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नोचूं उसकी शिला जैसी छाती में मन भरकर मुक्कियां लगाऊं तो उसे मुझे मोहने का मोल मिल जाये। ऐसा भी प्रेम क्या, जिसमें कभी टंटा ही न हो, सब काल चैन की बांसुरी ही बजती रहे। मैं रूठती हूं तो वह एक प्यार भरी चितवन में मना लेता है और कितना आदर है मेरे लिए उसके मन में। निगोड़ा पूरा भगत हो गया है मेरा। पहले मैं समझती थी कि यह साधना में मेरी स्तुति कर मुझे पटा रहा है किंतु मैं क्या समझती नहीं कि मूर्ख बनाने वाली बोली और एक आराधक की बानी में क्या अंतर होता है?

'. . . वह कंठ से तो कभी बोलता ही नहीं है। उसकी बानी उसकी गहरी घाटियों से गन्नाती हुई निकलती है, तभी मेरा रोम-रोम मतवाला हो जाता है। 'नर्मदा! देवि! तुम क्या कुपित हो?' यह कहते ही मैं कभी-कभी तुरंत न पिघलने के प्रयोजन से उसे बिराती हूं। 'नर्मदा! देवि! क्या तुम कुपित हो? ... बड़े आये बनाने वाले . . . जाइये, मैं आपसे नहीं बोलती ... अब तक किसके साथ क्या करते रहे ... मैं अब यहां नहीं रहूंगी—आप बहुत बुरे हैं, न जाने क्या किया करते हैं।' —मैं यह सब कहूं, इसके पूर्व ही मुझे हंसी आ जाती है। मेरे मन में वह मिश्री-सा घुल जाता है। नर्मदा! तू गयी काम से, तू सचमुच योगी पर बलि चढ़ गयी है, पतिंगा बन गयी, उसकी ज्योति पर!'

नर्मदा अपनी धुन में न जाने कब तक डूबी रही। वह जितना ही सिर खपाती, योगी की लीला अपरंपार होती जाती। अकस्मात् उसके मन में कौंध हुई कि आज अमावस्या है और आज रात में योगी कुछ अभूतपूर्व करेगा। हाय! उसे आज कितनी वस्तुएं जुटानी हैं। वह तो भूल ही गयी।

नर्मदा में जैसे विद्युत-आवेश आ गया। उसने बारहदरी अपने हाथों से स्वच्छ की, नदी से लाकर पानी भरा और जब सूर्यास्त होते-होते वह भंडारगृह में गयी तो वह चकित रह गयी। दिव्य भोजनों, फल-फलारियों, मेवा-मिष्टान्नों और अनेक प्रकार की सुगंधित मदिराओं से भंडार-घर मह-मह कर रहा था। वे मत्स्य, जो नर्मदा में नहीं मिलते, आज मौजूद थे। पूरी, मालपुए, खीर, पनीर, चटनी, पापड़, कहां तक कहें, छप्पन प्रकार के व्यंजन चौंसठ थालियों में सजे-बजे रखे थे। दूध-दही का तो कहना ही क्या था!

नर्मदा ने आंखें मूंद लीं। उसे चक्कर-सा आ गया। वह सिर पकड़कर बैठ गयी। पुनः नेत्र खोलने पर कहीं कुछ नहीं था। 'हे ईश्वर! यह क्या योगमाया है? मुझे क्या होता जा रहा है?'

'किंतु चौंसठ थालियां क्यों? क्या आज चौंसठ योगिनी के साथ योगी का रहस्य-रमण होगा? मुझे जिन छबीलियों के आभास आये थे, क्या वे सब आज रात में यहां उपस्थित होंगी और मेरे योगी के साथ खेलेंगी? क्या मेरा खेल समाप्त हो गया?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'... कहां चला गया मेरा खिलाड़ी? आज इतना विलंब क्यों हो रहा है? चलूं, रात हो रही है, भोजन बना लूं। इन भोजन दृश्यों से तो पेट न भरेगा।'

नर्मदा ने दृढ़ता से अपना सिर झटका, और रसोई रचने लगी। कोई एक-दो घंटे तक कोई घटना न घटी, न कोई आभास आया। उसने मन लगाकर, कई खाद्य पदार्थ बनाये और एक बड़े थाल में भोजन सजाया। फिर वह कुछ थकावट-सी महसूस करने लगी। आलस्य भगाने के लिए उसने बारहदरी का चक्कर लगाया। कुत्तों को पुचकारा। उन्हें भोजन दिया और द्वार बंदकर अपनी शैया पर पसर गयी। किंतु चैन नहीं मिला। उठी और मधूक-मदिरा का एक चषक बनाकर कुछ देर उसे मंत्राभिषिक्त करती रही। फिर उसे बूंद-बूंद पीने लगी। तले हुए चने कुटकने लगी और हैरान रही कि आज अमावस की रात योगी कहां निकल गया, जबकि उसे आज विशेष साधना-प्रयोग करने थे, जिसकी उत्सुकता में नर्मदा का मन, वर्षा में नर्मदा नद-सा बाढ़ पर था। उद्विग्नता में लहराती हुई नर्मदा की चेतना कब निद्रामग्न हो गयी, कुछ ज्ञात न हुआ।

पहले तो नर्मदा स्वप्नरहित नींद में गुम हो गयी। तत्पश्चात् एक पहर रात बीतते-बीतते उसकी सुषुप्ति की सीमा कम हुई और उसने देखा कि उसने आज रक्त-रंग की चूनर पहनी है और वह योगी के पार्श्व में ध्यानमग्न आसीन है।

नर्मदा ने मदिरालस अधमुंदी आंखों से आज अर्धरात्रि में बारहदरी को सूना नहीं पाया। प्रत्येक स्तंभ की टेक लिये, उसने एक-एक योगी को, एक-एक योगिनी के साथ बैठे देखा। नर्मदा ने गणना की तो चौंसठ योगिनी और चौंसठ योगी निकले। जब ध्यान से नर्मदा ने साधकों के चेहरे देखे तो उसे लगा कि केवल एक ही व्यक्ति, उसके अपने मत्स्येंद्र, के अनेक रूप हैं। हां, योगिनी नारियां अवश्य विभिन्न प्रकार की और विभिन्न वर्ण के वस्त्रों में थीं। सबके मुखों के आसपास तेज के पारस थे और वे तेज-वलय लगातार घूम रहे थे, जिससे उनके मुखों की पहचान कठिन हो गयी थी।

नर्मदा को स्वप्न में उनके कुछ नाम भी सुनाई पड़े। कोई उनका नाम ले-लेकर प्रसाद बांट रहा था, त्रिपुरा, बाला, मातंगी, भुवनेश्वरी, उग्रतारा, छिन्नशीर्षा, सुमुखी, सरस्वती, अन्नपूर्णा, महालक्ष्मी, शारिका, शारदा, इंद्राक्षी, बगला, तूर्या, राक्षी, ज्वालामुखी, भीडा, कालरात्रि, भवानी, वज्रयोगिनी, वाराही, सिद्ध-लक्ष्मी, वागीश्वरी, पद्मावती, कुब्जिका, गौरी, खेचरी, नील, सरस्वती, पराशक्ति, जैसे चौंसठ नाम लिये गये।

फिर सुरा-शुद्धि-विधि के मंत्रों का उच्चारण हुआ। नर्मदा को सब तो सुनाई न पड़ा परंतु कुछ एक श्लोक अवश्य गूंजे :—

असुरा राक्षसा यक्षा गंधर्वा मानवादयः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भजंति च सुरां दिव्यां, मंत्र संस्कारमंमिताम्
कालेन कलशस्थाभूत् सुरादेवि सुरेश्वरि
कलिना कालरूपेण, बाधिते जगतिप्रिये !

तत्पश्चात् उत्कीलन, पुरश्चरण, यंत्र-स्तवन, देवीस्तुति, आसन शुद्धि, भूत शुद्धि आदि का मंत्रोच्चार होता रहा। फिर आसव-पान के क्रम के साथ, उन्मत्त योगिनी नृत्य, गायन-वादन प्रारंभ हुआ। दिव्य संगीत के स्वरों के साथ, अलौकिक वाद्ययंत्रों की गमकों और झंकारों से नर्मदा को यह प्रतीति हुई कि वह भी नृत्य के लिए पैरों में घुंघरू बांधकर योगिनीगण के मध्य कूद पड़ी। योगीवृंद कभी तो ताल देते, कभी मंत्रोच्चार में मग्न होते, कभी स्वयं उठकर नर्तनशील हो जाते और कभी आवेश उपलब्धि के लिए पुनः कारण (मदिरा) पान करते और नृत्य शिथिल योगिनीगण को चषक भेंट करते। एक अद्भुत और लोकोत्तर दृश्य था। नर्मदा नाचते-नाचते अपने योगी के वक्ष पर गिर गयी। मत्स्येंद्र ने उसका स्नेहातिरेक से चुंबन लिया तो उसमें पुनः उन्मत्त शक्ति-संचार हो गया और वह फिर ताल और लय के अनुसार पग-संचरण करने लगी।

चित्र : श्रवण

उस अवर्णनीय नत्य-घूर्णन, सारंगी-वंशी-सितार-वीणा की झंकारों-झालों और मुरज-पखावज और तबलों की गमक में बारहदरी के खंभे भी नाचते से लगे। योगी उस घूम में घूमने लगे। अमावस्या की काली रात्रि में ऊपर आकाश में चमकते नक्षत्र जैसे नेत्र-विस्फारित कर यह दृश्य देखने में रोमांचित होकर कांपने लगे। रात्रि पवन स्थिर हो गया। आस-पास के वृक्ष जैसे मौन होकर इस मर्मभेदी अनुभव में डूब गये। चारों ओर परिवेश जैसे गुनगुनाने लगा और उठती-घूमती-आवर्त्त भरती तानों, अलापों और मीड़ों-मूर्च्छनाओं में साथ देने लगा। मिट्टी के कण-कण, पत्थरों के टुकड़े, थालियां, चमचे, वस्त्र, आभूषण, चषक, पदत्राण, जो भी दृश्य और पदार्थ वहां थे, सब नाचने लगे। आकाश पर लगा कि देवी-देवता, विद्याधर, गंधर्व-अप्सरा, पितृगण आदि, अब तक अनदेखे, नाना प्रकार की सुगंध वाले पुष्पों की वर्षा कर रहे किन्हीं अदृश्य हाथों ने, जिनकी कोमल कलाइयां और उनमें जड़ाऊ चूड़ा ही दिखाई पड़े, सात रंगों की बौछार करने लगे। चौंसठ योगिनी-वृंद के वस्त्रों का रंग इंद्रधनुषी हो गया जो न जाने कहां से आने वाले रंग-बिरंगे, क्षण-क्षण बदलते आलोक में रंगचित्रों की रचना करने लगा।

नर्मदा को लगा कि बारहदरी का चबूतरा भी संगीत की लय और ताल के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साथ कभी तो ऊंचा होता चला जाता और कभी नीचे आ जाता। उसकी ठुमक से योगिनी-गण के शरीर हिलते और उनके नग्न अंगों से चमकें निकलतीं, जिनमें आनंदित योगियों के मुखड़े दमकते। वे स्पंदित हिल्लोलित दृश्य के गहन तल से निःसृत स्तवन मंत्रों की लहरें उठाते और झूमते हुए ताल पर एक साथ कुछ झुक जाते, हाथ के संकेत से ताल का साथ देते।

अब रागोन्माद चरम सीमा पर पहुंच गया था। मत्स्येंद्रनाथ ने हाथ से कुछ कहा और योगी-योगिनी, युगनद्ध हो गये।

अब न वहां आलोक था, न संगीत, केवल गुप्त-साधना थी और प्रत्येक साधक रमता हुआ मंत्रपाठ कर रहा था, कोई धीरे, कोई किंचित् ज़ोर से, कोई उत्तान स्वरों में, कोई इस तरह, जैसे वह फुसफुसा रहा हो।

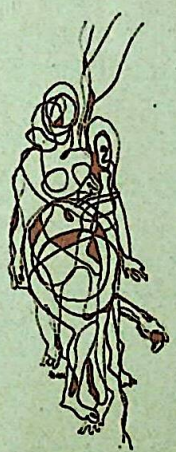

चित्र : श्रवण

ऐं क्लीं सौः बालायै नमः। क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं श्रीं क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ह्रीं सकल ह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं। क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। ओं श्रीं ह्रीं क्लीं सौः ह्रसो पराशक्तये ऐं स्वाहा।

इस प्रकार के अनेक परम विचित्र मंत्रों का एक सिलसिला जो शुरू हुआ तो वह समाप्त होने में ही नहीं आया। किसी ने सौ बार, किसी ने सहस्रवार, किसी ने लक्षवार जप किया और अपनी शक्तियों के साथ सन्निविष्ट रहे।

स्वाहा, स्वाहा के चौंसठ महास्वर अंत में एक साथ गूंजे और फिर बड़ी देर तक स्वाहा ... आ ... आ ... आ का गगन, गंजक महाघोष हुआ, जैसे अंतिम आहुति हुई हो। फिर शक्ति विसर्जन के महामुहूर्त में मानो स्वयमेव मौन छा गया, जैसे तेज बरसकर क्षीण हो रहा हो और तब नर्मदा ने योगिनी-वृंद का एक आनंद से मत्त सीत्कार शब्द सुना, जैसे वे योगी की अस्तित्व ऊर्जा से आप्यायित और उन्मत्त हो गयी हों।

नर्मदा के नेत्र खुल गये और उसने देखा कि बारहदरी में एकदम सन्नाटा है और बीच में दो आलोक-बिंदु सिंहासनों पर आसीन हैं और उनमें वार्त्तालाप हो रहा है—

'गोरक्ष! तुमने अमावस्या की योगिनी-साधना में विघ्न डाला?'

'मच्छंद गुरु! मैं तो इसी क्षण आया, जब आपका योगिनीवृंद अपने-अपने निवास को लौट रहा था।'

'तो यह विघ्न नहीं हुआ?'

'अंत का आगमन विघ्न नहीं, विराम है, गुरुदेव! मैं तो पश्चिमोत्तर भारत की दशा से चिंतित था। कलह और जाति-अभिमान से राजन्यवर्ग आक्रांताओं से मिलकर नहीं लड़ पाता। क्या मेरा प्रयत्न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यर्थ है ?'

'तुममें करुणा और उपाय दोनों है, गोरक्षनाथ ! मैं तो सर्वातीत हूं, होना चाहता हूं । तुम्हारी दृष्टि में मैं बौद्ध-तांत्रिकों से प्रभावित हूं, अतएव योग-भ्रष्ट हूं किंतु, गोरक्ष ! तुम्हारा मार्ग, हठयोग आपत्तिकाल की उत्तेजना में ही चल सकता है । लक्ष्य हटते ही पुनः प्रश्न होगा कि कोई ऐसी साधना हो, जिसमें वे ही शक्तियां विनश्य न हो जायें, जो जीव के मूल में हैं । जो मूल में है, वह राग है, गोरक्ष, विराग नहीं । वैराग्य, ज्ञानज है । उस पर चलना चंद्रहास तलवार पर चलना है, सोचो !'

'मच्छंद गुरु ! आप मेरे मार्ग को मान लें, तो आदिनाथ के अनुग्रह से देश की युवाशक्ति हठयोग में मंजकर अजेय हो जाये ।'

'गोरक्ष ! मैं तुममें हूं, अपने में भी । पर, मैं सबमें होना चाहता हूं । मैं केवल सहज साधक या शाक्त नहीं, मैं रसायन के प्रयोग भी कर रहा हूं । तुम्हें सेना खड़ी करने के लिए कितना स्वर्ण चाहिए ?'

'स्वर्ण तो आपके शिष्य-प्रशिष्य भी बना लेंगे, आप कोई ऐसा उपाय करें कि लोगों की चेतना नीचे न मुड़े, कुंडलिनी ऊपर चले, ऊपर और ऊपर और वह सहस्रार में जाकर दुर्बलताओं से मुक्त हो जाये । यही तो चेतना का अमृतपान है । इसी को तो योगी गाते हैं, क्या यह नहीं हो सकता ?'

मत्स्येंद्र मर्मभरी हंसी हंसे, जैसे किसी बच्चे ने कोई जोशीली बात कह दी हो और वह यथार्थ से अपरिचित हो ।

'नाथ ! तुम आदिनाथ के आलोक के अवतार हो, मुझमें परमेश्वर का अंधेरा भी है । क्या तुम चाहते हो, सृष्टि नष्ट हो जाये ? लीला का स्रोत अंधकार है, प्रकाश नहीं और यदि हो भी, तो क्या अंधकार या ममता-मोह के बिना, यह भावशबलित, पशुवत् अज्ञानी किंतु लीला-धर मन से संपन्न प्राणी संसार की धारणा हो सकती है ? बल को केवल वैराग्य से नहीं, अनुराग से वश में किया जा सकता है । राग-साधना, साधना है, भोग नहीं ।'

'मुझे विलम्ब हो रहा है, भगवन् ! और मेरा क्रोध भी जग रहा है । मैं आपको समझाने के लिए अधिक नहीं भ्रम सकता । मुझे तो आश्वस्ति है कि आप पतित योगियों के जाल से मुक्त नहीं हुए, उनका छंद नहीं काटा जा सका । मैं निर्णय आप पर छोड़ता हूं ।'

कुछ क्रुद्ध किंतु गुरु मच्छंद के प्रति पूर्णतः सम्माननिष्ठ गोरक्षनाथ लूका से ऊपर उठे और गगनमार्ग में तारे से चमके । फिर वे किसी बड़े नक्षत्र से पश्चिमोत्तर दिशा में चमकते हुए चले गये । उनका मुख गुरु की ओर था, हाथ जुड़े हुए थे और पीठ गंतव्य की ओर थी ।

गोरख के अदृश्य होते ही मत्स्येंद्र ने एक वेदना से भरी सांस ली, जैसे कहीं उनमें कुछ टूट गया हो या छूट गया हो ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे जीवन-सत्य की गवेषणा में यह सब कर रहे हैं, यह विचार कहीं उन्हें छेदता था। सत्य का इतना मूल्य चुकाया जाये. क्यों? स्वच्छंदता की चरम अनुभूति तक जाया जाय? क्या उसकी कल्पना कर, जीवन को सहज नहीं रखा जा सकता, जिसमें अन्वेषण हो, प्रयोग हो . . . । मत्स्येंद्र ने फिर एक उच्छ्वास छोड़ी और वे जैसे ही मुड़े, उन्होंने देखा कि नर्मदा अचेत होकर उनके ऊपर गिरना ही चाहती है, उसे थाम लिया।

'कैसी हो, नर्मदा? क्या बात है?'

'आप अभय दें, तो कहूं?'

मत्स्येंद्र ने हंसकर कहा कि अभय है। नर्मदा ने अपने मन का और बारहदरी में स्वप्न में देखे आभासों का वर्णन किया। मत्स्येंद्र मुस्कराये—'नर्मदा, इसे भूल जाओ। यह एक दूसरा संसार है।'

'किंतु मैं इसमें भाग ले रही हूं, मुझे बताओ, आप मुझे छोड़कर महाप्रयोग के लिए कब जा रहे हैं?'

'आओ, सोयें। तुमने जो देखा, सुना, वह सब योगमाया थी, समझीं?'

तुम्हारी माया, तुम जानो!

('मत्स्येंद्रनाथ' उपन्यास का अंश, राजपाल एंड संज से प्रकाश्य)

अमर लेखिका हैरियट एलिजाबेथ स्टो ने अपनी विश्व विख्यात पुस्तक 'टॉम काका की कुटिया' किन जटिल परिस्थितियों के बीच रहते हुए लिखी यह बहुत कम लोग जानते हैं। आम जानकारी तो इतनी ही है कि इस क्रांतिकारी ग्रंथ ने अमेरिका से दासत्व की प्रथा उठा देने में अनुपम भूमिका का निर्वाह किया।

उन्होंने अपनी भाभी के पत्र का उत्तर देते हुए लिखा था—'चूल्हा, चौका, कपड़े धोना, सिलाई, जूते गांठना आदि की व्यस्तता बनी ही रहती है। बच्चों के लिए तैयारी। दिन भर सिपाही की तरह ड्यूटी देनी पड़ती है। छोटा बच्चा मेरे पास ही सोता है। वह जब तक सो नहीं जाता कुछ भी लिख नहीं सकती। गरीबी और काम का दबाव बहुत है फिर भी, भाभी, सच मानना मेरे मन में गुलामी के प्रति तेज आग धधक रही है सो जिंदा रही तो कुछ ऐसा जरूर लिखूंगी जो अमेरिका के सिर पर से मानवी दासता को लादे रहने का कलंक छुड़ा सके।'

गरीबी और कठिनाइयों से घिरा रहकर भी मनुष्य इस अंतःप्रेरणा से प्रेरित हो तो इतना कुछ कर गुज़र सकता है जो उस व्यक्ति को अमर बनाने और समय को बदल देने की भूमिका निभाने के लिए पर्याप्त कहा जा सके। दुनिया जानती है कि श्रीमती स्टो ने जो साहित्य घोर विपन्न परिस्थितियों में रहते हुए लिखा वह करोड़ों दासों की गुलामी से मुक्ति दिलाने और अमेरिका के सिर पर से कलंक का टीका छुड़ाने में कितना महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

—डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को रेखांकित करता हूं तो इसमें अस्वाभाविक क्या है ?

साहित्यकारों के बारे में प्रायः यह कहा जाता है कि वे अपने संपूर्ण जीवन में एक ही कृति रचते हैं। आज के साहित्यिक संदर्भ में इसका प्रचलित और सामान्य अर्थ यह लिया जाता है कि कोई लेखक अपने जीवन काल में जितनी भी कृतियां रचता है, सबकी भावधारा या सृजन-सूत्र

डा. श्याम सुन्दर घोष का एक नव-उद्भावात्मक लेख

□

श्रीकृष्ण मेरी दृष्टि में

श्रीकृष्ण को लोगों ने अनेक रूपों में देखा है। लेकिन मेरा ध्यान अक्सर उनके एक विशेष रूप की ओर गया है। इसे उनका अपारंपरिक रूप भी कह सकते हैं। मैंने श्रीकृष्ण को एक साहित्यकार और कलाकार के रूप में देखा है।

आप कहेंगे—यदि श्रीकृष्ण का यह रूप हो भी तो बहुत गौण रूप है। चलिये थोड़ी देर के लिए आपकी बात मान लेता हूं। पर यह श्रीकृष्ण का एक रूप है ज़रूर और उसमें मुझे विशेषता मालूम होती है। यदि भक्तों को श्रीकृष्ण का भगवान-रूप प्यारा है, राजनीतिज्ञों को उनका राजनीतिज्ञ-रूप, तो लेखक के नाते यदि मैं उनके साहित्यकार-कलाकार रूप बहुत कुछ एक-से होते हैं। जो विविधता होती भी है वह ऊपरी होती है। वास्तव में लेखक की रचनाओं में विविधता में भी एकता होती है।

लेकिन उपर्युक्त उक्ति का एक दूसरा अर्थ भी हो सकता है, इस पर शायद अधिक नहीं सोचा गया है। कोई लेखक अपने जीवन-काल में अनेक कृतियां क्यों रचे ? कोई एक भरी-पूरी कालजयी कृति क्यों न सिरजे ? क्या इसी अर्थ में, बिल्कुल शाब्दिक अर्थ में, लेखक अपने संपूर्ण जीवन में एक ही कृति की रचना न करे ?

आज से हज़ारों वर्ष पहले के संदर्भ में तो यह बात और भी सही और ज़रूरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रही होगी। लेखन सामग्री की सुगमता, और मुद्रण के आविष्कार के कारण आज हम भले ही अपने जीवनकाल में कृतियों के ढेर लगा दें, लेकिन आज से हज़ारों वर्ष पहले जब लेखन-मुद्रण की यह सुविधा नहीं थी, तो इस प्रकार कृतियों का ढेर लगाने की बात साहित्यकार सोचता होगा, यह स्वाभाविक नहीं मालूम होता। फिर तब तो लिखित ग्रंथों की सुरक्षा का सवाल भी था। आज मुद्रित ग्रंथ जिस रूप में, जिस सीमा तक, सुरक्षित रह सकते हैं तब वैसी सुविधा न थी। इसलिए तब कोई लेखक अपने जीवनकाल में एक ही रचना रचे का अभिधार्थ ही किया जाता होगा।

यह बात यदि आज के लेखक भी अपने-आप पर लागू करें तो एक पुरअसर बात होगी। लेखक और मुद्रण की सुविधा होने से उसका दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। कोई ज़रूरी नहीं है कि लेखक कृतियों के ढेर लगाये। वह यदि साधना और संयम से काम ले, तो संपूर्ण जीवन में एक ही श्रेष्ठ रचना उसे अमर बनाने के लिए पर्याप्त है।

लेकिन ऐसी एक रचना लिखने के लिए लेखक को कितना जीना पड़ेगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। जीवन के अपार रूप और अनुभव और उनके बीच रचनाकार का भोक्ता रूप—और यही रूप इतना प्रमुख कि लगे ही नहीं कि इसके अलावा भी उसके और रूप हैं—यह सब हम श्रीकृष्ण में पाते हैं। वे पालने से ही जो जीवन जीना शुरू करते हैं, वह कर्म-संकुल, द्वंद्वमय और संघर्षपूर्ण जीवन है। और फिर वे जीवन में गहरे तक निमज्जित होते हैं—बालक रूप में, किशोर रूप में, अल्हड़ युवा रूप में, प्रेमी रूप में, मित्र-सखा रूप में और योद्धा रूप में।

श्रीकृष्ण शायद अवतारों में सबसे अधिक आसक्त कहे जा सकते हैं। यह आसक्ति जीवन के प्रति है—संपूर्ण जीवन के प्रति, उसके किसी एक रूप या हिस्से के प्रति नहीं। सच ही जीवन जीते हुए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृष्ण केवल जीवन जीते हुए कृष्ण हैं, उनका और कोई रूप सामने आता ही नहीं।

लेखन के बारे में जो यह कहा जाता है कि जहां जीवन होता है, वहां केवल जीवन होता है, रचना नहीं होती। जब रचना की स्थिति आती है तो जीवन या तो पूर्ण हो गया होता है, या ठहर गया रहता है। जीना और लिखना दोनों एक साथ, एक भाव से विरले ही संपन्न कर पाते हैं। यदि दोनों साथ-साथ होगा, तो अक्सर एक-दूसरे का स्थगन होता चलेगा। यदि ऐसा न कर दोनों काम एक साथ होंगे तो कहीं न कहीं कुछ कोर-कसर जरूर रहेगी। कभी लिखना कम होगा और जीना अधिक। और यदि लिखना अधिक होगा तो जीना कम। इसीलिए अब माना जाता है कि लिखना जीने के बाद ही होता है, यही होना चाहिए। पहले भरपूर जीवन जी लीजिये और फिर लिखना शुरू कीजिये। कुछ-कुछ इसी तरह की बात, इलियट ने भी कही है। उसके अनुसार लेखक का भोक्ता और रचयिता रूप अलग-अलग होता है। और जिसमें यह अलगाव जितना ज्यादा होता है वह उतना बड़ा रचनाकार होता है। यह अलगाव जीने और लिखने को अलग रखने से ही संभव है।

इस दृष्टि से भी यदि श्रीकृष्ण के जीवन को देखें तो उनका भोक्ता रूप ही अधिक प्रसरित है। उनके जीवन के अधिकांश में उनका भोक्ता रूप ही छाया हुआ है। उनका रचनाकार रूप तो बस गीता कहने के समय ही प्रत्यक्ष है। गीता श्रीकृष्ण के जीवन की एकमात्र रचना है- सही अर्थों में उनके संपूर्ण जीवन की एक मात्र कृति। वह श्रीकृष्ण के संपूर्ण जिये हुए जीवन का निचोड़ है। लेकिन स्वयं श्रीकृष्ण और गीता में कितना अंतर है। कृष्ण का जीवन कितना रंगारंग, विविधता-पूर्ण, सरल-सहज, आह्लाद-आनंदमय और लौकिक है। और गीता कैसी रचना है? यदि श्रीकृष्ण के जीवन संबंधी तथ्य ज्ञात नहीं होत, तो हम मुश्किल से ही इसका विश्वास करते कि ब्रज, गोकुल और मथुरा में उन्मुक्त जीवन जीने वाला तरुण ही गीता का गायक है। इस रूप में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व और कृतित्व में पर्याप्त पार्थक्य है। यह पार्थक्य ही उन्हें श्रेष्ठ रचनाकार सिद्ध करता है।

हम गीता के कथ्य की चर्चा न करेंगे। कथ्य की दृष्टि से साहित्यकार जांचा भी नहीं जाता। उसे जांचना भी नहीं चाहिए। हम गीता के शिल्प को लें। उसी से श्रीकृष्ण के रचनाकार का वैशिष्ट्य उद्घाटित होगा। आज की साहित्यिक परिस्थितियों में कृति की प्रासंगिकता का सवाल बहुत प्रमुख है। लेकिन आज कृति की प्रासंगिकता का खास अर्थ है। आज सृजन के पहले कृति की प्रासंगिकता का सवाल नहीं उठाया जाता। जब रचना लिख ली जाती है, तब उसकी प्रासंगिकता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की परख शुरू होती है। यह क्यों? यदि कृति में व्यक्त भाव, विचार और आदर्श प्रासंगिक नहीं हैं, तो उसकी रचना ही क्यों हो? इसलिए प्रासंगिकता का सवाल सृजन-प्रेरणा से ही जुड़ना चाहिये। इस दृष्टि से गीता को देखें, तो वह कितनी प्रासंगिक है। जब युद्ध-भूमि में अर्जुन को मोह हुआ, तभी गीता कही गयी। उसके पहले गीता कहने का सवाल नहीं था। इसलिए उसका प्रणयन ही प्रासंगिक है। वस्तुगत और उद्देश्यगत प्रासंगिकता तो है ही। इस रूप में गीता की प्रासंगिकता द्विविध भाव से सिद्ध है। गीता वास्तव में प्रासंगिकता के दबाव से निःसृत परिपक्व कालजयी रचना है।

इतनी प्रासंगिक, या तात्कालिकता के दबाव से निःसृत, रचना इतनी कालजयी कैसे हो गयी? लेकिन हम जानते हैं कि श्रेष्ठ साहित्यिक रचना ऐसी ही होती है। सामयिक और प्रासंगिक रचना ही कालजयी भी होती है। संसार की कोई श्रेष्ठ साहित्यिक कृति ऐसी नहीं है जो इन शर्तों को पूरा न करती हो।

गीता युद्ध-भूमि में सन्नद्ध योद्धाओं के दो पक्षों के बीच अर्जुन को संबोधित कर कही गयी है। आज के तार्किक पाठक पूछते हैं कि यह कौन-सा तरीका था श्रीकृष्ण के गीता कहने का। और कौरव-पांडव दल के दूसरे लोग कैसे थे कि उस परिस्थिति में, उतनी देर तक, कृष्ण का यह भाषण और उपदेश सुनते रहे। क्या यह अस्वाभाविक नहीं है? युद्ध-क्षेत्र के प्रसंग में यह क्या ऊटपटांग कल्पना नहीं है।

लेकिन यहीं पर हमें गीता के शिल्प पर कुछ दूसरे ढंग से गौर करना होगा। अर्जुन को यदि तब मोह हुआ, तो उसे ऐसे मोह पहले भी नहीं होते रहे होंगे, यह कैसे कहा जा सकता है। अर्जुन में यह मोह एकाएक उदित नहीं हुआ होगा। व्यक्ति जो होता है, वह निरंतर होता है, या वह क्रमशः होता है। वह कुछ का कुछ एकाएक नहीं होता। यदि अर्जुन का स्वभाव मोह में पड़ने वाला था तो श्रीकृष्ण को इसका पहले से पता रहा होगा क्योंकि श्रीकृष्ण एक तरह के उनके चिर सखा थे उसकी रग-रग से अच्छी तरह वाकिफ थे। क्या श्रीकृष्ण को अर्जुन की इस दुर्बलता का अंदाज़ा नहीं रहा होगा। तो उन्होंने पहले ही अर्जुन को यह उपदेश क्यों नहीं दिया? क्या यह अधिक सुगम और स्वाभाविक नहीं होता?

युद्ध-भूमि में अर्जुन को संबोधित करने का, या कहिये गीता कहने का विशेष औचित्य है। जैसे अर्जुन को मोह हुआ वैसे ही महाभारत-युद्ध लड़ने वाले सभी योद्धाओं को भी हुआ होगा, या कम-से-कम इस मोह के बीज उनके हृदय में भी कहीं न कहीं गहरे जरूर रहे होंगे। श्रीकृष्ण ने इस बात को समझा था। इसी अर्थ में यह 'सामूहिक मोह तत्त्व' श्रीकृष्ण के लिए गीता कहने की प्रेरणा बना। जब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शंका किसी एक की होती है, तो वह साहित्यकार का उतना गहरा सरोकार नहीं होता। लेकिन जब वह बहुसंख्यक मन की हो जाती है, तो स्रष्टा को उस पर विचार करना ज़रूरी हो जाता है। जैसे नाते-रिश्ते और संबंधों से अर्जुन बंधे थे वैसे ही नाते-रिश्तों और संबंधों से महाभारत का हर योद्धा बंधा था। तो ऐसी परिस्थिति में अर्जुन के मन की बात सब के मन की बात थी। इसलिए अर्जुन को कही हुई बात केवल अर्जुन नहीं सुन रहे थे, युद्धभूमि में उपस्थित सभी योद्धा सुन रहे थे। इसलिए वह सबके लिए स्वाभाविक और प्रासंगिक है।

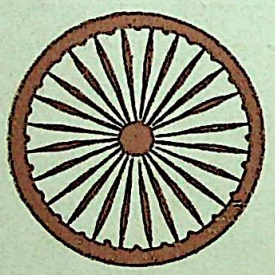

और जो बात अर्जुन के लिए बिल्कुल प्रत्यक्ष है, यदि वह अन्य लोगों के लिए अप्रत्यक्ष है तो इसके भी कारण हैं। श्रीकृष्ण स्रष्टा थे। वे मानव मनोविज्ञान से भलीभांति परिचित थे। वे जानते थे कि यदि ये ही बातें वे प्रत्यक्ष भाव से दूसरों से कहेंगे तो वे उसे ग्रहण करने की स्थिति में न होंगे। वे इस बात से ही इनकार कर सकते हैं कि उन्हें मोह ही कहां है, जो उन्हें गीता का जीवन-दर्शन सुझाया जा रहा है। इसलिये गीता प्रत्यक्षतः तो अर्जुन को संबोधित है, व्यक्ति को संबोधित है, पर अप्रत्यक्षतः समुदाय को संबोधित है, एक वृहत्तर वर्ग को संबोधित है। इस रूप में गीता के शिल्प और सृजन पर विचार करना होगा।

गीता के बारे में यह भी कहा गया है कि उसे संजय ने धृतराष्ट्र के लिए वर्णित किया है। इस रूप में संजय नैरेटर है। आज की साहित्यिक शब्दावली में संजय की वर्णन-क्षमता ही उसकी 'दिव्य दृष्टि' है। आज की साहित्यिक रचना में नैरेटर लेखक का प्रतिरूप समझा जाता है। नैरेटर लेखक का तटस्थ रूप है, जो घटना से किंचित् दूर खड़ा घटना का वर्णन करता है। वह प्रायः लेखकवत् होता है। श्रीकृष्ण का संजय ऐसा ही है। जो श्रीकृष्ण युद्ध-भूमि में अर्जुन से कह रहे हैं वही संजय राजभवन में धृतराष्ट्र से कह रहा है। ये एक ही व्यक्ति के दो रूप हैं। ऐसा मान लेने पर यह शंका करने का सवाल नहीं उठता कि संजय उतनी दूर की घटना का प्रत्यक्षवत् वर्णन धृतराष्ट्र से कैसे कर रहा था? संजय के रूप में नैरेटर की कल्पना रचनाकार कृष्ण की एक अद्वितीय विशेषता है, जिसके दूसरे उद्देश्य भी हैं।

श्रीकृष्ण ने संजय के माध्यम से धृतराष्ट्र तक अपनी बात पहुंचानी क्यों आवश्यक समझी? उन्हें ऐसे बहुआयामी शिल्प की आवश्यकता क्यों पड़ी? इसका उत्तर

(शेष पृष्ठ १४४ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

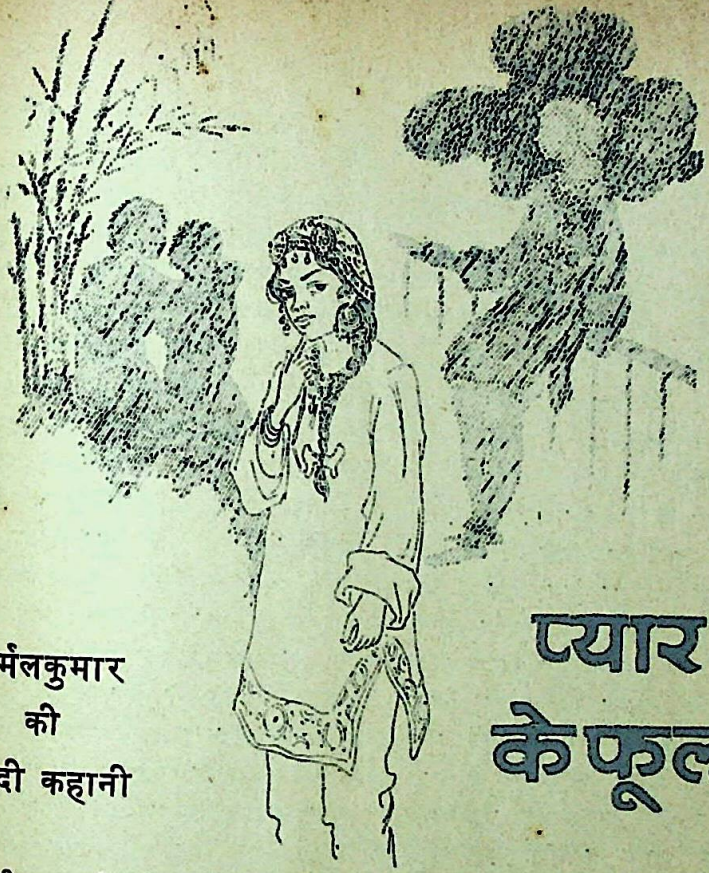

निर्मलकुमार
की
हिन्दी कहानी

प्यार के फूल

उसकी कहानी भी अजीब थी। या यों कहना शायद ज्यादा सही हो कि वह कोई कहानी नहीं थी। वह ज़िंदगी थी, ज़िंदगी की ही तरह क्षणिक आवेगों से भरी हुई, ऐसे आवेग जिनकी उम्र कभी एक घड़ी की होती है, कभी कुछ दिनों और कुछ हफ्तों की या ज्यादा से ज्यादा कुछ महीनों की। वे आवेग आते हैं, क्यों आते हैं, कहां से आते हैं कोई नहीं जानता और फिर वे कब चले जाते हैं, कोई नहीं जानता—पतझड़ के उन सुनहरे बादलों की तरह जो उसके झोपड़े के पीछे पहाड़ों के ऊपर मुकुट बन सवेरे-सवेरे सज जाते थे और दस-ग्यारह बजते-बजते न जाने कहां चले जाते थे। वे ही वो मदहोश दिन थे जब मैं कश्मीर सरकार के टूरिस्ट काटेज में एक महीना रहा था। काटेज रेशमा के घर और दुकान के पास था। बस एक उतराई थी जिस पर करीब २० कदम दूर रेशमा का घर था। घर के आगे का हिस्सा एक सस्ता-सा होटल था। वहां तीन रास्ते आकर मिलते थे। इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरह वह एक पड़ाव-सा बन गया था खच्चरवालों के लिए जो गेहूं, चावल, चीनी, नमक, आलू खच्चरों पर लादकर दूर-दूर के गांवों में पहुंचाया करते थे। अक्सर उसकी दुकान में पड़ी लकड़ी की सपाट बेंचों पर वे व्यापारी और गांव के लोग मिल जाया करते थे जिनके चेहरों पर थकान और शांति होती थी, जिनकी झुर्रियें बीच-बीच में हंसी से और उभर आती थीं।

गांववालों में अक्सर औरतें होती थीं जो या तो बीमार होती थीं या जच्चा होती थीं; जिनके 'केस' गांव में बिगड़ चुके होते थे और जिन्हें शहर के अस्पताल में भर्ती कराना ज़रूरी हो चुका होता था। उनके साथ वाले मर्द बैठकर सिगरेट पीते, कहवा पीते और राहगीरों से बातें करते हुए अपनी थकान उतारते और वे चुपचाप बैठीं अपनी उदास आंखों से आने-जाने वालों के चेहरे देखती रहतीं। उनकी आंखों से आंखें नहीं मिलाई जा सकती थीं। इस मामले में वे बहुत होशियार थीं। ऐसी कोशिश को वो भांप जाती थीं और फिर उनकी नज़रें कतराने लगतीं। मगर कतराती हुई भी उनकी नज़रें उस आदमी के आसपास ही रहतीं। कभी उसकी कुर्सी के हत्थों पर, कभी उसके पीछे की दीवार पर, कभी उसके पास बैठे आदमी पर। या तो उन्हें अपने साथ के मर्दों का डर था कि नज़रे नहीं मिलाती थीं, या फिर धर्म से मिले संस्कार थे, या नारी सुलभ लज्जा थी—मेरे अनुभव विहीन मस्तिष्क के लिए समझ पाना मुश्किल था। मगर यह स्पष्ट था कि वे अपनी ज़िंदगी से ऊबी हुई हैं और एक अजनबी नौजवान की उनकी आंखों में आंखें डालने की कोशिश उन्हें बुरी नहीं लग रही है। इसमें उनकी सर्द और रूढ़ियों में बंधी ज़िंदगी को एक गुदगुदी-सी मिलती होगी, उनकी सांसों के मोहक उतार-चढ़ाव से तो ऐसा ही लगता था।

और फिर मुझे भी कोई स्थायी दिलचस्पी तो थी नहीं। मेरे लिए भी यह वक्त काटने का एक ज़रिया था। और इसके लिए शायद इंसान ने आज तक इससे ज्यादा मोहक कोई तरीका ईजाद नहीं किया—कि अजनबी औरतों की आंखों से आंखें मिलायी जायें। उनकी आंखों के अजनबीपन में आश्चर्य, लज्जा, निर्लज्जता, कभी तिरस्कार, कभी मूक निमंत्रण के जो भाव मिलते हैं वे इतने विविध और शोख होते हैं कि प्यार की कमी महसूस ही नहीं होती। इस तरह आंखें मिलाने में वह सारी मस्ती और जोश है जो प्यार में है। बस नहीं है तो प्यार के कांटे, प्यार का ज़हर, प्यार की स्थायी पीड़ा नहीं है। और उसकी पर्वाह किसे है। हो सकता है किसी को हो, सो उसे मुबारक हो, मुझे तो नहीं थी।

वो सारी सूरतें घड़ी दो घड़ी के बाद वहां से चली जाती थीं और मैं चाय या कहवा की चुस्कियां लेता हुआ उस लकड़ी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मेरा भी वही उत्तर क़ायम।'

'फिर मैं अकेले जाऊंगा।'

उसके बाद जगदीश की पीठ मेरी ओर—स्तब्धता और शांति। उसके सामने एक बोर्ड। उस पर झुककर एक चित्र खींचा जा रहा है। स्टूल पर से फिसली तलुओं तक आयी लाल भड़कीली चेक वाली लुंगी, घने बालों वाली जंगली पीठ ...

लेकिन उसे भी मैं नहीं देखना चाहती थी। इसलिए स्टुडियो में लगे उसके चित्र देखने लगी। बॉम्बे आर्ट सोसायटी द्वारा पुरस्कृत 'बर्थ ऑफ ए लीफ' सिर्फ रेखाओं से बनायी 'पेंसिव न्यूड' एक दूसरे में घुसे चमत्कारिक त्रिकोण ... त्रिकोण और बजीबोगरीब वर्तुल ... अस्थिपंजर ख्रिस्त और उसकी पसलियों पर कांटे, हर जगह चर्चित चित्र 'जॉसिप' और कोने में मेरा तैलचित्र 'द आर्टिस्टस् वाइफ!' मैंने अपनी ही ओर चोरी-चुपके से देखा। लेकिन फिर कहां देखा जाय? हर चित्र जगदीश का ही रूप था। हर चित्र की बोट से उसकी ही आंखें चमकती दिख रही थीं।

'यह नियम है क्या कि कलाकार को मनकी और घनचक्कर होना ही चाहिये?'

पीठ से उत्तर आया—'बिलकुल नहीं। लेकिन अंदर की कोई बात छिपानी हो तो घनचक्कर होना अच्छा रहता है। खासकर फालतू चित्रकार की दृष्टि से!'

'क्या छिपाना होता है?'

उत्तर नहीं मिला। उल्टे भद्दी आवाज़ में वह गाने लगा। कुमार गंधर्व वसंतराव देशपांडे, अदल-बदलकर 'मानो जीऽऽ' या 'लागे करेजवा कटार...'

अब तक एक बार भी पीछे मुड़कर उसने नहीं देखा। तनकर बैठा है। चित्र नहीं जमा तो कैनवस को फाड़कर चिंदिया बना डालता है। जमे चित्रों की अपेक्षा फाड़कर फेंके चित्रों की संख्या ही अधिक होगी। कभी छोटे बच्चे की भांति रोता भी है। लेकिन यह पूछना ही नहीं चाहिये कि, 'लेकिन हुआ क्या?'

उसकी तनी पीठ को जीभ बाहर निकालकर और मुंह बनाकर चिढ़ाया और मन ही मन कहा, 'नहीं जमेगा। चित्र तुमसे नहीं ही बन सकेगा।'

यह मेरा दूल्हा अकेले कहीं भी चला गया होता लेकिन कभी झुकने वाला वह नहीं था।

'तुम अकेले जाओ। मैं भी अकेली जाऊंगी।' और यहीं पर मैं फिसल गयी उसकी तरह तुच्छ, निर्भय स्वर मेरे 'अकेली' शब्द में नहीं था। उसमें मेरी सदा की रोनी विवशता आ ही गयी थी।

उसकी पीठ शरारती हंसी से गद्गद् हो गयी। मैं तड़ाक से उठी दांत, ओंठ चबाये और उसकी खुली पीठ पर और खुली छाती पर थड़-थड़ मुक्के जमाये और कहा, 'चलो। तुम जहां चाहो वहां आती हूं।'

'अरे पल्लव! तुम इतनी जल्दी हार

(शेषांश पृष्ठ ९७ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुम संग

तुम्हारी रतनारी आंखों ने
कितने ही समुंदर
उछाल दिये हैं इस ओर,
और अब तुम
दिशाएं बनकर फैल गये हो
मेरे चारों ओर
और धीरे से गुनगुनाने लगे हो
कि मेरा यह जिस्म, जिस्म नहीं है;
एक सीपी है।
तो कह दो कि यह सृष्टि
कुछ देर के लिए गांधारी बन जाये
तो मैं समुंदरों को थपकी दे लूं,
तुम्हारे संग सृष्टि की परिक्रमा कर लूं
सीपी में एक मोती भर लूं।

माधुरी शाह की
दो कविताएं

मुशायरे में बैठे हो

शाम की धूप जैसे,
कुछ ही पल बाकी हैं।
उन पलों के बाद,
गांव और खेत और शहर
उतर आयेंगे,
दोनों के दरमियान,
पर, तुम तो किसी मुशायरे में बैठे हो।

गर्मियों, सर्दियों, या बरसात में-
ऐसा कुछ भी तो हुआ नहीं,
किसी खास मौसम का जो
दिलाये अहसास,
तुमसे कहूं कि
देखो तो मौसम कैसे बेअसर गुज़र गये,
पर, तुम तो किसी मुशायरे में बैठे हो।

इस शाम की धूप भी जो
यूं ही गुज़र जायेगी
तो अमरता से अभिशापित
मणिविहीन लहूलुहान
अश्वत्थामा नहीं जाग उठेगा ?
कैसे कहूं तुमसे कि
देखो, अश्वत्थामा मत जगाओ
तुम तो किसी मुशायरे में बैठे हो।

—लक्ष्मी निवास, झवेरी गली,
बीड़-४३११२२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की सीट पर उस जगह का अंदाज़ लगाता रहता था जहां कुछ देर पहले वह जाने वाली हसीना बैठी थी; कहां तक उसका शरीर था, कहां तक उसके कपड़े सीट को घेरे हुए थे—बस ये ही फ़र्क कल्पना में चित्रित करते हुए कुछ और वक़्त वहीं निकाल देता था।

उन जच्चा हसीनाओं को मिलिट्री अस्पतालों में ले जाने को लोग ज़्यादा इच्छुक रहते थे। कुछेक मुझसे भी इस मामले में राय ले लेते थे और मैं जानकारी के अभाव में जिधर उनका रुख देखता उधर की ही बातें करने लगता था।

वहां राजनीति पर भी खूब चर्चा होती। यह देखकर मुझे ठेस लगती थी कि वे लोग कबाइलियों के जुल्मों को भूल चुके थे, भारत सरकार की दी गयी मदद को पटाने की कोशिश करते थे। मुल्लाओं ने धर्म के नाम पर उन्हें इतना झूठ पढ़ा रखा था कि वे इस्लाम के नाम पर कबाइलियों और पाकिस्तानी हमलावरों के सारे जुल्मो-सितम माफ़ कर देना अपना फर्ज़ समझते थे। वे हज़ारों औरतें जिनसे पाकिस्तानी हमलावरों ने बलात्कार किया था सबकी सब बहुत बूढ़ी हो चुकी थीं। शरीर के बूढ़े हो जाने के साथ वह अपराध भी बेदम और बेमानी हो चला था जो उनके जवान जिस्मों के साथ हुआ था। उसकी याद तो उन्हीं दिनों दफन कर दी गयी थी क्योंकि ज़िंदगी तो काटनी ही थी और उन बलात्कारों से पैदा हुई औलाद अब समाज में इस तरह खप चुकी थी कि उसे अलग छांटने की न ज़रूरत रह गयी थी न तड़प, क्योंकि वो मर्द जिनके सीनों में तैंतीस साल पहले आग लगी थी जब कबाइलियों और पाकिस्तानियों ने उनकी औरतों के साथ वहशी दरिंदों का सा सलूक किया था, अब इतने बूढ़े हो चुके थे कि उनकी रगों में और उनके दिलों में ईर्ष्या का यह अंदाज़ रह ही नहीं गया था। अब उनमें ईर्ष्या इस बात पर होनी थी कि उनके पड़ोसी को उनके घर वाले नाश्ते में ज़्यादा दलिया देते हैं, उनके पड़ोसी के लड़के अपने बूढ़े बाप के लिए विलायती गर्म कपड़े और बढ़िया किस्म के सिगरेट लाते हैं। प्रेयसी का जिस्म छूने से जो ईर्ष्या की आग लगती है उस ईर्ष्या को शायद इसलिए भी धर्म के मुल्लाओं ने बुरा कहा क्योंकि वे सभी बूढ़े होते हैं और बूढ़ी रगों में यह ईर्ष्या होती ही नहीं।

खैर, उन बातों में क्या पड़ना। जून का महीना था और मैंने नौकरी से एक महीने का अर्जित अवकाश लिया था। जिस दिन मैं पहलगाम आया उसी दिन ओले पड़ गये थे और हवाओं ने ठंडी छुरियें तान ली थीं। टूरिस्ट होम के कमरे में बैठकर चाय पीते हुए, काले भारी बादलों को पहाड़ों की चोटियों पर फैलते देख मैं पछता रहा था कि मैं इस निर्जन-सी जगह क्यों आ गया। इन दिनों टूरिस्ट होम लगभग खाली था। एक बंगाली जोड़ा था बराबर के कमरे में।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वह भी तीसरे दिन चला गया। फिर ऐसे ही इक्के-दुक्के सैलानी आते और जाते रहे। कोई भी एक-दो दिन से ज्यादा न रुका। इसीलिये किसी से भी दोस्ती और अपनत्व पैदा करने का मौका न मिल सका और हफ्ते भर ही में मैं अपनेपन के लिए तरसने लगा। यह कोई ज़िंदगी न थी कि सुबह-शाम घूम आओ, दिन में पढ़ो या ट्रांज़िस्टर सुनो और रात होते ही बिस्तरे में घुस जाओ।

मैं तलाश में था किसी ऐसे इंसान की जिसके साथ दोस्ती जैसा कोई संबंध बन सके और तब एक खूबसूरत-सी गर्म सुबह बड़े अप्रत्याशित रूप से मेरी मुलाकात रेशमा से हो गयी। उसका होटल मेरे रास्ते में ही पड़ता था मगर उस पर उसका बाप बैठता था। उस दिन वह बैठी थी और एक ग्राहक को सिगरेट का पैकेट दे रही थी। दुकान के आगे से निकलते हुए यों ही मेरी आंखें उसकी आंखों से टकरा गयीं। शायद कभी भी सजल किशोरी घटाएं इस चुस्ती के साथ ऊपर पहाड़ों से नीचे घाटी की ओर नहीं उतरी होंगी, जिस चपलता के साथ उसकी पलकें झुकीं, फिर उठीं। मुझे न जाने क्या हो गया था! एक क्षण को मेरे पैर ठिठक गये थे शायद। फिर उसने मेरी ओर देखा और कुछ अरुणाए रोम उसके गालों पर उभर आये। मैं अवाक् रह गया। मुझे लगा इतना रूप तो मैंने कभी नहीं देखा था। इतना रूप देख लूं ऐसा तो कोई पुण्य कर्म नहीं किया था मैंने इस जन्म में। अपनी लंबी चोटी को पीछे फेंकती हुई वह मुड़ी। उसके होंठों पर एक मुस्कराहट थी—एक आश्वस्त मुस्कराहट जो किसी सुंदर लड़की के मुंह पर तब आती है जब वह किसी की आंखों में अपने को उतरते महसूस करती है।

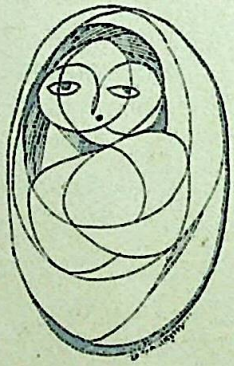

चित्र : भाऊ समर्थ

कहना बेकार है कि मेरा टूरिस्ट होम में वापस जाना मौत के अंधेरों से गुम हो जाने से कम नहीं था। मैं कोशिश करता रहा पेंसिल से उसकी वह छवि बनाने की जब चोटी झटककर वह आंखें बचाये मुस्कराती हुई भीतर जा रही थी। उसके पतले कंधे, एक फूलदार सफेद ऊनी कुर्ते में, उसका लंबा छरहरा बदन मेरे मन में अड़ गया था। मगर चित्रित तो तब करता जब उंगलियां सधी हुई होतीं। मेरी हज़ार कोशिशें उस छबि को उतार न पायीं।

सुबह, बड़े सवेरे मेरी आंख खुल गयी और मैंने पाया कि मेरा दिल आप ही आप किसी योजना की तलाश में लगा हुआ था जिससे रेशमा से मुलाकात बढ़ सके। हो सकता है योजना बनाने का यह कार्यक्रम सपनों से शुरू हुआ हो क्योंकि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसमें चालाकियों और फरेबों के जो ताने-बाने बुने हुए थे वे इस बात का अहसास करा रहे थे कि उनका इस्तेमाल शुरू किये देर हो चुकी थी।

नतीजा यह हुआ कि एक योजना चाय पीते-पीते बनकर मेरे सामने आ गयी। मैंने जल्दी से कपड़े पहने और टहलने चल दिया। आज टहलने का मन भी नहीं था क्योंकि टहलना मेरी इस योजना का एक फालतू हिस्सा था। किसी तरह वक्त पूरा कर मैं लौटा। रेशमा का होटल आया। बस अब मेरी योजना का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा शुरू हो रहा था। मैं होटल में घुसा।

रेशमा का बाप सुर्ख टोपी लगाये काउंटर पर बैठा था और उसके सामने कांच के मर्तबानों में टाफियां, बिस्कुट, बीड़ियां आदि सजी हुई थीं। अजीज—यही उसका नाम था—मुस्कराया और बोला, 'सलाम, साहब।'

मैंने कहा, 'एक कप चाय लाओ।'

'अभी लीजिये।' और वह गुनगुनाता हुआ चाय बनाने लगा।

दुकान में और कोई नहीं था। 'आजकल यहां कोई नज़र नहीं आता।' मैंने बात शुरू करने की गरज़ से कहा।

'अब बरसात आने वाली है ना, साहब, बस इसीलिये। अप्रैल-मई में बहुत टूरिस्ट रहता है।' वह चाय ले आया।

मैं मुस्कराया, 'अमां, एक चाय हमारी तरफ से अपने लिए भी ले आओ। अब अकेले क्या चाय पियें। वैसे ही जी नहीं लगता।'

वह मुस्कराया। 'ये बात है, हुजूर। फिर तो आप ये चाय मेरी तरफ से पीजिये।'

'नहीं भाई, यह गलत है। दुकानदारी दुकानदारी की जगह! तुम यों ही

ग्राहकों को मुफ्त चाय पिलाओगे तो खाओगे क्या! घोड़ा घास से तो यारी नहीं कर सकता।'

'मगर हर ग्राहक भी तो मेरे साथ चाय पीने की ख्वाहिश नहीं ज़ाहिर करता।'

'नहीं, भाई, देखो.....'

'देखो, साहब,' अजीज बोला, 'यहां बात है उसूल की। मेरी दुकान में मेरे साथ चाय पियेंगे तो मेरे खर्चे पर।'

'चलो फिर ठीक है,' मैंने तकरार न करने का फैसला किया, क्योंकि उसका हर्जा पूरा करने के दूसरे भी तरीके मुझे आते थे।

थोड़ी ही देर में वह मुझसे काफी घुलमिल गया। यहां तक कि वह मुझे पीछे अपने मुर्गी के दरबे तक ले गया अपनी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विलायती मुर्गियां दिखाने के लिए। एक कच्चा सेब भी तोड़कर उसने मुझे दिया। उसके घर के पीछे एक छोटा-सा बगीचा था जिसमें दो पेड़ सेब के थे, कुछ फूल और सब्जियां थीं और एक मुर्गियों का दरबा था जिसमें चार जोड़ी मुर्गी और मुर्गे थे।

वहीं बगीचे में उससे बात करते हुए रेशमा ने खिड़की से झांककर हमें देखा और अपने बाप को पुकारकर कश्मीरी जुबान में कुछ कहा। वह मेरे वहां होने को एक मामूली घटना का रूप दे रही थी, मगर मुझे ऐसा लगा जैसे मुझे वहां देखकर उसे कौतूहल और रोमांच दोनों हुए थे।

दुकान में लौटकर मैंने अजीज से कहा, 'मैं टूरिस्ट होम का खाना खाते-खाते तंग आ चुका हूं। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम्हारे होटल में मेरे सुबह-शाम के खाने का इंतज़ाम हो जाये।'

'क्यों नहीं हो सकता? ज़रूर हो सकता है और उतने ही पैसों में जो आप वहां अदा करते हैं। अरे साहब, वह भी कोई खाना है। सरकारी मामला है। आधा सामान तो वहां खानसामा ही डकार जाता है। फिर टूरिस्ट को क्या खिलाये!'

इस तरह एक सिलसिला बन गया। ज़रूर रेशमा इसे मेरी चाल समझ रही होगी क्योंकि उसकी मुस्कराहट में कुछ ऐसा ही था। मगर वह नाराज़ नहीं थी। कुछ चालाकियां मासूम होती हैं। उन पर गुस्सा नहीं प्यार आता है। तभी तो मेरा खाना बहुत लज्ज़तदार होने लगा। अगरचे सब्ज़ी एक ही होती थी मगर क्या कहने! मुझे हर टुकड़े में रेशमा की देखरेख, अहतियात और पाकविद्या का कमाल महसूस होता था। उसकी मां बहुत सीधी-सादी और गंभीर औरत थी। उससे यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी कि वह एक ग्राहक के लिए इतने ध्यान से खाना बनायेगी।

०००

उस दिन अजीज नहीं था और अपने फुफेरे भाई के जनाज़े में शरीक होने चंद कोस दूर एक गांव में गया हुआ था। दिन में खाने के वक्त वह था। मगर शाम को जब मैं बारिश में भीगता हुआ लौटा तो वह जा चुका था।

अचानक ही बादल घिर आये और शहबलूत के पेड़ों पर बिफरने लगे थे। हवा एकदम ठंडी हो गयी थी। जब तक मैं लौटूं धुआंधार मेह बरसने लगा था। भागा, मगर भागते-भागते ही बुरी तरह भीग गया।

रेशमा दुकान पर चुप और उदास बैठी थी। कोई नहीं था। चारों ओर अंधियारा घिर आया था और हवाओं से बचने के लिए उसने दुकान के आधे तख्ते लगा लिये थे।

दुकान में घुसते-घुसते मुझे दो छींकें आयीं। 'तुम भीग गये हो, साहब।' रेशमा उठी, 'ठहरो, आग सुलगा देती हूं।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'नहीं, नहीं रहने दो। मुझे बस दो सेरीडोन दे दो। मैं कमरे पर जाकर कपड़े बदल लूंगा। और एक प्याला चाय दे दो।'

'अभी,' कहते हुए पहले से ही खौलती हुई केतली से छलनी पर चाय की पत्तियां डाल वह गिलास में पानी उड़ेलने लगी। आग की लपटों में सुर्ख लग रहे उसके चेहरे को एक बार मैंने जी भरकर देखा। उसकी काली बरौनियां झुके चेहरे पर बहुत तनी हुई दीख रही थीं। फिर मैंने आंखें हटा लीं क्योंकि इस तरह ज्यादा देर देखना मुझे असुंदर-सा लगा।

चाय पीकर मैं टूरिस्ट होम में लौट आया। कपड़े बदलकर लेट गया और न जाने कब मुझे नींद आ गयी।

दरवाज़े पर दस्तक सुन मेरी आंख खुली। दस बज रहे थे। बाहर रिमझिम थी और बादलों की गर्जन। दरवाज़ा खोलते ही हवा का एक बर्फीला झोंका बिस्तर के निवाच से उठे मेरे जिस्म को कंपा गया।

सामने रेशमा मेरा खाना लिये खड़ी थी, 'लो, साहब,' वह हंसते हुए बोली, 'बड़ी देर तक तुम्हारी राह देखी। फिर मां ने बोला तुम्हारा खाना दे आओ तो मैं चली आयी।' वह फिर हंसी और उसने ऊपर आकाश की ओर देखा। कमरे से आती रोशनी में उसके चेहरे पर पड़ती फुहारें चमकने लगीं। उसका गोरा गला एक हंसिनी की तरह उभर आया।

ऐसा तो मैं नहीं कहूंगा कि हुस्न देखकर मुझे गश आ गया, मगर सचमुच मेरे पैर लड़खड़ा गये। मैंने दरवाज़ा थाम लिया और दो-तीन बार बड़ी बेरहमी से खांसा जिससे मेरा सीना बुरी तरह हिल गया।

रेशमा की सूरत अचानक गंभीर हो गयी, 'क्या बात है, साहब, क्या तुमको बुखार है?' उसने मेरा माथा छुआ, 'जी अच्छा नहीं है। तुमको काफी तेज़ बुखार है।' ज़रूर होगा क्योंकि उसने छूकर बताया था। मुझे हाथ से पकड़कर वह बिस्तरे तक लायी और बोली, 'तुम आराम करो मैं तुम्हारे लिए चाय और दवा लाती हूं।'

'नहीं अब तुम रहने दो। सेरीडोन मैं ले चुका हूं।'

मगर इतने में वह कमरे का दरवाज़ा बाहर से बंद करती हुई निकल गयी, झोंके आ रहे थे।

मैं बैठकर उसका इंतज़ार करने लगा, क्योंकि कमरे में उसके घुसते हुए मेरा लेटा होना मुझे कुछ भद्दा-सा लगा। मैंने गाउन पहन लिया और रह-रहकर गरजते बादलों की आवाज़ सुनने लगा। चारों ओर सन्नाटा था और पेड़ों पर गिरती फुहारों का एकसुरा संगीत था।

कुछ ही देर में वह लौट आयी। एक केतली उसके हाथ में थी और दो शीशियां—एक 'विक्स' की थी जो मैं पहचानता था, दूसरी में पता नहीं क्या था। वह हंसी, 'मां बोली यह दवाई अक्सीर है। इसकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक खुराक लो सुबह तक अच्छे हो जाओगे। सेरीडोन-वेरीडोन में क्या रखा है।'

शीशी से प्याले में दवा उड़ेलकर उसने दी। मैं पी गया। फिर उसने एक कप चाय दी। वह भी मैंने पी ली। वह बोली, 'तुम लेट जाओ तो मैं विक्स तुम्हारे माथे और सीने पर मल देती हूं जैसे फिल्म में मलते हैं।' वह फिर हंसी।

पूरे निर्जन इस वनप्रांत में सिर्फ हम दो थे। कितना भरोसा करके वह मेरे पास आयी थी। उसकी सरलता और सहृदयता पर मेरे आंसू निकल आये। उससे छुपाकर मैंने उन्हें पोंछा, मगर शायद उसने उन्हें देख लिया, क्योंकि एक दर्दीली चुप्पी उसे छू गयी और कुछ क्षण वह चुप रही। मैं लेट गया।

विक्स मलते हुए वह बोली, 'क्या घरवालों की याद आ रही है, साहब?'

मैंने 'नहीं' में गर्दन हिलाई।

'दुख में घरवाले नहीं याद आयेंगे तो कौन आयेगा?' वह फिर बोली।

'नहीं, ऐसा नहीं है, रेशमा। मैं तो अकेला रहता हूं नौकरी पर। मां-बाप इलाहाबाद रहते हैं।'

न मालूम कैसी चुप्पी अचानक छा गयी। मेरे सीने पर 'विक्स' फैलाती उसकी उंगलियां छू लेने को मेरा मन हुआ। यह इच्छा अचानक उठी जैसे कोई और मुझे प्रेरित कर रहा हो। मैंने अपने को रोका और तब न जाने किस प्रेरणावश मेरी आंखें उसकी आंखों की ओर उठीं। वह आंखें बचा रही थी। मुझे लगा किसी ऐसी ही प्रेरणा ने उसके अंगों को भी जकड़ दिया था। अब उनमें वह फुर्ती और बेबाक़ी नहीं थी।

कुछ देर और। हमारी सांसें तेज़ होने लगीं। मुझे लगा, मेरा दम घुट जायेगा। वह भी मशीनी ढंग से विक्स मले जा रही थी, जैसे इस मलने से उसके दिमाग का संबंध जाता रहा था। उसे अंदाज़ ही नहीं था कितना मलना है, कब तक मलते रहना है।

किसी विद्युत जैसी शक्ति ने मुझे बैठा दिया। अब उसका हाथ मेरे सीने पर से हट चुका था और अब मेरा ध्यान गया कि वह मेरे बिस्तर की ही बांहों पर बैठी थी। उसका झुका चेहरा मेरे बहुत पास था और वह काफी तेज़ी से सांस ले रही थी—ठीक जो हाल मेरा था।

कह नहीं सकता कैसे मेरा हाथ उसके हाथ पर पहुंच गया। मगर छूते ही उसकी मुट्ठी ने मेरी उंगलियों को जकड़ लिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और तब आप ही मेरी दूसरी बांह उसके गले में चली गयी और हम एक आलिंगन में बंध गये।

उसकी सांसें कुमारी थीं यह मुझे वह हवा बता रही थी जो उस समय हम दोनों के बीच थी। उसके केशों की अपनी महक मुझे तब महसूस हुई जब उसकी चुन्नी ज़रा सरक गयी। ज़रा मुश्किल से ही मैं उसे चूम पाया, क्योंकि वह अपना लाज और उत्तेजना से तमतमाता चेहरा बचाती ही रही।

इस तरह हमारा प्यार शुरू हुआ और एक दिन में ही ऐसा लगने लगा जैसे दिल के हर कोने में बाग सज गये। फिर तो चैन नहीं था। रेशमा रोज़-रोज़ तो आ सकती थी नहीं। मुझे ही जाना पड़ता था। रेशमा से मेरा प्यार क्या बढ़ा कि मुझे हैरानी होने लगी—कितनी जगह है मेरे दिल में। कुछ ही दिन गुज़रे कि आसमान जितना फैल गया, सारी वादी जैसे मेरे अरमानों से ढक गयी, जैसे चांद ज़िंदा हो गया और उसकी सांसें और रेशमा की सांसें एक हो गयीं। कोई पल ऐसा नहीं था जब रेशमा का ख्याल मेरे दिल में खड़ा मेरे दिल की हरकतों को गुमसुम-सा देख न रहा होता।

अब वह रोज़ मुझे दुकान में मिलती। अक्सर ऐसा होता कि मुझे देख वह अपने बाप को किसी बहाने फ़ुरसत दे देती। फिर मैं होता और वह होती। अगर अकेले होते तो कहने क्या! अगर और भी

राहगीर होते तो हमारी बातों के मायने ही बस हमारे होते, बातें सब औरों को सुनाने के लिए होतीं। तब दूर काउंटर पर बैठी रेशमा के और मेरे बीच एक रबर की सी डोर होती जो किसी क्षण हमें एकदम एक दूसरे के पास कर देती और किसी क्षण दूर-दूर। एक अजब अदृश्य हिंडोला था जिसमें प्रकृति हमारे नवजात प्यार को पाल रही थी। मगर उस डोर के दोनों सिरों पर हम एक दूसरे से चुप्पी के ज़रिये भी बातें कर लेते थे।

फिर रेशमा मेरे पास दिन में आने लगी। कोई मौका देखकर वह आ जाती। मैं और वह जब भीतर होते तो मैं खिड़की के रास्ते बाहर आकर दरवाज़े पर ताला लगा देता था। कभी-कभी वह तीन-तीन, चार-चार घंटे भी मेरे साथ रहती मगर उससे ज़्यादा नहीं। एक बंद कमरे में हम दोनों की दुनिया सिमट जाती और एक दूसरे में लीन हो जाती। उसके आलिंगन मेरे अंगों में रच गये थे। उसके होंठों की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महक खुद मेरे होंठों से आने लगी थी। मगर हमारे इस प्यार में न जाने कौन सी मर्यादा आप ही उतर आयी थी कि इतना एकांत पाकर भी हमने उन सीमाओं को नहीं लांघा था। कितनी ही बार उत्तेजना के शिखर पर पहुंचकर हमें आप ही होश आया था जैसे कोई देवता भी हमारे साथ कमरे में बंद था।

जिस प्यार से मैं दूर था, वह मेरी ज़िंदगी में आ गया था। अब अजनबी औरतों की आंखों में देखने की इच्छा नहीं होती थी। किसी की भी आंखों में देखो, फूलदार रूमाल से बाल बांधे रेशमा की सूरत आंखों में आ जाती थी।

०००

उस दिन अजीज ने हमें देख लिया। आया था वह कुल्हाड़ा लेकर। मगर लकड़ियों के लिए उसे इतनी दूर आने की क्या ज़रूरत थी। मुझे लगता है हर जवान लड़की के पिता की तरह फरिश्तों ने उसकी भी मदद की थी। उसे बता दिया था कि उसकी बेटी आंख मींचे ज़िंदगी की चट्टान के कगारों तक आ चुकी थी।

गले में बांहें डाले, बेखबर कि इन घटाटोप बादलों के रहते यहां कौन आयेगा, हम बूढ़े बांझ की खोह में बैठे थे। बस तभी गोल टोपी पहने अचानक अजीज का सिर नज़र आया। फौरन हम अलग हो गये। मुझे खुशफहमी हुई कि उसने हमें देखा नहीं। मगर खुशफहमियों के रंग यथार्थ के रंगों को निखरने से नहीं रोक पाते। उसके चेहरे पर, आंखों में, यथार्थ की चिनगारियां थीं। मगर उसकी शराफत और ज़ब्त का भी जवाब नहीं था। वह बोला कुछ नहीं।

कुछ देर जब यों ही बीत गयी और समाज के नियमों के अनुसार उसने गुनहगारों को सज़ा नहीं दी तो शायद मेरी मृत्यु चाह बोली : 'देखो, अजीज, अगर तुम्हें एतराज़ न हो तो मैं और रेशमा शादी करना चाहते हैं।'

एक क्षण चुप्पी रही। मैंने उसके चेहरे की पेशियों पर आती और जाती ऐंठन को नहीं देखा, मगर मुझे महसूस हुआ कि उसके खून में इस बीच कई तरह के जोश आये और उसका चेहरा क्रोध की आंच में झुलसकर कुछ स्याह पड़ गया। उसकी स्याही मेरे दिल में उफनते प्रेम के निर्दोष खून को बहुत साफ एक परछाईं की तरह महसूस हुई।

'क्यों ?' रेशमा की ओर देखते हुए उसने पूछा। अब भी मैंने उसका चेहरा नहीं देखा और मैं नहीं बता सकता कि उस पर क्या भाव थे। मैंने रेशमा का भी चेहरा उस घड़ी नहीं देखा, मगर मैं जानता हूं कि उसके चेहरे पर क्या भाव थे।

उसकी पलकें झुकी हुई थीं। चेहरा भय के मारे सफेद था। बस बरौनियों की कमान जैसे उस मासूम चेहरे की हिफाज़त कर रही थी। 'हां' उसके होठों से निकला।

'ऐसा झापड़ मारूंगा कि सीधी खड्ड में जा गिरेगी।' अजीज का शोला फट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और एक बिजली-सी मैंने देखी रेशमा के जिस्म में कौंध गयी। पता नहीं क्या हुआ उस क्षण, मुझे लगा उस बिजली ने मेरी रेशमा को बस उसी घड़ी मुझसे छीन लिया।

'यह नहीं हो सकता, साहब।' अजीज कह रहा था जो मेरे कानों में पड़ रहा था, जिसे स्मृति ने आज भी बचा रखा है। मगर सच मानिये मेरा सीना नहीं सुन रहा था। कोई ज़बान ज़रूर है दिलों की जो ज़रा-ज़रा सी हरकतों—जैसे उस घड़ी रेशमा का थोड़ा-सा तिरछा होकर अंगूठे से ज़मीन कुरेदना—में सारा भविष्य पढ़ लेती है। उसे शब्दों की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। मेरा प्यार ज़िंदा दफना दिया गया है—वे छोटी-छोटी हरकतें मेरे दिल को यकीन दिला चुकी थीं। पर वह बोल रहा था और मुझे सुनना था—'आप हिंदू हैं और हम मुसलमान।'

न जाने क्यों अपने को रुसवा कराने के लिए या प्रेम की हत्या के असह्य दर्द को बेइज्ज़ती के दर्द से दबा देने के लिए मैंने चाहा होगा कि मेरी बेइज्ज़ती हो और मैं अजीज की, रेशमा की और खुद अपनी नज़रों में गिर जाऊं। इसीलिये शायद मैं एक खोखली आवाज़ में उससे बोल रहा था। यह अच्छा है कि स्मृति के सैलाब ने उन शब्दों को धो दिया है वरना हर बार उनसे बेइज्ज़ती का तेजाब टपकता और मेरी रगें झुलसतीं। मगर यों न होता तो भी क्या होता। रगें तो अब भी बदस्तूर झुलसती हैं।

मैं उसे 'हिंदू-मुस्लिम होने से क्या होता है। हम सब इंसान हैं...' आदि बातें कह रहा था कि वह एक शूरमा की तरह भांपकर कि उसका दुश्मन बहुत कमज़ोर निकला, बिना उत्तर दिये रेशमा का हाथ पकड़कर मेरी आंखों से ओझल हो गया। रह गयी एक ठंडी खुश्क हवा और उसके कंटीले थपेड़े। मेरे बदन पर जगह-जगह निशान उभर आये थे। शायद मेरी आत्मा ने मुझे कोड़े मारे थे।

उसके बाद इतना ही याद है कि सन्नाटा बहुत बढ़ गया था; मेरी खांसी की आवाज़ मुझे बहुत तेज़ सुनाई दे रही थी, प्यास के मारे मेरा कंठ जल रहा था। एक स्रोत से मैंने बहुत पानी पिया था।

अब तो रेशमा के घर के आगे से गुज़रना भी मेरे लिए मुश्किल था। रास्ते से बच किसी तरह एक पहाड़ी पर चढ़ मैं टूरिस्ट होम पहुंचा। अगली सुबह मैं चल दिया।

०००

करीब दस महीने यह दर्द मेरे सीने में चलता रहा। नातजुर्बेकारी रही होगी कि दिल किसी करवट भी चैन न पा सका। न वह दिन उतरा, न वे मनहूस बादल हटे, न वह क्षण दूर हुआ। कुल्हाड़ा लिये अजीज यों ही जैसे मेरी ज़िंदगी की एक मात्र राह को रोककर हमेशा के लिए खड़ा हो गया। फिर कश्मीर मुझे जाना पड़ा। लाख चाहते हुए भी कि न जाऊं। बेइज्ज़ती के कितने ही उफ़ानों ने सीने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से उठकर चेहरे को तो कंपा दिया, बांहों को जकड़ दिया मगर निर्लज्ज पैरों को न रोक सके।

अप्रैल का बीच था। सारी घाटी फूलों से दमक रही थी। मगर मुझे फूलों की जगह एक कोहरा दीख रहा था और उसके बीच रेशमा का घर था, एक भयानक जादुई घर जहां उसका बाप लाल आंखें किये कोई तिलस्मी मंत्र पढ़ रहा है।

मगर ऐसा कुछ भी नहीं था। रेशमा की दुकान सज गयी थी। लगता था इन दस महीनों में अजीज ने इतनी दौलत कमा ली थी जितनी पूरी ज़िंदगी नसीब नहीं हुई। दुकान पर कांउटर चमकते हुए टाइलों का बन गया था और लकड़ी के वे पुराने कलसाए तख्ते जिन पर पीली मिट्टी पुती हुई थी नदारद थे। सागौन का शानदार पैनल कुर्सियों के पीछे था जिस पर वार्निश चमक रहा था और

चित्र : आर. डी. पुरोहित

जार्जेट के परदे थे।

एक ईर्ष्यालु मूर्खता से भरा अचरज मेरे दिल को हुआ, यों ही दिल में एक ख्याल की हवा-सी उठी—क्या दिल तोड़कर किस्मत खोल देना है? क्या यह भी एक रस्म है जिसे दुनिया के लोग हमेशा से इसीलिये करते आये हैं कि बिना किसी का दिल तोड़े दौलत की देवी खुश नहीं होती?

अजीज ने खुद ही मुझे आवाज़ दी: 'सलाम, साहब!' वह खुश था। वह सब भूल चुका था कि मैंने उसको गुस्सा दिलाया था। वह मुझे माफ कर चुका था। मगर कैसी थी यह माफी कि मेरा दिल उसका शुक्रगुज़ार होने की बजाय बंद हुआ जा रहा था।

मैंने चाय पी और उसने मुझे बताया कि कश्मीर घूमने का सही मौसम यही है। मगर इतनी सजावट और खुश बातों के बीच कोई उदासी थी जो बाहर खड़े खुबानी के पेड़ की पत्तियों से उठकर मेरे दिल से कुछ कह रही थी।

ooo

टूरिस्ट होम में बहुत चहल-चहल थी। तीन लड़के जींस और जैकेट्स में बरामदे में बैठे ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे। वहीं रेशमा भी थी। वह बरामदे की रेलिंग पर बैठी थी और उनकी बातों में इस तरह शामिल थी जैसे वे उसके बहुत पुराने परिचित मित्र थे।

रेशमा ने कपड़े वही कश्मीरी ढंग के पहन रखे थे मगर उनकी फबन से मेरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिल जल गया। मुझे लगा उन कपड़ों में पर्वतीय मेहनत की सच्चाई नहीं थी, कोई फिल्मी अंदाज़ था। ये कपड़े कश्मीरी ज़रूर थे मगर अब वह इन्हें फैशन मानकर उन लड़कों के लिए पहने हुए थी।

रेशमा ने मुझे देखा, एक क्षण को उसके दिल ने कहा कि उठ। मगर उसके कंधों पर न जाने कौन-सा वज़न था, वह उठी नहीं और वह क्षण निकल गया।

क्या बेवफाई प्यार को अंधा कर देती है? क्या प्यार जन्म से अंधा नहीं होता? क्या यह अंधापन ही इसकी वजह है कि फिर से अपनी बेवफ़ा दोस्त के आगे पड़ते हुए हमें लाज लगती है?

मैं अपने कमरे में आ गया। इतना फ़र्क़ ज़रूर आया मेरे होने से कि रेशमा के बेबाक कहकहे बंद हो गये, फिर उसका बोलना बंद हो गया। फिर बरामदा खाली हो गया।

ooo

खानसामा मेरा खाना कमरे में ही ले आया। बाहर निकलने को मेरा मन नहीं था। जैसे वह बरामदा मेरे लिए दुश्मन का सहन हो गया। उससे होकर निकलना मंजूर नहीं था।

जब खानसामा आया तो मुझसे रहा नहीं गया। न जाने कितने प्रतिहिंसा के भाव जले दिल में उठ आये थे और कुछ बुरा, कुछ पाप से भरा, सुनने को प्यासे हो रहे थे।

मैंने उसे एक सिगरेट दी, खुद माचिस

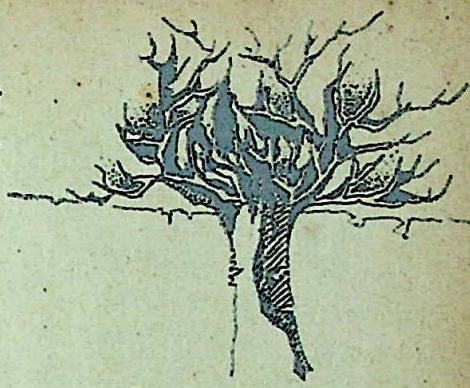

चित्र : चरन शर्मा

जलाकर सुलगाई, 'कहो बरफ कैसी रही, खानासामा?' 'अब की बहुत पड़ी, साहब,' वह हंसा, 'यह सारा बंगला दो दिन पूरा धंसा रहा।'

'अच्छा, तो अजीज भाई की दुकान खूब चली?'

खानसामा एक क्षण को चुप हो गया, फिर एक ज़हर भरी, घृणा भरी मुस्कुराहट उसके मुंह पर आयी: 'खुदा की मार शैतान पर! ऐसा धंधा करके तो कोई भी मालामाल हो जायेगा।'

आगे बात करने को मन नहीं हुआ। मेरे दिल में हुआ—क्या प्यार का खून करने की सज़ा यही है कि इंसान को एक खून और करना पड़ता है—अपने चरित्र का खून! इन बातों से मेरा दिल जैसे बहुत बड़ा हो गया था और उस फैलाव में सुनने का शौक खो गया था।

रात को मैं कोशिश करता रहा मगर नींद न आयी। मैंने रोशनी गुल कर दी, पीछे की खिड़की से चांदनी आ रही थी। अब अकेलेपन में भी कोई विचार मेरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साथ देने को तैयार नहीं था। एक गोल गुब्बार जैसी दुनिया मुझे अपने सीने में घूमती महसूस हो रही थी जिसमें कोई आबाद नहीं था।

मैं करवटें बदलता रहा और सिगरेट फूंकता रहा। आते हुए रास्ते में मुझे नारी के वक्ष जैसी एक गोल पहाड़ी सड़क के किनारे मिली थी जिस पर छोटे-छोटे असंख्य फूल खिले हुए थे। उसे देखकर मैं उदास हुआ था।

उसी तरह की एक पहाड़ी मेरे सीने से उठ आयी थी जिसमें मस्तिष्क भी दब गया था। न कोई दर्द था, न शिकायत। बस घुटन थी और जलन थी।

तभी बाहर आहट हुई। मेरे कान खड़े हुए।

मुझे लगा मैं देर से रेशमा के आने का इंतज़ार कर रहा था। पाप से भरा मेरा मन जानता था कि वह आयेगी, मगर मेरे लिए नहीं, उन लड़कों के लिए।

उसे पिछवाड़े देख मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ बल्कि कुछ खुशी हुई इस बात से कि मेरा अंदाज़ सही था कि वह उनसे मिलने बरामदे के रास्ते नहीं आयेगी क्योंकि उस पर मैं गुजर चुका था। प्यार में बेवफाई करने वाले इतना लिहाज़ तो बरतते ही हैं।

एक बार उसने किसी अज्ञात आशंका-वश मेरी खिड़की की ओर देखा मगर शीशे नीले थे इसीलिये उनके पीछे छुपे हुए मुझको वह नहीं देख सकी।

वह एक शाल लपेटे हुए थी। मैंने उसे शाल में कभी नहीं देखा था। बहुत तेज़ ठंड वाले दिन भी देखे थे। कभी भी वह शाल नहीं ओढ़ती थी।

वह एक खिड़की की तरफ बढ़ी और उसने दस्तक दी। मेरे दिल में एक दर्द उठा, उन दिनों का एक इकट्ठा-सा आघात जब यह दस्तक मेरे लिए होती थी। खिड़की खुली, फिर पीछे का दरवाज़ा खुला। एक नौजवान बाहर निकला। वे आपस में कुछ बोले जो बात शीशों के कारण मैं नहीं सुन सका। फिर वह नौजवान इत्मीनान से चारों ओर कुछ ऐसे देखने लगा जैसे उसे उम्मीद हो कि वहां कोई और है।

मगर हवा थी बसंत की, तेज़ बर्फीली हवा, जो बहुत अनिश्चित थी, कभी तेज़ सर्राटों के साथ चलती और कभी टूटे पत्तों के ढेर में दुबक जाती।

रेशमा का हाथ शाल के बाहर निकला। उसके हाथ में एक पैकेट था। उसने पैकेट नौजवान को दे दिया।

नौजवान ने जेब में हाथ डाला, पर्स बाहर निकाला और कुछ रुपये गिनकर रेशमा को दिये।

फिर ... फिर उसने रेशमा को बांहों में भर लिया और वे हंसते हुए जुदा हो गये।

प्यार के वीराने में शहनाइयां बजी तो थीं। प्यार के कुम्हलाए फूल सर उठाकर मुस्कराये ज़रूर थे।

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्या खोया क्या पाया ?

ज़रा सोचिये इस जीवन में, हमने क्या खोया क्या पाया ?

झूठी इज्ज़त तब पायी है, जब बेचा ईमान
बेच आत्मा बनवाया है, हमने नया मकान
हीरे खोकर नादानी में, क्यों पत्थर से सर टकराया !
ज़रा सोचिये...

यह तो सच है धन के बदले बहुत मिला है नाम
लेकिन मन के विश्वासों को कर बैठे नीलाम
हमने कविता की देवी को, चौराहे पर नाच नचाया !
ज़रा सोचिये...

इतने अंधे हुए दौड़ में, भूल गये हर बात
सुबह बेच दी और बेच दी तारों वाली रात
घुट-घुटकर मर जायें जिसमें हमने खुद वो जाल बिछाया
ज़रा सोचिये...

हां-हां हमने भी बेची है, बच्चों की मुसकान
पूरा घर आंसू में डूबा, तब पाया सम्मान
हास्य-व्यंग्य के दीवाने ने खुद रोकर के तुम्हें हंसाया !
ज़रा सोचिये...

क्यों आये हो इस दुनिया में बोलो, मेरे यार
कौन हो तुम यह पूछो खुद से चुप क्यों हो, सरकार
औरों को क्या जानेगा वह जो खुद को पहचान न पाया !
ज़रा सोचिये...

—हुल्लड़ मुरादाबादी

चेतना, फ्लैट ५०३, प्रताप नगर, अंधेरी (प.), बम्बई-४०००५८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जून १९८२ के 'नवनीत' में प्रकाशित निर्मल वर्मा के महत्त्वपूर्ण लेख 'उपन्यास की मृत्यु और उसका पुनर्जन्म' पर निर्मला चौहान के मौलिक विचार

□

विशुद्ध भारतीय उपन्यास

ooo

जून १९८२ के 'नवनीत' में प्रकाशित निर्मल वर्मा के लेख 'उपन्यास की मृत्यु और उसका पुनर्जन्म' पर आमंत्रित टिप्पणियों में से प्रथम टिप्पणी यहां प्रकाशित है। इस और आगे आने वाली टिप्पणियों में व्यक्त विचारों से सम्पादक का सहमत होना जरूरी नहीं है।

यह ध्यातव्य है कि हमारा यह अनुष्ठान एकता, मिलन और प्यार का मंच है, प्रतिस्पर्धा, प्रहार, विखण्डन, विद्वेष, विच्छेद और विरोध का कुरुक्षेत्र नहीं। टिप्पणियों की भाषा विनीत, अहिंसक, अनैकान्तिक और विधायक हो, यह अनिवार्य होगा। हमारा यह अभियान पुरानी खेमेबंदियों को उखाड़ने के लिए है, नयी खेमेबंदियों को स्थापित करने के लिए नहीं।

ooo

दुनिया का पहला और सबसे सशक्त उपन्यास 'महाभारत' है। उसे शायद आज से एक शताब्दि पहले उपन्यास न माना जाता। लेकिन इस एक शताब्दि में उपन्यास का विकास बहुत तेज़ी से हुआ है। टालस्टॉय के 'वार एंड पीस' तक आकर यह विकास अपनी चरम सीमा पर आ गया। मध्यकाल के फ्रेंच रूमानों में कथा को रोचक ढंग से कहना ही उपन्यास की परिभाषा हो गयी थी। फिर डिकेंस के सशक्त हाथों ने उपन्यास को एक नया रूप दिया। डिकेंस पूरी अंग्रेज जाति को उपन्यास में उतार लाया, कुछ विशिष्ट चरित्रों या अनुभवों को नहीं। उसने उपन्यास को गल्प से हटाकर ज़िंदगी का सत्य बना दिया। फिर लहर आयी यथार्थवादियों की जो अब भी है। उन्होंने यह सबक तो डिकेंस से ले लिया कि उप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्यास रोचक कहानी नहीं है ज़िंदगी का सत्य है, मगर वे उस सत्य की रचना नहीं कर सके। महज़ यथार्थ का वर्णन उपन्यास नहीं होता। डिकेंस के बाद एक और मोड़ आया उपन्यास में। उन्हीं दिनों जब फ्रांस और इंग्लैंड में यथार्थवादी उपन्यासों की बाढ़ शुरू हुई, रूसियों ने उपन्यास को एक और डाइमेंशन दे दी। दोस्तोयवस्की आदि ने रूसी मनीषा के गहराई में हो रहे द्वंद्व को भी प्रस्तुत कर दिया। तब यह

कुछ ग्रामीण भारतीय चरित्रों को लेकर, उनके भारतीय जीवन को विस्तार से प्रस्तुत करके, उनकी आर्थिक और सामाजिक कुंठाओं का क्रूरता के साथ वर्णन करके, उनकी भ्रष्टता और ढोंग को नंगा करके विशुद्ध भारतीय उपन्यास नहीं लिखा जा सकता। न भारतीय संस्कृति के अनुरूप काल्पनिक आदर्श नारियों और पुरुषों का चरित्र चित्रण करके विशुद्ध भारतीय उपन्यास लिखा जा सकता है।

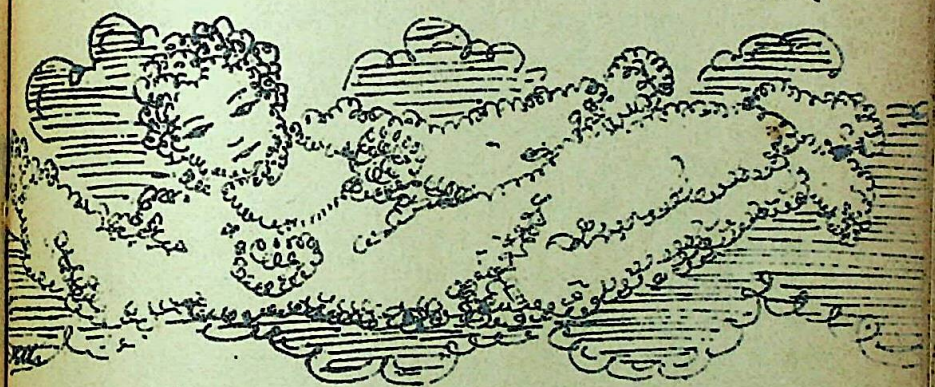

सत्य उजागर हुआ कि उपन्यास रचे नहीं जाते, अंतर्दृष्टि से देखे जाते हैं और उपन्यासकार उन दृश्यों को जो प्रकृति खुद दिखलाती है, सिर्फ कातिब की हैसियत से ज्यों का त्यों लिखता जाता है। कला की मांग पर उनमें काट-तराश नहीं करता। नैतिक मूल्यों की कैंची नहीं चलाता, क्योंकि इसकी ज़रूरत नहीं होती, क्योंकि सच्चा उपन्यास उसी गहराई से जन्म लेता है।

क्योंकि यह ज़्यादा से ज़्यादा भारतीयता का सतही वर्णन हो सकता है, और कुछ नहीं। वह जीवन जो भारत की पांच हज़ार वर्षों से भी पुरानी ज़िंदगी ने जिया है, वे सपने और पराजय, पाप और पुण्य, शौर्य और कायरता के कारनामे जो आज भारतीयों के चरित्र का अंग बन गयी है, उनकी उलझनों और विरोधों से भरी ज़िंदगी बन गयी है, उसका संवेदनात्मक, भावनात्मक प्रस्तुतीकरण ही विशुद्ध भार-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीय उपन्यास को जन्म दे सकता है। इन सब विषों और अमृतों को किसी भी व्यक्ति की मेधा या चेतना न तो बर्दाश्त कर सकती है, न इस समूचे के प्रति करुणा-मय और संवेदनात्मक हो सकती है। यह अतिमानवीय संवेदना केवल प्रकृति में ही हो सकती है। ज़ाहिर है कि जब प्रकृति खुद इन दृश्यों को दिखलाए, इनके राज़ खोले और उपन्यासकार बिना इंटर-प्रेटेशन दिये उन्हें लिखता जाये, तो यह समूचा जीवन उपन्यास में उतरता है। ऐसी कोशिश हिंदी उपन्यासकारों ने नहीं की। वे अपनी निजी संवेदना और नज़रिये को ही लिखते रहे हैं। इस तरह उनके उपन्यास उनके विकसित व्यक्तित्व और संवेदना के चित्रण हैं, भारतीय जाति के चित्रण नहीं।

विशुद्ध भारतीय उपन्यास लिखने की दिशा में मुझे हिंदी में दो ही हस्ताक्षर नज़र आ रहे हैं और इन दोनों का इत्त-फाक़ से निर्मल वर्मा के लेख में ज़िक्र नहीं है। एक हैं वीरेन्द्र कुमार जैन (उनका उपन्यास 'अनुत्तर योगी') और दूसरे हैं निर्मल कुमार (उनका उपन्यास 'बिन उद्गम के स्रोत')। 'अनुत्तर योगी' पहला उपन्यास है जिसमें दोस्तोयवस्की की नज़र और गहराई से भारतीय मनीषा की उन गहराइयों का परत-दर-परत अनावरण किया गया है, जिनसे हम भारतीयों का चरित्र वह बना है, जो है। वीरेन्द्र कुमार जैन ने भारतीय जीवन की लिबिडो, लोभायनी शक्ति, इलान वाइ-टल, जिजीविषा को नायक बनाकर उप-न्यास लिखा है। यह एक इतना बड़ा काम है, जिसे तरह-तरह से बताकर भी बताने वाले को असंतोष रह जाता है, कि इसका महत्व अवर्णित रह गया। ऐसा नहीं कि हिंदी में वीरेन्द्र कुमार जैन से पहले मनोवैज्ञानिक गहराइयों में कर्म प्रेरणाओं का उद्गम ढूंढ़ने की कोशिश नहीं की गयी थी। जैनेन्द्र कुमार और अज्ञेय ने यह कार्य बड़ी खूबी से संपन्न किया था। मगर उन मनोवैज्ञानिक गह-राइयों को इन दोनों ने ढूंढ़ा था, फ्रायड की नज़र से। उनके दौर में फ्रायड सर्वो-परि था। उसी की बनाई लालटैनें लेकर लेखक मन की गहरी खानों में उतरते थे। वीरेन्द्र कुमार जैन की महानता का अंदाज़ इससे लगाया जा सकता है, कि वे फ्रायड और दोस्तोयवस्की दोनों हैं। फ्रायड ने इंसेस्ट, साइकोसिस, मृत्यु, चाह आदि पर जो विचार दिये हैं, वे सर्वग्राही हो चले हैं, बल्कि आधुनिक मनुष्य के आग्रह और अंधविश्वास हो चले हैं। इनके बल को झेल पाना आसान नहीं था। वीरेन्द्र कुमार जैन ने यह झेला ही नहीं वरन् बड़ी सहजता से इन मानसिक गुत्थियों के कारण और हल इस उपन्यास में दिये।

फ्रायड के हलों ने मनुष्य जाति को पाप, निराशा, कुंठा में डूबा प्रारब्ध दिया। वीरेन्द्र कुमार जैन ने भारतीय जाति के अनुभवों, अन्वेषणों का दर्शन करके उन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बीमारियों को छुपी ताक़त बताया और इस तरह आशा दी, धर्म के आधार दिये। उसने वही कार्य किया जो व्यास और वाल्मीकि की परंपरा में ऋषिजन करते आये हैं। महावीर, त्रिशला, चंदनबाला, श्रेणिक बिंबिसार का जो मनोविश्लेषण उसने किया है, उसमें आज के भारतीय अपने चेहरे पहचान सकते हैं। शायद अपने चेहरे वे जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यासों में भी पहचानते रहे हैं। फ़र्क इतना है कि पहली बार उन्हें अपनी कुत्सित, विकृत मनोवृत्तियों पर निराशा नहीं होगी, बेबसी नहीं होगी, क्योंकि वीरेन्द्र ने उन गंदे नालों को भारतीय मनीषा की उस गहरी गंगा से भी जोड़ दिया है, जहां तक हिंदी का कोई लेखक नहीं पहुंचा और जहां जाकर ये सारी गंदगियां फिर गंगा-जल में बदल जाती हैं। इस तरह जहां उसने भारतीय जाति के विकारों, रीति-रिवाज़ों, मान्यताओं को उनके गंगा जैसे पवित्र उद्गम से जोड़ा है वहां यह भी बताया है कि किस तरह वे विकृत हो गये और कैसे उनका मनीषा की गंगा में पुनः विसर्जन किया जा सकता है।

'अनुत्तर योगी' हिंदी का सबसे बड़ा पुराण है, महाभारत है और अत्याधुनिक परिभाषा के अनुसार उपन्यास है। वीरेन्द्र ने पूरी जाति की मनीषा गंगा की ऊपरी सतह पर हो रहे ज़िंदगी के मेले को इसकी सारी विभीषिकाओं, बदबुओं और छंदों के साथ प्रस्तुत किया है, जैसे वेदव्यास ने महाभारत में किया था। किंतु जैसे व्यास ने यह करके भी, पढ़ने वाले के मन में इतने पापों को जगाकर भी प्रक्षालन का प्रबंध रखा था, जिससे वह पाप को जानकर भी पाप को न अपनाएं और धर्म की स्थापना स्वतः करें, उसी तरह का काम वीरेन्द्र कुमार जैन ने किया है।

जहां वीरेन्द्र कुमार जैन के 'अनुत्तर योगी' में दोस्तोयवस्की की गहराइयों में उतरती दार्शनिक नज़र है, वहां एक और उपन्यासकार है निर्मल कुमार, जिसने बिना दार्शनिक गहराइयों में उतरे अपने गीतात्मक (Lyrical) वृहद उपन्यास 'बिन उद्गम के स्रोत' से इसी तरह पाठक की गहराइयों को उद्वेलित किया है, जैसे एक महान् संगीतकार अपने सीधे, सरल, सच्चे सुरों से कर देता है। निर्मल कुमार गहराइयों में एक छुरी की तरह उतरता है मगर बिना कुछ नुकसान किये, जैसे पानी में उतरी छुरी पानी का कोई नुकसान नहीं करती। किंतु निर्मल कुमार की प्रतिभा की यह छुरी सीधी जाकर मनीषा की गंगा को छूती है, जो मानसिक विकारों का उद्गम है और इलाज भी। हिंदी उपन्यास को दार्शनिक अन्वेषण वीरेन्द्र कुमार जैन ने बनाया है तो निर्मल कुमार ने 'बिन उद्गम के स्रोत' में गीत, सुर के ज़रिये सौंदर्य के मार्ग से इस जाति के सत्य को छुआ है। वीरेन्द्र कुमार जैन हिंदी का दोस्तोयवस्की है तो निर्मल कुमार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुश्किन।

महान उपन्यासकार कला को लेकर चलता ज़रूर है, लेकिन ज्यों-ज्यों उसकी अंतर्दृष्टि के आगे प्रकृति दृश्य खोलती है, वह कलापक्ष को भूल जाता है और उन दृश्यों को सच्चाई और ईमानदारी से लिख देता है। इस तरह वह उस जाति के सत्य को लिखता है, क्योंकि वह सत्य क्या है, यह प्रकृति ही जानती है और उसकी अंतर्दृष्टि के आगे धीरे-धीरे खोलती है।

जिन लोगों के बीच हम जीते हैं, जो हमारे सर्किल के मित्र हैं उनकी भीतरी ज़िंदगी के बारे में हम बहुत कम जान पाते हैं भले ही हम उनके अच्छे दोस्त हों। एक उपन्यासकार जब उन्हीं को पात्र बनाकर लिखता है यदि सचमुच वह महान है तो प्रकृति शुरूआत के बाद उन चरित्रों को ले लेती है। फिर उपन्यासकार सिर्फ देखता है और जो देखता है वह लिखता जाता है। उन चरित्रों की भीतरी ज़िंदगी प्रकृति उसकी अंतर्दृष्टि के आगे खोलती जाती है। इस तरह हम किसी समाज के लोगों की असल ज़िंदगी से परिचित हो पाते हैं। यही महत्व है एक सच्चे उपन्यासकार का कि वह हमें कला की दृष्टि से परफैक्ट उपन्यास नहीं देता। बल्कि उसमें प्रकृति जागकर वह काम करती है जो हमारा परसेप्शन और आब्ज़रवेशन नहीं कर सकता। प्रकृति उनकी सच्चाई का रहस्य उस पर उन क्षणों में खोल देती है जब वह गणेशजी की तरह सिर्फ लिख रहा होता है।

एक अच्छे उपन्यासकार के दो प्रमुख गुण हैं—संवेदना और सत्य-ग्राहिता। ये उसे इस योग्य रखते हैं कि प्रकृति जो सत्य उसके आगे खोल रही है उसे वह विकसित सहानुभूति के साथ ले, उसमें काट-छांट न करे। उसे कला की किसी मांग की पूर्ति के लिए तोड़े-मरोड़े नहीं। यह इसीलिये भी ज़रूरी है क्योंकि मनुष्य की बुद्धि और प्रकृति के तरीके में फ़र्क है। प्रकृति कभी मामूली-सी बात लंबे वर्णन के ज़रिये पेश करती है और कभी बहुत बड़ी बात एक वाक्य में लिखवा देती है। अगर मनुष्य की बुद्धि संग-तराश और खरादी का काम करेगी तो इसका सत्य मर जायेगा क्योंकि प्रकृति दखल बर्दाश्त नहीं करती। जैसे व्यास के किसी भी वर्णन में गणेशजी दखल नहीं देते। गणेश उपन्यासकार की बुद्धि है और सत्यवती पुत्र व्यास वह प्रकृति है जो दृश्यों की गिरहें खोलती है।

अन्ना केरेनिना को अगर थैकरे लिखता तो वह ज़रूर उसमें संयम की मात्रा बढ़ाता। उसकी विवाहित स्थिति और प्रतिष्ठा को देखते हुए दिखाता कि उसने अपनी चाहत पर काबू पाने की कोशिश की। लेकिन टालस्टॉय स्लाव है, अंग्रेज नहीं। उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

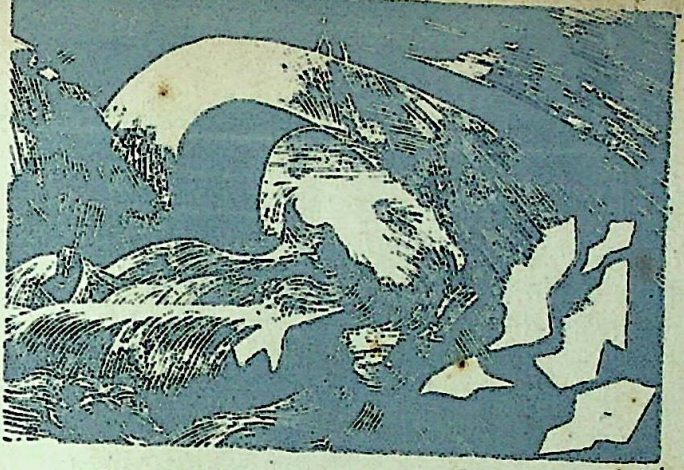

आगे अन्ना का चरित्र अंग्रेज की प्रकृति नहीं, रूसी प्रकृति खोल रही थी। यह अंतर स्पष्ट कर सकता है इस उक्ति को कि कैसे एक उपन्यासकार अपने किसी चरित्र में अपनी जाति का सत्य चित्रित कर देता है। निर्मल वर्मा जिसे विशुद्ध भारतीय उपन्यास कहेंगे वह भारतीय आदर्शों और कलाविधानों का बड़ी बारीकी से प्रयोग कर लिखी चीज़ होगी। किंतु ऐसी चीज़ भारतीय होकर भी सच्ची नहीं होती। उपन्यास भारतीय भी हो और सच्चा भी इसके लिए उपन्यासकार को हथौड़ी, छेनी, आरी एक ओर रख देनी होगी। उसे अपनी बुद्धि और प्राणों को जगाना होगा। अपने को संवेदनशील बनाना होगा। तब वह जिन चरित्रों को भी लेकर शुरू करेगा, उन्हें उससे प्रकृति ले लेगी और उसकी अंतर्दृष्टि के आगे उनका सत्य खोल देगी। ऐसा लेखक निर्मल कुमार है और वह पुस्तक है 'बिन उद्गम के स्रोत'।

एक इंटलेक्चुअल और जीनियस में फ़र्क यही है। इंटलेक्चुअल बुद्धि के सशक्त प्रयोग से जो देखा-जाना है उसे काट-तराशकर असरदार बनाता है। जीनियस सिर्फ लिखता है उसको जो प्रकृति उसके भीतर खोलती चलती है। उसका लिखना इतना सरल होता है कि उसमें बचपन की महक होती है। वह हस्तक्षेप नहीं करता प्रकृति में। प्रकृति ही एक जाति के रहस्यों और उनके चरित्रों को जानती है—मनुष्य की बुद्धि नहीं। हर एक में प्रकृति नहीं जगती। प्रकृति उसी उपन्यासकार में जगती है जो अपनी बुद्धि, चित्त, मन, इंद्रियों को केवल संवेदनशील, दर्शक और टेप बनाकर रखता है, क्योंकि ये सब विकार हैं प्रकृति के। प्रकृति तब तक नहीं जगती जब तक उसके विकार, बुद्धि, चित्त, मन आदि अपने-अपने अहंकार से प्रेरित रहते हैं। जब यह सब नत हो जाते हैं, समर्पण कर देते हैं अपनी रानी प्रकृति के आगे, जिससे ये सब जन्मे, तब वह प्रकट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होती है । प्रकृति को प्राचीन मनीषी जगाते थे । पश्चिम की बौद्धिकता और सौंदर्यबोध से दबी हिंदी लेखकों की बुद्धि और मन हर्गिज़ यह रिस्क नहीं ले सकता कि अपना यह कीमती बोझा उतार दें, स्टाइल और नवविधाओं का क्योंकि यही तो उनकी उपलब्धि है । इनके होते हुए फिर प्रकृति क्यों आयेगी ? जो दासी से ही तृप्त है उसके जीवन में राजकुमारी क्यों आयेगी ?

'बिन उद्गम के स्रोत' में बेवफाई करने के बाद सावनी मरती है, रविकांत भी मर जाता है । एक साधारण उपन्यास में दोनों की मौत नाटकीय ढंग से होती जिससे ट्रेजेडी का असर बढ़े । किंतु ज़िंदगी में ऐसा नहीं होता। इसलिए 'बिन उद्गम के स्रोत' में भी ऐसा नहीं होता । सावनी रविकांत की ज़िंदगी में लौट आती है, दोनों फिर से टूटी डोर अंधेरे कमरे में ढूंढ़ रहे हैं और तब सावनी पहाड़ से गिरकर पक्षाघात की शिकार हो जाती है ।

रविकांत का दिल नहीं टूटता क्योंकि एक बार टूटा दिल बार-बार नहीं टूटता । वह सावनी के ग़म में नहीं मरता । वह बीमारी और दवाओं के अभाव में मरता है। वह इसलिए मरता है कि उसकी आत्मा आगे अपना रास्ता ढूंढ़ने में नाकामयाब हो जाती है ।

एक दूसरा सत्य जो 'बिन उद्गम के स्रोत' के बारे में है वह यह कि पूरे उपन्यास में कहीं भी कोई भावना ऐसी नहीं है जो झूठी और थकाने वाली हो। इस दृष्टिकोण से मैं इसे एक असंभव रचना कहूंगी। जो असंभव संभव हो जाये वह ईश्वरीय भी है । यह दूसरा गुण है उस उपन्यास का। असंभव इसीलिए कि यह मूलतः एक भावात्मक रचना है, एक गद्यगीत है । भावनाएं इतनी विविध और मुखर होकर भी कहीं भी झूठी और बनावटी न हों यह तभी संभव है जब वे भावनाएं स्वयं प्रकृति की हों और लेखक ने उन्हें सिर्फ आब्ज़र्व किया और लिखा हो। भारतीय मूलतः एक भावात्मक जाति है। भावात्मक होकर यह उपन्यास उस जाति का चरित्र चित्रण हो गया है, निर्मल कुमार की व्यक्तिगत भावनाओं का नहीं । तभी तो ऐसे अनोखे अजूबे हैं इसमें जो सत्य में होते हैं, कला में नहीं। मिसाल के तौर पर सावनी के गिरने पर कोई भावनाओं का प्रवाह नहीं खुलता जबकि एक कली के खिलकर गुलाब बनने का वर्णन कई पैरों में हुआ है ।

'अनुत्तर योगी' और 'बिन उद्गम के स्रोत' की दूसरी खूबी यह है कि उसमें वासना है, प्रेम है, पाप है, पतन है किंतु कहीं भी कुछ नहीं है जो इन्द्रियों, मन, बुद्धि को तृप्त करने के लिए लिखा गया हो। प्रकृति जब लिखाती है तो उसका उद्देश्य अपनी विकृतियों जैसे मन, बुद्धि, इंद्रियों आदि को तृप्त करना नहीं होता। वह केवल सत्य को उद्घाटित करती है, एक जाति के अंतर्मन में सोये उसके चरित्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को उसके साथ को सजीव करती है। जो उपन्यासकार इंद्रियों, मन आदि को तृप्त करने की कोशिश करते हैं, उनकी कोशिश भावनाओं को पथरा देती है। एक सच्चा साहित्यकार कुछ भी ऐसा नहीं करेगा।

जिस तरह के इंद्रिय-उत्तेजक चरित्र इधर हिंदी के प्रसिद्ध लेखकों ने देने शुरू किये हैं, ज़ोला, मिलर की नक़ल में वे भावनाओं का नाश कर देते हैं। जिन चरित्रों को कमलेश्वर, राही मासूम रज़ा, कृष्ण बल्देव वैद, कृष्णा सोबती आदि ने रचा है उनके प्रति एक क्रूरता, हृदयहीनता-सी महसूस होती है, उनसे कोई संवेदना नहीं महसूस होती। इन उपन्यासों के ऊपर पाप, क्रूरता, नफ़रत का भारीपन बैठा है। लगता है लेखक स्वयं अपने नायक और नायिका से इतनी नफ़रत करता है कि पाठक भी नहीं कर सकता। मैं पूछती हूं ऐसे उपन्यास का उद्देश्य क्या है? सभी देशों में, सभी कालों में उपन्यास का पहला उद्देश्य दूसरे मनुष्यों की पीड़ा के प्रति सहानुभूति और सहृदयता जगाना है। टालस्टॉय की अन्ना केरेनिना पापिन है किंतु कहीं भी पाठक की सहानुभूति उसके साथ कम नहीं होती। क्योंकि टालस्टॉय कुछ भी इंद्रियों और मन को तृप्त करने के लिए नहीं लिखता। वह उस पूर्ण सत्य को लिखता है जो प्रकृति, उसके बारे में लिखा रही है।

विशुद्ध भारतीय उपन्यास किसको कहते हैं निर्मल वर्मा? उन्होंने प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, वीरेन्द्र कुमार जैन, चतुरसेन शास्त्री, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की परंपरा को छोड़कर अंग्रेजी साहित्य की परंपरा को अपनाया। इस तरह का अपने को दिया गया देशनिकाला यह पहला नहीं है। किंतु इसके बाद लेखक में स्वयं एक नवीन आकर्षण जागता है अपने देश की परंपराओं के प्रति। आज लंदन में रहनेवाला हर भारतीय-अंग्रेज इस अनुभूति से गुज़र रहा है। किंतु विडंबना यह है कि जिसे वह भारतीय कहेगा वह फिर ज़िंदगी से दूर होगा। उतना ही दूर जितना दूर अपने को देशनिकाला देकर वह ले गया था। ये दो पहलू हैं निर्मल वर्मा के व्यक्तित्व के और दोनों ही अतिरंजित हैं। शायद कोई बैचेनी रही है उनमें जो उन्हें पश्चिम और वहीं से मिली कुंठा के बाद भारत की ओर पेंडुलम की तरह धकेलती रही है, जिसने उनमें स्वतः रखी भारतीय प्रकृति को न तो बोलने दिया न जीवन का कोई राज़ खोलने दिया।

प्रकृति कुंठित हो जाती है नग्नता और कामुकता की दोहरी डोज़ से। हिंदी के उपन्यासकार यशपाल के बाद खुलकर इस बॉक्स ऑफिस फार्मूले का इस्तेमाल कर रहे हैं। यह साहित्य बहुत जल्दी 'ब्लू फिल्म' की तरह अनाकर्षक हो जाता है। इंद्रियों को उत्तेजित कर लेने के बाद यह भावनाओं पर पत्थर की तरह बैठ जाता है। तथाकथित प्रयोगवादी और नग्न कटु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथार्थ को पेश करने वाली कहानियों की बाढ़ आज हिंदी में आयी हुई है। ये हमारी गरीबी, मजबूरी, झूठे आदर्शों की ज़िंदा तस्वीर बताई जा रही है। किंतु इसमें एक भी ऐसी नहीं है जो भारतीय चरित्र को इस तरह उभार कर रख दे जैसे गुलेरी का लहनासिंह रख देता है। इस कोटि की एकमात्र कहानी जो पिछले कुछ वर्षों में पढ़ने को आयी वह थी **नवनीत** के नवंबर' ८१ अंक में छपी निर्मल कुमार की

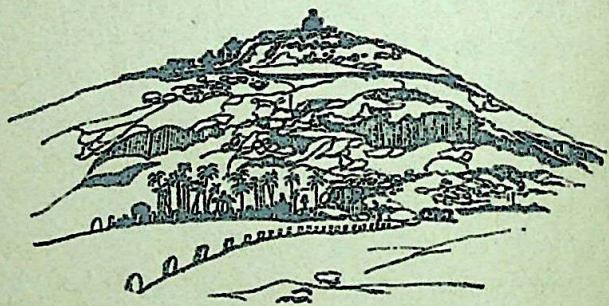

कहानी 'बर्फ के फूल'। कथाकार ने भावनाओं को जिस तरह जगाया है और जिस तरह छोटे-छोटे चित्रों से देश की गरीबी और भारतीय आत्मा में बसे दर्दों और गुणों को उभारा है वह हिंदी की एक उपलब्धि है।

अपने 'विशिष्ट अनुभवों' का 'संप्रेषण' निर्मल वर्मा की नज़र में यही समस्या है लेखक की। पश्चिमी लेखक फ्लाबेअर से उन्हें यह वेदना मिली। यह वेदना मशीनी क्रांति के बाद की वेदना है, क्योंकि उनकी नज़र में यह कम्युनिकेशन गैप मध्य काल में नहीं था। निर्मल वर्मा कहते हैं कि आज का लेखक अगर अपने विशिष्ट अनुभव उपन्यास में पेश करे तो किसी के पल्ले नहीं पड़ते। और अगर वह पापुलर होने की गर्ज़ से पाठक की मांग पूरी करने के लिए संप्रेषण के लिए लिखता है तो उसके लिखे में न सच्चे अनुभव हैं, न अर्थ। ये 'विशिष्ट अनुभव' क्या हैं? एक सच्चे लेखक के शोधित मन और परसेप्शन ने बिना आग्रहों और फैशनों की ऐनक के सत्य को जैसा भोगा वही उसके विशिष्ट अनुभव हैं। सच्चा लेखक एलीट है, संस्कृति के नज़रिये से फाइनर है। आम आदमी की तरह उसके अनुभव अनिजी और मशीनी हैं।

निर्मल वर्मा जिस उपन्यासकार की हिमायत कर रहे हैं वह उच्च सांस्कृतिक वर्ग का एलीट है। वे उस जीनियस का ज़िक्र नहीं कर रहे हैं जो सभी वर्गों से अलग है। निर्मल वर्मा अब भी 'उपन्यास' को एक विशिष्ट अनुभव या एक विशिष्ट व्यक्ति के अनुभव का संप्रेषण मान रहे हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनका रोना है कि उसका विज़न साधारण पाठक तक क्यों नहीं पहुंचता ? और क्यों हारकर उसे प्रसिद्धि का सस्ता रास्ता चुनना पड़ता है ।

निर्मल वर्मा की सोच से ऐसा नहीं लगता कि वे उपन्यासकार की उस जाति से भी परिचित हैं जो विशिष्ट और मशीनी अनुभवों की संकीर्णता से मुक्त है । यह द्वैत उसमें समाप्त हो चुका है । दरअसल इस द्वैत के समाप्त हो जाने पर ही प्रकृति अपना अनुभव व्यक्त करती है । उसे एलीट लेखक केवल रिकार्ड करता है, अपनी एलीट बुद्धि से इंटरप्रेट नहीं करता, न तराशता है । केवल ऐसा उपन्यासकार ही जीवन के सत्य को पेश कर सकता है, क्योंकि वह सत्य केवल प्रकृति को पता है न एलीट को, न गंवार या बाज़ारू को । ये दोनों नज़रिये हर युग में रहे हैं और समाज की ज़िंदगी को अपने-अपने ढंग से देखते रहे हैं । किंतु ज़िंदगी दोनों इंटर-प्रेटेशनों से दूर है । रूसी जीवन पर सोलोखोव, सोल्जेनित्शिन, पास्तरनेक आदि ने क्रांति के बाद बहुत अच्छा लिखा, बहुत सुरुचिपूर्ण लिखा मगर वह उन्हें गणेश बनाकर प्रकृति ने खुद नहीं लिखा । इसलिये उसमें वह ज़िंदगी नहीं है जो पुश्किन, टालस्टॉय, तुर्गनेव, गोगोल ने दी । इन लेखकों के उपन्यासों में विज़न इनका अपना विज़न नहीं था । इनका अपना विज़न भी बहुत उन्नत था मगर उस उन्नत विज़न को इन्होंने वह विन-म्रता सिखाई थी कि उसने लेखक न होकर सिर्फ कातिब होना स्वीकार कर लिया था। ऐसी विनम्रता ही सिर्फ प्रकृति को प्रसन्न करती है । गणपति जैसा देवता जो बुद्धि का स्वामी है कातिब होना स्वीकार करता है । फिर हिंदी के लेखकों की मेधा क्या गणपति से भी ऊंचा दावा करती है ? उनके इसी अहंकार ने अब तक हिंदी में सच्चे उपन्यास का युग शुरू नहीं होने दिया । जो एकाध आये जैसे वीरेन्द्र कुमार जैन का 'अनुत्तर योगी' और निर्मल कुमार का 'बिन उद्गम के स्रोत' उन्हें नकार दिया । प्रकृति द्वारा लिखाई चीज़ न तो एलीट लेखक को पसंद आ सकी न पापुलर को, क्योंकि ज़ाहिर में विपरीत होकर भी दोनों हैं तो साहित्यिक अहंकार के ही दो रूप ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं फिर कहूंगी कि सच्चा उपन्यासकार व्यास की तरह है। व्यास में प्रकृति लिख रही है और सर्वोच्च बुद्धि का स्वामी कातिब है। प्रकृति क्यों लिख रही है? व्यास होमर की तरह महाकाव्य लिखन का दावा नहीं करता। उसने स्पष्ट लिखा है कि संजय जो देख रहा है वही लिखा जा रहा है। व्यास का निजी विज़न गायब है और गणपति का भी। संजय क्या देख रहा है? जो ज़िंदगी दिखा रही है यानी जो प्रकृति खोल रही है। इसलिए व्यास इतना सच्चा उपन्यास लिख सका जो कला की दृष्टि से बहुत कमज़ोर है। जैसा निर्मल कुमार का नायक, 'बिन उद्गम के स्रोत' में कहता है, सत्य की विजय करायी है व्यास ने किंतु किसी नाटकीय ढंग से नहीं। यह नहीं कि सारे झूठे पापी मारे गये और सच्चों का बाल भी बांका नहीं हुआ। नहीं। पांडवों के सारे बच्चे मारे गये। जीत मनाने को शोकाकुल पांडव रह गये। उनकी मृत्यु भी किसी हीरोइक अंदाज़ में नहीं होती। यों ही बर्फ पर चलते-चलते गिरकर हो जाती है। और तो और स्वयं भगवान श्रीकृष्ण को व्यास एक बेरंगी, शिकार में मारे हरिण की जानवर जैसी, मौत देता है। न इफ़ैक्ट की पर्वाह है उसे न अपने एलीट विज़न को पेश करने की, न सत्य की विजय कराने की। सत्य की विजय प्रकृति ऐसे ही बेरंग ढंग से कराती आयी है, व्यास कह रहा है, बहुत बाजों-गाजों से जीत होगी ऐसी उम्मीद न रखो। फिर क्या कमाल है व्यास का? जो काम एलीट उपन्यासकार नहीं कर सके जो उच्च मूल्यों और विज़न के प्रसार में लगे रहे, सत्य को ऐसी बेनूर जीत देकर भी सत्य के लिए लड़ने, जीने और मरने की तड़प वह भारतीयों को पांच हज़ार वर्षों से देता आ रहा है। क्योंकि वह सत्य जीवन का सत्य था जिसे व्यास ने नहीं स्वयं प्रकृति ने लिखाया था और बुद्धि, सिद्धि के देवता गणपति ने लिखा था।

'अनुत्तर योगी' और 'बिन उद्गम के स्रोत' में पहली बार वह विज़न हिंदी में आया है जो प्रकृति का है। निर्मल कुमार के बाद के एक-दो उपन्यासों जैसे 'आरुणि', 'धूप न छांव' में उनका अपना विज़न है। इसमें शक नहीं बुद्धि के स्तर पर, संस्कृति के स्तर पर वे भारत के नहीं विश्व के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में हैं (सन्दर्भ: ४ अप्रैल १९८२ को टाइम्स ऑफ इंडिया में उनकी पुस्तक 'बियांड फेन्ड' की समीक्षा) किन्तु उनका अपना विज़न प्रकृति की बराबरी नहीं कर सकता। इसीलिये उनमें 'बिन उद्गम के स्रोत' वाली महक नहीं है, वह अप्रतिभ करती, होश उड़ाती सच्चाई नहीं है जीवन की, जो सिर्फ प्रकृति रच सकती है, निर्मल कुमार की सुपर मेधा नहीं।

निर्मल वर्मा 'लोकप्रिय' और 'विद्रोही' दोनों तरह के उपन्यास को साहित्यिक भटकन मानते हैं और यहां मैं उनका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समर्थन करूंगी, किंतु इसके आगे नहीं क्योंकि इसके आगे वे कुछ कहते ही नहीं जिसका समर्थन या विरोध किया जाये। इसके आगे वीरेन्द्र कुमार जैन और निर्मल कुमार ने कहा है, रचा है, जिसे निर्मल वर्मा की आंखें नहीं पहचान सकतीं क्योंकि वह आधुनिक पश्चिम के पतनवादी साहित्य से प्रेरित, थका हुआ और उद्भ्रांत है। यह पश्चिमी पतनवादी साहित्य भूत की तरह उससे चिपट गया है। इसने पागल कुत्ते की तरह उसे काट लिया है। पागल कुत्ते का काटा पानी-पानी तो चिल्लाता है, लेकिन पानी दो तो दूर भागता है। पानी उससे बर्दाश्त नहीं होता।

स्वयं निर्मल वर्मा काफ्का, प्रूस्त, जॉयस की तारीफ करते हुए कहते हैं कि 'वे इसलिए महान थे कि उन्होंने मनुष्य की स्मृति, अतीत और नियति के धुंधले प्रदेशों को आलोकित किया था।' वे वीरेन्द्र कुमार जैन का 'अनुत्तर योगी' पढ़ें तो जुंग की तरह स्वयं कहेंगे कि स्मृति अतीत और नियति को कोई भी व्यक्ति अपनी मेधा, कोशिश या प्रेरणा से उपन्यास की शक्ल नहीं दे सकता क्योंकि ये सब प्रकृति में निहित हैं। जब प्रकृति लिखती है तो ये सब एक साथ प्रकट हो जाते हैं जैसे सूरज निकलता है तो इतना कुछ दिखाई देने लगता है जो हज़ार बल्ब जलाने पर भी रात में नहीं दीखता।

निर्मल कुमार अब तक चार उपन्यास, दो कहानी संग्रह, चार नाटक, दो कविता संग्रह छपा चुके हैं। उनके अंग्रेजी लेखन की विशुद्ध भारतीयता की महक की प्रशंसा भारत और विदेशों में खुलकर हुई है। एक खामोश है तो सिर्फ हिंदी का आलोचक जो उसकी तारीफ करता अगर वह खुद लिखता। लिखने वाली तो प्रकृति है उसमें फिर उसका श्रेय वह निर्मल कुमार को कैसे दे। वे कृतियां लोकप्रिय नहीं हुईं तो उसकी वजह यह नहीं कि वे दुरूह हैं। स्वयं निर्मल वर्मा के शब्दों में इसका उत्तर मिल जाता है। क्या पाठक को स्वयं अपना सत्य प्रिय है? वे मूल्य विचार और भावुकताएं पाठकों को प्रिय हैं जो उन्हें आराम की सुरक्षात्मक ज़िंदगी देते हैं। जो उपन्यासकार उनको सत्य मानकर उपन्यास लिखते हैं वे प्रिय हो जाते हैं। जैसे गुलशन नंदा। जो उन मूल्यों से हटकर लिखने की कोशिश करते हैं जैसे निर्मल वर्मा, अज्ञेय वे लोकप्रिय नहीं हो पाते। किंतु फिर भी उन्हें एलीट पाठकों का एक वर्ग सीमित लोकप्रियता ज़रूर दे देता है क्योंकि वे उनके एलीट विज़न, रुचि और नज़रिये को तृप्त करते हैं। उनके मन को रंजित करते हैं। परन्तु वीरेन्द्र कुमार जैन और निर्मल कुमार की तरह जो इन दोनों की रुचि और मांगों और मूल्यों से अपरिचित, इनसे कहीं ऊंचाई तक विकसित अनुभवों और बुद्धि को गणपति की तरह केवल कातिब बनाये हुए हैं ताकि प्रकृति लिखाये, ताकि उनकी नतता से पसीजकर

(शेषांश पृष्ठ १३२ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मराठी के प्रख्यात आधुनिक कथाकार
विद्याधर पुंडलीक की मार्मिक कहानी

□

रिक्त अधूरा आला

'तो पल्लवी, तुम बेलूर हलिबेडी चलोगी कि नहीं ?'

'नहींऽऽ'

'फिर आखिरी बार पूछता हूं चलोगी ?'

'नहीं।'

यह झगड़ा मेरे और मेरे दूल्हे के बीच का है। समय है रात का। झगड़े के लिए यही समय वह खोज निकालता है।

स्थान – इस समय उसका स्टुडियो है।

झगड़े का कारण–हनीमून के लिए कहां जायेंग ? विवाह के पहले से ही यह झगड़ा चल रहा था।

'यह देखो, पल्लव ?'

यह दुष्ट मुझे हमेशा जानबूझकर 'पल्लव' कहकर पुकारता है। उसकी दृष्टि से मैं ज़रा ठिगनी और मुटल्ली हूं।

'जगदीश, अगर मुझ पर तुम्हारा सच्चा प्रेम होता न, तो मैं तुम्हें नन्ही, नाटी और सुडौल कद की दिखती ?'

'अरे हट ! यह 'सच्चा सच्चा प्रेम' क्या ऐसे ही लगातार हमारे जीवन में दखल देनेवाला है ? परसों तुम्हारी सब्जी बिगड़ गयी थी तब भी तुमने यही कहा था, कि 'सच्चा प्रेम होता न तो तुम्हें वह अच्छी ही लगती।'

'ठीक तो है ! क्या हम नहीं तुम्हारी बुरी-भली चीज़ प्रेम से पसंद कर लेते हैं ? जहां प्रेम है वहां सब अनोखा ही दिखना चाहिये !'

'पल्लवी ! तो यह सच्चे प्रेम का वाहियातपन भूल जाओ और बेलूर हलिबेडी की यात्रा की तैयारी में लग जाओ। तुम नहीं आओगी तो हनीमून रद्द !'

'रद्द ?' मैंने चीखकर पूछा।

'हां, हां रद्द। आखिर हनीमून भी समाज द्वारा हम लोगों पर आरोपित एक आदत है। क्यों ? हनीमून के लिए कहां जाओगे ? हरेक पूछता है, फिर हम भी धीरे-धीरे कहने लगते हैं, वाह ! जायेंगे न कहीं ?'

'जगदीश, देखो या तो हनीमून होगा नहीं तो कल तलाक !'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'स्साऽला ! वह भी ले लिया होता ! हां, देखो तो ! यहां के आर्ट्स स्कूल के तरुण प्राध्यापक एवं उदयोन्मुख चित्रकार जगदीश नायक की पत्नी ने विवाह के दूसरे ही दिन तलाक ले लिया ... यह भी कितनी ग्रेट न्यूज़ होगी न ? लेकिन क्या करेंगे ? तलाक भी तो एक सामाजिक आदत है !'

'इंसिडंटली, जगदीश, तुम्हारा एक पत्र मेरे पास है उसमें कुछ ऐसे वाक्य थे, 'हनीमून : जो पति-पत्नी का परस्पर अन्वेषण है' इत्यादि ।'

'वह सब झूट, रोमांटिक विवाह के पहलेवाला । अब विवाह के बाद... !'

'बदमाशी बंद करो, बोलो कहां जायेंगे ? यह हम दोनों का हनीमून है इसलिए जगह भी अनोखी होनी चाहिये । आम दुनिया से अलग ! पहली बात यह कि महाबलेश्वर, माथेरान, ऊटी जैसे रोज़मर्रा के हिल स्टेशंस बाद !'

'दो ताली, पल्लवी ! यू आर ग्रेट !'

मुझे एकदम एक टॉप नाम सूझ गया ।

'कौसानी जायेंगे !'

'कौसानी ? अरे, हमने तो यह नाम भी कभी नहीं सुना ।'

'इसीलिए तो जाना चाहिये । जिसका नाम भी ज्ञात नहीं ऐसे ही किसी अजनबी गांव जाने में ही असली मज़ा है । कौसानी है यू. पी. में ! कुमाऊं रीजन में मेरे एक मामा कर्नल थे—कुमाऊं रेजिमेंट में । वे हमेशा कौसानी की बेहद प्रशंसा किया करते थे । कहते हैं वहां से हिमालय की भव्य पंक्तियां इतनी सुंदर दिखती हैं...'

'तुम्हारे उस कौसानी से भी एक सुपर्व स्थान सुझाऊं ? सीधा-सादा शांत गांव, छोटा-सा, शानदार सरकारी गेस्ट हाऊस, भीड़ भी नहीं !'

'कौन-सा ?' मैंने उत्सुकता से पूछा ।

'बेलूर हलिबेडी ! कभी से यह मेरी पसंद का गांव है ।'

'बेलूर हलिबेडी ? मैंने तो नाम भी नहीं सुना कभी ?'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं बोल तो गयी और झट से जीभ काट ली !

'नहीं सुना न ? यू मस्ट बी शॉट डाउन ! मैसूर के पास ये दो छोटे गांव हैं। बहुत फैंटास्टिक देवालय हैं वहां ! अप्रतिम शिल्प !'

'वह फिर कभी देख लेंगे, लेकिन अब तो कौसानी ही। बचपन से मुझे हिमालय का आकर्षण है, जगदीश, सच कह रही हूं—हिमालय से भव्य शिल्प इस दुनिया में दूसरा हो ही नहीं सकता।'

'लेकिन हिमालय तो सिर्फ निसर्ग का शिल्प है। देवालय मनुष्य का निर्माण किया हुआ शिल्प।'

'फिर ?'

'निसर्ग का सौंदर्य होता ही है अपने सामने उपस्थित ! उसे तो हम केवल देखते रह सकते हैं। लेकिन मनुष्य की कला ? छोटी हो या बड़ी वह है उसकी अपनी।'

'सौंदर्य सौंदर्य में कुछ फर्क नहीं होता, जगदीश ! इसमें वह अहंकार क्यों ?'

'कैसी बात करती हो; पल्लवी ? अरी, निसर्ग का सौंदर्य सनातन होता है लेकिन मानव निर्मित सौंदर्य नित्य नूतन ! ये देवालय तो दो-दो पीढ़ियों के शिल्पकारों ने बनाये हैं—पचास-पचास वर्ष केवल एक-एक देवालय बनता रहा है—ग्रेट !'

इसके उत्तर में कुछ बोलना मुझे नहीं सूझा। मैं खीझने लगी।

'हर समय तुम ऐसा ही कुछ अजीबोगरीब मुद्दा ले आते हो और मुझे दबा देते हो। मुझे चित्रकला में विशेष गति नहीं है और तुम हमेशा उसका फायदा उठाते हो। सचमुच तुम दुष्ट हो !'

मेरी आंखों में तो पानी ही छलकने वाला था। लेकिन मैंने उसे रोका। यह मेरा पति ऐसा घनचक्कर है कि मेरी आंखों में आंसू आ जाते हैं तो यह पिघलता तो नहीं ही, उल्टे क्षुब्ध हो उठता है। 'रोती क्यों हो तुम ? औरतें हमेशा क्यों रोती रहती हैं ?'—यह उसका प्रश्न ! ऐसा मुश्किल कर दिया है मेरा जीवन इस आदमी ने। झट से मुझे एक नया मुद्दा सूझ गया।

'जगदीश, लेकिन हनीमून का गांव ऐसा होना चाहिये कि हम दोनों में से किसी ने उसे पहले देखा न हो, जो देखना है वह दोनों की आंखों को एकदम नवीन दिखना चाहिये।'

'लेकिन मैंने कहां देखा है उन देवालयों को ? हमारी स्कूल की जब 'टूर' गयी थी तब मैं बीमार था। इसलिए तो मेरा आग्रह है।'

हो गया ! इस मुद्दे पर भी मैं मात खा गयी !

'लेकिन, जगदीश ...'

'अब लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, आखिरी बार पूछता हूं...'

चिल्लाने के पहले वाली उसकी वह चढ़ी हुई आवाज़ !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ९५ का शेषांश)

गयीं ? और एक मिनट भी अगर सब्र रखा होता तो मेरे ओंठों पर शब्द आ ही रहे थे, 'चलो, पल्लवी, कोसानी... तो कोसानी चलेंगे।'

'फिर अभी ?' मैंने अधीरता से पूछा।

'अब नहीं। यू हैव लास्ट द बैटल।'

हम तो एसे ही मिनट-मिनट को चूक करके जीवन भर लड़ाइयां हारते रहेंगे।

ooo

हम दोनों मैसूर गये। वहां से बेलूर की एस. टी. पकड़ी। बेलूर आ गया। देवालय की ओर चलने लगे।

जगदीश जितना गंभीर हो गया था, उतनी ही मैं निराश हो गयी थी। सभी मामूली गांवों की तरह एक गांव। संकरे रास्ते, दोनों ओर खुले नाले, अधिकांश घर छोटे-छोटे झोपड़ीनुमा, बीच-बीच में एकाध दुमंजिला घर, सफेद लंबी दीवारों वाला एक मदरसा।

'कहां ले आये हो मुझे, राजा! कहां कौसानी और कहां यह भिखारी देहात ?'

'शट-अप, पल्लवी!'

'अच्छा, बाबा, शट-अप तो शट-अप,' दांत-ओंठ भींचकर मैंने कहा।

'... यहां से देवालय कितनी दूर है ?'

'निकट ही है।' उसने कहा।

'देवालय दूर भी नहीं ?' मैंने किंचित चिढ़कर पूछा।

'नहीं... यह देवालय गांव का ही एक भाग है। सादा सामान्य-सा गांव। और

बीच में एक सुंदर देवालय। इसी में सही मज़ा है।'

'हां, हां वाहियात बकवास मत करो। शिल्प और अलंकृत गुफाएं गांव से दूर होनीं चाहिये!'

'पल्लवी, यू आर स्टुपिडली रोमांटिक! सभी प्राचीन संस्कृतियों में देवालय-शिल्प गांव का ही भाग हुआ करता था। दे वेअर कॉल्ड टेंपल टाउंस।' वह क्षण भर रुककर बोला –

'ओ हो! दे वेयर ग्रेट डेज़!'

'दे वेयर नॉट!'

'दे वेयर!' ऊंचा होकर हवा में मुट्ठी फेंककर वह बोला।

'चीखो, चीखो।' मन ही मन मैं मुस्कुरायी। उसे इस तरह चिल्लाने को विवश करने में बड़ा मज़ा आता है।

हम कुछ कदम आगे चले गये। बीच

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में एक गांव समाप्त हुआ-सा लगा। और बीच ही में मैं ठिठक गयी। कब, क्यों, कैसे—पता नहीं। लेकिन उसी स्थान पर स्तब्ध-सी हो गयी।

पीछे एक छोटी-सी नीली पहाड़ी थी। वहां तक फैला हुआ एक धान का खेत, घना हरा, बीच में कहीं तोतई, कहीं हल्दी रंग का। धूप में बिल्कुल अचेत सा—स्तब्ध!

दाहिनी ओर से झरने का कलकल करता हुआ बहता जल। मेंड़ पर पांच-छह नीबू के पेड़। उनमें से एक पेड़ के पास झोंपड़ी। खेत की काली-काली ज़मीन पर दो-एक बैल, तीन-चार बकरियां, और इधर से उधर दौड़नेवाला एक सांड़।

'रुक क्यों गयीं?'

'मुझे एकदम स्पष्ट आभास हुआ—मैं और तुम दोनों कभी यहां आ चुके हैं।'

'बकवास मत करो। ऐसे आभासों के बारे में तुमने कहीं कुछ पढ़ा होगा। कोई फिल्म देखी होगी।'

'लेकिन वह सब इसी क्षण क्यों याद आयें? यह आभास अभी क्यों हो? संयोग भी कहें तो अभी क्यों?'

उसके पास उत्तर नहीं था।

'सिर्फ उस समय के तुम कुछ अलग थे!'

'अलग! मतलब?'

'वैसे थे तो तुम ही, लेकिन बदले हुए, यद्यपि पूर्ण बदले हुए नहीं।'

'पल्लवी... यू आर इम्पास्बिल।'

'लगेगा, एक दिन इसका भी पता लग जायेगा।'

कोई गरुड़ जैसा प्रचंड पक्षी किसी अज्ञात दिशा से अचानक आ जाये और अपने पंखों की फड़फड़ाती आवाज़ कर झट से सिर पर से निकल जाये—कुछ ऐसा ही हो गया था। कहने के लिए मैं जगदीश के साथ थी लेकिन उसी समय किसी अतीत में भी थी।

'ये खेत, ये पेड़, ये बकरियां, यह सांड़...' वह ज़ोर से खिक्ऽऽ खिक्ऽऽ कर हंसा।

'कुछ बताते तो हैं इस प्रकार के अनुभवों के बारे में लेकिन मुझे कभी वह मिला नहीं!'

'वह तुम्हें नहीं मिलेगा कभी। उसके लिए अलग वरेण्य मनुष्यों का होना ज़रूरी है। तुम्हें एक कथा बताती हूं। एक अतिशय अबोला फ्रेंच चित्रकार था। उससे जीवन के बारे में कभी भी कुछ प्रश्न पूछिये वह एक ही उत्तर दे दिया करता था—'मुझे नहीं मालूम।' ठीक ही है, जिसे आखिर तक जाना है उसे यही कहते रहना चाहिये: 'मुझे नहीं मालूम।' असल में यह कथा मुझे जगदीश ने ही एक बार बतायी थी। बता चुकने पर वह बोला था, 'स्साला, हमारे पास ऐसा मन ही नहीं! यह भी ज़रूरी नहीं कि वह हो ही। लेकिन ऐसे मन से मुझे ईर्ष्या ज़रूर होती है। सच, कैसा होगा यह मन?'

अब मेरे मुंह से अपनी ही कथा सुनने पर उसने आंखें ऐसी घुमायीं जैसे कि वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहोश ही हुआ जा रहा हो।

इतने में सामने देवालय आ गया। हम दोनों ने गर्दनें ऊपर उठायीं।

ऊपर चढ़ता गया विशाल गोपुर, त्रिशूलाकृति चार कलश और प्रत्येक मंज़िल पर देवी-देवताओं की मूर्तियां।

'इस गोपुर को हम लौटते समय, विदा लेते समय, फ़ुरसत से देखेंगे।' जगदीश न कहा और हम भीतर आये। सामान और चप्पलें बाहर रखीं।

प्राकार में प्रवेश करने के पहले जगदीश देवालय की ओर देखकर बोला।

'बेलूर का देवालय जगत-विख्यात होकर आज कितनी ही सदियों तक होयसल शिल्पकला के आदर्श के रूप में...'

उसका स्वर किसी गाइड जैसा कंठस्थ किया हुआ लग रहा था।

'यह क्या बक रहे हो तुम?'

'जानबूझकर ही बता रहा हूं... यह जहांगीर आर्ट्स गैलरी में 'माडर्न आर्ट' का प्रदर्शन नहीं है। मैं एक बार तुम्हें ले गया था वहां, उस समय पूरी प्रदर्शिनी का चक्कर लगाकर तुम आयीं और मैं तब तक पहले ही चित्र के पास अटक-सा गया था...'

'कुछ यादें तुमने बिलकुल गहराई में संजोकर रखी हैं... लेकिन वह 'माडर्न आर्ट' था। यहां तो सब कुछ समझ में आने की सुविधा है।'

'मैं सोच ही रहा था, यह ग़लती तुम करने ही वाली हो। तुम इस भ्रम से मत देखो कि यह शिल्पकला सहज ही समझ में आने वाली चीज है। यह काला पत्थर खोदने में बड़ा कठिन है। इन शिल्पकारों को प्रकृति की जो चुनौती थी वह इस तरह पहले से ही...' वह विलक्षण अभिमान से बोला।

हमने प्राकार में प्रवेश किया। चारों ओर पंचायतन के देवालय, छोटे-बड़े देवल, जहां-तहां गोल खुदे हुए कोने कंगूरों के स्तंभ ही स्तंभ और बीच में केशव का देवालय।

'पल्लवी, क्षणभर के लिए आकाश की ओर देखो, और फिर इस देवालय की की ओर देखो। कैसे अवकाश फोड़कर देवालय बाहर आ गया है! रचना भी नक्षत्रों की है। ध्यान में रखो।'

बीच के छोटे से देवल में गरुड़ के दर्शन किये। हाथ जोड़कर खड़ी सुडौल ठिगनी मूर्ति। नज़र सामनेवाले गर्भगृह देवता की ओर थी। हठी, निष्पाप, सत्याग्रही लेकिन आज्ञाकारी बालक की तरह मुझे एकदम पसंद आया।

'तुमने अपनी वह स्केचबुक नहीं ली अपने साथ?' मैंने उत्सुकता से पूछा।

जगदीश ने विलक्षण त्योरियां चढ़ाकर, 'दूं एक झापड़?' वाले नज़रिये से मेरी ओर देखा।

'सॉरी, गलती हो गयी, भई! मैं ही बेहया और क्या?'

देवलों को लांघकर सामनेवाला तोरण देखते हुए हम सीढ़ियां चढ़ गये। चबूतरे पर आये। जगदीश आगे, मैं पीछे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'उस पहलेवाले खेत की पगडंडी तक तो मैं आ ही गयी थी। वहां से देवालय भी कुछ बहुत दूर नहीं...' मैंने संकेतात्मक ढंग से कहा।

जगदीश का मेरी ओर ध्यान नहीं था। चबूतरे के चित्र-विचित्र शिल्पों के स्तरों को वह बारीकी से देख रहा था। सबसे निचला स्तर था हाथियों का... उनकी एक अखंड शृंखला शांत, गंभीर, राजसी ठाठदार, सूंड़ों से पानी उड़ानेवाले ये हाथी! लेकिन एक जैसा दूसरा नहीं!

'पुनर्जन्म को मानने में कुछ हर्ज नहीं है लेकिन एक सरल बौड़म-सा गणित उसके आड़े आता है।'

'कौन-सा गणित?'

'हम सब अपने पिछले जन्म ही जी रहे होते हैं न?'

'हां।'

'मतलब यह हुआ कि जो नये प्राणी इसके बाद जन्म लेने वाले हैं उन सबका पहले जन्म हुआ है। ठीक?'

'हां।'

'देखो, ढंग से विचार करो 'हां' करते समय। मतलब यह हुआ कि ये निरंतर बढ़ते जाने वाले असंख्य और अनंत मनुष्य पहले ही यानी अतीत में ही जन्म ले चुके हैं, कुछ ऐसा पगला-सा हिसाब मान्य करना पड़ता है।'

'इसके लिए एक सादा-सा उत्तर है। बिलकुल ठोस। बहुत चुनिंदा व्यक्तियों को ही पुनर्जन्म मिलता होगा।'

'ग्रीकों को जिस तरह घोड़ा सध गया वैसा हमसे नहीं सधा। लेकिन हंस और हाथी? ग्रेट! पुनर्जन्म का 'बोरडम' प्राप्त करनेवाली यह कौन मंडली, पल्लवी?'

'हम-तुम जैसी।'

'स्साला! मतलब इस एक जन्म में तुम मेरे सिर पर आ बैठी हो...'

'मैं अब पुनर्जन्म में विश्वास करने वाली हूं तो ध्यान में रखो एक जन्म ही नहीं...कम से कम सात जन्म तुम्हारे सिर पर बैठने वाली हूं मैं।'

'लेकिन मैं तो एक ही जन्म में सात स्त्रियों को—हां, पहले से ही कह देना अच्छा। फिर वह व्यक्ति विचार करे और पुनर्जन्म जैसी बकवास कल्पना छोड़ दे।'

'फिर भी आठवें जन्म में कहां जाओगे?'

'मतलब?'

'तुम्हारी आठवीं स्त्री मैं और मेरा आठवां पुरुष तुम।'

जगदीश ने थड़-थड़ अपने कपाल पर हाथ के पंजे से थप्पड़ लगाये।

'तो फिर इस प्रकार चुहलबाजी कभी मत करना।' मैंने चेतावनी दी।

क्रुद्ध, थर्रानेवाली महिषासुरमर्दिनी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नृत्य में धुत्त होकर हाथों के फूल बन गयी नर्तिका, सिंह-सुअर और घड़ियाल के सम्मिश्रण से युक्त सर्पिणी, कालिय के फन पर नाचनेवाला गोपालकृष्ण, राम-लक्ष्मण के विवाह का सुंदर रथ, प्रशांत लक्ष्मीनारायण, पेड़ से धनुष-बाण खींचने वाली शिकारी स्त्री, प्रचंड लेकिन भोला नंदी... आंखें थकने लगीं।

जगदीश उस वास्तुशिल्प की एक-एक मूर्ति मुझे दिखा रहा था, समझाकर बता रहा था।

'पल्लवी, देव और राक्षस और सीधे सादे सामान्य लोग, देवियां और भोली-भाली स्त्रियां, नर्तक-वादक और अनेक प्राणी, यक्ष-किन्नर और रामायण-महाभारत, सबको कैसे इकट्ठा और पास-पास लाया गया है! देखो, स्वर्ग और पृथ्वी, सत्य और आभास, जन्म और मृत्यु, मुरली और भेरी, नाग और कमल, स्वप्न और वास्तव... ओ हो! क्याऽऽऽ और कितना!! वास्तव और गूढ़, वर्तमान और भूत सब यहां एकमेक होकर परस्पर अटक गये हैं...'

'क्या कहा? वर्तमानकाल और भूत-काल भी?'

परस्पर चिकोटियां काटते हुए हम मज़े चल रहे थे। हमारी दोनों की नज़रें एक ही समय किसी शिल्पाकृति पर साथ-साथ जा रही थीं।

स्तंभ पर ब्रैकेट्स में एक के पीछे एक खुदी हुई उन स्त्रियों की ओर हमारा ध्यान

ऐसे ही गया। सुंदर मुखर चेहरा। हाथ पर एक तोता फड़फड़ा रहा है। उसके ही होंठों के शब्दों को वह बोल रहा है, 'वह कब घर आयेगा? बताओ कब आयेगा?' मृदंग बजानेवाली वह मदनिका, मृदंग की थरथराहट उसके झुके हुए बंकिम पैरों में थी। चेहरे पर नटराज के प्रति अपार भक्ति!

'पल्लवी, इन सभी स्त्रियों को उन शिल्पकारों ने स्वतंत्र नाम दिये हैं—गौरी, चंद्रावली, पत्रलेखा, सुगंधा, चित्रिणी!'

और एक स्त्री नाजुक, लंबी उंगलियां, किंचित ऊपर पुरुष के अदृश्य हाथों द्वारा मानों ऊपर उठायी गयी थी। फूल की कली हवा में थरथराए ... उसी तरह नीचे-वाला ओंठ थरथरा रहा था। शरीर आभूषणों से लदा हुआ। अलंकार कहां नहीं थे—बालों में, कानों में, गले में, भुजाओं पर, स्तनों पर, पेट पर, कमर पर पैरों में।

'वह पैरों तक आयी शृंखला कितनी सुंदर, नक्काशीदार और नाजुक है!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और देखो न जैसे वह हवा में मानों हिलती जा रही है !'

'सिर्फ गहनों को मत देखो ! उसके चेहरे के मुग्ध और शालीन भावों को भी समझो। वक्ष भी कितने गोल चंद्र जैसे हैं ! लेकिन सभी वक्ष-चंद्र लज्जित से ! नहीं तो तुम इधर की आधुनिक लड़कियां... बेहया... !'

'तुम भी क्या उस पुरुष की तरह ठोड़ी को हौले से उठाना जानते हो ? सदैव जंगली जल्दबाजी !'

'पल्लवी, तुम्हारे साथ ऐसे ही जंगली जल्दबाजी करनी चाहिये। तुम्हें मुग्ध किया जाय क्या ऐसी तुम्हारी 'फिगर' है ? अच्छा ठिंगनी तो ठिंगनी फिर मिट्टी भी कितनी वज़नी ! स्साला... किसी नाटक-सिनेमा के नायक की तरह फूल जैसी तुम्हें उठा लेने की सुविधा भी है ? लेकिन ऐसा प्रयास एक ही बार किया था, तो डॉक्टर के पास जाना पड़ा। डॉक्टर ने कहा कि किसी बहुत भारी चीज़ को तुमने ऊपर उठाया है। वह कॉलर गले में नहीं पड़ी यही किस्मत की बात है।'

मैं गुस्से से लाल हो गयी थी लेकिन क्या करती ?

लेकिन एक क्षण में वह गुस्सा गुम हो गया। स्तंभ के ब्रैकेट पर उस स्त्री का शिल्प भी वैसा ही था। नृत्य की मुद्रा में वह खड़ी थी। उसके चारों ओर बेल के पत्तों की सुंदर दीप्ति थी। पैर आगे, विलक्षण गतिमान, शानदार ढंग से ज़रा सा लचकाया हुआ और हाथ में एक दर्पण। उस दर्पण का एक-एक प्रकाश का गोल टुकड़ा चेहरे पर प्रतिबिंबित !

'पल्लवी !'

वह कुछ कहना चाहता था। लेकिन क्षण भर के लिए वह एक शब्द भी नहीं बोल सका था।

उसका समूचा चेहरा गर्क ! सामने वाले दर्पण में टकटकी लगाकर देखने वाली नज़र; चेहरा इतना उज्ज्वल कि मानों शरीर के अंदर से अनेक प्रकाश के गोल टुकड़े बाहर फेंके जा रहे हों !

'शायद, पल्लवी, उसका प्रियतम कोने में खड़ा होगा। कदाचित दूर गांव गया होगा। नो, नो ! लेकिन चेहरे की वह मुस्कुराने वाली शांति ! अपने ही सौंदर्य में मदहोश करने वाला आनंद नहीं है वह !'

लेकिन मैं चकित थी किसी दूसरे ही कारण से।

'अपने को चित्रकार बतलाते हो, जगदीश, लेकिन एक मामूली बात तुम्हारे ध्यान में नहीं आयी अब तक ?'

'पल्लवी !' पैर पर ऊंची एड़ीवाला बूट पड़ जाय उस तरह विह्वल होकर वह बोला, 'चित्रकला पर भी तुम्हें बोलना ही चाहिये ?'

'ये सारी स्त्रियां—देवांगनाएं, नर्तकियां, यक्षणियां, सुर-सुंदरियां... समस्त नारियां नाटे कद की, स्थूल परंतु मेरी ही तरह प्रमाणबद्ध ह !'

जगदीश ने गाल फुलाए, आंखें इधर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उधर कीं और बोला, 'ठीक है, पल्लवी, लेकिन ग्रीक अनाटमी का...'

'ग्रीक अनाटमी जाय भाड़ में! अब अपने गांव में चलने पर मेरी सभी सहेलियों को मैं यह सत्य बताऊंगी। सदैव कहा जाता है कि सुंदर स्त्री ऊंची, इकहरी, चंवली की फली की तरह होती है। समस्त साहित्य में यह 'फली' बहुत ऊधम मचा रही है। देखो; इन स्त्रियों को देखो!' मैं एकदम रुक गयी। हौले से कहा :

'जगदीश, मेरे मन में एक निराली कल्पना आयी है?'

'क्या? हमें छोड़ मत देना....'

'समझ लो, कितनी ही सदियों पहले जब यह देवालय बनाया जा रहा था तब तुम भी इसी बेलूर गांव में जन्मे थे। मान लो एक शिल्पी के रूप में तुम भी इसी देवालय में काम कर रहे थे और फ़र्ज़ करो, मैं भी इसी गांव में थी। तुमने कुछ देर पहले जो कहा न, गौरी, चंद्रावली, पत्रलेखा...'

'सभी तुम?'

'नहीं रे, सिर्फ इनमें से कोई एक।'

'तुम आगे चली जाओ, पल्लवी! इस विष्णु को मुझे अकेले देखने दो?' वह चीखा।

मैं आगे बढ़ गयी। प्रदक्षिणा-मार्ग पर और एक शिल्पाकृति को देखने लगी। मैं सहज कौतुहल से वहां गयी थी। देवालय का गाइड हाथ की एक छोटी-सी छड़ी से कुछ दिखा रहा था, कुछ बता रहा था।

समस्त देवालय पर सूर्यास्त का मंद गुलाबी प्रकाश फैल गया था। पत्थर के एक भव्य लेकिन रिक्त आले की ओर हमारा ध्यान खींचकर वह बोला—

'यह यहां की दीप्ति देखिये। उसका एक ही कवं इस शिल्पकार ने खोदा है। लेकिन ऐसा विचित्र घुमाव इस समूचे देवालय में आपको अन्यत्र नहीं दिखाई देगा। उसी तरह ये दो छोटी गोल रेखाएं देखिये और यह नक्क़ाशी—यह किरीट की खुदी हुई नक्क़ाशी भी बिल्कुल अनोखी है। यहां के किसी भी मुकुट में वैसी नक्क़ाशी नहीं है। नीचेवाले चेहरे यहां नहीं हैं। यह पता नहीं चल सकता कि वे चेहरे कितने थे, और किसके थे। वैसे यह शिल्प अधूरा ही है। अंदाज़ यह है कि एक बिल्कुल अनोखा-सा शिल्प यहां साकार हुआ होता... चलिये..नेक्स्ट!'

गाइड के इर्दगिर्द वाली भीड़ आगे निकल गयी और मैं अकेली वहां रह गयी। भूरे रंग के पत्थर के बने उस अधूरे परंतु भव्य आलों की ओर मैं देखती ही रही। किनके चेहरे? कितने चेहरे? वे क्यों खोदे नहीं गये?

मैं जगदीश के पास गयी। वह बहुत आगे नहीं सरका था। वेणुगोपाल के शिल्प की ओर देख रहा था। मुरली के सुरों से गोपियां, गोपाल, गायें सभी प्राणी ही नहीं छोटे-छोटे कुंज भी तल्लीन होकर स्तब्ध हो गये थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'कितना देखें? कितना देखें?' मैंने उससे कहा।

'सही है, लेकिन तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यों मुरझाया-सा खिन्न?'

'कहां, कुछ भी तो नहीं!'

'कुछ हुआ ज़रूर है!'

'बड़ी लंबी यात्रा, और देवालय में तीन घंटों के भ्रमण के कारण ज़रा थक गया हूं।'

'सच—इतना ही?'

क्षण भर के लिए मोह पैदा हुआ कि उसे उस अधूरे आले के बारे में बता दूं। फिर लगा—नहीं, रहने दूं।

'सच है। सचमुच थकना स्वाभाविक है। चलो अब गेस्ट हाऊस पर।'

ooo

उस समय तक शाम हो आयी थी। हम सरकारी गेस्ट हाऊस पर गये। स्नान कर लिया। गजवं की भूख लग आयी थी। इसलिए फौरन खाना खा लिया और ज़रा लेट गये।

गेस्ट हाऊस का जो कमरा हमको मिला था वह छोटा-सा ही था। दो कॉट्स फीके नीले रंग के बेडशीट्स्, कोने में एक स्टैंड। सादा मेज़ और कुर्सी। एक छोटा-सा आईना। कपड़ों का एक कपाट। दीवारों का रंग फीका गुलाबी था।

लेकिन मेरे दिमाग और आंखों में भरा हुआ वह शिल्प अभी उतर ही नहीं रहा था। तीन-चार घंटे वहां निकालकर भी मैं अभी देवालय के बाहर आयी नहीं थी। वह कमरा कमरा नहीं था, न वे दीवारें दीवारें थीं। वह छत भी छत नहीं थी।

आंखें ऊपर उठायीं। उस काली-भूरी छत में एक भव्य कमल था। उसकी प्रचंड पंखुड़ियां धीरे-धीरे फैलती जा रही थीं। बीच में लग रहा था कि वह कमल नहीं है। वे केले की तेल लगायी तोतई टटकी नलियां हैं और खिलती-खुलती अब वे मेरा खुला शरीर ढंकने को आ रही हैं। खटिया की ओर से खेल के छोटे हाथियों की कतार-सी लग आयी थी और एक खिड़की में सिंह घड़ियालों के चेहरे के वे सांप फन निकालकर बैठे थे। दीवारें फोड़कर प्रचंड गोलाकार कोनोंवाले वे स्तंभ खड़े थे। और दो-दो स्तंभों के बीच सर्वत्र लताओं के पुंज और तोरण लटक रहे थे। उसमें जहां-तहां थे वक्ष-चंद्र, कमर पर झंकार करनेवाली मेखलाएं! बीच ही में मृदंग और डमरू की खनकती थापें और उनके रुकने पर दूर से सुनाई पड़ने वाला मुरली का सुर!

ज़ोर से आंखें भींच लेने पर भी ये आभास कम नहीं हो पा रहे थे। बीच में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही मैंने आंखें खोलीं तो ध्यान म आया कि एक सुंदर-सी झपकी मैंने ले ली थी। फिर पुनः देवालय के शिल्पों के वे असंख्य टुकड़े सिर में भिनभिनाने लगे। उसमें और एक विचित्र आभास मिल गया था। पत्थर और छेनी की ध्वनियां खन्-खन्, खट्ट-खन्! ... कितनी ही सदियों पहले इसी गांव में जगदीश था। शिल्पी की हैसियत से यहीं पर काम कर रहा था। मैं भी इसी गांव में थी... लेकिन जगदीश अलिप्त था। आने के बाद उसने फौरन अपना वोर्ड लिया था। उस पर कैनवस रोपा था और विलक्षण अबोल होकर वह चित्र बनाने में व्यस्त हो गया था।

'कौन-सा चित्र बना रहे हो अभी ?'

'मुझे उस भयंकर देवालय के बाहर आना है। मुझे बाहर आना ही होगा।' वह बोला। थोड़ी देर सब शांत था।

मेरी आंखें खोलने पर वह काम करने का स्वांग रचता था और मेरे सोने का स्वांग लेने पर मेरी ओर हंसकर देखता था।

नटखट-अहंकारी !

'सोती हूं... मैंऽऽ'

'सो जाइये। शांति से सो जाइये।'

एक क्षण सदा की वह शांति-स्तब्धता !

'जगदीश ! हनीमून ऐसे ही....'

'स्साला ! हनीमून जाय भाड़ में ! मुझे इसे समझना है। समझना ही है !' वह चीखा।

मैं चिढ़ गयी। उठी। पीछे से उसके गले से लग गयी—और मेरा ध्यान उस चित्र की ओर गया। मेरा आलिंगन एकदम शिथिल हो गया, छूट गया।

उसका वह चित्र मेरी समझ में पूरी तरह नहीं आ रहा था। देवालय, नक्काशियां इत्यादि। वैसे सब पुराना ही था, लेकिन उसमें भी कुछ नया था। अनोखा था। लेकिन एक बात निश्चित थी। उसमें वह आला स्पष्ट था : और जगदीश और मैं दोनों उसमें थे। हम जैसे दिखते थे, वैसे नहीं थे। लेकिन मैंने अपने को पहचाना और बाद में उसे भी।

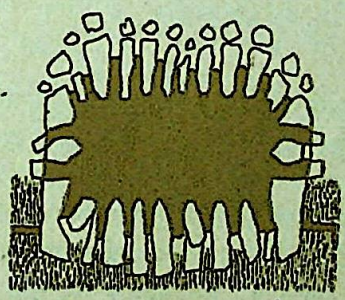

चित्र : संतोष जड़िया

मैं चकित होकर उसकी ओर खने लगी। यह तो उस देवालय के अधूरे रिक्त आले के पास आया भी नहीं था... फिर... फिर...

'तुमने कैसे समझा, जगदीश ?'

'क्या ? कैसे समझा ? ऐसे क्या देख रही हो ? सचमुच मुझे नहीं मालूम।'

'मालूम नहीं ?'

मैं मन ही मन थरथरा गयी, मुस्कुरायी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है, पल्लवी, यह देवालय का चित्र मैंने कैसे बनाया ? क्यों बनाया ? मैं ऐसा कुछ भी बनाने वाला नहीं था लेकिन वह ऐसा ही बनता गया। ऐसा ही, ऐसा ही...' और उसने अपने हाथ गुस्से में बार-बार झटक दिये।

उसका चेहरा एकदम बदल गया था। मैंने उसका ऐसा चेहरा कभी नहीं देखा था। सफेद-फक, नासापुट फूले-से और आंखों में आंसू !

'तुम हंस क्यों रही हो, पल्लवी ?'

'मैं नहीं बताऊंगी।'

'पल्लवी, मुझे समझना ही चाहिये।' वह चीखा।

'तुम कितना ही चीखो, मैं बताने वाली नहीं हूं।'

हमारा हनीमून उस समय से शुरू हुआ, मस्त रंग आ गया। लेकिन आखिर तक मैंने उसे उस अधूरे रिक्त आले के संबंध में कुछ नहीं बताया, कभी नहीं बताऊंगी !...

—अनु. चंद्रकांत बांदिवडेकर

('माळ' संग्रह, मैजेस्टिक प्रकाशन, बंबई से साभार)

पंडित प्रताप नारायण मिश्र 'ब्राह्मण' नामक पत्र का प्रकाशन करते थे। पाठकों तथा ग्राहकों की सद्भावना पर उनको विश्वास था और इसी विश्वास के कारण वे बिना अग्रिम चंदा लिये, अपने पाठकों को अपना पत्र भेज देते थे, लेकिन अक्सर यह आशा फलीभूत न होती थी। इस क्षति से ये तिलमिला कर रह गये; पर मुफ्त पढ़ने वालों को वे मौन हो क्षमा नहीं कर सकते थे। उन्होंने अपने पत्र में प्रकाशित किया :

'चार महीने हो चुके ब्राह्मण की सुधि लेव,
गंगा माई जय करें हमें दक्षिणा देव !
तुर्त दान जो करिय तो होय महा कल्याण,
बहुत बकाए लाभ का समुझि जाव जजमान !'

आठ महीने बाद भी जब चंदा नहीं मिला, तो आपने फिर लिखा :

'आठ मास बीते जजमान,
अब तो करो दच्छिना-दान।
आजु काल्हि जो रुपया देव,
मानो कोटि यज्ञ करि लेव !
मांगत हमका लागत लाज,
पर रुपया बिन चलत न काज।
जो कहुं दे हो बहुत खिजाय,
यह कौनिक भलमंसी आय।' —डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दो ग़ज़लें : श्यामप्रकाश अग्रवाल की

[१]

आज हर इतिहास झूठा हो गया है
राम का वनवास झूठा हो गया है।

पांव लोगों के नहीं पड़ते ज़मीं पर
अब तो यह आकाश झूठा हो गया है।

वानप्रस्थी हो गये हैं वीतरागी
सत्यवत संन्यास झूठा हो गया है।

आस्तीनों में पले सांपों के आगे
व्यक्ति का विश्वास झूठा हो गया है।

आदमी की पीठ पर इक युग लदा है
उम्र का आभास झूठा हो गया है।

नारियां अब वक्त की हस्ताक्षर हैं
कथ्य, तुलसीदास झूठा हो गया है।

सच तो ये है ज़िंदगी की बावनी का
एक पत्ता ताश झूठा हो गया है।

[२]

यह अजायब घर बहुत दिन का बना है।
व्यर्थ इसकी हो रही आलोचना है।

आप पर भी आ गिरे पत्थर न कोई,
आजकल इसकी बहुत संभावना है।

मैं पुरानी पीढ़ियों को देखता हूं,
कुछ नये चेहरों से जिनका सामना है।

आपको शायद ग़लतफ़हमी हुई है।
दस्तकें हर द्वार पर देना मना है।

आइये खायें कहीं ठंडी हवाएं,
शहर का वातावरण कुछ गुनगुना है।

यह खिलौने की तरह खेला गया है,
आदमी इस दौर का इक मेमना है।

लोग सौ-सौ शेर कह लेते हैं, यारो,
हमने इक मिसरे पै अपना सर धुना है।

—छावनी बाजार, बहराइच, उ. प्र.

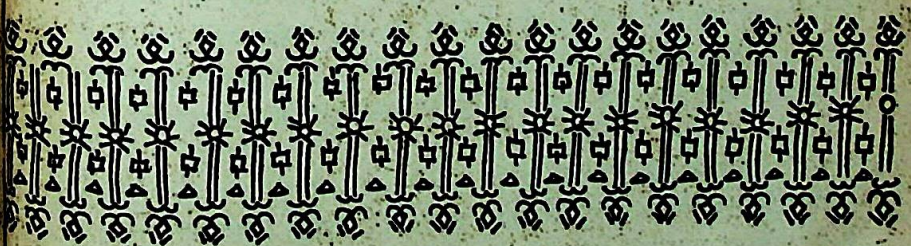

रेखांकन : आलोक जैन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोग कैसे नियंत्रणों और विरोधाभासों के बीच जी रहे हैं, इन बातों से उन्हें कोई मतलब नहीं। वे भले और उनकी दवाइयां भलीं। उनका सारा जीवन दवाइयों के प्रति ही समर्पित है; दवाइयां ही उनका जीवन है।

८४ साल के हकीमजी में न कोई पश्चाताप है, न कोई आशा। कोई दाग़ या कोई अधूरा सपना उनकी ज़िंदगी से चिपका नज़र नहीं आता। उनके शांत चेहरे पर, उनके अंदर चल रहे किसी अंतर्द्वंद्व के चिह्न नहीं दिखायी देते।

हकीमजी दिल्ली के कूचा रोहिल्ला खान के एक कोने में रहते हैं। घर में उनकी बीवी के अलावा, उनका लड़का, उनके पोते-पोतियां और परपोते-पर-

रीता कपूर और अम्बा सान्याल का रोचक सूचक लेख

□

दवासाज़ हकीमजी

जिनका एक ही शौक़ : नये-नये नुस्ख़ों की खोज

०००

कामयाब दवासाज़ हकीमजी में और हकीमों की तरह अमीर बनने की हवस नहीं है। क्यों? इसके पीछे एक ऐसा राज़ है, जिसका पता आपको हकीमजी को अच्छी तरह जाने बिना नहीं लगेगा, क्योंकि हकीमजी खुद एक बहुत बड़ा राज़ हैं।

०००

हकीमजी जैसा एकनिष्ठ आदमी आपको आज के ज़माने में शायद ही देखने को मिले। उनके आसपास क्या चल रहा है, पोतियां हैं। मगर वे किसी से ज़्यादा मिलते-जुलते नहीं, और अपने काम से काम रखने वालों में से हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बुखार के बावजूद, वे अपने काम में लगे थे, क्योंकि 'अगर मैं काम न करूं, तो ऊब के कारण बीमार पड़ जाऊंगा।'

हकीमजी हमदर्द दवाखाना के खास दवासाज़ थे। वहां से वे १९५९ में रिटायर हुए। मगर वे आज भी वहां काम करते हैं, क्योंकि न दवाखाना उन्हें छोड़ना चाहता है, न वे दवाखाने को छोड़ना चाहते हैं।

हकीमजी का दिन सुबह साढ़े तीन बजे शुरू होता है। वज़ू और नमाज़ के बाद, वे कुछ देर आराम करते हैं, और फिर सादा-सा नाश्ता। आठ और नौ के बीच वे घर पर आये मरीज़ों को देखते हैं, और फिर हमदर्द दवाखाने रवाना हो जाते हैं।

दवाखाने में वे दवाइयों में पड़ने वाले सामान की जांच-पड़ताल तो करते ही हैं, तैयार दवाओं को भी बिना जांचे-परखे बाहर नहीं जाने देते। हकीमजी सोंठ, गुल बनफशा, गुले सुर्ख और ज़ाफ़रान जैसी जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल करते हैं। तांबा, सोना, सीसा, जस्त, याकूत, असली मोती, शंख आदि का प्रयोग भी उनकी दवाओं में होता है। केंचुआ तक उनकी दवाइयों में काम आता है।

दवाई बनाने वाले उनके सलाह-मशविरे के बग़ैर नहीं रह सकते, क्योंकि हकीमजी यूनानी तिब्बी दवाइयों के चलते-फिरते विश्वकोश और अभिलेखागार हैं। फारस होकर यूनान से आने वाली हर दवाई की पूरी जानकारी है हकीमजी को। वे आपको फ़ौरन बता देंगे कि फलां दवा कहां मिलेगी।

तिजारती दिमाग नहीं है हकीमजी का। इसलिए वे अपना कोई भेद या ज्ञान अपने तक सीमित नहीं रखते, उसे सबमें बांटने में यक़ीन करते हैं। शर्त्त यही है कि सीखने वाले के मन में सच्ची चाह और लगन हो। उन लोगों से हकीमजी को सख्त नफ़रत है, जो 'कुछ नुस्खे सीखकर दुकान खोल लेते हैं।'

१९१५ से वे खुद दवाइयां बनाकर बेचते चले आ रहे हैं, मगर 'दुकानदार' नहीं बने। क्यों? आज के डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों की तरह अमीर बनने की हवस उनमें क्यों नहीं है? इन प्रश्नों के उत्तर के पीछे एक राज़ है, ऐसा राज़ जिसका पता हकीमजी को अच्छी तरह जाने-समझे बिना, आपको नहीं लगेगा, क्योंकि हकीमजी खुद एक बहुत बड़ा राज़ हैं।

दुपहर का एक बज चुका है, और हमदर्द दवाखाने से लौटकर, हकीमजी नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद में तशरीफ़ ले जा चुके हैं। मस्जिद से घर वापस आने पर वे कुछ देर आराम करते हैं। तीन बजे के करीब वे एक स्टोव पर खुद चाय बनाकर पीते हैं। चार बजे से उनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मरीज़ आना शुरू हो जाते हैं, और रात के दस बजे तक आते ही रहते हैं। दस बजे वे हल्का-सा खाना खाते हैं। कभी-कभी उनके कुछ शागिर्द उस वक्त चले आते हैं। उनसे थोड़ी-बहुत बातचीत करके वे सोने चले जाते हैं।

यह है हकीमजी की दिनचर्या।

उनकी रामकहानी की शुरुआत कैसे की जाये ? ख़ैर, उन्हीं के मुंह से सुनिये उनकी कहानी :

'जब मेरे वालिद साहब का इंतक़ाल हुआ, तब मैं बहुत छोटा था। हकीम अजमल खां ने पाल-पोसकर मुझे बड़ा किया। मार्च, १९०८ में, बारह साल की उम्र में, मैंने उनके हमदर्द दवाखाने में काम करना शुरू किया, और आखिर तक उनका शागिर्द बना रहा। दवाखाने में मैंने एक मददगार की हैसियत से काम शुरू किया था। धीरे-धीरे मुझे दवाइयों में पड़ने वाली हर जड़ी-बूटी और हर चीज़ की जानकारी हो गयी। बाद में मैं उन जगहों से भी वाकिफ़ हो गया, जहां ये देशी चीज़ें मिलती थीं। कुछ साल बाद, मैं एक अत्तार की हैसियत से काम करने लगा। मुझे दवाइयों के नुस्खों की जानकारी हुई, और मैं मरीज़ों को भी देखने लगा। मुझे हर नयी ज़िम्मेवारी मेरी काबलियत की पूरी जांच करके ही दी जाती थी। मैंने तिब्बिया कॉलेज में कुछ दिनों तक रिसर्च भी की। बाद के सालों में मैं आयुर्वेदिक और यूनानी सम्मेलनों में हमदर्द दवाख़ाना की ओर से भाग लेने के लिए भी जाने लगा। इन सम्मेलनों में आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयों के बारे में काफ़ी बातचीत और बहस होती थी, जिससे नयी-नयी बातों का पता चलता था। बहुत-सी मालूमात होती थी। अब वह बात नहीं रही।'

दवासाज़ों की समस्याओं के बारे में उनका कहना है : 'आजकल बहुत ज़्यादा कानून बन गये हैं, बहुत ज़्यादा पाबंदियां लग गयी ह हम दवासाज़ों पर। बिना लायसेंस के आप सिरका तक नहीं खरीद सकते। कोई भी मामूली-सा सरकारी आदमी आकर धमकाने लगता है।'

इसके बाद, हकीमजी ने एक पते की बात बतायी। 'दवासाज़ को, जो किताबों में लिखा है, उसी पर निर्भर नहीं रहना चाहिये। तजुर्बा बहुत बड़ी चीज़ है। काबलियत तजुर्बे से ही आती है। एक मिसाल देकर, मैं यह बात आपको समझाता हूं। एक बूटी है, जो गर्भवती स्त्रियों के बड़े काम की है, क्योंकि उसके इस्तेमाल से बच्चे के जन्म के समय, स्त्री को कोई तकलीफ़ नहीं होती। एक देहाती ने इस बूटी को खोज निकाला था। उसने एक बंदर को प्रसव पीड़ा से कराहती बंदरिया को उसे देता देखा था। उस बूटी को खाते ही, बंदरिया ने आधा घंटे में, बिना किसी तकलीफ के, बच्चे को जन्म दे दिया। देहाती ने उस बूटी को दूसरे जानवरों पर भी आज़माया। हर बार उसने देखा कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बूटी के प्रयोग से प्रसव-पीड़ा कम हो जाती है। जब देहाती ने इस बूटी के बारे में हकीमों को बताया, तो वे उस पर हंसने लगे। पर, मैंने उस बूटी का पता लगाकर उसे अपने लड़के की बहू को दिया। डाक्टर कह रहे थे कि बिना आपरेशन के उसे बच्चा नहीं होगा, मगर इस बूटी के इस्तेमाल के बाद आपरेशन की ज़रूरत नहीं पड़ी।'

शादी के बारे में पूछने पर हकीमजी ने बताया, 'मेरी शादी सत्रह साल की उम्र में हो गयी थी। मेरी बीवी हमेशा परदे में रहती थी। मैं भी परदे में यक़ीन करता हूं। परदा हमारी पुरानी तहज़ीब का एक हिस्सा है, और हमें उस तहज़ीब की हिफ़ाज़त करनी चाहिये। हां, आज ज़माना बहुत बदल गया है। पहले दूसरा माहौल था। हिंदू और मुसलमान दोनों अपने-अपने बच्चों को सही तालीम देते थे, तमीज़ सिखाते थे। कोई बच्चा किसी को गाली दे देता था, या बदतमीज़ी से पेश आता था, तो उसकी शामत आ जाती थी। इसीलिये हिंदू-मुस्लिम मिलजुलकर प्रेम से रहते थे। न कोई दंगा, न कोई कर्फ्यू।'

आजकल की पोशाकों का ज़िक्र आया, तो हकीमजी कहने लगे, 'कहते हैं, अंग्रेज़ अपनी टोपी पकड़कर भागा। लेकिन हमने उसकी पतलून पकड़ ली। बस वही हमारे पास रह गयी है। और आजकल तो औरतें भी पहनती हैं।'

'आपकी उम्दा सेहत का राज़ क्या है?' इस सवाल के जवाब में हकीमजी ने जवाब दिया, 'दवा से दूर रहा हूं। सादा खाना खाता हूं, और क़ायदे की ज़िंदगी का बड़ा पाबंद हूं। बीमारी की वजह से कभी मुझे काम से ग़ैरहाज़िर नहीं रहना पड़ा। मेरी निगाह कमज़ोर है, मगर इतनी नहीं कि मेरा काम ही न चल सके।'

'कोई शौक?'

'नयी चीज़, नया नुस्खा सामने आया, उसको आज़माने का शौक़ है। और कोई शौक़ नहीं। एक ज़माना था, जब मुझे कव्वालियों का बड़ा शौक़ था। एक दिन, निज़ामुद्दीन औलिया में मैंने सारी रात कव्वालियां सुनीं। उससे मुझे बड़ा फ़ायदा हुआ, और तबसे मुझे मुंह से 'अल्लाह, अल्लाह' कहने की ज़रूरत नहीं पड़ती। अल्लाह हमारे अंदर ही है।'

'भविष्य के लिए कोई आशाएं?'

'जहां तक अपनी तरक्की का सवाल है, मेरा ख़याल है, मैं उस मुकाम पर आ गया हूं, जब मैं बिना किसी किताब की मदद के किसी भी दवा का नुस्खा तैयार कर सकता हूं। मेरे लिए इतना ही काफी है।'

('द इंडिया मैगज़ीन' से साभार)

□

अमरता इसमें है कि मनुष्य बहुत-से अनजान लोगों का प्यार पाये।

—फ्रायड

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रसिद्ध गुजराती कथाकार सुरेश जोशी की कहानी

□

यह कैसा जन्मोत्सव

घड़ी में साढ़े ग्यारह बजे थे। अब सिर्फ आधे घंटे की ही देर थी। लाल रेशम के पर्दे के पीछे कृष्णजन्म की सारी तैयारियां हो चुकी थीं। वृंदावनदास का बड़ा बेटा असित अमेरिका जाकर इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग का खास शिक्षण प्राप्त करके लौटा था, उसने सबको आश्चर्य में डुबा देनेवाली युक्ति रची थी। क़ैद में कृष्ण का जन्म, वर्षा, वसुदेव का कृष्ण को लेकर जमुना पारकर गोकुल जाना—यह सब बिजली की करामात से वह हूबहू दिखाने वाला था। इसलिए सब आतुर थे। लाल रेशम का पर्दा खुलने का इंतज़ार कर रहे थे।

स्टेशन की घड़ी में साढ़े ग्यारह का गजर अभी ही बजा था। जनता एक्सप्रेस से उतरे मुसाफिरों को लेकर बस शहर की ओर निकल चुकी थी। बस स्टैंड सुनसान था। पास की खुली जगह में फटी-पुरानी बोरियां और जंग लगे पतरे के छपरे लगाकर तीन-चार कुटुंब आश्रय ले रहे थे। उनमें से एक झोपड़े में दीया टिमटिमा रहा था। किसी स्त्री के कराहने की आवाज़ उस निस्तब्धता में सुनाई दे रही थी। पर उस झोपड़े की बस्ती ने उस पर ध्यान दिया हो वैसा मालूम नहीं हो रहा था। तब अर्ध नींद और अर्ध जागृत अवस्था में कोई बोलता हुआ सुनाई दिया, 'अरे कानजी, माणकी कराह रही है, ज़रा जाकर तो देख!'

दूसरे ने भी उसी तरह की आवाज़ में उत्तर दिया, 'उसमें क्या देखने जाना है, समय हुआ लगता है।'

अंधेरे कोने से कोई वृद्धा खोखली कर्कश आवाज़ में बड़बड़ाई, 'माणकी भी उस्ताद और उसके पेट का बच्चा भी उस्ताद। टंकरखार दिया तो भी कुछ न हुआ। अब क्या आने वाले को वापस भेजें? ऐसे में और कोई चारा है?' घड़ी की सुई आगे बढ़ रही थी, माणकी कराह रही थी, आकाश में कभी-कभी बिजली कौंध जाती थी, ज़ोरों की गर्जना और बरसात हो रही थी।

ooo

घड़ी की सुई आगे बढ़ रही थी। ऊपर कमरे में विशाखा और धनंजय भीड़ के बीच से सटककर आराम से वार्तालाप कर रहे थे। उनको भी महसूस हुआ कि अब तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

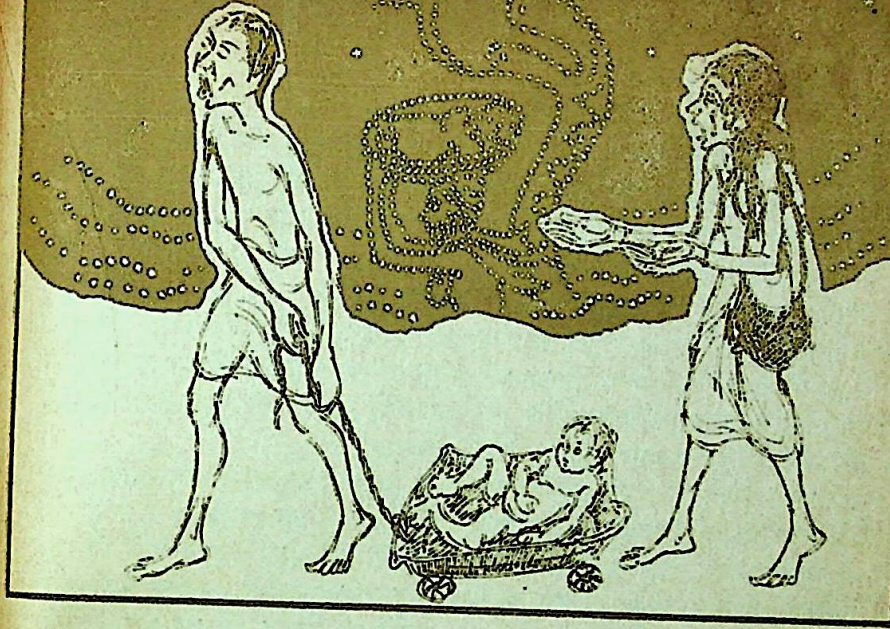

नीचे जाना ही पड़ेगा । वृंदावनदास और उनकी मंडली आंगन में भागवत का श्रवण कर रहे थे। वे भी अब समय होने आया जानकर भगवान के कमरे की ओर आने की तैयारी में थे । मधुसूदन और उसकी मित्रमंडली ब्रिज के दो रबर पूरे करके असित की करामातें देखने यथास्थान बैठकर गपशप कर रही थी । असित बिलकुल निश्चिंत होकर एक ओर रीटा के साथ बात करते-करते हंस-हंसकर दोहरा हो जाता था । तब मुखियाजी आये । मंदिर में जाकर अंतिम तैयारी में जुट गये । कृष्णजन्म का मुहूर्त निकट आने लगा । दीवार पर टंगी हुई इलेक्ट्रिक घड़ी की बड़ी सुई और छोटी सुई धीरे-धीरे एक दूसरे के नज़दीक आने लगीं ।

०००

स्टेशन की घड़ी की सुइयां भी एक-दूसरे के निकट आने लगी थीं । झूमते हुए बादल घहरा रहे थे । बरसात की झड़ी होने लगी थी । बस स्टैंड के पासवाले छप्पर उड़ने के लिए बेताब हो रहे थे । सांय-सांय करती हुई हवा की आवाज़ में माणकी के कराहने की आवाज़ स्पष्ट सुनाई न देती थी । मुसाफिरों के कारण बस स्टैंड थोड़ी देर के लिए जागृत हुआ था । पल मात्र में यह सारी लीला समाप्त हो गयी । धीरे-धीरे निस्तब्धता छा गयी । लगातार बरसात होने लगी । अचानक दीया बुझ गया और निस्तब्धता को बेधकर नये पैदा होनेवाले बच्चे का रुदन गूंज उठा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

०००

घड़ी की दो सुइयां साथ मिलते ही रेशम का लाल पर्दा सर्र्र करता हुआ खिसक गया। आकाश में से तेज का पुंज मानो अवतरित होता हुआ कौंध गया। देवकी की गोद में बालक के रूप में वह तेजपुंज झूलने लगा। कारागृह के अंधकार में वह तेजपुंज प्रकाश बिखेरता था। कभी बाहर की बिजली की चमक भीतर भी झांक लेती थी। एकाएक कांसे, मंजीरे और शंख की तुमुल ध्वनि हुई। बाहर बैठे हुए रामदीन शहनाईवाले ने पौ फटी न होने पर भी विभास के सुर छेड़े। प्रेक्षकगण खड़े हो गये। कृष्णजन्म के कार्यक्रम का एक पर्व पूरा हुआ।

०००

झोपड़े की दुनिया में हलचल हो उठी थी। जन्म हो चुका था। नाना प्रकार की आवाजें सुनाई देती थीं। 'देवजी, मैं कहता हूं वैसा करो, इसमें कानजी का काम नहीं।'

'पर उस वेलजी बूढ़े की इस समय कौन सुध ले? लो, तब हमें कहते हो तो तुम ही जाओ न, मेरे भाई।'

दूसरी थोड़ी धीमी आवाज सुनाई दी, 'अरे ओ गंवार, जरा धीरे बोल, माणकी सुनेगी तो बेचारी दुःखी होगी।' जिसे संबोधित कर यह कहा गया था वह कटाक्ष में बोला, 'दुःखी तो हुई ही है न, वर्ना इस तूफानी रात में भीगती हुई अपने साथ थोड़े होती? सोने के हिंडोले पर झूलती न होती?'

तब किसी ने अधीर होकर कहा, 'अरे भई, ज्यादा चर्चा छोड़ो, चलो मेरे साथ, परतापगंज की ओर जाते वह नाला देखा है न, वहां उस छपरे को देखा कि नहीं, वहीं जाना है।'

उसके उत्तर में कोई बोला, 'नहीं भई, अपना काम नहीं, पानी बरसता है उसे तो देखो। घुटने तक पानी न हो तो मुझे कहना!'

दूसरा ज्यादा अधीर होकर बोला, 'अरे छोड़ उसे! चल, कानजी, ले बच्चे को, चल मैं आगे होता हूं।' बच्चे के रोने की आवाज़ बाहर आयी! कीचड़ खूंदते चार कदमों की डबडब आवाज़ उस रुदन में मिल गयी। बरसात होती रही, हवा चलती रही, घड़ी की सुइयां अलग हुईं, अलग होकर आगे बढ़ने लगीं।

०००

घड़ी की ओर अब किसी की नजर न थी। असित की मायावी सृष्टि को सब स्तब्ध होकर देख रहे थे। सामने मुखियाजी का रचा अन्नकूट था। उसमें भी रंगों की योजना बड़ी चातुरीपूर्वक की गयी थी। अब वसुदेव कृष्ण को लेकर गोकुल में जाने की तैयारी में थे। देवकी किसी तरह मानती नहीं थी। हाथ हिलाकर गिड़गिड़ा रही थी। अब शहनाई का करुण स्वर गूंज रहा था। असित की तरकीब से अब भयंकर वर्षा का दृश्य हूबहू प्रस्तुत हो रहा था। आखिर वसुदेव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ने कृष्ण को हाथ में लिया, टोकरी में सम्हालकर रखा, अंगूठा चूसते, वटपत्र में सोये भगवान के मुख पर भुवनमोहन हास्य था, वसुदेव आगे बढ़े।

०००

कानजी और देवजी आगे बढ़े, घुटने तक का पानी पार करते, बालक के रुदन का बोझ उठाते चले। माणकी के करुण चीत्कार ने उनका पीछा किया तो भी आगे चले; माणकी की चीख उनके पीछे दौड़ती-दौड़ती आगे चली, घड़ी की सुइयां एक दूसरे से अलग होकर आगे बढ़ीं।

०००

वसुदेव घनघोर बरसात में जमुना के किनारे आये। नदी तो दोनों ओर से छलक रही थी। असित ने बड़ी करामातें प्रस्तुत की थीं। दीये सारे बुझ चुके थे। तेजपुंज समान कृष्ण भगवान और बीच-बीच में कौंधती बिजली के सिवा दूसरा कुछ अब नहीं दिखाई देता था। ये सब करामात है यह बात भी भूलकर जयावती सेठानी हाथ जोड़कर भक्तिभाव से खड़ी ही रह गयी। वसुदेव ने जमुना के पानी में प्रवेश किया न किया कि एकाएक पानी को चीरती हुई सर्र्र करती आवाज़ आयी। सब चौंक उठे। कृष्ण भगवान के ऊपर नाग ने छाया की थी। भक्तों ने हाथ जोड़े। दूसरे कौतूहल से विस्फारित नेत्रों से देखते रहे, और वसुदेव आगे बढ़ते गये।

०००

'बेलजी, हो कि नहीं ?'

भीतर से कर्कश आवाज़ में दमियल बूढ़े ने खांसते-खांसते 'हां' में उत्तर दिया।

'मैं कानजी, हूं, जल्दी बाहर आइये, यह बच्चा लाये हैं, ज़रा उसके पैर मोड़ दीजिये न!'

बूढ़े ने कहा, 'पूरा बैठा ही रहे वैसा करना है कि लकड़ी के सहारे चलकर भीख मांगे वैसा करना है ?' कानजी बोला, 'पूरा पंगु न करना, दादा, अभागे ने मध्यरात्रि को मेरे यहां जन्म लिया, वर्ना . . .' उनकी आवाज़ भर्रा गयी।

देवजी ने कहा, 'चल, अब पागलपन मत कर। लड़का हुआ है तो रोटी की व्यवस्था करनी है कि नहीं ? तू तो उसे पढ़ा-लिखाकर लाट साहब बनाने वाला था न ?'

'देवा, लड़का तो है बिल्कुल किसन भगवान जैसा, आखिर लड़का तो माणकी का है न!' कहते हुए बरसों के अनुभवी हाथों ने पलभर में बच्चे के घुटने की हड्डियों को मोड़ दिया। बच्चे की चीख हवा को बेध गयी।

देवजी ने कहा, 'कल सुबह रुपया दे जायेंगे। चल, कानजी, अब तेरा बेटा भूख से नहीं मरेगा।' पानी में पड़ते कदमों की डबडब आवाज़ सुनाई दी। उन कदमों के आगे-आगे बच्चे के रुदन का स्वर बढ़ रहा था। और वे कदम डबडब आवाज़ करते हुए बढ़े जा रहे थे।

०००

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान गोकुल पहुंचे। गोकुल में उत्सव हुआ। जसोदा मैया ने कृष्ण कुंवर को सजाया, नज़र न लगे इसलिए गाल पर काजल का डिठौना लगाया, गोकुल पूरा इकट्ठा हुआ। गोप-बालों के आनंद स्वर से वनराजि गूंज उठी, शहनाई ने ललित राग छेड़ा। असित खेल पूरा करके बाहर आया। सब उसे घेरकर मुबारकबाद देने लगे। ब्रज की मंडली फिर से जम गयी, विशाखा और धनंजय फिर ऊपर की मंज़िल पर चढ़ गये।

वृंदावनदास की मंडली का भागवत पारायण आगे बढ़ा। जयावती सेठानी ने लोरी शुरू की—'जागो नंद के लाल, भोर भई...'

ooo

माणकी की चीख ने लौटे हुए कानजी और देवजी का स्वागत किया।

'मुझे एक बार उसका मुंह तो देखने देना था। लाओ, मेरी गोद में लाओ मेरे नंदकुंवर को.....'

देवजी ने कहा, 'पागल मत बन, माणकी, तेरे नंदकुंवर को कोई चुरा नहीं ले गया। ले, ये तेरा बच्चा।' अब कानजी के सामने भविष्य का चित्र खड़ा हुआ। कड़ी धूप में माणकी के साथ वह पतरे की छोटी-सी गाड़ी में पंगु किसन को शहर के बीच होकर खींच रहा है। खुद अंधा है, बेटा पंगु है, दुनिया देखती है, भगवान कृपालु हैं, मुंह में अनाज है, धरती पर वैकुंठ है। भगवान गोकुल से पधार कर मथुरा के राजा हुए हैं सब सुखी हैं।

मां की गोद में मां की अश्रुधारा में स्नान करता हुआ किसन मानो पिता की आंख के समक्ष दृश्यमान हो उठे भावी को देखता हो वैसे एकाएक हंस पड़ा, पर तूफानी रात के उस घने अंधेरे में माणकी को वह हास्य दिखाई नहीं दिया।

रूपांतर : गीता आशर

□

मैं उस ईश्वर की कल्पना नहीं कर सकता, जो अपनी बनायी चीज़ों को फल और दंड देता है, और जिसके हमारे जैसे ही मनोरथ हैं —वह ईश्वर, जिसमें मनुष्यों के से अवगुण देखे जा सकते हैं। न ही मैं यह मान सकता हूं कि शारीरिक मृत्यु के बाद मनुष्य का अस्तित्व कायम रहता है, यद्यपि कमज़ोर व्यक्ति डर और हास्यास्पद अहंकार की बदौलत इस विचार का सहारा लेते हैं।

— आइंस्टाइन

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

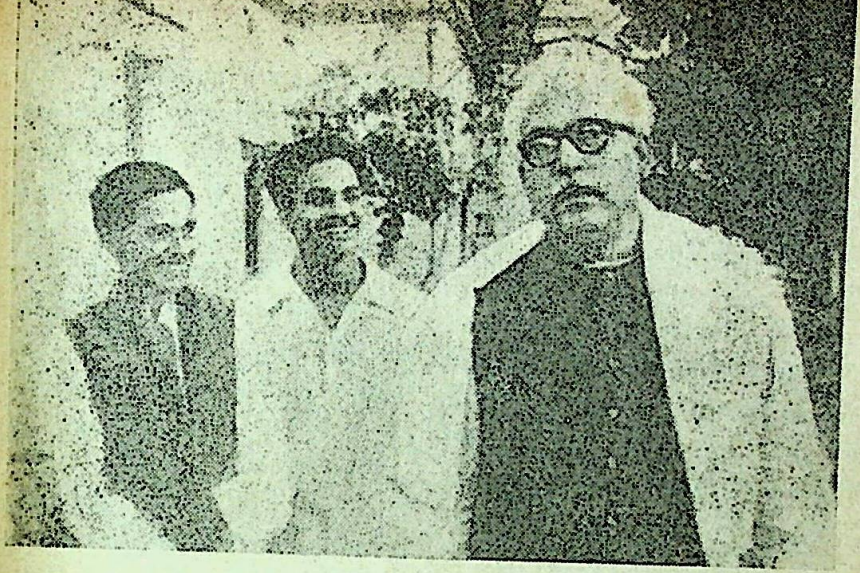

श्री जालादि विश्वमित्र और लेखक के पिता श्री कृष्णबिहारी मिश्र (हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र) अपने आचार्य पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी के साथ

पंडित बाबा : हजारीप्रसाद द्विवेदी

□

कमलेश कृष्ण का एक आत्मीय संस्मरण

उस दिन मेरे पिताश्री के मित्र, राष्ट्रीय ख्याति के कलाकार श्री वसंत पोतदार कई मित्रों के साथ मेरे घर आये थे। उन दिनों उन्होंने बाउल गान की साधना शुरू की थी। मराठी शैली में सुर्ती बनाकर उन्होंने मुंह में उसे दबाया और फिर बाउल भूमि गौरीपुर की यात्रा का वर्णन करने लगे। उसके तुरंत बाद उन्होंने बाउल गान 'बाबा पागल . . .' शुरू किया। गान के छंद को मूर्त करने के लिए शायद पोतदारजी पिताजी के छोटे कमरे में नाचने लगे थे। बाउल शायद नाचते हुए गाते हैं। श्री पोतदारजी की बाउल-मुद्रा का आनंद ले रहे थे उनके मित्र श्री नवल, श्री सुरेंद्रप्रताप सिंह और मेरे पिता डा. कृष्णबिहारी मिश्र। बांग्ला बोली पिताजी की अपेक्षा मेरे अधिक करीब है। इसलिये मैं पोतदारजी के बाउल रूप से चकित और उल्लसित था। किंतु उनके स्वर की आकाशभेदी ऊंचाई ने मेरी छोटी बहन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऋचा को, जो भीतर के कमरे में थी, कंपा दिया था। ग्यारह बजे के करीब पिताजी के कमरे की महफिल बड़े उल्लास के साथ समाप्त हुई। लेकिन मां को भीत-मन ऋचा की हिफाजत में रात भर जगना पड़ा।

अपनी बहन की भीत-दशा देखकर मुझे अपने बाल्यकाल की एक घटना याद आयी। शिशु था, तब की बात है। पिताजी के यहां एक बूढ़ा आदमी आया था। घर भर के लोगों में एक अजीब खुशी और सजगता देखकर मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि विशेष बात क्या है। थोड़ी देर बाद देखा, कुछ बाहर के आदमी पिताजी के कमरे में आ-जा रहे हैं। और यकायक उस बूढ़े का अट्टहास सुनकर मैं कांप गया था। बड़े ज़ोर से अपनी छोटी बुआ, जिन्हें मैं आज भी पीशी मां कहकर पुकारता हूं, को पकड़कर चीख पड़ा था। बहुत फुसलाकर जब पीशी मां ने मेरे डरने का कारण पूछा था तो बड़ी कमज़ोर आवाज़ में मैंने बताया था कि चाचाजी के कमरे में एक पागल आया है। मां ने मुझे झिड़कते हुए कहा था, कितने बदमाश हो तुम। मगर पीशी मां हंसने लगी थीं और बड़े दुलार के साथ मुझे समझाया था, 'चाचाजी के गुरु हैं, पढ़ाते हैं, बड़े भारी आदमी हैं।'

बड़ा का अर्थ मैं सयाना और बूढ़ा ही जानता था। पीशी मां से पूछा था, 'बाबा तो इस तरह नहीं हंसते।' पीशी मां मुझे संतुष्ट नहीं कर सकी थीं, यद्यपि मैं भय-मुक्त हो गया था। बहुत दिनों तक दोपहर का भोजन मैं अपने बाबा के साथ करता था। पिशी मां ने मेरे भय की विस्तृत चर्चा बाबा से कर दी थी। भोजन करते समय बाबा ने बड़े कायदे से मुझसे बात-चीत शुरू की थी और उस बूढ़े आदमी के प्रति मेरे मन में उत्सुकता जगा दी थी। मुझे अपने साथ लेकर वे उनके कमरे में घुसे थे। उस बूढ़े आदमी ने मुझे अपनी गोद में बैठा लिया था। मेरी आंख और माथे पर एक तरफ काजल की बिंदी को निहारते हुए उसने भोजपुरी में बात शुरू की थी ठीक मेरे बाबा की शैली में। फिर यह जानकर कि मैं बांग्ला पढ़ता हूं उसने मुझसे बांग्ला में बोलना शुरू किया था।

अपनी छड़ार-छबि से मुखस्थ की गयीं दो-चार रवींद्रनाथ की पंक्तियां उसके दुलार भरे आग्रह से मैंने सुनायी थीं। उसने मुझे चूम लिया था। मेरे बाबा इतने प्रसन्न थे जैसे उनके पोते ने विश्व-विजय कर ली हो। उस बूढ़े ने मेरे हाथ में पांच रुपये का नोट देते हुए कहा था, 'मिष्टी खावे, केमन ?' लजाते सकुचाते रुपया मैंने ले लिया था, और मेरे मन ने स्वीकार कर लिया था यह बूढ़ा पागल नहीं, प्यारा आदमी है। पीशी मां ठीक कह रही थीं कि बड़ा आदमी है वह बूढ़ा। करीब जाकर मैंने देखा, मेरे बाबा की ही तरह पान बहुत खाता था, बाबा की तरह उसके केश सादे थे और सामने केश थे ही नहीं।

उसके आत्मीय व्यवहार से प्रसन्न होकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैंने पीशी मां से पूछा था, 'चाचाजी के मास्टर मोशाइ हमारे क्या लगेंगे ?'

पीशी मां ने समझाया था, 'हम सब लोग उन्हें पंडितजी कहते हैं, तुम पंडित बाबा कहना, समझे ?' मैं उस बूढ़े आदमी को पंडित बाबा कहकर पुकारने लगा था। उस कमरे में निडर होकर आने-जाने लगा था। बीच-बीच में उसकी हंसी मुझे आतंकित ज़रूर कर देती थी, लेकिन मैं डर के भागता नहीं था, जैसे कांपकर पहले दिन पीशी मां से चिपट गया था। दो-तीन दिनों के बाद ही वह आदमी मेरे घर से चला गया था। और हफ्तों-महीनों तक मेरी आंखें उसे खोजती रही थीं। सयाना होने पर मुझे बताया गया था कि वह बूढ़ा आदमी, जिसके अट्टहास से मैं डर गया था, पागल नहीं हिन्दी के महान लेखक आचार्य पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी हैं। तब मैं इस नाम का अर्थ समझने लायक हो गया था, और अपने सौभाग्य दर्प से फूल उठा था।

बाद में अपनी छोटी बुआ के साथ रहकर हिंदी पढ़ने लगा और 'नाखून क्यों बढ़ते हैं ?' शीर्षक निबंध को पढ़ाते मेरे अध्यापक उसके लेखक का परिचय बताने लगे तो उनके साहित्य की ओर मेरा आकर्षण बढ़ा। पिताजी की पुस्तकों से पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी यानी अपने पंडित बाबा की किताबें ठीक से न समझते हुए भी देखने लगा। पिताजी के संग्रह में उनकी पुरानी चिट्ठियां और चित्र देखता और मन ही मन अपने घर उनके आगमन की प्रतीक्षा करता रहता। अपने पिताजी के कमरे में, जहां उनके अट्टहास से मैं एक दिन डर गया था और उन्हें पागल मान बैठा था, चरणस्पर्श करने को, निकटता से बतियाने को बेचैन रहता। मगर वह प्रतीक्षित घड़ी कभी उपलब्ध नहीं हुई।

मेरे होश सम्हालने के बाद पंडित बाबा का कलकत्ता कई बार आगमन हुआ। मगर मेरे घर आने की उन्हें कभी फुर्सत नहीं मिली। भारती बुआ (अपनी छोटी कन्या) के यहां ठहरते, बड़े लोगों से बराबर घिरे रहते, सभाओं में व्यस्त रहते और फिर भीड़ के बीच से ही काशी लौट जाते। मां से जानकारी होती, पिताजी उनसे मिलने जाते, लेकिन मां के चाहने पर भी कभी अपने साथ मुझे उनके यहां नहीं ले जाते। केवल एक बार चुपके से मैं हनुमान मंदिर के समारोह में पीछे जाकर बैठ गया था। सयानी समझ से उनका भाषण और ठहाका सुना था। सभा से जब निकल रहे थे, उनके साथ पंडिताइन दादी भी थीं, एक भीड़ थी जिसमें मेरे पिताजी थे। अनेक लोग उन्हें प्रणाम कर रहे थे। मैंने भी लपककर उनके और दादी मां के पैर छुए थे। वे पहचानते कैसे ?

नीचे उतरने पर पिताजी ने उनसे मेरा परिचय कराया था। आंख फाड़कर पंडित बाबा ने मेरी ओर देखा और हंसते हुए कहा—'बापे नीयर बंगाली काठी के इहो हो गइल'। 'शिशु अवस्था में इसने आपको रवींद्रनाथ की कविता सुनाई थी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पंडितजी, याद है ?' 'ओ हां, मने पड़चे, वेश बड़ो होये गेछो, वांग्ला कोविता पड़चो ।'

मैं इतना अभिभूत था कि कुछ बोल न सका । मेरी झिझक तोड़ने के लिए उन्होंने खड़ी बोली में पूछा—'कुछ लिखते भी हो ? बाबा कैसे हैं ?' 'बाबा आपकी बाट जोहते रहते हैं ।' केवल इतना ही मैं बोल सका । 'तनिको संवंस नइखे मिलत । अगली बेरि बाबा से भेंट करे चलबो । कहि दिह' । वे जल्दी में थे । मैंने उनके चरण स्पर्श किये । मेरे सिर पर हाथ रखकर उन्होंने आशीर्वाद दिया । छोटी बतकही से ही मैं गद्‌गद् था । गर्व से उतान था कि इतने बड़े विद्वान ने मुझसे घरेलू आत्मीयता से बात की । पिताजी के लिए यह कोई विशेष बात नहीं थी क्योंकि बहुत करीब से उन्होंने देखा है कि बच्चों के प्रति पंडितजी के व्यवहार में स्नेह छलकता रहता है । मुझे होश सम्हालने पर पहली बार वह उपलब्ध हुआ था । पंडित बाबा के आशीष-स्पर्श का नशा हफ्तों तक मेरे ऊपर छाया हुआ था ।

मेरी उस भेंट के बाद पंडित बाबा केवल एक ही बार कलकत्ता आये । उस समय दुर्योग से मैं अपने गांव चला गया था । मेरे बाबा का स्वर्गवास हो गया था । पंडित बाबा ने पिताजी को संवेदना-पत्र भेजा था। और दूसरे वर्ष स्वयं संसार छोड़कर चले गये थे । आज सोचता हूं, पंडित बाबा ने संसार को कितना समृद्ध किया है—विपुल विद्या, असंख्य विद्या-संतान, अद्वितीय उल्लास और अशेष प्रेरणा के स्रोत, इससे अधिक कोई क्या देगा अपने समाज और संसार को । श्रद्धा से माथा झुक जाता है । हमारे घर में उस दिन जैसी उदासी थी, अनेकानेक घरों में वह उदासी छा गयी होगी, जिस दिन पंडित बाबा ने संसार से विदा ली थी । पिताजी ने कहा था, 'पंडितजी ऋषि थे । अब हिंदी में ऐसा समृद्ध व्यक्तित्व शायद ही आये । हिंदी से वसंत चला गया । विद्या की गरिमा और मनुष्यता का वैसा उल्लसित रूप अब शायद ही दिखाई पड़े ।'

और मैं उस तसवीर को देखता हूं जिसे पिताजी के कमरे में बहुत दिनों से देख रहा हूं, जिसमें पंडित बाबा के साथ पिताजी और उनके एक मित्र खड़े हैं। तसवीर चुप है । मगर मेरे हृदय में भावना की भीड़ का शोर है । अब वह पागल ठहाका क्यों नहीं सुनायी पड़ता जिसने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुझे डरा दिया था ! याद है, पिछले मार्च में पिताजी के साथ बलिया से बस में बैठकर अपने गांव जा रहा था। पिताजी ने पंडित बाबा के गांव की ओर संकेत करते दिखाया था, 'ठीक इसके सामने पंडितजी का गांव ओझवलिया पड़ता है' और एक स्कूल दिखाया था, यहीं शुरू-शुरू में पंडितजी पढ़ते थे।

बलिया जनपद का एक ग्रामीण बालक और फिर बाद का पंडित बाबा का समृद्ध व्यक्तित्व। यकायक मुझे हनुमान मंदिर का समारोह स्मरण हो आया। पंडित बाबा के सम्मान में कही गयी वृद्ध लाला बाबू की बातें याद हो आयीं। और पंडित बाबा का भाषण कि 'जब मुझे अभिनंदन के पुष्प मिलते हैं, उन्हें मन ही मन मैं जोड़ा-साकू स्थित ठाकुरबाड़ी को पूरी श्रद्धा और कृतज्ञता से निवेदित करता हूं...।' शायद पंडित बाबा ने उस दिन यह घोषणा की थी कि बलिया की ग्रामीण मिट्टी को हीरा बनाया था रवि ठाकुर के संस्पर्श ने। मगर मैं सोचता हूं, विश्वकवि के संपर्क में केवल पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य क्षितिमोहन सेन, आचार्य नंदलाल वसु, आचार्य विधुशेखर भट्टाचार्य और मूर्ति-शिल्पी रामकृष्ण बैज ही तो नहीं थे। असंख्य अज्ञात लोगों को रवींद्रनाथ का स्पर्श मिला, उनके आश्रम में रहने का सौभाग्य मिला, किंतु उनके व्यक्तित्व में वह रोशनी क्यों नहीं दिखाई पड़ी जो हमारे पंडित बाबा और कुछेक दूसरे मनीषियों के व्यक्तित्व में दमकती थी ?

मुझे पंडित बाबा के एक निबंध 'बसन्त आ गया है' में अपने सवाल का उत्तर

मिलता है। 'बसन्त आता नहीं ले आया जाता है। जो चाहे और जब चाहे अपने घर ले आ सकता है।' मुझे लगता है, जैसे पंडित बाबा की तसवीर बोल रही है, 'क्या ताक रहे हो मेरी ओर ? अपनी ओर देखो। प्रतिभा कोई बताशा है कि किसी के दे देने से मिल जायेगी। वह खैरात में नहीं मिलती। उसको अर्जित करने के लिए तपना पड़ता है। उसे कायदे से रखने के लिए अपने भीतर पात्र तैयार करना पड़ता है। आग को गमछे में नहीं बांधा जा सकता। आग पाकर यदि कोई लापर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाह हो गया तो वह उसे जला डालती है या फिर उसे जीवित रखने की चेष्टा नहीं बनी रही तो वह राख हो जाती है !'

सोचता हूं, पंडित बाबा के भीतर वह आधार था जहां प्रतिभा खड़ी होती है और उन्हें उसे जगाने के लिए काफी तपना पड़ा था ।

प्रतिभा उन्हें खैरात में नहीं मिल गयी थीं। उनके यशस्वी अनेक शिष्यों को देखता हूं तो बात और साफ होती है कि केवल इतनी ही उनके छात्रों की संख्या नहीं थीं ।

असंख्य अज्ञात लोग हैं जिन्हें उनका विद्यार्थी होने का गर्व है, लेकिन उनके व्यक्तित्व में वह कौन-सा लक्षण है जिससे पहचाना जा सके कि वे आचार्य पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी के विद्यार्थी हैं। बहुत ठीक है कि प्रतिभा खैरात में नहीं मिलती ।

माटी बलिया की हो या वीरभूमि की, यदि उसमें दम-खम नहीं है तो वह माटी के जड़ स्तर से ऊपर नहीं उठ पाती और रवींद्रनाथ तथा पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे महान व्यक्ति का होना निष्फल हो जाता है।

यह विशिष्ट संस्पर्श भी वसंत की तरह 'भागता-भागता चलता है' जो चाहे उसे पकड़कर दमक उठे !

पंडित बाबा के महाप्रस्थान के दूसरे दिन श्री दीपनारायण मिठौलिया पिताजी के उसी कमरे में, आकाशवाणी कलकत्ता के लिए श्रद्धांजलि-वार्ता टेप करने आये थे, जिस कमरे को एक दिन पंडित बाबा ने अपनी उपस्थिति और ठहाके से प्राणवान बना दिया था ।

इस कमरे में आज भी पंडित बाबा की तसवीर टंगी है, मगर वह ठहाका जिसे सुनकर मैं डर गया था और पंडित बाबा को पागल समझ लिया था, अब नहीं सुनायी पड़ता ।

उस दिन अपनी नादान समझ के लिए अपनी मां की मुझे डांट सुननी पड़ी थी। अभी उस दिन श्री वसंत पोतदारकी ऊंची तान से डरी मेरी छोटी बहन के लिए परेशान मेरी मां को देखकर पिताजी बडे असमंजस में पड़ गये थे ।

आज सोचता हूं पंडित बाबा को पागल समझकर मैंने क्या भूल की थी जो मां की डांट सुननी पड़ी थी ? अब तो मुझे लगता है कि मेरी वह नादान समझ बहुत सही थी कि अपने पिताजी के पूज्य गुरु को मैंने पागल समझ लिया था। पंडित बाबा विद्या-पागल थे, श्री वसंत पोतदार कला-पागल और श्रीरामकृष्ण देव अध्यात्म-पागल।

सामान्य धरातल से ऊंची जो एक लहर है उसके साथ दौड़ने-खेलने वाला दुनिया की दृष्टि में पागल नहीं तो और क्या है !

—द्वारा डा. कृष्णबिहारी मिश्र, ७-बी, हरिमोहन राय लेन, कलकत्ता-७०००१५

□

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ३५ का शेषांश)

जब फ़सल तैयार हो गयी तो कद्दू जमा करने के लिए मान्कोजी ने गेहूं के बोरे खरीदे, और उनमें कद्दुओं को रखने लगे। मगर बोरे जब खोले गये तो उनमें कद्दुओं के स्थान पर गेहूं ही निकले। अच्छी फ़सल हुई देखकर मान्कोजी की पत्नी ने उनसे वायदा ले लिया कि वह फसल का कोई भाग अपने हाथ से किसी को नहीं देंगे। मान्कोजी ने यह वायदा कर लिया। लेकिन जब कुछ भूखे वारकरी (तीर्थयात्री) वहां आये, तो मान्कोजी से न रहा गया, अपना वायदा भूलकर उन्होंने अपने खेत की काफ़ी फ़सल उन्हें दे दी।

फ़सल में मान्कोजी का एक भागीदार था। जब उसे मान्कोजी के इस दान के बारे में पता चला, तो उसने अदालत में मान्कोजी पर मुकद्दमा दायर कर दिया। न्यायाधीश महोदय खुद यह देखने आये कि खेत की कितनी फ़सल वारकरियों को दी गयी थी। लेकिन, वे यह देखकर चकित रह गये कि फ़सल पूरी थी। वे मान्कोजी से क्षमा मांगकर वापस चले गय।

गांव के पाटिल लोणाजी के पास रासी नाम की एक खरीदी हुई दासी थी, जो मान्कोजी के कीर्त्तन सुन-सुनकर पांडुरंग की भक्त बन गयी थी। उसकी पांडुरंग भक्ति से अप्रसन्न होकर पाटिल ने उसे एक व्यापारी को बेच दिया। लेकिन, रासी का मन विट्ठल में रम गया था। वह व्यापारी के घर जाने को तैयार न हुई। भागी-भागी वह मान्कोजी के घर पहुंची, जहां कीर्त्तन हो रहा था। उसके पीछे-पीछे थे पाटिल और उसके आदमी। रासी की पुकार सुनकर, मान्कोजी ने उसे अपनी अलौकिक शक्तियों के बल पर अदृश्य कर दिया, और वह सीधे वैकुंठ पहुंच गयी अपने आराध्य विट्ठल के पास।

औरंगज़ेब के एक मंत्री की पुत्री सख्त बीमार थी। मान्कोजी ने उसके सर पर हाथ रखकर उसे चंगा कर दिया था।

०००

मान्कोजी के सीधी-सरल भाषा में लिखे गये अभंग उस परम आनंद को अभिव्यक्त करते हैं, जो उन्हें पांडुरंग के नाम का स्मरण कर, या उनके भक्तों के दर्शन से प्राप्त होता था। उन्होंने अपने अभंगों में बार-बार कहा है कि भगवान का नाम-मात्र भक्त को भवसागर से पार ले जाने में सक्षम है। एक अभंग में वे कहते हैं: 'रामकृष्ण हरि इस नाम को अपने हृदय में अंकित कर लो। भगवान अपने भक्तों को प्रचुरता से सच्चे प्रेम का प्रसाद देते रहते हैं।

हे प्रभो! तुम ही हमारी जीवनी-शक्ति हो, तुम ही परमात्मा हो! बोठाले कहता है कि हे प्रभो, अब मुझे प्रभु की लीला का रहस्य समझ में आ गया है। वे स्वयं सृष्टि का सृजन करते हैं, और स्वयं उससे खेलते रहते हैं। यही उनकी लीला है।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनीषा वियाला की हिन्दी कहानी

□

उम्मीद से आगे...

प्रिय,

ज़िंदगी में ऐसा पल भी कभी आयेगा यह मैंने सोचा ही नहीं था। अपने आप से जूझते-जूझते कभी मैं टूट भी जाऊंगी ऐसा मैंने खयाल भी नहीं किया था। उम्मीद थी कि शायद एक दिन तुम खुद ही मेरी इन भावनाओं को समझ जाओगे। इसके अलावा और न जाने कितनी ही और अपेक्षाएं लगा चुकी थी।

इस सबके बावजूद उस दिन जो कुछ भी हुआ उसके लिए मैं शर्मिंदा हूं लेकिन जो कुछ भी हुआ उसके लिए जिम्मेदार नहीं। सच मानो जब तक मुझमें प्रतिरोध की क्षमता थी मैंने अपने आप को बहुत संभाला। यही नहीं अपने आप को किसी हद तक सीमित रखने का प्रयास भी किया। अपने मन में उठ रहे तूफान को कभी अपनी भावनाओं के साथ शब्दों में घोल हल्के-हल्के अहसासों की ओट में तुम पर ज़ाहिर करने का प्रयास किया। न मालूम मेरी वे भावनाएं या यूं कहूं कि अपेक्षाओं को तुम्हारी स्वीकृति मिली या नहीं, मगर सिर्फ इतना जानती हूं कि सफलता मुझ तक कभी नहीं आयी। मेरी हालत ठीक वैसी ही हो गयी थी जैसी कि चातक की वर्षा की पहली एक बूंद के लिए हो जाती है। वस्तु चाहे कितनी ही छोटी हो मगर आवश्यकता और चाहत पर भी तो ग़ौर किया जा सकता है।

खैर मेरी तक़दीर। तुमने उसके बदले मुझे दया, सिर्फ दया इतनी सारी दी कि मैं उसे तुम्हारा प्यार समझ बैठी। तुम्हारा बार-बार मेरे घर आना, मेरे साथ घंटों बैठ दुनिया की बातें कर मेरा मन बहलाना, मेरे लिए अपना इतना कीमती समय बर्बाद करना.... अपने सपनों में खो... मैं समझी थी कि... शायद तुम... हां मैं धोखे में आ गयी थी या यूं कहूं कि जानकर धोखा खाया था उन मेरे और तुम्हारे.... हम दोनों के स्वप्निल जीवन का।

उसके बाद तुम्हारे प्यार व तुम्हारी आत्मीयता को परखने के लिए मैंने अपनी तरफ से कई कोशिशें की थीं। केवल तुमसे प्यार की बातें ही नहीं की थीं वरन् कई बार तुम्हारे साथ रूखा व्यवहार भी किया था। याद है उस दिन जब मैं खाना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खा रही थी और मेरे हाथ से चम्मच गिर गया था। उसे उठाते वक्त कुर्सी पर से मैं ज़रा नीचे खिसक आयी थी, तुमने तुरंत भागकर मुझे संभालने को हाथ बढ़ाया था और मैंने तुम्हारा हाथ झटक दिया था... सोचा था शायद इसके बाद तुम मेरे पास आना बंद कर दोगे। मगर नहीं, तुमने सिलसिला जारी रक्खा। न जाने और कई छोटी-छोटी बातें मैंने जानबूझकर की थीं। परंतु तुम्हारी प्रतिक्रिया ठीक वैसी ही लगी जैसी किसी प्रेमी की होती है।

कुछ ही दिनों बाद मेरे मन ने यह निश्चय कर लिया था कि तुम, केवल तुम ही मेरी इस वीरानी ज़िंदगी को संवार सकते हो। मैं तुम्हारे साथ अपने जीवन के स्वप्न देखने लगी। लेकिन जब भी कभी अपने पैरों की तरफ मेरी निगाह जाती मेरा मन उदास हो जाता। कभी-कभी दिल में यह खयाल भी आ जाता कि तुम यह न सोचो कि मैं अपने आप को तुम पर निर्भर बनाना चाह रही हूं। भगवान गवाह हैं मैंने कभी अपना बोझ तुम पर डालने का प्रयास नहीं किया। लेकिन तुम्हारे द्वारा ही दिया गया यह अहसास कि 'अपने आप को भी दूसरों की तरह इंसान समझो', 'दुनिया की हर खुशी में तुम पूर्ण रूप से साझीदार हो'.... इन बातों को समझकर अपनाने का प्रयास किया या यूं कहूं कि साहस किया था। मैं भी सोचने लगी कि सिवा पैरों को

छोड़कर मुझमें ऐसा क्या नहीं है जो साधारण इंसानों में होता है। फिर मेरी इच्छाओं का क्यों कोई महत्व नहीं है?

मेरी यह इच्छा प्रबल होती गयी। एक साधारण औरत के रूप में मैं अपने आप को देखने लगी थी। कई बार तुम्हें आते देख मैं अपने कपड़ों को ठीक करने लग जाती थी। तुम्हारा सहवास पाकर न जाने मैं किस दुनिया में उड़ती चली जाती थी। तुम्हारी बातों से कभी-कभी मैं शरमा जाती थी तो मुझे ऐसा लगता था मानो मेरा चेहरा लाल हो उठा है। तुम जाने-अनजाने जो कभी मुझे छू भी लेते थे तो ऐसा लगता था मानो दुनिया भर की खुशी आज इसी एक क्षण में सिमट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आयी हैं। दुनिया की हर चीज़ में मुझे तुम ही तुम नज़र आने लग गये थे। ज़िंदगी का मेरा हर क्षण तुम्हारी याद में गुज़रने लगा।

तुम्हारे सहवास से एक समय ऐसा आया की मेरी औरों की तरह साधारण मनुष्य बनने की आंतरिक इच्छा ने अपना प्रबल रूप धारण कर लिया। उसी आंतरिक इच्छा से उत्पन्न उतावलापन तथा भूख मुझ पर इतने हावी हो गये, कि मैं मेरी हैसियत ही भूल गयी और उस शाम .... मैं बिस्तर पर लेटी थी। हल्की-हल्की रोशनी मेरे कमरे में मेरा साथ दे रही थी। दूर से ही तुम्हारे क़दमों की आवाज़ को मैंने पहचान लिया। मैंने एक-दो बार आया को आवाज़ भी लगाई परंतु शायद उस समय वह वहां नहीं थी। तुम धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़े। शायद तुमने यह देख लिया था कि मैं पलंग पर लेटी हुई हूं। तुम सीधे चलकर मेरे पास आये।

जानते हो उस समय मुझ पर क्या गुज़र रही थी। ज़िंदगी में वह पल जिसके लिए मेरा मन तरस रहा था, मेरा दिल तरस रहा था, मेरी आत्मा तरस रही थी अपने सामने पाकर जैसे साकार हो उठा। मैं जो सुबह से तुम्हारे बारे में सोच रही थी यकायक तुम्हें अपने सामने पाकर स्तब्ध-सी रह गयी। समझ में नहीं आ रहा था कि मेरे मन में यह कैसी हलचल चल रही है। एक ऐसा संघर्ष मेरे भीतर चलने लगा था उसे मैं खुद भी समझ नहीं पा रही थी। तुम्हारे एक-एक कदम की आवाज़ मुझे भीतर तक आलोड़ित कर रही थी। समझ नहीं आ रहा था कि मेरे मन में यह कैसी हलचल चल रही है! इसी समय पता नहीं क्यों तुम मुझ पर झुके... शायद यह देखने के लिए कि मैं सो तो नहीं रही हूं... तुमने हल्के से मेरे सर पर हाथ रखा और यह कहकर पलटना चाहा कि 'रुको मैं लाइट जला लूं' न जाने मुझे क्या हो गया कि मैंने तुम्हारा हाथ जबरन पकड़ तुम्हें पलंग पर घसीट लिया... और... और....

उस समय या यूं कहूं कि उस क्षण मैं अपने टूटे पैरों को भूल गयी थी। मैंने यह सच समझ... लिया... मूलतः सच समझ लिया... ईमानदारी से सच समझ लिया.... नहीं शायद मूर्खता से सच समझ लिया था कि मैं भी अच्छी... औरों के जैसी... ठीक लोगों के जैसी ....। और बाद में ..,। मैंने जबरन वह सब कुछ किया जो मुझे नहीं करना चाहिये था। मैं एक ऐसे प्रवाह में बह चली थी कि स्वयं के अस्तित्व को ही भूल गयी थी।

तुम मुझे समझने का प्रयास करो। जो कुछ भी हुआ था वह मेरे पागलपन को लेकर हुआ था। सोचो मैं एक लंबे अरसे से स्वप्न देखती आ रही थी कि मैं एकदम ठीक हो गयी हूं... बिलकुल औरों जैसी... एक साधारण स्त्री की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरह:...उस स्वप्नों के संसार के तुम एक ऐसे रंग थे जिसे मैं बार-बार केवल देखना ही नहीं पाना भी चाह रही थी। एक ऐसा स्वप्नों का संसार मेरे मन-मस्तिष्क पर छा गया था जिसमें केवल तुम... तुम... और तुम ही थे। तुम्हारे साथ मेरे अपने स्वप्नों की दुनिया में मैंने तुम्हें पा लिया था। और तुम भी मेरे इतने करीब आ गये थे....। इन खयालों में खो मैं यकायक एक वैसा ही पल पाकर यह एकदम ही भूल गयी थी कि मेरे पैर... मैं अपाहिज हूं। उस समय मुझे केवल तुम और तुम ही नज़र आये।

क्या यह संभव नहीं कि इतने लंबे समय से दिन और रात केवल एक ही स्वप्न देखने वाला व्यक्ति अपने आप को अचानक ही दिवा-स्वप्न में खो बैठे। मुझ पर विश्वास करो, मेरे प्रिय, कि यह केवल एक पागलपन मात्र था जो मेरी विकृतियों के साथ उभर आया। आज तक तुम्हारे किसी हाव-भाव ने मुझे यह सोचने पर मजबूर नहीं किया कि तुम्हें मुझसे लगाव नहीं है। तुम्हारा वह हर पल मुझे बातों में लगाये रखना, मुझे कभी-कभी अपनी बांहों का सहारा देना, मुझ जैसी दुनिया की व्यर्थ व बेकार चीज़ को ज़िंदगी के अहसास से परिचित कराना:.. क्या केवल दया भर ही था! मेरे लिए तो वह ज़िंदगी का एक अमूल्य समय बन गया था जिसे मैंने अपनी मूर्खता व नादानी से गंवा दिया। तुम्हारे उस असीम दया भाव को मैंने प्यार समझ लिया।

वैसे मैं इस बात को जानती हूं कि लोग मेरे पास क्यों आते हैं। इसलिए नहीं कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं बल्कि इसलिए कि मैं केवल एक कुर्सी से बंधी हुई हूं। चल नहीं सकती न, और वे लंबे-लंबे कदमों से चल यहां यह जतलाने आ जाते हैं कि मैं एक बीमार-अपाहिज-लाचार प्राणी हूं। केवल दया से भरकर लोग यहां आते हैं। अपने आप को एक 'अच्छा इंसान' साबित करने के लिए। 'अच्छा इंसान' जो कि एक बाजारू फालतू कुत्ते तथा खुजली ग्रस्त बिल्ली तक पर भी दया की दृष्टि डाल देता है तो फिर मुझ जैसी अपाहिज पर क्यों नहीं?

इस बाईस वर्ष की ज़िंदगी में दया के अलावा मुझे और मिला ही क्या है! परंतु तुम्हारा परिचय और तुम्हारी दया को समझने में मैंने गल्ती कर दी। इतनी लंबी ज़िंदगी में हर पल दया को इतना देख चुकने के बाद भी मैंने धोखा कैसे खा लिया यह आज भी मैं समझ नहीं पा रही हूं। लेकिन अब भी एक बात कहे बिना रहा नहीं जा रहा है वह यह कि जो कुछ भी उस शाम घटित हुआ था वह मेरे धैर्य, मेरी आत्मशक्ति तथा संकल्प को तोड़कर हुआ तथा मेरे न चाहने पर भी हुआ। यकीन जानो, मुझे खुद आश्चर्य हुआ था अपनी इस हरकत पर। अपने आप को इतना संयमित करने के बाद भी ऐसा

(शेषांश पृष्ठ १२९ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामावतार चेतन की कविता

आशीर्वाद के लिए

□

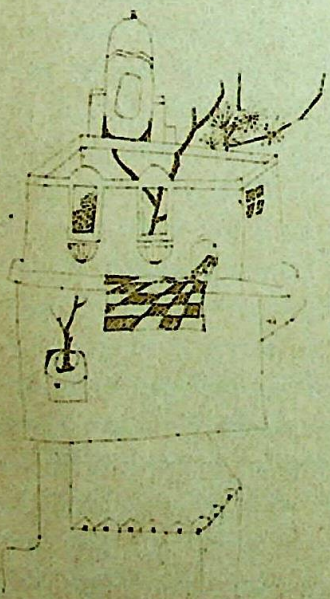

चित्र : चरन शर्मा

कितना उठाता है मन को
आशीर्वाद के लिए उठा हुआ हाथ !
कितना नियराता है मंज़िल को
आशीर्वाद के लिए फूटा हुआ शब्द !

वह
जिसके सामने
ललकारता हुआ लंबा पथ है,
वह
जिसके पास
कुछ कर गुज़रने के लिए
उफनता हुआ मन है,
वह
जिसके सामने है
दृष्टि का विस्तार,
आशीर्वाद ही है उसका बल,
उसका संस्कार !

आशीर्वाद
शब्द नहीं,
एक चेतना है,
जो अंतर की कली को खिला देती है,
सुलगती मशाल को जला देती है,
भटकते कदमों को कसती है,
हर घड़ी आत्मा के साथ बसती है !

आशीर्वाद एक ज्योति है,
जो खान मज़दूर के माथे से फूटती है।
आशीर्वाद एक सुगंध है,
जो कस्तूरी मृग के आसपास घूमती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आशीर्वाद एक मादक संगीत है,
जो कानों से होकर
नस नस में बहता है!
आशीर्वाद एक मीठा दर्द है,
जिसे इंसान मुस्कराता हुआ सहता है।

आशीर्वाद
सही ज़िंदगी जीने का विधान है।
आशीर्वाद
अपनी लघुता में भी महान है।

पूनो, अमावस,
त्योहार है कि तीज है,

आशीर्वाद
देने की नहीं,
लेने की चीज़ है।

आशीर्वाद
देने को कोई न हो
तो भी यह
लेने से मिलता है।
सुबह, शाम,
रात या दोपहर तो बहाना है,
सुमन अपने भीतर के
सौरभ से खिलता है।

—८१ सुनीता, १४ वां माला, कफ परेड, बंबई—४००००५

□

(पृष्ठ १२७ का शेषांश)

कौन-सा वहाव था जिसने मुझे यह सब करने पर मजबूर कर दिया...कुछ कह नहीं सकती। कितना घृणित कार्य कर बैठी थी मैं!

सच ही तो है अपने आप को दबावपूर्वक तुम पर थोपना कितना पागलपन था, इसे मैं बाद में समझ पायी थी। मुझ जैसी एक अपाहिज, दुर्बल, विकलांग लड़की को प्यार करने का हक ही कहां बनता है? ईश्वर ने मुझे भेजा केवल लोगों की दया पर पलने के लिए है, इसमें तुम लोगों का क्या दोष! मुझ जैसी घृणा और नफरत की पात्र लड़की को अधिकार ही क्या है जो किसी से प्यार करे और प्यार मांगे? मुझे तो एक अंधेरे कोने में सड़कर मर जाना चाहिये ताकि दूसरे लोग मेरे बोझ को अनुभव न कर सकें।

अपनी इस अपाहिज, अकेली, दमघोटू ज़िंदगी से कई बार विचलित हो मर जाने के खयाल ने भी मुझ पर हावी होने का प्रयत्न किया है। मेरे हाथ की कलाई पर के निशान के बारे में तुमने मुझसे पूछा था न उस दिन। आज तुम्हें उसका जवाब दे रही हूं। एक बार पहले भी ज़िंदगी से परेशान हो मैंने आत्महत्या का प्रयास किया था। अपने आप को लोगों पर बोझ बनने देना नहीं चाहती थी। परंतु अपनी भोथरी कैंची से अपने हाथ की यह नस काटने में मैं असफल रही। पापा को जल्दी ही पता चल गया और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने अपने प्रयत्नों द्वारा मुझे फिर इस दुनिया में रेंगने के लिए छोड़ दिया। यह उनका मेरे प्रति असीम प्यार ही था परंतु उस असीम प्यार का मैं क्या करूं जो मुझे मेरी विचलित ज़िंदगी में बार-बार ला पटकता है।

डाक्टर अंकल तथा पिताजी ने मिलकर मेरे लिए जितना कुछ भी प्रयत्न किया और जितना कुछ भी प्रयत्न कर रहे हैं उसके लिए मैं उनकी हमेशा ऋणी रहूंगी। लेकिन अब की बार जब भी आत्महत्या का प्रयास करूंगी तो मेरा प्रयास असफल न होगा। मेरे लिए बनाई गयी यह छत जो खुबसूरत नज़ारों, स्वच्छ हवा तथा समय काटने के लिए बनायी गयी है, जानते हो कितनी ऊंचाई पर है? पांचवीं मंजिल पर और यह ऊंचाई कम नहीं होती—पांचवीं मंजिल की ऊंचाई तथा नीचे पथरीली ज़मीन—केवल यही नहीं भगवान का शुक्र है कि अब तक मुझमें ताकत भी बाकी है कि अपने शरीर को उठाकर यहां से फेंक दूं। यह मत समझो कि मैं तुम्हें डरा रही हूं या तुम्हें यह जतलाकर फिर से दया की भीख मांग रही हूं। नहीं ...ज़िंदगी के जिस मोड़ पर आज मैं खड़ी हूं उस मोड़ पर आकर कोई कभी भी ऐसी बात सोच सकता है।

मैंने कभी यह नहीं चाहा कि मैं केवल दिखाने की दोस्ती को लेकर ज़िंदा रहूं। किसी को मेरी अपाहिज ज़िंदगी के लिए कुर्बान या परेशान होते देखना मुझे बिलकुल नागवार है। अच्छा हुआ जो मां मुझे उस छोटी-सी उम्र में ही छोड़कर चली गयी जब मुझे इस अहसास ने पूर्णरूप से नहीं तोड़ा था कि मैं एक अपाहिज हूं। आज रात नींद में से कई बार चौंक उठ जाती हूं, दिल चाहता है कि ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर रोऊं और अपने आप को न रोक पाने पर वैसा करती भी हूं। इस समय पापा तथा आया की परेशानी का मैं अंदाज़ा लगा सकती हूं परंतु मैं क्या करूं, आखिर जब दम घुटता है तो सह भी तो नहीं पाती हूं!

उस शाम जो कुछ भी हुआ वह भी शायद इसी स्थिति में आकर हुआ था। सच है आज तक जैसी दया तुमने मुझ पर दिखायी वैसी दया किसी और ने नहीं दिखायी और ये भी क्यों भूल रहे हो कि मैं एक लाचार और अपाहिज हूं। अपनी कुर्सी से बंधी हुई, अपने आप एक कदम चलने में भी असमर्थ एक कैदी की तरह जिसे अपनी मर्यादाओं में रहकर जीना पड़ता है।

एक विवश, लाचार जिसे अपनी इच्छा से कुछ भी मिलता नहीं, हर चीज़ के लिए इंतज़ार करना पड़ता है—जैसे कि मैं हमेशा तुम्हारा किया करती थी। वाकई हर बार मैं इस बात का इंतज़ार करती रहती थी कि कब तुम्हारे पास समय होगा और कब तुम मेरे पास आओगे। तुम जब तक मुझे अपने आप को देखने की इजाज़त नहीं देते, सुनने की इजाज़त नहीं देते मैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुछ नहीं कर पाती थी। तुम्हारे सहवास के समय मैं इस बात को महसूस करने लग जाती थी कि हम सभी एक ही हवा में सांस ले रहे हैं। कितना अपनत्व झलकता था तुम्हारी बातों में।

मैं तुमसे एक बात की गुज़ारिश करती हूं। जो कुछ भी लिख रही हूं उसे पढ़ो और अपने आप को उस स्थिति में रखकर देखने का प्रयास करो—शायद कहीं से मेरे निर्दोष होने का प्रमाण निकल आये। मैं एक छोटी-सी कुर्सी पर पड़ी-पड़ी घंटों तुम्हारा इंतज़ार करती रहती हूं कि कब तुम आओगे... एक लंबा समय इंतज़ार का और इंतज़ार भी तब तक जब तक कि अंततः बोझ असहनीय-सा न हो जाये। ऐसे में तुम्हारे कदमों की आहट से मैं बेचैन हो जाती हूं और जब तुम मेरे कमरे में आते हो और मैं दूसरी सामान्य औरतों की तरह कूदकर, तुम्हारे पास भागकर आ या लिपटकर, या यहां, वहां जल्दी-जल्दी चलकर अपने भावों को व्यक्त भी नहीं कर सकती। मुझे बैठ-कर अपने आपको संयमित व नियंत्रित रख यह सब सहना पड़ता है। अपनी ज़बान, निगाह यहां तक कि हाव-भाव पर भी नियंत्रण रखना पड़ता है, ताकि तुम यह न समझो की मैं तुमसे प्यार करने का साहस कर रही हूं। लेकिन क्या करूं हर चीज़ पर पानी फिर गया—आखिर कोई कोयला इतना सख्त तो नहीं हो सकता कि सुलगकर राख न हो सके।

मैं तुमसे इस बात की अपेक्षा नहीं रखती कि तुम मेरी इस भावना को अपनी भावना में मिलाने की स्वीकृति दे दो। उस परमात्मा की कसम जो मुझे पाल रहा है—मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा कि मैं तुम्हें जितना चाहती हूं उतना तुम भी मुझे चाहो। परंतु केवल एक ही चीज़ चाहती हूं वह यह कि तुम पहले की तरह सहज बनकर मैंने जो दोस्ती के लिए हाथ फैला रखा है उसे थाम लो। सच कहती हूं, प्रिय, मैं दुनिया में बहुत अकेली हूं। यहां तक कि भगवान भी नहीं चाहता कि मैं उसके पास जाकर रहूं। क्या तुम अपने इस लंबे से जीवन के कुछ पल इस अभागिन को नहीं दे सकते?

आज मैं एक अथाह सागर पर खाली टीन के डिब्बे की तरह फेंक दी गयी हूं जो लहरों की मर्ज़ी से ही हिलता-डुलता है। कब, कहां, किस किनारे जाकर लगेगा यह उसे खुद ही पता नहीं होता। आज तक इस दया भाव की ज़िंदगी जीते-जीते मेरे स्नायु तंत्र इतने जर्जर हो गये हैं कि ज़रा-सी बात भी बर्दाश्त न कर झनझना उठते हैं। ऐसे में मेरा झल्ला उठना अस्वाभाविक नहीं होता—परंतु इस समय मैं शांत हूं और तुम्हें यह छूट देती हूं कि तुम आज भी उतने ही मुक्त हो जितना पहले थे—अपनी मर्ज़ी से यहां आने के लिए—लेकिन एक बात ध्यान रखना—एक तुम्हीं हो जिसने मेरी जड़ित आत्मा को जगाया है और

(शेषांश पृष्ठ १४३ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ ९१ का शेषांश)

वह जीवन की उन गहराइयों को खोले जो कोई मनुष्य नहीं खोल सकता, उनको लोकप्रियता फौरन नहीं मिल सकती। प्रकृति जीवन के जिस रूप को खोलेगी वह एलीट और फूहड़ दोनों को शाक देगा। उससे उनकी कलई खुलेगी। दोनों के बीच 'पैथॉस आफ डिस्टेंस' खत्म हो जायगा। ये दोनों को मंजूर नहीं होगा। प्रकृति का सत्य एक के विशिष्ट अनुभव को खोखला और दूसरे की 'वलगर' मान्यताओं को जीवन-विरोधी, अपराधी दर्शाते हुए बेनक़ाब कर देगा। इसीलिये ये दोनों वर्ग उसे छुपाने में, ज़िंदा को दफनाने में लगे रहेंगे। उसका ज़िक्र नहीं करेंगे क्योंकि वह ज़िक्र इन्हें अपनी मौत लगेगा।

वीरेन्द्र कुमार जैन और निर्मल कुमार को इसलिए गुमनामी, घुटन और साहित्य के नाम पर बिकने वाली कूड़े की दुर्गंध के नीचे दबकर जीना पड़ा है, गुटबाज़ साहित्यकारों से हार जाना पड़ा है। उनकी यह हार ही उनकी जीत बन गयी है, उस सूरज की तरह जो तेज़ी से खुद ही अपने को अस्त कर देता है। वीरेन्द्र कुमार जैन और निर्मल कुमार निर्विरोध इस गुमनामी की कब्र में उतर गये क्योंकि इस तरह जो खुद ही मृत्यु का वरण कर लेते हैं उनका पुनर्जन्म साहित्य की दुनिया में शाश्वतों की पंक्ति में होता है।

विशुद्ध भारतीय उपन्यास किसे कहेंगे? वह उपन्यास जो भारतीय जाति की स्मृतियों, अनुभवों, पीड़ाओं, गीतों और आकांक्षाओं, वासनाओं को अभिव्यक्त करे। यह सब सामान हज़ारों वर्षों में इकट्ठा हुआ है। इसे कोई भी मेधा नहीं पकड़ सकती, कोई टेकनीक नाम-रूप नहीं दे सकती। इसके लिए लेखक के स्नायुओं को अपने एलीट व्यक्तित्व, अपनी विकसित बुद्धि, ज्ञान का मोह छोड़ गुमनामी घुटन, बदबू, पराजय में लीन हो जाना होगा। 'तब वह सुगंधित फूल धड़कता है जिसमें पांच हज़ार वर्ष का राज़ सुरक्षित है' जैसे जुंग ने सिरानो से कहा था। तब प्रकृति स्वयं उपन्यास को दृश्य-दर-दृश्य दिखाती चलती है और मंत्र-कीलित-सी लेखक की मेधा सिर्फ लिखती, चुपचाप लिखती है, लिखती जाती है।

'अनुत्तर योगी' और 'बिन उद्गम के स्रोत' के अलावा कोई विशुद्ध भारतीय उपन्यास मेरी नज़र में नहीं है। 'अनुत्तर योगी' का लेखक सब जगह गणपति का रोल अदा नहीं करता और उन स्थलों पर उसका एलीट, सुरुचिपूर्ण गद्य और वर्णन साफ अलग नज़र आते हैं। मगर लिखते-लिखते जब प्रकृति आ जाती है और वीरेन्द्र एक बच्चे की तरह चुप हो सिर्फ देखता है और उसकी मेधा गणपति बन सिर्फ लिखती है तो भारतीय जाति की मनीषा में बसी इन अपूर्व गंधों, यादों, विश्वासों, संघर्षों को प्रकट कर देती है जो अन्यत्र नहीं है। 'अनुत्तर योगी' एक दस्ता-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेज़ बन गया है भारतीय जीवन का। क्या इसका धर्म है ? क्या इसकी प्रेरणाएं हैं ? क्यों यह क्या से क्या हो गयी ? कौन-से अंधेरे इस पर चढ़े ? कौन-सी कुंठाओं से यह गुज़री है, विश्वास किस गहराई से जन्म लेते हैं ? ये राज़ धीरे-धीरे विना किसी चेष्टा के खुलते जाते हैं। ग्लेशियर गिरते हैं, सितारे टूटते हैं, भूकंप आते हैं और सबका सब बिना शोरशराबे के, क्योंकि प्रकृति के लिए ये अजूबे नहीं हैं। यह जीवंत, प्राणवंत कथा विशुद्ध भारतीय उपन्यास नहीं है निर्मल वर्मा की नज़र में तो शायद इसलिये कि उनका नज़रिया वह है जो 'वे दिन' और 'लाल टीन की छत' में व्यक्त है।

इसको मैं विवाद नहीं बनाना चाहती। ये फैसले वक्त आप कर रहा है। इस लेख को लिखने का मेरा उद्देश्य सिर्फ इतना ही है कि प्रकृति पत्रविहीन टहनियों पर फूल भेजने जैसा महान् कार्य करती है तो शोर नहीं होता, किसी को पता नहीं होता। ऐसे ही हिंदी की टहनियों पर दो फूल बड़े यत्न से खिले हैं। बदस्तूर कोई शोर नहीं है। लेकिन वह ग़ाफ़िल, सोयी क़ौम कहलाती है जो इस शोर की कमी को तालियां बजाकर, खुशी ज़ाहिर करके पूरा नहीं करती। एक ज़बर्दस्त अवसर आया है हिंदी उपन्यास के जीवन में जब उसके दरवाज़े खुल गये हैं। ऐसे दो लेखक आये हैं जो सारी योग्यता रखते हुए भी सिर्फ़ कातिब हैं। उनकी इस अदा ने प्रकृति को स्वयं कथा कहने पर मजबूर कर दिया है। यह क्षण कितना क़ीमती है यह वे जान सकेंगे जो यह समझ लें कि व्यास के बाद 'बिन उद्गम के स्रोत' में पहली बार यह विलक्षण घटना घटी है और दूसरी बार 'अनुत्तर योगी' में।

□

गीत

सांझ ढले आ जाना
चांद की तरह !
आखिरी किरन समेट जब दिवस ढले,
ओझल हो पंथ, नयन-दृष्टि को छले,
तुम उखड़ी सांसों में, प्यार के प्रयासों में—
बंधना विश्वासों के
बांध की तरह !

कामना, अकेले एकांत में खड़े,
दीप हो अंजोरती करुण नयन भरे,
वन प्रश्नों का उत्तर, कर जाना मौन मुखर—
वसिया की रसवंती
तान की तरह !

अकुलाये आंचल में श्रद्धा के फूल,
गीतों की झोली में भर जाये धूल,
भावाकुल से आना, दुरित-दाप हर जाना—
घोषणा-विहीन
गुप्तदान की तरह।

□ बद्रीप्रसाद गुप्त 'आर्य'
—पैगंबरपुर, बिन्दकी, फतेहपुर, उ. प्र.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपचार : आंख के तिरछेपन का

डॉ. आर. के. कपूर

चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में हुई क्रांतिकारी खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि शल्यक्रिया की सहायता से कभी भी आंख का तिरछापन दूर किया जा सकता है। परंतु बच्चे की तिरछी आंख सीधी करने के लिए यह जरूरी है कि इलाज अविलंब शुरू किया जाये। अन्यथा आगे चलकर काफी बड़ी कीमत चुकानी पड़ सकती है। आंख जन्मभर के लिए टेढ़ी ही रह जायेगी और फूट भी सकती है। समय पर और सावधानीपूर्वक की गयी शल्यक्रिया से आंख न सिर्फ सीधी हो जायेगी, उसमें पुनः दृष्टि भी आ जायेगी और बच्चा सामान्य आंखों वाला बन जायेगा।

रोजमर्रा के जीवन में अक्सर ऐसा चेहरा दिख जाता है जिसमें एक आंख टेढ़ी हो। वह चेहरा किसी का भी हो सकता है। किसी विशेष जाति, धर्म अथवा लिंग से उसका कोई संबंध नहीं। वह हमारे किसी प्रियजन का चेहरा हो सकता है। ऐसे चेहरे को देखकर सहज ही सहानुभूति जाग उठती है। आंख के तिरछेपन से पीड़ित अभागा व्यक्ति किसी से आंखें मिलाने का साहस नहीं करता, विशेषकर जब कि वह नौजवान हो। क्योंकि उसमें हीन-भावना पैदा हो जाती है। इस भावना के कारण वह अपने को हेय और अपंग समझने लगता है। शादी, सामाजिक उत्सव, नौकरी-धंधे, यहां तक कि प्रेम की जटिल दुनिया में वह अपने को हताश महसूस करता है।

निश्चित इलाज

शुरू में ही यह जानना समीचीन होगा कि आंख का तिरछापन मुख्यतः बचपन की बीमारी है। बड़ी उम्र के लोगों में दिखाई देने वाला यह रोग मूलतः बचपन में ध्यान न देने से छिपा रहता है। हां, यह ज्ञान महत्वपूर्ण है कि अस्सी प्रतिशत ऐसे लोगों का इलाज सफलतापूर्वक किया जा सकता है। परंतु दस एवं बारह वर्ष के बीच की वय में हुई टेढ़ी आंखों के लिए बहुधा कोई उपचार नहीं, अथवा नाममात्र के लिए ही कुछ हो सकता है। इसलिए इस लेख में पहले अल्प वय में तिरछी आंख के इलाज पर चर्चा करनी जरूरी है।

आज के बदले हुए सामाजिक मूल्यों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में जहां चेहरे का महत्व बढ़ा है वहीं टेढ़ी आंख अभिशाप बन गयी है। यदि बच्चा तिरछी आंख वाला पैदा हो अथवा जन्म के कुछ समय बाद उसकी आंख टेढ़ी हो जाये तो मां-बाप बड़े दुःखी हो जाते हैं। उन्हें लगता है कि भगवान ने उनके बालक को टेढ़ी आंख देकर उससे सौंदर्य छीन लिया है। गांवों में इसे प्रभु का श्राप मानकर स्वीकार किया जाता है। आंख संबंधी कोई दूसरा ऐसा रोग नहीं जिसके बारे में लोगों के बीच इतनी गलत धारणाएं एवं अंधविश्वास हों। ऐसे भी लोग हैं जिन्हें आज तक भी यह मालूम नहीं है कि इसका वैज्ञानिक पद्धति से इलाज संभव है। इसलिए वे या तो इसका इलाज प्रकृति पर छोड़ देते हैं और उसके लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं, अथवा किसी नीम-हकीम के चंगुल में फंसकर बच्चे की आंख बरबाद कर देते हैं। प्रस्तुत लेख अपने लक्ष्य में सफल होगा यदि इसे पढ़ने के बाद आम आदमी यह महसूस करने लगे कि आंख के तिरछेपन का इलाज संभव है। परन्तु बीमारी की जानकारी होते ही जितना शीघ्र इलाज शुरू होगा, उतनी अधिक सफलता मिलेगी। भले ही अंधविश्वास, भय तथा मूढ़ता के लिए शिक्षा तथा जागृति को छोड़कर दूसरा इलाज न हो, टेढ़ी आंखों के लिए निश्चित ही उपचार है।

जब मां-बाप प्रकृति के भरोसे अपने बालक को छोड़ देते हैं तो उसे अपने हमउम्रों की हंसी और करुणा का शिकार होना पड़ता है। इससे उसे बड़ा आघात पहुंचता है। उसमें हीन-भावना पनपने लगती है जो उम्र के साथ बढ़ती चली जाती है। वह दूसरे बच्चों के साथ स्पर्धा में नहीं उतर पाता, पढ़ाई में कमज़ोर रह जाता है। वह आत्म-विश्वास भी खो बैठता है।

आंख के तिरछेपन से पीड़ित बच्चे को संरक्षकों की पूर्ण सहानुभूति व समझदारीपूर्ण व्यवहार की आवश्यकता होती है। साथ ही, नेत्र-तज्ञ सर्जन की ओर से सावधानी पूर्वक नियोजित उपचार की भी। डॉक्टर का यही सबसे बड़ा संतोष है कि रोगी अपनी आंख सीधी हो जाने पर कृतज्ञता पूर्ण नज़रों से विदा ले। यह खुशी की बात है कि पिछले दो दशकों में नेत्रोपचार के इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ है और अनगिनत रोगियों का सफलता-पूर्वक इलाज किया जा चुका है।

तिरछी आंख पीड़ित रोगियों और उनके मां-बापों का सहयोग विशेष महत्व रखता है। इसके लिए नीचे लिखी बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं :

बाल-स्वभाव : दो-तीन महीने की उम्र तक सभी बच्चे स्वभावतः थोड़ा टेढ़ा देखते हैं। इसमें घबराने की आवश्यकता नहीं। हां, अधिक टेढ़ी आंखों वाले बालक को तुरंत नेत्र-चिकित्सक को दिखाना चाहिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आंख के तिरछेपन के पूर्व लक्षण : तीन मास से अधिक उम्र वाले बच्चे की आंख में किसी भी किस्म का तिरछापन दिखाई देने पर नेत्र रोग-तज्ञ की अविलंब सलाह लेनी ज़रूरी है। रोग शुरू होने से पूर्व बच्चा तेज़ बुखार, टाइफाइड अथवा अपस्मारी के दौरों आदि का शिकार हो सकता है।

आंख के तिरछेपन का भ्रम : बच्चों की आंख में झूठमूठ का तिरछापन दिखाई देना असाधारण घटना नहीं। बच्चे के दायें-बायें देखते समय उसकी आंखें टेढ़ी दीख सकती हैं और उससे मां-बाप चिंतित होकर दवाखाने की शरण ले सकते हैं। जांच करने पर इस प्रकार की गलतफ़हमी स्पष्ट हो जाती है। चपटी नाक और फैलाव-युक्त आंखों में टेढ़ेपन का आभास हो सकता है। नाक की डंडी के उठने के साथ ही वह गायब हो जाता है। नेत्र-चिकित्सक का यह विश्वास दिलाना कि आंख टेढ़ी नहीं है, बहुत बड़ी राहत देता है। उम्र के बढ़ने के साथ ही टेढ़ी आंख का आभास भी विनष्ट हो जाता है। फिर भी; नेत्र-चिकित्सक के पास जाकर शक दूर करवा लेना ज़रूरी है।

उपचार की विधि

आंख के तिरछेपन के दवाखाने में बच्चे के साथ मित्रता स्थापित करने की भरसक कोशिश की जाती है। टेढ़ी आंख के परीक्षण की कोई जटिल विधि नहीं। मात्र दो माह के बच्चे को भी आसानी से टार्च के प्रकाश की सहायता से जांचा जा सकता है। चाबियों की छनछनाहट, खिलौनों की मधुर आवाज़ अथवा आकर्षक तसवीरें इस काम में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। तदनंतर आंख की पुतली में विशेष किस्म की औषधि डालकर अंधकार-युक्त कमरे में आंख के पृष्ठ भाग की परीक्षा की जाती है। इस परीक्षण के दौरान यदि बच्चा सहयोग न दे तो उसे नींद का इंजेक्शन देकर सुला दिया जाता है। यही आखिरी परीक्षा है। प्रत्येक बीमार अपने आप में अनोखा होता है, इसलिए नेत्र-सर्जन उसके अनुरूप इलाज की आयोजना करता है।

चश्मों की व्यवस्था : मां-बाप को इस सत्य की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि अक्सर तिरछी आंख वाले बालक की एक अथवा दोनों आंखें कमज़ोर होती हैं। चश्मों की सहायता से दृष्टि बढ़ाई जा सकती है। बहुत से मां-बाप को शायद यह अजीब-सा लगे कि उनका दो वर्ष का बच्चा कैसे चश्मा पहन सकता है। परंतु यह जानकर आश्चर्य होगा कि ज्यों ही बच्चे को लगे कि वह चश्मे की सहायता से अच्छा देख सकता है, वह खुशी-खुशी उसे पहनने लगता है। चश्मा लगाने से आंखों की ज्योति बढ़ने लगती है और चश्मा लगाये रहने से बढ़ती चली जाती है। यह आनंद की बात है कि अल्प तिरछेपन के शिकार करीब ५ से ७ प्रतिशत बच्चे चश्मा पहनने मात्र से ठीक हो जाते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

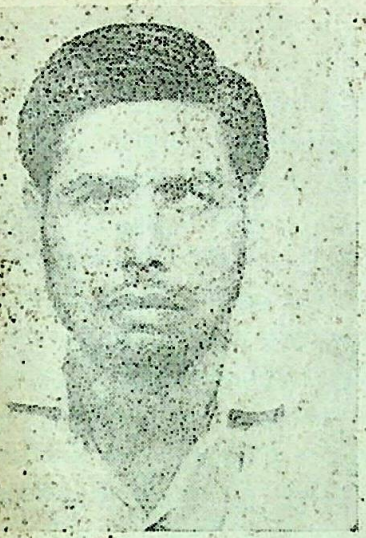

शल्य-चिकित्सा से पूर्व

शल्य-चिकित्सा के पश्चात्

हैं। चश्मों का फ्रेम गोल होना चाहिये ताकि बच्चा ऊपर की ओर न देख सके। करीब २५ प्रतिशत बच्चों को, खासकर जो जन्मजात तिरछी आंख वाले हों, चश्मे के उपयोग से कोई फायदा नहीं होता।

नेत्र-व्यायाम : पांच-छह वर्ष के बच्चे, जो नेत्र-सर्जन के आदेशों का पालन करने में समर्थ हों, उनके लिए विशेष किस्म के यंत्र (सिनेप्टोमेजर) पर व्यायाम की व्यवस्था की जाती है। यहां बच्चे को दोनों आंखों से एक निर्दिष्ट वस्तु पर एक साथ देखने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। बच्चे की रुचि बनाये रखने एवं उसे प्रसन्न रखने के लिए मोहक चित्र एवं आकर्षक खेलों का भी उपयोग किया जा सकता है। परंतु बच्चे के सहयोग के बिना आंखों का व्यायाम संभव नहीं। इसलिए बहुत कम उम्र के बच्चों के लिए वे निरुपयोगी हैं।

दबावपूर्वक प्रयोग : अच्छी आंख बंद करके टेढ़ी आंख से सीधे देखने को कहा जाता है। इस तरह टेढ़ी आंख को आलस एवं अंधकार से बाहर आकर देखने के लिए उत्तेजित किया जाता है। ज्योंही आंख सामने की वस्तु को देखने लगती है, स्वयं ही अपने को सीधी करने लगती है। यदि १५ दिनों की अवधि में नेत्र-ज्योति में फर्क पड़ने लगे, तभी इस इलाज को आगे जारी रखा जाता है, अन्यथा बंद कर दिया जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आंख के तिरछेपन के पूर्व लक्षण : तीन मास से अधिक उम्र वाले बच्चे की आंख में किसी भी किस्म का तिरछापन दिखाई देने पर नेत्र रोग-तज्ञ की अविलंब सलाह लेनी ज़रूरी है। रोग शुरू होने से पूर्व बच्चा तेज़ बुखार, टाइफाइड अथवा अपस्मारी के दौरों आदि का शिकार हो सकता है।

आंख के तिरछेपन का भ्रम : बच्चों की आंख में झूठमूठ का तिरछापन दिखाई देना असाधारण घटना नहीं। बच्चे के दायें-बायें देखते समय उसकी आंखें टेढ़ी दीख सकती हैं और उससे मां-बाप चिंतित होकर दवाखाने की शरण ले सकते हैं। जांच करने पर इस प्रकार की गलतफ़हमी स्पष्ट हो जाती है। चपटी नाक और फैलाव-युक्त आंखों में टेढ़ेपन का आभास हो सकता है। नाक की डंडी के उठने के साथ ही वह गायब हो जाता है। नेत्र-चिकित्सक का यह विश्वास दिलाना कि आंख टेढ़ी नहीं है, बहुत बड़ी राहत देता है। उम्र के बढ़ने के साथ ही टेढ़ी आंख का आभास भी विनष्ट हो जाता है। फिर भी; नेत्र-चिकित्सक के पास जाकर शक दूर करवा लेना ज़रूरी है।

उपचार की विधि

आंख के तिरछेपन के दवाखाने में बच्चे के साथ मित्रता स्थापित करने की भरसक कोशिश की जाती है। टेढ़ी आंख के परीक्षण की कोई जटिल विधि नहीं। मात्र दो माह के बच्चे को भी आसानी से टार्च के प्रकाश की सहायता से जांचा जा सकता है। चाबियों की छनछनाहट, खिलौनों की मधुर आवाज़ अथवा आकर्षक तसवीरें इस काम में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। तदनंतर आंख की पुतली में विशेष किस्म की औषधि डालकर अंधकार-युक्त कमरे में आंख के पृष्ठ भाग की परीक्षा की जाती है। इस परीक्षण के दौरान यदि बच्चा सहयोग न दे तो उसे नींद का इंजेक्शन देकर सुला दिया जाता है। यही आखिरी परीक्षा है। प्रत्येक बीमार अपने आप में अनोखा होता है, इसलिए नेत्र-सर्जन उसके अनुरूप इलाज की आयोजना करता है।

चश्मों की व्यवस्था : मां-बाप को इस सत्य की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि अक्सर तिरछी आंख वाले बालक की एक अथवा दोनों आंखें कमज़ोर होती हैं। चश्मों की सहायता से दृष्टि बढ़ाई जा सकती है। बहुत से मां-बाप को शायद यह अजीब-सा लगे कि उनका दो वर्ष का बच्चा कैसे चश्मा पहन सकता है। परंतु यह जानकर आश्चर्य होगा कि ज्यों ही बच्चे को लगे कि वह चश्मे की सहायता से अच्छा देख सकता है, वह खुशी-खुशी उसे पहनने लगता है। चश्मा लगाने से आंखों की ज्योति बढ़ने लगती है और चश्मा लगाये रहने से बढ़ती चली जाती है। यह आनंद की बात है कि अल्प तिरछेपन के शिकार करीब ५ से ७ प्रतिशत बच्चे चश्मा पहनने मात्र से ठीक हो जाते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

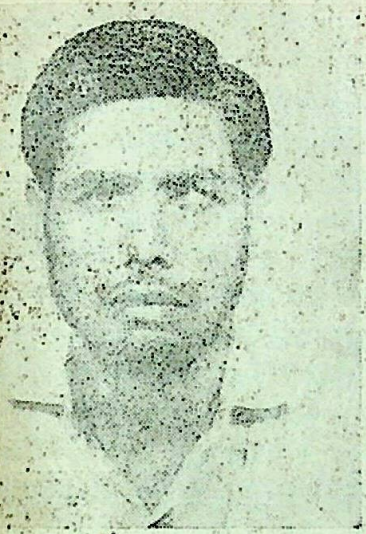

शल्य-चिकित्सा से पूर्व

शल्य-चिकित्सा के पश्चात्

हैं। चश्मों का फ्रेम गोल होना चाहिये ताकि बच्चा ऊपर की ओर न देख सके। करीब २५ प्रतिशत बच्चों को, खासकर जो जन्मजात तिरछी आंख वाले हों, चश्मे के उपयोग से कोई फायदा नहीं होता।

नेत्र-व्यायाम : पांच-छह वर्ष के बच्चे, जो नेत्र-सर्जन के आदेशों का पालन करने में समर्थ हों, उनके लिए विशेष किस्म के यंत्र (सिनेप्टोमेजर) पर व्यायाम की व्यवस्था की जाती है। यहां बच्चे को दोनों आंखों से एक निर्दिष्ट वस्तु पर एक साथ देखने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। बच्चे की रुचि बनाये रखने एवं उसे प्रसन्न रखने के लिए मोहक चित्र एवं आकर्षक खेलों का भी उपयोग किया जा सकता है। परंतु बच्चे के सहयोग के बिना आंखों का व्यायाम संभव नहीं। इसलिए बहुत कम उम्र के बच्चों के लिए वे निरुपयोगी हैं।

दबावपूर्वक प्रयोग : अच्छी आंख बंद करके टेढ़ी आंख से सीधे देखने को कहा जाता है। इस तरह टेढ़ी आंख को आलस एवं अंधकार से बाहर आकर देखने के लिए उत्तेजित किया जाता है। ज्योंही आंख सामने की वस्तु को देखने लगती है, स्वयं ही अपने को सीधी करने लगती है। यदि १५ दिनों की अवधि में नेत्र-ज्योति में फर्क पड़ने लगे, तभी इस इलाज को आगे जारी रखा जाता है, अन्यथा बंद कर दिया जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शल्यक्रिया : इलाज का सबसे अच्छा और महत्वपूर्ण भाग है शल्यक्रिया। कोये (नेत्रगोलक) को इधर-उधर घुमाने वाली मांसपेशियों के तंतओं पर शल्य-क्रिया की जाती है। टेढ़ी आंख के प्रकार को ध्यान में रखते हुए मांसपेशियों को ताना या ढीला किया जाता है। यदि आंख अंदर की ओर टेढ़ी हो तो बाहर की मांसपेशी को ताना जाता है ताकि आंख बाहर की ओर खिंच जाये। उसके साथ ही अंदर की मांसपेशी को ढीली करके छोड़ देते हैं। यदि आंख बाहर की ओर टेढ़ी हो तो ठीक इसके विपरीत ढंग से शल्यक्रिया की जाती है। इसी तरह ऊपर अथवा नीचे की ओर टेढ़ी आंख का भी इलाज होता है। टेढ़ी आंखें अक्सर दायीं अथवा बायीं ओर को झुकी होती हैं। नेत्र-सर्जन शल्यक्रिया करते समय गणितीय माप तथा रोगी की शरीर-रचना और अपने अनुभव का पूरा उपयोग करता है। यह विशेष ध्यान रखा जाता है कि किसी भी हालत में कोया न फटने पाये तथा उपरोक्त अवयवों को छोड़कर दूसरों को न छेड़ा जाये।

इलाज के लिए आदर्श उम्र

शल्यक्रिया के लिए आदर्श उम्र दो से चार वर्ष के बीच है। मां-बाप इतने छोटे बच्चे का डर के मारे आपरेशन नहीं करवाते। परंतु यह एक अक्षम्य और खतरनाक अपराध ही कहा जायेगा। यह बात सबको अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिये कि शल्यक्रिया के क्षेत्र में अनोखी प्रगति हुई है, विशेषकर आपरेशन से पूर्व बेहोशी के इंजेक्शन देने से अधिकांश खतरे टल गये हैं। कम उम्र के बालक पर अधिक सफलता के साथ शल्यक्रिया संभव है। उम्र-सीमा ४ से ५ वर्ष तक भी बढ़ाई जा सकती है। परंतु तब बच्चे के स्कूल जाने की आयु शुरू हो जाती है। इसलिए यही अच्छा है कि उसका इलाज एक दम छोटी उम्र में कर दिया जाये ताकि स्कूल में भरती होते समय उसमें किसी किस्म का ऐब न रहे। इससे उसका आत्मविश्वास बना रहेगा और वह साहस के साथ आगे बढ़ पायेगा।

देरी के दुष्परिणाम

तिरछी आंख को प्रकृति के सहारे छोड़कर लंबे समय तक उसका इलाज न कराना आंख के लिए विनाशकारी परिणाम ला सकता है। यह अधिक संभव है कि आंख धीरे-धीरे निष्क्रिय होकर एक दिन पूरी तरह फूट जाये। जब आंख से दिखता नहीं, तो मस्तिष्क के दृष्टि-केंद्र भी उसकी तरफ अपने कपाट बंद कर लेत हैं। अंधापन मूलतः आंख के कोये में न होकर मस्तिष्क के दृष्टि-केंद्रों में होता है। ये केंद्र सिर्फ ५-६ वर्ष तक ही आंख का इंतजार करते हैं और उसके अनुरूप अपने को ढालने का प्रयत्न करते हैं। अथवा, इसी बीच आंख की जरूरत के अनुसार इन केंद्रों को ढाला जा सकता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। उम्र के बीत जाने पर फिर कुछ नहीं हो सकता।

हां, आंख आपरेशन से सीधी जरूर होगी परंतु उसमें प्रकाश नहीं आयेगा। देरी का यह भी परिणाम होता है कि सीधी की हुई आंख समय बीत जाने पर पुनः टेढ़ी हो जाती है।

दस वर्ष की आयु के बाद

दस वर्ष की उम्र के बाद आंख में पैदा होने वाला तिरछापन आंख को नियंत्रित करने वाली मांसपेशियों के लकवे का परिणाम है। यह छोटे बच्चों में भी हो सकता है। परंतु उसे सिर्फ नेत्ररोग-तज्ञ ही बता सकता है और उसका इलाज कर सकता है। बड़े बच्चों में लकवे की वजह से टेढ़ी आंख होने के निम्न कारण हैं:

१–सिर के बल गिरने से मस्तिष्क अथवा आंख पर सीधी चोट। २–मस्तिष्क का बुखार, टाइफाइड, डिपथीरिया, मेनिनजाइटिस अथवा मस्तिष्क की गांठ। ३–चेचक और ४–अज्ञात कारणों से होने वाले मस्तिष्क के दूसरे रोग। आंख की मांसपेशी को लकवा मारने का कारण मस्तिष्क से निकलने वाली नाड़ियों की बीमारी है।

आंख की मांसपेशी के लकवे का इलाज शरीर की दूसरी लकवा-मारी हुई मांस-पेशियों की तरह ही होता है। परंतु यह विभिन्नता ध्यान देने योग्य है कि ऐसी दशा में आंख के आपरेशन की सलाह नहीं दी जाती। बस आंख की नाड़ियों और मांसपेशियों को आराम और टानिक दिये जाते हैं, ताकि उनमें खोई हुई शक्ति वापस आ जाये। समय के साथ करीब ५० प्रतिशत बीमारों की आंखें बहुत कुछ या पूरी ठीक हो जाती हैं। जहां सामान्य तिरछेपन के लिए आपरेशन जल्दी-से-जल्दी जरूरी है, मांसपेशी के लकवे की वजह से हुई टेढ़ी आंख के लिए शल्यक्रिया सिर्फ अंतिम साधन के रूप में ही स्वीकारी जा सकती है।

आजकल आंख के दवाखानों में विद्युत ताप और फिजियोथेरेपी से भी पर्याप्त संतोषजनक परिणाम मिलने लगे हैं, परंतु देर होने पर आंख में प्रकाश आ ही जायेगा, ऐसा निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

लंबे समय तक चलने वाली अंधत्व की बीमारियों की वजह से कोई आंख बाहर अथवा भीतर की ओर टेढ़ी हो सकती है। अंधी आंख समय के साथ बाहर की ओर टेढ़ी हो जाती है। क्योंकि जब आंख देखने का काम करने में समर्थ नहीं होती, तो इसी तरह टेढ़ी होकर आराम करती है। वह आलसी और बीमार हो जाती है। इस तरह की टेढ़ी आंख तब तक सीधी नहीं हो सकती जब तक उसकी बीमारी ठीक न कर दी जाये और वह भी अविलंब शुरुआत में ही।

–बम्बई अस्पताल, मेडिकल रिसर्च सेंटर, १२ मरीन लाइंस, बम्बई-४०००२०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैज्ञानिक चरितमाला-४

महान वैज्ञानिक जोसेफ प्रीस्टले

□

फिलिप केन और सेमुअल निसेनसन

अकेले अमरीका में प्रति वर्ष १,०००,०००,००० डॉलर से अधिक की राशि आइसक्रीम सोडा पर खर्च होती है। इस लाभदायक उद्योग को जन्म देने का श्रेय वास्तव में वैज्ञानिक जोसेफ प्रीस्टले को है, क्योंकि उनके पानी में घुली कारबन-डॉय-ऑक्साइड के आविष्कार के कारण ही आइसक्रीम सोडा, सोडा पॉप, कोला, जिंजर एल आदि पेय पदार्थों का आविष्कार और व्यापार संभव हो सका था।

जब इस आविष्कार के लिए प्रीस्टले को स्वर्ण-पदक मिला था, तो उन्हें क्या पता था कि उनका यह आविष्कार आगे चलकर अरबों डॉलर वाले एक उद्योग को जन्म देगा।

लेकिन, महान वैज्ञानिकों की श्रेणी में प्रीस्टले को लाकर बैठाने का श्रेय उनके एक अन्य आविष्कार 'जीवन-गैस' को है।

जोसेफ़ प्रीस्टले का जन्म १३ मार्च, १७७३ को इंग्लैंड के लीड्स नगर के निकट स्थित एक छोटे से कस्बे में हुआ था। जब उनकी आयु केवल ७ वर्ष थी, तब उनके पिता का, जो एक निर्धन जुलाहा थे, निधन हो गया था। उनकी एक चाची ने उनका लालन-पालन किया। वे उन्मुक्त धार्मिक विचारों वाली महिला थीं, और उन्होंने अपने भतीजे प्रीस्टले को भी ऐसे विचारों का समर्थन करने वाले एक विद्यालय में दाख़िल कराया, जिसे 'डिस्सेंटर्स' नामक एक संस्था चलाती थी। वे प्रीस्टले को पादरी बनाना चाहती थीं।

इस विद्यालय में प्रीस्टले ने जर्मन, फ्रेंच, इतालवी, अरबी आदि भाषाएं सीखीं। पर, चूंकि वे थोड़ा हकलाते थे, इसलिए वे एक छोटे चर्च के पादरी ही बन पाये। पढ़ाई समाप्त करने के बाद, अपनी आय बढ़ाने के उद्देश्य से उन्होंने अपने घर में ही छात्र-छात्राओं को पढ़ाना आरंभ किया। बाद में वे उसी विद्यालय में एक शिक्षक बन गये, जिसमें पढ़ा करते थे। यहां उनकी रुचि रसायन-विज्ञान में जागृत हुई। धीरे-धीरे वे स्थानीय वैज्ञानिकों के बीच विख्यात हो गये। तभी एक ऐसी घटना घटी, जिसने प्रीस्टले के जीवन को एक नयी दिशा प्रदान की।

बैंजमिन फ्रेंकलिन एक प्रख्यात अमरीकी के रूप में ब्रिटेन में पधारे। वहां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

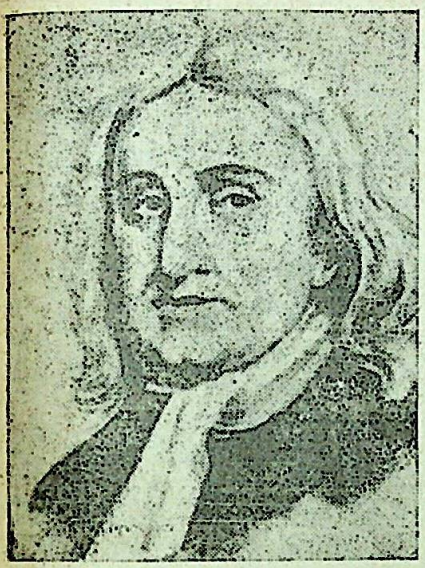

जोसेफ प्रीस्टले

आकर उन्होंने अमरीका की स्वाधीनता का आंदोलन छेड़ा। प्रीस्टले ने फ्रेंकलिन के संपर्क में आकर 'हिस्ट्री एंड प्रेजेंट स्टेट ऑफ एलेक्ट्रिसिटी' नामक पुस्तक लिखी जिसके कारण उन्हें १७६६ में रॉयल सोसायटी का सदस्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में विद्युत् संबंधी फ्रेंकलिन के वैज्ञानिक प्रयोगों का विवरण देने के अलावा विद्युत् के क्षेत्र में किये गये अपने भौतिक प्रयोगों का उल्लेख भी किया था।

आगे चलकर, प्रीस्टले लीड्स के एक प्रार्थनालय में पादरी के रूप में नियुक्त हुए। उनका वेतन बहुत कम था, और उसमें उनके परिवार का गुज़ारा बड़ी कठिनाई से होता था। फिर भी, वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए वे समय खोज ही लेते थे।

लीड्स में उनका घर एक विशाल वदबूदार मद्यनिर्माण शाला के निकट स्थित था। उसके मालिकों से आज्ञा लेकर उन्होंने वहां से निकलने वाली 'वायु' पर वैज्ञानिक प्रयोग करने आरंभ कर दिये। इन प्रयोगों से उन्हें पता चला कि लकड़ी का जलता हुआ टुकड़ा इस हवा के स्पर्श से फ़ौरन बुझ जाता था। अन्य वैज्ञानिकों के प्रयोगों के आधार पर उन्होंने कार्बन-डॉय-ऑक्साइड नामक इस गैस को तैयार करने की विधि ढूंढ निकाली। बाद में उन्होंने इस गैस को जल में विलीन करने की विधि भी ढूंढ निकाली।

फ्रांस की सरकार ने उन्हें इस आविष्कार के लिए फ्रेंच अकादमी का सदस्य बनाकर सम्मानित किया। अब वे वैज्ञानिक के रूप में इतना कमा सकते थे कि उन्हें पादरी का काम करने की ज़रूरत न थी। लॉर्ड शैलबर्न नामक एक राजनीतिज्ञ और विद्वान ने उन्हें अपने पुस्तकालय का व्यवस्थापक बनाकर एक प्रयोगशाला भी उनके हवाले कर दी जहां वे वैज्ञानिक प्रयोग कर सकते थे। वे लार्ड शैलबर्न के विशाल किले के एक भाग में रहने लगे। अब उनकी वार्षिक आय २५० पौंड थी।

लॉर्ड शैलबर्न के संरक्षण में प्रीस्टले ने अनेक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक आविष्कार किये। इनमें ओषजन (जीवन गैस), का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आविष्कार भी सम्मिलित था, जिसे उन्होंने 'डेफ्लोजिस्टनेटेड एयर' कहा था। 'ऑक्सीजन' नाम लेवोसियर ने दिया था।

१७८० में प्रीस्टले को 'ल्यूनर सोसायटी' का सदस्य बनने के लिए आमंत्रित किया गया। उस काल के अनेक प्रमुख वैज्ञानिक और उद्योगपति इस सोसायटी के सदस्य थे। स्टीम इंजन के आविष्कारक जेम्स वॉट और चार्ल्स डार्विन के पितामह भी इस सोसायटी के सदस्य थे। सोसायटी के सदस्य प्रति माह पूर्णमासी के बाद पड़ने वाले पहले सोमवार को मिलकर विचारों का आदान-प्रदान किया करते थे।

प्रीस्टले के मन में कभी अपने वैज्ञानिक प्रयोगों या इस सोसायटी के धनी सदस्यों से पैसा कमाने का विचार नहीं आया। उनके सारे आविष्कार मानवता को उनकी देन थे।

१७९० में एक घटना के कारण उनके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ आया। इस काल में वे फ्रांस में चल रही जनक्रांति के ज़बर्दस्त समर्थक बन गये। लेकिन इस समर्थन की उन्हें भारी क़ीमत चुकानी पड़ी। १४ जुलाई १७९१ को फ्रेंच जनक्रांति की दूसरी साल-गिरह पर उनके घर पर एक क्रुद्ध भीड़ ने हमला किया, और एडमंड बर्क ने ब्रिटेन की संसद में उनकी कटु आलोचना की।

इस कांड के बाद, डॉक्टर प्रीस्टले लंदन आकर रहने लगे। पर यहां भी फ्रेंच जनक्रांति का विरोध करने वालों ने उन्हें शांति से बैठने नहीं दिया। वे उन्हें 'देशद्रोही' और 'अधार्मिक व्यक्ति' घोषित कर उनका अपमान करते रहे। उनके भूतपूर्व मित्रों और सहयोगियों ने भी उनसे संबंध-विच्छेद कर लिये। ब्रिटेन में उनका रहना दूभर हो गया था। इसलिए, १७९४ में उन्होंने न्यूयार्क के लिए प्रस्थान किया। वहां उनका ज़ोरदार स्वागत हुआ। उनका स्वागत करने वालों में वैज्ञानिकों के अलावा, धार्मिक और राजनैतिक नेता भी थे। अमरीका में अनेक संस्थाओं ने उन्हें अपने यहां कार्य करने के लिए आमंत्रित किया, मगर उन्होंने नार्थम्बरलैंड में, जहां उनके पुत्र दो वर्ष पहले ही चले गये थे, रहना ज़्यादा ठीक समझा। आज वहां का उनका निवास स्थान राष्ट्रीय स्मारक बन चुका है।

वैज्ञानिक प्रीस्टले सबसे अधिक विख्यात हैं ओषजन के अपने आविष्कार के लिए। प्रयोगों से उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि ओषजन की सहायता से चूहे तथा अन्य जानवर अधिक समय तक और अधिक उमंग के साथ जी सकते हैं। उन्हें कार्बन-डायऑक्साइड के आविष्कार का श्रेय प्राप्त है।

'हंसाने वाली गैस' के नाम से जानी जाने वाली नाट्रोयस ऑक्साइड के, जिसका प्रयोग दंत-चिकित्सक प्रायः दांत निकालते समय करते हैं, आविष्कार का श्रेय भी उन्हीं को है।

९० वर्ष की आयु में १८५४ में जोसेफ़ प्रीस्टले का निधन हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(पृष्ठ १३१ का शेषांश)

तुम्हारा कोई भी एक कदम मुझे उस जड़ स्थिति से भी ज़्यादा बदतर स्थिति में पहुंचा सकता है !

क्या तुम यह चाहोगे कि मरी इस वीरानी ज़िंदगी में हमेशा पतझड़ का मौसम ही छाया रहे ! वैसे बहारों की चाह मुझे भी है, मगर अफसोस कि यह ज़मीन ही बंजर है इसलिए अपेक्षा भी करना उस नदी के किनारे खड़े हुए ठूंठ के समान है जिसे नदी ही कुछ नहीं दे सकी तो और किसी से वह क्या अपेक्षा करे ? ज़िंदगी के बाईस वर्षों में आज यह पहली बार एक ऐसा क्षण आया है जब मुझे जीने की इच्छा ने घेर लिया है, परंतु यह एक महज़ मृगतृष्णा के अलावा और है ही क्या? क्या वह संभव नहीं कि तुम पहले की तरह सहज बन इस मृगतृष्णा को अपनी जगह कायम रहने का मौका दो ? क्योंकि मैं ऐसा महसूस करती हूं कि केवल यही एक कारण होगा मेरी शेष ज़िंदगी गुज़ारने का केवल तुम्हारी एक मृगतृष्णा ...

अनेक संभावनाओं, उम्मीदों व अपेक्षाओं के साथ तुम्हारे इंतज़ार में ।

—एक अस्तंगता

—३८, जनसुख निवास, कस्तूरबा रोड, कांदिवली (वेस्ट), बम्बई—४०००६७

जब नेहरूजी ने मूंगफली खायी

बात १९५७ की है। देश में आम चुनावों की सरगर्मी थी। पंडित नेहरू को पंजाब में एक स्थान पर भाषण देने जाना था। विशाल जनसमूह अपने प्रिय नेता की प्रतीक्षा कर रहा था। मंच पर काफी गहमागहमी थी। पत्रकार और नेता मंच घेरे बैठे थे। इतने में एक पत्रकार से स्वयंसेवकों की तू-तू मैं-मैं हो गयी। पत्रकार कह रहा था, कि उसका स्थान ऊपर मंच पर सुरक्षित है और उसका परिचय-पत्र ऊपर मंच पर बैठे एक अन्य पत्रकार मित्र के पास है। स्वयंसेवक इसे कोरी बहानेबाजी समझ रहे थे। इतने में पंडितजी आ गये। पर मंच के रास्ते में वही पत्रकार और स्वयंसेवक अड़े थे। पंडितजी ने पत्रकार से पूछा, 'क्या माजरा है ?'

'सर, मैं पत्रकार हूं, ऊपर बैठा था, बाद में नीचे गया....'

बात बीच में काटकर पंडितजी बोले, 'क्यों नीचे गये थे ?'

साहस बटोरकर पत्रकार बोला, 'सर.... सर ... मैं मूंगफली लेने गया था।'

'कहां हैं मूंगफलियां ?' पत्रकार ने मूंगफलियां आगे कर दीं। आधी मूंगफलियां झपटकर पंडितजी मंच पर चढ़ गये और पीछे-पीछे पत्रकार भी।

—सुधीर निगम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन पुस्तकालय,
अस्सी, वाराणसी।

(पृष्ठ ६४ का शेषांश)

यह है कि श्रीकृष्ण गीता में जो कुछ कहना चाहते थे, जो विचार-दर्शन संप्रेषित करना चाहते थे वह अर्जुन के लिए तो था ही, युद्ध-भूमि में उपस्थित अन्य योद्धाओं के लिए भी था, लेकिन सबसे बढ़कर धृतराष्ट्र के लिए था, क्योंकि धृतराष्ट्र भी क्या मोहांध न थे ? अपने पुत्रों के मोह में पड़कर सबसे अधिक कर्तव्यच्युत वे ही थे। और उनका यह मोह कब से चला आ रहा था। तो उनके मोह को दूर करना भी श्रीकृष्ण का लक्ष्य रहा होगा, लेकिन धृतराष्ट्र को गीता सुनाने का कोई प्रयोजन नहीं था, क्योंकि अर्जुन की तरह उनका खुला चित नहीं था। वह बंद चित के चरित्र हैं। इसलिए श्रीकृष्ण ने बहुत-बहुत अप्रत्यक्ष या कहें कि कलात्मक ढंग से, उन तक गीता का जीवन-दर्शन पहुंचाया है।

इस प्रकार गीता प्रत्यक्षतः तीन स्तरों पर संप्रेषित होनेवाली रचना है—वह अर्जुन के लिए है, युद्ध-भूमि में उपस्थित योद्धाओं के लिए है, और धृतराष्ट्र के लिए है। लेकिन यह तो श्रीकृष्ण के तात्कालिक लक्ष्य हैं। गीता का प्रयोजन तो सर्वकालिक भी है। और इस दृष्टि से देखें तो मोह तो जीवमात्र का स्वभाव है। यह युग-युग से है, और रहेगा। तो इस मोह से लड़ने के लिए कोई ऐसा हथियार तो चाहिए जो लोगों को युग-युग तक काम देता रहे। इसलिए गीता में श्रीकृष्ण ने चिरकालिक समस्या को अपने विचार का विषय बनाया है।

—गोड्डा कालेज, संताल परगना
(बिहार) ८१४ १३४

□

(पृष्ठ २८ का शेषांश)

कनु मस्ती से कुछ गा रहा था। सांप काफ़ी पास आ गया था। कनु अब अपना कमल सूंघने लगा। क्या कनु को कुछ मालम नहीं ? हे राम ! अब क्या होगा ? सांप बिलकुल पास आ गया था। उसने कनु को काटने के लिए फन ऊपर उठाया।

अचानक केऊं-केऊं की आवाज़ चारों ओर गूंज उठी। कनु के प्यारे मोर, मोरनी सांप बने राक्षस पर झपट पड़े और चोंच मार-मारकर उसके टुकड़े कर दिये। राक्षस सांस भी नहीं ले पाया। आनंद से भरे मोर, पंख फैलाकर उसके चारों तरफ़ ठुमक रहे थे, नाच रहे थे मानो उससे कह रहे हों। 'कनु ! हमने मार दिया उसे, हमने मार दिया उसे।'

यमुना का नीला जल बहता जाता था। नील कमल महकते रहते थे। कनु रोज़ बनता था कार्तिकेय। मोर की सवारी करते समय कनु के घुंघराले बाल हवा में उड़ते जाते थे। कितना भाग्यशाली था वह मोर। क्या उसे देवताओं के राजा इंद्र ने भेजा था ?

सु. रामकृष्णन् द्वारा भारतीय विद्या भवन, क. मा. मुन्शी मार्ग, बंबई-४००००७ के लिए प्रकाशित तथा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, ३६/४८ खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बंबई-४०० ००४ में मुद्रित।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिन में बारात चढ़ रही है ?

- हाँ, यह एक अच्छी रीत चली है। बेकार का ताम-झाम और बिजली की बरबादी, यह कहां की अक्लमंदी। जब कोई बेटी वाला बेचारा दहेज की फांसी के तख्ते पर चढ़ा होता है तो उसे बिजली का एक-एक वल्ब बिच्छू के डंक की तरह काटता है।
- हम दहेज को पाप समझते हैं तभी तो लोग छिपकर दहेज लेने लगे हैं। पर ये ताम-झाम भी बंद होना चाहिए। बिजली की समाज के लिए उतनी ही जरुरत है जितनी हमारे शरीर के लिए खून की। क्या अपने खून को कोई नाहक बहाता है ?
- 1980-81 में हमने 118 अरब 50 करोड़ यूनिट बिजली पैदा की। 1981-82 में भी हमारा लक्ष्य 130 अरब यूनिट बिजली तैयार करना है परंतु अभी मंजिल दूर है।

सामाजिक कुरीतियां मिटाना और राष्ट्र हित के लिए परिश्रम करना हमारा सर्वोच्च कर्तव्य है

नया 20 सूत्री कार्यक्रम

विस्तृत जानकारी के लिए निम्न कूपन का प्रयोग करें।

उप निदेशक,
मास मेलिंग यूनिट,
विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय,
बी ब्लाक, कस्तूरबा गांधी मार्ग,
नई दिल्ली-110001

नाम _____

पता _____ पिन _____

नये 20 सूत्री कार्यक्रम के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए कृपया मुझे हिंदी/अंग्रेजी की पुस्तिका भेजें।

davp 81/383

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Regd. No. BYW 203

स्टेट बैंक में बचत यानी तकदीर आपके साथ

अपने "धन का नियोजन" करने से संबंधित हमारी अनेक सुविधाओं की जानकारी के लिये हमारी 6,000 से भी अधिक शाखाओं में से किसी भी नज़दीकी शाखा में पधारिए.

स्टेट बैंक
सुरक्षा : एक सुखद अनुभूति

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक...१५२०...
दिनांक.....

CHAITRA-SBI-881 HIN

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक 2026
दिनांक

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
आगत क्रमांक 9430
दिनांक

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक 2026
दिनांक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri